नया समाज

दिसम्बर, १९४८

क्षित्यपतेजमरुतव्योम

पञ्चभूत इन में से गैस कौन

"हमारा सरोकार सिर्फ आगसे है, या यदि आप चाहें तो हवासे भी, क्योंकि जिस गेसका प्रयोग आप करते हैं, वह बिना हवाके जलेगा ही नहीं।
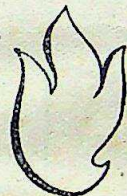
"हमारी जिम्मेदारी काफ़ी बड़ी है, क्योंकि आगकी उत्पत्ति हमपर ही निर्भर करती है। कहनेका तात्पर्य यह कि इस महानगरी और इसके उपनगरोंको आग और रोशनी देनेका काम हमारा ही है।

"पिछले कुछ समयसे युद्धके कारण पैदा हुई उत्पादन-संबंधी कठिनाइयोंके सबबसे गैसका इस्तेमाल करनेवालोंको काफ़ी असुविधाजनक परिस्थितियोंका सामना करना पड़ा है। किन्तु ईमानदारी और निरन्तर परिश्रमसे कम्पनीने गैसके उत्पादनको इस सतह तक पहुँचा दिया है कि वह संकटसे निकल आई है, ऐसा दिखाई देता है।

"और यद्यपि हम अभी भी नए स्थानोंको गैस देनेकी स्थितिमें नहीं हैं, तथापि हमारा विश्वास है कि शीघ्र ही ऐसी स्थिति हो जायगी कि हम अपने वर्त्तमान और भावी ग्राहकोंको सन्तुष्ट कर सकें।"

कलकत्ता क्रेडिट कारपोरेशन लि०

SWADESHI COTTON MILLS Co. Ltd. CAWNPORE
INDIA
स्वदेशी काटन मिल्स कम्पनी लिमिटेड
मनपसन्द धोतियां,
सुन्दर साड़ियां,
टिकाऊ चादरें
और शर्टिंगके लिये
हमेशा "स्वदेशी" ही खरीदें।

नीदरलैण्ड्स

ट्रेडिंग सोसाइटी (बैंकर्स)

(नीदरलैण्ड्समें रजिस्टर्ड—१८२४ में संस्थापित)

कम्पनीके हिस्सेदारोंका दायित्व सीमाबद्ध है।

अधिकृत पूँजी	.... फ्लोरीन	६०,०३०,३००
		(रु० ७५,०३७,८७५)
चालू तथा जमा पूँजी	.... फ्लो०	४८,०३०,०००
		(रु० ६०,०३७)
रिजर्व फण्ड	.... फ्लो०	१७,०००,०००
		(रु० २१,२५०,०००)

हेड-आफिस : एम्सटरडम (नीदरलैण्डसमें ७६ शाखाएँ हैं।)

शाखाएँ : बम्बई, कलकत्ता, कराची, रंगून, पीनांग, सिंगापुर, हांगकांग, शंघाई, जेड्डाह (सउदी अरब), तोक्यो, ओसाका। प्रमुख केन्द्र : जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, सेलीबीज तथा बालीमें।

शाखाएँ तथा सूचनादाता : लन्दन, न्यूयार्क तथा जापान।

सूचनादाता समस्त संसारमें।

बैंक प्रत्येक तरहका बैंकिंगका कार्य करता है। करेंट एकाउण्ट्स खोलने और फिक्सड-डिपाजिटके लिए शर्तें आदि पत्र लिखकर पूछिए।

कलकत्ता-आफिस :
२८, पोलक स्ट्रीट।

एच० होल्टकेम्प,
मैनेजर।

बम्बई-आफिस :
१४, चर्च गेट स्ट्रीट।

पी० वोउडा,
स्थानापन्न मैनेजर।

कराची-आफिस :

जी० द' नाई,
मैनेजर।
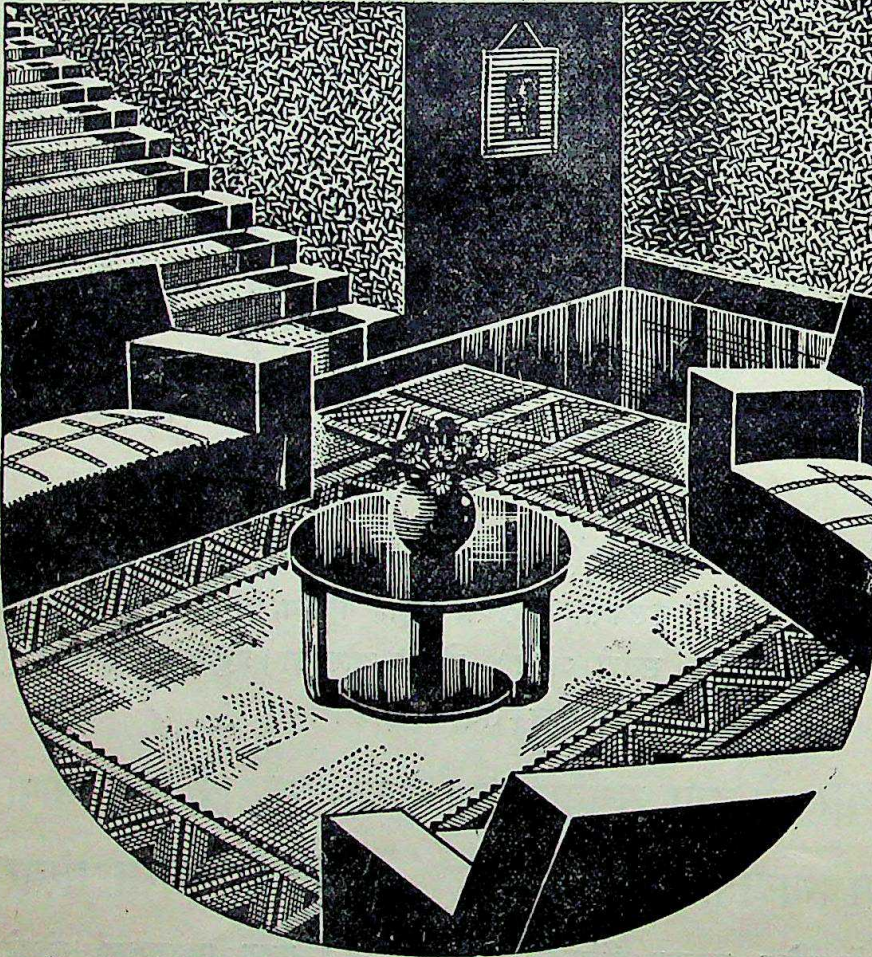
वर्ष १ : खंड १] कलकत्ता, दिसम्बर, १९४८ [अंक ६ : पूर्णांक ६

प्रभात

स्व० चन्द्रकुँवर बर्त्वाल

ओ प्रभात, मेरे प्रभात ! सुन्दर आओ धीरे-धीरे,
गोशालाके द्वार खोलकर, गौओंको बाहरकर-

वार्षिक मूल्य ८) छमाही ५) } 'नया समाज' कार्यालय, १००, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१ { विदेशोंमें १२ एक प्रति ।।।)
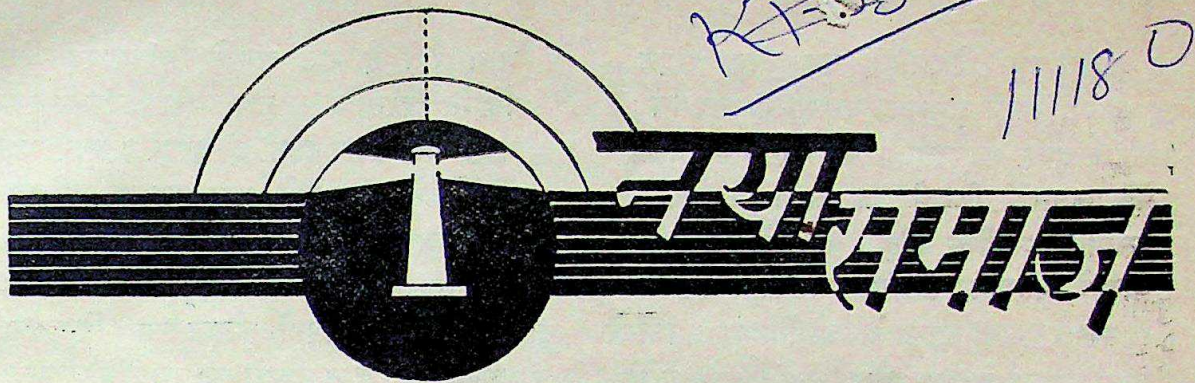
वर्ष १ : खंड १] कलकत्ता, दिसम्बर, १९४८ [अंक ६ : पूर्णांक ६

प्रभात

स्व० चन्द्रकुँवर बर्त्वाल

ओ प्रभात, मेरे प्रभात ! सुन्दर आओ धीरे-धीरे,
ओ पुलकित पवनोंकी चंचल स्वर्णपुरीके हीरे !
निर्मल जलपर पड़ती लखकर तरुण किरणकी छाया,
इस निरभ्र नभ-सा मुझको भी हँसना ही है भाया !

उमड़ो वन प्रवाह सौरभके शिशिर-शीर्ण जीवनमें,
जागो आशाके वसन्त-से यौवनके उपवनमें !
दूर करो मानिनि निद्राके आननका अवगुंठन,
उसे प्रीतिकी रीति सिखाओ मुग्धाके जीवन-धन !

स्वर्ण-अश्वको थाम द्वारपर उतरो हे चिरसुन्दर !
निद्रित प्रेयसिके आगे तुम आओ मृदुल चरण धर ;
सोनेकी वंशी हाथोंमें, मृदुल हँसी अधरोंपर,
भर बाहोंमें वह लज्जित मुख चूमो हे मधुराधर !

तुम्हें देख कर उठी ससंभ्रम तरु- तरु-तलपर छाया,
तुम्हें देख कुसुमोंके मुखपर मंद हास फिर आया ।
जोड़ तरल कर लगा भालपर विन्दु अरुण चन्दनका,
हुई तुम्हारे शुचि चरणोंमें प्रणत पावनी गंगा !

निश्चल पंखोंको दी तुमने शक्ति पुनः उड़नेकी,
थिर चरणोंको मिली प्रेरणा फिर उठकर चलनेकी ;
मुँदे नयन फिर खुले, हृदयमें फिर आई आशाएँ,
अधरोंमें गुनगुना उठीं फिर प्राणोंकी भाषाएँ !

गोशालाके द्वार खोलकर, गौओंको बाहरकर,
चले मधुर गाते तुम, हिम-जलसे भीगे वन-पथपर ;
भेजी तुमने कृषक-कुमारी हँसिया ले खेतोंको,
कटनेको चुपचाप खड़ी है जहाँ फसल आनत हो ।

ले जाते किशोर पृथ्वीको तुम यौवनके पथपर,
कलिकाओंके फूल बनाते, फूलोंके फल सुन्दर ।
करते अस्त चन्द्रको, रविको नील गगनमें लाते,
ऋतुओंको करते परिवर्त्तित, विविध समीर बहाते ।

चतुर चोर तुम नवयौवनके उपवनमें नित आकर,
मधुर फलोंके परिणत रससे अपनी तृषा बुझाकर ;
बैठ आयुके तरुके नीचे घन छायामें दिन-भर,
संध्या समय चले जाते हो मुरली मधुर बजाकर ।

नील गगनके स्वर्ग-गीत तुम, स्वर्ण मरण-रजनीके,
तुम जागृतिके स्वप्न मनोरम पलकोंपर अवनीके ;
काल-नदीके तटकी सोनेकी सिकता-से सुन्दर,
सूर्य्य-लोकसे अविरल झरते शान्त ज्योतिके निर्झर !

तुम समाधि मेरे शैशवके आशामय स्वप्नोंकी,
तुम मेरे खोये यौवनकी बालारुण कोमल-श्री ;
ये नीरव नयनोंके चुम्बन, ये कोमल आलिंगन,
ये चुप-चुप विह्वल कानोंमें पुलक स्वरोंके वर्षण ।

यह कल्लोल हास किरणोंका, यह दूर्वाका रोदन,
यह एकान्त प्रेमका अनुभव, यह नीरव आकर्षण ;
अन्तहीन तृष्णा यह मनकी, यह अतृप्ति यौवनकी,
फूलोंके सागरमें फिरती यह तरंग जीवनकी !
पलकोंपर मोतीकी बूँदें, आँचलमें मृदु किरणें,
वाणीमें विहगोंका कलरव, अलकोंमें नव-पवने !
ये उपहार सदा उड़ जाते जो निष्फल सपनों-से,
क्या न सदाके लिए बनेंगे धन उरके नयनोंके ?
चलना भूल खोल अश्वोंको, बैठ मृदुल दूर्वापर,
दूर किसी नीरव निर्जनमें बाँहोंमें बाहें भर ;
पुष्पोंके बनमें, सरिताओंकी मृदु कल-कल सुनते
हे सुन्दर हम सदा सुखी बन क्या न रुके रह सकते ?
चलते-चलते बीता शैशव, बीत रहा है यौवन,
सुख-दुख हँसते-रोते, आते-जाते बीता जीवन।
आनेवाले सुखकी आशासे हँस पड़ता यौवन ;
तुम्हें देखकर कभी प्रेमसे भर आते हैं लोचन।
हे परिचित, हे सदा अपरिचित, हे नीरव, हे सुन्दर !
हे प्राणोंके परम मित्र, हे शत्रु उदास मनोहर !
नील गगनके द्वार खोलकर स्वर्ण-मुकुट धारणकर,
मेरी आत्माके द्वारोंपर आते तुम वर बनकर।
कर एकान्त देशमें परिणय, अपनी तरुण वधूको
भर बाहोंमें, उसका मृदु-मृदु रोदन सुन पुलकित हो ;
उसे बिठाकर अपने रथपर, मधुर स्वरोंमें गाते,
सुखमें या दुखमें प्रतिदिन तुम नाथ, कहाँ ले जाते ?
प्रतिपल विदा सुखोंसे लेते फिर न कभी खिलनेको,
कहाँ जा रहे हम, अपनोंसे फिर न कभी मिलनेको ?
यह कैसी यात्रा है जिसमें आज पदोंपर चुभकर,
कल वे ही हँसियाँ चू पड़तीं आँखोंमें अकुलाकर ?
हाय, कहाँ वे सुख जो अपने, अब रोकर भी उनकी
सपनोंमें भी कभी न मिलती क्षीण झलक भी मनकी;
बार-बार छलछला दृगोंमें उठती जब वह आशा,
जब निशिदिन श्रुतियाँ सुनती थीं कोमल सुखकी भाषा !
जाने बीत गया कब बचपन, खिल आया कब यौवन ?
जाने कब मेरी मुकुलोंने खोले अपने लोचन ?
आँखें मूँद तुम्हारी बाँहोंपर अपना सिर धरकर,
मैं चुपचाप चला जाता हूँ साथ तुम्हारे सुन्दर !

भाग रही है रात सामने अंधकारको लेकर,
पीछेसे घिरता आता तम, दीप अनंत जलाकर।
आस-पास करती रहती हैं ऋतुएँ अस्थिर नर्त्तन,
पृथ्वीके आननपर होते, क्षण-क्षण नव परिवर्त्तन।
और जरा जब आकर मेरे नयन मलिन कर देगी,
जब इस बुझते हृदय-दीपको निविड़ निशा घेरेगी ;
तब मेरे सिरहाने अपनी कोमल प्रभा बिछाकर,
आश्वासन क्या दे न सकोगे तुम रजनीमें आकर ?
गहन मृत्युकी किसी अँधेरी वातायन तक उठकर,
मैं विहगोंके गीत सुनूँगा आँखोंमें आँसू भर !
देखूँगा सुदूर जीवनके पथपर किरणें लेकर,
उतर रहे हो नील गगनमें तुम हँस हास मनोहर।
मैं रोऊँगा, जब फूलोंसे तुम बन-बन भर दोगे,
मैं रोऊँगा, जब तुम दूर्वाके आँसू पोंछोगे।
मैं रोऊँगा, जब छायाके तलपर लेट अकेले,
तुम कोमल-कोमल भ्रमरोंका गुंजन मधुर सुनोगे।
मुझे दूर अपनी किरणोंसे प्रियतम अधिक न रखना,
मेरी गहन मृत्युमें सुन्दर सपना बनकर जगना ;
मुझे जगाना पुनः सृष्टिमें, जिसकी छाँह तुम्हारी,
देती है नित तरल स्वर्णकी कान्ति नयनहर प्यारी।
मुझे जगाना पुष्प बनाकर इस सुखपूर्ण भुवनमें,
मुझे उड़ाना भ्रमर बना फिर इस मृदु मंद पवनमें ;
खग-मृग तरु-पल्लव जो-कुछ भी बनकर फिर जागूँ मैं,
मुझे सदा रखना अपनी ही कल किरणोंके बनमें।
मैं जागूँगा पुनः पुष्प बन इस सुखपूर्ण भुवनमें,
मैं जागूँगा तुम्हें देखने शोभन नील गगनमें ;
अथवा प्रेमी मधुकर बनकर उड़ निर्मल मारुतमें,
मैं जागूँगा सदा तुम्हारी कल किरणोंके बनमें !
ओ मेरी आशाके वैभव, सागर नीरव सुखके !
हे उज्ज्वल अवलम्बन मेरे जन्म-जन्मके दुखके !
इस पृथ्वीमें कहीं न दीखें जब मुझको सुख अपने,
तब भी देख सकूँ निशि-दिन मैं सुखद तुम्हारे सपने !
दूर्वा-सी सब ओर उड़ गई, थिर हो गया समीरण,
चारों ओर व्यस्त कलरव कर बहता जाता जीवन।
मैं एकाकी, गए सुखोंकी सुधिसे भरकर लोचन,
करता हूँ चुपचाप तुम्हारी शोभाका अभिनंदन।

'काफल पाक्कू'-कवि

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

श्री चन्द्रकुँवर बर्त्वाल कब हिन्दी-संसारमें आए और कब चले गए, इसका किसीको पता न लगा। पर उनके रूपमें हिन्दी-संसारने अपना सबसे श्रेष्ठ गीति-काव्य-रचयिता पाया और खो दिया, इस प्रकारकी धारणा उनकी कविताओंको देखने से मनमें बनती है। चन्द्रकुँवरके काव्यको किसी मेरुदंडकी आवश्यकता नहीं; वह तो स्वयं अपने तेजसे तेजस्वी है। हिमालयमें निश्चित समयपर गानेवाले 'काफल पाक्कू' पक्षीके गान की तरह चन्द्रकुँवरके सुरीले मुक्तक मन और आत्माको काव्य-सौन्दर्यके एक नये लोकमें उठाए देते हैं, और वह आनन्द अन्त में इस करुणा और कसकके साथ समाप्त हो जाता है कि इस प्रकारके सौन्दर्यका गान करनेवाला कवि इतनी जल्दी हमसे विलग हो गया। उसकी वाणीके परिपाकसे हमारी भाषा और भी धन्य होती, पर ऐसा न हो सका। जो-कुछ भी अट्ठाईस वर्षकी आयुमें उनसे हमें मिल सका, वह भी अद्भुत है। उनकी लिखी हुई कविताओंकी संख्या लगभग ७०० तक है और शुद्ध मुक्तकके आनन्दकी दृष्टिसे कितनी ही इतनी सुन्दर हैं कि वे निखिल हिन्दी-संसारकी संपत्ति कही जा सकती हैं।

कलात्मक सौन्दर्य और आनन्दकी कसौटीपर पूरा-पूरा उतरनेवाले मुक्तककी रचना बहुत ही कठिन है। प्रबंध-काव्य पृथ्वीपर पैर रखकर चलता है; परन्तु मुक्तक पृथ्वी और आकाश दोनोंमें एक साथ ही अपने पंख फैलाता है। पृथ्वीका साथ न छोड़ते हुए भी वह आकाशमें ऊँची-से-ऊँची उड़ान भरनेका अभ्यासी है। आकाशकी निर्मल धूपमें अपने-आपको विलीन करनेकी अभिलाषासे ऊपर उठकर भी वह पृथ्वीके साथ अपना सम्बन्ध बनाए रखता है—

नयन मेरे स्वर्गमें हैं, चरण भूपर चल रहे;
सुधा पावन स्वर्गमें है, धरामें काँटे भरे।

शुद्ध मुक्तककी यही सबसे बड़ी परख है कि न तो उसमें पार्थिव अंशकी अधिक गंध हो और न आकाशकी अस्तित्वहीन तरलता। इस प्रकारकी सफल कविता अत्यन्त कठिन और विरल होती है। श्री चन्द्रकुँवरका मुक्तक-काव्य इस प्रकारकी विलक्षण रस-प्रतीति तक हमें ले जाता है। वह ऊपरसे वेदना-मय जान पड़ता है; पर उसकी यह करुणा कहीं भी जीवनके आनन्दी निर्भरका निराकरण करती हुई नहीं जान पड़ती। करुण-काव्यके इस गुणकी भरपूर प्रतीति हमें कालिदासके 'मेघ-दूत' में होती है। चन्द्रकुँवरकी कवितामें दार्शनिक मतवाद ढूँढ़नेका प्रयास उनकी कविताके साथ अन्याय करना होगा। मुक्तक-कविता तो आनन्दकी झड़ी है, इसीमें उसकी सफलताकी इतिश्री जाननी चाहिए।

चन्द्रकुँवर हिमवन्तकी फूटती हुई जल-धाराओं और ऊँची उठती हुई चोटियोंके बीच कहीं उत्पन्न हुए। केदारनाथके पास पँवालिया उनका ग्राम था, जिसे एक मुक्तक लिखकर उन्होंने अमर किया है। प्राचीन भारतीय इतिहासमें एम० ए० की शिक्षा प्राप्त करनेके लिए वे लखनऊ-विश्वविद्यालयमें भर्ती हुए। पर विपरीत स्वास्थ्यने उन्हें फिर हिमालयके कोटरमें ले जाकर बन्द कर दिया। सात वर्ष तक रोगोंसे युद्ध करते-करते आखिर गत वर्ष १४ सितम्बरको गाते हुए ही उनका अन्त हो गया। हिमालयके उत्संगमें भरा हुआ जो असाधारण कल्लोल और कलरव है, साथ ही उसका जो धीर मौन है, उन दोनोंसे चन्द्र-कुँवरका हृदय पूर्ण था। हिन्दी-जगत्में बाहर आकर वे विज्ञापन-यशकी खोजमें न निकल सके, यह उनकी कविताके लिए हितकर ही हुआ। उनके मनोभावोंके रुके हुए सेतु इधर-उधर न बहकर कवितामें ही फूट निकले, जिससे उनकी भाषा और भावोंमें एक अपूर्व वेग और शक्ति आ गई। ज्ञात होता है कि अंतरिक्षमें रुके हुए बाँध टूट कर पृथ्वीकी ओर वेगसे बह रहे हैं। अर्थ और छन्दों पर उनका असामान्य अधिकार था, जैसा कि प्रतिभा-सम्पन्न कविमें होना ही चाहिए। मेरी सम्मति में श्री बर्त्वालकी कविताओंका संग्रह स्वयं ही उनका सबसे अच्छा परिचय है। अपनी कविताओंको अपने जीवन-कालमें प्रकाशित-रूपमें देखनेकी या तो उनमें उत्सुकता ही नहीं हुई, या गिरते हुए स्वास्थ्यने उनका साथ नहीं दिया। अगस्त्य मुनिकी रेती के एक छोटे-से स्कूलमें अध्यापकके पद पर विजड़ित हो जानेके कारण उन्होंने हिन्दी-संसारको अपने लिये अगम्य समझ लिया

था और समस्त प्रवृत्तियोंको अपने-आपमें समेटकर कविता-देवी के चरणोंमें अर्पण करते हुए ही उनका जीवन शेष हो गया।

उनकी 'नन्दिनी' नामसे एक रचना प्रकाशित हुई है। 'नंदिनी'की सूत्र-गाथा उनके जीवनकी अंतर्निहित करुणाके साथ सम्बद्ध है। यौवन सुलभ कामनाओंके समय कविके गानका स्वर था—

आज अतिथि मेरे यौवनका यदि आ जाता,
कितना होकर तृप्त यहाँसे फिर वह जाता!

किन्तु यह अभिलषित प्रेम-पुरी कविके लिये सुलभ न हुई। विषादकी छायाने उसके जीवनको ग्रस लिया—

आएगा वसंत, पर मैं न हरा अब हूँगा,
गरजेगा सावन, मैं उसके स्वर न सुनूँगा।

अन्तमें दुःखका जीवन ही कविका सहायक होता है—

दुख ले गया मुझे गहरे सागरके जलमें,
हँसते उज्ज्वल मोती जहाँ तिमिरके तलमें।
दुखने ही मुझको प्रकाशका देश दिखाया,
सुखने मुझको हल्का-सा ही राग सुनाया।

मनकी इस स्थितिमें सौभाग्यसे कविकी अनुभूति चिर-शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त करती है। कविको अपना जीवन और गीत दोनों सार्थक लगने लगते हैं। जीवनके विधानमें प्रियतम गीतों से भी एक दिन विदा लेना आवश्यक है—

प्यारे गीत, बहुत दिन रहे साथ हम जगमें,
रोते-गाते हुए बढ़े हम जीवन-मगमें;
आज समाप्ति हुई पथकी, अब मुझे विदा दे,
लौटो तुम, जाने दो दूर मुझे जीवनसे।
रह अभिन्न होता हूँ तुमसे आज विलग मैं;
मेरे गीत, बहुत दिन रहे साथ हम जगमें।

× × ×

तुम इस पथसे लौट पुनः पृथ्वीपर जाओ,
तुम जगके अधरोंपर मेरे स्वर ले जाओ।
मैं जाता हूँ ईश्वरकी प्रशान्ति पानेको,
तुम लौटो पृथ्वीपर सुखपूर्वक गानेको।
तुम गाओ, जगको रहनेके योग्य बनाओ,
तुम सबके अधरोंपर मेरे स्वर ले जाओ।

उपर्युक्त पंक्तियोंसे करुणा ध्वनित होती है, पर श्री चन्द्रकुँवरकी कविताओंको पढ़नेसे ऐसी प्रतीति होती है कि वे दुःखवादी कवि नहीं थे—

मैं मर जाऊँगा, पर मेरे जीवनका आनंद नहीं;
झर जाएँगे पत्र-कुसुम-तरु, पर मधु-प्राण वसन्त नहीं!
सच है घन तममें खो जाते स्रोत सुनहले दिनके,
पर प्राचीसे झरनेवाली आशाका तो अन्त नहीं।

जीवनकी दुर्द्धर्ष शक्तिमत्ताके सम्बन्धमें 'यशस्वियोंकी पृथ्वी'-शीर्षक कविताके गूँजते हुए ओजस्वी शब्द इसका प्रमाण देते हैं। उनकी 'मानव'-शीर्षक कविता पढ़कर टेनिसनकी 'लोटस ईटर्स'-कविताका स्मरण हो आता है, जिसमें एक ओर जीवनमें अकर्मण्यताका आश्रय लेकर पड़े-पड़े मधु चखनेवाले व्यक्तियों और दूसरी ओर संघर्षमय-जीवनके लिए व्याकुल कर्मण्य वीरोंकी विपरीत मनोवृत्तियोंकी तुलना की गई है। मानव होनेकी नाते ही सघर्ष और उद्दाम हममेंसे प्रत्येककी बाँटमें आ गया है। इस छोटी-सी कवितामें इस उदात्त भावको सुन्दर काव्यमय ढंगसे व्यक्त किया गया है—

कहीं शान्तिसे मुझे न रहने देगा मानव!
दूर बनोंमें सरिताओंके शीत तटोंपर,
सूनी छायाओंके नीचे लेट मनोहर,
विहगोंके स्वर मुझे न सुनने देगा मानव!

× × ×

वज्रोंकी, भूकम्पोंकी, उल्कापातोंकी,
रौद्र शक्तियोंसे कठोर रणकर पग-पगपर,
ऐसे समय घाटियोंमें लेटे जीवनकी,
अकर्मण्यता मुझे न सहने देगा मानव!

विगत महायुद्धके समय मचे हुए भीषण संहारसे व्यथित कविने अंतर्लीन होकर प्रश्न पूछा था कि 'हे रुद्र, तुम यह प्रलय-साज किस अनाचारको दूर करनेके लिए सजा रहे हो?' उनका वह टीसता हुआ प्रश्न हमारे अपने ही देशकी आजकल की परिस्थितिमें और भी सार्थक हो उठा है—

हे भीषण, तुम जलमें, थलमें, महाकाशमें,
लगे हुए हो अविश्रान्त किसके विनाशमें?
अनाचार वह कौन, नाश जिसका करनेको
प्रलय-साजसे सजा रुद्र तुमने अपनेको?
बरस रहीं निर्मम ज्वालाएँ नभसे जिनके
आघातोंसे जलते नगर-ग्राम तिनकों-से!

मरते हैं निरीह नर-नारी पृथ्वी-भरमें;
हाहाकार उठ रहा है निर्दय अम्बरमें।

× × ×

कठिन दासतासे विमुक्त मनुजोंके जीवन,
रोग-शोक दारिद्र्यहीन सुन्दरतम यौवन;
घृणा-द्वेषसे हीन प्रेमके भाव मनोहर,
पावेगी पृथ्वी क्या इतनी बलियाँ देकर?

श्री चन्द्रकुँवरकी कविताओंमें मृत्युके विषाद और जीवनके उल्लासका एक विलक्षण संयोग हुआ है। सन् १९४० ई० में भीषण रोगोंसे पीड़ित होनेके बाद मृत्यु तक पहुँचनेमें उनके अपने शब्दोंमें, 'प्राणोंको सुख न मिला, जीवनको चैन नहीं'। अपनी इस स्थितिमें मानो वे नित्य-प्रति सायं-प्रातः मृत्युके द्वार-पर पहुँचते और वापस आते रहे। मृत्युके द्वारोंपर बैठकर उन्होंने यमको अपना मित्र बनाना चाहा, जिससे उसी बहाने जीवनको कुछ शान्ति मिले—

बैठ मृत्युके द्वारोंपर भीषण निश्चयसे
मैं गाता हूँ यमका यश, वैवस्वत यमका!
क्षीण कंठ है मेरा, क्षण-क्षण पड़ते जाते
मेरे हाथ शिथिल, मेरा उर कुटिल मृत्युने
छीन कर दिया छलनी-सा, जीवनकी धारा
कभी बह गई, जिससे यदि पूरा न गा सकूँ,
यदि न तुम्हारा पौरुष शब्दोंमें उठा सकूँ,
तो न कुपित होना, हे गहन मृत्युके स्वामी!
मुझे क्षमा करना हे यम, हे अन्तर्यामी!

मृत्युकी इस साक्षात् तीव्र अनुभूतिके मध्यमें कविने अपनी 'यम'-शीर्षक कविता लिखी, जो शब्दोंकी प्रचंड शक्ति एवं उत्तरहीन उपालंभके गुणोंसे संसारकी यम-विषयक कविताओंमें श्रेष्ठतम स्थान पानेके योग्य है। यमराजके साथ हमारे देशका परिचय कई सहस्राब्दियोंसे है, किन्तु कठोपनिषद्‌की एक झाँकीके अतिरिक्त यमका मानवके सामने इस प्रकारका साहित्यिक अस्तित्व अन्यत्र दुर्लभ है। 'यम' अकेली ही कविको साहित्यमें अमर स्थानके योग्य बनाती है। एक अंश देखिए—

एक फूल चुननेको मुरझा मिट्टीका, स्वयं आप आए!
एक पत्र करनेको छेदन संसारसे, वज्र-शिखा लाए!
करनेको उदर-लीन एक क्षुद्र निर्झर, महार्णव स्वयं चले!
करता जो सदा रहा आपकी प्रतीक्षा,
उसे जीतने निकले!
लेकर घनघोर चण्ड प्रलय जलद-जाल-सी
अन्तहीन वाहिनी
गाता मैं आर्द्र-कंठ स्वागतकी रागिनी!

× × ×

पा करके परस नाथ आपके करोंका, जीवनकी क्षुद्रता
बन जाती पारससे चुम्बित लोहेकी हिरण्यमयी दृढ़ता!
उठ जाता वह ऊपर काम-क्रोध-मोहसे,
जन्म-मरण-बंधनसे;
जिसके हे नाथ, आप प्राण हरण करते!

ऊपरके दृष्टिकोणसे कविने मृत्युमें तो अपने लिए दयाका भाव पा लिया, परन्तु जीवनने उसके प्रति दया न दिखाई—

दया मृत्युमें है, पर मेरे जीवन, तुममें दया नहीं!
जिला रहे हो जैसे मुझको, जाता वैसे जिया कहीं?

सन्तोष इतना ही है कि दुःखकी इस काली घटामें कवि जितना गहरा फँसता गया, उतना ही अधिक यह विश्वास उसमें दृढ़ होता गया कि उसके दुःख-भरे गानका भी कुछा अर्थ है और यही आधार पाकर वह जीवनके बोझको सात वर्षोंतक ढो सका। अपनी 'मृत्युंजय'-शीर्षक कवितामें उसने अपने इस आत्मविश्वास और जीवनकी सार्थकताको व्यक्त किया भी है—

सहो अमर कवि, अत्याचार सहो जीवनके,
सहो धराके कंटक, निष्ठुर वज्र गगनके;
कुपित देवता हैं तुमपर, हे कवि, गा-गाकर
क्योंकि अमर करते तुम दुख-सुख मर्त्य-भुवनके।
कुपित दास हैं तुमपर, क्योंकि न तुमने अपना
शीश झुकाया; तुमने राग मुक्तिका गाया!

चन्द्रकुँवरजी हिमालयके पृथ्वी-पुत्र थे। वे हिमवन्तके सच्चे कवि हैं। उनकी मुक्तक कविताओंमें पर्याप्त संख्या उन कविताओंकी है, जिनमें हिमालय पर्वत और उसके प्राकृतिक दृश्योंका वर्णन किया गया है। 'रैंमासी' हिमालयका फूल है और 'काफल पाक्कू' वहाँका एक पक्षी। कैलाशोंपर आनेवाले रैंमासीके दिव्य फूलोंकी सुन्दरता देखकर कवि इस पृथ्वीको और अपने-आपको भी भूल जाता है। इन सुन्दर पुष्पोंका जन्म हिमालयपर बहनेवाले अमृतके सोतोंसे हुआ है। इनके सौन्दर्यकी यही सीमा है कि हिमालयमें घूमकर जो सबसे दिव्य

भेंट पार्वती शिवके लिए चुनकर लाई, वे यही रैंमासीके पुष्प थे—

कैलाशोंपर उगते ऊपर राई-मासीके दिव्य फूल,
माँ गिरिजा दिन-भर चुन जिनसे
भरतीं अपना पावन दुकूल।
मेरी आँखोंमें आए वे राइ-मासीके दिव्य फूल,
मैं भूल गया इस पृथ्वीको, मैं अपनेको ही भूल गया।
पावनी सुधाके स्रोतोंसे उठते हैं जिनके दिव्य मूल,
मेरी आँखोंमें आए वे राई-मासीके दिव्य फूल।
मैंने देखा—थे महादेव बैठे हिमगिरिपर दूर्वापर,
डमरूको पलकोंमें रखकर,
था गड़ा पास ही में त्रिशूल।
सहसा आई गिरिजा, बोली—
'मैं लाई नाथ अमूल्य भेंट,'
हँसकर देखे शंकरने राई-मासीके थे दिव्य फूल!

हिमालयके 'काफल पाक्कू' पक्षीके साथ अपनी भावनाओंको ओत-प्रोत करके कविने 'काफल पाक्कू' नामक एक अमर कविताकी रचना की है। कहा जा सकता है कि कवि चन्द्र-कुँवरके रूपमें हिमालयने अपना मानवी 'काफल पाक्कू' पा लिया था। ग्रीष्मकी प्रचण्ड तपनके बाद जब नन्दन-वनवासी यह पक्षी आता है, तब दोनों तट प्लावित हो जाते हैं। धरती सुखसे फूल उठती है और उसके मधुर कंठका अमृत पीकर बन-देवी खिल उठती है—

क्षण-भरमें कर देते तुम खग,
इस पृथ्वीको नन्दन वन!

बचपनमें कविका इस पक्षीके साथ जो परिचय हुआ था, उसकी वह सरसता और व्यंजना यौवनके साथ टिकाऊ न रह सकी। जब युवा कवि और बाल-भाववाले पक्षीकी भावनाएँ एक-दूसरेसे परे हट जाती हैं, तब वह सोचता है—

तुम दिन-भर तरुके कानोंमें
अपनी विरह व्यथा कहते,
मुझे देखते ही सहसा रुककर चुप हो जाते।
मेरी मानवता मुझे शाप, मेरी मानवता मुझे पाप,
तुम्हें कभी विश्वास न होगा क्या ऐसी मानवतापर?
मैं न कभी क्या तुम्हें देख पाऊँगा निज हाथोंपर?
गाएँगे हम क्या न कभी कंठों में कंठ मिलाकर?
काफलकी छायाके नीचे मैं ऊँचे तुम तरुपर,
एकसाथ कहते हों—'काफल पाक्कू, काफल पाक्कू'।
मेरी तृष्णा बन जाती यदि
वनमें कोमल पल्लवित डाल,
उस शय्यामें रहकर दिन-भर
गाते तब तो तुम विहग-बाल?
हो पाते मेरे आँसू यदि मेघोंके ये झरते लोचन,
धोते तब तो हे मेरे प्रिय मेरे आँसू तेरा आनन?
हो पाता मैं यदि खग-कुमार,
क्यों रोता मैं यों बार-बार?
क्यों होता मैं प्रतिपल अधीर,
क्यों बहता प्रतिपल अश्रु-नीर?

बर्त्वालजीकी 'जीतू'-शीर्षक बड़ी कविताके आरंभमें हिमालयका जो अत्यंत उदात्त वर्णन है, वैसा कालिदासके हिमालय-वर्णनको छोड़कर अन्यत्र कम ही मिलेगा।

चन्द्रकुँवरजीके काव्यका दूसरा उज्ज्वल पक्ष उनकी प्रकृति और वृष्टि-संबंधी कविताएँ हैं। हिमालय सैकड़ों प्रकारके उछलते हुए जल-प्रवाहोंका प्रदेश है। मेघ वहाँ खुलकर बरसते हैं और नदी-झरनोंको अपना वरदान बाँटते हैं। आकाशमें स्थित गरजता और बरसता हुआ मेघ मानो नदीसे कहता है—'आज मेरे दानकी सीमा नहीं है; उठो, एक जन्म क्या कई जन्मोंके लिए तुम आज अपने-आपको इस उन्मुक्त वर्षणासे भरलो और अपनी आशा पूर्ण करलो'—

मेघ गरजा, घोर नभमें मेघ गरजा!
गिरी बरसा, प्रलय-रवसे गिरि बरसा!
तोड़ शैलोंके शिखर, बहा कर धारें प्रखर,
ले हजारों घने धुँधले निर्झरोंको,
कह रही है वह नदीसे—
'उठ, अरी उठ,
कई जन्मोंके लिए तू आज भरजा!'
मेघ गरजा!

हिमालयके चंचल जल-प्रवाहके साथ क्रीड़ा करनेवाली कविकी तरुण वाणीका केवल एक उदाहरण और देना पर्याप्त होगा। 'वरुण-लीला'-शीर्षक कवितामें वृष्टिसे उमड़ती हुई मंदाकिनीका चित्रण वरुणकी उन्माद-भरी प्रणयिनीके रूपमें कितना सजीव हुआ है—

पूछा—"हिन्दुस्तानकी कठिनाई बड़ी टेढ़ी है, पर जापानकी भी कुछ कम नहीं। अगर हम दोनोंको मदद नहीं, पहुँचा सकें, तो दोनोंमेंसे हमें किसे मदद पहुँचानी चाहिए ?"

हिन्दुस्तानमें लाखों लोग अकालसे पीड़ित थे। गांधीजी का असली उत्तरदायित्व अपने देशके प्रति था। उनकी जगह कोई दूसरा आदमी होता, तो वह हिन्दुस्तानका ही नाम लेता और दुनियामें कोई भी उसमें उसका दोष नहीं देखता। लेकिन अमरीकाके प्रतिनिधिने धर्ममूर्त्ति गांधीजीको सवाल पूछा था कि ऐसी हालतमें उनका धर्म क्या है ? गांधीजी एक क्षण रुके और गंभीर स्वरसे बोले—"मेरे मनमें तनिक भी शंका नहीं है। आपको जापानकी ही मदद करनी चाहिए।" और तुरन्त उसका कारण भी बताया—"हिन्दुस्तानको मदद करेंगे, तो वह सेवा-भावसे प्रेरित होकर, उपकार-बुद्धिसे अथवा आन्तरिक मानवताके संतोषके लिए। लेकिन आप लोगोंको जापानकी सेवा करनी है प्रायश्चित्तके तौरपर। आप लोगोंने अपनी मनुष्यता की हत्या करके जापानका नाश किया है। आपने एक समर्थ और मान-धन-वीर राष्ट्रकी आत्माकी हत्या की है। उस पाप को धो देना आपका प्रथम कर्त्तव्य है। उस दिशामें कुछ कर सकें, तो आपकी मानवता बच सकेगी।" सुननेवाले तो स्तंभित रह ही गए, पर ऐसा अद्‌भुत धर्म-संवाद सुननेको मैं वहाँ हाज़िर रह सका, इसके लिए मैंने विशेष अन्यता अनुभव की।

इसी तरह जब अरबों और यहूदियोंके बीच झगड़ा शुरु हुआ, तब उस सारे सवालसे संबंधित साहित्य पढ़कर और दोनों ओरकी दलीलें सुनकर यहूदियोंको दूरदर्शिताकी सलाह देते हुए मैंने बापूजीको सुना है। उस वक्त भी मेरे मनमें आया कि विश्व-शान्तिकी स्थापना अथवा दुनियाके सब राष्ट्रोंमें कौटुम्बिक भाव पैदा करनेके लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ-जैसी संस्था स्थापित करनेके बजाय अगर दुनियाने अकेले गांधीजीको ही सरपंच नियुक्त किया होता, तो इस बहाने मानवी रक्तकी जो नदियाँ बहीं हैं, वे न बहतीं और संस्कृतिका नाश होनेसे भी बच गया होता। लेकिन क्या किया जाय, तंगदिल दुनिया गांधीजीका पूरा-पूरा महत्व पहचान न सकी और उनके हाथोंमें सब-कुछ सौंप देनेकी हिम्मत न कर सकी।

शीशमहलकी-सी हालत

गांधीजीने हिन्दुस्तानमें आकर कांग्रेस-जैसी एक छोटी किन्तु स्वराज्यका यज्ञ-कंकण बाँधे हुए एकमात्र संस्थाको हाथमें ले लिया और उसे दुनियाकी सबसे बड़ी नैतिक पूँजीवाली जन-शक्तिकी संस्था बना दिया। इसी तरह सारे देशका अनेक बार दौरा करके उन्होंने देशके लिए छोटे-बड़े असंख्य नेता गढ़े—सचमुच अक्षरशः गढ़े। इस संस्था और इन नेताओंने गांधीजीका बताया हुआ कार्य तो एकाग्र निष्ठासे कर दिखाया, पर गांधीजीकी बताई हुई साधना नहीं साधी। बहुतोंने उस साधनाकी उपेक्षा की। चन्द लोगोंने उसकी खिल्ली भी उड़ाई नतीजा यह हुआ है कि आज हमारे देशकी स्थिति शीशमहल-जैसी हो रही है। मध्य-कालीन राजमहलोंमें किसी एक कमरेके फर्श, दीवारों और छतमें छोटे-छोटे गोल उभरे हुए अनेक शीशे लगाए जाते थे। इस कमरेमें एक चन्द्रज्योति (महताब) जलानेसे सारा कमरा मानो प्रकाशसे दहक उठता और इन असंख्य शीशोंमेंसे उतने ही प्रतिबिम्ब चमकने लगते थे—मानो रंगीन प्रकाशकी दीवाली हो रही हो। इससे भ्रम होता था कि कम से कम दस लाख दीये जल रहे हैं। लेकिन प्रतिबिंब बिंब थोड़े ही हो सकते हैं ? बिम्बका प्रकाश मन्द होते या बुझते ही, सारा दीवानखाना सनातन अँधेरेमें डूब जाता।

गांधीजीका असर उपरिलिखित चन्द्रज्योति-जैसा ही था, ऐसा मैं नहीं कहूँगा। उनके चिरागसे और भी चिराग जले हैं। गांधीजीने जवाहरलाल-जैसे कुछ आर्य-भूषण व्यक्तियोंमें ज्योति जगाई है, जो आज हमें आशाकी किरणें बना रही है। अगर हम सबके सब जो गांधीजीके रास्तेपर चले और उनका काम करते आए, वे उनकी बताई हुई साधनाको भी साधते, तो आज हमारा हिन्दुस्तान शीशमहल बननेके बजाय स्वयंभू तेज प्रकट करनेवाले नवलख तारोंका आकाश बना होता।

सत्याग्रहके ज़रिए अहिंसक प्रतिकार (भद्र अवज्ञा) करके विजय पानेका नया तरीका गांधीजीने दुनियाके सामने रक्खा किया है। हम नहीं कह सकते कि इस सत्याग्रहके कारण ही हमें स्वराज्य मिला है। लेकिन इतना तो ज़रूर कह सकते हैं कि यदि सत्याग्रहके द्वारा देशमें नई ताक़त पैदा न हुई होती और कांग्रेस द्वारा उसका संगठन न हुआ होता, तो स्वराज हमारे हाथमें कभी भी नहीं आया होता। सचमुच दुनियाके सबके सब पीड़ित लोगोंके लिए सत्याग्रह गांधीजीकी ओरसे दी हुई अद्‌भुत भेंट है। जिसके हाथमें सत्याग्रह है, उसे भी लाचार होकर अपमानजनक स्थितिमें नहीं रहना पड़ता।

किसी भी हालतमें सत्याग्रही आदमी अपना आत्म-गौरव अवश्य सँभाल सकता है।

सत्याग्रह और हृदय-परिवर्त्तन

गांधीजीका जीवन-कार्य राजनीतिक आंदोलन और स्वराज्य-प्राप्ति तक ही महदूद न था। उन्होंने जीवनके साथ सम्बन्ध रखनेवाले असंख्य क्षेत्रोंमें अपनी प्रतिभाका हल चलाया था। उनकी अहिंसा राजनीतिक आंदोलन तक ही सीमित नहीं नहीं थी। पशु-पक्षी, साँप-बिच्छू, झाड़-पत्ते तकके सम्बन्धमें अहिंसक रहनेका उनका प्रण था। पर उन्होंने देखा कि आजका ज़माना, आजकी मनुष्य-जाति, इतनी सूक्ष्म अहिंसा झेल नहीं सकेगी। इतनी सूक्ष्म अहिंसाका अधिकार मनुष्य-जातिने अभी तक कमाया नहीं। इसलिए गांधीजीने मनुष्य-मनुष्यके बीचके व्यवहारमें जो हिंसा चलती है, उसे दूर करनेका काम ही अपने हाथमें लिया। मांसाहार-निषेधका कार्य भी उन्होंने अपने हाथ में नहीं लिया। जब मैं जेलमें उनके साथ था, तब दातौनके लिये अगर मैं ज़रूरतसे ज़रा भी मोटी टहनी नीमसे तोड़ता या अपनी धुनकीकी ताँतको घिसनेके लिए ज़रूरतसे ज़्यादा नीमके पत्ते तोड़ता, तो वे नाराज़ होते और कहते—"नीमसे क्षमा माँग कर जितने ज़रूरी हों, उतने ही पत्ते तोड़ने चाहिएँ।" हृदयके इतने कोमल और सूक्ष्म अहिंसक होते हुए भी उन्होंने मनुष्य-मनुष्यके बीच फैली हिंसाको दूर करनेकी ओर ही ध्यान दिया। साथ ही जिनकी मेहनत और दूधके बिना हम जी नहीं सकते, ऐसे गाय-बैलको रक्षा और सेवाका कार्य भी उन्होंने अपने हाथमें लिया और उसके लिये एक सर्वथा नए ढंगका कार्यक्रम देशके सामने पेश किया।

हरिजन, स्त्री-जन और भूमिजन (आदिवासी)—इन तीन दलित वर्गोंकी हज़ारों वर्षकी दुर्दशाको मिटानेके लिए गांधीजीने अपना सर्वस्व दाँवपर लगा दिया। छुआछूत मिटानेके बारेमें वे सारे राष्ट्रका हृदय-परिवर्त्तन बड़ी सफलताके साथ कर सके और आज कोई भी छुआछूतकी हिमायत करनेवाला नहीं है। यद्यपि आचरणमें अभी बहुत-कुछ ढिलाई है, पर लोगोंने छुआछूतको मिटानेके कानून बनाए हैं और हम मान सकते हैं कि अब छुआछूत मिट गई है।

स्त्री-जनोंके लिए गांधीजीने जो-कुछ किया है, उसका दसवाँ भाग भी दुनियाँ नहीं जानती है। स्त्री-जाति पुरुषके सामने दबी रहे, अपना सिर ऊँचा न कर सके; यह उनके लिए असह्य था। उत्तरदायित्वके सब क्षेत्र पुरुषोंके समान ही स्त्रियों को मिलने चाहिएँ, इसके लिए वे बड़े सतर्क रहते थे। स्त्री-जातिकी हालत आज गूँगे पशुकी तरह असहाय है। इसलिए उनकी विशेष रक्षा करनी चाहिए और उन्हें मज़बूत और समर्थ बनाना चाहिए। इस ओर उनका विशेष ध्यान था। जब मैं साबरमती-आश्रममें था, तब किसी लड़कीकी सगाई टूट रही थी, तो उसे बनानेके लिए और लड़केको मनानेके लिये वर-कन्या-पक्षके लोग गांधीजीके पास आए थे। गांधीजीने उनके कहे अनुसार काम तो कर दिया, पर उनका मन खराब हुआ। उन्होंने देखा कि बेचारी लड़कीके साथ उसमें अन्याय हुआ है। उन्होंने कन्याके पिताको बुलाकर फिरसे समझाया और बनी हुई सगाई तुड़वाई। उस अवसर पर मैं भी उपस्थित था। सबके चले जाने पर गांधीजीने मुझसे कहा—"काका, आज मैंने गो-रक्षाका काम किया है।" गांधीजीके मनमें दुर्बल असहाय बालाएँ चतुष्पाद गायोंके समान ही पवित्र थीं।

भूमि-जन यानी आदिवासियोंके कामकी ओर भी गांधीजी का खास लक्ष्य था। श्री ठक्कर बापा और उनके चुने हुए साथियोंके द्वारा गाँधीने आदिवासियोंकी बहुत-कुछ सेवा की है। गांधीजी कई बार कहते थे कि इस कामका तो हमने अभी सच्चा श्रीगणेश भी नहीं किया है।

व्यक्ति और समाज

गांधीजीके जीवनव्यापी कार्यके ऐसे अनेक पहलू हैं, लेकिन यहाँ मुझे एक विशेष बातकी ही चर्चा करनी है। सारी दुनिया की राजनीतिक स्थिति देखकर गांधीजीने जो नया रास्ता निकाला है, उसीकी बात मुझे कहनी है। स्त्री-पुरुषके बीच पवित्र सम्बन्ध स्थापित करनेवाली विवाह-संस्था जिस तरह अभी तक सफल संस्था नहीं बनी है, उसी तरह व्यक्ति और समाजके बीच राजनीतिक और सामाजिक सम्बन्ध भी अभी अच्छी तरह से बँध नहीं पाया है। 'व्यक्तिको श्रेष्ठ गिनें या समाजको'—अब तक यह एक अनबूझ पहेली-सी रही है। इन दोनोंके बीच शुद्ध समन्वय हम नहीं साध सके हैं। एक पक्षका कहना है कि व्यक्ति ही श्रेष्ठ है, व्यक्ति ही ईश्वरकी कृति है; समाज केवल संख्या है, चैतन्य तत्त्व तो व्यक्तिमें ही पाया जाता है। व्यक्तित्व की बलि देकर समाजका संगठन नहीं करना चाहिए। व्यक्ति-स्वातंत्र्यका कभी भी नाश नहीं करना चाहिए—उसे किसी भी

हालतमें नहीं दबाना चाहिए। हरएक व्यक्तिको उसकी इच्छाके अनुसार चलनेका अधिकार रहना ही चाहिए।

इस भूमिकाको स्वीकार करनेके बाद राजनीतिक क्षेत्रमें या तो जंगलका न्याय मानना चाहिए या फिर दार्शनिक अराजकवाद तक पहुँचना चाहिए। जंगलके सब जानवर स्वतंत्र होते हैं। चाहे जो जानवर चाहे जिस जानवरको मार सकता है। कोई किसीका रक्षण करनेको बँधा नहीं है। निरा व्यक्ति-स्वातन्त्र्य हमें ऐसी ही हालतमें ला रखेगा। दार्शनिक अराजकवादमें हरेक व्यक्तिसे अपेक्षा की जाती है कि वह स्वयं अपने ऊपर हर तरहका संयम और अंकुश रखे। व्यक्तिको कुछ भी कहने अथवा उसे रोकनेका अधिकार समाजके पास नहीं रहता। दूसरा पक्ष कहता है कि व्यक्ति आज है और कल नहीं; व्यक्तिके बजाय समाज चिरजीवी है। संस्कृतिकी पूँजी समाजके हाथों ही सुरक्षित है। इसलिए समाज ही सच्ची आध्यात्मिक हस्ती है। शादीकी बात हो, पेशेकी हो, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक—सब क्षेत्रोंमें व्यक्तिको समाजके अंकुश-तले रहना ही चाहिए। सामाजिक बन्धन मान्य करना ही चाहिए। समाजके लिए ही व्यक्ति है। यह लोग हमारा पुराना श्लोक भी हमारे सामने रखते हैं—'त्यजेत् एकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्; ग्रामं जनपदस्यार्थे...' (चौथा चरण हम छोड़ देते हैं)। अर्थात् कुलके हितके लिए एक व्यक्तिका बलिदान दिया जा सकता है, ग्रामके हितके लिए कुलकी बलि दी जा सकती है और सारे देशके भलेके लिए एक गाँवकी। यह पक्ष हमें सर्वसत्तामूलक (टोटलिटेरियन) समाजवाद या साम्यवादकी तरफ़ ले जाता है।

और आज जिसे जनतंत्र (डेमोक्रेसी) कहते हैं, वह तो इन दो पक्षोंके बीच कुछ-न-कुछ समझौता करनेका विफल प्रयत्न करता रहता है। गांधीजीने देखा कि आजकी बहुजन-समाजकी हालत देखते आरज़ी व्यवस्थाके तौर पर 'डेमोक्रेसी' ठीक है, पर जब तक व्यक्ति और समाज दोनों आत्म-शुद्धि नहीं करते हैं, तब तक व्यक्ति और समाज—इन दोनों छोरोंके बीच संघर्ष रहेगा ही। जब व्यक्ति और समाज दोनों शुद्ध हो जायँ, तब दोनों एक-दूसरेके पोषक बनते हैं और फिर संघर्ष या प्रतियोगिताकी कोई गुंजाइश ही नहीं रहती। व्यक्तिमें स्वार्थ होता है, तंगदिली होती है, उससे अपने-पराएका भेद आ जाता है। भोग और ऐश्वर्यकी लालसामें व्यक्ति बह जाता है, वासनाका दास बनता है या अहंकारके कारण दूसरोंको हल्का समझने लगता है। इन सब दोषोंके कारण व्यक्तिमें असामाजिकता आ जाती है और उसपर सामाजिक बन्धन लगाना ज़रूरी हो जाता है।

दूसरी ओर समाजमें भी संकुचितता, ऊँच-नीच-भाव और दूसरों पर हुकूमत करनेकी मैली अभिलाषा पैदा होती है। इन दोषोंके कारण समाज व्यक्तिको या दूसरे समाजोंको पीसना चाहता है, दबाना चाहता है। इसी कारण युद्ध छिड़ते हैं और मानव-जाति आत्महत्याकी ओर अग्रसर होती है। जब व्यक्ति और समाज दोनों ज्ञान और आत्म-शुद्धि द्वारा विकार-रहित हो जायँगे, तब सर्वोदय समाजकी अपने-आप स्थापना होगी। इसके लिए व्यक्तियों और समाजकी जीवन-दृष्टिमें ही तब्दीली करनी होगी। गांधीजीने देशके सामने सत्य और अहिंसा इन दो परम सामाजिक आध्यात्मिक तत्त्वोंको और आश्रमके द्वारा अस्तेय और अपरिग्रह—ये बाक़ीके सामाजिक तत्त्वोंका अनुशीलन किया। गांधीजीकी हिन्दुस्तानके लिए और दुनियाके लिए सबसे बड़ी देन यही है कि उन्होंने सब धर्मोंके निचोड़को पहचाना और उसे जीवित करके लोगोंमें प्रचलित किया। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और संयम—ये हैं हमारे प्राचीन कालके पाँच समाज-धर्म। जिन्होंने और जिस समाजने इनका अनुशीलन किया है, उनके लिए मौतका डर नहीं है। 'यमः संयमितो येन यमस्तस्य करोति किम्'—पाँच यमोंकी जिसने साधना साधली, यमराज उसका क्या कर सकता है? दुर्भाग्य हमारे देशका कि हमारे लोगोंने—व्यक्तिने तथा समाजने—इन बातोंकी तरफ़ अधिकाधिक दुर्लक्ष्य किया। इन पाँच यमोंके आधारपर जब समाजकी स्थापना होगी, तब वह सर्वोदय समाज होगा।

जीवनके द्वारा शिक्षा

मुझे जो तीसरी महत्वकी बात कहनी है, वह गांधीजी ने अपनी निजी उन्नतिके लिए जो एक नई साधना ढूँढ़ निकाली है, उसीके बारेमें है। अब तकके तमाम धर्म-संस्थापकों और धर्माचार्योंने जो-जो साधनाएँ बताई, उनका गांधीजीने कमोबेश अभ्यास किया ही था। उस साधनाके प्रति उनके मनमें आदर भी था, लेकिन गांधीजीने अपनी साधना अपने तईं तैयारकी और उसका विकास भी किया। शिक्षाके क्षेत्रमें नया रास्ता बताते हुए जैसे उन्होंने कहा कि 'शिक्षा जीवनके लिए तो होनी ही चाहिए, लेकिन वह जीवनके ज़रिए भी हो। शिक्षण और

जीवनमें अभेद तक जाना चाहिए।' इसी तरह उन्होंने अपनी आध्यात्मिक साधना भी अपने उत्कट, व्यापक और विचारमय जीवनके द्वारा ही साध ली थी—अथवा हम यों कह सकते हैं कि उन्होंने अपने जीवनको ही पूर्ण रूपसे साधनामय बना लिया था। उनका योग भी जीवन-योग था और मेरा विश्वास है कि उस जीवन-साधनाको मनुष्यकी शक्ति जहाँतक पहुँच सकती है, वे पूर्णत्व तक ले गए थे।

उनकी इस साधनाकी खासियत यह थी कि उन्होंने अपनी सारी साधना अपने इर्द-गिर्दके समाजको साक्षी रखकर, कुछ हद तक उसका सहयोग प्राप्तकर, और हमेशा उसका आशीर्वाद माँगकर साधी थी। उनका जीवन और उनकी विभूति लोकोत्तर होते हुए भी उन्होंने अपनेको समाजसे अलग नहीं माना। उनके पास छुपाने-जैसी कोई पोशीदा चीज़ नहीं थी। दूसरोंके लिए मुश्किल पैदा न हो, इसके लिए जितना ज़रूरी है, उतना ही वे पोशीदा रखते थे। अपना भीतरी-बाहरी सारा जीवन ज़ाहिरा रखकर उन्होंने असाधारण शुद्धि हासिल की। सत्य, अहिंसा, पारमार्थिकता (सीरियसनैस) और प्रकटता (ओपननैस) आदि बातें उनकी साधनाकी लोकोत्तर विशेषताएँ थीं।

मैं नहीं मानता कि उनकी इस साधनाकी ओर लोगोंने कुछ ध्यान दिया है। सचमुच तो इस साधनाके द्वारा ही दुनियाको अपने उद्धारका रास्ता मिलनेवाला है। यहाँ उस साधना की ओर सिर्फ़ इशारा ही किया गया है। साधनवीरोंको चाहिए कि गांधीजीके अशेष जीवनका और उसके प्रेरक तत्त्वोंका गहरा अध्ययन करें और उनके साथियोंको भी चाहिए कि गांधीजी की जीवन-दृष्टि और कार्य-पद्धतिका पृथक्करणकर दुनियाके सामने गांधीजीकी अभिनव साधना विस्तारके साथ पेश करें।

गांधीजीकी इस साधनामें एक ओर सत्यनिष्ठा, संयम और इन्द्रिय-जय आते हैं और इनके लिए उपवास, आत्म-परीक्षण, आत्म-निवेदन और प्रार्थना महत्त्वका स्थान ग्रहण करते हैं, तो दूसरी ओर आते हैं अपने दोषों और ग़लतियोंका ज़ाहिरा इक़बाल, सेवामय जीवन, सेवाके लिए स्वार्थ-त्याग, आत्मौपम्य और अन्तमें आत्मैक्य। वैदिक सनातनी, बौद्ध और जैन योग-सूत्रोंमेंसे उन्होंने सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह—ये पाँच यम ले लिए हैं और उनमें निर्भयता, अस्पृश्यता-निवारण, शरीर-श्रम, स्वदेशी और सर्वधर्म समभाव—ये छः नए यम बढ़ाए और इन सबके साथ नम्रताके वायुमंडल की ज़रूरत बताकर साधना पूरी की।

आत्मौपम्य और आत्मैक्य

गांधीजीकी साधनामें आत्मौपम्यको और आत्मैक्यको असाधारण स्थान है। लेकिन उनके लिए शुरूसे आत्मौपम्य इतना स्वाभाविक था कि उसे उनकी साधनामें शुमार किया जाय या नहीं, यह एक सवाल भी है। उनके आत्मौपम्य की एक ही मिसाल यहाँ दे देना काफ़ी होगा। जब गांधीजी सेवाग्राममें रहने गए, तब उसके आसपासके लोग उनके पास बीमारियोंके इलाजके लिए आने लगे। सेवा करनेका मौक़ा मिलते ही गांधीजी को परम आनन्द होता था। एक दिन एक ग़रीब आदमी आया। उसका सारा शरीर खुजलीसे भरा हुआ था। गांधीजीने उससे उपवास करवाए, एनिमा दिया और उससे कहा कि एकान्तमें नग्न स्नान करके खास ढंगसे शरीर रगड़कर साफ़ कर लेना। इतना कहनेके बाद उन्हें ख़याल आया कि इस ग़रीबके पास एकान्त कहाँ और नहानेका इन्तज़ाम भी वह कहाँसे करेगा? तुरन्त उन्होंने उससे कहा कि 'देखो, इस पास के कमरेमें मेरा नहानेका इन्तज़ाम तैयार है। यहीं तुम पानीसे भरे हुए टबमें नहा लो। फोड़े पर जमी हुई पपड़ीको उतार दो और मेरे पास आना, तो मैं उसपर दवा लगा दूँगा।' उसके द्वारा यह सारा करानेके बाद गांधीजीने एक आश्रमवासीसे कहा कि 'इसका स्नान हो जाय, तब जन्तुनाशक दवा डालकर इस टबको साफ़ कर देना और मेरे लिए नहानेका पानी भर देना।'

परचुरे शास्त्रीको कुष्ट-रोग हुआ था। उनके शरीरसे पीब निकलता था। तब गांधीजी स्वयं उनकी मालिश और सेवा करते थे, यह सभी जानते हैं। लेकिन बाहरके लोग जो दूसरी बात नहीं जानते, वह यह है कि गांधीजीको इस तरह कुष्ट-रोगी की सेवा करते देखकर और लोग भी उतनी ही निर्भयता और प्रेमके साथ शास्त्रीजीकी मालिश और सेवा करने लगे।

जब गांधीजी सेवाग्राममें रहने गए, तब वहाँ आस-पास साँप बहुत निकलते थे। किसान लोग जिस किसी भी साँपको देखते, मार डालते। गांधीजीने सोचा कि कमसे कम जो साँप ज़हरीले नहीं हैं, उन्हें तो हम बचावें। तुरन्त उन्होंने हिन्दुस्तान के साँपोंके बारेमें लिखी हुई किताबें मँगवाई। छोटे-मोटे साँपों को पकड़कर पिंजरेमें रखने लगे और उनमेंसे कौनसे ज़हरीले थे और कौनसे बिना ज़हरीले, यह किताबोंके आधारपर जाँचकर

किसानोंको समझाने लगे कि कमसे कम बिना ज़हरवाले सांपों को तो बिल्कुल नहीं मारना चाहिए। हमारे शास्त्रोंमें सर्पोंको जो 'क्षेत्रपाल' कहा गया है, वह निरर्थक नहीं है। बहुतसे सांप खेतोंके चूहोंको खाकर खेतीका रक्षण करते हैं। ऐसोंको तो किसानोंका मददगार ही कहना चाहिए।

ब्रह्मास्त्रके रूपमें सत्याग्रह

गांधीजीके लिए सत्याग्रह एक राजनीतिक अस्त्र होनेके उपरान्त उनकी जीवन-साधना भी था। सामनेके व्यक्तिके हृदय तक पहुँचकर वहाँ हर प्रकारकी भलाई पैदा करना ही सत्याग्रह का मुख्य उद्देश्य है। 'सामनेके व्यक्तिमें भी हृदय है, वह जाग्रत हो सकता है। उस जागृतिको लानेके लिए जो-कुछ भी बलिदान देना पड़े, त्याग करना पड़े, उस बलिदानकी शक्ति हमारे अन्दर है और उसका अच्छा असर यथासमय हुए बिना रह नहीं सकता।' यह है सत्याग्रहकी बुनियादी श्रद्धा। यही सच्ची आस्तिकता है। इस आस्तिकतामेंसे ही गांधीजीने सत्याग्रहके अनेक प्रकारोंका आविष्कार किया। स्व० मोतीलाल नेहरू, चित्तरंजन दास आदि देश-नेताओंके साथ मतभेद होनेपर गांधीजीने जो निराग्रही वृत्ति धारण की और अपने सब अधिकार छोड़ दिए, वह भी सत्याग्रहका ही एक प्रकार था। राजकोटके झगड़ेमें अपने हक़में जो फैसला हुआ था, उससे ज़हर पैदा होते देखकर उन्होंने उस फैसलेको छोड़ दिया। यह भी सत्याग्रहका ही एक प्रकार था। लेकिन सत्याग्रहका आखिरी और सर्वोत्तम आविष्कार तो गांधीजीने किया नोआखालीमें। मुसलमानोंकी आँखोंमें सिर्फ़ दुश्मनी ही दीख पड़ती थी। ऐसे समय गांधीजीने वहाँ जाकर मुसलमानोंमें आदमियत और हिन्दुओंमें निर्भयता लानेका अद्भुत काम शुरू किया। नोआखालीमें मैं उन्हें कारणवश मिलने गया था। उन्होंने कहा—"यहाँ नोआखालीमें मेरे सत्याग्रहका जो नया रूप प्रकट हो रहा है, वह मुझे मेरे प्राकृतिक चिकित्सामेंसे मिला है। नैसर्गिक उपचारमें बाहरी दवा नहीं ली जाती है, लेकिन अन्दरसे ही खून साफ़ करके रोग दूर करनेकी बात होती है। इसीमें मुझे राम-नामका अद्भुत कीमिया भी मिला। राम-नाम आत्मिक शक्ति है। केवल मानसिक ही नहीं, शारीरिक रोगोंकी भी वह दवा है।"

सचमुच नोआखाली, बिहार, कलकत्ता और दिल्लीमें गांधीजीने जिस सत्याग्रहको प्रकट किया, वह था उनका ब्रह्मास्त्र। हमारे पुराणकारोंने ब्रह्मास्त्र-जैसा सुन्दर शब्द हमें दिया है, लेकिन उस ब्रह्मास्त्रका स्वरूप शायद उनके भी ध्यानमें नहीं आया। पुराणकार वर्णन करते हैं कि ब्रह्मास्त्र छूटा और तीनों लोकोंको जलाकर भस्म करने लगा! ब्रह्मास्त्र कभी ऐसा नहीं हो सकता। ब्रह्मास्त्र क्या कोई आसुरी शक्ति है कि वह सब ओर आग फैला दे? ब्रह्मास्त्र तो दैवी शक्ति है, जो सब ओर शांति, प्रेम और शीलता ही फैलाता है। उसका काम धूपकी तरह है, लेकिन वह उससे भी अनन्तगुना बड़ा होता है। जिस तरह लोबान स्वयं जलकर आसपास सुगंधि और आरोग्य फैलाता है, उसी तरह ब्रह्मास्त्र चलानेवाले गांधीजीने अपनेको जलाकर आसपासका ज़हर कम करनेकी कोशिश की।

नोआखालीके बाद गांधीजीने वही काम सब जगहपर किया, लेकिन उनकी वह तपस्या चन्द राजसी और तामसी लोग हज़म न कर सके। उन्होंने गांधीजीको ही कुरबान किया। गांजीजीकी बलि लेकर उन्हें कुछ भी न मिला। उन्होंने पाया सिर्फ़ पाप और जनताका शाप, क्योंकि शरीरके द्वारा जो कुछ भी सेवा हो सकती थी, वह गांधीजी कर चुके थे। जीवनके ज़रिये पूरी-पूरी सेवा करनेके बाद मरणके ज़रिए भी अद्भुत सेवा करनेका मौका ईसा और सुराकतकी तरह गांधीजीको भी मिला। आजकी हालत इतनी बुरी है कि गांधीजीके उस अन्तिम बलिदानका असर मुसलमानों और हिन्दुओंपर होते अभी देर लगेगी। लेकिन असर तो ज़रूर होनेवाला है, इसमें कोई शंका नहीं। आज लोगोंके सिरपर जो भूत सवार हुआ है, वह जब उतर जायगा, तभी गांधीजीके बलिदानका पूरा अर्थ दोनों कौमें समझ सकेंगी और उसके बाद ही दोनोंके जीवनमें देखते-देखते तब्दीली आ जायगी। अहिंसा-धर्मकी बहुत ही बड़े पैमानेपर जीत होगी। और उसीमेंसे दुनियाको विश्व-शान्ति कायम करनेका रास्ता मिलेगा।

भारत और ब्रिटेनका सम्बन्ध

पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

पन्द्रह अगस्त, १९४७ के इंडियन इंडिपेन्डेन्स ऐक्टके अनुसार भारत ब्रिटेनका अधीन देश न रहकर ब्रिटिश प्रजाराज्य-संघ (कामनवेल्थ) का एक राज्य (डोमिनियन) बन गया है। प्रायः ४२ वर्षोंसे भारतवासी यहाँ ब्रिटिश राजत्वके विरुद्ध आन्दोलन कर रहे थे। वैसे तो ६३ वर्षोंसे कांग्रेस ही आन्दोलन कर रही थी और उससे पहले भी पूना, बम्बई और कलकत्तेमें देश-हितकारिणी संस्थाएँ आन्दोलन चला रही थीं ; पर १९०५ के पहले अंगरेजी राज्यको उखाड़ फेंकनेकी भावना इस देशके लोगोंमें उत्पन्न नहीं हुई थी। और दादाभाई नवरोजी के १९०६ में स्वराज्यकी आवश्यकता और आदर्श सामने रखनेके पहले तो इस देशकी राजनीतिमें 'स्वराज्य' शब्दका प्रयोग भी नहीं हुआ था। फिर भी स्वराज्यका अर्थ दादाभाईके अर्थ में करके कलकत्ता-हाईकोर्टके जस्टिस मित्र और फ्लेचरने औपनिवेशिक स्वराज्यका आन्दोलन निष्कण्टक कर दिया।

परन्तु स्वराज्यका प्रयोग बंगालकी नई पार्टीके नेता श्री अरविन्द घोष और स्व० विपिनचन्द्र पाल इससे भिन्न अर्थमें करते थे। वे कहते थे ब्रिटिश नियन्त्रणसे रहित पूर्ण स्वराज्य (Absolute autonomy, free from British control)। परन्तु कई कारणोंसे देशने उनका साथ नहीं दिया और १९०८-९ के दमनसे यह पार्टी छिन्न-भिन्न हो गई। १९१५-१६ में होम-रूलके आन्दोलनने ज़ोर पकड़ा और लोकमान्य तिलकके मामलेमें बम्बई-हाईकोर्टने कह दिया कि शासन-पद्धति बदलनेके लिए वर्तमान शासन-पद्धतिके दोष दिखाना राजद्रोह नहीं है। इससे आन्दोलनमें दृढ़ता आई और २० अगस्त, १९१७ को ब्रिटिश सरकारको दबी ज़बानसे भारत का स्वराज्यका दावा मंजूर करना पड़ा।

फिर भी दिल्ली तो दूर ही रही। १९२० में महात्मा गांधीके नेतृत्वके साथ ही आन्दोलन-पद्धति भी बदली। पहले हम कहकर मुकर जाते थे, पर गांधजीने कहा कि मुकरनेका काम नहीं है। छत परसे चिल्लाकर कहो—'हमने राजद्रोह किया है' और जेल जाओ। इसके अनुसार पहली जेल-यात्रा १९२१ में कलकत्तेने ही प्रारम्भ की। इसका अनुकरण देशके अन्य स्थानोंमें भी हुआ। हज़ारों आदमी—बच्चे, जवान और बूढ़े जेलोंमें पहुँच गए। सरकार घबराई, पर उसकी घबराहट श्मशान-वैराग्यकी भाँति क्षणिक थी। उसके हितैषियोंने स्वराज्य की रूप-रेखा चाही। नेहरू-कमेटीकी रिपोर्टके नामसे इसका जवाब दिया गया। सरकारको औपनिवेशिक स्वराज्य देनेके लिए एक वर्षका समय दिया गया।

फिर साइमन-कमीशन आया। इसमें उस भारतका एक भी मनुष्य न था, जिसकी शासन-पद्धतिपर यह रिपोर्ट देनेवाला था। इसलिए इसका बहिष्कार ही नहीं किया गया, वरन् इसके विरुद्ध जगह-जगह प्रदर्शन भी हुए। इस बीचमें ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्यसे लोगोंकी विरक्ति और भी बढ़ गई। यद्यपि पूर्ण स्वराज्यकी पुरानी पार्टी छिन्न-भिन्न हो गई थी, तथापि पूर्ण स्वराज्यवादियोंका एक नया दल पैदा हुआ, जिसके नेता पं० जवाहरलाल नेहरू हुए और इन्हींकी अध्यक्षतामें लाहोर-कांग्रेसने अपना ध्येय 'पूर्ण स्वराज्य' घोषित किया। इस आन्दोलनको बढ़ानेके लिए प्रतिवर्ष २६ जनवरीको स्वाधीनता-दिवस मनाया जाने लगा। २० वर्षों तक यह आन्दोलन चलता रहा, जिसमें समय-समयपर लाखों आदमियोंको जेल जाना और मार खाना पड़ा। १९४२ का 'भारत छोड़ो'-आन्दोलन सब आन्दोलनोंसे उग्रतर हुआ। इसमें कुछ लोगोंको गोलीके घाट उतरना पड़ा।

इसके बाद नाना कारणोंसे ब्रिटिश सरकारने निश्चय कर लिया कि भारतमें अब अंगरेज़ोंका रहना नहीं हो सकता। यदि वे रहनेका यत्न करेंगे, तो लतियाकर निकाल दिए जायँगे। इसलिए उन्होंने भारतको दो भागों—हिन्दुस्तान और पाकिस्तान—में बाँटकर दोनोंको डोमिनियन बना दिया। यह इतिहासमें अनोखी घटना हुई। इसके बाद ४ जनवरी, १९४८ को बर्माको पूर्ण स्वराज्य दिया गया और इसी वर्ष सीलोन (सिंहल द्वीप) भी डोमिनियन बना दिया गया। यह सब तो हुआ, पर भारत की पूर्ण स्वराज्यकी आकांक्षा पूरी नहीं हुई। जिस बादशाहकी भक्ति लोग नहीं करना चाहते, उसीकी राजभक्ति करनेके लिए हमारे प्रधान मन्त्री तथा गवर्नर और गवर्नर-जनरल शपथ
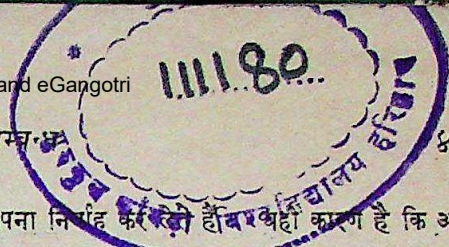
लेते वा प्रतिज्ञा करते हैं। यह केवल रस्म है, पर तो भी असह्य है।

स्टेच्यूट आव् वेस्टमिन्स्टरसे डोमिनियनोंका दर्जा औपनिवेशिक स्वराज्यवाले देशोंसे बढ़ा हुआ है, फिर भी परराष्ट्रोंसे सम्बन्ध तो बादशाहके नामपर ही होता है। उसीकी ओरसे दूत भेजे जाते और उसीकी ओरसे दूतोंकी स्वीकृति होती है। दूसरी बात यह है कि इसका नाम ब्रिटिश कामनवेल्थ आव् नेशन्स (ब्रिटिश प्रजाराज्य-संघ) है, परन्तु इसमें जो तीन नए राष्ट्र सम्मिलित हुए हैं, उनका ब्रिटेनसे घुणाक्षर-न्यायसे भी कोई सम्बन्ध नहीं है—यद्यपि अन्य डोमिनियन गोरे होनेसे ब्रिटिश कहला सकते हैं। इसलिए हालमें ब्रिटिश और डोमिनियन प्रधान मंत्रियोंका जो सम्मेलन लन्दनमें हुआ था, उसमें 'ब्रिटिश' शब्दका प्रयोग बहुत कम किया गया। फिर भी बादशाहके इस देशके प्रभु-रूपसे सम्बन्धि रहनेसे हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमानको बड़ा धक्का लगता है, क्योंकि उस स्वाधीनतासे ही क्या, जिससे हम दूसरे देशके राजाके अधीन रहें? इस कारण ऐसा उपाय सोचा जा रहा है कि यदि भारतको ब्रिटिश प्रजाराज्य मण्डलमें रखना है, तो उससे 'ब्रिटिश' शब्द तो निकाल ही दिया जाय और बादशाहसे भी कोई सम्बन्ध न रखा जाय। इस विषयमें आयर भी भारतके साथ है। वह अपने एक्सटर्नल अफेयर्स-ऐक्टमें ऐसा संशोधन करनेकी तैयारी कर रहा है।

परन्तु उल्लिखित संशोधन होने पर भी भारतका इस राष्ट्र-मण्डल वा प्रजाराज्य-संघमें रहना कठिन है। इसके अनेक कारण हैं। एक कारण तो यह है कि साम्राज्य अथवा प्रजाराष्ट्र-मण्डल नाम-भरका है; उसमें दक्षिण-आफ्रिका, आस्ट्रेलिया और कनाडाके साथ भारतका भाई-चारा नहीं है। आस्ट्रेलिया और कनाडामें ज़मीन तो बहुत हैं, पर वह एशियाइयोंको बसनेके लिए नहीं दी जाती। वे गोरे राज्य हैं, इसलिए एशियाइयोंके बसनेसे उनका गोरापन जाता रहेगा। जब एक संघके दो राज्योंमें यह भाव हो, तो वे साथ-साथ कैसे रह सकते हैं। १९१४ में कनाडामें बाबा गुरुदत्तसिंह 'कोमागातामारू' नामका जहाज़ ले गए थे। कनाडाने नियम बना रखा था कि जो लोग अपने देशसे सीधे कनाडा न आवेंगे, वे इस देशमें प्रवेश न करने पायँगे। कनाडाके वेंकोवर प्रदेशमें कुछ सिक्ख रहते हैं और वहां उन्होंने गुरुद्वारा भी बना लिया है। भारतवासी अन्य लोगोंकी अपेक्षा अधिक परिश्रमी होते हैं और कम खर्चमें अपना निर्वाह कर लेते हैं। यही कारण है कि आस्ट्रेलियन, कनाडियन और साउथ-आफ्रिकन सरकारोंने उनके निवास आदिके विरुद्ध क़ानून बना रखे हैं। बाबा गुरुदत्तसिंहने 'कोमागातामारू' जहाज़ ठीक कर उसका नाम 'गुरु नानक स्टीमर' रखा था और रास्तेमें बिना कहीं उतरे उसे वेंकोवर ले गए थे। प्रायः दो महीने वह जहाज़ बन्दरगाहके पास खड़ा रहा, पर कनाडाकी सरकारने भारतवासियों—सिक्खों—को कानाडाकी भूमि पर पैर नहीं रखने दिया। लाचार होकर वह जहाज़ फिर लौट आया। ब्रिटिश भारतकी सरकारके आदेश पर वह बजबजमें इसलिए रोका गया था कि वहींसे रेलपर बैठा कर उसके यात्री पंजाब भेज दिये जायँ, जिसमें कलकत्तेमें कोई आन्दोलन न खड़ा हो सके। तबसे कनाडियन सरकारने अपने नियमोंमें कुछ सुधार किया है, पर विशेष नहीं। आस्ट्रेलियामें तो भारतवासी प्रायः हैं ही नहीं।

आफ्रिकामें भारतवासी अंगरेज़ोंसे भी पहले पहुँचे थे। पूर्वी आफ्रिकाके नैरोबी आदि प्रदेशोंकी उन्नति भारतवासियोंने ही की है। परन्तु पूर्वी आफ्रिकामें मलाई-मलाई तो गोरे पाते हैं और छाँछ-छाँछ भारतवासियोंको दी जाती है। इसे अभी डोमिनियन-पद नहीं मिला है, तथापि ब्रिटिश सरकारका उपनिवेश-विभाग इसके साथ न्याय करनेमें असमर्थ है। दक्षिण-आफ्रिकाके ट्रान्सवाल और आरेंज फ्री स्टेट राज्योंसे ब्रिटिश सरकारने १९वीं शताब्दीके अन्तमें जो युद्ध ठाना था, उसका एक कारण यह बताया गया था कि बोर लोग भारतवासियोंसे दुर्व्यवहार करते हैं। परन्तु जब ब्रिटिश सरकार इस बोर-युद्धमें जीत गई, तब भी वहांके भारतवासियोंको अवस्थामें कोई सुधार नहीं हुआ। १९०९में सर हेनरी कैम्बेल-बैनरमैनकी सरकारने दक्षिण-आफ्रिकाके चारों प्रदेशों—ट्रान्सवाल, आरेंज फ्री स्टेट, नाताल और केप-कालोनीको 'यूनियन आव् साउथ-आफ्रिका' नामसे स्वराज्य दिया, तब भी भारतवासियोंकी अवस्था ज्यों-की-त्यों ही बनी रही। फिर १९१३का सत्याग्रह हुआ, गांधी-स्मट्स समझौता हुआ; परन्तु भारतवासियोंकी स्थिति ज्यों-की-त्यों ही रही। क्रमशः वह बिगड़ने लगी और यहां तक बिगड़ी कि जनरल स्मट्सकी सरकारके विरुद्ध भारतको संयुक्त राष्ट्र-संघमें नालिश करनी पड़ी। अवश्य ही इसका फल अब तक कुछ नहीं हुआ और अब तो नए प्रधान मन्त्री डा० मलानने दक्षिण-आफ्रिकाके भारतवासियोंके रहे-सहे अधिकार भी छीन लिए।

यही नहीं, वे इन्हें दक्षिण-आफ्रिकासे निकाल बाहर करना भी चाहते हैं। दक्षिण-आफ्रिका और भारतका व्यापार बन्द है। इसका प्रतिनिधि वहाँसे बहुत पहले ही बुलाया जा चुका था। जब प्रजाराज्य-मंडलके दो राज्योंमें ऐसी खींच-तान चल रही हो और ब्रिटेन उसका कोई समाधान करनेमें असमर्थ हो, तो किस लिए भारत इस प्रजाराज्य-मंडलमें रहे? भारत और पाकिस्तानका कश्मीर-सम्बन्धी झगड़ा भी ब्रिटेन नहीं निपटा सका। ऐसी अवस्थामें कोई कारण नहीं दिखाई देता, जो भारतको इस तथोक्त प्रजाराज्य-मण्डलमें रहनेको प्रेरित करे।

अन्तिम और सबसे महत्त्वकी बात यह है कि यूरोप ही नहीं, अमरीका समेत गोरा संसार दो भागोंमें बँट गया है। एकका नेता अमरीका और दूसरेका रूस है। दोनोंमें युद्धकी चर्चा ही नहीं, तैयारी भी हो रही है। अमरीकाको यूरोपमें ही नहीं, एशियामें भी जहाज़ी और हवाई-अड्डोंकी आवश्यकता है। आयरने गत महासमरमें ब्रिटेन और अमरीकाके लाख समझाने पर भी इन्हें अपने अड्डे नहीं दिए थे। अगले महासमरमें भी वह ऐसा ही न करे, इसलिए उसे यह लोभ दिया जा रहा है कि आयरलैंडके दोनों भाग मिला दिए जायँगे। इसे आयरिश लोग किस दृष्टिसे देखेंगे, समय ही बतावेगा। पर वे न तो प्रजाराज्य-मण्डलमें रहना चाहते हैं और न ब्रिटेनके राजासे कोई सम्बन्ध ही रखना चाहते हैं। हाँ, इतना करनेको वे अवश्य तैयार हैं कि दोनों परस्परको व्यापारिक सुभीते औरोंकी अपेक्षा अधिक देंगे और पुरानी परम्परा और दस्तूरोंके आधारपर पारस्परिक लाभके लिए समान नागरिकता भी स्वीकार कर लेंगे।

आजकी राजनीतिमें उदारता, कृतज्ञता, उपकार आदिको स्थान नहीं है। यह स्वार्थ-नीति है। ब्रिटेन भारतको इसीलिए अपने साथ रखना चाहता है कि रूस भारतकी सीमाके पास है। कश्मीरके विभाजनका—गिलगित, लद्दाख आदि पाकिस्तान को दे देनेका—प्रस्ताव भी ब्रिटिश पत्रोंमें इसीलिए हो रहा है कि गिलगितको अंगरेज़ अपना हवाई-अड्डा बनाना चाहते हैं। भारतके प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरूने बारम्बार कहा है कि हम किसी दलमें शामिल न होंगे। इसलिए सोचा गया है कि पाकिस्तानके पास कश्मीरका यह राज्य-भाग आ जायगा, तो यहाँ ब्रिटिश अड्डा बन सकेगा। अफ़ग़ानिस्तान, पाकिस्तान, चीन और रूसको यहाँसे सड़कें जाती हैं। यदि अंगरेज़ी अड्डा बना, तो वह अमरीकाका ही अड्डा होगा और अमरीकन हवाई-जहाज़ यहाँसे उड़कर रूस और साइबेरिया तक पर बम बरसा सकेंगे। अमरीकाने नेपालमें भी अपने पैर जमानेका उपक्रम किया है। भारतकी निरपेक्षितासे अमरीका चिन्तित है। इसीलिए उसे (ब्रिटिश) प्रजाराज्य-संघमें रखनेके लिए सब्ज़बाग़ दिखाए जा रहे हैं।

पं० जवाहरलाल नेहरूने लन्दनमें भारतको कामनवेल्थमें रखनेकी कोई प्रतिज्ञा नहीं की, और प्रजा-सत्ताके पक्षपाती होने के कारण वे ऐसा कर भी नहीं सकते थे। विधान-परिषद्में इस विषयपर वादविवाद होगा और हमें आशा है कि वह ब्रिटिश कामनवेल्थमें रहना कभी स्वीकार न करेगी। कामनवेल्थमें रहना रूसके विरुद्ध दलमें जाना और उससे लड़नेको तैयार होना है। 'जोगी जोगी लड़ें, कुम्हारके हंडे फूटें' कहावत चरितार्थ करनेके लिए इस देशके लोग तैयार नहीं हैं। अमरीका और रूसमें बीच-बचाव करनेको तो भारत उत्सुक है; पर एक दलके साथ मिलकर दूसरे दलसे लड़ना उसकी नीति नहीं है। अवश्य ही ब्रिटेनने डेढ़-दो सौ वर्षोंतक हमारी छातीपर जो मूँग दले हैं, उन्हें हम भूल भी सकते हैं; पर इसका यह अर्थ नहीं है कि अपना भला-बुरा सोचे बिना उसीके पक्षमें हम लड़ेंगे। मित्रता हमारी रूस और ब्रिटेन अथवा अमरीका सबसे रह सकती है, पर हम बैठे-बिठाए किसीको शत्रु तो नहीं बनायँगे। ब्रिटेनके साथ होना 'नाव-नाव झगड़ालू आवें, पैरत आवें साखी' कहावत चरितार्थ करना है। हमें आशा है कि डा० अम्बेडकर और उनके-से विचारवालोंके सिवा कोई भी कामनवेल्थमें रहने का समर्थन नहीं करेगा। ब्रिटेनसे मित्रता रखनेका अर्थ यह नहीं है कि हम उसकी लड़ाइयाँ भी लड़ेंगे।

गंगाकी लहरें

श्री रामकुमार

बाज़ारके कोनेपर साधूकी छोटी-सी आटे-दालकी दूकान थी। वर्षों पुराने जंग लगे हुए टीनके पीपों और कागज़की थैलियोंमें वह आटा, दालें और मसाले आदि रखे हुए था। प्रातः सात बजेसे लेकर रात्रिके कोई दस बजे तक दूकानपर बैठना उसका नित्यका कार्यक्रम था। दिनमें उसकी स्त्री लक्ष्मी दो-तीन घंटोंके लिए दूकानपर बैठती थी और साधू अन्दर जाकर भोजन इत्यादिसे निवृत्त होकर एक नींद सो लेता था।

धनियाके अतिरिक्त साधूकी और कोई सन्तान नहीं थी। बारह वर्षकी अवस्थामें भी वह दूकानके बाहर बैठी कंकरियाँ गिना करती थी। उसका रँग साँवला, चेहरा गोल और शरीर छरहरा था, परन्तु आँखोंमें ज्योति न थी। जन्मसे ही वह अंधी थी। संसार उसके लिए अंधकारका एक साम्राज्य था। साधूको पता चला कि सीतापुरमें एक अस्पताल है, जहाँ बहुतसे अंधे व्यक्तियोंकी आँखोंका आपरेशन करके उनकी आँखें ठीक कर दी गई हैं। परन्तु सीतापुर जाकर धनियाकी आँखोंका इलाज करवाना साधूको अपने बशसे बाहरकी बात लगी।

दिनके ११ बजेका समय था। आकाशमें बादल घिरे हुए थे। नित प्रतिदिनकी भाँति धनिया दूकानके सामने सीढ़ियोंपर बैठी कंकरियाँ उछाल रही थी। बाल बिखरकर उसके मुँहपर लोट रहे थे। धोतीका छोर कंधेपर लटक रहा था। रोज़ पासवाले हलवाईका लड़का शंभू उसे अपनी दूकानसे दो जलेबियाँ लाकर दे देता था और उसी आशामें उसका प्रातःकाल कट जाता था। उसके दिनका आरम्भ इसीकी सुखद कल्पनासे होता था। परन्तु आज न-जाने क्यों वह नहीं आया। धनियाके मुखमें पानी भरा आ रहा था। कितनी ही बार उसने सोचा कि वह अपनी लकड़ी उठाकर शंभूकी दूकान तक हो आए, शायद दूकानके कामोंसे इतना संलग्न हो गया हो कि उसे जलेबियाँ लानेका ध्यान ही न रहा हो। परन्तु फिर न-जाने कौन-सा आत्मसम्मान उसके हृदयमें जाग उठा और वह क्रोधमें भरी वहीं बैठी रही और चुपचाप कंकरियाँ उछालती रही।

उसी समय उसकी प्यारी कुतिया झूनी दुम हिलाती हुई उसके पास आकर बैठ गई। धनिया अनमनी-सी हो रही थी। उसने दो-तीन बार झूनीको दूर धकेल भी दिया और कंकरियाँ भी मारीं, परन्तु वह मानी नहीं। वह धनियाके स्वभावसे परिचित थी। फिर दया करके धनिया उसके शरीरपर हाथ फेरने लगी। उसके मुँहपर हाथ लगते ही उसे कोई चीज़ चिपकती-सी जान पड़ी। उसका विश्वास दृढ़ हो गया कि झूनी जलेबीका जूँठा पत्ता चाटकर आई है और उसीका रस उसके मुँहपर लगा है। ईर्षासे उसका हृदय जल उठा। क्रोधमें आकर उसने झूनीको एक ओर धक्का दे दिया।

साधूकी दूकानके ऊपर ही छोटा-सा स्टेशन था। प्रयागको जानेवाली गाड़ीके आनेका पता चल गया। इस स्टेशनके बाद गंगाका पुल आता है। वह अविश्वासके साथ सोचा करती है कि भला गंगाके ऊपर पुल किस प्रकार बन सकता है! धनियाकी तीव्र लालसा थी कि एक बार वह गाड़ीमें बैठकर गंगाका पुल पार करे। नीचे गंगा बहती हो और रेल छक्-छक् करके भागी जाती हो। रोज़ कितनी ही गाड़ियाँ क्षण-भरके लिए इस छोटे-से स्टेशनपर आकर रुक जाती हैं, मानो उसकी प्रतीक्षामें ठहरती हों और उसे न देखकर फिर आगे बढ़ जाती हों। क्या उसका यह स्वप्न ही रहेगा? गाड़ी उसने कभी नहीं देखी। परन्तु गाड़ी ही क्यों, उसने संसारकी कोई भी वस्तु नहीं देखी। यदि कुछ देखा है, तो केवल अन्धकार। शंभूसे प्रायः वह कितनी ही चीजोंके विषयमें पूछा करती है और उनका वर्णन सुनकर धनियाको यह संसार एक जादूकी नगरी-सा दिखाई देता है। फिर उसे जलेबियोंका ध्यान आया और इस बातका बहुत दुःख हुआ कि उसके पिताकी मिठाईकी दूकान नहीं है। यदि उसका पिता हलवाई होता, तो वह रोज़ ही जलेबियाँ खाया करती।

गाँवका हवलदार हाथमें छड़ी लिए मूछोंपर ताव देता हुआ साधूकी दूकानकी ओर आया। धनियाके सिरपर हाथ रखकर उसने पूछा—'कैसी है, धनिया बेटी!'

धनिया चुप रही।

'आओ, हवलदारजी। हुक्का मँगवाऊँ?' हवलदारके आगे

मूढ़ा खिसकाते हुए साधूने पूछा। साधू हवलदारके आनेका मतलब समझता था।

'बीड़ी ही पिला दो, हुक्केकी तकलीफ़ क्यों करते हो?' हवलदारने अपनी छड़ीसे मूढ़ेकी धूल झाड़ी और बैठते हुए कहा।

साधूने 'पानकी बीड़ी'-मार्का बंडलमें से एक बीड़ी निकाल कर हवलदारकी ओर बढ़ा दी—'हवलदारजी, सुना है गंगाका पानी बड़ी तेज़ीसे बढ़ रहा है। दूसरे यह बरखा थमनेका नाम ही नहीं लेती। जब देखो, तब बादल ही घिरे रहते हैं।'

'क्यों घबराते हो, साधू'—हवलदारने बीड़ीका कश खींचते हुए कहा—'ऐसी बरखासे बाढ़ नहीं आती। फिर हमारे ऊपर तो इस स्टेशनका साया है। स्टेशनको पार किए बिना गंगामाई की एक बूँद भी इस गाँव तक नहीं पहुँच सकती।'

धनिया गंगाके बढ़ जाने और बाढ़ आनेके विषयमें सोचने लगी। क्या गंगाके बढ़नेसे उसका जल गाँव तक पहुँच जायगा? क्या सड़कोंपर गंगामाईका जल लहराने लगेगा? इस प्रकारके अनेक विचार उसके मनमें उठे और उसके शरीरमें एक अजीब-सी सिहरन पैदा हुई, उसके मनमें एक नया कौतूहल जागा। काश कि यह सब सत्य हो जाता!

इंजनने सीटी बजाई और गाड़ी चल पड़ी। सूर्यका धुँधला-सा प्रकाश उसके मुखपर सीधा पड़ रहा था।

गाँवका फकीर मेढ़ू लाठीका सहारा लिए उस मार्गसे गुज़रा। एक लँगोटीके अतिरिक्त उसके शरीरपर कोई दूसरा वस्त्र नहीं था। दाँये पैरमें घुटनेके नीचे एक बड़ा-सा घाव था, जिसपर खून जम गया था और मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। शरीरपर स्थान-स्थानपर कीचड़ लगा था। उसके रूखे बाल माथेसे होते हुए आँखोंपर छा रहे थे। पिछले २० वर्षोंसे मेढ़ू इसी गाँवमें रहता आया है। उसकी भी अपनी ज़मीन थी, अपना घर था, अपने बाल-बच्चे थे। परन्तु आज कुछ भी नहीं रहा। एक दिन वह मुसलमान था। सांप्रदायिक दंगोंमें उसका मकान जला डाला गया। उसके खेत छीन लिए गए और उसके बच्चोंको मौतके घाट उतार दिया गया। न जाने किस तरह उसके प्राण बच गए। अपने प्राणोंकी खातिर वह जुम्मनखाँसे मेढ़ू बन गया है, परन्तु उसका घर और उसके खेत उसे वापस नहीं मिल सके। उसे दो समयका भोजन तक नहीं मिलता। वह दर-दरका भिखारी बना हुआ है।

साधूकी दूकानके आगे रुककर मेढ़ूने गिड़गिड़ाकर कहा—'साधू भाई, एक मुट्ठी आटा दे दो, आज सुबहसे ही कुछ नहीं मिल सका। राह चलते लोगोंमेंसे तो किसीको भी तरस नहीं आया।'

हवलदारके अपने गाँवमें मुसलमानोंने उसके भाईकी हत्या कर डाली थी। उसकी प्रतिहिंसाकी आग अभी तक बुझी नहीं है। किसी भी मुसलमानको देखकर उसकी आँखोंमें खून उतर आता था। न जाने कितने ही मुसलमानोंको उसके हाथों मौतके घाट उतरना पड़ा था। मेढ़ूको इस गिरी हुई दशामें देखकर भी उसका हृदय कभी नहीं पसीजता था। वह सदा ही उसे कुत्तेकी भाँति दुत्कार देता था। 'अबे क्या, इसे खैरातकी दूकान समझ रखा है, जो सबेरे-सबेरे हाथ पसारकर आ गया। जा, अपना रास्ता पकड़।' हवलदारने कड़ककर कहा।

'हवलदारजी, पेट तो रोटी माँगता ही है।'

'तेरे ही पेटका तो यहाँ किसीने ठेका नहीं ले रखा है। पेट नहीं भरता, तो कहीं और चला जा। तुझे तो हमारा शुक्रिया अदा करना चाहिए कि तुझे ज़िन्दा रहने दिया।' हवलदारने बीड़ीका धुँआ छोड़ते हुए कहा।

धनियाको मेढ़ूपर बहुत तरस आता है। दंगोंसे पहले वह मेढ़ूको जुम्मन चाचा कहा करती थी और जुम्मन भी उसे अपनी बेटी कमालकी तरह ही मानता था। धनियाको वे दिन अच्छी तरह याद हैं जब गाँवके सब लोग जुम्मनका कितना आदर-सम्मान किया करते थे। दूकानपर आते ही वह उसके लिए चिलम तैयार करके लाती थी। उसे शम्भूसे पता चला था कि गाँववालोंने उसका घर-बार लूट लिया है, उसके दो लड़कों—अली और सादिक़—को मार डाला और उसकी लड़की कमाल का कोई पता नहीं चलता। कमालकी याद आते ही उसकी आँखोंमें आँसू भर आए। वह धनियाकी कितनी प्यारी सहेली थी। लेकिन आज—आज जुम्मन मेढ़ू बन गया है। एक मुट्ठी आटेके लिए भी उसे दर-दरकी ठोकरें खानी पड़ती हैं।

बूँदाबादी होने लगी थी, परन्तु धनिया उसी प्रकार अपने पाँव फैलाए बैठी रही। पानीकी हल्की-हल्की बूँदें उसके पैरोंपर पड़ रही थीं! हवा भी ज़ोरसे चलने लगी। धनिया धीरे-धीरे गुनगुनाने लगी। वह सोचने लगी कि इस बार बगीचेमें झूला पड़ेगा या नहीं? कमाल सदा जुम्मन चाचासे ज़िद करवाकर रस्सी खरीद लेती थी और झूला डाल लेती थी। फिर दोनों

सहेलियाँ घंटों झूला करती थीं। कमाल उसे बतलाती थी कि वे दोनों कितनी ऊपर आकाशमें पहुँच जाती हैं और उनके पैर पेड़की शाखाओंको छूने लगते हैं। परन्तु इस बार कौन झूला डालेगा ? झूलेका आनन्द वह वहीं बैठी-बैठी लेने लगी।

'हवलदारजी, बारिश फिर होने लगी है। मुझे तो गंगा-माईका फ़िक्र है।' साधूने सामने गहरे बादलोंसे घिरे हुए आकाशको देखते हुए कहा।

'घबराओ नहीं, इन छोटी-छोटी बूँदोंसे भी क्या कभी बाढ़ आ सकती है ? और दूसरे अब सरकार तो अपनी ही है, कोई-न-कोई इन्तज़ाम अवश्य करेगी।' यह कहकर हवलदार उठ खड़ा हुआ। फिर धनियाको देखकर बोला—'हाँ, बेटी धनिया, शामको हमारे घर आना। पूरनमासीकी कथा होगी, सो उसका परसाद भी ले आना।'

परसाद ! सहसा धनियाको अपनी जलेबियोंकी बात याद आ गई। शंभूसे अब वह कभी नहीं बोलेगी। वह अव्वल नम्बरका धूर्त है। भला आज जलेबियाँ क्यों नहीं लाया ? शायद शामके परसादमें जलेबियाँ भी हों। उसकी कल्पनामें ही उसका मन हिलोरें मारने लगा। परन्तु शाम अभी दूर थी। शाम तक उसे परसादकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

'बाबू, बाढ़ क्या होती है ?' धनियाने साधूकी ओर देखते हुए पूछा।

साधू प्रातःसे लेकर अब तककी बिक्रीका हिसाब-किताब लगा रहा था। अचानक धनियाके इस प्रश्नको सुनकर वह तनिक चौंका। फिर धीमे स्वरमें बोला—'बाढ़में गंगाका पानी बढ़ आता है, खेत-खलिहान डूब जाते हैं।'

'क्या गंगामाईका पानी यहाँ...हमारी दूकानके सामने भी...'

साधू क्रोधसे चिल्ला उठा—'चुप रह, कलमुँही। तू ऐसी ही अशुभ बातें मुँहसे निकालना जानती है। भगवानने आँखें तो नहीं ही दीं, लेकिन दिमाग़में भी गोबर ही भरा है।'

धनिया आश्चर्य-चकित होकर सोच रही थी कि उसने कौन-सी ऐसी अशुभ बात कह दी है, जिसके लिए साधू उससे इतना बिगड़ गया। साधू हर इतवारको गंगा-स्नान करने जाता है। यदि गंगा उसीके द्वारके सामने बहने लगे, तो उस-जैसा भाग्यशाली दूसरा कौन होगा ? वह स्वयं गंगाके लिए तरसती रहती है। कभी दया करके शंभू उसके लिए लोटेमें गंगाका जल भर लाता है, तो कितने ही दिन तक वह सँभालकर उसका बड़ी कंजूसीसे उपयोग करती है। यदि कहीं गंगामैया दया करके गाँवमें ही आ जायँ, तो उसकी प्रसन्नताका कोई ठिकाना नहीं रहेगा।

झूनी दुम हिलाती हुई उसके पैरोंके पास आकर बैठ गई। इस बार धनिया उसे दुत्कार नहीं सकी। अपना दुःख वह झूनी को प्यार करके बाँट देना चाहती थी। उसने झूनीको अपनी गोदमें बिठा लिया और बड़े प्रेमसे उसके शरीरपर हाथ फेरने और पुचकारने लगी। झूनी भी अपनी ज़ुबानसे धनियाके हाथ चाट रही थी। वर्षा अधिक तेज़ हो गई और आकाशपर घने बादल छा गए।

लक्ष्मीने अन्दरसे धनियाको पुकारा, परन्तु धनिया अपने विचारोंमें इतनी मग्न थी कि उसे लक्ष्मीका स्वर सुनाई नहीं दिया। क्रोधसे आग-बबूला होकर लक्ष्मी दुकानसे बाहर निकल आई। धनियाको झूनीका शरीर सहलाते देखकर उसका क्रोध और भी बढ़ गया। बोली—'अरी क्या कान बन्द हो गए हैं, जो सुनती ही नहीं। पटरानियोंकी तरह कुत्तोंसे खेलते शरम नहीं आती। सबेरेसे यह वक्त होनेको आया और घरमें झाड़ू-बुहारी तक नहीं लगी है।'

धनिया झूनीको गोदसे उतारकर खड़ी हो गई और अन्दर की ओर जाने लगी। झूनीको धनियाका यकायक इस तरह चला जाना बहुत बुरा लगा। वह अभी कुछ देर और अपना शरीर सहलवाकर अपनी थकान उतार देना चाहती थी। धनियाको जाते देख वह भी दुम हिलाती हुई उसके पीछे-पीछे अन्दरकी ओर बढ़ी। लक्ष्मीके क्रोधकी सीमा न रही। पास ही पड़ी एक खड़ाऊँ उठाकर उसने कसकर झूनीके पाँव पर दे मारी। झूनी लँगड़ाती हुई चूँ-चूँ करती तीन पैरोंसे ही बाहरकी ओर भागी। धनिया क्षण-भरके लिए स्तब्ध होकर खड़ी रही, मानो उसके पैरोंने आगे जानेसे इन्कार कर दिया हो। जबतक उसे झूनीकी चूँ-चूँ सुनाई देती रही, तबतक वह उसी प्रकार निश्चल मूर्त्तिवत् खड़ी रही। फिर चुपचाप अन्दर चली गई।

—२—

दिन-भर धनिया हवलदारकी पूर्णिमाकी कथाके विषयमें ही सोचती रही। रह-रहकर उसका ध्यान उस प्रसादके विषयमें जाता था। वह चाहती थी कि पूर्णिमा जल्दी-जल्दी आया करे। वह महीनेमें एक ही बार क्यों आती है ? शम्भूपर अब उसका क्रोध नहीं रहा था—शायद उसे दूकानसे अवकाश ही न मिला

हो या उसके पिताने ही आने न दिया हो; नहीं तो शम्भू ऐसा नहीं है। वह धनियासे बहुत सहानुभूति रखता है। शामको गाँवके लड़कोंके साथ वह खेलने नहीं जाता। उसके बदले धनियाका मन बहलानेके लिए उसके पास आ बैठता है। कभी-कभी लक्ष्मीकी आज्ञा लेकर उसकी लाठी पकड़कर उसे सैर करवाने भी ले जाता है। खेतोंके साँय-साँय करते झोंके धनियाको बड़े भले लगते हैं और उसका मन करता है कि वह सदा वहीं बैठी रहा करे। रेलगाड़ीकी छक्-छक्का स्वर सुनकर उसके शरीरमें एक अजीब-सी सिहरन उपज जाती है।

शाम होते ही अपनी लाठी उठाकर वह हवालदारके घरकी ओर चल दी। गाँवमें वह बिना किसीकी सहायताके चारों ओर अपनी लकड़ीके बलपर घूम सकती है। रास्तेमें हलवाईकी दूकानपर उसने शंभूके विषयमें पूछा। उसके बापने बतलाया कि उसे कल रातसे ही ज्वर आ रहा है। धनियाको अब उसके प्रातः जलेबियाँ न लानेका कारण पता चला। उसके मनमें शंभूके प्रति जो हल्की-सी काई जम गई थी, वह अब साफ़ हो गई। उसने निश्चय किया कि कोतवालके घरसे लौटकर वह शंभूको देखेगी।

हवालदारके घरपर गाँवके अन्य बच्चे भी जमा थे। जमींदारकी लड़की मुन्नी भी वहीं बैठी थी। धनिया उसके पास जाकर बैठ गई और उससे बातें करने लगी। परन्तु उसे अपनी किसी बातका भी उत्तर नहीं मिला। थोड़ी देर बाद उसे ज़ोर-ज़ोरसे सब बच्चोंकी हँसीका स्वर और तालियाँ पीटनेकी आवाज़ सुनाई दी। धनिया लज्जित होकर चुपचाप बैठी रही, शरमके कारण उसके माथेपर पसीनेकी बूँदें चमकने लगीं। उसे अपनेपर पश्चाताप होने लगा, परन्तु प्रसादकी कल्पना करके वह उसीमें मग्न हो गई। उसके मुरझाये होंठ मन-ही-मन मुस्करा दिए।

प्रसादका दोना लेकर उसने हाथसे टटोला और जानना चाहा कि उसमें क्या-क्या है? आटेका सिका हुआ कसार था, अमरूदकी दो फाँकें और चार बताशे। जलेबी न पाकर उसे निराशा हुई! कसार चखनेपर उसे वह बहुत स्वादिष्ट लगा, परन्तु इस बातका दुःख भी हुआ कि प्रसाद कितना कम है! यह सब तो वह एक ही ग्रासमें समाप्त कर सकती है। सब बच्चे प्रसाद खाने लगे, परन्तु उसने सोचा कि वह रास्तेमें ही खाती जायगी, जिससे उसे मार्ग अखरेगा नहीं।

घर वापस लौटते समय अँधेरा हो चुका था और हवा तेज़ीसे चलने लगी थी। धनिया लाठी टेकती हुई गुनगुनाती चली आ रही थी। अमरूद और बताशे समाप्त हो चुके थे। ऐसे सुहावने समयमें उसे फिर झूलेकी याद आई। उसने निश्चय किया कि वह ज़िद करके लक्ष्मीसे कहकर अपने पीछे बरगदके पेड़पर झूला अवश्य डलवायगी।

'ओ धनिया, अरी ओ धनिया बेटी।'

धनिया अपने ही विचारोंमें मग्न लाठी टेकती हुई आगे बढ़ी जा रही थी। किसीको अपना नाम पुकारते सुनकर उसने चौंककर अपनी दाईं ओर देखा और ठिठककर खड़ी हो गई।

'कहाँ जा रही है, बेटी? यह हाथमें क्या लिए है?'

यह तो मेढ़ूका स्वर था। वह उसकी ओर बढ़ गई। पास जाकर पूछा—

'कहो जुम्मन चाचा, यहाँ क्या कर रहे हो?'

'बेटी, अब जुम्मनका नाम न ले। वह तो कभीका मर चुका। अब तो मेढ़ू रह गया है दर-दरका भिखारी मेढ़ू।'

'मुझे तो मेढ़ू नाम बिल्कुल पसन्द नहीं। जुम्मन चाचा कितना अच्छा नाम है!'

'अपने गाँववालोंसे पूछ कि उन्होंने मेरा नाम मेढ़ू क्यों रख दिया। वे शायद समझते हैं कि नाम बदलकर मैं हिन्दू हो गया? हः हः हः!' मेढ़ूने बड़े ज़ोरका ठहाका लगाया और फिर धनियाकी ओर बड़े ध्यानसे देखते हुए पूछा—'तेरे हाथमें यह क्या है, बेटी?'

'हवलदारके घरमें पूजा थी, उसीका परसाद है।' धनियाने तनिक अभिमान-भरे स्वरमें कहा।

'हूँ! पूजा ⋯ परसाद ⋯' मेढ़ूने उपहास-भरे स्वरमें कहा। फिर तनिक क्रोधित होकर चिल्लाया—'अरे खुदा उससे बदला लेगा। नीच, पाजी, अव्वल नम्बरका बेईमान, बदमाश, कुत्ता। अपने पाप धोनेके लिए कथा करवाता है। लेकिन खुदा उसे कभी माफ़ नहीं करेगा।'

'चुप हो जा चाचा। कोई सुन लेगा, तो तेरी खैर नहीं।'

मेढ़ू थोड़ी देर तक चुप रहा, फिर गिड़गिड़ाकर बोला—'बेटी, थोड़ा-सा कसार खिला दे। सुबहसे अन्नका एक दाना तक मुँहमें नहीं गया है।'

धनियाका हृदय दयासे पसीज गया। उसने झटसे दोना मेढ़ूके हाथमें थमा दिया। थोड़ी देर बाद उसने पूछा—'अच्छा

चाचा, कमाल कहाँ गई ? कोई कहता है कि वह किसीके साथ शहर भाग गई इन दंगोंमें। क्या यह बात सच है ?'

'हाय, मेरी बेटी कमाल !...मेरी फूल-सी बेटी !' मेढ़ूका गला रुँध गया। वह आगे कुछ भी न कह सका।

धनियाकी आँखोंसे भी आँसू बहने लगे। 'मुझे उसकी बड़ी याद आती है। हम दोनों एक साथ खेला करती थीं।'

मेढ़ू फिर क्रोधमें पागलोंकी भाँति चिल्ला उठा—'मेरी बेटीको यह बदज़ात हवलदार ही शहरमें छिपा आया है। गाँववालोंने यह सब देखा, लेकिन कोई नहीं बोला—सब अन्धे और गूँगे बन गए। हे खुदा, तेरा क़हर पड़े इन सब ज़ालिमोंपर। हे गंगामाई, तू सारे गाँव-के-गाँवको अपने दामनमें छिपा ले।'

धनिया चुप रही। मेढ़ूने कसार खाकर दोना फेंक दिया। धनिया आश्चर्यसे सोच रही थी कि भला गंगामैया किस प्रकार इतने बड़े गाँवको निगल सकती हैं ? प्रातः अपने पिताको भी उसने हवलदारसे यही बातें करते सुनी थीं। फिर उसने पूछा—'चाचा, सुनते हैं कि गंगामें बाढ़ आनेवाली है।'

'हाँ बेटी, आएगी और ज़रूर आएगी। सारा गाँव, खेत, मकान, बाज़ार गाय, भैंस सब डूब जायँगे। तभी मेरा यह जलता हुआ दिल ठंडा होगा।'

धनिया लाठी सँभालकर चल पड़ी। मेढ़ूकी बातोंमें उसे भय-सा लग रहा था। परन्तु उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि इतना बड़ा गाँव गंगामें कैसे डूब सकता है ? उसने सोचा कि मेढ़ू क्रोधमें ही ऐसा कह रहा है, अन्यथा ऐसा कभी सम्भव नहीं है।

—३—

लगातार तीन दिन तक ज़ोरोंसे वर्षा होती रही। गाँवके लोग कहने लगे कि अपने जीवनमें आजतक उन्होंने कभी ऐसी वर्षा नहीं देखी थी। गंगाका जल प्रतिक्षण बढ़ता जा रहा था। गाँववाले पुलके ऊपर चढ़कर देखते, तो जलकी अथाह राशि बड़े भारी स्वरके साथ आगेकी ओर दौड़ती दिखाई देती थी। खेतोंमें घुटनों तक पानी हो गया। गंगाका जल बढ़नेसे आस-पासके खेत जलमग्न हो चुके थे। कहीं-कहीं इक्के-दुक्के पेड़का ऊपरी भाग दिखाई देनेसे कोई अनुमान लगा सकता था कि एक समय वहाँपर भी स्थल था। गाँववालोंको सरकार की ओरसे सावधान कर दिया गया कि यदि इस प्रकार गंगाका जल बढ़ता गया, तो गाँवके डूब जानेका खतरा है। लोगोंके कलेजे मुँहको आ गए। भयसे उनका साँस लेना कठिन हो गया। परन्तु घर-बार छोड़नेको वे तैयार न हुए। आखिर कहाँ जाते ? शहरमें जाकर दर-दरकी ठोकरें खाना किसीको भी पसन्द न था। गंगामाईका नाम पुकार-पुकार कर वे अपने घरोंमें ही बैठे रहे।

धनिया चुपचाप दूकानके सामने बैठकर सोचा करती थी कि गंगाका जल गाँवमें आनेसे क्या होगा ? उसके विचारमें गंगा गाँवकी सड़कोंपर बहा करेगी और वह प्रतिक्षण गंगाका स्पर्श करती रहेगी। वह बाढ़का यही अर्थ समझती थी। वह गंगाका स्वागत करनेके लिए प्रतिक्षण तैयार रहती थी।

गाँव और गंगाके बीचमें ऊपर वह स्टेशन स्थित था। यदि गाँवमें पानी आनेकी सम्भावना थी, तो स्टेशनके डूबते ही सारा गाँव जलमय हो जानेका भय था। रात्रिमें गंगाका जल बहुत तेज़ीसे चढ़ने लगा, क्योंकि यहाँसे पूर्व पानीका प्रवाह अचानक बहुत तेज़ हो गया था। उसकी धारा स्टेशन तक जा पहुँची और फिर उसका बाँध भी टूट गया। जिस प्रकार वर्षोंसे बिछुड़े हुए व्यक्तिको देखकर कोई भागने लगता हो, उसी प्रकार गंगाकी तीव्र धारा अनेक रास्ते बनाती हुई नीचे गाँवकी ओर बड़े वेगसे बह चली। गाँववालोंने कभी स्वप्नमें भी न सोचा था कि अचानक गंगाका ऐसा आक्रमण होगा। वे घबराकर अपनी जान लेकर भागे। सामान बटोरनेका समय न था, अतः अपने गाय, बैल, आदि सब कुछ छोड़कर ही भाग गए।

धनिया आश्चर्य-चकित होकर सोच रही थी कि व्यर्थमें ही गाँववाले डरकर भागे जा रहे हैं। गंगामाई किसीको डुबायगी नहीं। वह तो गाँवकी सड़कोंपर बहकर लौट जायगी। उसे पूरा विश्वास था कि गंगा गाँवको डुबा नहीं सकती।

साधू और लक्ष्मी भी थोड़ी-सी नक़दी और ज़ेवरकी पोटली बाँधकर भागनेको तैयार हो गए। पर धनियाका मन रो रहा था। आज गंगामाई उसके द्वारपर आ रही हैं और वह दूर भागी जा रही है ! ऐसे विषम अपराधके लिए गंगा उसे कभी क्षमा नहीं करेगी, जीवन-पर्यन्त उसे घोर दुःखकी ज्वालामें जलना पड़ेगा। यह सोचकर धनिया चुपकेसे उठी और मकानके पीछे झाड़ियोंमें जाकर छिप गई। बस एक बार, केवल एक बार वह गंगाका स्पर्श करके लौट आयगी। वर्षोंकी अतृप्त प्यास आज वह सहज ही पूरी कर लेगी।

थोड़ी देर बाद साधू और लक्ष्मीकी आवाज़ें उसे सुनाई दीं। वे उसका नाम ले-लेकर पुकार रहे थे। वह साँस रोककर

झाड़ियोंमें छिपी रही। फिर उसने साधूको कहते सुना—'वह गाँववालोंके साथ ही भाग गई होगी। तुम अब जल्दी करो।' लक्ष्मीने अन्तिम बार धनिया कहकर पुकारा और फिर दोनों रात्रिके अन्धकारमें विलीन हो गए।

धनियाके प्राणोंमें प्राण आए। बड़ा भारी बोझ जैसे उसके मनपरसे उतर गया था। सामने स्टेशनकी ओरसे साँय-साँय करती हवाके स्वरके साथ उसे एक अजीब-सा स्वर सुनाई दिया। धनियाने अनुमान लगाया कि यही गंगाकी लहरोंका स्वर है। वह किसी असीम आनन्दमें अभीभूत हो चुपचाप झाड़ियोंमें बैठी रही, क्योंकि गाँवके अभी इक्के-दुक्के लोग वहाँसे भागते हुए सुनाई दे रहे थे। एक प्रकारकी नीरव शांति हो गई थी। धनिया को भय-सा लगा। उसने किसीकी हँसीका स्वर सुना। मेदू पागलोंकी भाँति खिलखिलाकर बड़े ज़ोरसे हँस रहा था—'गंगा-माई, तेरा लाख-लाख शुकर है जो आज तूने सारे गाँवसे मेरा बदला ले लिया! जैसे इन्होंने मेरा घर-बार लूट लिया था, वैसे ही आज तू भी इनका नामो-निशाँ मिटा देना। हः हः हः! सारा गाँव डूब जायगा, मेरे कलेजेकी आग ठंडी हो जायगी। जै गंगामैयाकी!'

कितनी विकृत और भयानक हँसी थी यह! धनिया चुप-चाप जहाँ-की-तहाँ बैठी रही। मेदू भी कहता है कि गाँव डूब जायगा! परन्तु वह शायद गंगामाईका हृदय नहीं जानता। चारों ओर एक भयानक सन्नाटा छाया हुआ था। सहसा धनिया उठ खड़ी हुई। आज इस गाँवमें वह अकेली थी, बिल्कुल अकेली। सब भाग गए थे। वह सोचने लगी कि अभी क्षण-भर में गंगाका जल उसके पैरोंका स्पर्श करने लगेगा। इसकी सुखद कल्पनामें ही वह मग्न हो गई। इसी समय गंगाकी एक हल्की-सी धारा उसे घुटनों तक डुबाती हुई आगे बढ़ गई। धनिया समझ गई कि गंगामाईका जल आ गया है। प्रसन्नतासे उसके शरीरमें एक प्रकारकी सिहरन दौड़ गई। उसने झुककर गंगाका जल आँखोंसे लगाया और प्रसन्नतासे चिल्ला पड़ी—'जै गंगा-मैयाकी!' मानो उसे संसारका खज़ाना मिल गया हो।

परन्तु फिर जलके बहनेका स्वर सुनकर किसी अज्ञात भय से उसका हृदय काँप उठा। वह पीछेकी ओर लौटने लगी, परन्तु अब सब ओर जल-ही-जल था। वह कहीं सूखेपर पहुँच जाना चाहती थी, परन्तु उसके पाँव जैसे उठ नहीं रहे थे। उसी समय गंगाकी बड़ी ऊँची-सी एक लहर उठी और जल धनियाके कमर तक पहुँच गया। धनियाके पाँव अस्थिर हो उठे और सिर चकराने-सा लगा। वह ज़ोर-ज़ोरसे गंगामाईका नाम लेने लगी। क्या गंगामाई उसे सदाके लिए अपने आँचलमें छिपा लेगी? क्या अब वह फिर अपनी दूकानके सामने कंकरियाँ नहीं गिन सकेगी? झूनीका शरीर नहीं सहला सकेगी और शंभूकी जलेबियोंका रसास्वादन नहीं कर सकेगी? फिर उसका साहस बँधा। गंगाकी शान्तिमयी गोदमें सोकर कौन सुखी नहीं होगा? यदि वह डूब गई, तो सीधी स्वर्ग जायगी। इस ज़िन्दगी में उसके लिए अन्धकारके अतिरिक्त और है ही क्या? शायद गंगामाई उसे इस ज़िन्दगीसे छुटकारा दिलाना चाहती हैं। परन्तु फिर उसे अपने माता-पिता, शम्भू, झूनी, हवलदार सबका ध्यान आया। आज वह अपने-आपको सबके कितना निकट पा रही थी! सबकी स्मृतिमें ही उसे कितना दुःख लग रहा था!

गंगाका जल प्रतिक्षण बढ़ता जा रहा था। मशीनकी भाँति धनियाके पाँव उठते थे, परन्तु सीधे नहीं पड़ते थे। जलके द्रुत वेगमें वे काँप उठते थे। उसके ये निर्बल क़दम ही जैसे अब जीवन और मृत्युके बीच अस्त्र थे। परन्तु इनका निशाना नहीं था, इनमें शक्ति नहीं थी। जलकी एक घनी-सी चादर आई और धनियाके गले तक पहुँच गई, मानो फाँसी का फन्दा हो। बड़ी कठिनाईसे वह सँभल सकी। धनियाने सोचा कि गंगामाई उसकी परीक्षा ले रही हैं और वह बड़े ज़ोर-ज़ोरसे गंगाका नाम लेने लगी। परन्तु रात्रिके इस तूफ़ानमें उसका स्वर वहीं उलझ कर रह जाता था। जलका प्रवाह इतना तेज़ था कि क़दम उठाते ही उसके सँभलनेकी आशा न थी, अतः धनिया वहीं खड़ी रही। अब जल उसके होंठों तक पहुँचने लगा। फिर बड़े वेगके साथ एक प्रवाह आया और धनियाके सिरके ऊपरसे होकर निकल गया। वह अथाह जलमें विलीन हो गई।

अगले दिन गाँववालोंको पता चला कि धनिया और मेदू दोनों ही डूब गए!
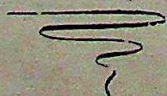
दामोदर-घाटी-योजना

डा० बूलचन्द

गत जुलाईके "नया समाज"में प्रकाशित अपने 'टेनेसी-वेली-योजना'-शीर्षक लेखके दौरानमें हमने भारतमें पड़ी बंजर ज़मीनके उपयोगका संकेत किया था। हमें प्रसन्नता है कि हिन्द-सरकारने लगभग १४ नदियोंपर टेनेसीके ढंगके बाँध बाँधनेकी योजनाएँ तैयार की हैं। इनमेंसे सबसे प्रमुख है दामोदर-घाटी-योजना। इस योजनाके अन्तर्गत दामोदर नदीपर, विभिन्न स्थानोंपर, ८ बाँध बनाए जायँगे, जिनकी लागत ५६ करोड़ रुपया कूती गई है। इसका कार्य अक्टूबर १९४९ से आरंभ हो जानेकी आशा है।

दामोदर नदीकी घाटी ७५०० वर्ग मील है, जो बंगाल और बिहार प्रान्तोंमें स्थित है। यद्यपि उस घाटीकी ज़मीन काफ़ी अच्छी और जंगल तथा खनिज पदार्थोंसे भरी-पूरी है, लेकिन उत्पादनकी दृष्टिसे यह अभी बिल्कुल आदिम-कालीन अवस्थामें ही है। ज़मीनका एक बहुत बड़ा भाग बिना जोता-बोया पड़ा है। कितने ही खनिज पदार्थ पहाड़ोंके नीचे दबे अनुसन्धानकी प्रतीक्षामें हैं। यहाँके निवासियोंको अपनी शक्तिका पूर्ण उपयोग करनेके ज़रियोंका अभाव-सा है।

दामोदर नदी

दामोदर नदी पूर्वी भारतकी प्रमुख नदियोंमेंसे है। यह छोटा-नागपुरकी पहाड़ियोंपर (समुद्र-तलसे २००० फीटकी ऊँचाईपर) बहती है। प्रथम १९० मील तक तो यह बिहार-प्रान्तमें बहती है, उसके बाद बंगालकी सीमामें प्रवेश करती है और अन्तमें हुगली नदीसे मिल जाती है। जहाँ यह बंगालकी सीमाको छूती है, वहाँ इसकी मुख्य सहायक नदी बराकड़ उत्तरसे आकर इसमें मिलती है। अन्य भारतीय नदियोंकी भाँति आरम्भमें यह धरतीको काटती और मिट्टी जमा करती हुई तीव्र गतिसे बहती है, और नीचे जाकर एक धीमी धाराका रूप ले लेती है, और पानी तथा मिट्टीको किनारोंपर फैलाती हुई आगे बढ़ती है। आकारमें छोटी होते हुए भी विशाल विनाशकी ज़िम्मेदारी इसपर है। इसकी ऊपरी तराईमें ४७ इंच औसत वर्षा पूरे साल-भरमें होती है। अधिकांश वृष्टि वर्षा-ऋतुमें ही होती है। इसलिए हर साल लगभग इसी समय इसमें बाढ़ भी आती है। सन् १९२३, १९३५, और १९४३ में इस नदीमें लगातार कई दिनों तक बाढ़का प्रकोप रहा। इस बाढ़के कारण नदीके किनारोंके आसपासके अनेक गाँव बह गए और बर्दवानके दोनों ओरका यातायात भी बन्द हो गया। वैसे छोटी-मोटी बाढ़ तो इसमें प्रतिवर्ष आती ही रहती है। कदाचित् इसीलिए पश्चीमी बंगालमें तो इसे 'दुःखकी नदी' का सम्मान मिला है। ग्रीष्म-कालमें इसके पानीका फैलाव घटकर एक पतली धाराके रूपमें परिवर्त्तित हो जाता है, इस कारण इसके पानीसे सिंचाई करना असम्भव हो जाता है।

दामोदर नदीके ऊपरी भागकी तराई बिहारमें है। यह पहाड़ है, जिसके बीच-बीचमें गहरी दरारें और विस्तृत झरने हैं। यह क्षेत्र बहुत ऊबड़-खाबड़ बन गया है और यहाँकी उपजाऊ भूमि भी खराब हो गई है, क्योंकि अपने तेज़ प्रवाहमें नदी सतहकी उपजाऊ मिट्टीको साथ बहा ले जाती है। कुछ स्थानोंमें इस भूमिपर खेती की जाती है; लेकिन सिर्फ वह वर्षाकालमें ही संभव है। यदि कभी वर्षा न हुई, तो सारी पैदा-वार नष्ट हो जाती है।

बराकड़ और दामोदर नदीके संगमके बाद इसकी घाटीका निचला भाग बंगालमें पड़ता है, और बाढ़के साथ आई हुई उपजाऊ मिट्टीकी परत इसपर जम जाती है। घाटीके निचले भागकी धरती बड़ी उपजाऊ है। सिंचाईकी उचित सुविधाओंके अभावके कारण अभी तक इस भूमिपर पूर्ण रूपसे खेती होना संभव नहीं हो सका है। नदीके निचले भागकी तराईमें बाढ़ आना एक आम बात हो गई है। लगातार बाढ़ आते रहनेसे इस जगह पानीके गड्ढे बन गए हैं, जिनसे मच्छर बहुत होते हैं और उनसे मलेरिया तथा पेचिश-जैसी बीमारियाँ फैलती हैं।

खनिज पदार्थ

दामोदर-घाटीमें खनिज पदार्थ बहुतायतमें पाए जाते हैं। हिन्दुस्तानकी कोयलेकी खानोंका एक बड़ा हिस्सा इसीमें पाया जाता है। बाक्साइट और एल्यूमीनियम भी यहाँ काफ़ी मात्रामें हैं। इनके अतिरिक्त कलई, चीनी मिट्टी, भोडर, चूना, कच्चा सीसा, सीसा आदि अनेक अन्य खनिज पदार्थ भी पाए जाते हैं।

बहुउद्देशीय योजना

कृषि और खनिज पदार्थोंकी बहुतायत होनेपर भी उत्पादन में हीन, दामोदर-तराई भारतीय सरकारके लिए एक समस्या है, जिसे एक बहुउद्देशीय योजना द्वारा हल करनेका निश्चय सरकार ने किया है। बहुउद्देशीय योजनामें बहुमुखी उद्देश्य निहित हैं। बहुउद्देशीय योजना वह योजना है, जिसमें अनेक उद्देश्य और उनके विभिन्न क्षेत्रोंमें उनकी व्यापक पूर्तिका आनुसंगिक प्रयत्न निहित है। इस योजनाके अन्तर्गत समूची नदीको एक इकाई माना जाता है। इसका उद्देश्य केवल नदीकी बाढ़को रोकना ही नहीं, बल्कि उसके पानीसे बिजली पैदा करना, सिंचाई और जलीय यातायातकी सुविधा करना, मलेरियाका प्रतिरोध, भूमिकी वैज्ञानिक ढंगसे व्यवस्था करनेका प्रयत्न और मोटे तौरपर सम्बन्धित भूमिका अर्थनीतिक विकास करना है।

दामोदर-घाटी-योजना—जिसका उद्देश्य है दामोदर-घाटीके पिछड़े हुए क्षेत्रको अधिक उपजाऊ और उद्योग-धन्धोंसे पूर्ण बनाना—का विचार सर्वप्रथम सन् १९४३ में उठा, जब कि बंगाल-सरकारने सन् १९४३ की बाढ़के बाद प्रतिवर्ष आनेवाली बाढ़ और उसके प्रतिरोधकी समस्याके सम्बन्धमें सुझाव देनेके लिए एक जाँच-समिति बनाई। बंगाल, बिहार और भारत-सरकारके प्रतिनिधियोंकी कान्फ्रेंसमें—जो जनवरी, १९४५ में हुई थी—इस प्रस्तावका स्वागत हुआ। इसके बाद 'दि सेंट्रल टेकनिकल पावर-बोर्ड'ने, जिसपर एक योजना बनानेका भार डाला गया था, दामोदर नदीके लिए एक व्यापक योजना की रूप-रेखा प्रस्तुत की, जो अगस्त १९४५में स्वीकृत हुई। इस योजनाके अनुसार दामोदर नदीके विभिन्न भागोंमें आठ बाँध बनानेका विचार है। इन बाँधोंमें एकत्र किया हुआ पानी आबपाशी, बिजली पैदा करने तथा जहाज़ी यातायातके काममें लाया जायगा। इस प्रकार अस्थायी नदीको स्थायी नदीके रूपमें परिणत कर दिया जायगा। दामोदर और बराकड़के संगमसे नीचेकी ओर कहीं भी ऐसा स्थान नहीं है, जहाँपर ऐसा बाँध बनाया जा सके, जिसमें बहुत-सा पानी एकत्र किया जा सके। साथही बाढ़पर अधिकसे अधिक रूपमें नियंत्रण पानेके लिए यह आवश्यक है कि 'कन्ट्रोल-बाँध'को जितना सम्भव हो, नीचेकी ओर ही बनाया जाय। इसलिए यह तय किया गया कि दो बाँध बनाए जायँ—एक तो मिथनमें बराकड़ नदी पर और दूसरा पंचेट पहाड़ीके पास दामोदर नदीपर। दोनों नदियोंके संगमसे करीब ५ मील दूर ये दोनों बाँध होंगे। इन बाँधोंके ऊपरकी ओर नदियोंपर आवश्यकतानुसार और भी पानीके हौज़ बनाए जायँगे। दामोदरपर चार और बराकड़ पर तीन बाँध बनानेके लिए स्थान निर्धारित हो चुका है। आगे बाँधोंकी संयुक्त शक्ति क़रीब २९००००० एकड़ फीट है। साधारण भूकम्पोंसे इनको कोई हानि न हो सके, इस प्रकारकी रूप-रेखा इन बाँधोंकी बनाई गई है। सम्पूर्ण योजना तैयार कर ली गई है और उम्मीद है कि क़रीब दस वर्षोंमें यह पूरी हो जायगी।

दामोदर-घाटी-कार्पोरेशन

हिन्द-पार्लमेण्टने अभी हाल ही में दामोदर-घाटी-कार्पोरेशन-क़ानून पास किया है, जिसके द्वारा इस योजन को कार्यान्वित करनेके लिए केन्द्रीय सरकारने उपर्युक्त नामसे एक खास संस्था बनाई है। जो काम कार्पोरेशनके ज़िम्मे रहेंगे, उनका उल्लेख इस क़ानूनमें इस प्रकार किया गया है: जहाज़ी यातायात, जंगल लगाना, जन-स्वास्थ्य, उद्योग-धन्धोंकी उन्नति और सब प्रकारसे दामोदर-घाटीके निवासियोंको समृद्ध बनाना।

कार्पोरेशनके ५ सदस्य होंगे, जिनमें से तीनकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकारकी इच्छानुसार होगी और दो इससे सम्बन्धित प्रान्तीय सरकारोंके परामर्शसे नियुक्त किए जायँगे। इस ५ सदस्योंके बोर्डकी सहायताके लिए एक मंत्री और एक अर्थ-सम्बन्धी सलाहकार रहेंगे। कार्पोरेशनको यह ज़िम्मेदारी अच्छी तरह सम्हालनेके लिए पर्याप्त अधिकार दिए गए हैं। कार्पोरेशन को अपने छोटेसे लेकर बड़े कर्मचारी तकको नियुक्त करने, तरक्की देने और बरखास्त करने, उचित हर्जाना देकर ज़मीन हासिल करने और बँधे पानीके हौज़, बिजलीघर, संवादवाहक-लाइन, नाली और सिंचाईके लिए नल बनानेके अधिकार भी दिए गए हैं। कार्पोरेशन आवश्यकतानुसार चालू सड़कें बन्द करके रेलके नए मार्ग बना सकती है। सड़कों एवं यातायातके बन्द होने और आबादीके स्थानान्तरित होनेके कारण स्वभावतः जो असुविधा होगी, उसे दूर करने और आबादीके पुनर्वासके लिए कार्पोरेशन सम्बन्धित सरकारों, रेल्वे-अधिकारियों तथा स्थानीय अधिकारियोंके सहयोगसे काम करेगी। लेकिन कार्पोरेशनको अपनी योजना बनाने, उसकी रूप-रेखा निर्धारित करने और उसे कार्यान्वित करनेका अधिकार प्राप्त है। इस कार्यके क़िसी भी अंशको कार्यान्वित करनेके लिए सम्बन्धित सरकारों और खानगी फर्मोंसे सहयोग लेनेमें वह स्वतन्त्र है।

DAMODAR VALLEY
PROJECT
ORISSA
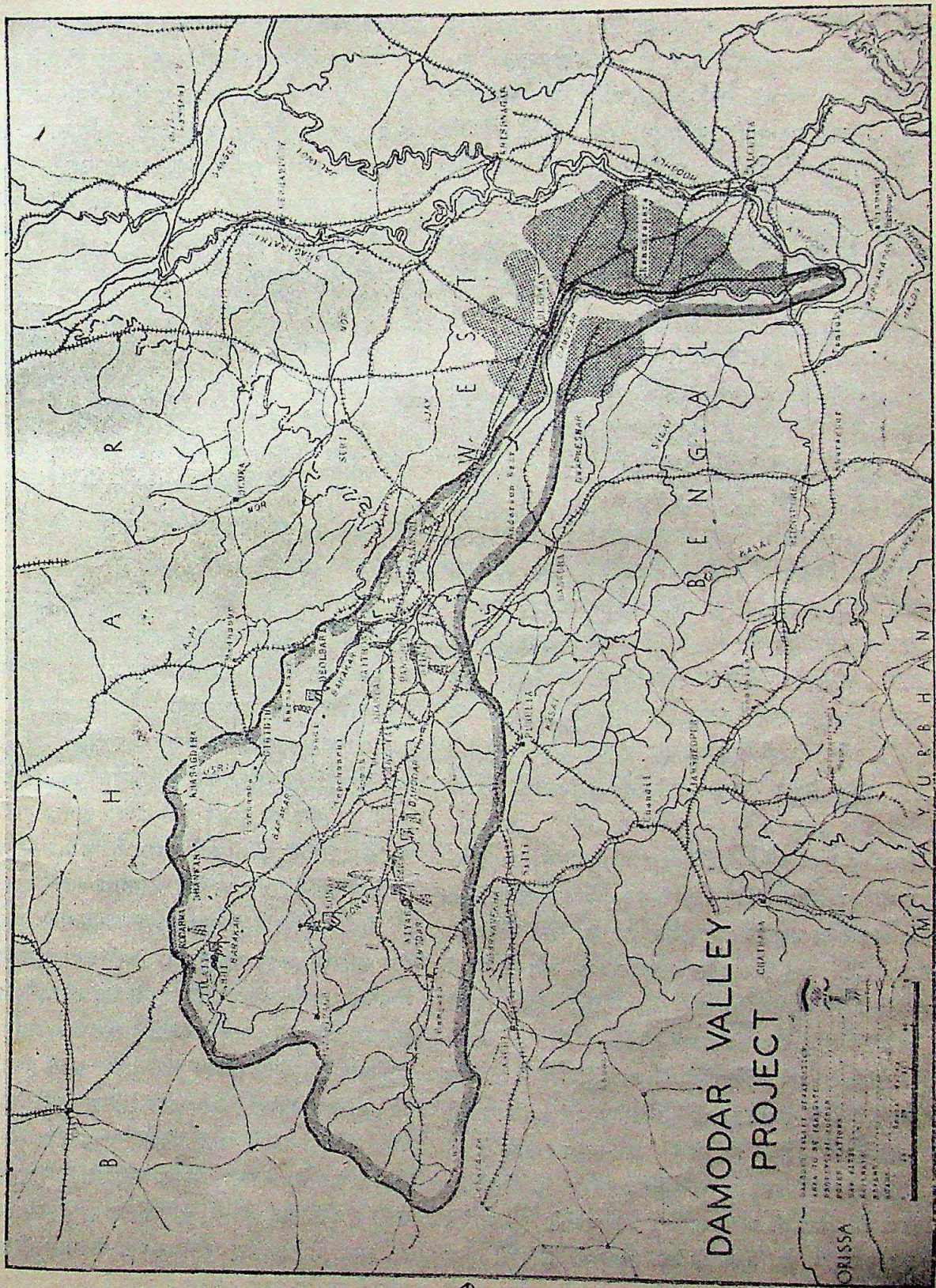
कार्पोरेशनको इस योजनाको कार्यान्वित करनेके लिए अर्थ की जो आवश्यकता होगी, उसे तीनों सम्बन्धित सरकारें पूरा करेंगी। जो धन कर्ज़ लिया जायगा, उसका ब्याज कार्पोरेशन देगी। इसके साथ-साथ कार्पोरेशनको खुले बाज़ारसे कर्ज़ लेने का अधिकार भी प्राप्त है। कार्पोरेशनको तीनों सरकारोंके सम्मुख सालाना बजट पेश करना होगा और साथ ही पिछले सालके कार्योंका सच्चा विवरण भी रिपोर्टके रूपमें देना होगा। कार्पोरेशनके हिसाबकी जाँच समय-समयपर की जायगी और इसे केन्द्रीय कर भी देने पड़ेंगे।

विकासकी सम्भावनाएँ

पार्लमेण्टमें दामोदर-घाटी-कार्पोरेशन-क़ानूनपर बड़ी खुशी ज़ाहिर की गई। इस योजनासे जनता बहुत उत्साहित हुई। यदि यह योजना सफल हुई, तो उम्मीद है कि घाटीके निवासियोंका जीवन सुधर जायगा। इस समय बंगाल और बिहारमें केवल १८६,००० एकड़ क्षेत्रमें ही आबपाशी होती है। लेकिन ऐसी उम्मीद है कि इस योजनाके कार्यान्वित होनेके बाद क़रीब दस लाख एकड़ ज़मीन सींची जा सकेगी। किसानको पूरे साल-भर पानी मिलता रहेगा और इस सुविधासे उसे ज़्यादा मात्रामें खादका उपयोग करनेके लिए प्रोत्साहन मिलेगा। वर्तमान स्थितिमें बारह मन अनाज एक एकड़में उत्पन्न होता है। लेकिन अनुमान है कि सिंचाईके बाद इक्कीस मन अनाज प्रति एकड़ हुआ करेगा।

अनेक केन्द्रोंमें पानीसे बिजली पैदा की जायगी, जिसकी कुल शक्ति क़रीब २००००० किलोवाट होगी। इस प्रकार बिजली द्वारा जो शक्ति पैदा की जायगी, उससे कई नए कृषि-उपयोगी कल-कारखानोंका आविर्भाव होगा, जिनमें खेतीकी तरक्की के लिए अनेक प्रकारके औज़ार और आवश्यक चीज़ें बनेंगी।

घाटीमें जहाँ फेरस और बक्साइट पाया जाता है, वहाँ हवाई-जहाज़ बनानेके कारखाने, लोहा, ताँबा, भोडर आदिसे बिजलीके चूल्हे, रेडियो और इसी प्रकारकी दूसरी चीज़ें बनाने के कारखाने बननेकी उम्मीद की जाती है। चीनी मिट्टीसे चमकीले पत्थर और बर्तन भी बनेंगे। ज़मीनमें वैज्ञानिक ढंगसे खाद देनेकी व्यवस्था हो जानेके फल-स्वरूप वहाँकी खेतीमें बहुत उन्नतिकी आशा करना अनुचित नहीं। उन्नतिकी इस योजनामें जंगल भी लगाए जायँगे। सावधानीसे चुनकर ऐसे वृक्ष लगाए जायँगे, जिनके आर्थिक दृष्टिसे भी उपयोगी सिद्ध होनेकी सम्भावना होगी। वृक्षोंको काटने और नए वृक्षोंके रोपणकी व्यवस्था बहुत सावधानीसे की जायगी, जिससे जंगलों को उन्नत बनानेका कार्य पूर्ण रूपसे सफल हो सके। इसके फल-स्वरूप इस सतहकी मिट्टीका पानी धीरे-धीरे ऊँचे धरातल पर उठ जायगा और इस प्रकार वहाँकी भूमि ज़्यादा उपजाऊ बन जायगी। आगे चलकर अनेक प्रकारके उद्योग-धन्धे वैज्ञानिक रीतिसे बढ़ाए जायँगे। उदाहरणार्थ जो भूमि शहतूतकी खेतीके उपयुक्त हो, वहाँ रेशमका उद्योग प्रारम्भ किया जाय और लाखकी पैदावारको बढ़ाया जाय। बाँस भी ज़्यादा मात्रा में पैदा किए जायँ और वहाँ कागज़की नई मिलें खोली जायँ।

इस योजनाके अन्तर्गत मछलियोंका पालना भी संभव एवं सुगम हो जायगा; क्योंकि १२०००० एकड़ भूमिपर पानीके हौज रहेंगे, जो मछलियाँ पालनेके लिए बिल्कुल उपयुक्त होंगे। नदीसे थोड़े फ़ासलेपर के अनेक क़स्बों और गाँवोंमें—उद्योग-धन्धों तथा घरोंमें—पानीके नल लगाना संभव हो जायगा; क्योंकि इस योजनके पूर्ण होनेके बाद गर्मीके मौसममें भी नदीका प्रवाह काफ़ी तेज़ और नियमित रूपसे रहेगा।

योजनाके अनेक महत्त्वपूर्ण पहलुओंमें से एक है नावोंके यातायातके लिए एक नहरका होना, जिसमें नावें कलकत्तेसे झरियाकी कोयलेकी खानों तक सामान और मुसाफिर ला और ले जा सकेंगी। यह जगह दामोदर-घाटीके मध्य भागमें है।

यद्यपि इस योजनासे बंगाल और बिहार दोनोंको काफ़ी लाभ होगा, लेकिन उत्पादनकी दृष्टिसे बहुत पिछड़े छोटा-नागपुरको इस योजनासे विशेष रूपसे फ़ायदा होगा। सभी झीलें छोटा-नागपुरमें ही बनेंगी और उम्मीद है कि ये जन-साधारणके मन-बहलावका भी आकर्षक केन्द्र हो सकेंगी।

ऐसा अनुमान है कि इस सारी योजनामें क़रीब ५६ करोड़ रुपए खर्च होंगे। इस खर्चेसे घाटी-निवासियोंको काफी संख्यामें नौकरियाँ मिल सकेंगी और युद्धके बाद मंदी और बेकारीके असरको भी कम करनेमें सहायता मिलेगी। इस योजनाके कार्यान्वित हो जानेसे तराईके आस-पासके दृश्यमें भी परिवर्तन आ जायगा। व्यापारमें भी नया प्रोत्साहन मिलेगा। नए बैंकों, बीमा-कम्पनियों तथा व्यापारी-प्रतिष्ठानोंका आविर्भाव होगा। घाटीके निवासी अधिक समृद्धिशाली और सुखी हो सकेंगे। टेनेसी-वेली-योजना द्वारा ऐसा ही सुखद परिवर्तन हो चुका है, इसलिए दामोदर-घाटी-योजनामें भी इस परिवर्त्तनकी उम्मीद करना असंगत न होगा।

जम्मूकी सड़क

श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन

मैं उन लोगोंमें से नहीं हूँ, जो गाड़ी छूट जानेपर पछताते हैं। मेरी समझमें तो ऐसी घटना भगवानकी देन होती है। कारण, इससे एक व्यक्तिको एक दिन या कुछ घंटोंका ऐसा समय मिल जाता है, जिसको खर्च करनेकी योजना उसने पहलेसे नहीं बना रखी है और जिसको वह बिल्कुल स्वेच्छासे व्यय कर सकता है। और यही मेरी समझमें तो छुट्टीके दिनका उद्देश्य होता है या होना चाहिए। लेकिन मुझे स्वीकार करना पड़ेगा कि पिछले पाँच वर्षोंमें मैं एक बार भी गाड़ी नहीं चूका। पाँच वर्ष पहले भी मैं असलमें गाड़ी चूका नहीं था, बल्कि ग़लत गाड़ीमें सवार हो गया था। उस घटनाने वास्तवमें मेरी छुट्टीको बड़ा ही रोचक बना दिया था।

तवी नदीके किनारे बसे जम्मू नगरकी एक झाँकी।

अप्रैलमें एक दिन सवेरे उठते ही एकाएक खयाल आया कि छुट्टी मनाए करीब ५ वर्ष हो गए। मैंने तुरन्त ही गाड़ी चूकनेका विचार किया। दो घंटेमें मैं कामसे दिल्ली जानेके लिए रेल्वे-स्टेशन पहुँचा। देहली-मेल निकल चुकी थी। स्टेशनसे मैंने अमृतसरके लिए सीट रिज़र्व करनेको देहली तार दिया और इलाहाबादसे तीसरे पहरकी गाड़ीमें सवार हो गया। दो दिन बाद मैं अमृतसर-पठानकोटकी सड़कपर गुरुदासपुरमें था, जो अब हिन्द-पाकिस्तान-सीमाका एक ज़िला है और जिसकी एक तहसील पाकिस्तानको दे दी गई है। यहींसे मेरी कहानी शुरू होती है, यद्यपि जम्मूकी सड़क तो पठानकोटसे शुरू होती है।

कई बार मैंने साश्चर्य सोचा है कि जो थोड़े-से वर्ष मैंने सेनामें बिताए, उस समयका सदुपयोग हुआ है या दुरुपयोग? लेकिन इस सत्यसे भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि कुछ नहींमें से भी कुछ निकाल लेनेकी कला सीखनेके लिए सेनामें स्टाफ़-कैप्टेनका पद बिल्कुल उपयुक्त है।

उसी शामको मैं 'देश लौटते हुए शरणार्थी'की हैसियतसे फ़ौजकी ट्रकमें सवार हो गया। फ़ौजी ट्रांसपोर्ट द्वारा यात्रा करनेका युद्ध-विभागका परवाना मेरी जेबमें था—लेकिन इस शर्तके साथ कि किसी भी तरहकी मेरी हिफ़ाज़तकी ज़िम्मेदारी फ़ौजपर नहीं रहेगी और फ़ौजी अधिकारी भयंकर दुर्घटना या साधारण चोट लग जानेकी स्थितिमें भी किसी प्रकारसे जवाबदेह न होंगे।

अँधेरा होनेके एकदम बाद ही हमने गुरुदासपुर छोड़ा। ट्रक मुझे और जम्मूकी एक शरणार्थी स्त्रीको पठानकोटके अड्डेपर छोड़नेवाली थी। जब हम वहाँ पहुँचे, तो हमने देखा कि गाँवके उस निर्जन स्थानपर सैकड़ों सवारियाँ क्रमसे खड़ी हैं, जिनमें किसी प्रकारकी सुविधाकी व्यवस्था नहीं थी। पर मैंने इन असुविधाओंकी तनिक भी परवाह नहीं की। 'छुट्टी'में इस प्रकारकी असुविधाओंसे मुझे तो विशेष आनन्द ही मिलता है। लेकिन वह शरणार्थी भद्र महिला बहुत घबरा गई। ट्रकके इन्चार्ज सूबेदारने एक अच्छा सुझाव रखा। हमारा क़ाफ़िला दूसरे दिन सुबह ५ बजे चलनेवाला था। हमारी ट्रक जो पठानकोट दूध लाने जा रही थी, वह दूसरे दिन सुबह ४ बजे लौटनेवाली थी। अतः उन्होंने सुझाया कि हम पहले पठान-कोट जाकर सुबह वापस लौटनेवाली ट्रकके साथ वापस आ जायँ। यह सुझाव कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार कर लिया गया। यद्यपि मेरा खयाल नहीं है कि मेरे सहयात्रियोंको थोड़े-से मानसिक

आरामके अतिरिक्त उनकी सुख-सुविधामें कुछ अन्तर पड़ा—सिवा इसके कि दूधवालेने मुझे रातको एक बजे दूध दिया। मेरी साथिन ट्रकमें सो रही थी। ड्राइवर अपनी जगहपर सो रहा था और मैं तथा सूबेदार बाहर घासपर। नींद आना मुश्किल था, क्योंकि सड़कके लैम्पकी रोशनी सीधी हमारे चेहरोंपर पड़ रही थी। कुछ समय तक तो मैं पड़ा-पड़ा लैम्पके चारों ओर मँडराते हुए कीट-पतंगोंको देखता रहा, फिर मैं अपने एक खास मित्रको पत्र लिखनेके लिए बैठ गया। यह पत्र लिखना केवल समय व्यतीत करनेके लिए ही नहीं था, बल्कि पत्र ज़रूरी था—ऐसा ज़रूरी कि छुट्टीके दिन ही लिखा जाय। वह पत्र दरअसल इतना ज़रूरी था कि वह अभी भी अधूरा लिखा हुआ ही मेरे पास पड़ा है! दूधवाला जब दूसरों को दूध देकर कुछ खाली बर्तन लिए बाहर निकला, तो मुझे सड़कपर लैम्पकी रोशनीमें बैठे लिखते देखकर बड़ा अचम्भित हुआ, और इसी समय उसने थोड़ा-सा दूध मेरी ओर बढ़ा दिया। मैंने मुस्कराकर दूध लेनेमें अपनी असमर्थता प्रकट की। इसपर उसने इसरार किया कि यह दूध वह अपने हिस्सेमें से दे रहा है, जिसे लेनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। अभी दूध पीनेका समय नहीं था, इससे मानो उसे कोई सरोकार न था। सुबह तड़के साढ़े चार बजे हम काफ़िलेके अड्डे पर पहुँचे।

तवी नदीपर बना जम्मू-पुल, जो जम्मूको भारतके साथ जोड़ता है।

लोगोंके झूम-झूमकर गाने और निरन्तर ढोल और ढोलकोंके बजनेके स्वरोंका स्थान अब जगे हुए लोगोंके खाँसने-खखारने, जमुहाने आदिकी आवाज़ोंने ले लिया था। इसके बाद शीघ्र ही इंजनोंके स्टार्टरोंकी खड़खड़ाहट-गड़गड़ाहट तथा पंजाबियोंके गाली-गलौज और नेपालियोंकी घुर्घुराहटकी आवाज़ें आने लगीं। इस समय हमारे काफ़िलेके लंगर और स्टोर और बादमें दूसरे स्टोरों और गोला-बारूदके फ़ौजी संरक्षणमें जानेवाले दस्ते बनने शुरू हो गए थे और कुछ अफ़सर जम्मू तक लिफ्ट मिलनेकी ताक-झाँकमें घूमने लगे थे। हमें दो ट्रकोंकी दूसरी सीटोंपर बिठा दिया गया और हमारा काफ़िला चल पड़ा।

मैं अपनी यात्राका वर्णन करूँ, इसके पहले शायद उस स्थानकी स्थितिका थोड़ा-सा विवरण देना अप्रासंगिक न होगा। अभी भी जम्मू-सड़क नाम-मात्रकी ही सड़क है। करीब ६७ मील तक तो यह रास्ता बड़ा पथरीला, रेतीला या कच्चा है। रेतीले तथा पथरीले नदीके दोनों किनारोंपर नाले और पानीके गड्ढे बन गए हैं। कहीं-कहीं इधर-उधर थोड़ी दूरमें अच्छी सड़कपर से चलते-चलते पहिया फिसलता, तो ऐसा धक्का लगता मानो अब गाड़ीका टायर और स्प्रिंग आदि टूटे बिना न रहेंगे। कई जगह तो ऐसे कटाव हैं, जहाँपर कामचलाऊ पुल भी नहीं हैं। जम्मू-सीमान्तके कठूआ कस्बेमें जानेके लिए रावीके तीव्रगामी प्रवाहपर डोंगियों का केवल एक पुल है और दूसरा ऐसा ही पुल जम्मूके पास उज्जपर है। नक्शेमें यह सड़क 'अच्छे मौसमकी सड़क' बताई गई है; लेकिन आरामसे यात्रा करनेके लिए यहाँ कभी भी मौसम अच्छा नहीं रहता! अतीतमें इस सड़क पर से मोटरोंका यातायात करीब-करीब नहीं-सा ही था। पर अब दूसरा कोई मार्ग न होनेसे आवश्यक कामसे जम्मू जानेवाली सवारियाँ इसी सड़कसे जाती हैं और दस या बारह घंटोंमें या कभी-कभी रात-भर रास्तेमें ही बितानेके बाद भी जम्मू पहुँचकर सन्तोषकी साँस लेती हैं। सड़कपर जगह-जगह जहाँ-तहाँ टूटी और बेकार मोटरें पड़ी सड़ रही थीं। बादमें जब
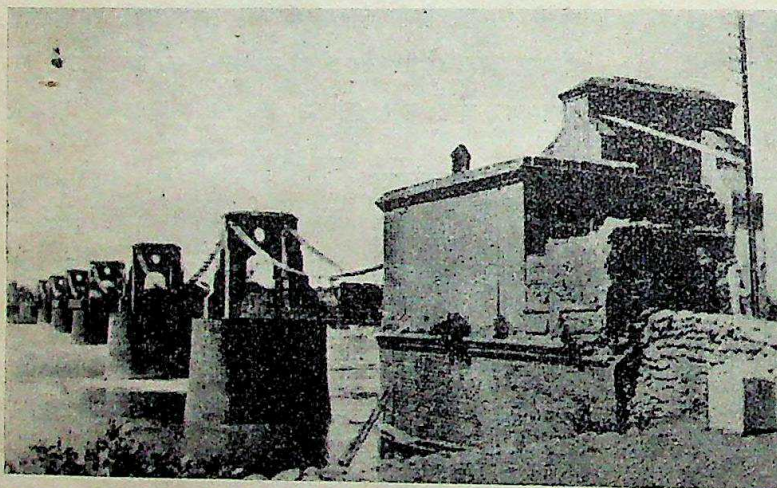
में इधर-उधर चक्कर लगाने लगा, तो मैंने पूछा कि आखिर इतनी मोटरें रास्तेमें कैसे बेकार हो गईं और क्या इनके इस बेकार हो जानेकी बात पहले नहीं सोची गई थी ? ड्राइवरका उत्तर बड़ा विचित्र था। उसने कहा—"मशीनोंकी यही तो मुसीबत है। मनुष्यको तो थके-माँदे होनेके बाद भी हाँका जा सकता है ; लेकिन मशीनको तो रुकने या टूटनेके बाद चलाना मुश्किल है।"

हमारे रास्तेके इर्द-गिर्द काफ़ी चहल-पहल और क्रिया-शीलता दिखाई दी, जो आसपासके प्राकृतिक दृश्यके साथ ज़रा कम मेल खाती थी। कठूआ-सांभासे गुज़रनेवाली यह सड़क अनेक स्थानोंपर पाकिस्तानकी सीमाके काफ़ी नज़दीकसे होकर जाती है। शायद इसीलिए अनेक स्थानोंपर यह नई बनी

रावीपर बना डोंगियोंका पुल, जिसपर से खच्चरोंकी एक टुकड़ी गुज़रती हुई दिखाई पड़ रही है।

सड़क पाकिस्तान-सीमान्तसे ज़रा और हटकर हिन्दके अधिक भीतरी भागमें होकर गई है। इन घुमावोंके बावजूद सड़क पुराने रास्तेके साथ-ही-साथ चली गई है और कहीं-कहीं तो उसीपर होकर निकली है। सड़कपर हज़ारों मज़दूर इधर-उधर काम करते दिखलाई दिए, जिनके बीचमें जहाँ-तहाँ कन्धेपर बन्दूक टाँगे वर्दीधारी सिपाही भी थे। हमारा काफ़िला ज्योंही अड्डेसे थोड़ा आगे बढ़ा, हमने देखा, धूल-मिट्टी जमे घास और पौधोंके पास जहाँ-तहाँ कुछ स्त्री-पुरुषोंके समूह बैठे हैं। ये शरणार्थी थे, जो अपनी उनींदी और सूखी-सी आँखोंसे घर-वापसीके इन्तज़ार में इधर-उधर ताक रहे थे। ये बेचारे बिना किसी साधन, परवाने या शरणार्थियोंको ले जानेकी व्यवस्थाकी उचित जान-कारीके अभावमें दो दिनोंसे इसी तरह 'लिफ्ट' मिलनेकी आशा में बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे। अभी भी इन्हें एक दिन, दो दिन या न-जाने कितने दिन इसी तरह इन्तज़ार करना होगा। फिर जहाँ वे लोग जमा थे, वह न तो कोई पनाहघर था और न वहाँ उनके लिए खाना था और न सच्ची सहानुभूति ही थी। उनकी कठिनाइयोंका अन्दाज़ा एक इसी बातसे लगाया जा सकता है कि पानी तक उन्हें चौथाई मील पैदल चलकर एक नहरसे लाना पड़ता था। उपेक्षा, अभाव, दीनता और असहायताके इस वातावरणमें सान्त्वना पानेके लिए इसी पानीको वे कृतज्ञता और हसरतके साथ बार-बार पीते थे।

नहर पारकर हमारा क़ाफ़िला नदीके दाहिने किनारे-किनारे चलने लगा। नदीके बाएँ किनारेपर नहर-विभाग द्वारा बनाई गई अधपकी सड़क है, जिसपर मोटर चल सकती है।

पर दोनों ओरके अधिक यातायात की सुविधाके लिए नहर और नई सड़क तक जानेका रास्ता नहरकी दाहिनी ओरसे ही रखा गया है। इसी रास्तेपर हम धूलसे नहाते और लड़खड़ाते हुए नहरके किनारे-किनारे चले। रास्तेके दोनों ओर रंग-बिरंगे फूल तथा थूवर व गवारपाटेके पौधे थे, जिनपर काफ़िलोंके यातायातसे उड़नेवाली मिट्टी जम गई थी। माधोपुर-बाँधसे कुछ आगे जाकर हम मुड़े और रावी नदीपर आ गए, जिसे हमने डोंगियोंके एक पुल द्वारा पार किया। रावीपर जो नया पुल अब बन रहा है, वह इस जगहसे कुछ और ऊपर चलकर तथा माधोपुर-बाँधके बहुत नज़दीक है। यह पुल इस वर्ष बारिशके पूर्व ही बनकर तैयार हो जानेवाला था ; लेकिन जो थोड़ा-बहुत काम जाड़ोंमें हुआ था, मार्चमें हठात् बाढ़ आ जाने के कारण वह सब नष्ट हो गया।

रावीका पुल फ़ौजी यातायातके लिए तो सँकरा है ही, पर नागरिक यातायातके लिए भी काफ़ी सँकरा है। गाड़ियाँ एक-एक करके ही इसे पार कर सकती हैं। प्रत्येक ओर सैकड़ों गाड़ियाँ होनेपर तो एक काफ़िलेको पुल पार करनेमें ही करीब-करीब ४ घण्टे लग जाते हैं। और सड़कका कठूआ-जम्मूवाला

भाग तो दिन छिपते ही बन्द हो जाता है। पुल तो यातायातके लिए दिनके तीन बजे ही बन्द हो जाता है। इस वजहसे सवारियोंको अक्सर रात-भर वहीं ठहरना पड़ता है।

हमारी खुशकिस्मती थी कि हम छोटे काफ़िलेमें थे। शामको करीब ८ बजे ही हम पुलके पास पहुँच गए थे; पर एक खचर-कम्पनीके पार होनेके बाद रातके कहीं १० बजे जाकर हम पुल पार कर पाए। थोड़ी देर बाद हम कठूआ पहुँचे, जो सीमान्तका कस्बा है और जहाँ तहसीलका दफ़्तर भी है। चुंगीकी चौकी देखकर सहसा विश्वास हो जाता है कि अब किसी देशी रियासतमें पहुँच गए। भूरे पत्थरके कलाहीन कुछ मकान ही इसकी शान थे। एक गन्दा-सा बाज़ार था, जिसमें जगह-जगह ढाबे और हलवाईकी दुकानें थीं। इनपर काफ़ी भीड़ थी, फिर भी जैसे ये अपनी बढ़ी हुई महत्तासे अपरिचित-से दीख पड़ते थे। कठूआकी चुंगीकी चौकी, नागरिक यातायातके लिए दूसरा सँकरा रास्ता था—जैसा कि मैंने लौटते समय देखा और अक्सर यात्रियोंको इससे पार होनेमें भी एक रात सड़कपर ही बितानी पड़ती है।

जम्मू-सड़कसे भी कम अच्छी दूसरी सड़क कठूआसे बसोहली तक जाती है, जहाँके राजोंकी छत्रछायामें पहाड़ी चित्रकलाकी वह शैली, जो बसोहली-कलम कहलाती है, फली-फूली। यात्रियों और चित्रोंके विदेशी संग्रहकर्त्ताओंकी बाढ़के कारण यहाँकी कला-निधि लुट-सी गई है। अब तो कला-कृतियोंके नामपर कुछ हल्की चीज़ें या नक़लें ही मिलती हैं। किसी समय जम्मू-क्षेत्र अनेक प्रकारकी कलाओं तथा दस्तकारियोंका केन्द्र था; लेकिन उचित अवसर तथा प्रोत्साहनके अभावमें धीरे-धीरे सब नष्ट हो गई। जम्मूकी सरकारी प्रदर्शनी और संग्रहालयमें वहाँकी सुन्दर कलाओंमें से एकका भी नमूना न पाकर मुझे बड़ा अफ़सोस हुआ। वहाँ थीं बस कश्मीरकी काठ और ऊनकी दस्तकारीकी कुछ साधारण चीज़ें और ये रंगीन पत्थरोंके कुछ सामान, जो हिन्दुस्तानके किसी भी शहरमें कश्मीरी चीज़ोंकी किसी भी दुकानपर मिल सकते हैं।

कठूआसे सांभा तीस मील है और सांभासे जम्मू और पचीस मील। सांभाके ज़रा आगे जाकर ही उज्ज नदी और देग-नालेके बीचसे जो मौजूदा सड़क गई है, वह पाकिस्तानकी सीमाके बहुत नज़दीक होकर गुज़री है—कुछ स्थानोंपर तो यह पाकिस्तानी सीमान्तसे दो मीलसे भी कम दूरीपर है। यहाँ पर प्राकृतिक दृश्यकी समानता और सड़क बनानेवालोंकी चहल-पहलके बावजूद भी वीरानगी और ध्वंसका भान हो सकता था। लगभग हर फर्लांगपर सड़कके किनारे सशस्त्र पहरेदार खड़े थे और उनके बीच-बीचमें मद्रास-सैपर्स (सापरमैना) के हथियारबन्द आदमी थे। इस पंक्ति और सीमान्तके बीचमें गाँव-पर-गाँव उजड़े हुए मिले। वहाँका सूनापन—सजीव भय और निराशाकी वह शान्ति—श्मशानसे भी अधिक डरावना मालूम हो रहा था। इनमें से अधिकांश गाँवोंको सीमान्तके उस पार-वालोंके अमानुषिक हमले, अग्निकांड, हत्या, बलात्कार और लूट आदिके कटु अनुभव हो चुके थे। अब जब कि इस सड़कपर कड़ा फ़ौजी पहरा है और दोनों ओर फ़ौजी चौकियाँ एवं छावनियाँ हैं, तो सड़क काफी सुरक्षित है और कोई आक्रमणकारी आनेका साहस नहीं कर सकता। फिर भी इधरके गाँवोंकी या चारेकी टोहमें विचरनेवाले उनके गाय-बैलों और भेड़-बकरियोंकी सम्पूर्ण सुरक्षाकी गारण्टी नहीं की जा सकती। आगे बढ़नेपर दाहिनी ओर पीरपंजालकी हिमाच्छादित चोटियोंके सिलसिलेने, जो कुलूसे बनिहाल और आगे पुंछ तक चला गया है, मानो हिमकी एक कनातका-सा दृश्य उपस्थित कर दिया। इस महान, गंभीर, शान्त और शाही-सौन्दर्यसे हटकर जब आँखें बाईं ओर मुड़ती हैं, तो क्षोभ, हैरत और दुःखसे भरा सूनापन उसे सहसा उस विभाजनकी कड़वी याद दिला देता है, जो एक बहुत बड़ा पाप और बलात्कार जान पड़ता है। यहीं आकर ऐसा लगता है कि कश्मीरकी समस्या इन्सान की समस्या है, जिसके केवल आर्थिक या सैनिक पहलूको ही पत्रोंने अधिक महत्व दे दिया है।

दोपहरको करीब १ बजे हमारा काफ़िला जम्मूकी छावनी सतवारी पहुँचा। यहाँसे हमारी ट्रक सुरक्षित क्षेत्रमें प्रवेश करती थी, अतः मुझे उतरकर अपना रास्ता नापना पड़ा। ट्रकसे नीचे कूद पड़ा और अपना बोरिया-बँधना कन्धेपर रख एक जगह कुछ छाया देखकर खड़ा हो गया। काफ़िला आगे बढ़कर कँटीले तारोंके एक घेरेमें जा खड़ा हुआ। अब मैं जम्मूमें था।

मैं जम्मूमें था, मगर जम्मू अभी भी यहाँसे चार मील दूर था। सामनेकी पहाड़ीपर स्थित रघुनाथ-मन्दिरकी हरियालीसे घिरी सर्पाकार चली गई सीढ़ियाँ दिखाई दे रही थीं। अप्रैल महीनेका सूरज पूरी तेज़ीके साथ चमक रहा था। किसी फ़ौजी

गाड़ीमें जानेके आसार नज़र नहीं आ रहे थे और नागरिक यातायातका तो कहीं नाम भी न था। कीट्सकी कविताके सैलानी शैतान बालककी भाँति मैं भी थोड़ी देर भौंचक खड़ा रहा।

इसकी ज़्यादा चिन्ता न करना ही इसका एकमात्र हल हुआ। मैं पासके वृक्षके पास गया और अपना झोला उतारकर नीचे रखा और पेड़का सहारा लेकर झोलेपर बैठ गया। सोचा, बैठने और इधर-उधर देखनेका समय मिला, तो कदाचित् चिन्ताएँ धीरे-धीरे दूर हो जायँगी। लेकिन यह इतना आसान नहीं था, जितना कि मालूम होता था। इसी समय भारतीय फ़ौजके (आर्डनेंस-कोरके) दो अफ़सर, जो उधरसे निकल रहे थे, रुके और एक क्षण मेरी ओर देखा। फिर वे मेरे पास आए और मुझसे पूछा कि मैं वहाँ क्या कर रहा हूँ?

मैंने कहा—'वैसे ही इन्तज़ार कर रहा हूँ।'

'किसका इन्तज़ार?'

मैंने कहा—'खास किसीका नहीं। जो आ जाय।'

दोनों अफ़सर ज़रा असमंजसमें पड़े। मुझ-जैसे सीधे-सादे व्यक्तिपर सन्देह करनेका कर्त्तव्य जैसे उन्हें अप्रीतिकर लग रहा हो, ऐसी भंगिमामें उन्होंने पूछा—'लेकिन आप यहाँ पहुँचे कैसे?'

इसपर मैंने फ़ौजी गाड़ीसे सफ़र करनेका युद्ध-विभागका परवाना उन्हें दिखाया। तब उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मैं भी जम्मूका कोई शरणार्थी हूँ? मैंने जवाब दिया, नहीं। इसपर उन्होंने एक विशिष्ट अर्थपूर्ण दृष्टिसे एक-दूसरेकी ओर देखा और मुझसे पूछा कि तब मैं जम्मू कैसे आया?

इसपर मैंने मज़ाक यहीं खत्म करनेका निश्चयकर उनसे कहा—'मैं भी फ़ौजसे छुट्टी पाया हुआ एक अफ़सर हूँ और वैसे ही घूमने निकला हूँ और घटनावश कुछ मित्र अफ़सरोंसे मिलनेकी भी उम्मीद करता हूँ, जो यहीं कहीं जम्मूमें होंगे। और सच तो यह है कि कुछ अफ़सरोंकी पत्नियोंने मुझे कहा था कि यदि मैं उनके पतियोंसे मिल सकूँ, तो कुछ व्यक्तिगत समाचार उनके पास पहुँचा दूँ। मेरा खयाल है कि मुझे इन अफ़सरोंका पता लगानेके लिए ऐडमिनिस्ट्रेटिव-कमाण्डरके दफ़्तरमें जाना चाहिए।'

उन्होंने कहा—'हूँ। अच्छा, ज़रा हमें उनके सन्देश तो दिखाइए, शायद हम स्वयं ही उन्हें पहुँचा सकें।'

मैंने अपनी जेबमें से कुछ पत्र निकाले और उन्हें दिखलाए। जब उन्होंने एक ब्रिगेडियरके नामका एक खत देखा, तो ज़रा चौंके। ब्रिगेडियरके खतमें मेरा परिचय करवाया गया था, ताकि अगर मैं कहीं अटक जाऊँ या आगे मोर्चेपर जानेकी संभावना हो, तो उनसे सहायता मिल सके।

उन्होंने कहा—'लेकिन चिट्ठियाँ तो सब बन्द हैं।'

मैंने कहा—'और आप क्या समझते थे?'

अन्ततः मैं ऐडमिनिस्ट्रेटिव-कमाण्डरके दफ़्तरमें ले जाया गया, जो सौभाग्यसे बहुत दूर नहीं था। थोड़ी-सी बातचीतके बाद यहाँसे मुझे शहर जानेकी इजाज़त मिली, जहाँ मेरे कई पुराने मित्र थे। और ज़्यादा उल्लेखनीय बात तो यह है कि मुझे एक ताँगा भी मिल गया!

जम्मूमें सुरक्षाकी व्यवस्था बहुत अच्छी थी। यानी एक बिना परवानेके नागरिकके लिए और खास तौरसे जिसके पास केमरा हो, रास्ता चलना मुश्किल हो रहा था। बादके पाँच दिनोंमें जब-जब मैं सतवारी छावनी गया, तब-तब कम-से-कम एक बार मुझे रोककर फ़ौजी पुलिसने अथवा उधरसे गुज़रनेवाले अफ़सरोंने पूछ-ताछ ज़रूर की। जम्मू-कश्मीरकी फ़ौजी कमानके सदर दफ़्तर तक पहुँचना तो और भी टेढ़ी खीर थी। किसी तरह धीरे-धीरे मैंने अपने कई पुराने मित्रोंको ढूँढ़ निकाला और रहने आदिकी कुछ व्यवस्था कर सका।

जम्मूका नज़ारा बड़ा विचित्र था। साधारणतया भी जम्मूका जन-समुदाय एक कम विचित्र चीज़ नहीं। उसमें डोगरा, सिख, पंजाबी, कश्मीरी और कई प्रकारके पहाड़ियोंका अजीब-सा मिश्रण होता है। इनके चेहरोंपर के विभिन्न प्रकारके भाव इनके वर्त्तमान और अतीतके कार्यों एवं घटनाओंका खासा आभास दे रहे थे। एक ओर तो लोगोंके चेहरोंपर पिछले कुछ महीनोंके बीभत्स अनुभवोंकी छाया थी—कड़वाहट और प्रतिशोध, शोक और पस्त-हिम्मती, चिन्ता और गहरी निराशाकी छाप—और दूसरी ओर वे जोशीले और देदीप्यमान चेहरे थे, जिनपर उत्साह, शान्ति और दृढ़ संकल्प, चालाकी और घुन्नापन, आत्म-विज्ञापन और भड़भड़ियापन, लालच और छिछोरापन आदिके भाव परिलक्षित थे। जम्मू अभी हालकी बीभत्स घटनाओंसे उबरता हुआ नगर ही न था, बल्कि सहसा अगुआ दस्तोंका खास अड्डा भी बन गया था। ऐसा होनेका फल भी उसे भोगना पड़ा। कस्बेमें जानेपर मुझे वे

मोहल्ले दिखाए गए, जो घेर लिए गए थे, जहाँपर अवरोध खड़े किए गए थे और जहाँपर जमकर भीषण लड़ाइयाँ हुई थीं। बहादुरी और भलाईके कामोंके किस्से मुझे सुनाए गए और गलियोंमें हिन्दू-मुसलमानों द्वारा किए गए जघन्य और भीषण अत्याचारोंकी कहानियाँ भी सुनाई गईं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि आक्रमणकारियों द्वारा नगरके जीवनकी शान्ति भंग किए जानेके बाद कुछ समय तक तो चारों ओर ऐसी अराजकता और दंगों-हंगामोंका ज़ोर रहा कि प्रत्येक जातिने वर्णनातीत दुष्कर्मों द्वारा अपने नामको कलंकित किया। इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि सारी अशान्तिकी सृष्टि आक्रमण-कारियों द्वारा ही नहीं की गई थी, बल्कि स्थानीय गुण्डों, षड्यंत्र-कारियों और धर्मान्धोंका भी उसमें काफ़ी हाथ था। मैं इसे भारत-सरकारके प्रकाशन-विभागका दोष और भारतीय पत्रोंकी बहुत बड़ी चूक मानता हूँ कि उन्होंने या तो इस पहलू की एकदम उपेक्षा की या इसकी अहमियतको इस प्रकार घटाकर रखा कि कश्मीरकी स्थितिके बारेमें भारतीय जनताके सामने एक भ्रामक चित्र आया। कश्मीरकी समस्याका अधिक गहरा और व्यापक रूप—एक निरंकुश, स्वेच्छाचारी और अत्याचारी सामन्तशाही व्यवस्थाके विरुद्ध शोषित और दलित जनताके विद्रोहका चित्र—उसमें छिप ही गया।

शेख अब्दुल्लाके नेतृत्वका आधार अन्तर्जातीय है और कश्मीरके बहुसंख्यक मुसलमान उनके साथ हैं, और वे हिन्दुस्तान के ही साथ रहना चाहते हैं। लेकिन हमें इस सत्यकी भी अनदेखी नहीं करनी चाहिए कि हिन्दुओंमें—कश्मीरी और डोगरा हिन्दुओंमें—भी ऐसे लोग हैं, जो कश्मीरको 'स्वतंत्र' रखनेके नामपर कश्मीरमें सामन्तशाही सत्ता बनाए रखनेका स्वप्न अब भी देखते हैं, जिसके सहारे वे पहलेकी भाँति अधिकारों और सुविधाओंका उपभोग कर सकें। ऐसे लोगोंके कार्योंकी ओर विशेष ध्यान आकृष्ट किए बिना हम इस समय कश्मीरमें हो रहे जनतांत्रिक पुनर्संगठनकी गतिको बढ़ा नहीं सकते। जब तक उनकी शक्ति बनी है, तब तक केवल पत्रोंमें बन्दूक कन्धेपर लिए और कतार लगाए खड़े कश्मीरी स्त्रियोंके फोटो छाप देनेसे कुछ न होगा—वरन् ये फोटो केवल एक तन्द्राजनक नशेका काम करेंगे। हिन्दुस्तानका कर्त्तव्य कश्मीरको सैनिक सहायता देने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इस जनतांत्रिक क्रान्तिमें साहसपूर्ण सहयोग देना भी उसका कर्त्तव्य है—और यह सहयोग भारत-सरकारका नहीं, भारतीय जनताका फ़र्ज़ है, जिसे वह तब तक अच्छी तरह निबाह नहीं सकती, जब तक कि वह उस सड़ी-गली समाज-व्यवस्थासे, जिसमें वह बँधी रहती है, विरक्त होकर उसे आमूल बदल डालनेको कटिबद्ध नहीं हो जाती।

भारतीय सेना जम्मूमें बड़ी लोकप्रिय है। हम यह भी कह सकते हैं कि जहाँ पुराना नारा था 'भर्त्ती होकर दुनियाकी सैर करो,' वहाँ अब इस रूपमें कहा जा सकता है कि 'भर्त्ती होकर खातिर कराओ!' नागरिकों, तरह-तरहकी सेवा-समितियों, स्त्रियों के क्लबों आदिमें अफ़सरों और सिपाहियोंको चाय-पार्टियाँ, भोज, गार्डन-पार्टियाँ देने और नाटक-तमाशे दिखानेकी होड़ लगी हुई थी—यद्यपि नाटकोंमें तो कलाकी अपेक्षा सद्भावना ही अधिक थी!

जहाँ पहले सेना जनताके साथ सम्पर्क स्थापित करनेके लिए उसे तमाशे आदि दिखाया करती थी, वहाँ अब जनता सेनाका मनोरंजन करती है। इसका कारण यह उतना नहीं है कि जम्मूकी भारतीय सेनाको राष्ट्रीय सेना समझा जाने लगा है, जितना यह तात्कालिक बोध कि जम्मूकी छावनियोंके सिपाही ही उन्हें सुरक्षा दे सके हैं। शायद इसीलिए मेज़बानोंमें प्रायः मध्य अथवा व्यापारी वर्गके लोग होते हैं, जिन्हें जानकी सुरक्षासे अधिक स्वार्थोंकी और पूँजीकी सुरक्षाकी चिन्ता होती है। यहाँ स्त्रियोंकी उन सहायता-समितियोंका उल्लेख अवश्य आदरपूर्वक करना चाहिए, जिन्होंने शरणार्थियोंकी सहायता और बसाईका काम सच्ची सेवाकी भावनासे और उत्साहके साथ किया—अनुभव उन्हें नहीं था, लेकिन अनुभवकी कमीको उन्होंने लगनसे पूरा कर दिया।

इधर-उधर मिलने-जुलनेके बीच जब भी मुझे समय मिलता, मैं इधर-उधर चक्कर लगाता और वहाँकी सामान्य स्थिति और शरणार्थियोंकी सहायताके लिए नए खुलनेवाले कैम्पोंके कार्मों एवं स्थितियोंकी जानकारी प्राप्त करता। मैं स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्तियों तथा लोकप्रिय सरकारके मंत्रियोंसे भी मिला। जिन ब्रिगेडियरसे मैं मिलना चाहता था, वे मोर्चेपर गए हुए थे, इसलिए घूमनेके लिए मुझे अपने ही साधनोंपर निर्भर करना पड़ा। मैंने बड़ी मुश्किलसे आगे जानेकी कुछ व्यवस्था की थी कि भारतीय सेनाके रजौरी ले लेनेका समाचार मिला। इस समाचारसे बड़ी खुशी हुई; क्योंकि यह वैशाखीके दिन—नव संवत्सरीके दिन—आया था, और वह दिन यों भी जम्मूमें बड़ा

पर्व है और बड़ी शानके साथ मनाया जाता है। उस दिन केवल विजयकी सूचना मिली थी, आक्रमणकारियों द्वारा किए गए अत्याचारों और विनाशका विस्तृत विवरण प्राप्त नहीं हुआ था। दूसरे दिन भारतीय जनताने उस नृशंसताका पूरा हाल जाना—उन बीभत्स विवरणोंकी चर्चा यहाँ अनावश्यक है। वैशाखीकी शामको जब मैं जम्मू-रेडियो-स्टेशनपर अपने पुराने लेखक-बन्धु श्री राजेन्द्र सिंह वेदीसे मिलने गया और उन्होंने रेडियोपर कुछ बोलनेका आग्रह किया, तो मैं बिना तैयारीके कुछ-न-कुछ कह ही गया :

"दिन आते हैं और चले जाते हैं, और अपने-अपने छोटे-बड़े दायरोंमें बँधे हुए हम—अपनी छोटी-छोटी मुश्किलों या छोटी-छोटी सुविधाओंसे उलझते हुए हम—इस बातका ध्यान नहीं रखते कि कौन-से दिनकी क्या अहमियत रही। आज मैं सोचता हूँ, यह दिन क्या बस नए वर्षका पहला दिन होनेके अलावा और कोई मोल नहीं रखता? नया वर्ष तो हर साल आता है, पर इस सालके इस पहले दिनका और ऐसे दिनोंसे क्या अधिक महत्व नहीं है?

"इसके जवाबमें सबसे पहले मुझे ध्यान होता है कि यह हमारी स्वतंत्रताके बादकी पहली वैशाखी है—हमारा पहला स्वाधीन वर्षारम्भ। यों तो इतना ही काफ़ी होना चाहिए। पर उससे आगे मुझे ध्यान होता है कि इस स्वाधीन नए वर्षमें जहाँ हम गौरवसे सिर ऊँचा करते हैं, वहाँ हमें कमर कसकर, कंधे झुकाकर काममें भी जुटना है, क्योंकि आज हम स्वतंत्र हैं, तो बैठ रहनेके लिए नहीं, अपने देश और अपने जीवनका नया निर्माण करनेके लिए स्वतंत्र हैं। आज जो राष्ट्रीय सप्ताह पूरा हुआ है, वह वर्षोंसे राष्ट्रीय निर्माणका हफ़्ता रहा है, जिसमें हम अपनी ज़िम्मेदारियोंको पूरा करनेकी नई सौगंध उठाते हैं। उड़ीसामें आज हिंदके प्रधान-मंत्रीने एक नए नगर की नींव रखी है। मैं समझता हूँ कि यह बात उस नए गौरव की ओर इशारा करती है, जो इस वर्षको मिला है। कल रजौरीमें हमारी सेनाओंने जो विजय पाई है, वह भी हमारे भविष्यका एक संकेत है। नई विजय, नया निर्माण, नया उद्योग—मैं समझता हूँ कि नए वर्षके ये तीन बुनियादी संदेश मान लिए जा सकते हैं।

"मैं लेखक हूँ। मेरे लिए संस्कृति और साहित्यका, अपने अदब और अपने तमद्दुनका, काम पहले आता है, राजनीति और सयासियातका पीछे। और मैं मानता आया हूँ कि देशके हर आदमीके लिए ऐसा ही होना चाहिए; क्योंकि संस्कृति नित्य है, हमेशा रहती है, बदलती हुई भी हमेशा हमारे आसपास बनी रहती है और हमें पोसती है, जैसे कि हवा हमेशा बहती हुई भी हमारे प्राणोंका सहारा बनी रहती है। राजनीतिका हमारे जीवनमें वह स्थान नहीं है। पर हम उसे भी न भुला सकते हैं, न उसकी अनदेखी कर सकते हैं—खासकर आजकल के जमानेमें, जब कि हमें हर तरफ़ निर्माण करना है, सब-कुछ बनाना है। हमें विद्या चाहिए, हमें संस्कृति चाहिए, हमें वह कला चाहिए, जो दुनियाकी कलाओंमें स्थान पावे और हमारा नाम उज्ज्वल करे। इसी तरह हमें सेहत चाहिए, हमें अच्छे घर चाहिएँ, अच्छे साफ़-सुथरे शहर और जीवनकी और कई सहूलियतें भी। लेकिन सबसे बढ़कर हमें क्या चाहिए? हमें चाहिए पूरी और सुरक्षित स्वतंत्रता—आज़ादी, जो मुकम्मिल भी हो और मुस्तकिल भी, जिसपर किसी तरहका खतरा न हो। हमें चाहिए वह साफ़ खुली हवा, जिसे कोई ज़हरीली साँस कभी गन्दा न कर सके और जिसमें हम भी चलें, हमारे आदर्श भी।

"आज, वैशाखीके दिन, हम उसी स्वतंत्रता और उसी मुक्त वायुमण्डलका ध्यान करते हैं। दिन शुभ है, सब शकुन भी शुभ और हौसला बढ़ानेवाले हैं। हमें विश्वास है कि इस नए वर्षमें हम अपने उस शुभ आदर्शके और निकट आयँगे। और अगले सालकी वैशाखीके समय जब पीछे देखेंगे, तो यह मान सकेंगे कि आजका दिन सचमुच एक नये स्वाधीन संवत्की पहली वर्षगाँठ थी। वैशाखी-जैसे उत्सव ऐसे उत्सव हैं, जिन्हें सब कोई मना सकते हैं और मनाते हैं, और साथ मनाए हुए उत्सव केवल खुशीके बायस नहीं होते, उनकी खास खूबी यह है कि यह हमारी जनताके अलग-अलग अंगोंको एक-दूसरेके नज़दीक लाते हैं, देशको एक बनाते हैं, जो आजकी बड़ी ज़रूरत है। मुझे विश्वास है कि आज आप सब मेरे साथ स्वर मिलाकर कहेंगे कि स्वाधीन भारतकी यह पहली वैशाखी आज़ादीकी ही नहीं, एकताकी भी वर्षगाँठ हो।"

उस दिन जम्मूमें ऐसे लोगोंकी कमी न थी, जिनका विश्वास था कि जम्मूकी सड़क ही आज़ादी और अपने आदर्शों की रक्षाकी सड़क है। शायद वह है भी। कम-से-कम उनकी रक्षा करनेकी हमारे निश्चय और सामर्थ्यकी कसौटी तो वह है ही। कश्मीरकी पेचीदा समस्याको हम किस तरह सुलझाते हैं, इसीसे अन्य कई क्षेत्रोंमें हमारी योग्यताकी परख हो जायगी।

दक्षिण-आफ्रिकाके प्रवासी भारतीय

स्वामी भवानीदयाल संन्यासी

यों तो दक्षिण-आफ्रिकाके प्रवासी भारतीयोंका सारा इतिहास ही संकटों और संघर्षोंका इतिहास है, पर इधर जबसे डा० मलानके हाथमें सत्ताकी बागडोर आई है, उनकी स्थिति और भी त्रासदायक हो गई है। वहांके राजनीतिक खिलाड़ियों के लिए प्रवासी भारतीय फुटबालका काम देते हैं। जो जितना ही कसकर उसपर ठोकर लगा सकता है, राजनीतिक क्षेत्रमें वह उतना ही पक्का खिलाड़ी समझा जाता है। विश्वबन्धुत्व, लोकतंत्र और मानव-स्वाधीनताका राग अलापनेवाले जनरल स्मट्स इसीलिए 'घेटो-क़ानून' तक पास कर सकते हैं, ताकि वहांके श्वेताङ्गोंको विश्वास हो जाय कि प्रवासी भारतीयोंको ठोकर लगाने और गिरानेमें उनका मुकाबिला और कौन कर सकता है? पर डा० मलान तो अब उनको भी मात करनेके लिए भारतीयोंकी हस्ती ही मिटानेपर तुल गए हैं। इससे प्रवासी भारतीयोंका भविष्य अन्धकारपूर्ण हो गया है और उनको अपना निर्दिष्ट मार्ग दिखाई नहीं पड़ रहा है।

जब पिछले चुनावमें स्मट्सका सितारा डूबा और मलानने अपना मंत्रिमण्डल बनाया, तो प्रवासी भारतीयोंके हृदयमें एक नई आशाका उदय हो आया था। कांग्रेस-नेताओंने मलानकी विजयपर खुशीका इज़हार किया। सत्याग्रह अनिश्चित कालके लिए स्थगित कर दिया और कांग्रेसकी ओरसे एक तार भेजकर मलानको बधाई भी दी गई, यद्यपि उनकी यह कार्रवाई अधिकांश प्रवासी भारतीयोंकी दृष्टिमें आपत्तिजनक प्रतीत हुई थी और इस बातको लेकर कांग्रेस-नेताओंके खिलाफ़ जनतामें काफ़ी चर्चा भी चली थी। पर असलमें कांग्रेस-नेताओंकी आशा निराधार नहीं थी। मलान और उनके सहकर्मी प्रवासी भारतीयोंके विरुद्ध जो विष-वमन कर रहे थे, उसे उन्होंने श्वेताङ्गोंसे वोट प्राप्त करनेका नारा ही समझा। उनको विश्वास था कि सत्ता हाथमें आ जानेपर मलानपर गम्भीर ज़िम्मेदारी आ जायगी और वे उसी प्रकार अपनी राजनीतिज्ञता एवं दूरदर्शिता का परिचय देंगे, जैसा कि सन् १९२६ में दे भी चुके हैं। उस समय भी जनरल स्मट्सकी करतूतसे भारत और दक्षिण-आफ्रिका के बीच काफ़ी मनोमालिन्य हो गया था। सन् १९२४ में ही स्मट्सने 'घेटो-एक्ट' बनानेका मनसूबा बाँध लिया था। पर कानून बनानेसे पहले ही सन् १९२५ के चुनावमें वे बुरी तरह पछाड़ खा गए। उनका बिल पार्लमेण्टमें विचाराधीन था। जब जनरल हर्टज़ोगकी सरकार बनी और डा० मलान आन्तरिक मन्त्री चुने गए, तो उन्होंने भारतसे वैर ठानना उचित नहीं समझा और केपटाउनमें गोलमेज़-कान्फ्रेन्सकी आयोजना करके सन् १९२७ के आरम्भमें भारतसे सन्धि कर डाली, जो 'केपटाउन-एग्रिमेण्ट'के नामसे प्रसिद्ध है।

इसलिए कांग्रेस-नेताओंका विचार निराधार न था और इसलिए उन्होंने मलानको तार देकर अपनी खुशीका इज़हार किया था, जिसपर अभी उस दिन यूनियन-पार्लमेण्टमें स्मट्सने व्यंग कसते हुए कहा था कि कांग्रेस-नेताओंको आशा थी कि उनकी चापलूसीसे डा० मलान खुश हो जायँगे और उनके साथ रियायत करेंगे। इसी खयालसे उन्होंने तार दिया था, लेकिन अब उनका भ्रम मिट गया होगा। स्मट्सने यहाँ तक कह डाला कि डा० मलानने भारतीयोंके विरुद्ध जो उग्र नीति ग्रहण की है, उसके लिए वे स्वयं नहीं, बल्कि भारतीय कांग्रेस-नेता ही अपराधी हैं! उनके दिमागकी थाह ही नहीं लगती है। वे श्वेताङ्गोंके साथ बराबरीके दर्जेका दावा कर रहे हैं। स्मट्स की इस ढिठाईपर मलान बहुत प्रसन्न हुए और बोले कि 'फील्ड-मार्शल स्मट्सकी बात सोलह आना सत्य है! सन् १९२६ में भारतीय नेता कुछ और ही प्रकृतिके थे और इस समयके नेता उनसे नितांत भिन्न हैं। वे गम्भीर, ज़िम्मेदार और शान्तिप्रिय थे, जब कि ये उच्छृङ्खल, ग़ैर ज़िम्मेदार और संघर्षके हिमायती हैं। इनसे कोई बातचीत करनेके लिए उनकी सरकार तैयार नहीं है।'

असल बात तो यह है कि प्रभुता पाकर मलानका ही स्वभाव बदल गया है—सन् १९२६ के मलान और आजके मलानमें कोई समता नहीं दिखाई देती है। आन्तरिक मन्त्री मलानने जितनी ज़िम्मेदारी और दूरदर्शिताका परिचय दिया था, प्रधान-मन्त्री मलान उतनी ही ग़ैरज़िम्मेदारी और अदूरदर्शितासे काम ले रहे हैं। सन् १९२६ में जिन भारतीय नेताओंसे मलानका पाला पड़ा था, उनमें इन पंक्तियोंका लेखक भी एक

हैं। वे मर-मिटनेको तैयार थे, पर सिद्धान्तसे समझौता करनेको नहीं। उनमें अधिकांश महात्मा गांधीके नेतृत्वमें काम कर चुके थे, इसलिए वे शान्त और गम्भीर थे और अकारण शोर-गुल मचाकर श्वेताङ्गोंको भड़काना उचित नहीं समझते थे। अब जिनके हाथमें कांग्रेसकी बागडोर है, वे सब नए राजनीतिक रँगरूट हैं। उनमें जवानीका जोश है और खूनमें गर्मी। दुर्भाग्यवश उनमें अनेक पक्के कम्युनिस्ट हैं। इसलिए वे ज़बानपर लगाम लगाना जानते ही नहीं। उनके उग्र भाषणोंका परिणाम यह हुआ है कि श्वेताङ्ग एकदम भड़क उठे हैं और उन्होंने कई हज़ार भारतीयोंको नौकरीसे मौकूफ कर दिया है। आज हज़ारों भारतीय बेकार बने बैठे हैं। उनके परिवार दाने-दानेके लिए तरस रहे हैं। इसलिए वे स्वभावतः कांग्रेस-नेताओंको कोसते हैं और अपनी दुर्गतिकी ज़िम्मेदारी उनपर थोप रहे हैं। वास्तवमें इसी कारण कांग्रेसकी लोकप्रियता इस समय बहुत-कुछ घट गई है और नरम-दलवालोंके 'नेटाल इण्डियन आर्गेनिजेशन' की शक्ति बढ़ती जा रही है।

राजनीतिमें अवस्थाके अनुसार व्यवस्था करना ही बुद्धिमानी है और ज़िम्मेदार नेताओंको तो बहुत सोच-समझकर सार्वजनिक भाषण करना चाहिए। सन् १९१३ में एक बार मैंने बापूसे पूछा था कि वे दक्षिण-अफ्रिकामें केवल अमुक-अमुक बातोंको लेकर क्यों सत्याग्रहकी लड़ाई चला रहे हैं? भारतीयोंकी सर्वव्याधियोंका एकमात्र उपचार है समानाधिकार। इसीको बापू अपनी मुख्य माँग क्यों नहीं बना लेते हैं? उनकी माँगोंमें तो पार्लमेण्टरी मताधिकार तक की चर्चा नहीं है। इस तरह छोटी-छोटी बातोंको लेकर लड़नेपर तो समानाधिकार तक पहुँचनेमें कई पीढ़ियों तक लड़ाई जारी रखनी पड़ेगी। मेरी बातपर बापू ठठाकर हँस पड़े और बोले कि यदि तुम्हारी सलाह मान ली जाय, तो प्रवासी भारतीयोंको बात बघारनेके सिवा और कुछ भी न मिलेगा। समानाधिकार माँगने और प्राप्त करनेका समय भी आयगा, पर अभी वह समय बहुत दूर है। उसके लिए धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करनी चाहिए। उस समय तो बापूकी बात मुझे अच्छी न लगी, क्योंकि मैं राजनीतिका नया खिलाड़ी था; पर ज्यों-ज्यों दक्षिण-आफ्रिकाकी राजनीतिक स्थितिका ज्ञान होता गया, त्यों-त्यों बापूके कथनकी सचाई मुझपर अधिकाधिक प्रकट होती गई।

डा० मलानने घेटो-एक्टके पूवार्द्धको तो क़ायम रखा है, किन्तु उत्तरार्द्धको यूनियन-पार्लमेण्टमें बहुमतसे रद्द कर डाला है। पूर्वार्द्ध ही मलानके लिए असली चीज़ है, जिसमें भारतीयोंको निर्धारित क्षेत्रमें ही बसनेको बाध्य किया जायगा। यद्यपि उसका दायरा नेटाल और ट्रान्सवाल तक ही महदूद है, पर मलान उसको केप-प्रान्तपर भी लागू कर देना चाहते हैं। इस तरह दक्षिण-आफ्रिकाका कोई भी प्रान्त पृथक्करणकी बीमारीसे बचा न रहेगा। क़ानूनके उत्तरार्द्धके अनुसार जो रद्द कर दिया गया, प्रवासी भारतीय वहाँके आदिम-निवासियोंकी भाँति अपने तीन श्वेताङ्ग प्रतिनिधि यूनियन-पार्लमेण्टमें भेज सकते थे। वहाँके भारतीय सदासे जातिगत प्रतिनिधित्वका विरोध करते आए हैं। वे श्वेताङ्गोंको यहाँ तक सहूलियत देनेको तैयार हैं कि जहाँ श्वेताङ्गोंको वयस्क मताधिकार प्राप्त है, वहाँ भारतीयोंके मताधिकारपर सम्पत्ति और शिक्षाकी पाबन्दी लगा दी जाय, ताकि भारतीय वोटरोंकी संख्या उनके मुक़ाबिलेमें नगण्य ही रहे। पर भारतीय संयुक्त निर्वाचनके सिवा पृथक् निर्वाचन-पद्धतिको कदापि स्वीकार नहीं कर सकते। भारतीयोंके विचारको अच्छी तरह जानते हुए भी जनरल स्मट्सने उनके लिए जातिगत पृथक् निर्वाचनके आधारपर प्रतिनिधित्वका ढोंग रचा था। १५० सदस्योंकी पार्लमेण्टमें भारतीयोंके ३ सदस्योंकी बिसात ही क्या? वहाँके शासन-विधानके अनुसार वे सदस्य भी श्वेताङ्ग ही होने चाहिएँ, भारतीयोंका तो पार्लमेण्टमें प्रवेश वर्जित ही है! भारतमें कुछ लोग इसे स्मट्सकी उदारता समझते हैं, पर प्रवासी भारतीय तो उनके हथकंडोंसे खूब वाक़िफ़ हैं। वे यदि जनरलके जालमें फँसकर पार्लमेण्टरी प्रतिनिधित्व मंजूर कर लेते, तो फिर सदाके लिए भारतके मुँहमें ताला लग जाता। स्मट्स एक गोलीसे दो चिड़ियाँ मारना चाहते थे। एक तो विश्वको यह बता देना कि किसी न किसी रूपमें भारतीयोंका यूनियन-पार्लमेण्टमें प्रतिनिधित्व है और दूसरी बात यह कि वे भविष्यमें दक्षिण-आफ्रिकाके मामलेमें भारतको दखल देनेसे रोक देना चाहते थे। नेटाल-सरकार और ब्रिटिश सरकारके आग्रहसे भारत-सरकारने वहाँ भारतीय मज़दूरोंको भेजा था, इसलिए उसका यह दावा है कि जब तक प्रवासी भारतीयोंको नागरिक अधिकार नहीं मिल जाता और उनको मताधिकारसे वंचित रखा जाता है, तब तक भारत-सरकारपर उनके स्वत्वोंकी रक्षाकी नैतिक ज़िम्मेदारी है और इसलिए उनकी तरफसे पैरवी करनेका उसे सम्पूर्ण अधिकार है।

यह बात स्मट्स, मलान आदि सभी श्वेताङ्गोंको बहुत खटक रही है। पर प्रवासी भारतीय इस प्रतिनिधित्वको अस्वीकार कर चुके हैं। उन्होंने घेटो-एक्ट पास होनेपर स्पष्ट घोषणा कर दी थी कि वे प्रतिनिधित्वसे वंचित रहना ही श्रेयस्कर समझते हैं, पर इस जातिगत प्रतिनिधित्वको कदापि स्वीकार नहीं कर सकते।

मलानकी प्रवृत्तिपर टीका करते हुए 'मैंचेस्टर गार्जियन'ने लिखा था कि 'दो साल हो गए, पर प्रवासी भारतीयोंने न तो जातिगत मताधिकारको ही स्वीकार किया और न आज तक घेटो-एक्टके उस अंशको उपयोगमें लाना ही उचित समझा। जब कि वे दूसरे ही जातिगत प्रतिनिधित्वको नमस्कार कर रहे थे, तो फिर उसको रद्द करनेकी ज़रूरत ही क्या थी?' उस दिन अपने बिलका मर्म समझाते हुए मलानने यूनियन-पार्लमेण्टमें कहा कि 'बाहरके लोग भारतीयोंके प्रतिनिधित्वके खतरेको समझ नहीं सकते और कहते हैं कि घेटो-क़ानूनके इस अंशको रद्द करनेकी क्या ज़रूरत थी? इस समय सरकारी और विरोधी दलके सदस्योंकी संख्या लगभग बराबर है—केवल चारके बहुमतसे हमारी पार्टी शासन कर रही है। यदि कहीं भारतीय क़ानूनके इस अंशसे लाभ उठावें और तीन प्रतिनिधि चुनकर भेज दें और भारतीय प्रतिनिधि नेटिवोंके प्रतिनिधियोंसे मिलकर यूनियन-पार्लमेण्टमें छः सदस्योंका एक गुट्ट बना लें, तो नतीजा क्या होगा? वे छः जिधर झुकेंगे, उसी पार्टीकी सरकार बन सकती है। वर्त्तमान परिस्थितिमें सारी सत्ता उन छः सदस्योंके गुट्टके हाथमें आ जायगी। अतएव इस खतरेको बने रहने देना हम हर्गिज बर्दाश्त नहीं कर सकते।'

मलानने पार्लमेण्टमें अपनी सरकारकी नीतिपर प्रकाश डालते हुए यह भी राय प्रकट की है कि उनकी सरकार गोल-मेज़-परिषद्में भारत-सरकारसे बातचीत करनेको तैयार है; पर वार्त्तालापका एकमात्र आधार होगा दक्षिण-आफ्रिकासे प्रवासी भारतीयोंका प्रत्यागमन! इसका साफ मतलब यह होता है कि वे किसी भी हालतमें भारतसे समझौता करनेको तैयार नहीं हैं। भारत-सरकारको क्या गरज़ पड़ी है कि वह दक्षिण-आफ्रिकाके प्रवासी भारतीयोंके स्वदेश-प्रत्यागमनका सिद्धान्त स्वीकार करे और इस दुष्कर्ममें यूनियन-सरकारसे सहयोग और उसकी सहायता करे। मलानने यह भी कहा कि सन् १९२७ और १९३२ की गोलमेज़-परिषदोंमें प्रत्यागमन ही चर्चाका मुख्य विषय था। पर उनका यह कथन सर्वथा निराधार है। 'एरियाज़ रिज़र्वेशन बिल'पर विचार-विनिमय करनेके अभिप्रायसे सन् १९२६-२७ की परिषद् हुई थी। सन् १९२७की संधिमें पृथक्करण-योजनाको दफ़ना दिया गया। यूनियन-सरकारको यह स्वीकार करना पड़ा कि प्रवासी भारतीय वहाँकी स्थायी आबादीका एक अंग हैं और उनके विकास एवं उत्कर्षके लिए यूनियन-सरकार पूर्णरूपेण ज़िम्मेदार है। हाँ, संधिमें एक धारा अवश्य थी, जिसमें कहा गया था कि जो भारतीय यूरोपियन ढंगसे रहना मंजूर करेंगे, उनको किसी भी क्षेत्रमें ज़मीन-मकान मोल लेने और बसनेका अधिकार होगा। पर जो यूरोपियन रहन-सहन पसन्द न करते हों, उनको स्वदेश लौट जाना चाहिए। सरकार उनको प्रत्यागमनके लिए मार्ग-व्यय देगी और ऊपरसे वहाँ बसनेके लिए २० पौण्ड अर्थात् २६५) रु० की सहायता भी।

सन् १९३२ में इस संधिपर पुनर्विचारके लिए दूसरी परिषद् हुई थी। संधिकी प्रत्यागमन-योजनाके अनुसार लगभग तीस हज़ार भारतीय स्वदेश लौट आए थे। उनकी यहाँ जो दुर्गति हुई, वह अकथनीय है। उनकी दशाकी जाँच करके मैंने एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी, जिसकी देश और विदेशोंमें बड़ी चर्चा रही। महात्मा गांधीसे लेकर देश-विदेशोंके सभी पत्रकारों ने उसपर अग्रलेख लिखे थे। उन सबको संकलित करके मैंने परिषद्से पहले एक और पुस्तक निकाल दी थी, जिसका नाम था—'प्रत्यागमनपर लोकमत'। सन् १९३२ की परिषद्में ख़ास कर इसी रिपोर्टपर चर्चा हुई और यूनियन-सरकारको मंजूर करना पड़ा कि प्रत्यागमनके लिए अब कोई गुंजाइश नहीं रही। हाँ, परिषद्में प्रत्यागमन-योजनाके बदले विदेश-प्रवास-योजना पर विचार हुआ था और यह निश्चय किया गया था कि भारत तथा यूनियन-सरकार एक कमीशन चुनेगी, जो संसारमें भ्रमण करके यह जाँच करेगा कि भारतकी बढ़ती हुई आबादीको बसानेके लिए संसारमें क्या कोई देश खाली है? और यदि है, तो वहाँ दक्षिण-आफ्रिकाके प्रवासी भारतीयोंके बसनेकी भी गुंजाइश हो सकती है या नहीं? इस प्रस्तावको कार्यान्वित करने से पूर्व यूनियन-सरकारने यह पता लगा लेना उचित समझा कि वहाँके प्रवासी भारतीय विदेशोंमें जाकर बसनेके लिए तैयार भी हैं या नहीं? यदि नहीं, तो फिर यूनियन-सरकारको क्या गरज़ पड़ी है कि वह भारतकी बढ़ती हुई आबादीके लिए देश खोजती

फिरे ? इसलिए कमीशन चुने जानेसे पहले यूनियन-सरकारने एक कमेटी बैठाई, जिसने जाँच-पड़ताल करके रिपोर्ट पेश की कि दक्षिण-आफ्रिकासे एक भी भारतीय विदेश जानेको तैयार नहीं है। इस प्रकार वह मामला जहाँ-का-तहाँ दब गया।

आजसे चौदह साल पूर्व जब यह सर्वथा निश्चित हो गया था कि वहाँके प्रवासी भारतीय न तो स्वदेश-प्रत्यागमन स्वीकार कर सकते हैं और न विदेश-बसावटकी योजना ही, तो फिर मलानका वही राग अलापना कहाँ तक व्यावहारिक है ? भारत वहाँके प्रवासी भारतीयोंकी संख्या घटाने अथवा उनकी हस्ती मिटानेमें मलानकी मदद नहीं कर सकता, यह तो स्पष्ट है। अतएव भारत और दक्षिण-आफ्रिकाकी सरकारोंमें परस्पर समझौतेकी कोई सूरत नज़र नहीं आती है। अब रहा संयुक्त राष्ट्र-संघ, सो दक्षिण-आफ्रिकाके प्रतिनिधि एरिक लौ उसे धमका ही चुके हैं कि प्रवासी भारतीयोंका प्रश्न उनका घरेलू प्रश्न है और उसमें राष्ट्र-संघको हस्तक्षेप करनेका कोई अधिकार नहीं है। फिर भी यदि राष्ट्र-संघ उनके घरेलू मामलेमें टाँग अड़ावेगा, तो उनका देश राष्ट्र-संघसे अलग हो जायगा! राष्ट्र-संघ इस समय कुछ शक्तियोंके हाथका खिलौना हो रहा है। सन् १९४६ में उसने दक्षिण-आफ्रिकाको प्रवासी भारतीयोंपर अत्याचार करनेका अपराधी ठहराया था और आदेश दिया था कि वह उन क़ानूनोंमें परिवर्त्तन करे, जो वर्ण-विद्वेषमूलक हैं और भारत-दक्षिण-आफ्रिकाकी संधियों तथा राष्ट्र-संघके चार्टरके प्रतिकूल हैं। पर जब स्मट्सने खुलमखुल्ला ऐलान कर दिया कि उनकी सरकार राष्ट्र-संघके आदेशकी उपेक्षा करना ही उचित समझती है, तो सन् १९४७ में जहाँ राष्ट्र-संघको दक्षिण-आफ्रिकाके प्रति कड़ा रुख अख्तियार करना चाहिए था, वहाँ उसने जिस निर्बलताका परिचय दिया, उससे एशिया तथा आफ्रिका-निवासियोंका विश्वास उसने खो दिया है। सन् १९४७ में भारतके प्रस्तावको दो-तिहाई बहुमत न मिलना राष्ट्र-संघकी पक्षपातपूर्ण नीतिका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

इधर हमें राष्ट्र-संघका काफ़ी अनुभव हो चुका है। पैलेस्टाइनका मामला खटाईमें पड़ा है और वहाँकी भूमि नर-रक्तसे सींची जा रही है। कश्मीरका मामला अधरमें लटक रहा है। हैदराबादके मामलेमें राष्ट्र-संघके सदस्योंने जिस मनोवृत्तिका परिचय दिया है, उससे यह नतीजा निकाल लेना अनुचित न होगा कि दक्षिण-आफ्रिकाके मामलेमें भी लीपापोतीके सिवा कोई ठोस निर्णय न होने पायगा। प्रवासी भारतीयोंको बड़ी आशा थी कि राष्ट्र-संघ उनके मानवी अधिकारोंकी रक्षा करनेमें सहायक होगा, पर उसका रंग-रवैया देखकर उनकी आशा चूर-चूर हो गई है। हम कई बार लिख चुके हैं कि भारतने पाकिस्तानको इस मामलेमें हिस्सेदार बनाकर भारी भूल की है। खबर है कि ज़फ़रुल्ला और एरिक लौमें परस्पर साँठ-गाँठ हो रही है और पाकिस्तानका हिन्दके साथ विश्वासघात कर बैठना कोई विस्मयकी बात न होगी। उस दिन एरिक लौने संघकी बैठकमें भारतीय प्रतिनिधिको निर्देश करके कहा था कि वे सिर्फ़ अपनी बातें करें, पाकिस्तानकी बात उसके प्रतिनिधिके लिए छोड़ दें! इस कथनके मर्मको समझ लेना कठिन नहीं है। राष्ट्र-संघसे कुछ आशा करना मृगतृष्णाके सिवा और कुछ नहीं। भारत आगे क्या कर सकेगा, यही प्रश्न है।

....तब

श्री रघुवीरसहाय

जब खुलेगा वह सबेरा
बंद है जिसमें अभी तक स्वप्न मेरा;
दीपके नीचे अँधेरा
कर चुका होगा उजालेका कठिन प्रतिकार,
सपने भूल जाना—
मैं तुम्हें संसार दूँगा!
अग्नि-सा आलोक होगा,
दूरसे जिसमें चमकता लोक होगा;
और तुमको शोक होगा।

बुझ गए दीपक प्रणयके रातके उस पार,
तब इस पार आना,
मैं उन्हें फिर बार दूँगा!
स्वर्गकी वे कल्पनाएँ
सिर न अपना विश्वके सम्मुख झुकाएँ,
और युगकी मान्यताएँ
यदि करें स्वीकार तेरा और मेरा प्यार,
तब तुम पास आना,
मैं तुम्हें भी प्यार दूँगा!

हम स्वतंत्र हैं !

श्री इन्दुमत कौशल

नीला स्कूलसे लौटी, तो उसका मुँह तमतमाया हुआ था। माँ कहीं देख न ले, इसलिए वह शीघ्रतासे पुस्तकें एक ओर पटक मुँह धोने लगी। उसकी माँ दीपा बैठी सिलाई कर रही थी। नीलाकी यह दशा देख कुछ बोली नहीं। वह सदासे ऐसी ही थी। उत्तेजनाको शान्त होने देती थी, तब कुछ पूछ-पाछ लेती थी।

नीला मुँह धो आई, फिर भी उसकी गहरी नीली आँखें और गहरी हो उठी थीं। छल-छल करता हुआ भीतरका प्रवाह अब बरसा कि तब, ऐसा ही दिखाई दे रहा था। अतः दीपा का पूछना अनिवार्य हो उठा। यह चौदह सालकी बालिका, जीवनके थपेड़ोंसे अभीसे टकराने लग गई! दीपाने पूछा—'बेटी, क्या बात है; आज तुम ऐसी क्यों हो?'

'कुछ नहीं, माँ!'

'तुझे मालूम है नीली कि यदि तू बताना न चाहेगी, तो मैं बहुत आग्रह न करूँगी। पर मैं सोचती हूँ कि बता देनेसे शायद तेरी उत्तेजना कुछ कम हो।'

नीलाके धीरजका बाँध टूट गया। वह कटे वृक्षके समान माँकी गोदीमें मुँह छिपाकर फफक उठी। माँका हृदय भी आर्त भावसे क्रन्दन कर उठा। उसने धीरे-धीरे बेटीके सिरको सहलाना आरम्भ किया। भरे हुए स्वरमें बोली—'बोल न।'

पर नीलाका सिसकना रुकता ही न था। उसको लगता था, जैसे दुःखसे छाती फट जायगी। ज़रा मन कड़ाकर उसने कहना शुरू किया—'मैं जब स्कूलसे लौटती हूँ, तो प्रतिदिन एक लड़का संग-संग हो लेता है। यह क्रम कुछ दिनोंसे जारी है, पर मैं इसकी तनिक भी परवाह न करती थी। यदि मुझे कोई कुछ न कहे, तो मैं क्या सारे राहकी मालिक थोड़े ही हूँ। पर आज वह बहुत पास आ गया और छूटते ही कहने लगा—'देखोजी, यह पेबन्द लगी हुई साड़ी मत पहना करो। कहो तो हम नई साड़ी दिलवा दें?' मुझसे उसकी यह उच्छृंखलता सहन न हुई। उसके स्वरसे मैं यह न जान पाई कि वह वास्तवमें मेरी सहायता करना चाहता है, या किसी चीज़के बदलेमें यह दयाकी भीख देना चाहता है। मैंने उसके मुँहपर अपनी दृष्टि गड़ा दी। वह जैसे अब-तब करने लगा। मैं केवल इतना ही कह पाई कि "आपके दिलमें शरणार्थियोंके प्रति यदि इतनी सहानुभूति है, तो जाइए कैम्पमें कुछ साड़ियाँ लाकर दे दीजिएगा। मैं पेबन्द-वाली साड़ी पहनूँ या नई, आपको इससे कोई मतलब नहीं।" वह ढीठ न था, चला गया। पर...पर मैं क्या करूँ, माँ? मुझे तो स्कूल जाना ही है। फिर यदि वह कुछ छेड़-छाड़ करे, तब? और न भी करे, तो भी मेरा दिल फटा जा रहा है, माँ! मैं क्या करूँ...क्या करूँ...?'

'बेटी, धीरज धर। तेरे दिन हमेशा तो यही रहेंगे नहीं; जैसे पहले नहीं रहे। सब ठीक हो जायगा। तुझे क्या अपने गाँठे हुए कपड़ोंपर लज्जा आती है? मैं तो कल तेरे लिए धोती लाने गई थी, पर एक अच्छी धोती १०) में मिलती है। एक-दो शीघ्र ही जुटा दूँगी। बेटी, लोगोंके कहनेसे भी कहीं इतना कातर होते हैं!'

'माँ...' नीला और कुछ न कह सकी।

परन्तु माँका अन्तर चलचित्र देखने लगा। आरम्भ हुआ वह उस समयसे, जब वह स्वयं नीला जितनी बड़ी थी। दीपाके भैया कश्मीरसे आए थे; पर लाए केवल एक अटैची-केस और एक बड़ा-सा बक्स। दीपाने आते ही अटैची थाम लिया और सदाकी भाँति भीतर जाकर शीघ्रतासे खोला। उसमें थे कुछ कागज़ और एक पिस्तौल। वह सकपकाई-सी खड़ी थी कि भैया भागते हुए आए—'किया न वही, तुझे चैन कहाँ? अब इसका ढिंढोरा पीटा, तो तुझे मार ही डालूँगा।' वह सहसा सब-कुछ समझ गई और अटैची बन्द करके चुपचाप बाहर चली गई।

रातको एक गैसकी आज़माइश करनेकी बात थी कि कितनी जल्दी आदमी उससे बेहोश हो सकता है। भैया स्वयं देखना चाहते थे। दीपाने धीरे-धीरे भैयासे सब बातें जान ली थीं और बिना कहे ही उनकी साथिन हो गई थी। उसने कहा था—'मैं सूँघूँगी, तुम टैस्ट करना।'

'मर गई तो...'

'तो मुझे क्या! मुझे तो सन्तोष ही होगा, यदि देशके स्वातंत्र्य-यज्ञमें मैं भी अपनी छोटी-सी आहुति दे सकूँ।'

भैयाने कृतज्ञ-भावसे यह स्वीकार किया। टैस्ट हुआ, परन्तु स्वातंत्र्य-यज्ञमें आहुति दी भैयाने। जब षड्यन्त्रका पता चला, वे पकड़े गए। उन्हें आजन्म कारावासका दण्ड मिला। कुछ समय तक दीपा पागलोंकी तरह व्याकुल रही; पर एक दिन उसकी माँने कहा—'इसी हौसलेपर तुम लोग आज़ादीकी लड़ाई लड़ रहे थे? उसके लिए एक तेरा भैया क्या हज़ारों बलि होंगे।' और सचमुच हज़ारों ही बहनोंके भाई बलि हुए।

फिर चलचित्र घूमा। भारतकी स्वतंत्रताके कुछ समय पूर्व...। दीपा इस समय घर-गृहस्थीवाली थी। पतिदेव पढ़े-लिखे साधारण बुद्धिके व्यक्ति थे—लोक-प्रवाहमें शीघ्र बहनेवाले। दीपाके विचार कि हिन्दू-मुस्लिम इसी देशके पौधे हैं, दोनों एक ही मिट्टी-पानीसे पनपेंगे, उन्हें बिलकुल रुचते न थे। कांग्रेस, गांधीजी, सबसे उन्हें चिढ़ थी। वे हिन्दू-राज्यके कट्टर पोषक थे। और लाहौरसे जब उन्हें सांप्रदायिक बवण्डरमें पड़कर भागना पड़ा, तो मार्गमें ही उनका शरीरान्त हो गया। दीपा और उसकी चौदह वर्षकी कन्या नीला किसी-न-किसी प्रकार दिल्ली पहुँचे।

पतिके शरीरान्तके बावजूद मार्गमें दीपा यथाशक्ति लोगोंको शान्त करती। स्वतंत्रताके यज्ञमें तो सहस्रों आहुतियाँ दी जाती हैं, क्योंकि देवी स्वतंत्रता सदा मनुष्यकी बलि लेकर ही तुष्ट होती है। क्या हुआ यदि दीपाके पति, छोटा-सा पुत्र, माँ और हज़ारों दीपाओंके अपने कुटुम्ब-परिजन आहुति बने? आज़ादी तो मिली, हाँ आज़ादी।

फिर शरणार्थी-शिविर। नीलाका दुःखसे आकुल तमतमाया मुख सदा माँकी प्रशान्त और अदम्य सहिष्णु आकृति देखकर ढीला हो जाता था। केवल नीला ही क्यों, अनेक पुरुष-स्त्रियाँ उसकी इस लौसे प्रभावित होते थे। वह सबकी सेवामें सदा तत्पर रहती थी।

चलचित्र फिर घूमा। गांधीजीके व्रतसे लेकर उनकी हत्याके समय तकका दृश्य सामने आया। जो दीपा अभी तक शान्त थी, फफक-फफककर रो उठी।

हम स्वतंत्र हैं! हमें धार्मिक स्वतंत्रता भी मिली है, क्योंकि हमने मुसलमानोंको पाकिस्तान दे दिया। और अब हम गांधीजीको भी मार सकते हैं, क्योंकि हम हिन्दू हैं, हिन्दुस्तानके निवासी, और गांधीजी तो मुसलमानोंकी ही बात कहते हैं! दीपा बार-बार यही कहती—हमने ही मानवताकी हत्या की है—हमने ही उस युग-पुरुषको मरने दिया है। और यह मिली हमें स्वतंत्रता, सब कार्य करनेकी—अराजकताकी भी!

चलचित्र फिर घूमा। आजकी समस्याएँ सामने आईं। अनाज खानेको मिलता है, पर कितना महँगा? कपड़ा बाज़ारमें है, पर कितना महँगा? और नीलाको कोई युवक कपड़ा पहनानेको कह रहा था; यह भी उसी स्वतंत्रताका ही एक अंग है, जो हमें आज मिली है! इसी खाने-पहननेकी तंगीमें बंगालमें अकाल पड़ा था, तो सहस्रों कुमारियोंने अपना शरीर बेचकर अपनी तथा अपने घरवालोंकी उदर-पूर्ति की थी।

और आज हम स्वतन्त्र हैं—वह स्वतन्त्रता, जिसके लिए माँने हज़ारोंकी बलिकी बात कही थी और स्वयं बलिदान हुई। एक बार उस ढीठ नारी, आदर्शोंकी पालनकर्तृ नारीके मनके कोनेसे विचार उभरा, क्या हम पहले बिना आज़ाद हुए ही भले न थे, पर एक झटकेसे उसने इस विचारको रोका—छिः।

नीला उसकी गोदीमें ही सो गई थी। अचानक वह उठ बैठी और पुकारा—'माँ!'

'बेटी, कुछ बात नहीं। धीरज रख, मेरी रानी बिटिया! सब ठीक हो जायगा!'

पर क्या ठीक हो जायगा? कहाँ है घर-द्वार, कैसे शिक्षित होगी यह नीला, जिसको वह संस्कृतिकी प्रतिमूर्त्ति बनाना चाहती थी और जो सचमुच ही बड़ी नेक, होनहार तथा बुद्धिमती लड़की है? मशीनकी सिलाईसे कहीं पेट भरता है? और आजकल? अध्यापिकीमें मिल जायँगे चालीस-पचास रुपल्ली... परन्तु हज़ारों शरणार्थियोंको अध्यापिकी भी कहाँसे मिलेगी?

यह है वह फल, जिसके लिए दीपाने अपने प्रियजनोंके जीवनकी आहुति दी थी! और न-जाने कितनी दीपाओंने ऐसी कीमती कुरबानियाँ दीं। कहीं आलोककी रेखा है इस अन्धकारमें?

पर, शायद है जन-मनको सुसंस्कृत करनेमें। जब हम मानवताका मूल्य समझेंगे, गिरोंको उठायँगे, तब हमें स्वयं मार्ग मिलेगा, स्वतः आलोक मिलेगा। परन्तु इस उत्थानको लायगा कौन? वे, जो तनका कपड़ा और खानेको अन्न जुटाने में ही दिन-रात पिसे जा रहे हैं? विचार उठते हैं, पर विवश हैं और प्रति पगपर परिस्थितियोंसे जूझ रहे हैं। या वे, जो आज धनपति हैं, जिनका अपना स्वार्थ ही आज सर्वोपरि है? जो दान भी देंगे, तो इस बातको सम्मुख रखकर कि उससे कल उन्हें क्या लाभ मिलेगा? और जो सारे मार्ग बन्द कर साधारण जनताको जीवित ही कब्रमें धकेले दे रहे हैं, दम घोंट कर मार रहे हैं! दीपाकी आँखोंसे टप्-टप् दो आँसू चू पड़े।

हिन्दू-समाज और तलाक़

श्री हरिदत्त वेदालकार

गत ३१ अगस्तको भारतीय पार्लमेंटमें एक बार फिर रूढ़िवादकी विजय हुई। अग्रगामी शक्तियोंको कुछ समयके लिए प्रतिगामियोंके आगे झुकना पड़ा। कई वर्षोंसे टाला जानेवाला हिन्दू-कोड बिल अगले अधिवेशन तक लोकमत जाननेके बहाने फिर खटाईमें डाल दिया गया। इस समय कट्टरपंथियों ने अपने पक्षका समर्थन करनेके लिए जिन व्यक्तियोंका सहयोग पाया, उनमें कई हमारे देशके गण्यमान्य नेता और सार्वजनिक जीवनमें उच्चतम स्थान रखनेवाले हैं। भारतके गवर्नर-जनरल श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्यके शब्दोंमें 'इससे हिन्दू-समाज और संस्कृतिका आधार नष्ट हो जायगा, व्यावहारिक रूपमें हिन्दुओंका सुव्यवस्थित समाज शिथिल और विशृंखल हो जायगा।' राष्ट्रपति देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसादने पार्लमेंटके कांग्रेसी सदस्योंसे एक गश्ती चिट्ठीमें यह अनुरोध किया था कि कोडपर वर्तमान पार्लमेंट विचार न करे, किन्तु नए विधानके अनुसार निर्वाचित परिषद् ही इस सम्बन्धमें क़ानून बनाए। कट्टरपन्थियोंको जब ऐसे उच्च पदस्थ नेताओंका समर्थन प्राप्त था, तो उनकी सफलता स्वाभाविक ही थी। पार्लमेंटकी कांग्रेस-पार्टीने पहले ही कोडको स्थगित करनेका निश्चय कर लिया था। ३१ अगस्तको क़ानून-मंत्री श्री अम्बेडकरने उक्त निर्णयानुसार निर्वाचित समिति द्वारा संशोधित मसविदा उपस्थित करते हुए इसे शरत्कालीन अधिवेशन तक स्थगित करनेका प्रस्ताव किया। इससे सुधारकोंको बड़ी निराशा हुई। किन्तु यह बड़े हर्ष तथा संतोषकी बात है कि अन्धकार प्रकाशपर देर तक विजय नहीं पा सकता। भारत-सरकारका यह दृढ़ निश्चय है कि वह अगले अधिवेशनमें इसपर अवश्य विचार करेगी और इसे क़ानूनका रूप देगी। इस समय यह बिल पुनः लोकमत जाननेके लिए प्रचारित किया गया है।

इस बार उपस्थित संशोधित मसविदा पिछले मसविदोंसे कुछ भिन्न है। इसकी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण व्यवस्था तलाक़ है। कट्टर हिन्दू तलाक़के नामसे ही भड़क उठते हैं। वे इसे हिन्दू-धर्मकी भावनाके सर्वथा प्रतिकूल समझते हैं और क्षण-मात्रके लिए भी नहीं सह सकते। वर्त्तमान हिन्दू-समाज तलाक़के प्रति कितना असहिष्णु है, इसका इसी तथ्यसे अनुमान किया जा सकता है कि केन्द्रीय व्यवस्थापिका-परिषद्में १९२८ तथा १९३३ में दो बार हिन्दू-स्त्रियोंके लिए तलाक़का बिल पेश हुआ। दोनों बार हिन्दू-समाजकी ओरसे इतना उग्र विरोध हुआ कि वह बिल क़ानून नहीं बन सका। १९४३ से यह हिन्दू-कोडके रूपमें जनताके सामने उपस्थित है, किन्तु कट्टरपन्थियोंके कड़े प्रतिरोधसे निरन्तर स्थगित हो रहा है। इस तीव्र विरोधका प्रधान कारण हिन्दुओंका यह दृढ़ विश्वास है कि धर्मशास्त्रोंमें विवाहको एक पवित्र एवं अविच्छेद्य सम्बन्ध माना गया है। मृत्यु भी विवाह-सम्बन्धको भंग नहीं कर सकती। सती स्त्रियाँ जन्म-जन्मान्तरोंमें अपने पतियोंको प्राप्त करती हैं। अविच्छेद्य विवाह हमारे समाजकी सनातन कालसे चली आनेवाली परम्परा है। तलाक़—जैसा कि इसके विदेशी नामसे सूचित होता है—विजातीय परिपाटी है। पश्चिमके अन्धानुकरणमें पाश्चात्य सभ्यताके भक्त इसे जबर्दस्ती हिन्दू-समाजपर थोपना चाहते हैं। इससे वैवाहिक सम्बन्धकी पवित्रता नष्ट हो जायगी, अनाचार बढ़ेगा, वाम-मार्ग और भैरवीचक्र चलेगा और हिन्दू-समाज रसातलमें विलीन हो जायगा। किन्तु हमारी सम्मतिमें उनकी उपर्युक्त धारणाएँ ऐतिहासिक दृष्टिसे भ्रान्त हैं, आशंकाएँ निर्मूल हैं, वर्तमान परिस्थितियोंमें तलाक़की व्यवस्था कुछ अवस्थाओंमें वांछनीय है। उसके न होनेसे हिन्दू-समाजको भीषण क्षति उठानी पड़ रही है।

साधारण मनुष्य रूढ़ियोंका दास होता है। वह जिस प्रकार की परिस्थिति और वातावरणमें पलता है, उसे स्वाभाविक तथा सनातन कालसे चला आनेवाला समझता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि रूढ़िवाद समाजको एक स्थैर्य प्रदान करता है। यदि वह न हो, तो समाजका टिका रहना असम्भव हो जाय। किन्तु उसके साथ ही उसमें परिवर्तन और गति भी आवश्यक है, नहीं तो उसमें सड़ाँद पैदा हो जाती है। परम्पराओंके मोहमें ग्रस्त होकर हम भले ही यह कहें कि अविच्छेद्य विवाह हमारे समाज की प्राचीन परम्परा है, किन्तु इतिहास इसका खण्डन करता है। वह इस बातका साक्षी है कि जब तक हिन्दू-जातिमें जीवन था,

बुद्ध ज्ञान-विज्ञानका नेतृत्व कर रहा था, विदेशोंमें अपना सांस्कृतिक प्रसार कर रहा था, तब तक उसमें तलाककी अनुमति थी। गुप्त-युग भारतीय इतिहासका स्वर्ण-युग कहा जाता है, इस समय तक समाजमें विवाह-विच्छेद होते थे। इसके बाद जातीय जीवनमें जड़ता और निश्चेष्टता आई, हम अवनति करने लगे और विवाह-सम्बन्धको अविच्छेद्य समझने लगे। कट्टरपंथियोंको यह तथ्य भले ही आश्चर्यजनक प्रतीत हो, किन्तु इतिहासमें इसके प्रमाणोंकी कमी नहीं है।

चौथी शती ई० पू० के अन्तमें सम्राट् चन्द्रगुप्तको हिन्दूकुश पर्वतसे बंगालकी खाड़ी तक विस्तीर्ण मौर्य-साम्राज्यकी स्थापनामें सहायता देनेवाले महामन्त्री कौटिल्यने अर्थशास्त्रमें इसका स्पष्ट रूपसे विधान किया है। तलाकके सम्बन्धमें उसका स्पष्ट मत है कि नीच, प्रवासी, राजद्रोही, घातक, (जाति अथवा धर्मके आचारसे) पतित और नपुंसक पति स्त्रीके लिए त्याज्य है (३।२।५९)। यह नियम धर्म-विवाहोंके लिए है। दूसरे विवाहोंके लिए कौटिल्य अधिक उदार है। प्राचीन धर्मशास्त्रोंमें आठ प्रकारके विवाह माने गए हैं—ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष, दैव, गान्धर्व, आसुर, राक्षस और पैशाच। इनमें पहले चार धर्म-विवाह कहलाते थे, जिनमें तो उपर्युक्त कारणोंसे ही तलाक सम्भव था; किन्तु दूसरे विवाहोंमें कई बार ऐसी स्थिति आ जाती थी कि पति-पत्नीमें द्वेष उत्पन्न हो जाता था। द्वेष उत्पन्न होनेपर विवाह एक भार मालूम होने लगता है और पति-पत्नी वैवाहिक बन्धनसे मुक्त होना चाहते हैं। कौटिल्यके मतानुसार परस्पर द्वेषसे ही इन विवाहोंमें स्त्री पुरुषको मोक्ष अर्थात् तलाक दे सकती है। कौटिल्यने इस विषयमें स्त्री-पुरुषके अधिकार तुल्य रखे हैं। 'पतिकी इच्छा न होनेपर उसके साथ द्वेष रखती हुई स्त्री उसका परित्याग नहीं कर सकती। ऐसी अवस्थामें पति भी अपनी स्त्रीका परित्याग कर सकता है। दोनोंका एक दूसरेके साथ द्वेष होनेसे ही परित्याग सम्भव है" (कौटि० अर्थ० ३।३।१७-१९)। ऊपरी दृष्टिसे कौटिल्यकी परस्पर द्वेषकी शर्त कुछ विचित्र-सी जान पड़ती है; किन्तु वर्तमान कालमें बरट्रेण्ड रसेल जैसे उच्चकोटिके विचारक इसे आवश्यक समझते हैं। स्वीडन, नार्वे, डेन्मार्क, बेल्जियम और स्वीज़रलैण्डके नए तलाक-कानूनोंमें यह शर्त रखी गई है।

दूसरी शती ई० पू० में मौर्य-वंशकी समाप्तिके साथ भारत में हिन्दू-धर्मका नवीन अभ्युत्थान हुआ। वर्तमान कालमें उपलब्ध मनुस्मृतिका अधिकांश भाग इसी समय लिखा गया और स्मृतिकारोंने विवाहके बन्धनको अविच्छेद्य बनानेका यत्न किया। सम्भवतः समाजमें विदेशी आक्रमणोंसे कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई थीं कि ऐसी व्यवस्था उचित समझी गई। इतिहास इसपर ठीक प्रकाश नहीं डालता, किन्तु कौटिल्य और मनुकी व्यवस्थाओंकी तुलना करनेसे दोनोंमें स्पष्ट अन्तर प्रतीत होता है। मनुने विवाह-सम्बन्धको अविच्छेद्य तो बनाया, किन्तु केवल स्त्रीके लिए। कौटिल्यकी व्यवस्थानुसार पत्नी नपुंसक, राजद्रोही, घातक, पतित, नीच और प्रवासी पतिको छोड़ सकती थी। मनुने पुरुषोंको तो पत्नीके अप्रियवादिनी होनेपर भी छोड़नेका नियम बनाया; किन्तु पत्नीके लिए विवाह-सम्बन्धको अटूट मानते हुए वह पतिके पागल, पतित या नपुंसक होनेपर भी उसकी सेवाकी आशा रखना है। यदि वह सेवा नहीं करती, तो उसके साथ यही रियायत की गई है कि पति उसका त्याग न करे (मनु ९।७९)। मौर्यकालिक भारत में पत्नीको यह अधिकार था कि वह ऐसे पतिको मोक्ष देकर दूसरा पति स्वीकार करे, मनुने शुंग-वंशके समय पत्नीपर यह अनुग्रह किया कि ऐसे पतिकी सेवा न करनेपर भी पति उसे न छोड़े।

पुरुषोंको दूसरे विवाहकी सरल छूट देने (मनु० ९।८०-८१) तथा स्त्रियोंको कोई वैसा अधिकार न देनेसे हिन्दू-समाज में स्त्रियोंकी स्थिति गिरने लगी; किन्तु प्राचीन कालसे चले आनेवाले नारियोंके तलाक और पुनर्विवाहके अधिकारका अपहरण कई परवर्ती स्मृतिकारोंने स्वीकार नहीं किया। गुप्त-युगके स्मृतिकार नारदने पतिके नष्ट, मृत, नपुंसक, पतित और संन्यासी हो जानेपर पत्नीको दूसरे विवाहका अधिकार दिया। गुप्त-कालमें स्त्रियाँ अपने पतियोंको छोड़ सकती थीं। इसका एक प्रबल प्रमाण यह है कि समुद्रगुप्तके ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्तकी पत्नी ध्रुवदेवी या ध्रुवस्वामिनीने अपने पतिको छोड़कर सम्राट् चन्द्रगुप्तके साथ विवाह किया था। भारतीय लोकसाहित्यमें जिस विक्रमादित्यकी महिमा गाई जाती है, जिसका विक्रम-संवत् हिन्दू-समाजमें नर्मदाके उत्तरमें चलनेवाला सर्वमान्य संवत् है, वही विक्रमादित्य पतिको तलाक देनेवाली अपनी भाभीके साथ विवाह करनेवाले थे, ऐसा अनेक ऐतिहासिकोंका मत है। ध्रुवस्वामिनीने अपने पति रामगुप्तको जिस कारण तलाक दिया था, वह भी बड़ा मनोरंजक है। उस समय गुप्त-साम्राज्यपर

शकों और हूणोंके हमले हो रहे थे। उनके साथ एक युद्धमें रामगुप्त पकड़े गए। वे प्रतापी समुद्रगुप्तके पुत्र होकर भी दुर्बल और कायर थे। उन्हें प्राणोंका मोह था। क्षत्रियोचित प्रतिष्ठाका ध्यान न रखते हुए अपनी जान बचानेके लिए उन्होंने विदेशी राजाकी यह अपमानजनक शर्त स्वीकार कर ली कि वे उसके यहाँ डोलीमें अपनी पत्नी भेजेंगे। जब ध्रुवस्वामिनीको यह पता लगा, तो वह आगबबूला हो गई। उसने अपने देवर चन्द्रगुप्त से इस अपमानजनक संधिका उचित प्रतिशोध करनेके लिए कहा। चन्द्रगुप्त अपनी सेनाके चुने हुए सैनिकोंके साथ स्त्री-वेश में उस शक राजाके यहाँ गया, उसे मारकर अपने भाईके अपमानका बदला चुकाया। ध्रुवस्वामिनीने अपने बुज़दिल पतिको नपुंसक कहकर तलाक़ दिया और चन्द्रगुप्तसे शादी की।

मध्यकालमें कलियुगमें प्रामाणिक समझी जानेवाली पारशर स्मृतिने भी नारद द्वारा वर्णित पाँच अवस्थाओंमें स्त्रियोंको पुनर्विवाहका अधिकार दिया। किन्तु उसके बादसे हिन्दू-समाजमें स्त्रियोंके लिए इस व्यवस्थाका अन्त हो गया। इसका प्रधान कारण स्त्रीके पातिव्रत्यपर अधिक बल दिया जाता था। हमारे पुराण पतिव्रताओंके माहात्म्यसे भरे पड़े हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पतिव्रताका आदर्श बहुत ऊँचा, समाजके लिए आदर्श और मंगलकर है; किन्तु उसके साथ पुरुषोंने पत्नीव्रतके आदर्शकी ओर बहुत कम ध्यान दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि स्त्रीके कर्त्तव्य बढ़ते गए और पतिके अधिकार। पातिव्रत्य धर्मकी पराकाष्ठा यहाँ तक पहुँची कि स्त्रियोंको पतिके मरनेके बाद जबर्दस्ती चिताओंपर चढ़ाया जाने लगा। स्वेच्छापूर्वक सती होना पति-प्रेमका सर्वोच्च आदर्श है, किन्तु बलात् सती किया जाना क्रूरतम अमानुषिक अत्याचार। पता नहीं प्राचीन नरमेध-यज्ञोंमें पुरुषोंकी बलि दी जाती थी या नहीं, किन्तु मध्यकालमें पातिव्रत्यकी मर्यादा अक्षुण्ण रखनेके लिए न-जाने कितनी हिन्दू-स्त्रियोंकी बलि चढ़ाई गई। यह इस बातकी घोषणा थी कि हिन्दू-विवाह अविच्छेद्य है, किन्तु केवल स्त्रीके लिए। इस अवस्थामें स्त्रीके लिए तलाक़की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। अतः यह व्यवस्था हमारे समाजसे बिल्कुल लुप्त हो गई।

उपर्युक्त ऐतिहासिक विवेचनासे यह स्पष्ट है कि तलाक़ हमारे देशके लिए कोई वस्तु नहीं। वह धर्मशास्त्रोंके प्रतिकूल भी नहीं। कौटिल्य, नारद, पराशर आदि स्मृतिकारोंने इसका समर्थन किया है। छठी श० ई० तक वह भारतीय समाजमें प्रचलित थी। निम्न जातियों तथा हिन्दुओंके अनेक वर्गोंमें वह आज तक विद्यमान है। उदाहरणार्थ गुजरातके पटेलोंमें स्त्री-पुरुष तलाक़ दे सकते हैं। अतः कट्टरपंथियोंकी इस युक्तिमें कोई सार नहीं कि तलाक़ हिन्दू-समाजकी भावनाके प्रतिकूल है।

कट्टरपंथियोंकी यह युक्ति भी निःसार है कि इससे हिन्दू-समाज विच्छिन्न हो जायगा और अनाचार तथा अनैतिकताकी वृद्धिके दुष्परिणाम उत्पन्न होंगे। जिन समाजोंमें तलाक़की व्यवस्था है, वहाँ कोई दुष्परिणाम नहीं हैं। हम इस्लामके तलाक़की खिल्ली उड़ाते हैं; किन्तु उनका समाज हमारी अपेक्षा अधिक सुदृढ़ और सबल है। वे पिछली शतियोंमें हज़ारों हिन्दुओंको अपने समाजका अंग बनाने तथा अन्ततोगत्वा 'पवित्र आर्यावर्त्त'में पाकिस्तान बनानेमें सफल हुए हैं। हम पिछले हज़ार बरसोंमें एक मुसलमानको अपने समाजमें आत्मसात् नहीं कर सके। वे करोड़ों हिन्दुओंको पचा गए। पश्चिमी देशोंमें तलाक़ प्रचलित है, किन्तु इससे उनके समाजमें कोई दुर्बलता नहीं आई। वे देश इस समय विश्वकी महाशक्तियाँ बने हुए हैं। उनमें अनैतिकता अवश्य बढ़ी है, किन्तु उसका कारण तलाक़की शर्तोंका लचीलापन है, न कि तलाक़। अपने देशमें इसकी व्यवस्था करते हुए हम दूसरे देशोंके अनुभवका लाभ उठा सकते हैं, किन्तु ऐसा न करनेसे अपने समाजको गहरी क्षति पहुँचा रहे हैं।

वर्तमान समयका हिन्दू-क़ानून विवाह-सम्बन्धको अविच्छेद्य मानता है, किन्तु साथ ही पुरुषोंको दूसरे विवाहोंकी खुली छूट देता है। इससे स्त्रियोंके साथ घोर अन्याय हो रहा है। पुरुष पहली स्त्रीमें असाध्य दोष होनेपर तलाक़ न होते हुए भी दूसरा विवाह करके उसे छोड़ सकता है। किन्तु पत्नीके लिए क्रूरता आदि कुछ अवस्थाओंमें पतिसे भरण-पोषण प्राप्त करनेके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं। पुरुष दुःखमय विवाहसे मुक्ति पा सकता है, किन्तु स्त्री किसी प्रकार छुटकारा नहीं पा सकती। जब तक स्त्रियोंमें शिक्षा नहीं थी, वे अर्थोपार्जनमें असमर्थ थीं, तब तक वे इस अत्याचारको किसी प्रकार सहती रहीं; किन्तु अब शिक्षा-प्रसार तथा वर्तमान युगके नवीन परिवर्तनोंसे हमारे देशमें असाधारण नारी-जागरण हुआ है। स्त्रियाँ अधिकारोंके लिए माँग कर रही हैं। इनमें एक तलाक़ भी है। पहले बताया जा चुका है कि तलाक़का बिल उग्र विरोधसे

अब तक क़ानून नहीं बन सका। यद्यपि क़ानून स्त्रियोंका दुःखमय विवाहसे मुक्त होनेकी कोई व्यवस्था नहीं करता; किन्तु स्त्रियोंने इससे परित्राण पानेका जो मार्ग ढूँढ़ निकाला है, वह हिन्दू-समाजको बहुत क्षीण करनेवाला है। वह मार्ग धर्मान्तरका है। इस समय जो स्त्रियाँ अपने पतियोंको तलाक़ देना चाहती हैं, वे मुसलमान हो जाती हैं।

बंगालमें इस उपायका काफ़ी व्यापक रूपसे प्रयोग होता है। संभवतः यह बात कुछ व्यक्तियोंको अविश्वास्य जान पड़े, अतः इसकी पुष्टिके लिए कुछ उदाहरण देना उचित प्रतीत होता है। ये सब कलकत्ता-हाईकोर्टके फ़ैसलोंसे लिए गए हैं। अतः कोरी कल्पना नहीं, किन्तु कटु सत्य हैं। यहाँ १९४४ में एक ही दिनमें निर्णीत तीन मामलोंका उल्लेख किया जायगा। पहला मामला शिवानी रायका है। शिवानीने इस्लाम स्वीकार किया और अपने पति ज्योतिभूषण दत्तको मुसलमान बननेको कहा। उसे यह स्वीकार न था, अतः शिवानीने अदालतमें यह आवेदन-पत्र दिया कि वह अपनी इच्छासे मुस्लिम बनी है। उसने पतिसे इस्लाम स्वीकार करनेको कहा है, पर उसने ऐसा नहीं किया। अतः उसके साथ उस (शिवानी) का हिन्दू-विवाह-विच्छिन्न समझा जाय। शिवानीका यह कहना था कि उसने अपने दुःखपूर्ण विवाहित जीवनसे ऊबकर तथा सामाजिक सहानुभूतिके अभावसे धर्म बदला है। जस्टिस ओरमोण्डने उसकी प्रार्थना स्वीकार की तथा उसे अपने पतिसे तलाक़ मिल गया। दूसरा उदाहरण आत्रेयीदेवीका है। जुलाई १९४१ में हिन्दू-विधिसे सुबोधकुमार चक्रवर्त्तीके साथ उसका विवाह हुआ। उसका वैवाहिक जीवन दुःखमय था। जुलाई १९४३ ई० में वह पतिके घरसे बाहर निकाल दी गई। सितम्बरमें वह मुसलमान बनी। उसने पतिसे मुस्लिम होनेकी प्रार्थना की। उसके इस्लाम स्वीकार न करनेपर उसने अदालत द्वारा सम्बन्ध-विच्छेदकी अनुमति प्राप्त की। तीसरा उदाहरण मिनुरानी घोषका है। शादीके दो महीने बाद ही मिनुरानी व उसके पति कृष्णदास घोषमें झगड़ा हुआ। मिनुरानीने मुस्लिम बनकर अदालतसे तलाक़ पा लिया।

कट्टरपंथी भले ही गला फाड़कर और खूब चिल्लाकर यह कहते रहें कि हिन्दू-विवाह अविच्छेद्य है, किन्तु वह इस्लाम स्वीकार करते ही झट टूट जाता है। कुछ वर्ष पहले बड़ौदाकी महारानी सीतादेवीने भी अपने पिछले पतिसे तलाक़ पानेके लिए यह उपाय बरता था। एक दिनमें ऐसे तीन मामलोंका आ जाना यह बताता है कि हवा किधर बह रही है। हम चाहें या न चाहें, इस समय क़ानूनी परिस्थिति ऐसी है कि स्त्रियोंके पास दुःखमय विवाहोंसे मुक्ति पानेका साधन मुसलमान बननेके सिवाय कोई नहीं है। इस परिस्थितिके लिए अदालतोंको दोषी ठहराना व्यर्थ है। उनका निर्णय शास्त्रानुसार है। जब कोई व्यक्ति दूसरा धर्म स्वीकार कर लेता है, तो वह हिन्दू रहता ही नहीं। इस सम्बन्धमें एक मनोरंजक तथ्यका उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। हिन्दू-स्त्री तो मुस्लिम बनकर हिन्दू-पतिसे तलाक़ पा सकती है; किन्तु कोई हिन्दू-पति मुसलमान बनकर हिन्दू-स्त्रीसे छुटकारा नहीं पा सकता, क्योंकि प्रचलित क़ानूनके अनुसार एक मुसलमान ग़ैर-मुस्लिम पत्नी रख सकता है, किन्तु हिन्दूको मुस्लिम-पत्नी रखनेका अधिकार नहीं!

पिछले एक हज़ार वर्षसे हिन्दू-समाज अपनी संकुचित मनोवृत्ति, जात-पाँत और छुआछूतके भेद और कट्टरतासे अपनी शक्ति घटा रहा है। उसमें से जिस किसीका विधर्मीसे किसी प्रकारका स्पर्श या संसर्ग हो गया, वह जात-बिरादरीसे बाहर निकाल दिया गया। अपनी संकीर्णता और अनुदारतासे हमने मुसलमानोंकी संख्या बढ़ाई है। पहले विधवाएँ अनाश्रित और दुर्व्यवहार-पीड़ित होनेपर सहारा ढूँढ़नेके लिए मुस्लिम होती थीं, अब सधवाएँ दुःखमय दाम्पत्य जीवनसे परित्राण पानेके लिए स्वेच्छापूर्वक मुसलमान बनने लगी हैं। तलाक़का जितना विरोध किया जायगा, उतनी ही यह प्रवृत्ति प्रबल होगी। इसका अर्थ होगा आत्मघातके मार्गपर चलना, नये पाकिस्तानके बीज बोना। कल हिन्दूकुश पर्वत तक आर्यावर्त्त था, आज उसकी सीमा अमृतसर हो गई है! क्या हम उसे और आगे बढ़ने देना चाहते हैं?

वर्तमान वस्तुस्थितिमें तलाक़ न माननेसे हिन्दू-समाजको अधिक दुष्परिणाम भोगने पड़ेंगे। इससे उसके क्षीण होने और अस्तित्व लुप्त होनेकी आशंका हो सकती है। उसके माननेसे अधिक-से-अधिक अनैतिकताके बढ़नेकी आशंका है। उसे आप उपयुक्त प्रतिबन्धों और शर्त्तोंसे दूर कर सकते हैं। इसमें मतभेद हो सकता है कि नये विधानमें प्रस्तावित शर्त्तें पर्याप्त हैं या नहीं, किन्तु यह निर्विवाद है कि तलाक़ होना चाहिए। वह किन शर्त्तोंपर होना चाहिए, जिनसे नैतिक अराजकता न उत्पन्न हो, इसपर अगले अंकमें विचार किया जायगा।

जापानका नव-निर्माण

श्री रामनारायण यादवेन्दु

अगस्त, १९४५ में जापानने आत्म-समर्पण कर दिया और इस प्रकार विश्व-युद्ध समाप्त हो गया। आत्म-समर्पणसे पूर्व २७ जुलाई, १९४५ को पोट्सडम-सम्मेलनके अवसरपर ब्रिटेन, अमरीका तथा चीनके नेताओंने एक संयुक्त घोषणा प्रकाशितकर जापानको यह चेतावनी दी कि वह घोषणामें उल्लिखित शर्त्तोंके आधारपर आत्म-समर्पण कर दे। यदि ऐसा नहीं करेगा, तो जापानका सर्वनाश हो जायगा। जापानने इस घोषणाकी उपेक्षा की। इसके बाद ही जापानके द्वीप हिरोशिमा और नागासाकीपर दो एटम बम गिराए गए। सोवियत रूसने भी जापानके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। अन्तमें जापानी सैनिकवादको मित्र राष्ट्रोंके समक्ष हथियार डाल देने पड़े।

पोट्सडम-घोषणा

इस घोषणामें जो शर्त्तें जापानके लिए निश्चित की गईं, उनका संक्षेपमें सारांश यह है—(१) उन लोगोंका प्रभाव एवं सत्ता सदैवके लिए नष्ट कर दी जाय, जिन्होंने जापानी जनता को धोखा दिया और पथभ्रष्ट किया कि वे विश्व-विजय करके रहेंगे। हमारा यह विश्वास है कि जब तक गैरजिम्मेदार सैनिकवादका संसारसे नाश न कर दिया जाय, तब तक शान्ति, सुरक्षा और न्यायकी नई व्यवस्था नहीं क़ायम की जा सकती। (२) जब तक ऐसी नई व्यवस्था स्थापित न हो जाय और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण न मिल जाय कि जापानकी युद्ध-कलाका खात्मा हो गया, तब तक जापानी प्रदेशोंपर मित्र-राष्ट्रोंका आधिपत्य क़ायम रहेगा। (३) काहिराकी घोषणामें उल्लिखित शर्त्तोंका पालन करना होगा। (४) जापानका प्रभुत्व होनशू, होकेडो, क्यूशू, शिकाकू तथा दूसरे छोटे द्वीपों तक सीमित होगा, जिनका निर्णय मित्र-राष्ट्र करेंगे। (५) जापानी सेनाको सर्वथा निरस्त्रकर वापस भेज दिया जायगा। (६) जापानी युद्ध-अपराधियोंको दण्ड दिया जायगा। (७) जापानी सरकार प्रजातंत्र के मार्गकी समस्त बाधाओंको हटाकर जनताकी नागरिक स्वाधीनता एवं नागरिक अधिकारोंकी रक्षा करेगी। जापानमें ऐसे उद्योग-धन्धे जारी करनेकी आज्ञा दी जायगी, जिनसे जनोपयोगी वस्तुएँ तैयार की जा सकें। उसे इसके लिए कच्चा माल प्राप्त करनेकी सुविधा होगी; परन्तु कच्चे मालपर जापानका नियंत्रण नहीं होगा।

अन्तमें यह कहा गया कि जापानसे मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाएँ उस समय हटा ली जायँगी, जब कि वहाँ जापानी जनताकी स्वतंत्र इच्छानुसार उत्तरदायी सरकार स्थापित हो जायगी। पर जापानपर गत तीन वर्षोंसे भी अधिक समयसे अमरीकन जनरल मैकआर्थरका फ़ौजी शासन क़ायम है। वह एक डिक्टेटरकी भाँति आदेश जारी करके जापानमें मनमाना शासन कर रहा है। अभी तक जापानमें मैकआर्थरको अपने ध्येयमें पूर्ण सफलता नहीं मिली है।

सुदूर-पूर्वी कमीशन

सन् १९४५ के दिसम्बरके तीसरे सप्ताहमें मास्कोमें ब्रिटेन, अमरीका और सोवियत रूसके नेताओंका सम्मेलन हुआ, जिसमें यह निश्चय किया गया कि एक सुदूर-पूर्वी कमीशन स्थापित किया जाय, जिसमें सोवियत यूनियन, ब्रिटेन, संयुक्त-राज्य अमरीका, चीन, फ्रांस, नीदरलैंड, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, भारत और फिलीपाइन्स कामनवेल्थके प्रतिनिधि शामिल होंगे। इस कमीशनके मुख्य कार्य निम्न प्रकार होंगे :—

(१) यह कमीशन उन नीतियों, सिद्धान्तों एवं आदर्शोंको स्थिर करेगा, जिनके अनुसार जापान आत्म-समर्पणकी शर्तोंके अनुसार अपने दायित्वोंको पूरा करेगा। (२) नीति-संबंधी प्रश्नपर कमीशन सुप्रीम कमाण्डर द्वारा जारी किए गए आदेशोंपर अनुशीलन करेगा। (३) दूसरे मामलोंपर भी विचार करेगा, जिनके संबंधमें कमीशनके सदस्य सहमत होंगे। यह कमीशन फ़ौजी कार्रवाई अथवा प्रादेशिक व्यवस्थाके संबंधमें कोई सिफारिश नहीं करेगा।

जापानके फ़ौजी शासन-प्रबन्धमें संयुक्त-राज्य अमरीकाका विशेष हाथ है, इसलिए उसके विशेष अधिकार भी हैं। संयुक्त-राज्य अमरीकाकी सरकारके कर्त्तव्य निम्न प्रकार होंगे—(१) संयुक्त-राज्य अमरीकाकी सरकार कमीशनके नीति-संबंधी निर्णयों के अनुसार आदेश तैयार करेगी और उन्हें जापानमें सुप्रीम कमाण्डरके पास भेज दिया जायगा। वह उनके अनुसार कार्य

करेगा। (२) यदि कमीशन यह निश्चय करे कि किसी आदेश में या उसके अनुसार किए गए कार्यमें परिवर्तन किया जाय, तो यह निश्चय 'नीतिका निर्णय' कहलायगा। (३) आवश्यकता पड़नेपर अमरीकन सरकार अस्थायी आदेश भी जारी कर सकेगी। परन्तु जापानी वैधानिक व्यवस्था, 'नियंत्रण' की शासन-व्यवस्था अथवा जापानी सरकारमें किसी मौलिक परिवर्तनका आदेश कमीशनके परामर्शसे ही किया जा सकेगा।

जापानके लिए मित्र-राष्ट्र-कौंसिल

जापानपर फ़ौजी शासनके लिए मित्र-राष्ट्रोंकी एक कौंसिल जारी करेगा। जापानमें वह मित्र-राष्ट्रोंकी एकमात्र प्रधान शासन-सत्ता होगा। इस प्रकार सुप्रीम कमाण्डर मैक्आर्थरको जापानमें शासनके पूर्ण अधिकार प्राप्त हैं। वह अपनी इच्छानुसार जापानी सरकारके किसी भी मंत्रीको हटा सकता है और उसकी जगह दूसरेकी नियुक्ति कर सकता है।

क्या सैनिकवादका सर्वनाश हो गया ?

जापानपर मित्र-राष्ट्रीय फ़ौजी नियंत्रणका सबसे प्रथम और महत्त्वपूर्ण उद्देश्य था जापानसे सैनिकवादका सर्वनाश। लेकिन हम यह देखते हैं कि जनरल मैक्आर्थर इधर उतना
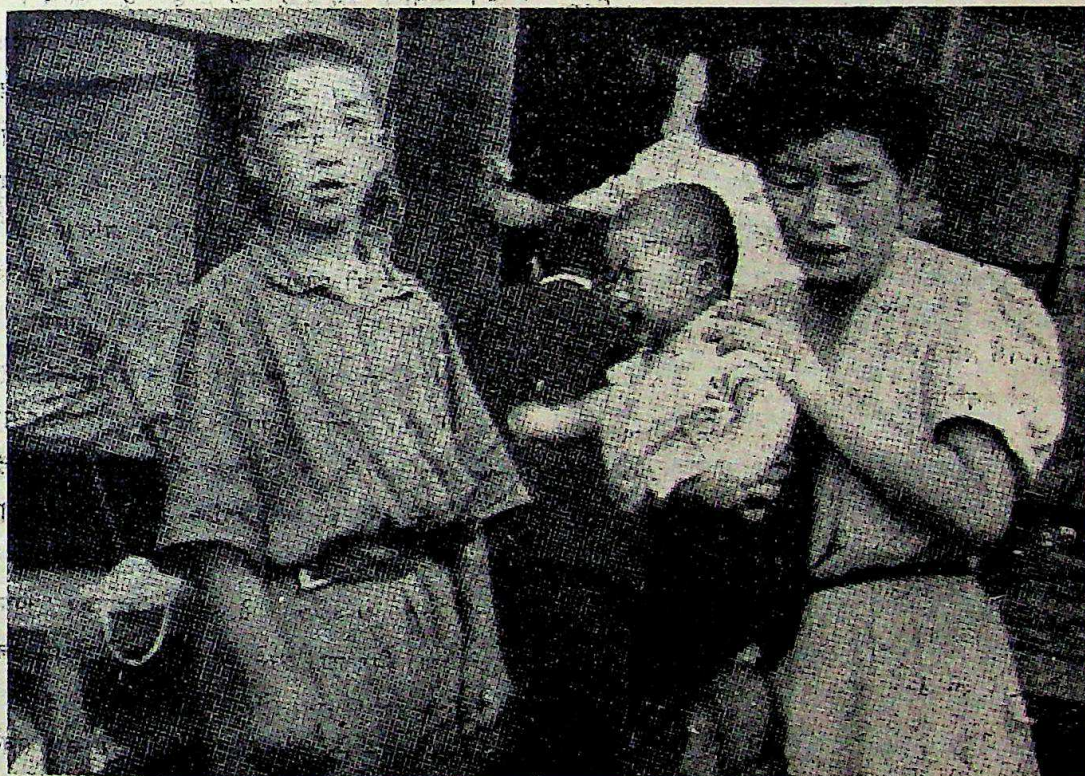
परमाणु-बमके बाद भूकम्पसे ध्वस्त जापान आज आठ-आठ आँसू रो रहा है!

स्थापित की जायगी। सुप्रीम कमाण्डर इसका अध्यक्ष होगा। यह कौंसिल जापानके फ़ौजी नियंत्रणके सम्बन्धमें सुप्रीम कमाण्डर को परामर्श देगी। इस कौंसिलमें अमरीका, सोवियत रूस और चीनका एक-एक सदस्य होगा। ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड और भारतकी ओरसे एक सदस्य होगा। अमरीकाका सदस्य सुप्रीम कमाण्डर होगा। इस कौंसिलका मुख्य कार्यालय तोक्योमें होगा। सुप्रीम कमाण्डर आत्म-समर्पणकी शर्तों, फ़ौजी आधिपत्य एवं जापानके नियंत्रणके सम्बन्धमें आज्ञाएँ ध्यान नहीं दे रहा है, जितना आवश्यक था। वह जापानमें नई व्यवस्था—प्रजातंत्र—की स्थापना नहीं चाहता। उसका उद्देश्य तो जापानमें एक ऐसी सरकार स्थापित करनेका सुयोग देना है, जो अमरीकाके साथ मित्रताका संबंध बनाए रखे और वह अपनी एशियाई सोवियत सत्ताके विरुद्ध एक 'लौह दीवार' खड़ी कर सके, जिससे जापानमें साम्यवाद अपनी जड़ न जमाने पाय। अमरीका-ब्रिटेनकी वर्तमान सरकारें जो भयंकर भूल जर्मनीमें कर रही हैं, उसी भूलको जापानमें भी दोहराया जा रहा है।

जापानमें फाशिस्ट-विरोधी संयुक्त मोर्चा क़ायम करनेका अभी तक कोई प्रयत्न सचाईके साथ नहीं किया गया है। जापानी सैनिकवादने अपने फाशिस्ट शासन-कालमें जापानके उन सभी नेताओं एवं कार्यकर्त्ताओंको जेलोंमें ठूँस दिया, मार डाला तथा देश-निकाला दे दिया। इनमें से बहुतोंने जापानको छोड़ दिया और गुप्त रूपसे चीनमें रहने लगे। येनानमें सैकड़ों जापानी फाशिस्ट-विरोधी कार्यकर्त्ता हैं। चीनमें कम्युनिस्ट-पार्टी की सेनाने जापानी युद्ध-बन्दियोंको गिरफ्तारकर उन्हें फाशिस्ट-विरोधी शिक्षण देकर साम्यवादी बना लिया। इनका नेता है सुसुमू ओकानो। इसने 'जापानी जन-मुक्ति-संघ' स्थापित किया है। चीनकी राजधानी चुंगकिंगमें वातारू काजी नामक जापानी नेताने युद्ध-विरोधी परिषद स्थापित की है। इस समय ये फाशिस्ट-विरोधी जापानमें वापस जाकर सैनिकवाद-विरोधी कार्यक्रमको हाथमें लेना चाहते हैं। यदि वास्तवमें अमरीकाकी सरकार जापानमें प्रजातंत्रका विकास चाहती है, तो इनके सहयोगसे वहाँ नवजीवनकी आधार-शिला क्यों नहीं रखती ?

लेकिन ऐसा न कर सर मैक्आर्थरका फ़ौजी शासन जापान के 'पुराने गुट' (Old Gang) की सहायता और सहयोग से नव-जापानका निर्माण कर रहा है। इस 'पुराने गुट' में सैकड़ों बड़े व्यवसायी, सरकारी पदाधिकारी और पाश्चात्य शिक्षा में दीक्षित हैं, जिनका युद्धसे पूर्व ब्रिटेन-अमरीकासे अच्छा सम्पर्क रहा है। इस गुटके सभी लोगोंने जापानी सैनिकवादका समर्थन किया, यद्यपि इनमें ऐसे भी बहुत-से हैं, जो खुल्लमखुल्ला उग्र सैनिकवादी दृष्टिकोणसे सहमति प्रकट नहीं करते थे। इसी कारण वे यह दावा करते हैं कि वे ही वास्तवमें शान्तिके देव-दूत हैं और जापानके भविष्यके निर्माणमें उनका ही हाथ हो। ये 'पुरानी व्यवस्था'के अनुयायी बड़े अनुभवी शासक व व्यवसायी हैं। ये मित्र-राष्ट्रोंके लिए बड़े आकर्षण भी रखते हैं। ये यह कहते हैं कि हम जापानमें 'अराजकता और अव्यवस्था' को दूरकर 'स्थिरता और सुव्यवस्था' स्थापित कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त ये ब्रिटिश तथा अमरीकन व्यापारके भूखोंको व्यापारिक प्रलोभन भी देनेमें समर्थ हैं।

सुप्रसिद्ध अमरीकन लेखक श्री एण्ड्रयू राथने अपनी 'जापानकी पहेली' नामक पुस्तकमें उपर्युक्त विचार व्यक्त किए हैं। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है—"सोवियत यूनियनको छोड़ मित्र-राष्ट्रोंकी सरकारोंका नये जापानके समर्थकोंके साथ बहुत ही कम सामंजस्य है। उनके नाम और शक्ल-सूरतें बाहरी दुनियाके लिए अपरिचित ही हैं। उनमें से कुछेकने—विशेषतः उदार तथा क्रान्तिकारी धनी लोगोंने—पश्चिमके विश्वविद्यालयोंमें शिक्षा पाई है। परन्तु उनमें प्रिन्स्टन अथवा हारवर्ड विश्व-विद्यालयोंके ग्रेजुएटोंकी अपेक्षा राजनीतिक बन्दीगृहोंके ग्रेजुएट ही अधिक हैं। उनमें बहुत कम अंगरेज़ी बोलते हैं और बहुत ही थोड़ोंको तोक्योके कूटनीतिक वातावरणका भीतरी अनुभव है। उनमें से कुछ कम्युनिस्ट हैं और कुछ उदार।"

जापानका 'पुराना गुट' जापानके आर्थिक जीवनपर अपना नियंत्रण रखना चाहता है और वह यह भी चाहता है कि जापानकी सरकार उसीके हाथमें रहे। इसके साथ ही इस गुटका दूसरा उद्देश्य है विजयी राष्ट्रोंमें फूट पैदा करना, जिससे वे जापानमें फाशिस्ट-विरोधी शक्तियोंका संघटन करके सच्चे प्रजातन्त्रकी स्थापना न कर सकें; क्योंकि ऐसा होनेपर 'पुराने गुट' का प्रभाव और सत्ता नष्ट हो जायगी।

अब हमें यह देखना है कि जनरल मैक्आर्थरने जापानमें इस दिशामें क्या किया है। जापानमें 'जैवत्सू' उस वर्ग-विशेषका नाम है, जो पूँजीपति हैं—जो करोड़पति हैं। सामान्यतया 'जैवत्सू' शब्दका प्रयोग जिन चार सबसे बड़े धनिक गुटोंके लिए किया जाता है, वे हैं मितसुई, मितसुबिशी, सुमितोमो और यसूदा। ये चारों धनिक गुट जापानकी आर्थिक नीतिका नियंत्रण करते हैं। इनके हाथमें जापानकी पूरी आर्थिक सत्ता तथा बैंक हैं। दुनियामें इतने व्यापक और महान धनिक गुट कहीं नहीं मिलेंगे। ये चार सबसे बड़े ट्रस्ट जापानके ६२ प्रतिशत आर्थिक साधनों, व्यापारिक सम्पत्ति और बैंकोंपर अपना अधिकार रखते हैं। जापानकी सरकार पर भी इन्हींका आधिपत्य है। इसलिए जब तक जापानसे 'जैवत्सू'-प्रणालीका समूल नाश नहीं हो जाता, जापानपर ये बड़े राक्षस राज करते रहेंगे, जिन्होंने चीनका सर्वनाश कर दिया और प्रशान्तकी शान्ति भंग कर दी। यही नहीं, जापानका सम्राट् भी 'जैवत्सू'का एक बड़ा सदस्य है। स्टाक तथा बौण्डोंमें उसके कई अरब येन (जापानी सिक्का) लगे हुए हैं। जापानके बैंकके ३००,००० हिस्से उसके पास हैं। याकोहामा स्पेशी बैंकके २२ प्रतिशत हिस्से उसके पास हैं।

वास्तवमें जापानसे 'जैवत्सू'का अभी तक खात्मा नहीं हो सका है। सन् १९४६ के आरम्भमें जनरल मैक्आर्थरने एक

आदेश जैवत्सूका खात्मा करनेके लिए जारी किया था। परन्तु अप्रैल, १९४६ तक उसपर कोई अमल नहीं किया गया। 'जैवत्सू'के चारों ट्रस्ट आज भी जापानके आर्थिक जीवनका नियंत्रण कर रहे हैं। सिधेहारा जापानकी नई सरकारका प्रधान-मंत्री है; लेकिन आज भी उसका मितसुविशी ट्रस्टसे सम्बन्ध बना हुआ है। यह बड़ी विचित्र बात है कि सिधेहाराकी सरकार इन औद्योगिक ट्रस्टोंका खात्मा करनेके बजाय उद्योग-पतियोंको युद्ध-कालमें नुकसानका हर्जाना देना चाहती है और इसके लिए उसने १५ अरब येन देना स्वीकार किया है।

सम्राट हिरोहितोके साथ युवराज अखिहितो

जापानमें ज़मींदारीके कारण जापानी किसान बड़े दुःखी हैं। उसमें आवश्यक सुधारकी बड़ी गुंजाइश है। लेकिन इस दिशामें भी कोई महत्त्वपूर्ण क़दम नहीं उठाया गया है। यद्यपि जापानमें १९ प्रतिशत भूमि खेतीके योग्य है; परन्तु १५.५ प्रतिशत भागपर ही खेती होती है। युद्धसे पूर्व जापानकी ५० प्रतिशत जनताकी जीविकाका साधन कृषि ही था। कुल किसानोंका ५० प्रतिशत भाग भूमिके १० प्रतिशत भागपर खेती करता है और ७.५ प्रतिशत परिवार आधीसे अधिक भूमि पर अधिकार जमाए हुए हैं। जापानमें कुल ३५०० ज़मींदार हैं, जिनमें से हरएकके पास १२५ एकड़से अधिक ज़मीन है। प्रत्येक ज़मींदारके नीचे २०० किसान हैं। ५० हज़ार ऐसे ज़मींदार हैं, जिनके पास २५ एकड़से १२४ एकड़ तक ज़मीन है। इसके अतिरिक्त १० लाख ऐसे ज़मींदार हैं, जिनके पास २५ एकड़ तक ज़मीन है। ये किसान बड़े संकटमें हैं और ज़मींदारोंके शोषणके शिकार हैं। जब तक देशकी ५० प्रतिशत किसान-जनताके रोटीके सवालको मित्र-राष्ट्र हल नहीं करेंगे, तब तक जापानमें प्रजातंत्र स्वप्न ही रहेगा।

राजनीतिक दल

जापानमें राजनीतिक दलोंका भी स्वतन्त्र रीतिसे निर्माण नहीं किया गया है। सिधेहाराके प्रभावसे दलोंका संघटन इस प्रकार किया गया है, जिससे फ़ाशिस्ट-विरोधी दलोंकी शक्ति न बढ़ जाय। जापानमें लिबरल दल और प्रगतिशील दल ही मुख्य हैं। साम्यवादी दल तो अल्पमतमें है। मैक्आर्थरने अपनी रिपोर्ट (अगस्त, १९४६)में यह बतलाया है कि जापानी जनतामें प्रजातंत्रके प्रति बड़ा उत्साह है। राजनीतिक दल तथा व्यवस्थापक मण्डलके सदस्य उसकी कार्रवाईमें बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। जापानकी नौकरशाही एवं शासन-प्रबन्धसे १८६००० सैनिकवादी कर्मचारियों एवं अफ़सरोंको निकाल दिया गया है। यह तो ठीक है, लेकिन शासन-प्रबन्धके उच्च अधिकारी और मंत्री तो अपने आसनपर विराजमान हैं! यह कैसी सफ़ाई!

नया विधान और चुनाव

सिधेहारा-सरकारके नियंत्रणमें १० अप्रैल, १९४६ को जापानमें नये शासन-विधानके अन्तर्गत चुनाव किए गए। जापानके समाजवादी दल, उदार दल तथा साम्यवादी दलने यह माँग पेश की कि अभी चुनाव स्थगित कर दिए जायँ, जिससे जापानकी जनताको विविध राजनीतिक दलोंकी नीति एवं कार्य-क्रमकी परीक्षाका अवसर मिल जाय। लेकिन मैक्आर्थरने पूर्वी कमीशनकी सिफ़ारिशपर भी ध्यान नहीं दिया और १० अप्रैल, १९४६ चुनावकी तारीख नियत कर दी। चुनावके नियम भी ऐसे बनाए गए, जिनके कारण लाखों व्यक्ति मताधिकारसे वंचित कर दिए गए। 'जो लोग ग़रीबीके कारण सरकारसे सहायता लेते हैं, या सार्वजनिक संस्थासे सहायता लेते हैं, उन्हें मताधिकार नहीं है।' 'जिनका जापानमें स्थायी निवास नहीं है, वे भी मताधिकारी नहीं हैं।' ग़रीबीके कारण करोड़ों लोग संकटमें हैं और सहायता पा रहे हैं। इसी प्रकार बेघर-बारके भी

बहुत-से शरणार्थी हैं। उन सबको इस प्रकार मताधिकारसे वंचित करना प्रजातंत्रके विरुद्ध है। जिन लोगोंको पुरानी सरकारने राजनीतिक अपराधोंके लिए कठिन परिश्रम या क़ैदकी सज़ाएँ दीं, वे भी मताधिकारका प्रयोग नहीं कर सकेंगे। इस नियमके अनुसार जापानी सैनिकवादके विरोधी सभी नेताओं और कार्यकर्त्ताओंको राजनीतिक अधिकारसे वंचित कर दिया गया है। चुनाव-नियमोंमें एक नियम यह भी है कि कुछ प्रदेशों व प्रान्तोंमें चुनावकी व्यवस्था नहीं होगी। यह अल्पकालिक व्यवस्था की गई है। होकेडो, कुनसारी, इटोरोफ़, शिकाटोन और क्यूराइल्स द्वीपके दूसरे ज़िलोंमें भी चुनाव नहीं होंगे। ये द्वीप सोवियत-अधिकारमें हैं। इस प्रकार चुनावोंकी व्यवस्था ऐसी की गई कि प्रगतिशील फ़ासिस्ट-विरोधी दलोंका जापानी पार्लमेण्टसे निष्कासन हो और फलतः जापानी सरकारमें भी उनका स्थान न हो।

सम्राटका स्थान

जापानमें सम्राटका सर्वोच्च स्थान है। उसे सर्वोच्च राजसत्ता ही नहीं माना जाता, प्रत्युत उसकी देवताकी भाँति पूजा की जाती है। प्रत्येक जापानी परिवारमें सम्राट हिरोहितो देवताके समान पूजा जाता है। इसी सम्राटने अमरीकाके विरुद्ध युद्ध छेड़ा। यह युद्ध-अपराधी है। परन्तु आज भी यह जापानका सम्राट बना बैठा है। युद्ध-कालमें जापानी सम्राटके विरुद्ध अमरीकामें इतना तीव्र लोकमत था कि समाचारपत्र यह लिखते थे—'सम्राट अपराधी नम्बर १ है।' लेकिन आज जनरल मैकआर्थर या अमरीकन सरकार उसे दण्ड देनेका साहस नहीं करती। क्यों? वह जानती है कि जापानकी जनताका हिरोहितोपर असीम विश्वास है और यह सम्राट सोवियत रूस का ऐसा कट्टर विरोधी है कि उसके शासनमें जापान कभी रूसके साथ मैत्री नहीं कर सकता। इस प्रकार यदि सम्राट का पद वैधानिक बनाकर क़ायम रखा जाय, तो जापान लाल खतरेसे दूर रहेगा। अमरीकाकी नीतिका यही रहस्य है। नये जापानी विधानमें जापानके सम्राटको वैधानिक रूपसे स्वीकार किया गया है। इस प्रकार जापानकी सरकार प्रजातन्त्रकी अपेक्षा एकतंत्र ही है। सम्राटको अपने मंत्रियोंकी नियुक्ति करनेका अधिकार होगा। इस विधानमें नागरिकोंके अधिकारों पर कहीं भी प्रकाश नहीं डाला गया है। इसके अतिरिक्त दो धारा-सभाएँ रखी गई हैं। एकका चुनाव जनता द्वारा होगा। दूसरीके सदस्योंकी नियुक्ति सरकार करेगी। इस प्रकार जनता की आवाज़को कुचलनेके लिए यह योजना काममें लाई गई है।

जापानकी स्थिति

जनरल मैकआर्थरने जापानके नियंत्रण-शासनकी अगस्त, १९४६ की रिपोर्ट अक्तूबर, १९४६ में प्रकाशित की। उससे जापानकी वर्त्तमान स्थितिके बारेमें बड़ी रहस्यपूर्ण बातोंका पता चलता है और यह भी पता चलता है कि जनरल मैकआर्थरका शासन-प्रबन्ध कितना अयोग्य और अकुशल है। वस्तुओंके मूल्योंमें आश्चर्यजनक वृद्धि देखकर यह अनुमान किया जा सकता है कि जनताको कितना कष्ट होगा। मई, १९४६ में यह महँगाई सन् १९३७ से ६५ गुनी अधिक थी और सन् १९४५ से २५ गुनी! मज़दूरोंकी जीविकाका भार सन् १९३७ की अपेक्षा ४० गुना और सन् १९४५ की अपेक्षा आज १५ गुना अधिक है! जापानमें चोरबाज़ार, बेईमानी और मुनाफ़ाखोरी देशव्यापी है। फरवरी, १९४६ से जुलाई, १९४६ तक जापानकी अधिकारियोंने ८०८,०००,००० येनका माल चोरबाज़ारोंसे जब्त किया। जापानी उद्योग-व्यवसायमें भी कोई विशेष उन्नति नहीं हो रही है। यहाँकी मिलोंके २,६७६,२२३ करघोंमेंसे जुलाई, १९४६ तक १,१६२,८०८ करघे ही चालू हैं। यहाँ सरकार ने यह हिसाब लगाया था कि सन् १९४६ के अन्त तक जापान में ६,८००,००० लोग बेकार हो जायँगे। सरकार इस बेकारी को कम करनेके लिए कोयला, खाद्य तथा खाद-सम्बन्धी कुछ धंधे जारी करके १,४००,००० मज़दूरोंको काम देना चाहती थी। शेष ५,४००,००० मज़दूरोंका भाग्य आज भी अंधकारमें है।

सृजन करो नूतन मन !

डा० (कुमारी) सुश्मियी सिन्हा

नए समाजका एक चित्र आज मैं चित्रित करना चाहती हूँ। वह चित्र हमारी कल्पनामें निहित है, अतः उस काल्पनिक चित्रको अन्धकारसे आलोकमें लानेके लिए एक काले चित्रके ऊपर ज़रा-ज़रा आलोककी तूलिका छुआनी पड़ेगी—अर्थात् शेडके ऊपर लाइटके कुछ ब्रश फेरने पड़ेंगे। अतः आजके समाजके एक अन्धकारमें गड़े हुए उभरे हुए मिट्टीसे एक चित्रका दर्शन किया जावे। जैसे अन्धकारमें बिना टटोले किसी भी चीज़का ऊभरा भाग नहीं दीखता, उसी प्रकार बैठकर इस चित्रका चिन्तन करनेसे अपने जीवनके हर्षमय वातावरणमें उसकी कल्पना भी अलीक माया-सी ही रहस्यमय रहती है।

समाजके अर्धाङ्ग—स्त्री-जाति—को देखिए। वह धूलमें पड़ी लोट रही है। पिछले दिनों लाखोंकी संख्यामें स्त्रीत्वका जघन्य अपहरण हुआ है, मातृत्वका अपमान हुआ है। नृशंसताने इतिहासमें अपना नाम सबसे मोटे अक्षरोंमें लिखना चाहा और उसे प्रमुखतासे लिखवानेके लिए रक्तकी नदी बहा दी। लेखकों, इतिहासज्ञों, कवियों और भावुकोंके हृदयमें मोटे अक्षरोंमें लिखनेके लिए लाल स्याहीकी होली मचा दी गई। गगन तक उसकी लालिमा फैल गई। देश-देशान्तरमें उसकी पिशाचमय दुर्गन्ध फैल गई, पर हम न सुधरे। सहृदय देश-सेवकोंकी आवाज़ चारों ओर गूँज उठी, सरकारने बार-बार उच्च स्वरसे घोषित किया कि प्रत्येक छीनी हुई लुण्ठिता भारत-ललनाका प्रत्यावर्त्तन होगा। भारतमाँकी गोद उसका स्वागत करेगी। अथक चेष्टाएँ हुई और हो रही हैं, पर सरकार यम-राजकी गदासे भी उस महान वृक्षके तनेको नहीं तोड़ सकती, जिसके बीजको हमारे समाजने आज वर्षों पहले बोया था और आज जिसकी जड़ें जकड़कर भारतमाताके रक्तको चूसकर पी रही हैं। एक दिन सतीत्वका बीज भाव-रूपमें बोया गया था। बिगड़ते-बिगड़ते उसने ऐसा रूप धारण किया कि जब समाजकी छायामें उस वृक्षके पास परम पवित्र सीतादेवीजी पहुँचती हैं, तो उन्हें भी उसकी जड़ोंने जकड़ लिया। यथार्थमें जब तक हमारा भाव जीवनमय रहता है, तभी तक वह कार्य करता है; परन्तु जब हमारा भाव एक जगह खड़ा हो जाता है, तो वह जड़ हो जाता है, और वही जड़ता सबका रस चूसकर पी जाती है। उस समय समाजके उस जड़मय भावको इतना ज्ञान नहीं रहता कि किसपर यह नियम लागू होगा और किसपर नहीं। अन्धेके समान सब स्त्रियोंको वह कामिनीके रूपमें ही देखता है और कामिनी-भावको छोड़ पवित्र मातृ-मूर्त्ति, अदम्य शक्ति-रूपको देखना एकदम भूल जाता है। धीरे-धीरे वही सतीत्वकी सुन्दर माला, जो एक दिन समाजके गलेकी आभूषण थी, छोटी होते-होते इतनी छोटी हो जाती है कि वह गलेमें फँस जाती है और समाजका गला घोंट देती है। यही माला जब एक बार छोटी थी, तो इसने सती-प्रथा और पर्देके रूपमें समाजको फाँसी-सी लगा दी थी। उस फाँसीसे बचनेके लिए हज़ारोंने हिन्दू-समाजको त्यागा और विधर्मको अपनाया। आज हम मुसल-मानोंके अत्याचारोंसे रोते हैं; पर इस मुसलमान-जातिका उद्भवकर्त्ता तो हमारा वही समाज है, जिसके सामाजिक नियमोंके विपुल वृक्षकी जड़ोंने अपने सृष्टिकर्त्ताके ही रक्तको चूसकर पीना चाहा है। सामाजिक अत्याचारोंसे निष्पेषित कंकालोंने जाकर विश्राम लेना चाहा और जिसे हम विधर्मी कहते हैं, उनकी शीतल छायाने उन्हें पनाह और विश्राम दिया। हिन्दू-जातिका यही विताड़ित, निष्पेषित कंकाल-समुदाय वहाँ गुण्डेका बाना लेकर, यमराजके दूतका रूप ग्रहणकर, प्रत्यावर्त्तित होकर जब आपके सम्मुख खड़ा होता है, तो आप सिहर उठते हैं उसके बीभत्स रूपको देखकर। पर वास्तवमें इस बीभत्स रूपके कर्त्ता तो हमारे समाजके रक्त चूसनेवाले नियम-क़ानून हैं, जो जमकर जड़ हो गए हैं।

नारी-जातिपर समाजने विशेष कृपा की है। उसके लिए अधिक नियमोंके पोथे नहीं बनाने पड़े। बस एक वाक्य ही काफ़ी समझा गया—'किसी पुरुषकी ओर देखा और बस पतन!' अधिक कष्टकी आवश्यकता ही नहीं! ज़रा शीशेमें हमें अपना रूप देखना चाहिए। आप जब देवता थे, तो नारीको देवी-रूपमें देखा। आप जब मानव हुए, तो आपने नारीको मानवीके रूपमें देखा। पर आप स्वयं जब पशु हुए, तब नारीको सीता, सावित्री और सतीके रूपमें देखना चाहा! मानव-

प्रकृतिकी प्रतिक्रियाओंका हिसाब उन लोगोंके लिए न रहा। पशुसे भी घृणित व्यवहार समाजके जो व्यक्ति करते हैं, वे ही दूसरी ओर आकर नारीको उस घोंट देनेवाली जड़के नीचे डालकर उसकी अग्नि-परीक्षा लेना चाहते हैं। हमारे समाजमें जितना जघन्य रूपसे पशु-भाव बढ़ता जा रहा है, नारीमें उतने ही देवी-भावकी आशा भी की जाती है! पहले तो इतना था कि पर्देमें रहकर यदि किसी नारीने किसी पुरुषकी तरफ़ देख लिया, तो बस उसे रास्तेपर उतरना पड़ता था। इतिहासमें मानव-प्रकृतिको कुचलकर, दम घोंटकर मारनेका इससे बड़ा दृष्टान्त नहीं दिखाया जा सकता है।

पिछले दिनों पूरे देशके ऊपर एक झंझावात आया, रक्त-वर्षा हुई, नदीका पानी इधरसे उधर हो गया, बाढ़ने इधर के पानीको उधरसे मिला दिया। प्रकृतिने मानव-अत्याचारका प्रतिशोध लेना चाहा और लिया।....पर हम वहीं खड़े हैं। हमारे इस समाज-रूपी जड़-वृक्षका एक पत्ता भी न टूटा। हिन्दू-जातिकी नारी-जाति इस दैवी प्रकोपके कारण छिन्न-भिन्न होकर चारों ओर क्रन्दन कर रही है, चीख रही है, चिल्ला रही है, रक्तके घूँट पी रही है, समाजको कोस-कोसकर जल रही है, लज्जा और ग्लानिसे घुल रही है। अब मरण-कामना ही उसकी प्रार्थना और जप है। आज तो मृत्यु उसके लिए अभिशाप नहीं, वरदान है। ये अभागिनें लौटना चाहें, तो भी लौट नहीं सकतीं। जिन माता-पिताने स्नेहसे उन्हें पाला, कभी आँखोंके ओझल नहीं किया, कभी ज़ोरसे घुड़की तक नहीं लगाई, उन माता-पिताकी याद करके वे काँप उठती हैं। वे ही आज वज्रदण्ड लेकर, भीषण रूप होकर, खड़े हैं। विधर्मियोंके घरोंमें बंद कोमलांगी कन्याएँ तो इसकी कल्पना-मात्रसे सिहर उठती हैं। किसी युवककी कल्पना करके शायद वे सोचती हों कि क्या कोई मेरी सच्ची परिस्थिति समझकर मुझपर इतनी भी दया नहीं करेगा कि इस नरकसे मानवताके नामपर ही उद्धार करनेका साहस दिखाय। पर कल्पनामें मूक भाषा गूँजकर मानो सघोष उत्तर देती है—नहीं। इस 'नहीं'की कर्कशतापर वह चीख उठती है। हिन्दू-समाज मूर्खोंके समान उसके सम्मुख दानवके सदृश्य खड़ा है। इस दानवको देखकर वह काँप उठती है। दूसरे ही क्षण वही माता, वही पिता, वही परिवार, वही प्यार, वही कोमलता, वही संस्कृति, वही आदर्श दाम्पत्य जीवनकी कल्पना उसके सम्मुख भीषण हो उठती है। अन्धकारमय रात्रिमें कितनी ही बार वह इस प्रकारकी कल्पनाएँ करती है, स्वप्न देखती है, सिहरती और चीखती है। फिर जब वह अपने पास एक समयके बलात्कार करनेवाले पुरुषको लेटा पाती है, तो उसकी कल्पनाका चित्रपट सहसा बदल जाता है। वह इस दानवको देखती है और सोचती है, यह मुझे कहींका न रखेगा। हज़ारों पुरुषोंके पाशविक अत्याचारका शिकार होनेसे तो यही अच्छा है कि एक राक्षसके अत्याचारमें ही सीमित रहूँ। कुछ मिले या न मिले, वास्तविक जगत्‌की सुख-स्वच्छन्दता देकर तो वह उसे रखेगा ही कि उसकी जातिकी वृद्धि हो।

पर हमारा दानव तो केवल पीसना ही जानता है। क्या ऐसी अवस्थामें अपने दैवी भावका वे पोषण कर सकती हैं? क्या इसी लांछित नारी-जातिकी सन्तति २५ वर्ष पश्चात् पाशविकता का प्रतीक होकर पिशाचके रूपमें हमें खाने नहीं दौड़ेगी? यह है वह चित्र, जिसके ऊपर पर्याप्त आलोक नहीं है। इसीसे यह अन्धकारमें पड़ा है। सबको यह दीखता नहीं। और जिनको यह दीखता है, वे इतिहासकी प्रदर्शनीमें इसे देखकर लौट जाते हैं या दो-एक दिन खानेकी मेज़पर समय काटनेकी कहानीके रूपमें कह-सुनकर अपना मन बहला लेते हैं। सरकारने इस चित्रको सहानुभूतिसे, सजल नेत्रोंसे, देखा और चेष्टा की इसकी उभरी मिट्टीको समतल करनेकी। पर इस विराट प्रश्नका विराट हल होना चाहिए—ऐसा समाधान कि वह समाजके रग-रगमें घुस जाय। उसे एक सूई (इंजैक्शन) के रूपमें होना पड़ेगा, जो हमारे समाज-रूपी पेड़को तो रखेगा, पर निर्जीव हुई उसकी दक़ियानूसीपनकी जड़को सुखा देगा—अर्थात् हमारी सामाजिक संस्कृतिको नष्ट न करते हुए दुष्कृतियोंका उन्मूलन कर देगा। इस समस्याका समाधान ही वह आलोक होगा, जो इस चित्रको उभार देगा। जैसे एक कलाकार एक काले कागज़पर सफ़ेद रंगसे दो-एक तूलिका मारता है, तो एक चित्रका आभास हो जाता है; जैसे एक पुजारी अन्धकारमय मन्दिरके प्रांगणमें प्रवेश करता है, तो अपने इष्टदेवकी मूर्तिकी कुछ रेखाएँ देख पाता है; उसी प्रकार अपने समाधानसे हम समाजकी सच्ची रूप-रेखा देख पावेंगे।

तो वह महत्त्वपूर्ण समाधान क्या है? वह है 'सृजन करो नूतन मन!' पुराने लकीरके फ़क़ीर होनेकी आवश्यकता नहीं है। जब इस दैवी प्रकोप, इस अनिष्टकारी झंझावात, ने आकर

इधरके जलको उधर मिला दिया है,-इस रक्तसे उस रक्तको मिला दिया है, तो अब हम आँखें खोलें और समझें कि समाजका काम धक्का देना नहीं, अपनाना है और बेधड़क रूपसे अपनाना। पुराने समाजकी दृष्टिसे चीज़ोंको देखनेसे काम नहीं चलेगा। नए उत्साहसे, नए उद्यमसे, नई भावनासे नए मनका सृजन करो। जो गिरा है, उसे ढकेलकर सदाके लिए फेंक न दो। और इसके लिए किसीकी तरफ़ ताकनेकी आवश्यकता नहीं कि दूसरा क्या कर रहा है। दूसरा करे या न करे, एक-एक निजी कर्त्तव्य-भावसे बेधड़क साहसको अपनावे, तो इन्हीं व्यक्तियोंकी समष्टि एक नए समाजकी रचना कर देगी। तब देखनेवाला पिछड़ा समाज इसका अनुसरण करेगा। बेधड़क साहसके साथ अपनानेका अर्थ होगा कि एक व्यक्ति यदि एक भी ऐसी लड़की को अपने परिवारकी एक कन्या-रूपमें ले ले, उसके सुख-दुःखको देखनेकी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ले, जहाँ उसकी मानवीय सुकृतिको सराहे, वहाँ उसकी प्रकृतिकी दुष्कृतियोंको भी सहे, समाजके थपेड़ोंको अमान्यकर सिर ऊँचाकर कमर सीधीकर चले, तो बहुत बड़ा काम हो सकता है। और तभी सृजन होगा नूतन मन, गठिन होगा नया समाज और मिट जावेगा दैन्य-दुःख-दर्द!

दो गीत

श्री जानकीवल्लभ शास्त्री

—१—

जो ऐसा ही मर्म धर्मका, क्यों वैसी बाँसुरी बजाई?
मैं चञ्चल जल नद-नदियोंका
कल-कल करता बहता रहता;
मेरे बिन्दु-बिन्दु पर क्योंकर
आँकी अतल सिन्धु-परिछाईं?

सघन तिमिरको गगन समझता,
जो मुझसे तुम तक है फैला;
गरज मोह पर मेरे क्यों फिर
विद्युत - दीप - शिखा दिखलाई?

कुञ्ज-कुञ्ज में दृग भरमाता,
सुमन-सुमन को मैं निहारता;
लेता यों अशेष का लेखा
क्यों विशेष रस-सुरभि उड़ाई?

छोड़ चुका जो अपने दुख-सुख,
मोड़ चुका मुख सगे-स्वजन से;
उसे भटकना पड़ा राह भर,
आह! क्षितिज-छवि क्यों छिटकाई?

—२—

कह रहा हूँ—मैं तुम्हारा, जय तुम्हारी!
प्यार में कब हार हारी? जीत प्यारी?
देख सकते ही नहीं सूखा हुआ मुख,
नयन में मेरे समा जाते नए घन!
अगम तम के यन्त्र से द्युति-मन्त्र से तुम
फूटते हो मधुरिमा के अमृत-निस्वन!
शून्य हो जाता सजग बहु-रंग-रुचि से
जब सजा जाते स्वयं तुम चित्रसारी!
शक्ति मेरी प्रगति ही करती रहे नित—
मन पवन न बने, न हो थिर बुद्धि कुण्ठित;
सन्तुलित हो हर्ष-शोक गृहीत-वर्जित,
आत्म-बल होने न पाए धूलि-लुण्ठित।
चिर-करुण कल्याण, प्राणाधिक, तुम्हारे
नित-नवल आघात की भी बात न्यारी!
कर्ण-कुहर भरे, हरे लोचन-युगल-फल
सघन क्रन्दनमय तिमिर तो घन नहीं है,
स्मिति उषाकी, विरस सन्ध्याकी उदासी—
विवश जन्म-मरण अरे जीवन नहीं है!
कर्म की शत शुक्तियों से, युक्तियों से—
तुम सिरजते मुक्ति-मुक्ता श्रान्ति-हारी!

मुक्ति

श्री पृथ्वीनाथ शर्मा

पात्र

नरेश—एक समृद्धिशाली नवयुवक।
नरेशकी बुआ तथा उसका परिवार।
नरेशकी मौसी तथा उसका परिवार।
श्रीखंड—नरेशका बाल-सखा।
लेडी-डाक्टर सरोजिनी—नरेशकी माँकी धर्म-बहन।
नीलांबरी—सरोजिनीकी भतीजी। नौकर आदि।

पहला दृश्य

[समय—बाद दोपहर। स्थान—प्रसिद्ध पहाड़ी नगरमें नरेशकी कोठीका विशाल ड्राइंग-रूम। कमरेके फ़र्शपर बहुत बढ़िया क़ालीन बिछा हुआ है। उसका रंग कई रंगोंका मिश्रण है, किन्तु गहरे गेरुआ रंगने अधिक स्थान घेर रखा है। क़ालीनके चारों ओर लगभग उसी रंगके नए ढंगके तीन सोफ़ा-सेट रखे हुए हैं। मध्यमें चमचमाती बिल्लौरकी तिपाई है। उसपर बिल्लौरका बड़ा फूलदान है, जिसमें विभिन्न वर्णोंके देशी और विलायती फूलोंका बड़ा गुलदस्ता रखा है। फूलोंकी हल्की महक कमरेमें फैल रही है। नरेश, जिसकी आयु लगभग २२ वर्षकी होगी, एक सोफ़ेपर अधलेटा-सा पड़ा है। ग्रे फलालैन की पतलून और सफ़ेद रेशमी कमीज़ पहने है। बाल कुछ अस्तव्यस्त-से हैं। मुँहमें पाइप दबाए है। कुछ पत्रिकाएँ तथा लिखने-पढ़नेका सामान उसके इर्द-गिर्द बिखरा हुआ है। एक पत्रिकाके पृष्ठ अवश्य उलट रहा है; किन्तु ऐसा मालूम देता है, जैसे उसका मन उस पत्रिकामें नहीं, कहीं और है। इतनेमें नौकर प्रवेश करता है।]

नरेश—क्या बात है?

नौकर—साहब, आपकी बुआ आई हैं।

नरेश (आश्चर्यसे)—मेरी बुआ! अकेली हैं?

नौकर—नहीं साहब, साथमें सत्रह-अठारह वर्षकी एक लड़की है और मनों सामान भी।

नरेश—लड़की है! सामान है! अच्छा, उनको इधर ले आओ।

(नौकर बाहर चला जाता है और कुछ ही क्षणोंमें नरेश की बुआ और उसकी लड़की प्रवेश करती हैं। नरेश उठकर उनका स्वागत करता है। उनको बैठनेका संकेत करता है और ध्यानपूर्वक उनकी ओर देखता है। बुआकी आयु लगभग पचास वर्षकी होगी। चेहरा लिपा-पुता है, किन्तु उसपर झुर्रियाँ साफ़ दीख रही हैं। सिरके बाल अधपके हैं। साड़ी बहुत सँवारकर पहन रखी है। लड़कीने नीले रंगकी सलवार-कमीज़ पहन रखी है। नाखून तथा होंठ लाल रंगसे रँगे हुए हैं। छोटी-छोटी आँखोंको काजलके बलपर महत्व देनेका विफल प्रयत्न किया गया है। ऊपरका होंठ निचले होंठसे ज़रा बड़ा है। हाँ, रंग अवश्य गोरा है।)

बुआ—तुम मुझे पहचानोगे तो क्या बेटा, क्योंकि तुम्हारे होश सँभालनेसे पूर्व ही हम लोग बर्मा चले गए थे। अब बीस वर्षोंके अनंतर वहाँसे आए हैं। अभी भी शायद न आते, यदि मैं तुम्हारे फूफाको न खो देती। (एकाएक वह सिसकने लगती है और उसके नेत्रोंमें आँसू आ जाते हैं।)

नरेश—किन्तु पिताजीने कभी आपका···

बुआ (बीचमें ही बात काटकर)—तुम्हारे पिताजी मनुष्य नहीं, देवता थे। और तुम्हारा चेहरा-मोहरा भी उनसे कितना मिलता-जुलता है! नीला, हमारे पास जो तुम्हारे मामाजीका फोटो है, उसमें वे क्या इन भैया-जैसे नहीं लगते?

नीला—बिलकुल वैसे ही ममी!

बुआ—भैया, कलकत्ते पहुँचते ही मुझे तुम्हारे देवता-स्वरूप पिता और प्रिय भाईके निधनकी सूचना मिली। मेरा हृदय धक्से रह गया। मेरे नन्हें-से लालका क्या हाल होगा, यह सोचते-सोचते नयनोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गई। उसी समय मैं अपने नन्हेंको धीरज बँधानेके लिए अधीर हो उठी। यदि कहीं मेरे पंख होते, तो मैं उसी दिन यहाँ पहुँच जाती।

नरेश—यह आपकी बड़ी कृपा है। अब आप लोग आराम कीजिए। सफ़रकी थकान दूर कीजिए। बाकी बातें फिर होंगी।

(नौकरको आवाज़ देता है। नौकर प्रवेश करता है।)

नौकर—क्या आज्ञा है, साहब?

नरेश—कोठीकी दाहिनी ओरके दोनों कमरोंमें इनका सामान लगवा दो। इनको साथ ले जाकर कमरे दिखा भी दो। फिर इनके नहाने-धोनेका प्रबंध करके चायकी तैयारी करो।

नौकर—बहुत अच्छा, साहब! आइए मेम साहब, आइए मिस साहब!

(नरेशकी बुआ तथा नीला दोनों नौकरके साथ चल देती हैं। नरेश सोफ़ेसे उठकर कमरेमें टहलने और सोचने लगता है।)

नरेश (स्वगत)—यह रहस्य क्या है? पिताजीकी तो कोई बहन थी नहीं। खैर, वे ज़रा दम ले लें, फिर सारी स्थिति स्पष्ट हो जायगी।

(नरेश अपने स्थानपर जा बैठता है। एक पत्रिकाको उठाकर उसे पढ़नेमें तन्मय हो जाता है। कोई लगभग आधा घण्टा योंही बीत जाता है। इतनेमें नौकर फिर आता है।)

नरेश—कर दिया सब प्रबंध? चायमें कितनी देर है?

नौकर—यों तो कोई देर न थी, पर अब तो कुछ देर लगेगी ही।

नरेश (ज़रा चकित स्वरमें)—वह क्यों?

नौकर—आपकी मौसी आई हैं।

नरेश—मौसी! यह कौन आ गईं? उनके साथ भी कोई लड़की है?

नौकर—जी हाँ, और एक उन्नीस-बीस वर्षका लड़का भी है। हाँ, सामान बुआजीसे थोड़ा कम है।

नरेश (होंठोंपर अद्भुत मुस्कानके साथ)—अच्छा, उन्हें भी दर्शनार्थ इधर ही आनेका कष्ट करनेके लिए कहो।

नौकर—बहुत अच्छा, साहब!

(नौकर उन सबको लेकर आधे मिनटमें पुनः प्रवेश करता है। नरेश उठकर खड़ा हो जाता है। 'नमस्ते भाई साहब'—मौसीकी दोनों सन्तानें ऊँचे स्वरमें उसका अभिवादन करती हैं। मौसी आगे बढ़कर प्यारसे उसके सिरपर हाथ फेरती हैं। नरेश सबको बैठनेके लिए कहता है, पर स्वयं खड़ा रहता है। वे सब लोग बैठ जाते हैं।)

मौसी (आँखोंमें आँसू भरकर अपने मलमलके दुपट्टेको सँभालती हुई)—मेरा राजा बेटा, माँ भी गई और अब पिता भी गए! मेरा लाल बिलकुल अपनी माँका रूप है। आज कहीं वे होतीं, तो तुम्हें देख-देखकर फूली न समातीं। पर होतीं कैसे! (एक दीर्घ निश्वास लेती है।)

नरेश (साहस करके)—मैंने आपको कभी देखा हो, ऐसा तो याद नहीं आ रहा।

मौसी—तुम मुझे देख ही कहाँ सकते थे? तुमने अभी होश भी नहीं सँभाला था कि तुम्हारे-हमारे सम्बन्धकी कड़ी ही टूट गई। मैंने कई बार उनसे कहा कि मुझे अपनी बहनके हृदयके टुकड़ेके पास ले चलो, किन्तु वे झिझकते ही रहे। दस-बारह दिन हुए हमने तुम्हारे पूज्य पिताके स्वर्ग सिधारनेकी हृदय-विदारक खबर अखबारोंमें देखी। मेरा तो दिल उड़ने लगा। फिर तो मैं इनके पीछे पड़ गई। इस आशामें कि वे भी साथ चलेंगे, उन्होंने इतने दिन तक मुझे रोके रखा; पर उन्हें फ़ुर्सत कहाँ! आखिर हमें अकेले ही आना पड़ा।

नरेश—आपकी बड़ी कृपा है।

मौसी (रुँधे हुए गलेसे)—बेटा, आखिर हुआ क्या था तुम्हारे पिताको?

नरेश—मौसीजी, यह लम्बी कहानी है। आप थकी होंगी। मुँह-हाथ धो लें, फिर सारी बातें कहूँगा।

(नौकरको आवाज़ देता है।)

नौकर (दाखिल होता हुआ)—क्या आज्ञा है, साहब? इनके लिए बाएँ हाथके दोनों कमरोंमें प्रबन्ध कर दूँ?

नरेश (ज़रा मुस्कराकर और छिपे हुए व्यंगसे)—हाँ, और अब शायद मेरी चाची आएँ! उनसे कह देना कि वे बहुत विलम्बसे आई हैं, अब यहाँ स्थान नहीं है!

नौकर (गम्भीर स्वरमें)—बहुत अच्छा।

(सबको साथ लेकर नौकर कमरेसे बाहर चला जाता है। नरेश ज्यों-का-त्यों खड़ा रहता है। उसे समझमें नहीं आता कि उसके साथ हो क्या रहा है? वह करे तो क्या? कुछ देर खड़े रहनेके अनन्तर वह फिर अपने स्थानपर बैठ जाता है और अपने-आपको पुस्तकोंमें खो देनेका प्रयत्न करता है। यों बैठे-बैठे उसे कुछ ही देर होती है कि नौकर फिर प्रवेश करता है।)

नरेश (संदिग्ध, किन्तु ज़रा भयभीत स्वरमें)—क्या चाची भी आ गईं?

नौकर—चाची तो नहीं, पर आपके कोई बालसखा आए हैं। यह कार्ड दिया है।

नरेश (कार्ड हाथमें पकड़कर उसे पढ़ते हुए)—श्रीखंड! मैंने तो यह नाम कभी नहीं सुना। खैर, ले आओ इन्हें भी।

(कुछ ही देरमें नौकरके पीछे-पीछे श्रीखंडजी प्रवेश करते हैं। घिसा हुआ भूसले रंगका सूट, फटा-पुराना बूट, रुआँसी सूरत, बेचैन नेत्र।)

श्रीखंड—नमस्कार, नरेश भैया!

नरेश—नमस्कार। मैं आपको....

श्रीखंड—पहचान नहीं सके, यही कहने जा रहे थे न? अब पहचान ही कौन सकता है? वे दिन हवा हुए, जब श्रीखंडकी ही चारों ओर चर्चा थी! अपनी छठी कक्षाकी बात याद करो, जब हम एक ही बेंचपर बैठा करते थे।

नरेश—छठी कक्षा! मैं तो स्कूलमें दाखिल ही सातवीं में हुआ था।

श्रीखंड (बिना घबराहटके)—सातवीं ही सही। पर जब आप पहचान ही नहीं रहे, तो किस्सा ही समाप्त है। वैसे मैं अपने बालसखाके साथ कुछ दिन बितानेकी नीयतसे आया था। खैर, अब सब व्यर्थ है। क्षमा माँगता हूँ। (उठनेका उपक्रम करता है।)

नरेश—इतनी उतावली न कीजिए। ज़रा बैठिए तो सही। मैं आपको यहाँ ठहरा तो लेता, पर अब यह सम्भव नहीं। आज ही मुझे प्रथम बार अपनी बुआ और मौसीने भी कृतार्थ किया है। मेरे यहाँ जो भी खाली कमरे थे, उनमें वे और उनकी सन्तानें विराज रही हैं।

श्रीखंड—कोई बात नहीं। मैं कहीं दूसरी जगह प्रबन्ध कर लूँगा। किन्तु मेरा दुर्भाग्य तो देखिए, गाड़ीसे उतरते ही गठकतरेका शिकार हो गया, जिसके कारण दो सौ रुपएसे हाथ धोना पड़ा! सोचा था, दो-एक दिन आपके यहाँ रहकर तार द्वारा रुपया मँगवा लूँगा। खैर! (उठ खड़ा होता है।)

नरेश (पतलूनकी जेबमें हाथ डालकर एक चमड़ेका बटुआ निकालता है। उसमें से दस-दस रुपएके पाँच नोट निकालकर उन्हें श्रीखंडकी ओर बढ़ाता है)—यह लीजिए, दो-एक दिन इनसे निकालिए, तब तक आपके रुपए आ जायँगे।

श्रीखंड (हाथ बढ़ाकर रुपए पकड़ते हुए)—आप इतना कष्ट कर रहे हैं! धन्यवाद। (तेज़ीसे कमरेसे बाहर हो जाता है।)

दूसरा दृश्य

[स्थान—लेडी-डाक्टर सरोजिनीका बैठनेवाला कमरा। एक सोफ़ेपर सरोजिनी, जिसकी आयु लगभग ४५ वर्षकी होगी, बैठी है। उसके साथ ही बैठी है नीलांबरी, जिसकी आयु कठिनतासे बीस वर्षकी होगी। वह एक भड़कीली नीले और सुनहले रंगकी साड़ी पहने है। रंग गोरा है, अंग सुडौल हैं। इतनेमें नरेश प्रवेश करता है। मुख मलीन है। कपड़े बेपरवाही से पहन रखे हैं।]

सरोजिनी—आओ नरेश, तुम कैसे भूल पड़े?

नरेश (थोड़ा मुस्करानेका प्रयत्न करते हुए)—विपत्ति खींच लाई है।

सरोजिनी—विपत्ति या विपत्तियाँ?

नरेश—विपत्तियाँ ही समझिए, आंटी!

सरोजिनी—अच्छा, बैठ तो जाओ। तुम नीलूको नहीं जानते क्या? इसने इसी वर्ष बी० ए० किया है।

नरेश (नीलूको नमस्कार करते हुए सामनेवाली कुर्सीपर बैठ जाता है)—इन्हें कहीं देखा अवश्य है, ऐसा याद आ रहा है।

नीलू—कालेजमें देखा होगा। 'मन जीते सब जीत' विषयके वाद-विवादमें मेरी-आपकी मुठभेड़ भी हो चुकी है!

नरेश—बिलकुल ठीक। अब सब-कुछ याद आ गया। उस वाद-विवादमें आपने मुझे पछाड़ा भी खूब!

सरोजिनी—नीलू, तुम तो अपनी राम-कहानी ले बैठीं। उस बेचारेकी विपत्ति-कथा भी तो सुनो।

नीलू—मैं दत्तचित्त हूँ।

नरेश—यह तो आपको पता ही है कि मेरे यहाँ एक मेरी बुआ और एक मेरी मौसी टिकी हुई हैं।

सरोजिनी—यह तो मैं जानती हूँ, किन्तु क्या यह पता चला कि वास्तवमें वे हैं कौन?

नरेश—बड़ी कठिनतासे इतना पता लगा पाया हूँ कि बुआ शहरके उस मुहल्लेकी रहनेवाली हैं, जिसमें जीवनके आरंभमें पिताजी कुछ मास रहे थे और मौसी उसी गाँवकी हैं, जहाँ माताजीने जन्म लिया था।

सरोजिनी—बस, यही सम्बन्ध है?

नरेश—जी हाँ। आज एक महीना होनेको आया है, किन्तु जानेका नाम नहीं लेतीं। कई बार उनका आपसमें इतना विकट झगड़ा होता है, जिससे आशा होने लगती है कि उन दोनोंका मेरे यहाँ रहना संभव नहीं होगा। पर दूसरे ही क्षण दोनों इस तरह घुल-मिल जाती हैं, मानो कभी झगड़ीं ही नहीं! (निराश स्वरमें) मुझे तो ऐसा दीखता है कि

आयु-पर्यन्त उनका भार उठाना पड़ेगा। बाकी जो-कुछ है, सो तो है ही, पर उनके कारण पूर्णतया मानसिक शांति खो बैठा हूँ। न कुछ लिख सकता हूँ, न पढ़ सकता हूँ और न सोच सकता हूँ। आंटी, क्या आप उनसे मुझे मुक्ति नहीं दिला सकतीं?

सरोजिनी (आश्चर्यसे)—मैं! सो कैसे?

नरेश (अनुनय-भरे स्वरमें)—कोई रास्ता निकालकर, आंटी, तुम्हें कुछ अवश्य करना होगा।

नीलू (सहसा बोल उठती है)—मैं यह काम कर सकती हूँ।

नरेश—आप!

सरोजिनी—वह कैसे?

नीलू—किन्तु नहीं। (सोचमें पड़ जाती है)

नरेश (प्रोत्साहन देते हुए)—कहिए तो सही।

सरोजिनी—अब पीछे क्यों हटती हो? जो-कुछ तुम्हें सूझा है, बताओ तो सही।

नीलू—बतानेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं। मेरे विचारसे केवल एक ही व्यक्ति उन लोगोंको निकाल सकता है—आपकी पत्नी। मैंने सोचा था, एकाध दिनके लिए यदि कहीं मैं वह रूप धारण कर लेती, तो उन्हें आपका घर छोड़ जानेके लिए विवश कर देती। किन्तु शायद यह न मेरे लिए उचित है और न आपके लिए ही। क्यों आंटी?

सरोजिनी (खिलखिलाकर हँसती है)—बहुत खूब! नीलू, रास्ता तो तुमने अद्‌भुत सोचा है।

नरेश—यदि यह पथ आपत्तिजनक न होता, तो मैं इनके पाँव पड़ जाता। पर क्या किसी भी तरह इस पथकी आपत्ति दूर नहीं हो सकती?

सरोजिनी—पथकी आपत्ति! यदि तुम दोनों निर्मल हृदयसे नाटक समझकर यह पथ पकड़ लो, तो वास्तविक आपत्ति रहती ही नहीं।

नीलू (ज़रा उत्सुकतासे)—उस दशामें व्यक्तिगत रूपसे आपको तो कोई आपत्ति नहीं होगी?

सरोजिनी—बिलकुल नहीं। नीलू, जैसे तुम मेरी बेटी हो, वैसे ही नरेश मेरा बेटा है। यदि तुम उसे मुसीबतसे छुड़ा सको, तो मैं प्रसन्न हूँगी।

नरेश (प्रार्थनात्मक स्वरमें)—तो आप कीजिए मेरा उद्धार, नीलांबरीदेवीजी! जो भी शर्तें आप रखेंगी, वे तो मुझे स्वीकार होंगी ही और साथ ही इस मुक्तिदानके लिए आयु-पर्यन्त मैं आपका यह उपकार न भूलूँगा।

नीलू (मुस्कराकर)—एवमस्तु! आप आज ही घर जाकर नौकरों द्वारा यह प्रसिद्ध करवा दीजिए कि आप कल सिविल-विवाह करने जा रहे हैं। रात किसी होटलमें काटिए, घरपर न रहिए। कल प्रातः ११ बजेके लगभग यहाँ आ जाइए। मैं तब तक आपकी प्रतीक्षामें तैयार बैठी रहूँगी।

नरेश (हँसी रोकते हुए)—अनेक धन्यवाद! (उठ खड़ा होता है) अब चलता हूँ। (खिला हुआ मुख लिए कमरेसे बाहर चला जाता है।)

तीसरा दृश्य

[**समय**—प्रातः बारह बजेसे ज़रा पहले। **स्थान**—नरेशका ड्राइंग-रूम। नरेश एक बहुत बढ़िया सूट पहने खड़ा है। निकट ही गद्देदार कुर्सीपर नीलू बैठी है। वह ज़रीकी एक बहुत बढ़िया मोतिया रंगकी साड़ी पहने है। होंठ लिप-स्टिक द्वारा रंजित हैं। चेहरा लिपा-पुता है। नाखून क्यूटैक्स द्वारा लाल किए हुए हैं। माँगमें सिंदूर तथा माथेपर लाल बिंदी है। भृकुटी चढ़ी हुई है।]

नीलू (ऊँचे स्वरमें)—तुम तो कह रहे थे, यह तुम्हारी कोठी है। क्या यह ठीक है?

नरेश—बिलकुल।

नीलू—तो इसके दाएँ भागमें कौन रहते हैं, बाएँमें कौन डेरा डाले हैं? यह तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया? यह कि तुम्हारे अधिकारमें इस कमरेके अतिरिक्त केवल एक ही और कमरा है, यह कि मुझे अपनी ही कोठीमें बंदिनीकी भाँति रहना होगा, तुमने मुझसे क्यों छिपाया?

नरेश (ज़रा खीझकर)—तो तुम क्या चाहती हो?

नीलू (झल्लाए हुए स्वरमें)—मैं चाहती हूँ, मुझे जहाँसे लाए हो, वहीं छोड़ आओ और तुम मज़ेसे अपनी बुआ और मौसीके साथ रहो। मेरा तो ऐसे वातावरणमें दम घुट जायगा। (उठकर खड़ी हो जाती है और ज़ोरसे ज़मीनपर पाँव पटकती है) चलो, अभी चलो।

(इतनेमें नौकर प्रवेश करता है।)

नौकर—साहब, मौसी कहती हैं कि उन्हें आज ही लौट जाना है। घरसे बहुत ज़रूरी बुलावा आया है।

नरेश—किन्तु…

नीलू—किन्तु-विन्तु कुछ नहीं। उनसे कह दो कि वे प्रसन्नतासे जायँ।

नरेश (स्वरमें थोड़ी चिन्ता भरकर नीलूकी ओर देखते हुए)—कहीं उन्होंने हमारी बातचीत तो नहीं सुन ली।

(बुआका प्रवेश। नौकर चुपकेसे बाहर चला जाता है।)

बुआ—तो तुम्हारे विचारमें हम बहरे हैं। हम भी आज जा रहे हैं। (नीलूकी ओर देखते हुए व्यंग्य-भरे स्वरमें)—लो, सँभालो अपना घर, बहूरानी!

(नीलू कुछ जवाब नहीं देती। अभिमान-भरे भावसे उसकी ओर केवल देख-भर लेती है। बुआ जल-भुनकर तेज़ीसे कमरेसे बाहर हो जाती है।)

नरेश (थोड़ा मुस्कराकर नीलूकी ओर देखते हुए)—नीलू, तुमने....

नीलू (घूरकर उसकी ओर देखती है)—ज़रा नौकरको तो बुलाओ।

नरेश—क्यों, क्या बात है?

नीलू—तुम बुलाओ तो सही।

(नरेश बाहर जाता है और नौकरको साथ लेकर लौट आता है।)

नीलू (नौकरसे काफ़ी ऊँचे स्वरमें)—क्या वे लोग जानेकी तैयारीमें लग गए हैं?

नौकर—जी हाँ।

नीलू (और भी ऊँचे स्वरमें)—जिस समय चले जायँ, मुझे सूचना देना। मैं अपने लिए कमरा पसन्द करना चाहती हूँ।

नौकर—बहुत अच्छा। (बाहर चला जाता है।)

नीलू (नरेशसे)—मुझे कुछ पुस्तकें ला दो। मैं उनके जाने तक उनका अवलोकन करूँगी।

नरेश (कुछ पुस्तकें हाथमें पकड़े हुए)—यह लो।

(नीलू पुस्तकें उससे ले लेती है। उनमें से एक पुस्तक छाँटकर अलग कर लेती है और बाक़ी पुस्तकें नरेशको लौटा देती है। उस पुस्तकको लेकर सोफ़ेपर बैठ जाती है और उसे पढ़नेमें तन्मय हो जाती है। नरेश कमरेमें टहलने लग जाता है और गहरे सोचमें डूबा हुआ मालूम देता है। कुछ समयके अनंतर नौकर प्रवेश करता है।)

नीलू (पुस्तकसे ध्यान हटाकर)—चले गए?

नौकर—जी हाँ।

नीलू—उन कमरोंको जरा साफ़ करवा दो। मैं थोड़ी देरमें उन्हें देखने आती हूँ।

नौकर—बहुत अच्छा। (बाहर चला जाता है)

नीलू—लीजिए नरेशजी, मैंने अपना वादा पूरा कर दिया। अब आज्ञा दीजिए।

नरेश (अर्ध-गंभीर वाणीमें)—तुम्हारे जानेके बाद यदि वे फिर लौट आयँ, तो?

नीलू (शरारत-भरे स्वरमें)—तो फिर तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। मैंने आयु-पर्यन्त यह भार उठानेका तो ठेका लिया नहीं था।

नरेश (स्नेह-सने अनुनय-भरे स्वरमें) यदि मैं तुम्हें आयु-पर्यन्त यह भार उठानेके लिए कहूँ, तो क्या सरासर भूल होगी? यह मैं मानता हूँ कि मेरे लिए ऐसा करना अपनी सामर्थ्यसे ऊँचा उड़नेका प्रयास है। पर क्या ऊँचाई इतनी अधिक है कि मेरा प्रयास हास्यास्पद बनकर रह जायगा?

नीलू (चौंककर नरेशकी ओर देखती है और एकाएक कुर्सीसे उठकर कमरेमें दो-चार डग भरती है। फिर थोड़ा मुस्कराती हुई नरेशके सम्मुख खड़ी होती है।) मैं पाँच मिनट बाद तुम्हारे प्रश्नका उत्तर दूँगी। अब तक कमरे शायद साफ़ हो गए होंगे। मैं उन्हें देखने जा रही हूँ। यदि मुझे उनमें से कोई सैट भा गया, तो फिर शायद मैं भार उठा सकूँ!

(नीलू कमरेसे बाहर चली जाती है। नरेश उठकर बेचैनीसे कमरेमें टहलने लग जाता है। कुछ ही क्षणोंके अनंतर नीलू पुनः प्रवेश करती है।)

नरेश (उत्सुकतासे)—क्यों?

नीलू (एक-एक शब्दको तौलते हुए)—एक सैट तो मुझे पसंद आ गया है।

नरेश (उल्लसित होकर)—नीलू, नीलू! (उसकी ओर बढ़ता है। पटाक्षेप।)

बापू और जवाहर

श्री जी० रामचन्द्रन्

बापूजीके सम्बन्धमें अपने विचरोंको और पूर्ण बनानेके लिए हमें उनके और जवाहरलाल नेहरूके सम्बन्धको अच्छी तरह जानना-समझना ज़रूरी है। अनेक दृष्टियोंसे जवाहरलाल पाश्चात्य अधिक हैं। कश्मीरियोंकी जिस जातिसे नेहरू-कुल चला है, उस जातिके लोग काफ़ी संख्यामें यूरोप गए हैं। जवाहरलाल की शिक्षा-दीक्षा भी पश्चिममें ही हुई और केम्ब्रिजसे लौटनेपर तो स्वयं उन्होंने भी कहा कि हिन्दुस्तानीसे ज़्यादा वे अंगरेज़ मालूम होते हैं। कदाचित् इसीलिए नेहरूजीकी राजनीति पाश्चात्य ढंगकी है। वे पश्चिमको और पश्चिमकी जनता उनको काफ़ी आसानीसे समझ सकते हैं।

इसके विपरीत बापू पश्चिमी राजनीति-विशारदोंके लिए एक पहेली-से थे। जवाहरलालके लिए राजनीति जातिगत रूप से ही धर्म-सी रही है, पर बापू उसे धर्ममूलक बनानेके लिए ही सतत सचेष्ट रहे। इसमें कोई संदेह नहीं कि अपनी असाधारण सूक्ष्म बुद्धिके कारण गांधीजी राजनीतिक दाँव-पेंचमें सदा बेजोड़ रहे—यद्यपि पाश्चात्य राजनीति या समाजशास्त्र-सम्बन्धी शायद एकाध लेख भी उन्होंने मुश्किलसे पढ़ा होगा। पर जवाहरलाल तो पाश्चात्य राजनीतिके पंडित हैं। फिर भी देशके कल्याणके लिए दोनोंका सहयोग-सम्बन्ध अटूट रहा।

पर ऐसा लगता है कि जहाँ गांधीजी इतना कठोर परिश्रम करके ७८-७९ वर्षकी अवस्थामें भी किसी अज्ञात शक्तिकी सहायतासे अपनी शक्तिको बनाए रख सके, वहाँ ५९ वर्षके जवाहरलाल ज़्यादा थके हुए लगते हैं। जिन्होंने दोनोंको पास-पास देखा है, उन्हें लगा होगा कि जहाँ बापूके चेहरेको चिर-यौवनका कोई गुप्त स्रोत सदा ताज़गी और दीप्ति प्रदान करता रहा है, नेहरूजीके चेहरेसे अधिक परिश्रमके कारण थकान और माँदगी ज़ाहिर होती है। बापू जहाँ अपनी शक्तिका संचयकर उसे आवश्यकतानुसार ही थोड़ा-थोड़ा खर्च करते थे, वहाँ जवाहरलालकी ताक़त मन और शरीरकी निरन्तर व्यस्तताके कारण खर्च होती रहती है। बापूकी शक्तिका स्रोत था शान्ति और उन सब प्रवृत्तियोंपर विजय, जो कि मन और शरीरको दुर्बल बनाती रहती हैं। जवाहरलाल सदा प्रगतिकी ओर अग्रसर होनेकी तत्परताके कारण मन और शरीरकी अस्वस्थतापर कभी ध्यान ही नहीं दे पाते। कई बार अनेक कामोंकी चिन्ताके बावजूद गांधीजीको स्वस्थ, स्थिर और शान्त देखकर जवाहरलाल कह उठते थे—'पता नहीं बापू किस अज्ञात स्रोतसे सतत अखूट शक्तिका अर्जन करते रहते हैं!'

अपनी जीवन्त श्रद्धाको लेकर बापू न सिर्फ़ चाहे जैसी कठिनाइयोंको सहन ही कर सकते थे, बल्कि उनमें से रास्ता भी निकाल सकते थे। जवाहरलाल बहादुर हैं, कठिनाइयोंसे वे कभी घबराते नहीं; पर उनके संघर्षमें आनेपर अपनी गुत्थियोंको सुलझानेमें उन्हें सदा बापूकी सलाह और मार्ग-प्रदर्शनकी अपेक्षा रही है। जब किसी बड़े कार्यका आह्वान करना हो, तो नेहरूजी अधीर एवं उतावले हो जाते हैं, जब कि बापू ऐसे मौकोंपर शान्त और स्थिर बने रहते थे।

ऊपर हमने जो-कुछ कहा है, उसका एकमात्र अभिप्राय यह दिखाना है कि ज़ाहिरा तौरपर बापू और जवाहर कितने भिन्न थे। फिर भी भारतके मुक्ति-यज्ञमें दोनोंने एक ही तरहके हथियारोंसे, बराबर एक साथ रहकर, जो महान कार्य किया है, वह भारत ही नहीं आजकी दुनियाके इतिहासकी एक अद्भुत घटना है। सामान्यतया यही कहा जाता है कि जवाहरलाल गांधीजीसे प्रभावित हो गए थे। यह बात ठीक भी है। पर साथ ही यह कहनेमें भी कोई अतिशयोक्ति नहीं कि बापूजी पर भी जवाहरलालका असाधारण असर पड़ा था। महान व्यक्ति ही इस प्रकार एक-दूसरेपर असर डाल सकते हैं।

किसी व्यक्तिपर असर डालना वास्तवमें महत्त्वकी बात है। पर किसी व्यक्तिसे प्रभावित होना और उस प्रभावका उपयुक्त उपयोग करना, यह भी कम महत्त्वकी बात नहीं। जहाँ जवाहरलालपर गांधीजीका असर पड़नेकी बात कहनेसे उनका माहात्म्य प्रकट होता है, वहाँ इस बातसे उनके माहात्म्यमें रत्ती-भरकी फर्क नहीं आता कि उनपर भी जवाहरलालका गहरा असर पड़ा था। अपनेपर किसीका असर होने ही न देना, तो आदमीकी कमज़ोरी है। जब भविष्यका कोई विद्वान इतिहासकार बापू और जवाहरके मित्र-वात्सल्यपूर्ण सम्बन्धको भलीभाँति चित्रित करेगा, तो आनेवाली पीढ़ियाँ जानेंगी कि भारतने कभी कैसा करिश्मा किया था!

कुमायूँ-प्रदेशका भविष्य

श्री सरलादेवी

हमारे देशने स्वाधीनता प्राप्त करनेके साथ ही एक नये युगमें प्रवेश किया है। अब तक उन कतिपय कार्यकर्ताओंके सिवा, जो गांधीजीके रचनात्मक कार्यक्रमको अमली जामा पहनानेका प्रयत्न कर रहे थे, हमारी देशभक्ति खास तौरसे कटु तथा विस्फोटक और अक्सर गैरजिम्मेदार आलोचना करने, जोशीले भाषण देने और जेल जाने तक ही सीमित रही है। लेकिन हमारे इस तरहके काम अब अतीतकी बातें हो गए हैं। ध्वंसात्मक कार्योंका समय अब खत्म हो गया है। अब हमारे सामने रचनाका युग है, जिसमें सब देशभक्त स्त्री-पुरुषोंको मिलकर देशके उज्ज्वल भविष्यका निर्माण करना चाहिए, जिसकी माँग एक अर्सेसे की जा रही है।

किसी भी इमारतको खड़ा करनेके लिए सबसे पहले उपयुक्त स्थानके चुनाव, ज़मीनकी सतह बराबर करने और योजनाके अनुसार मज़बूत नींव डालनेकी आवश्यकता होती है। इन प्राथमिक बातोंके बाद मज़बूत और सुन्दर इमारत खड़ी करना अपेक्षाकृत आसान हो जाता है। जब एक इमारत बनानेमें ऐसी बात है, तो एक नये राष्ट्र और सभ्यताके निर्माणमें तो यह और भी अधिक सच है। यदि हमें अपने राष्ट्रका निर्माण मज़बूत नींवपर करना है, तो हमें सबसे पहले अपने देशकी परिस्थितियोंका खूब बारीकीसे अध्ययन करना चाहिए। जब हम अपने देशकी परिस्थितियोंका सांगोपांग पर्यवेक्षण कर चुकें, तो फिर हमें सारे देशकी उन्नतिके लिए—देशके विभिन्न हिस्सोंकी आवश्यकताका खयाल रखते हुए—एक समीचीन योजना बनानी चाहिए। इसलिए यह आवश्यक है कि हम सबको सारे राष्ट्रकी एकताका ध्यान रखकर देशके बहुत दूरके भागोंकी भी सामाजिक और आर्थिक स्थिति सुधारनेमें खूब दिलचस्पी लेनी चाहिए; क्योंकि जब तक हमारे राष्ट्र-रूपी शरीरकी एक उँगली भी रोगग्रस्त है, हमारे समूचे राष्ट्रकी तन्दुरुस्ती खतरेमें है।

ऐसा ही एक दूरस्थ प्रदेश हिमालयकी तराईमें है, जिसमें गढ़वाल, नैनीताल और अल्मोड़ाके कस्बे हैं और जो कुमायूँके पहाड़ी प्रदेशके नामसे प्रसिद्ध है। यह पहाड़ी प्रदेश भवारके अत्यन्त घने और उष्ण जंगलोंसे लेकर उन बर्फीली पहाड़ियों तक फैला है, जहाँ सदा बर्फ जमी रहती है। इन पहाड़ियोंपर देवदार और शीशमका घना जंगल है। ये विभिन्न ऊँचाईसे ढँके पहाड़ोंकी ओर बढ़ते गए हैं। इन पहाड़ियोंके बीचमें नदी की घाटियाँ हैं, जिनमें से कुछ गहरी और तेज़ प्रवाहवाली हैं तथा कुछ चौड़ी और उपजाऊ हैं, जिनकी ऊँचाई २००० और ५००० फीटके बीच है। इन हिस्सोंमें विभिन्न प्रकारकी आबहवा होते हुए भी सब प्रकारके अनाज, दालें, सब्जियाँ और फूल आदि थोड़े-से फासलेसे काफ़ी मात्रामें पैदा किए जा सकते हैं। जंगलोंसे ईंधनके लिए लकड़ी, सूखे पत्तों और टहनियोंसे खाद और मवेशियोंके लिए घास तथा अन्य प्रकारका चारा प्राप्त होता है। नीचे ढलती हुई नदीकी घाटीमें सिंचाईका काम अपेक्षाकृत आसान हो गया है। यहाँ काफ़ी वर्षा होती है, लेकिन केवल कुछ महीनोंकी तेज़ वर्षा बिना आबपाशीके फ़सलको जीवित रखनेमें असफल होती है। इन परिस्थितियोंके कारण थोड़े-थोड़े फ़ासलेपर कुछ ऐसे छोटे-छोटे खेत हैं, जिनके किसान (करीब ९० फी-सदी ज़मीनके मालिक किसान ही हैं) यह कह सकते हैं कि वे अपनी आवश्यकतानुसार अनाज, साग-सब्जी आदि स्वयं पैदा कर लेते हैं। इसी तरहके एक किसानने, जो उत्तरीय रामगंगाके किनारे रहता था, मुझसे १९४१ में कहा था—"कोई दिन ऐसा नहीं जाता, जिस दिन हमें अपने खेतसे चार-पाँच प्रकारकी सब्जियाँ और फल न मिलते हों, और केले तो हमें वर्ष-भर रोज़ ही मिलते हैं। हम न सिर्फ़ अपनी आवश्यकताके सब प्रकारके अनाज, दालें और मिर्च-मसाले ही अपने यहाँ पैदा कर लेते हैं, बल्कि अपनी ज़रूरतका गुड़, दूध, मक्खन, घी आदि भी बना लेते हैं। ऊन कात और बुनकर हम अपनी आवश्यकताके गरम कपड़े भी तैयार कर लेते हैं। बाहरसे सिर्फ़ सूती कपड़ा, मिट्टीका तेल और नमक खरीदते हैं। बाहर कुछ ऊँचाईपर एक पुराना बेकार चर्खा पड़ा हुआ है। इससे अनुमान होता है कि हमारे पूर्वज रुई पैदा करते थे और अपनी आवश्यकताका सूती कपड़ा भी स्वयं ही तैयार कर लेते थे। अगले साल मैं रुई और

सरसों बोऊँगा और तब हमें सिर्फ़ नमक ही बाहरसे खरीदना पड़ेगा।"

इस तरहकी अनुकूल प्राकृतिक परिस्थितियोंने ही उन पहाड़ियोंको पैदा किया है, जो मैदानके शहरोंमें अपनी ताक़त और कला-कौशलके लिए प्रसिद्ध हैं। यदि प्रकृतिका यह वरदान उन्हें न मिला होता, तो मैदानोंसे इतने दूर और ऐसी पहाड़ियों से, जिन्हें पैदल या टट्टू द्वारा ही पार किया जा सकता है, घिरे इन लोगोंकी अस्तित्व-रक्षा ही कठिन थी। गांधीजीके स्वावलम्बनके सिद्धान्तानुसार अभी हाल तक ये परिस्थितिवश एक स्वावलम्बी जातिके रूपमें ही परिचित रहे हैं। पर जबसे इन पहाड़ी स्थानों तक मोटरकी सड़कें बनी हैं—इसकी अभी शुरुआत ही हुई है—सरकारकी उपेक्षाके बावजूद इन स्थानोंकी
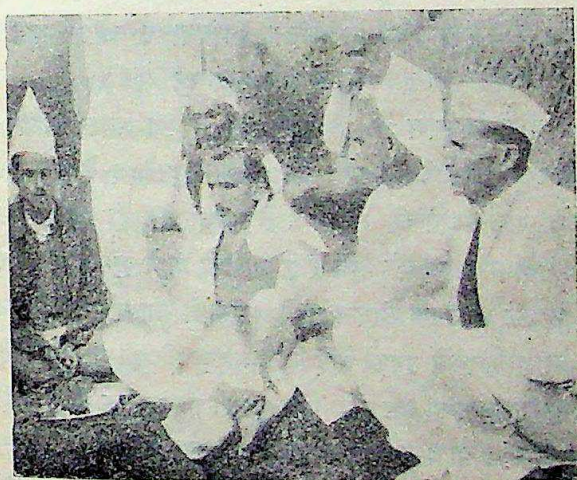
आचार्य कृपलानीकी उपस्थितिमें आश्रमका शिलान्यास

आबादी बढ़ी है और इनकी स्थितिमें परिवर्तन हुआ है। इन सड़कोंसे कुछ पहाड़ी हिस्सोंमें यात्रा और यातायात अपेक्षाकृत सुगम हो गया है। अब पहाड़ोंकी बनी चीज़ें आसानीसे बाहर मैदानोंको भेजी जा सकती हैं और वहाँसे मशीनकी बनी चीज़ें पहाड़ोंमें आ सकती हैं। इसलिए ऐसे स्थानोंपर यह असर हुआ है कि वे अपने स्वावलम्बनकी नीतिको तेज़ीसे छोड़ते और अपनी चीज़ोंकी एवज़में रुपया कमानेकी प्रणालीको अपनाते जा रहे हैं। फलस्वरूप आबादी बढ़ती जा रही है और खेती आदिके लिए अतिरिक्त ज़मीन न होनेसे जो लोग पहाड़ी दस्तकारियोंमें हाथ नहीं बँटा सकते, उन्हें नौकरीकी तलाशमें मैदानोंकी ओर जाना पड़ रहा है। अब जंगलात-विभागने पहाड़ियोंसे जंगलके मुफ्त उपयोगका अधिकार भी छीन लिया है, जिसके परिणाम-स्वरूप अनेक जगहोंमें ईंधन और घास-चारे की कमी हो गई है। उपर्युक्त कारणोंसे इस पहाड़ी प्रदेशकी आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियाँ बदल रही हैं, जिससे इस क्षेत्रके पुनर्निर्माणकी समस्या ज़रा पेचीदा बन गई है। इसी-लिए बहुतसे लोग यह तय नहीं कर पा रहे कि आया इन पहाड़ी स्थानोंको अपनी आवश्यकतानुसार चीज़ें पैदाकर केवल अतिरिक्त पैदावारको ही बाहर भेजना चाहिए अथवा मोटर-यातायातका अधिकाधिक उपयोगकर केवल बाहर भेजने लायक चीज़ें ही तैयार करनी चाहिएँ।

इस समस्यासे सम्बन्धित वहाँकी स्त्रियों और बच्चोंकी सामाजिक दशा भी है, जो कई दृष्टियोंसे मैदानकी स्थितिसे भी खराब है। परिस्थितिवश वहाँकी स्त्रियोंको हल जोतने, सिंचाई करने और खेतोंकी पाल बाँधनेके सिवा कृषि-सम्बन्धी अन्य सारे कार्य और जंगलोंसे लकड़ी, पत्ते और घास-चारा आदि लाने तक करने पड़ते हैं। पहाड़ियोंके घर और बच्चे मैदानके गाँवोंकी अपेक्षा ज़्यादा उपेक्षित स्थितिमें हैं। इससे पहाड़ोंके पुरुष अधिक आलसी और आरामतलब हो गए हैं। वे प्रायः कठोर परिश्रमसे बचनेके लिए ही नौकरी करने मैदानोंमें चले आते हैं। इसका भी यहाँकी सामाजिक स्थितिपर बड़ा अस्वस्थ असर पड़ा है। आज जिस रूपमें विकास हो रहा है, होना तो यह चाहिए कि पारिवारिक इकाईमें जीविकोपार्जन तो पुरुष करे और मातृत्व एवं गृहिणीकी जिम्मेदारी स्त्री सँभाले। पर इस प्रदेशमें तो अनेक पुरुष खुल्लमखुल्ला यह मंजूर करते हैं कि 'हम अपनी स्त्रियोंकी कमाई खाते हैं!' तब भला यहाँके सामाजिक विकास को स्वस्थ कैसे कहा जा सकता है? पहाड़ियोंमें अब यह प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है कि खेतोंका काम सम्हालनेकी ज़िम्मेदारी अपनी स्त्रियोंपर छोड़कर खुद मैदानोंमें जाकर बसने लगे हैं। इससे भी सामाजिक स्थिति खराब होती जा रही है।

ऐसी दशामें इन स्थानोंके भावी विकासकी किसी भी तरह की योजना बनाते समय इस बातका ध्यान रखना ज़रूरी है कि वह उद्योगकी सहायक दस्तकारियोंकी उन्नतिके ढंगपर ही हो, जिससे कि जहाँ पुरुषोंको पूरा काम मिले और नकद रुपएकी माँग कम हो, वहाँ स्त्रियोंका कृषि-सम्बन्धि कार्योंका मौजूदा भार कुछ हल्का हो, ताकि वे घर और बच्चोंकी देख-भाल ज़्यादा अच्छी तरह करनेके लिए समय निकाल सकें। वैसे भी पहाड़ोंके

लिए मोटर-यातायातके महँगेपनके कारण अपने यहाँकी चीज़ोंका निर्यात घाटेका ही सौदा रहेगा।

पहाड़ोंपर अनेक प्रकारके उद्योग-धन्धोंकी उन्नति की जा सकती है। उनमें से कुछ ये हैं—(१) पैदावार बढ़ानेके लिए खेतीके तरीकोंमें तरक्की करना और साथ ही जंगल साफ़कर अधिक क्षेत्रको खेतोंमें परिणत करना; बढ़ती हुई ज़मीनकी कटनको, जो पहाड़ों और मैदानोंके कृषि-जीवनके लिए खतरनाक है, दूर करनेके लिए पर्याप्त प्रयत्न करना। (२) ऊन कातने और बुननेके उद्योगको अधिक बड़े पैमानेपर करना। अभी यह तिब्बतसे आनेवाली ऊनसे ही किया जाय, पर साथ ही इस बातका भी प्रयत्न होना चाहिए कि अच्छी ऊन देनेवाली भेड़ोंको पाला जाय। यह कोई बहुत मुश्किल काम नहीं है। (३) जड़ी-बूटियोंका उत्पादन और संग्रह तथा उनके औपचारिक उपयोगके लिए बाज़ारकी तलाश। आधुनिक वैज्ञानिक ढंगसे मधुमक्खी पालना। (५) जंगलात-विभागके अधिक सहयोग एवं सहानुभूतिपूर्ण रुखके साथ गोशालाओं और दूधसे तैयार होनेवाली चीज़ोंका विकास। (६) इन पहाड़ी प्रदेशोंकी आबहवा फलोंकी उपजके लिए बड़ी ही अनुकूल है। केवल ताज़े खानेके लिए ही नहीं, बल्कि अचार-मुरब्बे और बन्द डिब्बोंमें सुरक्षित रखनेके लिए भी अनेक प्रकारके फलोंकी पैदावार यहाँ की जा सकती है। (७) गुड़ बनाने, चमड़ेकी धुलाई, रँगाई, साबुन और कागज़ बनानेका सामान भी कमोवेश लगभग सारे पहाड़ी स्थानोंमें पाया जाता है। अतः इन उद्योगोंको भी बढ़ाया जा सकता है। इन सब उद्योग-धन्धोंको सहकारी तरीकेपर ही बढ़ाना चाहिए। इसका प्राथमिक उद्देश्य होना चाहिए स्थानीय माँगको पूरा करना। पहाड़ी लोगोंके रहन-सहनके स्तरको ऊँचा करना और अतिरिक्त पैदावारको बाहर भेजना या उसके बदलेमें यहाँके लिए आवश्यक अन्यान्य सामान मँगाना।

ऊपरकी पंक्तियोंमें हमने जो सुझाव पेश किए हैं, उनका सम्बन्ध पहाड़ी जीवनके केवल अर्थनीतिक पहलूसे ही है। पर मानवता इससे भी बड़ा महत्त्वपूर्ण पहलू है।-इस तथ्यको बार-बार दोहरानेकी आवश्यकता नहीं कि हमारी शिक्षा-नीतिमें आमूल-चूल परिवर्त्तन होना चाहिए और पहाड़ोंमें तो खास तौरसे। यदि हमें वहाँके ग्रामीण जीवनकी हालतमें सुधार करना है, तो यह आवश्यक हो जाता है कि हम स्त्री-पुरुषोंकी समूची नई पीढ़ीको शिक्षित करें, ताकि वे वैज्ञानिक दृष्टिकोण और ज्ञान द्वारा अपने घर, जंगल और खेत-सम्बन्धी कर्त्तव्योंका योग्यतापूर्वक पालन कर सकें। जब तक समूचे पहाड़ी प्रदेशमें स्त्रियों तथा लड़कियोंके लिए उपयुक्त शिक्षाका प्रबन्ध नहीं होता, तब तक हम पहाड़ोंकी सामाजिक और तदनुसार वहाँकी अर्थनीतिक स्थितिमें किसी स्थायी उन्नति या विकासका स्वप्न भी नहीं देख सकते।

कस्तूरबा महिला-उत्थान मंडल

इसी उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिए मई १९४६ में कस्तूरबा महिला-उत्थान मंडलकी नींव डाली गई। इसकी योजना यह है कि अभी इसे लड़कियोंकी कृषि और घरेलू उद्योगकी प्रारंभिक शिक्षा देनेवाली प्राथमिक शालाके रूपमें आरंभ किया जाय, जो आगे चलकर बुनियादी और उससे पहलेकी शिक्षा, गो-पालन, चिकित्सालय, पुस्तकालय, वाचनालय और सरकारी स्टोर आदिसे युक्त एक पूरा शिक्षण-केन्द्र बन सके।

बाल-विभाग : ५ दिसम्बर, १९४६ को आश्रमके बाल-विभागका उद्घाटन हुआ। पहली वर्षमें इसके ६ से १२ वर्ष तकके बाल-सदस्योंकी संख्या २ से बढ़कर ११ हो गई। कुछ बच्चे पड़ोसके गाँवोंसे भी रोज़ पढ़नेको आने शुरू हुए। पर चूँकि न तो उनके संरक्षक इसके महत्वको समझते थे और न आश्रमके उद्देश्योंसे उनकी कोई दिली सहानुभूति ही थी, उनमेंसे अधिकांशका आना छूट गया और स्थायी रूपसे सिर्फ़ दो बच्चे ही आ रहे हैं। अतः यथार्थमें बाल-विभाग लड़कियोंका ही आश्रम बन गया है, जिसका उद्देश्य है 'जीवनके द्वारा शिक्षा'। सीधे-सादे ये पहाड़ी बच्चे किस उत्साह और लगनसे एक किसानके घरेलू कार्योंको करते हैं, यह देखकर कम आनन्द नहीं होता। साल-भर बराबर वे आश्रमकी पानी और ईंधनकी आवश्यकताओंको बखूबी पूरा करते हैं। आश्रमके लिए अन्न और बर्तन जुटानेसे लेकर चौका लीपने तकका सारा काम वे ही करते हैं। पहले आश्रमका अहाता बेकार पड़ा था, किन्तु बच्चोंने इसका उपयोग ढूँढ़ निकाला है। मवेशियोंके अभावमें जंगलसे गोबर आदि लाकर वे अहातेके गढ़ोंमें कम्पोस्ट-खाद तैयार करने लगे हैं। दूसरे क़िस्मकी खाद वे अहातेमें बने गढ़ोंके पाखानोंसे तैयार करते हैं। यद्यपि आश्रमकी ज़मीन बहुत उर्वर नहीं है, तथापि इन खादोंकी सहायतासे उसमें कई चीज़ोंकी खेती होने लगी है और धीरे-धीरे वह उर्वर होती जा

रही है। चौमासेमें हमें अपनी आवश्यकताकी सारी साग-सब्ज़ी इसीसे मिल जाती है। आश्रमका बगीचा पहले बड़ा उपेक्षित था और उसके कई पेड़ोंमें कीड़े लग गए थे। उन्हें काट-छाँटकर ठीक किया गया है और आशा की जाती है कि निकट भविष्यमें ही उनसे कुछ आय होने लगेगी। इन कामोंके सिवा बच्चे नियमित रूपसे कातते हैं। जो उम्रमें कुछ बड़े हैं, उन्होंने अपने काते हुए सूतसे अपने और अपने साथियोंके लिए बनियान आदि बुने हैं। बहुतोंने सीना भी सीख लिया है और आशा की जाती है कि शीघ्र ही आश्रमवासियोंके कपड़ोंकी सिलाई और मरम्मतका काम यहीं करने लगेंगे। इस प्रकार जीवनका उद्योग ही हमारी शिक्षाका प्रमुख माध्यम है।

व्यावहारिक नागरिकता

इस प्रकार बगीचे, घर और जंगलमें दैनन्दिन कार्यसे बच्चे सहयोग और सहकारके जीवनकी शिक्षा ले रहे हैं। इससे स्वभावतया उनमें स्वावलम्बन, नेतृत्व और ज़िम्मेदारीकी भावना पैदा हो रही है। बगीचे और जंगलके कार्योंने उनमें प्रकृतिके आश्चर्योंको समझने और उसके सौन्दर्यको सराहनेकी भी क्षमता एवं अभिरुचि पैदा की है।

मातृभाषा और अंकगणित : आश्रम, घर और जंगल की परिस्थितियोंमें रहकर और प्रकृतिका निरीक्षणकर बच्चे अपनी रोज़की बातों, कामों, पर्यवेक्षण, अनुभवों, घटनाओं आदिकी जो डायरी लिखते हैं, वह कम दिलचस्प नहीं है। इन डायरियोंको देखनेसे पता चलता है कि जीवन और समाज के विभिन्न पहलुओंके सम्बन्धमें इनमें कितनी गहरी जिज्ञासा है। आश्रमकी साप्ताहिक बैठकोंमें ये बच्चे अपनी देखी हुई चीज़ों, घटनाओं और समस्याके बारेमें निःशंक-निःसंकोच अपनी मातृभाषामें अपने विचार प्रकट करते हैं। इधर आश्रममें कई उत्सव मनाए गए। वसन्त-पंचमी, कस्तूरबा-दिवस (शिवरात्रि) और दो फसलोंके त्योहार बड़े समारोहपूर्वक मनाए गए। अन्तिम दोनों उत्सवोंके अवसरपर शिशु-प्रदर्शिनी भी हुई। जिस उत्साह और आनन्दके साथ बच्चोंने इनमें भाग लिया, इनका आयोजन और इन्हें सफल बनानेका प्रयत्न किया, अपने गीत, नृत्य और कविताएँ पेश कीं, वह सब देखकर उज्ज्वल भविष्य की आशा बँधती थी। इसने आस-पासके ग्रामीणोंको प्रभावित एवं आकर्षित किया है। अपने कामों, आय-व्यय और स्वावलम्बनके जीवनके द्वारा बच्चोंमें स्वभावतया हिसाब-किताब अथवा आय-व्यय रखनेका भी अनुराग जागा है और एक प्रकारसे खेल-ही-खेलमें उन्हें अंकगणितकी सामान्य शिक्षा भी मिलने लगी है।

स्वास्थ्य और सफ़ाई : अपने दैनन्दिन जीवनमें ही आश्रमवासियोंने शरीर-रचना, उसकी सफ़ाई, स्वास्थ्यके सामान्य नियम, रोगोंके कारण, छूतसे बचना, रोगोंका प्रतिरोध और उपचार आदिका सहज ज्ञान भी प्राप्त कर लिया है। आश्रमके चिकित्सालयका प्रमुख उद्देश्य उपचारसे अधिक रोगका प्रतिकार और तत्सम्बन्धी शिक्षण ही है। स्टाफ़की कमी और कार्याधिक्यके कारण इसका काम अधिक नहीं बढ़ सका है। इस वर्ष २३९४ रोगियोंको साधारण दवाइयाँ दी गईं और आश्रमके कार्यकर्त्ताओंने आसपासके गाँवोंके ३१ दौरेकर ८७८ रोगियोंको दवा दी। गत वर्ष ४८२ रोगियोंको दवाइयाँ बाँटी गई थीं। साधन-सुविधा होनेपर इसके द्वारा सहज ही ५००० रोगियोंको दवा बाँटी जा सकती है। इसका उद्देश्य रोगियोंको दवा बाँटना न होकर स्वास्थ्य-शिक्षाके प्रचारका है। रोगियों की संख्या बढ़नेसे ज़ाहिर है कि लोग बीमारियोंके इलाजकी ओर ध्यान देने लगे हैं। पर असली सफलता तो तब मिलेगी, जब कि लोग स्वास्थ्यको ठीक रखकर जीना सीखें और अपनी सन्तानोंको पूर्णतया स्वस्थ एवं नीरोग रखें। पिछले वर्ष फसलोंके त्योहारोंके अवसरपर दो शिशु-प्रदर्शिनियाँ की गई थीं। पहली में आठ और दूसरीमें पचीस बच्चे लाए गए थे। दूसरी प्रदर्शिनीमें आसपासकी काफ़ी स्त्रियाँ आईं और शिशु-पालन-संबंधी सामान्य जानकारी प्राप्त करके लौटीं।

वाचनालय और पुस्तकालय : आश्रमके साथ एक छोटा-सा वाचनालय एवं पुस्तकालय भी है। वाचनालयमें इस समय 'हिन्दुस्तान', 'हरिजन-सेवक', 'प्रजाबन्धु', 'शक्ति', 'कर्मभूमि', 'कर्मयोग', 'गाँवोंकी बात', 'कल्याण', 'ग्राम-उद्योग-पत्रिका', 'शिशु', 'खादी-जगत्', 'भूगोल', 'नई तालिम' आदि पत्र-पत्रिकाएँ आते हैं। पुस्तकालयमें इस समय ६०० के लगभग पुस्तकें हैं। शिक्षणके इस कार्यमें अभी विशेष उन्नति नहीं हुई है।

ट्रेनिंगकी व्यवस्था : कस्तूरबा राष्ट्रीय स्मारक-ट्रस्टने आश्रमको पहाड़ी गाँवोंमें सेवा एवं शिक्षण-कार्य करनेके लिए सेवक-सेविकाएँ तथा बुनियादी तालिमके शिक्षक-शिक्षिकाएँ तैयार करनेके केन्द्रके रूपमें स्वीकार किया है। शिक्षण प्राप्त

करनेवाली पहली बहन आदिगाँवकी कुमारी मोहिनीदेवी फालोदिया हैं, जिनका शिक्षण इसी मासके अंतमें पूरा हो जायगा। दूसरी बहन श्रीमती अम्बिकादेवी हैं, जिन्हें गढ़वाल की ओरसे स्वास्थ्य, सफ़ाई, ग्रामोंकी सफ़ाई आदिकी शिक्षा प्राप्त करनेको भेजा गया था। वे अपनी शिक्षा-समाप्तकर गढ़वालके गाँवोंमें सेवा-कार्य कर रही हैं। वहाँके गाँवोंमें वे 'नीम-हकीम' के रूपमें प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी हैं। गत सितम्बर से एक और बहन श्रीमती हेमन्तीदेवी सनवाल दाईके कार्यकी प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने आई हैं। ये शीघ्र ही प्रयागके कमला नेहरू अस्पतालमें पूर्ण शिक्षा प्राप्तकर अल्मोड़ा-ज़िलेमें ट्रस्टके तत्त्वावधानमें खुलनेवाले ज़चागृहका संचालन करेंगी।

अर्थ और आवश्यकताएँ : ऊपरकी पंक्तियोंमें जो-कुछ कहा गया है, वह आश्रमके कार्यका श्रीगणेश-मात्र है। रोगियोंकी संख्याके साथ ही हमारे चिकित्सालयकी साधन-सुविधाओंको बढ़ाना भी अनिवार्य हो रहा है। इसमें एक पूरा समय दे सकनेवाले सेवककी आवश्यकता जान पड़ रही है। बच्चोंके दूधके लिए एक छोटी-मोटी गोशालाकी व्यवस्था भी अपेक्षित है। लड़के-लड़कियोंकी देख-रेख और भावी सेविकाएँ तैयार करनेके लिए एक सेविका (मेट्रन) की भी ज़रूरत है। जंगलात-विभागकी ओरसे जो ज़मीन हमें मिली है, उसमें आश्रमवासियोंके लिए एक भवन, गोशाला, नहाने-धोने और पानी जमा करनेका तालाब आदि बनानेकी आवश्यकता भी है। इन सबकी पूर्त्तिके लिए अर्थकी आवश्यकता है। इस वर्ष आश्रमका एकमुश्त खर्च १०८८।≶)॥। और चालू खर्च ४२९।-)। रहा और आय २६५८।।)॥। रही। अगले वर्ष मोटा-मोटी यह खर्च ३०००) होनेकी संभावना है। आश्रमको हुई आयमें से ५००) प्रान्तीय सरकारके ग्राम-सुधार-विभाग और १०००) डाक्टरी विभाग द्वारा मिला तथा शेष कृपालु दानियों से। जिन्होंने हमें सहायता दी, उनके हम हृदयसे आभारी हैं। पर बढ़ती हुई आवश्यकताएँ हमें अधिक भीख माँगनेको मजबूर कर रही हैं। क्या हम आशा करें कि देशके विचारशील सम्पन्न भाई-बहन इस दिशामें हमारी पर्याप्त सहायता करेंगे?

पर सबसे अधिक आभारी हैं हम उन ग्रामीण माता-पिताओंके, जिन्होंने अपने लड़ते बच्चोंको हमें सौंपा है। ऐसा करके उन्होंने देशभक्ति और आत्म-त्यागका उदाहरण उपस्थित किया है और साथ ही अशिक्षित-असहाय परिवारोंके बच्चोंको शिक्षा प्राप्तकर अधिक पूर्ण और सार्थक जीवन बितानेका अवसर भी दिया है। साथ ही उन्होंने ग्रामीण जनताके शिक्षित, स्वावलम्बी, समृद्ध, सुखी और स्वस्थ होकर बेहतर ज़िन्दगी बसर करनेका मार्ग प्रशस्त करनेवाले मशाल-वाहकोंको तैयार करनेके हमारे स्वप्नको मूर्त्त होनेका मौक़ा भी दिया है। उन्होंने अपने तथा अपनी सन्तानके स्वप्नोंको पूरा करनेके लिए भी हम में जो विश्वास प्रकट किया है, उसके लिए हम उनके आभारी हैं और उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि उनकी यह प्रतीति कभी व्यर्थ नहीं जायगी। यदि जनताका सब प्रकारका सहयोग-समर्थन हमें प्राप्त होता रहा, तो वह दिन दूर नहीं है, जब कुमायूँके इन पहाड़ी गाँवोंमें फिर नन्दन-वनकी-सी सुख-सुविधा, समृद्धि, शान्ति और स्वस्थताका साम्राज्य होगा।

बिखरे पन्ने

'प'

उस दिन मासिक पत्रोंमें आचार्य द्विवेदीजीके प्रकाशित पत्रोंको पढ़कर एकने मुझसे पूछा कि द्विवेदीजीके इन पत्रोंकी ऐसी क्या विशेषता है, जिसके कारण सभी पत्रोंमें उनको आदरणीय स्थान दिया जाता है? उनमें न वह भावोंकी सरसता है, जो काउपरके पत्रोंमें है और न तत्कालीन समाजका वह सजीव चित्रण ही है, जो पेस्टनके पत्रोंमें है। मुझे उसने यह कहा कि एकमात्र भक्ति-भावसे प्रेरित होकर हिन्दीके सम्पादक-वृन्द द्विवेदीजीके इन पत्रोंको छाप रहे हैं; पर सच्ची बात यह है कि द्विवेदीजीके उन पत्रोंमें पत्रकी कला नहीं है, कार्डकी कला है। उनमें स्पष्ट बात स्पष्ट भाषामें कही गई है। उनमें अलंकार नहीं है, आडम्बर नहीं है, प्रदर्शन नहीं है, कृत्रिमता नहीं है। उनमें निश्छल भावकी निश्छल अभिव्यक्ति हुई है। उनमें एक भी शब्द अनावश्यक नहीं है। एक लेखकने मुझे बतलाया था कि अपने सभी लेखोंकी प्राप्ति-सूचना उन्हें छोटे तीन शब्दों में मिला करती थी—'लेख मिला। धन्यवाद। छापूँगा।' इससे अधिक बात लिखनेकी आवश्यकता ही नहीं थी। यही तो कार्ड-कलाकी विशेषता है। फ्रांसके सुप्रसिद्ध लेखक ह्यूगोके सम्बन्धमें यह कहा गया है कि उन्होंने सबसे संक्षिप्त पत्र अपने प्रकाशकको लिखा और उनके प्रकाशकने भी उनको सबसे संक्षिप्त उत्तर दिया। ह्यूगोने अपने प्रकाशकको जो पत्र लिखा था, उसमें केवल एक प्रश्नसूचक चिह्न (?) ही लिख दिया था। उसके उत्तरमें प्रकाशकने आश्चर्यसूचक चिह्न (!) लिखकर भेज दिया। दोनों ही उसका मतलब समझ गए। ह्यूगो जानना चाहते थे कि उनकी पुस्तक किस तरह बिक रही है, इसलिए उन्होंने प्रश्नसूचक चिह्न लिखकर भेजा था। पुस्तककी बिक्री इतनी अधिक हो रही है कि वह आश्चर्यजनक थी, इसलिए प्रकाशकने आश्चर्यजनक चिह्न लिखकर उत्तर दे दिया। मुझे भी समय-समय परिचित और अपरिचित जनोंके कार्ड मिले हैं। उनमें से कुछ कार्डोंका एक संग्रह बनाकर मैंने रख छोड़ा है। उनमें मेरे लिए कुछ प्रिय बातें लिखी गई हैं और कुछ अप्रिय बातें भी। कुछमें क्रोध है और कुछमें तिरस्कार, कुछमें तीव्र उपहासका भाव है और कुछमें आश्वासन और आदेश भी। पर उन सभीके भीतर स्नेहका एक भाव छिपा हुआ है। इसीसे वे कार्ड मेरे लिए स्पृहणीय हो गए हैं। उनमें से कितने ही अब काफी पुराने हो चुके हैं। समयके साथ उनमें भावोंकी वह तीव्रता नहीं रह गई है। उनकी निन्दामें न अब कटुता है और न प्रशंसामें मधुरता। इसीलिए मुझे उन्हें पढ़नेमें एक तृप्ति होती है, एक आह्लाद होता है। यही तो पत्रोंकी विशेषता है और इसीलिए पत्र स्पृहणीय होते हैं।

× × ×

आज अपने पत्रोंमें मुझे एक ऐसा पत्र मिला, जिसमें प्रेषकने अपना नाम नहीं लिखा था। उसमें एक व्यक्तिके विरुद्ध कितनी ही बातें लिखी गई हैं। यदि इस पत्रमें सचाई है, तो लेखकको नाम छिपानेकी जरूरत ही क्यों पड़ी? वह क्यों छिप कर अपने शत्रुपर प्रहार करना चाहता है? क्या यह भीरुता नहीं है? पर कितनी ही पत्रिकाओंमें ऐसे लेख या पत्र प्रकाशित होते हैं, जिनमें भी लेखक अपना नाम नहीं देते। कितने ही लब्ध-प्रतिष्ठ लोग भी अपना नाम छिपाकर लेख लिखा करते हैं। अधिकांश लोग यह चाहते हैं कि उनका नाम पत्रोंमें प्रकाशित हो। इसके द्वारा वे कीर्त्ति या प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहते हैं। तब किस भावसे प्रेरित होकर लेखक अपना नाम अपनी रचनामें नहीं देना चाहते? मैंने स्वयं अपने इन लेखोंमें अपना नाम छिपा दिया है। इसका कारण भीरुता नहीं है। कुछ लोगोंमें संकोचका भाव रहता है, कुछ लोगोंमें आत्म-विश्वास नहीं रहता और कुछ साहित्यमें लब्ध-प्रतिष्ठ होनेपर भी अपना नाम इसलिए छिपाते हैं कि लोगोंमें एक कौतूहलका भाव उत्पन्न हो। हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी कितने ही कल्पित नाम देकर 'सरस्वती'में लेख लिखा करते थे। पत्र-पत्रिकाओंमें लेखकोंका अभाव होनेके कारण या अच्छे लेख न मिलनेसे सम्पादकोंको स्वयं एकसे अधिक लेख लिखने पड़ते हैं। अतएव वे कल्पित नाम देकर ऐसे लेखोंको प्रकाशित करते हैं। अधिकांश लेखक अपने पाठकोंमें एक कौतूहलका ही भाव पैदा करनेके लिए अपना नाम बदल डालते हैं। उनका कल्पित नाम भी इतना प्रसिद्ध हो जाता है कि

लोग उनके यथार्थ नामको भूल-से जाते हैं। अंगरेज़ी-साहित्यमें जार्ज इलियटकी गणना सुप्रसिद्ध उपन्यासकारोंमें है। यथार्थमें जार्ज इलियट कल्पित नाम है, और वह भी पुरुषका नहीं, स्त्रीका कल्पित नाम है। मेरी ईवान्सने अपना कल्पित नाम जार्ज इलियट रखा था। आधुनिक लोकप्रिय उपन्यासकारोंमें सैपरकी गणना है। सैपरका नाम इतना प्रसिद्ध है कि लोग उसके यथार्थ नाम को जानते तक नहीं। यही बात अन्य कितने ही लेखकोंके सम्बन्धमें कही जा सकती है। हिन्दीमें भी 'निराला', 'सनेही' अज्ञेय' आदि अपने इन्हीं कल्पित नामोंसे प्रसिद्ध हैं। साहित्यमें कुछ रचनाएँ ऐसी भी प्रसिद्ध हैं, जिनके लेखकोंके नामका अब पता ही नहीं लगता। परन्तु सभी तरहके लेखोंके सम्बन्धमें यही बात नहीं कही जा सकती। उपर्युक्त लेखक केवल विशुद्ध आनन्दके भावसे प्रेरित होकर अपनी रचनाएँ लिखते हैं। जो लोग पत्रोंमें अपना नाम छिपाकर किसीकी निन्दा या कटु आलोचना किया करते हैं, उनमें यही विशुद्ध भाव काम नहीं करता। वे लोग केवल भयके कारण अपना नाम छिपाते हैं। वे यह चाहते हैं कि पत्रोंमें जिनके प्रति उनका कुभाव है, उसे वे व्यक्त तो कर लें; पर उत्तरदायित्वके भारसे बचे रहें। यही नहीं, वे अपने मनमें अवश्य ही उन लोगोंके प्रति भयग्रस्त रहा करते हैं, जिनकी वे आलोचना किया करते हैं। यह सच है कि कितने ही लोग ऐसे होते हैं, जिनकी सच्ची आलोचना करने पर भी आलोचकोंको यह भय रहता है कि वे अपने विशेष पद, अधिकार या शक्तिके कारण उनका अनिष्ट कर डालेंगे। क्षमता-सम्पन्न व्यक्ति ही अन्याय और अत्याचार कर सकते हैं। जिसे कोई अधिकार नहीं, शक्ति नहीं, प्रभुत्व नहीं, वह अन्य लोगों का कर ही क्या सकता है? अतएव ऐसे लोगोंके कृत्योंका सच्चा वर्णन करनेके लिए लेखकोंमें विशेष साहस और निर्भीकता होनी चाहिए। यह सभी लोगोंमें संभव नहीं है। इसीलिए पत्रोंमें नाम छिपाकर लिखनेवालोंकी रचनाएँ प्रकाशित करनेकी रीति चल पड़ी है। परन्तु उनका यह परिणाम हुआ कि कितने ही लोग एकमात्र विद्वेषके भावसे ही प्रेरित होकर अपने प्रतिपक्षियों के विरुद्ध कितनी ही प्रकारकी बातें लिखने लगे हैं। ऐसी बातें सार्वजनिक पत्रोंमें प्रकाशित होती हैं। उनका उद्देश्य भी सार्वजनिक रहता है। चाहे ऐसे लेख किसी भी भावसे लिखे जायँ, उनके भीतर लेखकका उद्देश्य यही रहता है कि सार्वजनिक लाभ हो, अन्याय और अत्याचार न हो। परन्तु जो लोग व्यक्ति-विशेषको अपना नाम न देकर कुत्सित भावोंसे पूर्ण लेख लिखा करते हैं, उनके कार्योंका कोई भी विवेकशील व्यक्ति समर्थन नहीं करेगा। ऐसे पत्रोंके लेखकोंकी भावना तो दूषित रहती ही है; पर साथ-ही-साथ उनमें कायरता और नीचता भी रहती है। जो लोग ऐसे पत्र लिखा करते हैं, वे लोग सद्भाव से प्रेरित होकर कोई काम नहीं करते। आश्चर्यकी बात यह है कि अब शिक्षित जनोंमें भी इसका प्रचार बढ़ता जा रहा है! उचित तो यह है कि लोग सच्ची बातोंको साहसके साथ, सद्भाव से प्रेरित होकर, स्पष्ट रूपसे किसीको कहें। निन्दक सदैव कायर होता है। अतएव शिक्षितोंको ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए।

ब्रिटेनके 'प्री-फेब्रीकेटेड' घर, जिनसे सोरकोके जंगलोंमें एक सुन्दर नगर बस गया है।

देश विदेश

ब्रिटिश गद्दीके उत्तराधिकारीका जन्म

और हेरी ट्रूमानका अमरीकाका राष्ट्रपति चुना जाना पिछले महीनेकी दो प्रमुख घटनाएँ हैं। राजकुमार एडिनबरो १८८६ के बाद बकिंगम-महलमें पैदा होनेवाले पहले राजकुमार और उत्तराधिकारी हैं। ब्रिटेनमें चूँकि राजकुमार ही की तरह राजकुमारीके उत्तराधिकारी होनेमें कोई क़ानूनी बाधा नहीं है; अतः इसका आज उतना महत्त्व नहीं, जितना कि मध्य-युगमें था। ट्यूडर-वंशके हेनरी अष्टमने तो पुरुष-उत्तराधिकारीकी चिन्ता से ही आधे दर्जन विवाह किए थे। उन दिनों राज करना और उसे क़ायम रखना अधिकांशतया तलवारके ज़ोरसे होता था, अतः पुरुषका बाहुबल अभीष्ट था। आज तो राज राजनीतिक पार्टियों द्वारा होता है, जिसमें राजाका स्थान सुदूर क्षितिजपर विलीयमान होते जानेवाले किसी धुँधले नक्षत्रसे अधिक महत्त्व या अर्थ नहीं रखता। ब्रिटेन अभी भी राजा को वैधानिक संज्ञा देकर रखे जा रहा है। पर वहाँ भी तेज़ीसे बढ़ता हुआ समाजवादी भाव इसे कब तक क़ायम रहने देगा, यह विचारणीय है।

ट्रूमानका राष्ट्रपति चुना जाना

अमरीका ही नहीं, दुनियाके लिए एक उल्लेखनीय घटना है। अमरीकाके लिए यह इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि पत्रोंकी स्वाधीनताके नागरिक जनतंत्रके इस गढ़में पूँजीवादी प्रभावके कारण पत्र कहाँ तक जनताको धोखा दे सकते हैं। जहाँ ड्यूईकी 'विजय-स्पेशल', भाषणों, दावतों, ब्रोडकास्टों और प्रचारके तड़क-भड़कदार सचित्र विवरण छपे, वहाँ ट्रूमानकी अयोग्यता और अक्षमताकी केवल अतिरंजित आलोचना ही नहीं हुई, उनके बारेमें भौंड़े व्यंगचित्र ही नहीं निकले; बल्कि 'वाशिंगटन पोस्ट'ने लिखा कि वे हार रहे हैं और 'शिकागो ट्रिब्यून'ने तो घोषणा भी कर दी कि ड्यूईने उन्हें हरा दिया! 'न्यूज़वीक', 'फार्च्यून', 'लाइफ़', 'टाइम', 'वाशिंगटन स्टार' आदिने भावी राष्ट्रपति ड्यूईके बड़े सुन्दर सचित्र विवरण छापे। वाशिंगटनके नेशनल प्रेस क्लबने घोषणा कर दी कि उसकी मतगणनाके अनुसार ट्रूमानकी हार सुनिश्चित है। इस प्रचारके बावजूद ट्रूमानका चुना जाना परोक्ष (गुप्त) चुनावके पक्ष और रिपब्लिकन पार्टीकी नीतिके विपक्षमें अमरीकन जनताका बहुत बड़ा फ़ैसला है। दूसरे शब्दोंमें इसे हम मतदाताओंकी विजय कह सकते हैं।

पर ट्रूमानकी जीत उनकी व्यक्तिगत या राष्ट्रीय जीत ही नहीं है। दूसरे महायुद्धके बाद अमरीकाको स्वभावतया अन्तर्राष्ट्रीय नेतृत्वकी ज़िम्मेदारी स्वीकार करनी पड़ी है। १९४६ में कांग्रेसके आंशिक चुनावमें आए रिपब्लिकन बहुमतने उन्हें यूरोपको सहायता, पश्चिमी यूरोपका संघ, तुर्की, यूनान और जर्मनीको सहायता, बर्लिनका संकट, अरब-यहूदी-संघर्ष, दक्षिणके नीग्रो लोगोंके प्रति व्यवहार आदि अनेक मामलोंमें नीचा दिखाने की चेष्टा की। कुछने तो स्पष्ट रूपसे तटस्थता-नीतिकी माँग की। सौभाग्यसे इस चुनावमें ये लोग पराजित हुए हैं। ८१वीं कांग्रेसमें बहुमत डेमोक्रेटोंका ही है और यही हाल प्रतिनिधि-सभाका भी है। ट्रूमानको अधिक समर्थन मज़दूरोंसे मिला है, जिन्हें उन्होंने प्रतिगामी टैफ्ट-हार्टले क़ानून रद्द करनेका आश्वासन दिया था। उन्होंने मूल्य-नियंत्रण, न्यूनतम वेतन, स्वास्थ्य-सुधार, शिक्षण-सहायता आदिको अपना कार्यक्रम बनाया। बिना किसी विशिष्ट नेताके जनता द्वारा ट्रूमान और उनके दलका समर्थन इस बातका द्योतक है कि वह वाम-पक्षकी ओर बढ़ी है। वह रूसके साथ संघर्ष, नीग्रो लोगोंके साथ भेद-भाव, प्रतिगामी मज़दूर-क़ानून, यहूदियोंका एकांगी समर्थन आदि नहीं, बल्कि शान्ति और समझौता चाहती है। देखें नया शासन कहाँ तक उसके समर्थनको कार्यान्वित करता है।

चीनमें कम्युनिस्टोंकी प्रगति

इधर सहसा फिर तेज़ीसे होने लगी है। पिछले अक्टूबर में जेनरलेसिमो चियांग् काई-शेक दो बार उड़कर मुकेडनके

सेनापति जनरल पेई-ली-हुआङ्से परामर्श करने गए, अतिरिक्त राष्ट्रीय सेना वहाँ भेजी गई ; पर जनरल त्यूपो-चैंगकी अध्यक्षता में आगे बढ़नेवाली कम्युनिस्ट सेनाको रोका नहीं जा सका। आज मुकेडन ही नहीं, समूचे मंचूरियापर कम्युनिस्टोंका कब्ज़ा हो चुका है और चीनकी राजधानी नानकिंगसे ३५ मील उत्तर तक वे आ पहुँचे हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि कई जगह राष्ट्रीय चीनकी सेनाओंने पस्तहिम्मत होकर पलायन किया है, अधिकारी घबरा गए हैं और जनतामें पराजयवादकी भावना व्यापक हो रही है। किसानों और बनियों ने चीनी नोट लेना तो बहुत दिनोंसे बन्द कर दिया था, अब पिछले ३ महीनोंसे चले स्वर्ण-युवानका मूल्य भी बुरी तरह गिर गया है। जगह-जगह भूखे-दरिद्र उपद्रव कर रहे हैं और चोर-बाज़ार बेहद तेज़ीसे बढ़ रहा है। इसका इलाज राष्ट्रीय सरकार ने नानकिंग और उससे ११० मील उत्तरमें स्थित पेंगपूमें मार्शल-लाकी घोषणा, सेनाका पुनः संगठन और सरकारी कर्म-चारियोंमें से संदिग्धोंकी छँटनीके रूपमें आरम्भ किया है। स्थिति को काबूसे बाहर जाते देखकर प्रधान-मंत्री वांग वेन-हाओने कई दिन पहले ही इस्तीफ़ा दे दिया था ; पर चियांङ्ने उन्हें जाने नहीं दिया। धनी चीनी अपना माल-असबाब लेकर हांग-कांगके रास्तेसे भाग रहे हैं। नानकिंगके १२० प्रोफ़ेसरों और बुद्धिजीवियोंने चियांङ् तथा कम्युनिस्ट नेता माओत्से-तुंगसे अनुरोध किया है कि दोनों शीघ्र शान्ति-स्थापनाकी सक्रिय चेष्टा करें। सान फ्रांसिस्कोके प्रवासी चीनीयोंने चियांङ्से राजसत्ता त्याग देनेका अनुरोध किया है। जहाँ माओत्से-तुंगने चियांङ्से संधि-सुलहके प्रस्तावको 'बेहूदा, कपट और अक्लका दिवालिया-पन' बतलाया है, चियांङ्ने कम्युनिस्टोंका सफ़ाया करनेके लिए ८ वर्ष लम्बी लड़ाई छेड़नेकी धमकी दी है। उन्होंने रूसपर कम्युनिस्टोंकी मदद करनेका आरोप लगाते हुए अमरीकासे अनुरोध किया है कि या तो वह चीनको अधिक मदद दे, अन्यथा वह बैठ जायगा ! उन्होंने युद्ध-सामग्री और सलाहके अतिरिक्त चीनी मुद्राके स्थिरीकरणके लिए २० करोड़ डालरका कर्ज़ भी माँगा है। ट्रूमान और मार्शल इसपर विचार कर रहे हैं।

सुदूर-पूर्वमें-कम्युनिज्म

के बढ़ते हुए प्रभावको रोकनेके लिए दक्षिण-पूर्वी एशियाके ब्रिटिश अधिकारियोंकी एक विशेष कान्फ्रेंस पिछले दिनों सिंगापुर में हुई थी। चीनमें कम्युनिस्टोंको मिली सफलताने ब्रिटिश, फ्रेंच और डच साम्राज्यवादियोंसे जूझते हुए दक्षिण-पूर्वी एशिया के मुक्तिकामियोंको बल दिया है, इससे वे भयभीत हैं। हांग-कांग और स्याममें भी अशान्तिके आसार प्रकट होते दिखाई देते हैं। बर्माके कम्युनिस्टोंने गृह-युद्धकी व्यर्थता देखकर एकता का प्रयत्न आरम्भ कर दिया है। हिन्द-चीन और हिन्देशियामें क्रमशः फ्रांसीसी और डच अधिकारी एक ओर जन-आन्दोलनके नेताओंसे समझौतेकी बातचीत कर रहे हैं और दूसरी ओर छिपे-छिपे फूट डालकर उसे छिन्न-भिन्न करनेकी भी चेष्टा कर रहे हैं। मलायाकी स्थिति काफ़ी विस्फोटक और गंभीर हो रही है। अधिकारियोंके दमन और जनताके मुक्ति-आन्दोलनको 'कम्युनिस्ट उपद्रव'की भ्रान्त संज्ञा दिए जानेके बावजूद साम्राज्यवादी जुएको उतार फेंकनेका जनताका प्रयत्न अधिकाधिक संगठित और उग्र होता जा रहा है। ग़रीबी, अज्ञान, निरक्षरता, बीमारियाँ, साम्राज्यवादी पिशाचोंकी ज़्यादतियाँ लोगोंको बाग़ी बनाती जा रही हैं। ब्रिटिश अधिकारियोंने गुरखा-सेना तैनात की है, जिससे भारतीयों, चीनियों एवं अन्यान्य एशियावासियोंमें बड़ा विक्षोभ फैला है। पिछले दिनों लगभग २०० भारतीय मारे गए, जिनमें से आधे दर्जनके लगभग भारतीय पुलिसमैन हैं।

दक्षिण-पश्चिमी आफ्रिका

को दक्षिण-आफ्रिकामें न मिलाने दिया जाकर अविलम्ब ट्रस्टी-शिप कौंसिल उसे अपने अधिकारमें ले ले और वहाँकी स्थिति तथा लोकमत जाननेको संयुक्त राष्ट्र-संघकी ओरसे एक निष्पक्ष कमीशन भेजे, इस आशयका प्रस्ताव भारतीय प्रतिनिधि श्रीमती विजयलक्ष्मीने पिछले महीने संयुक्त राष्ट्र-संघकी असेंबलीकी पेरिस-बैठकमें उपस्थित किया था। श्रीमती पण्डितने भूमिहीन, अशिक्षित और कठोर परिश्रम करनेवाले प्रवासी मज़दूरों द्वारा जगलसे उसे उद्यान बनानेका उल्लेख करके कहा कि दमन, दुर्व्यवहार, पक्षपात एवं वर्ण-भेदके कारण यही लोग आज पतित और आत्म-सम्मानसे हीन बन गए हैं। जुलू और हरेरो लोगों के साथ किए गए जनरल स्मट्सके अन्यायों, ज़्यादतियों और वादाखिलाफ़ियोंका ज़िक्र कर श्रीमती पंडितने आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक असुविधाओंका वर्णन किया और ट्रस्टीशिप-कौंसिलकी रिपोर्टका हवाला देकर बताया कि वहाँका शासन कितना भ्रष्ट और अयोग्य है। दक्षिण-आफ्रिकाके प्रतिनिधि लोने श्रीमती पण्डितके आरोपोंका उत्तर यह कहकर दिया कि भेद-भाव तो भारतमें ही अधिक है और पिछले राष्ट्र-संघने द०

सामाजिक जीवनमें क्रान्ति

क्रान्ति शब्दका अर्थ है महान परिवर्त्तन। क्रान्ति समाज तक ही सीमित नहीं है; जीवन व समाजके प्रत्येक पहलूमें वह आवश्यक है। सामाजिक जीवनमें परिवर्त्तनका अर्थ केवल प्राचीन आदर्शों तथा सभ्यताके हेर-फेर तक ही सीमित नहीं है, इसके अन्तर्गत वे सब सुधार-संशोधन आते हैं, जो कल्याण-कारी हैं। प्राचीन तथा नवीनमें इस तरहका परिवर्त्तन सनातन तथा अनिवार्य है। इतिहास साक्षी है कि मानव-समाज सदासे प्रगतिकी ओर अग्रसर होता रहा है। आदिम कालके प्राणी भी सदा इसी प्रयत्नमें लगे रहते थे कि समाज तथा व्यक्तिका उत्कर्ष हो। व्यक्ति समाजसे भिन्न नहीं है। समाज तो व्यक्ति ही से निर्मित है। जो समाज व्यक्तिपर कटु यंत्रणाओं द्वारा अनुचित शासन करना चाहे, वह स्थायी नहीं रह सकता। यह मत एक भ्रम है कि व्यक्ति सामाजिक कलका एक पुर्ज़ा-मात्र है। समाजकी रचना तो तभी सफल हो सकती है, जब व्यक्ति उत्कर्षकी चरम सीमा तक पहुँच सके। परन्तु व्यक्ति तथा समाजमें साम्य तभी हो सकता है जब कि समाजकी भिन्न-

---

प० आफ्रिकाको अपना अंग समझकर ही शासन करनेका अधिकार द० आफ्रिकाको दिया था। असभ्य लोगोंके शीघ्र सभ्य न होनेका कारण बताकर आपने कहा कि विशेषज्ञोंकी सलाहके मुताबिक उनको उनके प्राकृतिक वातावरणमें रखना ही अभीष्ट है! वे अभी जहाँ रह रहे हैं, वह आफ्रिकाका सर्वश्रेष्ठ भाग है! जब असेंबलीमें यह बहस हो रही थी, तो दक्षिण-आफ्रिकाके प्रधान-मंत्री डा० मलानने कहा कि हम द० प० आफ्रिकाको द० आफ्रिकामें मिलाकर ही रहेंगे और यदि संयुक्त राष्ट्र-संघ कोई बड़ी अड़चन डालेगा, तो हम उसे छोड़ देंगे। पर ऐसा अवसर नहीं आया, क्योंकि असेंबलीने २१ के विरुद्ध २२ मतोंसे श्रीमती पण्डितका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। उल्लेखनीय बात यह है कि पाकिस्तानने भी प्रस्तावका समर्थन नहीं किया। अब असेंबलीने उसे अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रणमें लेनेका निश्चय किया है, जो सरासर धोखा है।

फ्रांस, रूर और जर्मनी

आज एक अजीब गुत्थी बन गए हैं। अभी फ्रांसका क्यूली-मन्त्रिमंडल आपसी दलादली और बिजोनियामें कम्युनिस्टों द्वारा कराई गई कोयलेकी खानोंमें हड़तालके असरसे उबर भी न पाया था कि ब्रिटेन-अमरीका द्वारा रूरके लोहे-फौलादके उद्योगको जर्मनोंको सौंप देनेकी संभावनासे उसकी स्थिति और भी गंभीर हो गई है। गत जूनमें ६ राष्ट्रोंके प्रतिनिधियों द्वारा इसे अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रणमें लेनेका तय हुआ था। इसके बाद गत जूनमें लंदनमें हुई कान्फ्रेंसने तय किया कि एक अन्तर्राष्ट्रीय समिति यह तय करे कि रूरका कितना कोक, कोयला और फौलाद जर्मनोंको दिया जाय और कितना बाहर भेजा जाय। फ्रांस इस बातके सख्त खिलाफ़ है कि रूर जर्मनोंको सौंपा जाय। उसके राष्ट्रपतिने कहा है कि इसी तरहकी गलतीने १९१८ की विजयको दूसरे महायुद्धके रूपमें परिणत कर दिया। फ्रांसमें इसकी प्रतिक्रिया अच्छी नहीं हुई है। व्यवस्थापिका-सभाकी २७९ में से ११९ सीटें द'गालके दल द्वारा हथियाई जानी इसका स्पष्ट संकेत है। दूसरी ओर रूसी क्षेत्रके जर्मन पत्रोंमें ब्रिटेन-अमरीका द्वारा रूस-विरोधी मोर्चेके लिए रूरका उपयोग किए जानेके षड्यंत्रका उल्लेख किया जा रहा है। जिस प्रकार ब्रिटिश, फ्रांसीसी और अमरीकन अधि-कृत क्षेत्रोंके जर्मनोंने इन क्षेत्रोंके भागोंको मिलाकर, इनकी एक विधान-निर्मातृ-परिषद बनाकर नए जनतांत्रिक शासनकी नींव डालनेकी माँग की है, रूसी क्षेत्रके जर्मनोंने अविलंब समूचे जर्मनीको एक जर्मन शासनके मातहत संगठित करनेकी माँग की है। पर जर्मनीके सम्बन्धमें बड़े राष्ट्रोंमें अभी तक मतैक्य नहीं हो पाया है। पिछले दिनों संयुक्त राष्ट्र-संघकी जनरल असेंबलीके मंत्री और अध्यक्षने ब्रिटेन, अमरीका, फ्रांस और रूससे शांतिपूर्वक इस मसलेको हल करनेका अनुरोध किया था। इसके उत्तरमें सभी राष्ट्रोंने पूर्ण सहयोग देनेकी बात कही है। पर बर्लिनका संकट अभी भी जारी ही है।

भिन्न विचारधाराओंमें साम्य हो। जब तक व्यक्ति समाजकी भावनासे प्रेरित होकर काम नहीं करता, समाजमें अशांति और अराजकता फैलनेकी आशंका रहती है। इतिहासका निर्माण किसी व्यक्ति-विशेष द्वारा ही नहीं होता, वरन् वह तो केवल व्यक्ति तथा परिस्थितिके सहयोग तथा प्रतिशोधकी झलक है।

मानव-स्वभाव शीघ्र ही पुरानी बातोंको त्यागकर नवीनताको नहीं अपनाता। लाभ, हानि तथा तात्कालिक उपयोगिता ही प्रायः उसके लक्ष्य होते हैं। मनुष्य अपनी सुरक्षा एवं सुखपर प्रथम तथा अधिक ध्यान देता है। इसी कारण वह पुरातन कालसे चली आई परंपराको तन-मनसे जकड़े रहता है। उसको छोड़नेके विचार-मात्रसे वह घबरा उठता है। सुधारक तथा क्रान्तदर्शीकी अनोखी व सारगर्भित बातोंपर वह ध्यान नहीं देता है। इस प्रकार कालकी गतिको वह आँखोंसे ओझल हो जाने देता है और केवल संकुचित स्वार्थके वशीभूत हो जाता है। व्यक्ति जब परोपकारी भावनासे गिर जाता है, तब वह अपने आदर्शसे भी गिर जाता है और समाजमें बुराई आनी आरंभ हो जाती है। इस प्रकार समाज दूषित हो जाता है।

समाजमें ऐसे व्यक्तियोंकी भी कमी नहीं है, जो अपने स्थापित स्वार्थोंसे ऊपर उठकर मानव तथा विश्व-कल्याणकी भावनासे ओतप्रोत रहते हैं। ऐसे महान व्यक्तियोंके हाथोंमें ही समाजकी बागडोर रहती है। उन्नीसवीं शताब्दीमें 'संसारके मज़दूरो, एक हो आओ ; इससे अपने बंधनोंके अतिरिक्त तुम कुछ न खोओगे, पर एक हो जाओगे, तो संसार-विजयी होगे!' इन जोशीले शब्दोंमें कार्ल मार्क्सने जिस साम्यवादी राज्यकी कल्पना की थी, वह आज बीसवीं शताब्दीके मध्य-कालमें वास्तविक होती दीख पड़ रही है, जिसका जीवित प्रमाण इस युद्धमें रूसका विजयी होना है। आज विश्व-कल्याणकी डोर साम्राज्यवादियोंके हाथसे निकलकर साम्यवादियोंके हाथमें है, जिसका प्रधान कारण रूसी क्रान्ति है। इस समयमें विश्व उन्नतिकी ओर तीव्र गतिसे अग्रसर हो रहा है। ऐसे क्रान्तिकारी समयको कोई शक्ति रोक नहीं सकती। समाजमें, जीवनमें परिवर्तन—महान परिवर्तन—होकर ही रहेगा। क्रान्ति एक स्थिर सत्य है, जो धर्म या नीतिके विपरीत फैले हुए जालको नष्ट करती है। क्रान्ति ही सामजिक जीवनका निरोगीकरण है। महात्मा सुकरात तथा स्वामी दयानंद सरस्वती आदि हज़ारों महान आत्माएँ समाजमें क्रान्तिका प्रचार करनेमें अपने प्राणोंकी भेंट चढ़ा चुकी हैं।—उमेशचन्द्र पांडेय, मार्फत श्री के० एल० पांडेय, अतिरिक्त ज़िला-जज, छिन्दवाड़ा।

साहित्यका वैज्ञानिक अध्ययन

आजका युग अंध-विश्वासका युग नहीं। विचारोंकी शृंखलामें पूर्णतः आबद्ध नहीं रहनेसे विश्वस्त मान्यताएँ प्रलाप हो सकती हैं। यों तो ऐसे भी कलका सत्य आज हमें विकृत रूपमें मिलता है। और आजका वैज्ञानिक दृढ़तापूर्वक कहता है कि विश्वासमें कोई सत्य नहीं, कोई तथ्य नहीं। जग और जीवनके अनवरत कार्य-व्यापारमें कल्पनाका कोई स्थान नहीं। अगर है भी, तो नाम-मात्र, सत्यके अन्वेषणका एक स्थूल आधार-मात्र। यही कल्पना विश्वासकी माता है। युगकी पुकार है कि वह विश्वासको, रूढ़ि-परंपराको कतई नहीं स्वीकार करेगा। इसी विचारपर उसने परंपराओंके प्रति विद्रोहका शंखनाद किया है। आज तर्क विश्वासकी छातीपर चढ़कर बोलता है। क्या युग वस्तु-सत्यको स्वागत-दान देगा? परंपराकी गलियोंमें सड़ता मानव आज कुछ निराश, कुछ प्रतिक्रियावादी, हो गया है। निराशाकी तामसिकता इतनी गाढ़ी है कि मनुष्यका वह पुतला न तो मनुष्य ही बननेकी ओर अग्रसर है, न राक्षस। ऐसा लगता है, मानो दुविधामें फँसा यह दुर्बल प्राणी तिल-तिलकर ही मर जायगा। पर ऐसा होगा नहीं। मानव चैतन्य प्राणी है। मृत्युसे एक क्षण पूर्व तक अमर ज्योतिका एक स्फुलिंग उसमें रहता है। क्या ज्योतिका वह अणु परम तत्त्वको छू नहीं सकता? हाँ, यहीं अंधेको भी राह सूझती है। वैज्ञानिकोंने इसी स्थितिमें प्रकाश पाया है। आज यही विचार सम्पूर्ण व्यापारोंका आधार-पट है।

तर्क ही विज्ञान है। इसके दो प्रमुख अंग हैं—प्रश्न और विश्लेषण। तर्कके यही दो पहलू आजके साहित्यमें—विश्वके समस्त साहित्यमें—भी अपना एक नया प्रभाव स्थापित कर रहे हैं। हिन्दीका पाठक भी साहित्यके अध्ययन-कालमें इन्हीं तत्त्वोंको बरतता है। हम किसी नियमको कैसे पढ़ते हैं? लल्लूलालजीका 'प्रेमसागर' कुछ इसलिए पढ़ते हैं कि धर्मकी एकाध बात जान जायँ और साथ ही मनोरंजन भी हो जाय। थका पंडित उसे इसलिए पढ़ता है कि जग-कोलाहलसे त्रस्त मस्तिष्क किंचित् विश्राम कर ले। लेखक या आलोचक उसे

बापू विचार
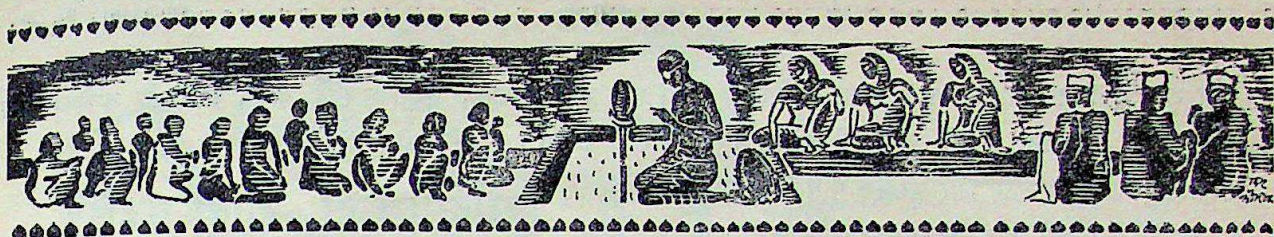
'वन्देमातरम्' गीत

जब कोई राष्ट्रीय गीत या भजन गाया जाय, तो उसे इज़्ज़त देनेके लिए खड़े होना हमारी तहज़ीब या संस्कृतिमें शामिल नहीं है। यह चीज़ व्यर्थ ही पच्छिमसे ली गई है। ऐसे मौक़ोंपर इज़्ज़त-भरा तरीका यही है कि हम सही रुख रखें। आख़िरकार ग़ैरज़रूरी दिखनेके बजाय दिलसे की गई इज़्ज़तकी क़ीमत ज़्यादा है। मेरा एक सुझाव यह है कि अगर 'वन्देमातरम्' गीतका असर करोड़ोंके दिलोंपर डालना है, तो उसे हमेशा हर जगह एक ही रागमें गाया जाय। करोड़ों इन्सान उसे एक ही तरहसे एक ही रागमें गायँ। आख़िर राष्ट्र-गीत सिर्फ़ दो या तीन हो सकते हैं। मगर उन सबका अपना एक राग होना चाहिए। यह काम शान्तिनिकेतन या ऐसी ही किसी प्रामाणिक संस्थाका है कि वह राष्ट्र-गीतका एक ऐसा ही राग तय कर दे, जो सबको मंज़ूर हो। (कलकत्ता, २९-८-'४७)

खुदाई ताक़त और शैतानी ताक़त

एक ज़माना था, जब हिंदुस्तानके लोग हिंदुस्तानका ही बना हुआ कपड़ा पहनते थे। इसी तरह अब भी सारे हिंदुस्तान को खद्दरपोश बनानेका काम संघ (चरखा-संघ) के सामने है। पुराने ज़मानेमें हिंदुस्तान न सिर्फ़ अपनी ज़रूरतका कपड़ा पैदा कर लेता था, बल्कि ज़ायदा कपड़ा दूसरे देशोंमें भी भेजा जाता था। उन दिनों हिंदुस्तानमें मिलें नहीं थीं। या इस चीज़को मैं इस तरह कहूँगा कि उन दिनों हिंदुस्तानकी हरेक बहनके पास अपने चरखे या अपनी तकलीकी शक्लमें एक-एक मिल मौजूद थी। आजकी ये मिलें चरखेसे ही निकली और विकसी हैं। इन्सान की बनावटमें ईश्वर और शैतान, इन दोनोंकी ताक़तोंकी मिलावट रही है। चरखेके पीछे जो ताक़त है, वह ईश्वर या खुदाकी ताक़त है और उसमें दूसरोंको लूटने या चूसनेकी कोई गुंजाइश ही नहीं। परदेशियोंने चरखेमें छिपी हुई इस ताक़तको पहचाना

यह देखनेको पढ़ते हैं कि अपने प्रभात-कालमें खड़ीबोली कितनी तन्दुरुस्त थी। बस। इस दृष्टिसे पढ़नेके दो संविधान हुए: एक मनोरंजन पाता है और दूसरा पाठ्य-विषयकी सबलता— रूप, रंग, भाव, कला, वैभवकी तलाश। पर आजका तार्किक या वैज्ञानिक पाठक इतनेसे ही संतुष्ट नहीं है। उसका प्रश्न है—आखिर इस प्रकारकी वस्तु अमुक लेखक या कविने लिखी क्यों? उसके पीछे कौन-सी प्रेरणा रही होगी? काव्यके अध्ययनके साथ इन प्रश्नोंका समाधान भी होता चले, वही वैज्ञानिक अध्ययन है! पुराने अध्येताओंकी तरह वह महादेवीकी कविताओंमें केवल यही नहीं देखेगा कि इसमें छायावाद-रहस्यवादका कितना संपुट है? इतना ही देखकर वह संतोष नहीं कर लेगा कि इनकी कविताओंमें कल्पना है, भावना है, साथ ही गीतात्मकता भी। वह तो खोजेगा इन सारी सम्पत्तियोंका उत्स। आखिर किस पुनीत उद्गमसे इस त्रिवेणीका प्रवाह है। शास्त्रीय आलोचक कहेगा—महादेवीके गीतोंमें आत्म-निवेदन है। वैज्ञानिक आलोचक कहेगा—क्यों ऐसा है? औरोंमें ऐसा क्यों नहीं?

हिन्दीके आलोचना-क्षेत्रमें दृष्टि-निक्षेप करनेपर इस प्रकारके आलोचकोंकी कमी-सी नज़र आती है। पं० रामचन्द्र शुक्लके समय तक इस तरहकी आलोचनाका नाम नहीं आया था। पं० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी परंपरा-पुष्टिके आलोचक हैं। शांतिप्रिय तो गायक हैं—कविके अतःस्पन्दनके, अनुभूतियोंके। शास्त्रीय आलोचनाकी परंपरा, जो जगन्नाथ पंडितसे चली आ रही थी, हिन्दीके क्षेत्रमें भी उसीका पूरा प्रभाव पड़ा। शुक्लजीके समयमें पाश्चात्य ढंगकी आलोचना कुछ होने लगी। पर आलोचनाकी विषय-सीमा केवल वाक्य-चमत्कार, उक्ति-वैचित्र्य और किंचित् भाव-कला तक ही पहुँच पाई। सत्येंद्रने मनोविज्ञानका आँचल पकड़ा था अवश्य, पर दुर्बल हाथोंसे। पं० नन्ददुलारे वाजपेयीकी पकड़ बड़ी जबर्दस्त रही, पर कलेजा कमज़ोर। इसमें शक नहीं कि वैज्ञानिक आलोचक बहुत बड़ा मनोविज्ञानवेत्ता होता है। साहित्यमें तो तर्कका आधार ही मनोविज्ञान है। वैज्ञानिक अध्ययनके बिना साहित्यका अध्ययन अधूरा है। —अवधेशकुमार, १७ ग्रे रोड, गया।

और भाप व बिजलीकी ताक़तके इस्तेमालसे मिलें खड़ी कीं। इन मिलोंका इस्तेमाल उन्होंने दुनियाकी भोली-भाली और सीधी-सादी क़ौमोंको लूटने और चूसनेके साधनकी तरह किया। इस तरह मिलें शैतानी ताक़तकी नुमाइन्दा बनीं।

('हरिजन-सेवक,' २१-७-'४६)

विचार एवं वाणीकी पवित्रता

विकार-मात्रकी जड़ विचारमें है। इसलिए विचारोंपर काबू पाना चाहिए। इसका उपाय यह है कि मनको खाली रहने ही न दिया जाय, उसे अच्छे और उपयोगी विचारोंसे भरे रखा जाय। अर्थात् जिस काममें मनुष्य लगा हुआ हो, उसकी चिन्ता न करके यह विचार करे कि कैसे उसमें निपुणता पाई जा सकती है, और उसपर अमल करे। विचार और उनका अमल विकारोंको रोकेगा। पर हर समय काम नहीं होता। मनुष्य थकता है, शरीर आराम माँगता है। रातमें जब नींद नहीं आती, तभी विकार पैदा हो सकते हैं। ऐसे प्रसंगोंके लिए सर्वोपरि साधन जप है। भगवानका जिस रूपमें अनुभव लिया हो, या अनुभव लेनेकी धारणा रखी हो, उस रूपको हृदयमें रखकर उसके नाम का जप किया जाय। जप चल रहा हो, तब दूसरा कोई विचार मनमें नहीं होना चाहिए। यह आदर्श स्थिति है। वहाँ तक न पहुँच सकें और अनेक विचार बिना बुलाए चढ़ाई किया करें, तो उनसे थकना नहीं, परन्तु श्रद्धापूर्वक जप जपते रहना चाहिए, और निश्चय रखना चाहिए कि अन्तमें तो विजय मिलेगी ही। यानी विजय मिलेगी ही, इसमें कोई शक नहीं है।

विचारोंकी तरह वाणी और अध्ययन भी विकारोंको शान्त करनेवाले होने चाहिएँ। इसलिए एक-एक शब्द तौलकर बोलना चाहिए। जिसको बीभत्स विचार नहीं आते, उसके मुँहसे बीभत्स वचन निकल ही नहीं सकते। विषयोंका पोषण करनेवाला काफ़ी साहित्य भरा पड़ा है। उसकी तरफ़ मनको कभी जाने नहीं देना चाहिए। सद्ग्रंथ या अपने कामसे सम्बन्ध रखनेवाले ग्रंथ पढ़ना और उनका मनन करना चाहिए। गणितादिका यहाँ बड़ा स्थान है। यह ज़ाहिर बात है कि जो विकारोंका सेवन करना नहीं चाहता, वह विकारोंके पोषण करनेवाले धन्धेका त्याग करेगा। (आरोग्यकी कुंजीसे)

अहिंसा कहाँ, खादी कहाँ ?

आज देशमें कई चीज़ें चल रही हैं, उनमें मेरा ज़रा भी हिस्सा नहीं है; यह बात मुझे ज़ोर-ज़ोरसे कहनी चाहिए। मैं कह तो चुका हूँ कि यह छिपी हुई बात नहीं है कि कांग्रेसने हुकूमत सँभाली, तबसे वह अहिंसाको तिलांजलि दे चुकी है। मेरी रायमें, कांग्रेस-सरकारने खुराक और कपड़ेपर जिस तरह अंकुश रखा है, वह घातक है। मेरी चले, तो मैं अनाजका एक दाना भी बाहरसे न खरीदूँ। मेरा विश्वास है कि हिन्दुस्तानमें आज भी काफ़ी अनाज है। सिर्फ़ कण्ट्रोलकी वजहसे देहातके लोग उसे छिपाकर रखनेकी ज़रूरत महसूस करनेको लाचार हुए हैं। अगर लोग मेरी बात मानते होते, तो हिन्दू, सिक्ख और मुसलमानोंके बीच कभी लड़ाई नहीं होती। साफ़ बात यह है कि मेरी बातकी आज कोई कीमत नहीं रही। मेरी आवाज़की कीमत अब अरण्य-रोदन या जंगलमें रोनेके बराबर हो गई है।

खादीको अहिंसासे अलग करें, तो उसके लिए थोड़ी जगह ज़रूर है, मगर अहिंसाकी निशानीके रूपमें जो उसका गौरव होना चाहिए, वह आज नहीं है। राजनीतिमें हिस्सा लेनेवाले जो लोग आज खादी पहनते हैं, वे रिवाजकी वजहसे ऐसा करते हैं। आज जय खादीकी नहीं, बल्कि मिलके कपड़ोंकी है। हम मान बैठे हैं कि अगर मिलें न हों, तो करोड़ों इन्सानोंको नंगा रहना पड़े। इससे बड़ा भ्रम और क्या हो सकता है? हमारे देशमें काफ़ी कपास है, करघे हैं, चरखे हैं, कातने-बुननेकी कला है, फिर भी यह डर हमारे दिलोंमें घर कर गया है कि करोड़ों लोग अपनी ज़रूरत पूरी करनेके लिए कातने-बुननेका काम अपने हाथमें नहीं लेंगे। जिसके दिलमें डर समा गया है, वह उस जगह भी डरता है, जहाँ डरका कोई कारण नहीं होता। और डरसे जितने लोग मरते हैं, उतने मौतसे या रोगसे नहीं मरते। ('हरिजन-सेवक,' २४-१०-'४८)
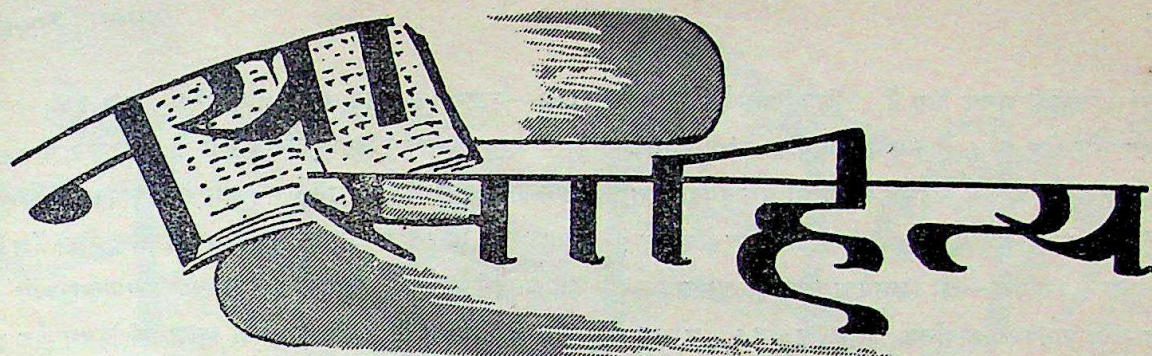
मानव, समाज और जीवन

चरवाहे : लेखक—श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'; प्रकाशक—भारती-भंडार, इलाहाबाद; पृष्ठ २०४; मूल्य २॥)

प्रस्तुत पुस्तकमें 'अश्क'के सात एकांकी नाटक संग्रहीत हैं। उनके उपन्यास, कहानियों और नाटकोंके अनुरूप ही इनमें भी मानव-मनकी दुर्बलताओं, घात-प्रतिघातों, दुख-सुखकी विकार-प्रतिक्रिया आदिका इतना सुन्दर और स्वाभाविक चित्रण हुआ है कि कोई भी पात्र कल्पना-प्रसू न होकर हमारे अपने पड़ोसका-सा मालूम होता है। विद्वान् लेखकके भाव उनकी सजीव भाषाके साथ हास्य और व्यंगका पुट पाकर मानो मुखर उठते हैं। 'चरवाहे'की रत्नी और 'चिलमन'की शशि किस परिवार और समाजमें नहीं हैं? 'मैमूना' की आमना, 'चुम्बक' की सरिता और गोपा, 'सूखी डाली' की बेला भारतीय नारीके विभिन्न टाइपों या प्रतीकोंके रूपमें सामने आती हैं। यही बात पुरुष-पात्रोंके सम्बन्धमें भी कहीं जा सकती है—यद्यपि हमें 'अश्क'के नारी-पात्र ज़्यादा सरल, सजीव और सफल जान पड़े। कथावस्तुकी सोद्देश्य यथार्थता और भाषा तथा भावोंकी सजीवताके साथही नाटकोंमें 'एक्शन' भी काफ़ी है, जिससे वे आसानीसे मंचपर खेले जा सकते हैं। हमारा विश्वास है, हिन्दी-संसार 'अश्क' के इन नाटकोंका स्वागत करेगा।

जयसंधि : लेखक—श्री जैनेन्द्रकुमार; प्रकाशक—पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली; पृष्ठ २२०; मूल्य ३)

इधर जैनेन्द्रजी कहानियाँ कम लिखते हैं, यद्यपि लिखते बराबर हैं। प्रस्तुत संग्रहमें उनकी २० नई कहानियाँ हैं। कहानी और उपन्यास लिखनेकी जैनेन्द्रजीकी अपनी शैली है, जिसने अल्पकालमें ही उन्हें बड़ा लोकप्रिय बना दिया। इधरकी उनकी कहानियोंमें उनके चिन्तनकी गहराईकी छाप अधिक है। इसीलिए इस संग्रहकी अधिकांश कहानियाँ भी घटनाओं और भावोंके चक्रसे ऊपर उठकर विचार-प्रधान बनी नज़र आती हैं। अधिकांश कहानियोंकी पृष्ठभूमि अतीतकी गाथाएँ हैं। पर विद्वान लेखककी भाषा और शैलीमें उतरकर तथा उनके चिन्तनसे प्रभावित होकर हर कहानी मानो जीवनके शाश्वत सत्य—नवीन मूल्यों—की ओर ही आमुख है। हमारा विश्वास है, विचारशील पाठकके लिए इनमें बहुत-कुछ मिलेगा।

झुरमुट : लेखक—'नलिन'; प्रकाशक—नालन्दा-प्रकाशन, बम्बई; पृष्ठ १७२; मू० ४)

इसमें लेखककी ११ कहानियाँ संग्रहीत हैं। समाजकी जीर्ण-शीर्ण बुनियादों, जीवनके कुरूप पहलुओं और सामाजिक कल्मषके कारण दम घोंटनेवाले जीवनपर लेखकने तीखी दृष्टि डाली है। उनके पात्र जितने सजीव हैं, उतना ही यथार्थ है उनका कथनोपकथन। 'झुरमुट' का कला-केन्द्र है मानव—हाड़-मांसका मानव, जिससे परे लेखक कुछ भी नहीं मानता। इसीलिए उसके चित्रणमें कचोट पैदा करनेवाली यथार्थता है—वह नग्न सत्य है, जिसे देखकर बहुतसे आँखें मूँद लेना चाहते हैं। हमारा विश्वास है, हिन्दी-संसार इसे विशेष चावसे पढ़ेगा।

गीली ममता : गीतका चमत्कार

शिप्रा : रचयिता—पं० जानकीवल्लभ शास्त्री; प्रकाशक—आरती मंदिर, पटना; पृष्ठ ७४; मूल्य २)

'शिप्रा' कविकी नवीनतम रचना है। इसमें न 'काकली' का स्वर-संधान है, न 'रूप-अरूप' की मूर्च्छना और न 'तीर-तरंग' के करुण गायनका सहर-भरा समा। इसमें है उस आगतकी आरती, जिसमें अनागतका प्रतिबिंब लक्षित है। गीत-परम्परा के कवियोंमें शास्त्रीजीका एक विशिष्ट स्थान है। उनकी 'गीली ममता' सर्वथा उनकी अपनी है। अपने अमूर्त सपनोंको जैसे तन्द्राकी ओर जानेसे रोककर उन्होंने बौद्धिक वातावरणमें अनुभूतिकी सहायतासे मूर्त रूप दिया है। उनकी बाँसुरी, चाँदनी, सुमित्रा, झंकार, अश्वत्थ, कुन्द और उपगुप्त, निराला, पार्वती, बिखरे मोती, कपोत-कपोती तथा जग और युग एक नई अभि-

व्यक्ति एवं व्यंजनाकी झलक लिए हैं। 'शिप्रा' यथार्थमें संग्रहकी बड़ी सबल और श्रेष्ठ रचना है। कविके भावोंका गांभीर्य उनकी प्रवाहमयी भाषाके साथ एक अद्भुत चमत्कारी प्रभाव पैदा करता है। कहीं-कहीं भाषा कुछ अधिक साहित्यिक और क्लिष्ट हो गई है।

उन्मीलिका : रचयिता—श्री शम्भुनाथ 'शेष'; प्रकाशक—श्री दीनानाथ, मानवधर्म-कार्यालय, दिल्ली; पृ० ९६; मूल्य २)

'उन्मीलिका' कवि 'शेष'की स्फुट रचनाओंका संग्रह है, जिसमें ४६ गीत, ११ रुबाइयाँ, ४ कविताएँ और १७ ग़ज़लें हैं। गीत सरस, सरल और मधुर हैं। एक-से-एक गीत सुन्दर बन पड़ा है। प्रकृतिपर रचे गीत, कविताएँ और ग़ज़लें एक ओर हृदयमें रस बरसाती हुई सूखे जीवन-वनमें सौरभ एवं स्फूर्त्ति भरती हैं; तो दूसरी ओर साधारण जनको प्रकृति-सुषमाकी वास्तविक अनुभूति कराती हैं। कविताके एक-एक शब्द में प्रकृति सजीव हो उठी है। शेषजीकी रचनाएँ हमें 'बच्चन' और 'पंत'का स्मरण कराती हैं। इनके सरल भावोंमें एक नवीन आकर्षण है, जो पाठकको स्वतः अपनी ओर खींच लेता है। साधारण व्यवहारमें आनेवाले शब्द ऐसे प्रयुक्त हुए हैं कि उनमें अद्भुत सुन्दरता आ गई है, जैसे—हिचकोले, चाट, मुसकाना, छूना, बलना, तलाश आदि। कविताएँ प्रसाद और माधुर्यगुणसे पूर्ण हैं। उनमें ऐसा स्वाभाविक प्रवाह है कि कवि की भाव-सरिता हृदयसे उमड़ पड़ी जान पड़ती है, उसके लिए प्रयास नहीं किया गया।

—कृष्णाकुमारी सरीन

राजनीति : अतीत और भविष्य

प्राचीन भारतीय शासन-पद्धति : लेखक—प्रो० सदाशिव अलतेकर; प्रकाशक—भारती-भंडार इलाहाबाद; मूल्य ५)

प्रस्तुत पुस्तकमें १४ अध्यायोंमें प्राचीन भारतीय शासनका सांगोपांग प्रामाणिक वर्णन है। राज्य-शास्त्रकी उत्पत्तिसे लेकर उसके अब तकके विकास तकका इसमें विशद और क्रमागत विवरण दिया गया है। इससे हमारे देशके नए विधान और शासन-पद्धतिके निर्धारणमें सहायता मिल सकती है। इससे एक तथ्य तो यह प्रकट होता है कि भारतका सफल शासन, शांति और समृद्धि, सुदृढ़ केन्द्रीय सरकारके कालमें ही रही है। पुस्तक राजनीतिके प्रत्येक विद्यार्थीके लिए अनिवार्य है। ऐसी उपयोगी और प्रामाणिक पुस्तक प्रस्तुत करनेके लिए लेखक-प्रकाशक बधाईके पात्र हैं।

ग्राम-स्वराज्य : लेखक—श्री रामनारायण यादवेन्दु; प्रकाशक—नालन्दा-प्रकाशन, बम्बई; पृष्ठ ९६; मूल्य ३॥)

प्रस्तुत पुस्तकमें विद्वान् लेखकने प्राचीन कालसे आज तकके ग्राम-पंचायतोंके विकास, उनके महत्त्व एवं आवश्यकतापर प्रकाश डाला है। कृषि-प्रधान होनेके कारण भारत किसानोंका देश है, जो ग्रामोंमें रहते हैं। उनकी आवश्यकताएँ पंचायत-राज्यसे ही पूरी हो सकती हैं। लेखकने बड़ी खोज एवं विचारपूर्वक इस विषयका सविस्तार वर्णन किया है। पुस्तक अपने ढंगकी अनोखी और ग्रामवासियोंके बड़े कामकी है। पर उसका मूल्य बहुत अधिक रख दिया गया है।

जयप्रकाशकी विचारधारा : सम्पादक—श्री रामवृक्ष बेनीपुरी; प्रकाशक—पुस्तक-जगत्, पटना; पृष्ठ ३२६; मूल्य ४)

जयप्रकाशके शब्दोंमें "अब हमारे बाग़के बरसाती फूलोंके म्लान मुखपर बुढ़ापेकी झुर्रियाँ पड़ चुकी हैं। उनकी जगह लेनेके लिए शीत ऋतुके फूलोंके अंकुर मिट्टीके अंचलसे झाँक रहे हैं। और आजकल मेरा अधिक समय उन्हींके भविष्यके निर्माणमें बीत रहा है...।" ऐसे व्यक्तिकी विचारधारासे परिचित होना हर व्यक्तिके लिए अनिवार्य-सा लगता है। बेनीपुरीजीके समान उनसे और उनके विचारोंसे अधिक सुपरिचित कम ही लोग होंगे। अपनी हृदयग्राही शैली और ओजभरी भाषामें उन्होंने अधिकारपूर्वक जो-कुछ कहा है, वह मननीय है। उन्होंने जो-कुछ लिखा है, अन्धभक्ति या दोस्तीसे प्रभावित होकर नहीं, बल्कि तर्क और विवेचनकी कसौटीपर कसकर। हमारा विश्वास है प्रस्तुत पुस्तकसे पाठकको न सिर्फ़ जयप्रकाशकी विचारधारासे परिचित होनेका मौक़ा ही मिलेगा, बल्कि काफ़ी विचार-सामग्री और दिशा भी मिलेगी। यह पुस्तक हर घर और पुस्तकालयमें रहनी चाहिए।

'भग्नदूत'

हमारे सहयोगी

दीपावलीपर हमारे अनेक सहयोगियोंने अपने विशेषांक प्रकाशित किए। हमें जो विशेषांक प्राप्त हुए हैं, उनमें से पाठ्य-सामग्री, छपाई-सफ़ाई और सजावटकी दृष्टिसे 'योगी' (पटना), 'जीवन' (कलकत्ता), 'मनोरंजन' (दिल्ली) आदिके अंक विशेष सुन्दर एवं संग्रहणीय बन पड़े हैं। 'प्रहरी' (जबलपुर), 'समाज-सेवक' (कलकत्ता) और 'रियासती' (जोधपुर) के विशेषांक भी काफ़ी अच्छे निकले हैं। यदि हमारे ये सहयोगी छपाई-सफ़ाई-सजावट आदिकी ओर कुछ अधिक ध्यान दें, तो और भी अच्छा हो।

वनस्पतिका ख़तरा

हमारे देशमें इस समय वनस्पतिके २४ कारखाने हैं और ३७ नए बनाए जा रहे हैं। इस उद्योगमें कुल २५ करोड़ रुपएकी पूँजी लगाई गई है। इन कारखानोंका वार्षिक उत्पादन १४२००० टन है, जिसकी क़ीमत २५५६०००००० रुपए होती है। ऊपरके आँकड़ोंपर से मालूम होता है कि यह उद्योग भयंकर तेज़ीसे आगे बढ़ रहा है। खानेकी चीज़ें बहुत दिनों तक न बिगड़ें, इसलिए उनपर कुछ खास तरहकी प्रक्रिया की जाती है। यह प्रक्रिया जिन उद्योगोंमें की जाती है, उनमें शक्करके बाद वनस्पतिका उद्योग सबसे बड़ा है। इस उद्योगके जो नए कारखाने बन रहे हैं, उनसे मालूम होता है कि पूँजीपति इस उद्योगमें बड़ी तेज़ीसे अपनी पूँजी लगा रहे हैं। वे १९५० तक वनस्पतिका उत्पादन १४२००० टनसे बढ़ाकर ४५०००० टन तक ले जानेका इरादा रखते हैं। यह घीकी बिलकुल झूठी नक़ल है और निश्चित रूपसे मनुष्यके शरीरको नुक़सान पहुँचानेवाली चीज़ है। नक़ली घीमें क़ुदरती तौरपर रहनेवाली कुछ भयानक बुराइयाँ यहाँ दी जाती हैं: खुराककी चीज़ोंको ज़्यादा समय तक टिकनेवाली बनानेके लिए उनका ऐसा रूपान्तर करना पड़ता है, जिससे वे बिगड़ न सकें। यह खुराक खानेके बाद ऐसे रूपमें नहीं बदलती, जो शरीरमें आसानीसे पच जाय। खुराक पेटमें पचती है, इसका मतलब है उसका ऐसे रूपमें बदलना, जिसका शरीर उपयोग कर सके। तेलोंको जब हाइड्रोजनकी प्रक्रियासे जमाया जाता है, तब वे आँतों और पेट द्वारा जल्दी पचाए जा सकनेवाले रूपमें नहीं रहते। वनस्पतिसे खुराकके विटामिन भी बिगड़ते हैं। तेलके साथ मिल जानेवाले 'ए' और 'डी' विटामिन वनस्पति तेल या वनस्पति घीमें नहीं होते। पाचन-क्रिया होते समय दूसरी खुराकसे मिलनेवाले और चर्बीके साथ एकरस हो जानेवाले ये विटामिन वनस्पतिमें मिल जाते हैं। तेल पूरे-पूरे पच जाते हैं—यानी उनमें रहनेवाले इन विटामिनोंका लाभ शरीरको मिलता है। वनस्पति कुछ हद तक ही पच सकता है। इसलिए शरीर उसे पूरा-पूरा पचा नहीं सकता। इस तरह वनस्पति शरीरके सत्वको मारनेका काम करता है। खुराकके पचनेके लिए उसमें घी और मक्खन-जैसी प्राणिज चर्बीका होना ज़रूरी है। घी और मक्खनमें शरीरके लिए ज़रूरी समझे जानेवाले 'ए' और 'डी' विटामिन होते हैं। इतना ही नहीं, उनमें कुछ चर्बीवाले आम्ल तत्त्व (एसिड) भी होते हैं, जिनके बिना शरीरका काम नहीं चल सकता।

एक बार लोगोंको यह 'बहुत ज़्यादा शक्ति देनेवाला' वनस्पति घी खिलाना शुरू किया गया कि बादमें प्राणिज चर्बी पानेका एकमात्र साधन दूध और उससे बननेवाले दही, मट्ठा, घी वग़ैरा पदार्थ एक तरफ रह जायँगे और इससे लोगोंकी तन्दुरुस्तीपर स्वभावसे ही बहुत बुरा असर पड़ेगा। वनस्पतिके हिमायती यह दलील देते हैं कि पश्चिमके देशोंमें वनस्पतिसे मिलते-जुलते मारजेरीन और ऐसे ही दूसरे तेल बहुत इस्तेमाल किए जाते हैं। लेकिन यह दलील मान लेने-जैसी नहीं है। इसे सच मान लें, तो भी ये तेल उन लोगोंकी तन्दुरुस्तीको नुक़सान नहीं पहुँचाते, जो मांसाहारी होनेके कारण दूसरे ज़रियोंसे प्राणिज चर्बी पा सकते हैं। 'वनस्पति मारजेरीन' छापवाले खास मारजेरीनको छोड़कर दूसरे मारजेरीनमें तो प्राणिज चर्बी मिलाई हुई रहती है। वनस्पति उद्योगका डेरीके धंधे और पशु-धनपर जो बुरा असर पड़ता है और तेलके बीजों की पैसे देनेवाली फसलके अनाजोंकी पैदावारकी जगह ले लेनेका जो खतरा रहता है, उसकी तरफ हम ध्यान न दें, तो भी जनताकी तन्दुरुस्तीपर उसका जो बुरा असर हो रहा है, उसे तो हम नज़रअंदाज़ कर ही नहीं सकते। ('हरिजन-सेवक')

युद्धके अनाथोंकी देख-भाल

युद्धके दुष्परिणाम-स्वरूप जिन बच्चोंका जीवन अस्त-व्यस्त

हो गया है, ऐसे बच्चोंकी सहायताके लिए सन् १९३७ में न्यूयार्कमें एक संस्थाका निर्माण हुआ। क़रीब ६०००० बच्चों को इस संस्थासे मदद मिलती है। इस योजना (Foster Parents Plan) द्वारा अनेक देशोंके बच्चोंको सहायता दी जाती है। इस संस्थाका मुख्य उद्देश्य प्रत्येक बच्चेकी उचित रूपसे स्थायी व्यवस्था करना है। ऐसे माता-पिता, जो इस प्रकारके बच्चोंको गोद लेते हैं, उनकी सब तरहकी देख-भाल करते हैं। इस समय यह संस्था हालैंड, बेल्जियम, फ्रांस, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, इटली, इंग्लैंड और चीनमें ऐसे बच्चों की सहायता कर रही है और उम्मीद है कि ग्रीसमें भी यह कार्य जल्दी ही शुरू हो जायगा। इस संस्थाका कार्य अमरीकनोंके चन्देसे ही चलता है। एक बच्चेको गोद लेनेके लिए माता-पिताको १८० डालर सालाना खर्च करने होते हैं। गोद लेनेके इच्छुक माता-पिताको उनके लिए चुने गए बच्चेकी तसवीर और सारा विवरण भेज दिया जाता है। माता-पिता तथा बच्चेके बीच घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करनेके लिए पत्रों तथा उपहारोंके आदान-प्रदानपर विशेष ज़ोर दिया जाता है। बच्चेके लिए प्रतिमास नक़द रुपया तथा खाद्य-पदार्थ और कपड़े भेजे जाते हैं। पिछले कुछ वर्षोंसे यह संस्था बीमार तथा अपाहिज बच्चोंकी भी सहायता कर रही है। ('यूसिस')

दक्षिण-आफ्रिकामें 'श्वेत'-प्लेग !

दक्षिण-आफ्रिकाकी राष्ट्रीय सरकार वहाँ और बाहर होनेवाली आलोचनाओंकी उपेक्षाकर अपनी नात्सी-नीतिपर अमल करनेपर तुली हुई है। अभी हाल ही में उसने लोकमतकी उपेक्षा कर नात्सीवादके समर्थक और हिटलर-मुसोलिनीके प्रशंसक डा० ओटो डूप्लेसिसको नीदरलैंडका राजदूत नियुक्त किया। किन्तु नीदरलैंड-सरकार द्वारा इस नियुक्तिपर अप्रसन्नता प्रकट किए जानेपर उसे मजबूरन उस नियुक्तिको रद्द करना पड़ा। अब इस बेशर्म सरकारने इसी नात्सी एजेण्टको अपना सूचना-विभागका अध्यक्ष बना दिया है। एक दूसरे नात्सी-समर्थक डा० ई० जी० जेनसनने अभी हाल ही में डरबनमें अपने भाषण में 'भारतीय खतरे'की ओर ध्यान दिलाते हुए कहा है कि साधारणतया लोग इससे परिचित नहीं हैं कि एशियावासी आफ्रिका महाद्वीपपर कब्ज़ा करनेकी फ़िक्रमें हैं। भारत आफ्रिका पर आर्थिक तथा राजनीतिक रूपसे कब्ज़ा करना चाहता है। अमरीका और यूरोपीय राष्ट्र चाहते हैं कि दक्षिण-आफ्रिकापर राजनीतिक रूपसे गोरोंका ही शासन रहे। यदि गोरी सभ्यताका कोई गढ़ है, तो वह दक्षिण-आफ्रिका ही है। दक्षिण-आफ्रिका का पूर्वी किनारा भारतके अधिकारमें नहीं आना चाहिए, इस तथ्यके महत्वको यूरोपीय देश नहीं जान सके हैं। यही कारण है कि संयुक्त राष्ट्र-संघकी असेम्बलीमें दक्षिण-आफ्रिकामें भारतीयोंके प्रति व्यवहारपर आक्रमण किए जाते हैं।

नेशनलिस्ट-पार्टीके समाचारपत्र 'डाइ ट्रांसवालेर'के अनुसार आफ्रिकाके दक्षिणी किनारेके विशेष भौगौलिक महत्वके कारण केवल दक्षिण-आफ्रिकाकी गोरी जनताको ही खतरा नहीं है, बल्कि यूरोप और अमरीकाकी गोरी जनताको भी है। वहाँ की नेशनलिस्ट-सरकारने अपने हाथमें ही सत्ता केन्द्रित रखने का निश्चय कर रखा है, चाहे इसके लिए उसे अवैधानिक ज़रियों का ही सहारा क्यों न लेना पड़े। उसे गोरी सभ्यताको सुरक्षित रखनेके लिए अपने 'मिशन' (?) पर इतना घमण्ड है कि यह ऐसे क़ानूनको भी भंग करनेपर उतारू है, जो आदि-निवासियों को नाम-मात्रके और परोक्ष प्रतिनिधित्वके अधिकार दिए हैं। अभी हाल ही में केपटाउन-विश्वविद्यालयकी एक मीटिंगमें डा० एच० जे० सिमनने भाषण देते हुए कहा है कि नेशनलिस्ट-सरकारका यह कहना कि काले गोरी सभ्यताके लिए खतरा हैं, कोरी राजनीतिक चाल है। कालोंपर इस प्रकारके आक्रमणका कारण यह नहीं कि उनकी सभ्यताका स्तर गोरोंसे नीचा है, बल्कि इसलिए कि वह ऊँचा है। उसका कालोंके प्रति यह रुख इस बातका परिचायक है कि यदि वे असभ्य और बर्बर ही बने रहें, तो उन्हें वहाँ रहने दिया जा सकता है। इस संकीर्ण स्वार्थ-वृत्तिके कारण केवल काले ही नहीं, अंगरेज़ प्रवासी भी दक्षिण-आफ्रिकनोंके आक्रमणोंके शिकार हो रहे हैं।

शीघ्र ही बम्बईमें 'कम्पला' नामक जहाज़ पहुँच रहा है, जिसमें ऐसे आठ अभागे भारतीय, जिनका जन्म दक्षिण-आफ्रिका में हुआ है, वापस भारत लाए जा रहे हैं। इतने अर्से तक उस देशकी सेवा करके अब वे यहाँ बेकारोंकी संख्या ही बढ़ावेंगे। दक्षिण-आफ्रिकाके ज़िम्मेदार सदस्योंका यह कहना कि केपटाउन-समझौतेका खयाल करके भारतीय सरकार कब तक चुप बैठी रहेगी और ऐसे अभागोंको आश्रय देती रहेगी, जब कि यूनियन उस समझौतेकी बिल्कुल परवाह नहीं करता। ('टेलीप्रेस')

विधान-निर्मातृ-परिषद

पिछले साल ९ दिसम्बरको दिल्लीमें ब्रिटिश मंत्रि-मिशनकी योजनाके अनुसार वर्तमान प्रान्तीय असेंबलियों और रियासतोंसे चुने गए प्रतिनिधियोंकी जिस विधान-निर्मातृ-परिषदका उद्घाटन हुआ था, उसने फिर स्वतंत्र भारतके विधानके मसविदेपर विचार करना आरंभ कर दिया है और आशा की जाती है कि आगामी २६ जनवरीको यह स्वीकृत भी हो जायगा। हिन्दू-महासभा तथा वामपक्षी दलोंने, अपने-अपने दृष्टिकोणसे, इस परिषदको देशकी सच्ची और पर्याप्त प्रतिनिधि परिषद न मानते हुए उसके विधान बनानेके अधिकारको चुनौती दी है। परिषद के दो सदस्यों—श्री दामोदरस्वरूप सेठ और मौलाना हसरत मोहानी—ने उसकी बैठकमें इस आशयके प्रस्ताव भी पेश किए, जो स्वभावतया गिर गए। जो भी हो, सिद्धान्ततः इस परिषदको देशकी पूर्ण और पर्याप्त प्रतिनिधि परिषद नहीं कहा जा सकता। प्रथम तो इसका चुनाव १९३५ के गवर्मेंट आफ़ इण्डिया-एक्ट के अनुसार बनी उन प्रान्तीय असेंबलियोंके सदस्यों द्वारा हुआ है, जो स्वयं देशके सिर्फ़ १३ प्रतिशत मताधिकार द्वारा चुने गए हैं। दूसरे यह चुनाव विधान बनानेके आधारपर तो हुआ नहीं था। ब्रिटिश अधिकारियोंने तो अपना पिण्ड छुड़ानेके लिए जल्दबाज़ी की और बहाना यह बनाया कि अभी बालिग मताधिकारके आधारपर इसका चुनाव संभव नहीं। पर कांग्रेसी नेताओंने अपने घोषित आदर्शोंको भुलाकर इसे कैसे स्वीकार कर लिया? स्वतंत्र देशका विधान असाधारण महत्त्व रखता है। वह बार-बार तो बनता नहीं। फिर उसको बनाने में इतनी जल्दबाज़ी और संकीर्ण मताधिकार क्या उचित हैं? फ़ैज़पुर-कांग्रेसने तय किया था कि 'बालिग मताधिकारके आधार पर बनी विधान-निर्मातृ-परिषद द्वारा बना, बाहरी हस्तक्षेपसे मुक्त, भारतीय विधान ही स्वीकार किया जायगा'। जून १९४६ में बम्बईमें हुई कांग्रेस-कार्यसमितिकी बैठकमें इसमें 'बालिग मताधिकार या उसका निकटतम मताधिकार' यह संशोधन हुआ और ७ जुलाई १९४६ को, जब कि आज़ादीका तोफ़ा अनकरीब मिलता दिखाई दिया, कांग्रेसके इस घोषित आदर्शको दोहरानेकी ज़रूरत भी नहीं समझी गई और ब्रिटिश मंत्रि-मिशनकी योजनाके अनुसार संगठित विधान-निर्मातृ-परिषदको ही स्वीकार कर लिया गया! कदाचित् इसीलिए इसके उद्घाटनके साथ ही इसके अध्यक्ष-पदसे राजेन्द्र बाबूको कहना पड़ा कि यह परिषद 'कुछ सीमाओं' के साथ पैदा हुई है। मेरठ-कांग्रेसमें नेहरूजीने भी स्वीकार किया कि वे इस परिषदसे 'विशेष सन्तुष्ट नहीं'।

फिर भी आज यही परिषद स्वतंत्र भारतका विधान बना रही है और चंद लोगोंके सिवा इसके इस अधिकारको प्रभावपूर्ण ढंगसे चुनौती देनेवाला भी कोई दल नहीं। इसका प्रधान कारण है अधिकांश जनताकी निरक्षरता तथा व्यापक पिछड़ापन और राजनीतिमें सक्रिय दिलचस्पीका अभाव। अतः मेरठ-कांग्रेस में नेहरूजी द्वारा कहे गए ये शब्द दोहरा देने ज़रूरी हैं कि 'हमने इसे स्वीकार किया है, अतः इसे चलायँगे और इससे जितना भी लाभ उठाया जा सके, उठायँगे।' दरअसल तो पूर्ण स्वतन्त्रता और सार्वभौम सत्ता प्राप्त करनेके बाद किसी भी देशकी समूची जनता ही विधान-निर्मातृ-परिषद हो जाती है। पर जहाँ ऐसा नहीं होता, वहाँ कम सत्ता और प्रतिनिधित्ववाली परिषदें भी इस दिशामें काफ़ी लाभदायक सिद्ध हुई हैं। उदाहरणके लिए १७८९ से १८७५ तक फ्रांसमें जितनी विधान-निर्मातृ-परिषदें बैठीं, वे प्रतिगामी ही अधिक थीं; किन्तु जन-क्रान्ति और स्वातंत्र्य-संघर्षको अग्रसर करनेमें उनका महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है। अमरीकामें भी १७८६ के शाई-विद्रोहके बादवाले वर्षमें हुए फिलेडेलफिया-कन्वेशनने आगे चलकर एक बहुत बड़े स्वतंत्र सार्वभौम जनतंत्रको जन्म दिया। इसी तरहकी परिषदें पेरिस (१९४८), वाइमर (१९१८), मास्को (१९१७) और आयरलैण्डमें भी बैठीं; पर आगे चलकर इन्हीं परिषदोंने असली विधान-निर्मातृ-परिषदोंको जन्म दिया। आया भारतीय विधान-निर्मातृ-परिषद भी यही स्थिति लायगी, जन-क्रान्ति और पूर्ण स्वातंत्र्यके मिशनको अग्रसर करनेमें सहायक होगी, इसका उत्तर समय ही देगा।

स्वतंत्र भारतका विधान

संकीर्ण मताधिकार और 'कुछ सीमाओं'के साथ पैदा हुई वर्तमान विधान-परिषद स्वतंत्र भारतके विधानके जिस मसविदे पर विचार कर रही है, वह डा० अम्बेडकरकी अध्यक्षतामें बनी मसविदा-समिति द्वारा तैयार किया गया है। इसे आयरलैंड, इंग्लैण्ड, संयुक्त-राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया और कनाडा आदिके विधानोंके आधारपर तैयार किया गया है। किन्तु हमें तो विधानके मसविदेपर सरसरी निगाह डालनेपर ऐसा नहीं लगा। आयरिश विधानमें सर्वोच्च सत्ता जनताके हाथोंमें और प्रभावपूर्ण शासन सत्ता मन्त्रिमंडलको सौंपी गई है। भारतीय विधानके मसविदेमें ऐसा कहाँ है? ब्रिटेनके अलिखित क़ानून व्यक्तिकी स्वतंत्रता और उसके मौलिक अधिकारोंकी सबसे बड़ी गारंटी हैं और उसके विधानमें असली सत्ता मंत्रिमंडलको सौंपी गई है। पर हमने उससे कुछ न लेकर ब्रिटिश उपनिवेशोंके शासन-विधानसे प्रेरणा ली है, जिसका मूल आधार है सर्वोच्च सत्ताको ताजसे बँधी रखना। अमरीकन विधानमें तो सर्वोच्च सत्ताको किसी एक व्यक्ति, दल या संस्थाके हाथोंमें केन्द्रित न कर उसे सुप्रीम-कोर्ट, प्रतिनिधि-सभा, सेनेट, प्रेसिडेंट और गवर्नरोंमें विभाजित कर दिया गया है। व्यक्तिकी स्वतंत्रता और मौलिक अधिकारोंकी रक्षामें सुप्रीम-कोर्टका महत्त्वपूर्ण हाथ है। ऐसी कोई बात हमें भारतीय विधानके मसविदेमें तो नहीं देख पड़ी। हमारा मसविदा तो १९३५ के उसी गवर्मेंट आफ इंडिया-एक्टके आधारपर बनाया गया जान पड़ता है, जिसे नेहरूजीने 'गुलामीका खरीता' कहा था और १९३७ में जिसे विफल करनेको ही कांग्रेसने पद-ग्रहण किया था। कहते हम यह हैं कि 'यह पूर्ण स्वाधीन सर्वतंत्र भारतीय प्रजातंत्रका विधान है, पर इसकी सारी रूप-रेखा उसी 'गुलामीके खरीते'का ही भाषान्तर है। राष्ट्रपति और गवर्नरके अधिकार प्रान्तीय स्वतंत्रताको बेकार-सा कर देते हैं। इसमें क़ानून और सार्वजनिक नैतिकताके अनुसार सभी भारतीयोंको न्याय, क़ानून, सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक दृष्टिसे समानता और समान अवसर तथा विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, पूजा, पेशा, कार्य और एकत्र होनेकी आज़ादीकी गारंटी होगी; पर साथ ही ब्रिटिश गवर्नर-जनरल और गवर्नरोंकी तरह ही भावी राष्ट्रपति तथा गवर्नरोंको उनके अपहरणके विशेषाधिकार भी होंगे। शासन गैरसाम्प्रदायिक होगा; फिर भी अल्पसंख्यकों, पिछड़े हुए क्षेत्रके लोगों, अस्पृश्यों तथा क़बाइलियोंके लिए पर्याप्त संरक्षण रहेंगे।

विधान किसी भी राष्ट्रकी जनताकी सर्वोच्च सत्ता, अबाध स्वतंत्रता और मानवके मौलिक अधिकारोंकी सुरक्षाकी सुस्पष्ट और असंदिग्ध वैधानिक गारंटी है। उसका उद्देश्य केवल शासनकी रूप-रेखा प्रस्तुत करना तथा उसे बनाए रखनेकी सुविधा-सत्ता प्रदान करना ही नहीं है। पर भारतीय विधानका मसविदा कुछ ऐसा ही लगता है। हिन्द-सरकारके क़ानून-सदस्यने उसे पेश करते हुए कहा भी है—"यह विधान युद्ध और शान्तिकालमें देशको संगठित रखनेके लिए काफ़ी दृढ़ है।...केन्द्र मज़बूत होगा..." पर देशकी शासन द्वारा आरोपित एकता—जैसा कि ब्रिटिश भारत या नात्सी जर्मनीमें थी—और स्वशासित इकाइयोंकी सुसंगठित एकतामें ज़मीन-आसमानका-सा फ़र्क़ है। शासनकी सबसे नीचेकी इकाईमें सबसे अधिक स्वतंत्रता एवं सर्वोच्च सत्ता हो—केन्द्र, राष्ट्रपति अथवा गवर्नरोंमें नहीं—यही सच्ची स्वतंत्रता और वैधानिक एकता है। यह स्वतंत्रता और एकता शब्दजालपर सर्वतंत्र स्वतंत्र प्रजातंत्रका महल खड़ा करने या केन्द्रको मज़बूत बनानेसे नहीं, बल्कि देशकी समाज-व्यवस्थामें आमूलचूल परिवर्तन करनेसे ही संभव हो सकती है। पर हमें आश्चर्य है, इस विषयमें विधानमें कुछ भी नहीं कहा गया है। जब तक देशमें जात-पाँत और मनु महाराजकी व्यवस्थाका बोलबाला है, स्त्री-पुरुषकी समानता, छुआछूत या नीच-ऊँचकी भावनाका प्रतिकार, सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक समानता एवं समानाधिकार, अल्पसंख्यकों और अछूतोंके सरक्षण आदिका स्थिर-स्वार्थोंके प्रभुत्व एवं राजनीतिक चकमोंके सिवा कोई वास्तविक अर्थ नहीं। मौजूदा व्यवस्थाको क़ायम रखकर गैरसाम्प्रदायिक एवं समाजवादी प्रजातंत्रकी घोषणा धोखा-मात्र है। स्वतंत्र भारतमें भी जो धर्म, विश्वास और पूजाकी स्वतंत्रताके अधिकारकी माँग करते और वैधानिक गारंटी देनेका दम भरते हैं, जो यह समझते हैं कि स्वतंत्र भारतमें एक जाति सदा अछूत और अस्पृश्य बनी रहेगी और एक वर्ग अल्पसंख्यक, जिसे संरक्षण देना अपरिहार्य होगा; उनसे हम यही कहेंगे कि उन्होंने भारतके अंग-भंग और बादके कल्पनातीत नरमेधसे कोई सबक़ हासिल नहीं किया। यदि वैसा होता, तो आज हमारी भाषा और सोचनेका ढंग ही भिन्न होते। कदाचित् इसीलिए देशकी अधिकांश जनताकी बनने-

वाले नए विधानके प्रति कोई खास दिलचस्पी नज़र नहीं आती।

मानवके मौलिक अधिकार

कांग्रेस जिस समाज और राजनीतिकी उपज है, स्वभाव-तया वह उनमें क्रान्तिकारी परिवर्तन लानेके लिए कोई मज़बूत और निश्चित क़दम उठानेमें अक्षम या अनुपयुक्त है। ब्रिटिश अधिकारियोंके षड्यंत्र और मुस्लिम-लीगकी अड़ंगेबाजीने उसे और भी पंगु बना दिया है। इसीलिए पृथक् निर्वाचन और देशका विभाजन उसे अनिच्छापूर्वक स्वीकार करने पड़े। और आज वह राजाओं, ज़मींदारों, अर्थ-पिशाचों, प्रतिगामियों और अनेक प्रकारके ग़द्दारोंके साथ भी न्याय करनेमें झिझक रही है। ब्रिटिश सत्तासे लोहा लेनेके लिए देशका व्यापक प्रतिनिधित्व प्राप्त करनेकी ग़रज़से उसने धर्म, जाति, स्थिर-स्वार्थों आदिके खिलाफ़ दबी ज़बानसे भी कुछ नहीं कहा। पर उसी नीतिसे आज शासन करना या नया विधान बनाना तो समीचीन नहीं जान पड़ता। जहाँ पहले महायुद्धने सामन्तशाहीके पतनकी घोषणाकर रूसी जन-क्रान्तिको जन्म दिया, दूसरेके अन्तने पतनोन्मुख पूँजीवादके आक्रमणशील अंग फाशिज़्मका विनाश कर समाजवादी क्रांतिकी मुहीमको आगे बढ़ाया है। इसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप आज मानवमें अपने मौलिक अधिकारोंके प्रति जागरूक अन्तश्चेतना पैदा हुई है। इसे संरक्षण-सुविधा देकर, नक़ली और थोथे अधिकारोंकी सूची दिखाकर, सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता। हिन्दू-बहुल कांग्रेसकी हिन्दू-साम्राज्यवादको पुनर्जीवित करने और लीगकी शरियतकी रूहसे इस्लामी हुकूमतकी पुनः स्थापना करनेके प्रयत्नोंके संघातका महँगा परिणाम हम देख चुके हैं। यदि हम भारतकी भावी पीढ़ियोंको उसकी पुनरावृत्तिके दुष्परिणामसे बचाना चाहते हैं, तो हमें नए विधानमें स्पष्ट रूपसे मानवके मौलिक अधिकारोंका उल्लेख और उसकी अबाध स्वतंत्रता एवं उसकी गारंटीका स्पष्टीकरण कर देना चाहिए। इस दिशामें मसविदेमें किया गया उल्लेख हमें अधूरा और अपर्याप्त लगता है। इस सम्बन्धमें हम संयुक्त राष्ट्र-संघ द्वारा प्रचारित मानवके मौलिक अधिकारोंकी स्वीकृतिकी सिफ़ारिश करेंगे, जो संक्षेपमें इस प्रकार हैं: बोलने, लिखने, एकत्र होनेकी स्वतंत्रता; सार्वजनिक स्थानों, कार्यों एवं उपयोगिताओंमें जाति, धर्म, स्थिति अथवा अन्य किसी प्रकारकी अयोग्यता अथवा असुविधाका निराकरण; समाज तथा नृतत्त्वकी दृष्टिसे अपने-अपने विश्वासों, धर्मों, रीति-रिवाजों, भाषाओं, संस्कृतियों एवं पेशोंके अनुसरणकी अबाध स्वतंत्रता; जाति, धर्म, स्थिति आदिके कारण किसी विशेष सुविधाका अभाव; आत्म-रक्षा तथा आत्म-निर्णयका अबाध अधिकार; धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक समानता एवं पूर्ण स्वतंत्रता; बिना वारंट या पर्याप्त कारणके गिरफ़्तार किए जाने अथवा बिना मुक़दमा चलाए हवालातमें रखे जानेसे सुरक्षा आदि। चूँकि स्वस्थ जनतंत्रका असली आधार अथवा इकाई व्यक्ति है; कोई धर्म, जाति, दल या वर्ग नहीं, अतः उसकी स्थापनाके लिए इन मौलिक अधिकारोंको ही प्रधानता दी जानी चाहिए। क्या हमारे देशके कर्णधार इस ओर पर्याप्त ध्यान देंगे?

ग्राम-पंचायतें बनाम गांधीजी

पर हमारे अधिकांश राजनेता व्यक्तिके बजाय ग्रामोंको जनतंत्रका आधार बनाकर चलना चाहते हैं। मसविदेकी आलोचना करते हुए कई सदस्योंने गाँवोंकी उपेक्षा करनेके लिए क़ानून-सदस्यकी भर्त्सना की और कहा कि ऐसा करके उन्होंने भारतीय परम्परा तथा गांधीजीकी शिक्षाओं एवं आदर्शोंकी अवमानना की है। जिस देशके बहुसंख्यक लोगोंने गांधीजीके जीवन-कालमें ही उनकी शिक्षाओं, आदर्शों एवं उद्देश्योंकी हत्या की और जो उन्हें गोलीके घाट उतारकर भी उनकी दुहाई देनेमें नहीं शरमाते-सकुचाते, उनकी धूर्त्तता और मक्कारीके बारेमें क्या कहा जाय? पर सच तो यह है कि अज्ञान और अंध-परम्पराके जिस बुतको अपने स्वार्थके लिए हमने 'ग्राम-देवता' या 'दरिद्र-नारायण' कहकर 'पूजा' (?) है, वह आजके युगमें स्वस्थ और सबल जनतंत्रका आधार कदापि नहीं बन सकता। डा० अम्बेडकरने गाँवोंको 'कूपमंडूकता और अज्ञानके गड़े' कहा, तो क्या बेजा कहा? क्या यथार्थमें वे ऐसे ही नहीं हैं? मार्क्सने तो आजसे एक सदी पहले इसी कारण उन्हें भारतके इतिहासका कलंक बतलाया था। देशी तथा विदेशी सेनाएँ न-जाने कितनी बार लूट, मौत और विनाशका तूफ़ान बनकर उनपर से गुज़र गईं और अधिकार-चेतनासे शून्य ग्रामवासी पतन, अपमान तथा पीड़नकी धूल झाड़कर फिर पहलेकी-सी ज़िन्दगी बसर करने लगे। न-जाने कितने साम्राज्य बने और बिगड़े, पर ग्राम ग्राम ही बने रहे! ग्राम-पंचायतोंकी न्याय परायणताके कोई कितने भी गीत क्यों न गाय, पर इतिहास साक्षी है कि वे स्थिर-स्वार्थोंकी उपज और उन्हींकी सुविधाओंकी रक्षिका रही हैं। यदि इनमें कोई जीवन, बल और प्रभाव होता, तो क्या ये आक्रमण-

कारियों अथवा सामन्ती जुल्म-ज्यादतियोंसे किसानोंको बचा नहीं सकती थीं ? एक आततायी भूपतिके खिलाफ़ लाखों शोषित-पीड़ित-लांछित भूमिहारोंका संगठित मोर्चा क़ायम नहीं कर सकती थीं ? उल्टे इन्होंने तो भूपतियों और महाजनोंकी दलाल बनकर 'दरिद्र-नारायण'को अपने स्वत्व-स्वाभिमानको तिलांजलि देकर मूक आत्म-समर्पणकी ही शिक्षा दी है। इसीके परिणाम-स्वरूप आज ग्रामवासी मूक पशु अथवा अर्द्धमानव बने हुए हैं। कौन कहता है कि यही श्रमकी पवित्रता और स्वत्व की अबाधतामें विश्वास करनेवाले बापूजीकी शिक्षा या आदर्श था ? गांधीजीकी शिक्षा तो गाँवोंको स्वावलम्बी बनानेकी थी। पर कितने कांग्रेसियोंने उसपर अमल किया है ? हम डा० अम्बेडकरके इस कथनसे पूर्णतया सहमत हैं कि ये ग्राम-पंचायतें ही हिन्दकी तबाही और पिछड़ेपनका प्रधान कारण हैं। लेनिनके कथनानुसार यदि हमें इनमें सच्चे जनतंत्रकी स्थापना करनी है, तो हमें गाँवोंका बिजलीकरण करना होगा—अर्थात् वहाँ यांत्रिक प्रकाश और शक्ति पहुँचानी होगी। इसके बिना इनका युगातीत अँधेरा कदापि दूर न होगा।

रियासतोंकी स्थिति

"राजवंशके बाद राजवंशका पतन हुआ; क्रांतिके बाद क्रांति हुई; हिन्दू, पठान, मुग़ल, सिख और अंगरेज़ क्रमशः सत्ताधारी हुए; किन्तु गाँव तो गाँव ही रहे। संकटके समय शस्त्र धारण कर उन्होंने मोर्चेबंदी की। शत्रु-सेनाके आनेपर ग्रामवासी अपने-आपको और अपने ढोर-डंगरको बचानेके लिए घरोंमें बंदकर लेते और शत्रुको चुपचाप गुज़र जाने देते।"—मैटकाफ़के इन शब्दोंकी यथार्थता वैसे तो अधिकांश भारतीय ग्राम चरितार्थ करते हैं, पर रियासती भारत इसका आदर्श उदाहरण है। आज भी वहाँ मध्य-युगीन शासन और उसकी खराबियाँ मौजूद हैं। इन रियासतोंके 'प्रतिनिधि' एक विचित्र ढंगके चुनावसे मौजूदा परिषदमें लिए तो गए हैं, पर न तो उनकी स्थिति ही स्पष्ट की गई है और न उन्हें भारतीय प्रान्तोंके-से अधिकार और सुविधाएँ ही दी गई हैं। उन्हें न सिर्फ़ क़ायम ही रखा गया है, बल्कि अपनी सेना रखने और देश-रक्षा, विदेशी मामले तथा यातायातके साधनोंके सिवा अन्यान्य विषयोंमें केन्द्रीय सरकारकी सत्ता मानने न माननेकी पूरी स्वतंत्रता दी गई है। यह स्थिति न सिर्फ़ देशकी एकता और दृढ़ताके लिए, बल्कि रियासती जनताके विकासके लिए भी बाधक और घातक है। आखिर क्या समझकर रियासतोंको भारतीय प्रान्तोंके समकक्ष नहीं किया जा रहा है ? डा० अम्बेडकरकी यह उक्ति कि १८७० के जर्मन-साम्राज्यमें २५ इकाइयाँ थीं, जिनमें से २२ राज्य और ३ प्रजातंत्र थे, हास्यास्पद जान पड़ती है। क्या उन्हें भी यह बतलानेकी ज़रूरत है कि १९४८ का भारत १८७० का जर्मनी बनकर कहाँ पहुँचेगा ? डा० अम्बेडकर यह भूल जाते हैं कि ग्रामोंकी तरह ही जागीरी ग्रामोंके ये रियासती समूह भी भारतके पिछड़ेपन और विनाशका कारण हैं। दुनियासे जब गुलामी विदा हो चुकी है, यहाँ वह अबाध रूपसे जीवित है। ब्रिटिश शासनने अपनी जड़ें जमाने और संगठित जन-मोर्चेसे अपनी रक्षा करनेके लिए इन साम्राज्यवादी खूँटोंको क़ायम रखा, इनकी सुरक्षाके लिए क़ानून बनाए। पर स्वतंत्र भारतमें इस अनधिकारी सामन्ती कलंकको क़ायम रखनेका मन्शा या लाभ ही क्या ? हम परिषदके उन रियासती सदस्योंकी इस माँगका हृदयसे समर्थन करते हैं, जिन्होंने रियासती इकाइयोंको भारतीय प्रान्तोंके स्तरपर लानेकी माँग की है।

अल्पसंख्यकोंका सवाल

शासन यदि समाजवादी जनतांत्रिक सिद्धान्तपर आधारित न हो (जैसा कि सोवियत् रूसमें है), तो जाति, धर्म, भाषा और संस्कृतिके बहाने स्वतंत्रता एवं संरक्षण चाहनेवाला अंग कितना शरारती, प्रतिगामी और खतरनाक हो सकता है, मुस्लिम-लीगकी राजनीति और उसका दुष्परिणाम इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। 'अल्पसंख्यक'-संज्ञाके नामपर ब्रिटिश साम्राज्यशाहीने फूट डालकर शासन करनेके अपने पेटेण्ट उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिए ही यह विषवृक्ष खड़ा किया था। पर आज भी स्वार्थियों और प्रतिगामियोंके हाथमें यह एक अमोघ अस्त्र बना हुआ है। परिषदमें कई सिख और मुसलमान सदस्योंने 'अल्पसंख्यकोंके संरक्षण'का प्रश्न उठाया है। डा० अम्बेडकरके इस कथनमें सचाई ज़रूर है कि अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों दोनोंने ग़लत मार्ग अपनाया है। निःसंदेह अल्पसंख्यक एक विस्फोटक शक्ति है, जिसने फटकर समूचे राष्ट्रको ही नष्ट कर दिया है। भारत इसका एक ताज़ा शिकार है। इस महँगे अनुभवके बाद भी क्या हम अल्पसंख्यक और उनके संरक्षणकी बातें करते रहेंगे ? डा० अम्बेडकरके इस कथनसे हम सहमत हैं कि अल्पसंख्यकोंका रहना न रहना बहुसंख्यकोंके व्यवहारपर निर्भर करता है।

अतः नए विधानमें ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि व्यक्तिकी स्वतंत्रता और मौलिक अधिकारोंकी पूरी-पूरी गारंटी रहे, ताकि उसे या उसके-से अन्य व्यक्तियोंको धर्म और जातिके नामपर विशेष अधिकार या सुविधा न माँगनी पड़े। पर बक़ौल प्रो० के० टी० शाहके "मसविदेमें जनताको यथार्थ स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय मिले, इस इच्छाका कहीं लेश-मात्र भी आभास नहीं मिलता। मौलिक अधिकारोंके अध्यायमें इतने अपवाद भर दिए गए हैं कि अधिकार स्वयं एकदम अस्पष्ट हो गए हैं।"

शासन और बहुसंख्यकोंके रुखकी प्रतिक्रिया-स्वरूप पूर्वी पंजाबके सिखोंने, जिनका नेतृत्व मुस्लिम-लीगसे कम प्रतिगामी, सांप्रदायिक और विस्फोटक नहीं है, १९४१ की मर्दुमशुमारी के आधारपर प्रान्त और केन्द्रमें हिन्दुओंके बराबर नौकरियों तथा प्रतिनिधित्वकी माँग की है। अन्यान्य प्रान्तोंमें भी उन्होंने आबादीके अनुपातसे यही सुविधाएँ माँगी हैं। लोहारू और गुड़गाँव को वे पूर्वी पंजाबसे अलगकर 'अल्पसंख्यकोंके अधिकारों एवं सुरक्षा' के नामपर अपने सिक्खिस्तानके स्वप्नको सत्य करनेकी चेष्टामें हैं। सांप्रदायिकताका यह ज़हर अगर फैलने दिया गया, तो पता नहीं क्या हश्र होगा? सिखोंको नौकरियाँ और प्रतिनिधित्व दिए जानेका कोई विरोध नहीं कर सकता। पर जाति और धर्मके आधारपर उनको विशेष सुविधाएँ और अधिकार देना कहाँ तक देशकी एकता, सुरक्षा और जनतांत्रिक विकासके लिए सहायक एवं बाधक होगा, इसपर भलीभाँति विचार कर लेना चाहिए। स्वयं सिखोंमें भी तो खत्री, जाट और अछूत हैं। तब क्या इन सबको भी ये सुविधाएँ और अधिकार मिलेंगे? सिखोंके प्रचारसे पूर्वी पंजाबकी स्थिति कितनी गंभीर बन गई है, इसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि सरदार मोहनसिंह साहनीने कांग्रेससे वहाँके अकाली-दलपर पाबंदी लगानेका अनुरोध किया है। क्या कांग्रेस और विधान-निर्मातृ-परिषद्की आँखें खोलनेके लिए यह स्थिति काफ़ी नहीं है?

विधानके मसविदेका हिन्दी-अनुवाद

राष्ट्र-गीतकी ही तरह कल तक जिस भाषाको कांग्रेस राष्ट्रभाषा कहती और बरतती चली आई है, आज जब निर्णय करनेकी सत्ता और अवसर उसे मिले हैं; तो उसमें भी उसे शंका होने लगी है। इसी अनिश्चयके कारण, उसके अनेक सदस्योंको अंगरेज़ीकी महत्तामें नया विश्वास हो चला है। पर राष्ट्रभाषामें भी विधानका एक रूपान्तर स्वीकृत होना ज़रूरी है, अतः इसके हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानीमें तीन अनुवाद कराए गए हैं। हिन्दुस्तानी-अनुवाद तो हमारे देखनेमें नहीं आया। उर्दूका, सुननेमें आया है कि, काफ़ी सरल, बामुहाविरा और उर्दू जानने-वालोंके लिए खासा अच्छा है। पर हिन्दीका अनुवाद हमने देखा है और काफ़ी ध्यानसे देखा है। उसकी भूमिकामें हिन्दी-अनुवाद-समितिके अध्यक्ष श्री घनश्यामसिंह गुप्तने कहा है: "हमारा अनुवाद केवल साधारण जनताकी जानकारीके लिए ही न हो, वरन् ऐसा हो, जो क़ानूनी पण्डितोंकी जाँचमें उतर सके और जिसकी प्रामाणिकता उतनी ही हो, जितनी कि अंगरेज़ी मसविदा की।" मसविदेके हिन्दी-अनुवादको देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रामाणिक चाहे वह अंगरेज़ी मसविदे जितना ही हो और क़ानूनी पण्डितोंकी जाँचमें भी वह खरा उतरे, पर साधारण जनताके कामका तो वह हर्गिज़ नहीं है। इसका प्रधान कारण यह जान पड़ता है कि अनुवादकी प्रामाणिकता और क़ानूनी पंडितोंकी जाँचकी चिन्ता करनेवाले विद्वान अनुवादकोंका साधारण जनता या उसकी रोज़मर्राकी बोलचालकी भाषासे कोई सक्रिय-सजीव सम्पर्क नहीं। वे बुरी तरह संस्कृत-जन्य हिन्दीकी कट्टर और भ्रान्तिपूर्ण धारणासे आक्रान्त जान पड़ते हैं। यदि ऐसा न होता, तो वे साधारणतया प्रचलित शब्दोंका—चाहे वे संस्कृतके हों, चाहे अंगरेज़ी-अरबी-फ़ारसीके—इतनी निर्मम कट्टरताके साथ चुन-चुनकर बहिष्कार न करते।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ

गत १४ नवम्बरको दिल्लीसे इस आशयकी एक सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित हुई है कि हिन्द-सरकारने राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघपर से पाबंदी न उठानेका निश्चय किया है। इसी विज्ञप्तिमें यह कहा गया है कि संघ-चालक पाबंदी उठानेके लिए दिल्ली आए थे और दो बार गृह-मंत्रीसे मिले। जिन शर्तोंपर सरकार पाबंदी उठा सकती थी, उन्हें माननेसे उन्होंने साफ इन्कार किया। इस विज्ञप्तिसे दो प्रश्न उठते हैं: पहला तो यह कि पाबंदीके बावजूद संघकी रीति-नीति या उसके सदस्योंकी ज़हनियतमें ऐसा कौन-सा मौलिक परिवर्तन हुआ है, जिसके सबब उसपर से पाबंदी उठानेका सवाल उठे? दूसरे, अगर सरकार या उसके किसी सदस्य या सदस्योंकी छिपी सहानुभूति उसके साथ नहीं, तो आखिर किस उद्देश्यसे इस सम्बन्धमें बात-चीत करनेके लिए संघ-चालकको सरकारी खर्चेपर दिल्ली लाया गया? सरदार पटेलने दो बार उससे भेंटकर भले ही न्याय-

परायणताके लिए लोकप्रियता अर्जन कर ली हो, पर नेहरूजीने उससे मिलनेसे इन्कारकर अधिक स्पष्ट रुख दिखलाया है। गांधीजीकी बलि लेकर और कुछ प्रमुख व्यक्तियोंके काराबद्ध होनेके बावजूद संघ द्वारा बोई गई ज़हरीली पौध घटती नज़र नहीं आती। इस अवस्थामें अपने-आपको ग़ैरसाम्प्रदायिक कहनेवाले शासनके सामने ऐसे अराष्ट्रीय संगठनपर से पाबंदी उठानेका प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए; बल्कि हमारी तो यह भी सिफ़ारिश है कि केवल पाबंदी लगाने-मात्रसे ही संघकी ज़हरीली मनोवृत्तिसे देशको बचाना मुश्किल है। कांग्रेस और सरकारको सामाजिक सेवा, स्वास्थ्य-सुधार, साक्षरता-प्रचार, मज़दूर-संगठन आदिमें युवक-युवतियोंकी सक्रिय दिलचस्पी पैदा करनेकी व्यापक एवं व्यावहारिक चेष्टा भी करनी चाहिए, ताकि खाली वक्तमें वे ग़लत रास्ता न पकड़ें।

इतिहासका सबक़
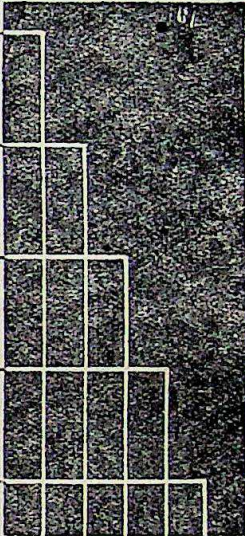
प्रयाग-विश्वविद्यालयके उपाधि-वितरणोत्सवपर बोलते हुए हिन्दके उप-प्रधान मंत्री सरदार पटेलने 'राष्ट्रके अस्तित्वको चुनौती देनेवाले अनेक खतरों'का ज़िक्र करते हुए कहा—"इतिहासका सबक़ भूलनेवाला राष्ट्र खतरा ही मोल लेता है।" निःसन्देह यह एक ऐतिहासिक सत्य है, जिसे सदा याद रखना चाहिए—शासकों और शासितों दोनोंको ही समान रूपसे। सरदार पटेल जब आजकी अशांति और अव्यवस्थाकी बात कहकर शक्ति-संचय एवं एकतापर ज़ोर देते हैं; अनुशासन, दृढ़ता, अधिक उत्पादन आदिकी माँग करते हैं; नैतिक मूल्योंकी भावनाको अपीलकर अपव्यय और फ़ैशनपरस्तीको रोकनेकी बात कहते हैं, तो उनके कथनका औचित्य मानना पड़ता है। हमने इन कालमोंमें जन-साधारणसे अधिकारसे पूर्व कर्तव्यकी ओर ध्यान देनेकी अपीलें की हैं, क्योंकि हम यह जानते और मानते हैं कि हमारा देश अभी संकट-कालसे पार नहीं हो पाया है। पर सरदार पटेलका भाषण पढ़ते समय हमारे मनमें यह प्रश्न भी साथ-ही-साथ उठता है कि क्या सरकार भी इस सीखके अनुरूप आचरण कर रही है? आखिर शासनमें भ्रष्टता और शिथिलता क्यों है? जब लाखों व्यक्ति दाने-दानेके लिए तरस रहे हैं, एक ओर नाजचोरोंकी पाँचों घीमें हैं और दूसरी ओर अपने-आपको गांधीजीका अनुयायी बतानेवाले कांग्रेसी गवर्नर-जनरल, गवर्नर और मंत्री बड़ी-बड़ी दावतें देते और उनमें प्रधान अतिथि बनते हैं। आज जब हज़ारों शरणार्थी और ग़ैरशरणार्थी बिना मकानके सर्दीमें ठिठुर रहे हैं, कांग्रेसी मंत्री और गवर्नर बड़ी-बड़ी कोठियोंमें देश-सेवाका पुरस्कार वसूल कर रहे हैं। क्या जन-साधारणसे अपव्यय और फ़ैशनपरस्तीसे बचनेका अनुरोध करनेवाले सरदार पटेलको मालूम है कि हमारे देशकी भूखों और नंगोंकी प्रतिनिधि बननेवाली सरकारके गवर्नर-जनरल, गवर्नर और मंत्री कितना वेतन और भत्ता पाते हैं और हमारे विदेशी राजदूत कितनी अमीरी और शानसे रह रहे हैं? मज़दूरोंसे वे हड़ताल और वेतन-वृद्धिकी माँग न कर उत्पादन बढ़ानेकी बात कहते हैं, पर क्या उन्हें मालूम नहीं कि उत्पादनकी वृद्धि मुनाफ़ाखोरोंकी तस्कर-वृत्तिके कारण नहीं हो रही और जो उत्पादन होता भी है, वह चोर-बाज़ार द्वारा जन-साधारणके लिए दुर्लभ होकर धनिकोंके लाभको ही सुलभ करता है?

अतीतकी शानदार सफलताकी याद दिलाकर सरदार पटेलने देशके आजके खतरोंका मुक़ाबला करनेके लिए एकता और शक्ति-संग्रहकी अपील की है। कठिनाइयाँ, खतरे और समस्याएँ कब किस देशके सामने नहीं रहे? पर सत्तारूढ़ होते ही हमारे जन-प्रतिनिधियोंने उनका ठोस रूपसे सफलतापूर्वक सामना करनेके लिए जनताकी आर्थिक, सामाजिक और नैतिक स्थिति सुधारनेके बजाय अपनी कठिनाइयाँ बताकर उससे अधिकाधिक आत्म-त्यागकी ही माँग की है। आखिर हिन्दुस्तानको आज किससे खतरा है? पाकिस्तानका नाम लेकर जो लोग आज भय और घृणाका भूत खड़ा कर रहे हैं, असली खतरा तो देशको उन्हींसे है। पूर्वी बंगाल और कश्मीरकी समस्या गोली या पत्थरकी तरह चोट करनेवाले भाषणों या तानेज़नीसे कदापि हल नहीं हो सकती और न वह संयुक्त राष्ट्र संघ या फ़ौजी निर्णयसे ही यथार्थमें हल हो सकेगी। इसके लिए हमें अपना दिल बड़ाकर शान्ति, सद्भावना और सहयोगकी भावनासे काम लेना होगा। पाकिस्तान और हिन्दुस्तानकी समस्या खतरनाक कदापि नहीं है। उन्हें अविश्वास और सन्देहसे देखनेवाले सरदार पटेलके भाषणोंसे यदि उनमें भी हिन्दके प्रति अविश्वास और संदेह ही पैदा हों, तो आश्चर्य ही क्या? इस वातावरण और स्थितिका अन्त मैत्रीपूर्ण ढंगसे ही हो सकता है। हमारी समझमें तो इतिहास और गांधीजीकी शिक्षाओंका यही सबक़ है। आखिर आदमी ही तो इतिहास बनाते हैं, वे ही तो उसकी धाराको बदल सकते हैं। क्या हम वैसा कर रहे हैं?

COVER PRINTED BY CAMEO

दी इण्डिया इलेक्ट्रिक वर्क्स लि०, कलकत्ता।

श्री भँवरमल सिंघी द्वारा रत्नाकर प्रेस, कलकत्तामें मुद्रित और 'नया समाज'-कार्यालय, १००, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्तासे प्रकाशित

नया समाज

जून, १९४९

नीदरलैण्ड्स

ट्रेडिंग सोसाइटी (बैंकर्स)

(नीदरलैण्ड्समें रजिस्टर्ड—१८२४ में संस्थापित)

कम्पनीके हिस्सेदारोंका दायित्व सीमाबद्ध है।

अधिकृत पूँजी .... फ्लोरीन ७५,०३०,०००
(रु० ९३,७८७,५००)

चालू तथा जमा पूँजी .... फ्लो० ५०,०३०,०००
(रु० ६२,५३७,५००)

रिजर्व फण्ड .... फ्लो० १९,०००,०००
(रु० २३,७५०,०००)

हेड-आफिस : एम्सटरडम (नीदरलैण्डसमें ७६ शाखाएँ हैं।)

शाखाएँ : बम्बई, कलकत्ता, कराची, रंगून, पीनांग, सिंगापुर, हांगकांग, शंघाई, जेड्डाह (सउदी अरब), तोक्यो, ओसाका। प्रमुख केन्द्र : जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, सेलीबीज तथा बालीमें।

शाखाएँ तथा सूचनादाता : लन्दन, न्यूयार्क तथा जापान।

सूचनादाता समस्त संसारमें।

बैंक प्रत्येक तरहका बैंकिंगका कार्य करता है। करंट एकाउण्ट्स खोलने और फिक्सड-डिपाजिटके लिए शर्तें आदि पत्र लिखकर पूछिए।

कलकत्ता-आफिस :
२८, पोलक स्ट्रीट।

एल० जे० जे० कैरोन,
स्थानापन्न मैनेजर।

बम्बई-आफिस :
१४, चर्चगेट स्ट्रीट।

सी-एच० आई० सी० द' हास,
स्थानापन्न मैनेजर।

कराची-आफिस :
बन्दर रोड कार्नर लक्ष्मीदास स्ट्रीट।
(११ अक्टूबर, १९४८ से खोली गई)

जी० द' नाई,
मैनेजर।

हमारी खाद्य समस्या

क्या आप जानते हैं ?

★ पश्चिम-बंगाल-प्रान्तकी जनसंख्या २½ करोड़ है। इसमें ८० लाखसे अधिक व्यक्ति शहरी इलाकों, चाय बगानों तथा खानवाले इलाकोंमें वास करते हैं। यहाँके कल कारखानोंमें काम करनेवाले मजदूरोंकी संख्या करीब २० लाख है और इनकी खास खुराक आटा है।

★ पश्चिम बंगालमें चावलकी सालाना पैदावार करीब-करीब ३६ लाख टन है। इसमें करीब ३३ लाख टन चावल खुराकके लिये मिलता है और यहाँ चावलकी आवश्यकता ३५ लाख टनकी है।
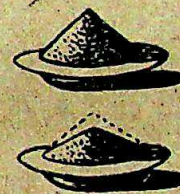
★ हम लोगोंको यहाँ सालमें २ लाख ५० हजार टन गेहूंकी जरूरत पड़ती है, लेकिन गेहूं यहाँ उत्पन्न होता है कुल २५ हजार टन। बाकी गेहूं हमें बाहरसे मंगाना पड़ता है।

★ यहाँ हर साल करीब ४ लाख २५ हजार टन गेहूं और चावलकी कमी पड़ती है।

जरूरत इतनी अधिक
पैदावार इतनी कम...

पश्चिम-बंगाल-सरकारके नागरिक रसद-विभाग द्वारा प्रचारित।

शानदार !
सूती कपड़े
सेकसरिया
कोटन मिल्स लि.
सेकसरिया के सूती कपड़े बनावट, डिज़ाइन और परिपूर्णता में बहुत ही सुन्दर होते हैं। फैशनेबुल और साधारण प्रयोग के लिये ये कितनी ही किस्मों के हैं।

'नया समाज'

(स्वतंत्र विचारोंका सचित्र हिन्दी-मासिक)

संचालक
नया समाज-ट्रस्ट

सम्पादक
मोहनसिंह सेंगर

परामर्श-समिति

श्रीमती महादेवी वर्मा
पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी

काका कालेलकर
श्री जैनेन्द्रकुमार

विषय-सूची : जून, १९४९

वार्षिक मूल्य ८)
छमाही ५)
'नया समाज' कार्यालय, ३३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता १
विदेशोंमें १२)
एक प्रति ।।।)

वर्ष १ : खंड २] कलकत्ता, जून, १९४९ [अंक ६ : पूर्णांक १२

नवीन भावना

श्री निरंकारदेव सेवक, एम० ए०

हमें नवीन भावना नए विचार चाहिएँ।
हमें नवीन कल्पना नई उड़ान चाहिए,
नए-नए ज़मीन और आसमान चाहिएँ,
नई रहन-सहन-समझ नए प्रयोग-युक्ति-क्रम,
नवीन ज्ञान-मान औ' नए विधान चाहिएँ।
विमोहती न माँग अब सिंदूर-मोतियों-भरी,
न रूप-गर्विता पहन सुवर्ण-कंठ-आभरण ;
मनुष्यकी सिंगार-साधना-सुरुचि बदल गई,
नवीन भाव-भंगिमा नए सिंगार चाहिएँ।
अजस्त्र नयन-नीरके प्रवाहमें असर नहीं,
असह्य पीरकी कसक-कराहमें असर नहीं ;
असंख्य मूर्त्तियाँ इधर-उधर कटी-छँटी खड़ीं,
अतीत कालकी कला कहीं सड़ी-गली पड़ी।
समुद्रगुप्तकी विचित्र बीन खंड-खंड है,
अतीत-काव्य आज अर्थहीन शब्दकी लड़ी ;
भविष्य-वर्त्तमान जो सजीव कर दिखा सकें
हमें नवीन चित्र और चित्रकार चाहिएँ।
अनेक बार आँधियाँ चलीं उखड़ गए शिखर,
अनेक बार बिजलियाँ गिरीं गए मनुष्य डर ;
अनेक बार क्रान्तियाँ हुईं उजड़ गए शहर,
अनेक बार शान्ति छा गई बसे नए नगर।
मनुष्य औ' समाज किन्तु आज भी सुखी नहीं,
हमें नवीन क्रान्तियाँ नए सुधार चाहिएँ।
न जीत जग समर सका अचूक शब्द-बाणसे,
न आग्नेय अस्त्र वज्र विष-बुझी कृपाणसे ;
चला मशीनगन न शत्रुके हृदय हिला सका,
न जीत जग समर सका जहाज़-वायुयानसे।
नए बनायँ अस्त्र हम सगर्व लेके चल सकें,
अनर्थ औ' अनीतिके विधानको बदल सकें।
किसी अदृश्य शक्तिका बग़ैर आसरा तके,
अगम्य रूढ़िवादके विवर्त्तसे निकल सकें ;
परम्परागता समष्टि-शृंखला विमुक्त हो,
मनुष्य-मात्रको नवीन संस्कार चाहिएँ।
नए-नए मनुष्य औ' मनुष्यता नई-नई,
नई-नई बहार औ' नए विहार चाहिएँ।
अनादि कालसे चला समय-पथिक रुका नहीं,
झुके असंख्य शीश किन्तु एक सिर झुका नहीं।
न एक भी भविष्य वर्त्तमान मिल सका कि जो—
अतीत अंधकार-पृष्ठ बन पलट सका नहीं।
बदल रहे जहानकी हमें हरएक चीज़में,
नवीन रंग ढंग औ' नए प्रकार चाहिएँ।
हमें नवीन भावना नए विचार चाहिएँ।

हिन्दू-मुस्लिम बुनियादी एकता

डा० सैयद महमूद

मुल्ककी आज़ादीके साथ ही हिन्दके बाशिन्दोंकी आम ज़बान और तहज़ीबका मसला फिर सजीव रूपमें हमारे सामने दरपेश है। पर आज शायद बहुत कम लोग महसूस करते हैं कि पिछले एक हज़ार बरसोंमें मुसलमानोंकी तहज़ीबने एक मिली-जुली हिन्दुस्तानी तहज़ीबके बननेमें क्या-कुछ दिया है। सच तो यह है कि बरतानवी हुकूमतके मातहत हिन्दू-मुसलमानोंमें जो तफरका पैदा किया गया और जिसका बुरा नतीजा 'दो क़ौमों'के झगड़े और मुल्कके बँटवारेके रूपमें हमारे सामने आ चुका है, उसने हम लोगोंकी निगाहोंपर कुछ ऐसा पर्दा-सा डाल दिया है कि हम धीरे-धीरे बनी हिन्दू-मुसलमानोंकी मिली-जुली तहज़ीब और हिन्दके बाशिन्दोंकी तहज़ीब, ज़बान, पोशाक, समाजी रीत-रिवाजों, कला, दस्तकारियों और रस्म-त्योहारोंपर पड़े मुसलमानोंकी सभ्यताके गहरे असरको जैसे देख ही नहीं पा रहे। पर शुक्र है कि हमारे मुल्कके लोगोंको अब अक्ल आ रही है और हिन्दू-मुसलमानोंकी इस मिली-जुली तहज़ीबकी बुनियादी एकताकी तरफ़ उनका ध्यान खिंच रहा है।

अक्सर सुननेमें आता है कि चूँकि मुसलमानोंने बाहरसे आकर हिन्दपर कब्ज़ा किया था, लिहाज़ा वे देसी लोगों और उनके तौर-तरीक़ोंसे एकदम अलग-से रहे। इस बातको यहाँ तक तूल दिया गया कि हिन्दुओं और उनमें कोई आपसी मेल नहीं—वे हिन्दके बाहरके मुसलमानोंके ज़्यादा नज़दीक हैं—लिहाज़ा हिन्दकी भलाईमें भी उनकी कोई दिलचस्पी नहीं। मगर तवारीख तो ऐसा नहीं कहती। चंद दक्खिनी जातोंको छोड़कर क़ौमियतके खयालसे हिन्दुओं और मुसलमानोंमें कोई भेद नहीं। आज हिन्दके मुसलमानोंमें न अरब, तुर्की या फ़ारसका कोई नामो-निशान बाक़ी है; न ग़ज़नी, ग़ोरी, मुग़ल, अफ़ग़ान या बीच एशियासे आए लोगोंका ही, जिनके खानदानोंने ५०० बरस तक यहाँ राज किया है। जिन क़ौमोंने हिन्दपर हमले किए और यहाँ राज किया, उनके कुटुम्बी आज हिन्दके बाशिन्दोंमें ऐसे मिल-जुल गए हैं कि उनके नाम तक लोग भूल चुके हैं। कुछ हिन्दू हो गए, कुछने हिन्दू-लड़कियोंसे शादियाँ कर लीं और इस तरह हिन्दकी क़ौमोंमें दूध पानीकी तरह घुल-मिल गए। अपना घर और वतन उन्होंने हिन्दको ही बना लिया। समाजी रीत-रिवाज भी उनके हिन्दुओंके-से ही बन गए। और हिन्दुओंकी ही तरह पेशे व माली हालातके सिवा पैदायश और खानदानकी बिनापर हिन्दी मुसलमानोंमें भी ऊँच-नीचका भेद-भाव आ गया। यह कोई अच्छा असर नहीं था; मगर इसके होनेसे इन्कार तो नहीं किया जा सकता।

समाजी वजूदमें औरतोंका एक खास दर्जा माना जाता है। सभी जानते हैं कि इस मामलेमें अरब और तुर्की वग़ैरहके तौर-तरीक़े हिन्दसे बिल्कुल मुख्तलिफ़ हैं। मगर हिन्दके मुसलमानोंने अरब या तुर्कीके बजाय हिन्दुओंके तौर-तरीक़ोंको ही अपनाया और मुसलमान औरतोंकी पोशाकें, ज़ेवर, समाजी रीत-रिवाज और वज़ह-क़तह वग़ैरह सब हिन्दू-औरतोंके मानिन्द ही हो गईं। मुसलमानोंकी शादियाँ हिन्दू-ढंगपर होने लगीं और उन्होंने हिन्दुओंके हल्दी, तेल, मँडवा, बारात, जलवा, कंगन, सेहरा, निसबत वग़ैरहको बाखुशी अपना लिया। फ़र्क इतना ही रहा कि हिन्दुओंमें शादी एक ताज़िन्दगीकी पवित्र रस्म मानी जाती है और मुसलमानोंमें उसे एक समझौता या क़रार माना गया है। फिर भी इस्लामकी रूहसे होनेवाली शादियोंसे यह बिल्कुल जुदा हो गई है। कम उम्रकी लड़कियोंकी शादी, बेवाओंकी दूसरी शादी न करना, औरतोंका मर्दके मातहत होकर रहना और पर्दा मुसलमानोंने हिन्दुओंसे ही सीखा है। हिन्दू-सतियों और जौहर-व्रतका आदर्श मुसलमान औरतोंने भी अपनाया। इब्नबतूताने मोहम्मद-इब्न-तुग़लकसे शिकस्त मिलनेपर ऐनुलमुल्कके साथ ही उसकी औरतके जल मरनेकी बात लिखी है। 'ज़फ़रनामा'में लिखा है कि भटनेरका सूबेदार कमालुद्दीन जब तैमूरसे लड़ने गया, तो उसकी औरतोंने आगमें कूदकर जानें दे दीं। औरतोंका सतमासा, बच्चेकी छठी (अन्न-प्राशन), मुंडन, कान छिदवाना, बरसगाँठ वग़ैरह रिवाज भी मुसलमानोंने हिन्दुओंसे ही सीखे। पोशाकमें भी हिन्दी मुसलमानोंने तुर्किस्तान या अरबके अमामा, जुब्बा, रीडा, तहमद, तस्माँ, कुला, नीमा, मोज़े वग़ैरह छोड़कर हिन्दकी पगड़ी (साफ़ा), छीड़ा, कुर्त्ता, अँगरखा, पटका, डुपट्टा, पाजामा वग़ैरह अपनाए।

दसवीं सदीमें यहाँ आए इब्नहाकुल और मसूदीने लिखा है कि हिन्दके बाशिन्दोंकी रहन-सहन एक-जैसी थी, जिससे हिन्दू-मुसलमानका भेद करना मुश्किल था। फ्रांसीसी यात्री तोनोंने लिखा है कि दक्खिनमें जो हिन्दू-मुसलमान अफ़सर थे, वे दोनों हिन्दू तौर-तरीक़ोंको ही मानते थे। तवारीखमें इस बातके काफ़ी सबूत मिलते हैं कि मुसलमानोंने न सिर्फ़ हिन्दुओंकी पोशाक और रीत-रिवाजोंको ही अपनाया, बल्कि उत्सव-त्योहारों को भी। मुसलमान मुर्देको जलाते नहीं, दफन करते हैं; मगर हिन्दुओंकी तरह 'तीजा' और 'दसवां' वे भी मनाते हैं। मुहर्रमका दशहरेसे, शबे-बरातका शिवरात्रिसे और रमज़ान और ईदका नवरात्रसे खासा नज़दीकी-सा ताल्लुक़ है। इनके अलावा होली, दिवाली, शिवरात्रि, मुहर्रम वग़ैरह दोनों क़ौमें मिलकर मनाती थीं। बसन्त-पंचमीपर मुसलमान बादशाह और मुसाहिब भी बसन्ती रंगकी पोशाक पहनते थे। बहादुरशाहके वक्त तक दिल्लीमें होनेवाला 'फूलोंका मेला' हिन्दू-मुसलमानोंका एक खास मेला था।

ज़बान, कला और मज़हब

अरबी इस्लामकी पाक ज़बान है, और पहले-पहल जो मुस्लिम हमलावर सिन्ध पहुँचे, उनकी मादरी ज़बान यही थी। अब हिन्दके किसी भी हिस्सेके मुसलमान अरबी नहीं जानते। इसी तरह बीच एशियासे जो मुस्लिम हमलावर आए, उनकी मादरी ज़बान फारसी थी। जब तक उनका राज रहा, यह राज-काजी ज़बान ज़रूर रही; मगर आज वह भी हिन्दके मुसलमानों की ज़बान कहीं भी नहीं है। मुसलमानोंने हिन्दके बाशिन्दोंपर ज़बरन अपनी ज़बान नहीं थोपी, बल्कि उनकी ज़बानोंको ही तरक्की दी। यह कहना सरासर ग़लत है कि उर्दू मुसलमानोंकी ज़बान है। यह इस्लामको माननेवाले किसी भी मुल्कमें नहीं बोली जाती। साफ़ है कि उर्दू आर्य-भाषा है और इसका बुनियादी ढाँचा और क़वायद वग़ैरह सब-कुछ हिन्दी हैं। इसकी शुरुआत दिल्लीके आसपास बोली जानेवाली 'खड़ीबोली' से हुई। जब मुसलमान दिल्लीके आसपास बस गए, तो उन्होंने इसको इस्तेमाल करना शुरू किया। बोल-चालकी यह ज़बान लिखावटमें भी आने लगी और हिन्दू-मुसलमानोंने सदियों तक इसे इस्तेमाल किया है। अंगरेज़ी-दस्तूरसे पहले उर्दू ही हिन्द की आम ज़बान बन चुकी थी। इसके ५५,००० लफ्ज़ोंमें से ४२,००० शुद्ध हिन्दीके हैं और बाक़ी १३,००० अरबी, फारसी, संस्कृत, अंगरेज़ी और दीगर ज़बानोंसे लिए गए हैं। मुसलमान रईसों और अदीबोंने पंजाबी, बंगाली, पूरबी और पच्छमी हिन्दीको तरक्की देनेमें भी कोई कोर-कसर न उठा रखी। अलबेरुनीसे लेकर सैयद बेलग्रामी तकने संस्कृतमें उतनी ही दिल-चस्पी ली, जितनी कि गुप्त-कालमें ली जाती थी। और अमीर खुसरो, मलिक मोहम्मद जायसी, खानखाना, मुल्ला दाऊद, रस-खान, मुहम्मद याकूब, इन्शाअल्ला खां और नज़ीर अकबरा-बादी वग़ैरहने हिंदीकी जो क़ीमती सेवाएँ की हैं, उनसे कौन वाकिफ़ नहीं? अगर हम फारसीके किसी शायरकी नज़मसे हिन्दके किसी मुसलमानकी पंजाबी, बंगाली या हिन्दीमें लिखी कविताका मुक़ाबला करें, तो हमें दोनोंकी तहज़ीबोंमें ज़मीन-आसमानका फ़र्क़ नज़र आयगा। इसके मुक़ाबलेमें अगर हम हिन्दू और मुस्लिम शायरों द्वारा मुख्तलिफ़ हिन्दी ज़बानोंमें लिखी गई चीज़ोंको मिलाकर देखें, तो हमें भेदकी जगह दोनोंमें एक मिली-जुली तहज़ीबकी साफ़ झलक दिखाई देगी। इससे ज़ाहिर है कि बरतानवी अमलसे पहले हिन्दू-मुसलमानोंकी इस मिली-जुली तहज़ीबमें उनकी ज़बान और अदबमें काफ़ी तरक्की और पुख्तगी आ चुकी थी।

दोनों तहज़ीबोंका यह मेल महज़ ज़बान और अदबमें ही नहीं हुआ, साइंस, फलसफा, जुगराफिया, हिकमत, हिसाब, सितारोंकी साइंस और आर्ट (कला) वग़ैरहमें भी हुआ। कला में शायद यह सबसे ज़्यादा हुआ। हिन्दमें आनेसे पहले ही मुसलमान कलामें काफी तरक्की कर चुके थे। यहाँ आनेके बाद उन्होंने उस कलाका हिन्दी कलासे मेल कराया, जो कि १३वीं से लेकर १८वीं सदी तकके बीचमें बनी इमारतोंसे ज़ाहिर है। अगर हम कलाको रूहका एक जज़्बा मानें, तो कहना होगा कि बीचके युगमें एक रूह और एक तहज़ीबने इन इमारतोंके रूपमें अपने-आपको ज़ाहिर करनेकी हरचंद कोशिश की है। १५वीं सदीके बाद शायद ही कोई ऐसी इमारत बनी हो, जिसमें हिन्दुओं और मुसलमानोंकी मिली-जुली कला न हो। ग्वालियरमें बने राजा मानसिंहके महल, वृन्दाबनके मंदिर, हिन्दू-राजाओंके स्मारक और गोलकुंडा, गुजरात, देहली, बंगाल वग़ैरहमें मुस्लिम हुक्कामों द्वारा बनवाए गए गुम्बद, मस्जिदें, महल वग़ैरह इस मिली-जुली कलाके बेहतरीन नमूने हैं। यही बात चित्र और संगीत कलाके बारेमें भी कही जा सकती है। फारसकी खूब-सूरती और अदाने हिन्दके रोमांस और रहस्यसे मिलकर मुग़ल

और राजपूत शैलियोंमें एक जादूका-सा असर पैदा कर दिया। संगीतमें भी हिन्दू और मुसलमानका भेद नहीं रहा। मुसलमान कलाकारोंने शौक़से हिन्दुओंके गाने-बजाने-नाचनेके ढब अपनाए और उनमें नए ताल-स्वर और राग रागनियोंका इज़ाफ़ा किया।

मज़हबके बग़ैर तहज़ीबको ठीक-ठीक समझना दुश्वार है। इस बारेमें ग़ैर-मुसलमानोंने—खास तौरपर ईसाइयोंने—बड़ी झूठी बातें फैलाई हैं। कहा गया कि मुसलमान बड़े कट्टर हैं और इस्लामको तलवारके ज़ोरपर दुनियामें फैलाना चाहते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि चंद मुसलमान उलेमाओंने इस्लामके सामने दूसरे मत-मतान्तरोंको हेच समझा; लेकिन ऐसे मुसलमानोंकी भी कमी नहीं रही, जिन्होंने दुनियाके दूसरे मज़हबोंको बाइज़्ज़त पढ़ा और उनकी अहमियतके सामने सर झुकाया। यूरोपके लोग जब दूसरे मज़हबोंका नाम तक न जानते थे, तब मुसलमानोंमें कई मज़हबोंका तुलनात्मक अध्ययन पेश किया गया, जिनसे उनको पेश करनेवालोंकी निष्पक्षता और ख़यालोंकी आज़ादी ज़ाहिर होती है। ११वीं सदीमें अबूरेहान अलबेरूनीने हिन्दू-मज़हबके बारेमें एक खासी अच्छी किताब तैयार की थी। बीचके युगमें मुसलमानोंने हिन्दुओंके मज़हब और उसके तर्ज़े-अमलको जाननेकी इतनी कोशिश की कि वेद, उपनिषद, महाभारत, रामायण, भगवद्गीता, पुराण, योग, वेदान्त और दीगर धर्मशास्त्रोंका फारसी और (बादमें उर्दू)में उल्था करवाया। बादमें शेख अहमद फारुखी (१५६३-१६२४) और मिर्ज़ा मज़हरजान (१६९९)ने इस दिशामें काफी काम किया। मिर्ज़ाने हिन्दुओंके भक्ति, कर्म और ज्ञान मार्गका गूढ़ अध्ययन किया और बतलाया कि हिन्दुओंकी मूर्त्ति-पूजा सूफ़ियोंके 'ज़िक्र' (चिन्तन) या अरबके नास्तिकोंकी मान्यताके ढंगकी ही है। 'गुल्शने-राज़'के लेखक महमूद शबिस्तानी (१३१७) ने भी इस्लाममें हिन्दुओंकी बुतपरस्तीसे मेल और मुखालफत दिखानेको काफ़ी कुछ लिखा है। मुस्लिम सूफ़ियोंने हिन्दुओंकी माला (तस्बीह), योग-क्रियाएँ और वेदान्तके बहुतसे सिद्धान्तोंको अपनाया। सही या ग़लत, अकबरका 'दीन-ए-इलाही' दोनों मज़हबोंके मेलकी ही एक कोशिश थी। कबीर, दादू, नानक, चैतन्य, तुकाराम, रामानंद वग़ैरहने भी हिन्दुत्व और इस्लामकी बुनियादी एकताको माना और अवाममें इसी बातका प्रचार किया। चैतन्यके माननेवालोंमें हिन्दू-मुसलमान दोनों थे। अजमेरके हुसैनी पंडित तो आज भी पाए जाते हैं। लिंगायत-मतके तकरीबन सभी उसूल इस्लामसे लिए गए हैं। दोनों मज़हबोंकी बुनियादी सचाईको हिन्दू-मुस्लिम सन्तों और भक्तोंने देखा और झूठे ढोंग-दिखावोंसे अवामको बचाकर इन्हींकी तरफ़ लानेकी ईमानदारीसे कोशिश की। मज़हबके ऊपरी भेदोंसे कभी कोई नाइत्तफ़ाक़ी नहीं थी और मुग़ल बादशाहोंके अमलमें हिन्दू ऊँचे-ऊँचे ओहदोंपर थे। मुसलमान हुक्कामोंकी तरफ़से कितने ही हिन्दू हिन्दू-राजाओंके खिलाफ़ लड़े हैं और हिन्दू-राजाओंकी तरफ़से कितने ही मुसलमान सिपहसालार मुसलमान बादशाहोंके खिलाफ़ भी। इसकी वजह यह थी कि मुसलमान हिन्दको अपना घर बना चुके थे। उनके और हिन्दुओंके नुक्तानिगाह, रहन-सहन, पेशा और माली हालत, तहज़ीब और मज़हबमें कोई खास बुनियादी भेद रह ही नहीं गया था। सन् १८५७ के ग़दरमें मुग़ल बादशाहका नाम रहनुमाके तौरपर लिया जाता था। दोनोंमें कोई गहरा भेद-भाव या शक-शुबह नहीं रह गया था।

अविश्वास और सन्देहकी शुरूआत

अब आइए, ज़रा उन वजूहातपर ग़ौर करें, जिन्होंने सदियों से चली आई हिन्दू-मुसलमानोंकी इस बुनियादी एकताको आपसमें अविश्वास और संदेह पैदाकर खत्म कर दिया। दोनों तहज़ीबोंको अलग-अलग ढंगपर फिर ज़िन्दा करनेकी तहरीक पिछली एक सदीसे चल रही है और इस सचाईसे इन्कार नहीं किया जा सकता कि उसकी ओटमें मतलबपरस्तोंने एक क़ौमको दूसरीसे लड़ा देनेमें काफ़ी कामयाबी हासिल की। १९२३ से मुसलमानोंने उन लीडरोंकी रहनुमाई पसंद की, जो फ़िर्क़ेवाराना ढगपर उन्हें अपनी तहज़ीबको अलग करके नए सिरेसे खेमा गाड़नेकी बात कहते थे। फ़िर्क़ापरस्तीकी बुनियाद डर और सन्देहपर हुआ करती है। आम तौरपर इन्हीं जज़्बातको भड़काकर फ़िर्क़ेवारा लीडरोंने अपना काम बनाया। १८वीं सदीके अखीर तक दोनों क़ौमोंमें मज़हब और तहज़ीबका मामूली-सा भेद होनेपर भी कोई बड़ा तफ़रका नहीं था, यह हम ऊपर बता आए हैं। पर १९वीं सदीमें एक तीसरी पार्टी ने आकर अपनी सयासी ज़रूरतके लिए दोनोंमें फूट डालना शुरू किया। उसने अंगरेज़ी तालीम और मग़रिबी तहज़ीबपर ज़्यादा ज़ोर दिया, जिसकी वजहसे हिन्दके बाशिन्दोंने अपनी ज़बान और तहज़ीबसे मुँह मोड़ लिया और एकने दूसरेकी ज़बान, साइंस, फलसफ़ा वग़ैरहकी तरफ़ कोई तवज्जोह न दी।

इसका नतीजा यह हुआ कि हिन्दू-नौजवानोंको अंगरेज़ीके साथ-साथ हिन्दी-संस्कृतकी तालीम दी जाने लगी और मुसलमानोंको उर्दू, फारसी और अरबीकी। धीरे-धीरे एक-दूसरेकी ज़बान और अदबसे वास्ता रखनेवालोंकी तादाद घटने लगी और उसके साथ ही दोनोंके आपसी मेल-मिलापकी जगह अलहदगी और खिंचावने ले ली। बीच युगमें जहाँ नानक, कबीर, चैतन्य, दादू, रज्जब, बाबा फरीद, शेख नूरुद्दीन और निज़ामुद्दीन औलिया दोनोंके मज़हब और तहज़ीबकी बुनियादी एकताका प्रचार करते थे, वहाँ १९वीं सदीमें हिन्दुओं और मुसलमानोंको अलग-अलग ढंगसे मज़बूत और संगठित करनेका आन्दोलन चल पड़ा। इससे एक-दूसरेसे और भी अलग होते गए और दोनोंपर ही बुरा असर पड़ा।

मेरी रायमें इस फिर्केवाराना ज़हनियतको पैदा करने और बढ़ावा देनेके तीन सबब थे। पहला तो यह कि दोनोंकी समाजी, सयासी और तहज़ीबी बुनियादी एकता मुग़ल सल्तनत की वजहसे हुई थी। उसके खात्मेके साथ ही इसका ज़ोर भी कम हो गया। दूसरे, अंगरेज़ोंका मुसलमानोंपर तो यक़ीन था नहीं और हिन्दुओंको वे फूटी आँख भी नहीं देखना चाहते थे। लिहाज़ा उन्होंने दोनोंमें फूट डालकर उन्हें कमज़ोर करनेकी गरज़से एकको पीठ ठोंकी और दूसरेको दुत्कारा। इससे भी दोनोंकी एक-दूसरेके तई पहले-जैसी भावना नहीं रही। तीसरे, ब्रिटिश हुक्कामोंकी शह और इमदादसे ईसाई पादरियोंने हिन्दुओंमें अपने मज़हबका प्रचार करना शुरू किया, ताकि उन्हें बरतानवी सल्तनतका वफ़ादार बनाया जा सके। विल्बर फोर्स, चार्ल्स ग्रांट, मार्शमैन और डफ़ वग़ैरहकी तक़रीरें और लेख इस बातका सबूत हैं। मैकालेकी यह बात सौ फ़ी-सदी सच हुई कि अंगरेज़ी तालीम पानेके बाद हिन्दुओं का अपनी ज़बान, मज़हब और तहज़ीबकी तरफ़से दिल खिंच-सा गया। उनके बहनोई सर चार्ल्स ट्रेवेलियनने लिखा है कि अंगरेज़ी तालीमयाफ़्ता हिन्दू अंगरेज़ोंसे लड़नेके बजाय उनके बराबर बैठने और अपनी पुरानी शान-शौकतको फिर क़ायम करनेमें ही अपनी खुशक़िस्मती समझने लगे। अंगरेज़ी पढ़कर हिन्दू अंगरेज़ोंको परदेसी नहीं समझते और खुद अंगरेज़ियतमें रँग जाते हैं। उन्हें इस रंगमें रँगने और अंगरेज़ोंकी दयानतदारीका क़ायल बनानेके लिए सर विलियम जोन्स, होरेस हेमेन विल्सन और प्रिंसेप वग़ैरहकी देखरेखमें रायल एशियाटिक सोसाइटी खोली गई, जिसने हिन्दकी मुख्तलिफ़ ज़बानोंमें खोजका काम शुरू किया। इस बहाने इन्होंने नई पीढ़ीके हिन्दुओंके सामने गुज़िश्तां हिन्दू-समाजका वह लुभावना नज़ारा पेश किया, जो 'स्वर्ण-युग'के नामसे मशहूर हुआ। सर हेनरी इलियटने साबित किया कि इस 'स्वर्ण-युग'के बाद जो ज़माना आया, वह तशद्दुद, ज़ोर-ज़ुल्म, पस्ती और पामालीका ज़माना था। इससे अंगरेज़ों ने हिन्दुओंका उद्धार किया! कालेजोंमें ऐसा सबक़ पढ़कर हिन्दू-नौजवानोंके मनमें मुसलमानोंके तईं डर और हिक़ारत भर गई और वे बरतानवी हुकूमतको एक खुदाई नजात समझने लगे। इस तरहकी तवारीखने जहाँ हिन्दुओंमें बदला लेनेका जज़्बा पैदा किया, वहाँ मुसलमानोंमें हुकूमतकी शानकी झूठी हेठी भी पैदा की।

कलकत्तेके फ़ोर्ट विलियम कालेजमें विलायतसे आनेवाले अंगरेज़ अफ़सरोंके लिए हिन्दी ज़बानोंकी पढ़ाईका खास इन्तज़ाम किया गया। इन दिनों अदालती काम फ़ारसीमें होता था, गोकि फ़ारसी एक बहुत छोटे दायरेमें ही महदूद थी और उत्तरी हिन्दकी आम ज़बान उर्दू बन चुकी थी। हिन्दू-मुसलमानोंमें बोलचालकी ज़बान उर्दू थी, गोकि हिन्दुओंमें कविता व्रजभाषामें ही होती थी। १९वीं सदीके शुरूमें कालेजके प्रिंसिपल गिलक्राइस्टने कुछ उर्दू-अदीबोंको बुलाकर उर्दूमें किताबें तैयार करवाईं। पर एफ० ई० केने कहा कि उर्दूमें अरबी-फारसीके लफ़्ज़ ज़्यादा हैं, जिनका ताल्लुक इस्लामसे है; लिहाज़ा कोई ऐसी साहित्यिक ज़बान तैयार की जाय, जो हिन्दुओं के ज़्यादा नज़दीक हो सके। बस, उर्दूमें से अरबी-फारसीके लफ़्ज़ निकालकर उनकी जगह हिन्दी-संस्कृतके लफ़्ज़ भरे जाने लगे। इस तरह एक नई अदबी ज़बान (हिन्दी) बनाई गई—जो १८वीं सदी तक न थी—और इस तरह हिन्दी-उर्दूके झगड़ेकी जड़ डाली गई। ज़बानोंके इस भेदको बढ़ानेमें ईसाई पादरियों का काफ़ी हाथ रहा है। उन्होंने संस्कृतनिष्ठ हिन्दीमें इंजीलके तर्जुमे किए। सर जी० ए० ग्रियर्सनका कहना है कि इस ज़मानेमें संस्कृतके हिमातियोंपर अंगरेज़ और अंगरेज़ीका बड़ा ज़बरदस्त असर पड़ा। फारसी १८३७ से ही अदालती ज़बान नहीं रही थी, पर उर्दू अवामकी ज़बान बराबर बनी रही। १८२९ में दिल्लीमें जो कालेज मग़रिबी तालीम देनेको खोला गया, उसमें उर्दूके ज़रिए ही पढ़ाई होती थी। इसमें साइंस और फलसफ़ा की कई अंगरेज़ी-किताबोंका उर्दूमें उल्था करवाया गया था।

[illegible] वक्त यह कालेज बन्द कर दिया गया चूँकि मुसलमानोंकी तरफ़से अंगरेज़ोंके मनमें शुबह पैदा हो गया था, उन्होंने हिन्दीको अपनाया। उसकी पढ़ाईके लिए क़वायद और किताबें तैयार करवाई गईं और हिन्दीको अदालती ज़बान बनानेके दावे पेश किए गए। बंगाल, बिहार और उड़ीसाके लेफ़्टिनेन्ट-गवर्नर सर जार्ज कैम्बलने १८७२ में ऐलान किया कि वे अदालतों और स्कूलोंसे उर्दूको हटा देंगे। १८८२ में हिन्दुओंने तालीमी कमीशनके सामने हिन्दीका दावा पेश किया, पर उसके चेयरमैन डा० हंटरने उसे मंजूर नहीं किया। १९०० में यू० पी० की सरकारने हिन्दी ज़बान और नागरी-लिपिको अदालतोंमें इस्तेमाल किए जानेके रूपमें मंज़ूर किया। इससे हिन्दू-मुसलमानोंके भेदकी खाई और भी चौड़ी हो गई। १९०० से हिन्दीने बड़ी तरक़्क़ी की है और उसका खासा अच्छा साहित्य भी है। मगर इस तरक़्क़ीके साथ ही मुसलमानोंके ख़िलाफ़ दुर्भावना भी बढ़ी है। इसका मुक़ाबला जब हम बीचके युगकी हिन्दीसे करते हैं, तो देखते हैं कि मुग़लोंके ज़मानेमें मुसलमानोंकी शिरकतसे हुई उसकी तरक़्क़ी ज़्यादा शानदार थी। क्या यह हमारी बदक़िस्मती नहीं है कि मुग़लोंके ज़मानेमें भी ज़बानका जो झगड़ा कभी नहीं उठा, वही आज दोनों क़ौमोंके बीच नाइत्तफ़ाक़ीका एक बहुत बड़ा सबब बना हुआ है?

नई ज़िन्दगीकी तलाश

ऊपर हमने जिन तीन बातोंका ज़िक्र किया है, उनसे भी एक बड़ा सबब जिसने हिन्दू-मुसलमानोंमें भेद-भाव बढ़ाया, वह था पुरानी शान-शौक़तको फिर ज़िन्दा करनेकी अलग-अलग कोशिशें। तवारीख़में ऐसी मिसालोंकी कमी नहीं, जब कि लोग इस लुभावने धोखेके शिकार हुए हैं। हिन्दू इस धोखेमें पहले आए। एक तरफ़ बरतानवी हुकूमतके बढ़ते हुए असरने उन्हें अपनी गिरावट और कमज़ोरीका ध्यान दिलाया और दूसरी तरफ़ अंगरेज़ विद्वानोंने उनके सामने अतीतके स्वर्ण-युगको लुभावनी तस्वीर रखी। उन्हें ऐसा लगा, मानो वे दूसरोंकी इमदादके बिना ही अपनी इस पुरानी पूँजीसे अपनी हालत बेहतर कर सकते हैं। इसका नतीजा यह हुआ कि बीचके युगके हिन्दू-सन्त कबीर, नानक, चैतन्य और तुकारामके बजाय, वे पुराने ज़मानेसे सबक़ लेने लगे। राजा राममोहन रायने — जो संस्कृत, अरबी, फ़ारसी वग़ैरहके खासे अच्छे आलिम थे — अंगरेज़ोंकी मददसे हिन्दू-समाजका सुधार करनेकी कोशिश की। उन्होंने वेदों और उपनिषदोंके उपदेश देने शुरू किए। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुरने, जो हिन्दू-नौजवानोंके ईसाई होते जानेसे बड़े दुखी थे, भी सत्य सनातन धर्मको अपनानेकी अपील की। केशवचंद्र सेनने भी वैष्णव-मतके गुण बतलाए। स्वामी दयानंद सरस्वतीने फिर वैदिक युगकी झाँकी रखी। कर्नल ओलकोट, मैडम ब्लावट्स्की और एनी बेसेण्टने थियोसोफिकल सोसाइटीके प्लेटफार्मसे पुराणोंकी कथाओंकी अहमियतको वाज़े किया। जिन स्वामी रामकृष्ण परमहंसने मुसलमानों और ईसाइयोंके साथ मज़हबी एकता क़ायम करनेकी आवाज़ बुलन्द की थी, उनके शागिर्द स्वामी विवेकानन्दने दर्शन और वेदान्तकी ज़िन्दगीपर ज़ोर दिया। १९०५ के बंग-भंग-आन्दोलनने भी लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय और श्री अरविन्द घोष-से लीडर पैदा किए, जिन्होंने शिवाजी, गीता, आर्य-समाज, व्यास, वाल्मीकि, कालिदास वग़ैरहसे प्रेरणा ली और पुरानी हिन्दू-तहज़ीबको फिर ज़िन्दा करनेकी बात चलाई। बादमें उसमें जो विदेशी असर आ गया था, उसे उन्होंने हिन्दुओंकी गिरावटका सबब बतलाते हुए उसकी पाकीज़गीपर ज़ोर दिया। इस तरह हम देखते हैं कि ज़बान, तहज़ीब, मज़हब, समाज, रीत-रिवाज वग़ैरह सभी मामलोंमें हिन्दुओंके इन सुधारक नेताओंने उन्हें मुसलमानोंके आनेसे पहलेके 'स्वर्ण-युग'की झाँकी दिखाकर फिर उसीको लानेकी आवाज़ उठाई।

हिन्दुओंकी इस ज़हनियत और ईसाइयोंकी मुख़ालफ़तका मुसलमानोंपर भी असर हुआ और उनके नेताओंने हज़रतके अव्वलीन शागिर्दों, नबी और ख़लीफ़ाओंकी सादा और मज़हबाना ज़िन्दगीके गीत गाने शुरू किए। पर इसके बावजूद मुसलमानोंमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं थी, जो इस सबकी परवाह न कर क़ौमी तहरीक़में शामिल हुए। इनमें इक़बाल खास अहमियत रखते हैं, क्योंकि उनकी नज़्मोंका लोगोंपर जादूका-सा असर हुआ। शुरू-शुरूमें इक़बाल ज़बरदस्त क़ौमपरस्त थे और पूरे हिन्दकी तरक़्क़ी चाहते थे। उनकी 'नया शिवाला,' 'हिन्दुस्तान हमारा,' 'राम', 'गायत्री' और दीगर नज़्मोंने हिन्दू-मुसलमानोंको बराबर अपील की है। उत्तरी हिन्दुस्तानके शहरों और गाँवोंमें ही नहीं, घर-घरमें बच्चे-बच्चेके मुँहपर उनके गीत थे। पर क़ौमी तहरीक़के थम जानेपर जब उन्होंने हिन्दुओंकी न सिर्फ़ हिन्दुत्वको फिरसे ज़िन्दा करनेकी, बल्कि हिन्दू-राज क़ायम करनेकी कोशिशें देखीं,

तो उन्हें मायूसी हुई और उन्होंने दूसरी तरफ़ रुख किया। जलालुद्दीन रूमी, जमालुद्दीन अफ़ग़ानी, शेख मोहम्मद अब्दाह और तुर्कीके इन्क़लाबी लीडरोंके ख़यालातका उनपर खासा असर हुआ और उन्होंने मुसलमानोंको उस वक्तकी याद दिलाकर जबकि एशिया और यूरोपमें सैलाबकी तरह इस्लामका दबदबा फैल गया था, मग़रिबकी ग़ुलामीका जुआ उतार फेंकने की अपील की। उन्होंने अपने फलसफेका सारा ज़ोर मुसलमानोंसे उस गुज़िश्ता शानको फिर लानेकी अपील करनेमें सर्फ कर दिया। इसका एक अच्छा नतीजा यह हुआ कि मुसलमान नींद और गिरावटकी भावनासे जागे और मज़हबके नामपर दूसरे इस्लामी मुल्कोंसे मेल-जोल बढ़ानेका सोचने लगे। पर जब क़ौमियत ही की तरह पुरानी तहज़ीबको फिर ज़िन्दा करने के आन्दोलन भी धीमे पड़ गए, तो इक़बालके आखरी वक्तमें हम उन्हें फिर क़ौमियतके रंगमें रँगा देखते हैं। हिन्दुओं और मुसलमानोंसे उनकी आखरी इल्तिजा यही थी कि अपने-परायेका भेद मनसे निकाल दें और मिलकर मुल्कको आज़ाद करें। इसमें उनके दिलकी मायूसी साफ़ झलकती है।

कहना न होगा कि इस तफ़रके और नाइत्तफ़ाक़ीने मुल्कको—हिन्दुओं और मुसलमानोंको—बेतहाशा नुक़सान पहुँचाया है। सदियोंके मेल-मिलाप और देन-लेनसे बनी हुई एक बुनियादी एकता किस तरह खत्म हुई और आज हम कहाँ आ पहुँचे हैं, इसपर हिन्द और पाकिस्तानके लीडरोंको बख़ूबी ग़ौर करना चाहिए। उन्हें यह भूल न जाना चाहिए कि तहज़ीबकी एकतासे ही बहुतसे सयासी और समाजी मसले अपने-आप हल हो जायँगे। हिन्दुओंकी मददके बग़ैर पाकिस्तान अपने इक़्तसादी मसले हल नहीं कर सकेगा और हिन्दको अपनी हिफ़ाज़त और आस-पासके मुल्कोंसे ताल्लुक़ात क़ायम करनेके लिए मुसलमानोंकी ज़रूरत होगी। वे पच्छिमी एशिया और उत्तरी अफ़्रीकाके साथ हिन्दको मिलानेका काम बख़ूबी कर सकते हैं। हमारी ख़ुशक़िस्मतीसे अभी हमारे यहाँ ऐसे नेता हैं, जिनमें दूरन्देशी है और उन्हींसे हम उम्मीद और अपील करते हैं कि वे हिन्दू-मुसलमानोंकी बुनियादी एकताको क़ायम रखने और मज़बूत करनेकी पूरी कोशिश करेंगे।

कलाकार से

श्रीमती कमलादेवी चौधरी

मुझे बनाकर कलाकार क्या सफल कला दिखलाई है?
ऐसे-ऐसे रंग लगा क्यों मेरी मूर्त्ति बनाई है?
ले किरणोंकी कूँची करमें मेरा चित्र उतारा है,
अंश खींचकर चारु चांदसे सुन्दर मुझे सँवारा है;
इन्द्र-धनुषके रंग लगाकर मेरा उर निर्माण किया,
अपनी छविकी छाप डालकर मुझको है द्युतिमान किया।
किन्तु मृत्यु इक आँसूसे ही इसको धोने आई है!
मुझे बनाकर कलाकार क्या सफल कला दिखलाई है?
अगर बनाने और मिटानेकी तस्वीर बनाई थी,
कला कलासे खेल करे, बस यही कला दिखलाई थी;
रंग सुनहरा उर-प्यालीका क्यों इसमें संचार किया,
विकल पुलक संसृति भर क्यों चेतन प्राण प्रसार किया?
मनोयोगसे इस शालामें क्यों यह मूर्त्ति सजाई है?
मुझे बनाकर कलाकार क्या सफल कला दिखलाई है?
क्यों इस नश्वर चित्रकलाके अंतरपटमें आस-भरी,
ये आकर्षक चित्र बना क्यों अमिट आँखमें प्यास-भरी;
अतुल कोष स्मृतियोंका तुमने क्यों उपहार दिया,
प्राणोंको आकुल पीड़ाका तुमने क्यों वरदान दिया?
अमर भावकी अभिलाषा क्यों इसमें फूँक जगाई है?
मुझे बनाकर कलाकार क्या सफल कला दिखलाई है?
है उपयोगी कला कहाँ जो अजर नहीं है, अमर नहीं,
कला-कसौटीपर कसनेसे अचल नहीं है, सबल नहीं;
जो मोहक है, पर पलमें ही शबनम-सी मिट जाती है,
कलाकार जो कला तुम्हारी पल्लव-सी झड़ जाती है;
सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम्‌की ध्वनि कहाँ सफल हो पाई है?
मुझे बनाकर कलाकार क्या सफल कला दिखलाई है?
कला सृजनकी सफल कहाँ जब क्षणिक नितांत चित्रकारी,
और सफल ही कब होती है कला तुम्हारी संहारी;
रंग भले धुल जाएँ लेकिन दाग़ कहाँ धुल पाएँगे,
मैं मिट जाऊँ, पर ये मेरे चिह्न नहीं मिट पायेंगे!
देख, मृत्यु भी रोते-रोते इसे मिटाने आई है!
मुझे बनाकर कलाकार क्या सफल कला दिखलाई है?

शरणार्थियोंकी पुनःप्रतिष्ठा—सांस्कृतिक पहलू

श्री गुरुदयाल मल्लिक

हमारे देशमें ऐसे लाखों व्यक्ति हैं, जो इस अखण्ड देशके दो टूक हो जानेसे सब प्रकारसे निःशेष हो गए हैं। समस्या इतनी विशाल है कि हमें मान लेना होगा कि अभी दस-बीस वर्षों तक उसका प्रभाव बना रहेगा। आर्थिक पहलू बहुत महत्त्वपूर्ण है, और यह स्वाभाविक ही है कि इस समय वह हमारे समस्त प्रयासोंपर हावी हो; लेकिन दूरदर्शिता और विवेकयुक्त राजनीतिका तक़ाज़ा है कि हम उन लोगोंकी समस्या का सुदूरव्यापी सिंहावलोकन भी करते चलें, जिन्हें आज बड़ी मुरौवतीके साथ हम 'शरणार्थी' कहकर पुकारते हैं। अगर इस निगाहसे देखें, तो इन नवागन्तुकोंकी आर्थिक पुनःप्रतिष्ठाके साथ-साथ उनकी सांस्कृतिक पुनःप्रतिष्ठाका महत्व स्पष्ट हो जायगा। मनुष्यको बेशक भोजन चाहिए; किन्तु सिर्फ़ पेट ही के लिए नहीं, दिल और दिमाग़के लिए—आत्माके लिए भी। उसकी आत्माकी भूख उच्चकोटिकी संस्कृतिसे ही मिट सकती है।

शायद पूछा जा सकता है कि संस्कृति कहते किसे हैं? संस्कृतिकी परिभाषा शिक्षा, ज्ञान, आत्मानुशीलन आदि नाना अर्थोंमें की गई है। हम यहाँ उसके उस सहज-स्वाभाविक अर्थको ले सकते हैं, जिसके अनुसार संस्कृति उस अवशेषको कहते हैं, जो हमारी चेष्टासे सीखे हुए ज्ञानको भुला देनेपर भी बाक़ी रह जाता है। वह क्या है, जो इन लाखों बे-घरबार मनुष्योंने अपने अर्जित और उपार्जित संचयको भुला देनेपर भी बाक़ी रख छोड़ा है? वह है उनकी चेतना—उनका बोध—जो ऊपरी सतहके विद्वेष और वैमनस्यकी विक्षुब्ध विषमताके नीचे भी जाग्रत है कि हम 'एक' हैं। यह सत्य मानो इस देशकी हवामें समाया हुआ है, जिसे उन्होंने पीढ़ी-दर-पीढ़ी साँसोंकी तरह खींचा है। इसके बिना वे जी नहीं सकते। हमें उनके इस बोधको जाग्रत और जीवंत बनाना है।

शिल्प संस्कृतिका सबसे श्रेष्ठ और सबसे सुन्दर वाहन है। अतएव शरणार्थियोंके एकना-बोधको उत्तेजित करनेमें उससे अधिक-से-अधिक सहायता लेनी होगी। किसी काव्यकी एक कड़ी, चित्रकी अनुपम रेखाएँ, विचारकी एक झलक, संगीतकी गूँजती हुई तान—ऐसी चीज़ें हैं, जो मनुष्यकी भेद-बुद्धिके परे हैं, जो अखण्ड मानवताको उसके परिपूर्ण रूपमें देख सकती हैं, विच्छिन्न खण्डोंमें नहीं। इस दिशामें सरकार और सुसंस्कृत व्यक्ति सभी सहायक हो सकते हैं। एक सबसे बड़ी सेवा यह है कि क़िस्मतके मारे हुओंको हिम्मत और खुशीके साथ जीवन-संग्राममें जूझना सिखाना होगा। साहस और आनन्द ये दोनों गुण मनुष्यके हृदयमें शिल्प द्वारा सरलतासे संचारित किए जा सकते हैं। अस्तु। शरणार्थियोंके हर कैम्पमें शिल्पियोंकी टोलीका प्रवेश होना चाहिए, जो उनके निरानंद जीवनमें प्रसन्नताका प्रवाह ला सकें। जो मायूस हैं, पस्त-हिम्मत हैं, लुटे और छीने हुए हैं, उनकी चिंताधारामें, उनकी कल्पनामें प्राणोंका स्पन्दन जगा सकें। हर रोज़ सुबहके कुछ घंटे इस तरह गुज़ारे जा सकते हैं, जिनमें संगीत और नाटक मनोरंजनका साधन बन सकते हैं। केवल गीत या कहानी ही नहीं, उन द्रष्टाओंकी वाणीका भी अनुशीलन किया जाय, जो उदार, सर्वदेशीय, मानव-कल्याणकी भाषा बोलते हैं। इस कार्यक्रमको हम सामूहिक गानसे शुरू और खत्म कर सकते हैं। बीच-बीचमें चित्रोंकी प्रदर्शनी की जा सकती है, जिनमें मनुष्य और प्रकृतिके अन्तरमें विराजमान एक ही आनन्दका छन्द लहराता जान पड़े, जीवन सार्थक और सरस मालूम हो।

शिल्पियोंके साथ-साथ ऐसे श्रेष्ठ कारीगर भी इन लोगोंके बीच रहने लगें, जो अपनी कला और कौशलके जादूसे अर्थहीन वस्तुको सार्थक बना डालते हैं। इनके सान्निध्यमें यह अनुभव होगा कि परमात्मा 'आनन्दमय' भी है और 'अन्नमय' भी। इन सभी योजनाओंका अर्थ-भार सरकारको ही ढोना होगा। सरकार यह भी देखेगी कि शिल्पियों और कारीगरोंकी बनाई हुई चीज़ें बाज़ारमें ठीक-ठीक बिकती चलें। इसी प्रकार लेखक और साहित्यिक भी इसके बीच एकात्म होकर रहेंगे। अवश्य ही उन्हें सूखी रोटीसे ही संतोष करना पड़ेगा। अर्थ-संकटसे कहीं अधिक भयावह यह आत्माका संकट है, मायूसी और निराशाका संकट है। क्या हमारे देशके भावुक शिल्पी और सुसंस्कृत जनता आगे आकर इन उदासीन, हारे हुओंके दिल बढ़ाएँगे! हम चाहते हैं कि शरणार्थियोंके कैम्पोंपर तिरंगे झण्डेके साथ-साथ संस्कृतिकी पताका भी लहराती चले!

अमर शहीद आज़ादकी माताजी

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी

"माताजी आ गईं! चलो, उनका स्वागत कर लें।" यह सुनते ही जल्दीसे हाथ-मुँह धोकर घरसे बाहर आया और पूज्य माताजीके चरण स्पर्श किए। उनके साथ आज़ादके पुराने सहयोगी मास्टर रुद्रनारायणजी तथा बन्धुवर भगवानदासजी माहौरके भी दर्शन हुए। मानो घर बैठे तीर्थ आ गए हों! वह दिन हमारे लिए चिरस्मरणीय रहेगा। पर श्रद्धेय माताजीका यह शुभागमन कोई आकस्मिक घटना न थी।

दस वर्ष पहलेकी बात है। जिस दिन हमने 'विप्लव'में श्री वैशम्पायनजी द्वारा लिखित आज़ादके जन्मस्थानकी तीर्थ-यात्राका वृत्तान्त पढ़ा था और उस झोंपड़ीके तथा माताजीके चित्रोंको देखा था, हमारी आँखें डबडबा आई थीं और हमने यही कहा था—"यदि हम लोग अलफ्रेड-पार्क प्रयागसे (जहाँ आज़ाद शहीद हुए थे) भाबरा (अलीराजपुर) तककी पैदल यात्रा करके माताजीके चरण स्पर्श करें, तो शायद हम आज़ाद को सच्ची श्रद्धांजलि देनेके कुछ अधिकारी बन सकते हैं।"

पर अपने बहुधन्धीपन तथा प्रमादके कारण हम पैदल तो क्या रेल द्वारा भी भाबरा न पहुँच सके! और वह ७०-७५ वर्षकी वृद्धा आज हमारे यहाँ स्वयं ही आ पहुँची थीं। माताजी ने चार दिन तक इस भूमिको पवित्र किया और उन चार दिनों में हमने समझा कि इस साधनहीन भोलीभाली बुढ़ियाके हम कितने ऋणी हैं।

माताजी पुराने विचारोंकी हैं। आते ही वे लड़कियोंसे इस प्रकार मिलीं-भेंटीं, मानो वे चिरपरिचित हों और अपने घरमें ही आ रही हों। दो दिनोंमें ही माताजी इतनी घुल-मिल गईं कि लड़कियोंको उचित आदेश भी देने लगीं। पुत्री देवकी से बोलीं—"भोजन करनेके बाद तुम हमारे पास क्यों नहीं बैठीं?" लड़कीने सकपकाकर उत्तर दिया—"माताजी, हमें नींद लगी थी, सो दूसरे कमरेमें जाकर सो गई।" माताजीने कहा—"नहीं, तुम्हें हमारे पास आना ही चाहिए था। हमारा हुकुम मानो।"

दरअसल माताजीमें वात्सल्यकी अतृप्त भावना प्रबल मात्रामें विद्यमान है। जिस बुढ़ियाके पाँच बच्चे एकके बाद एक चल बसे हों, उसके मनमें यह भावना आना सर्वथा स्वाभाविक है कि कोई तो हमारी बात बच्चोंकी तरह सुने, किसीपर तो हम प्रेमपूर्ण 'हुकुम' चला सकें! आज़ादको शहीद हुए अठारह वर्ष हो चुके और उनके पिताजी पंडित सीतारामजी तिवारी भी ग्यारह वर्ष पहले चल बसे! भाबरा ग्राममें एक कोनेपर भीलों के बीच एक झोंपड़ीमें माताजी अपने वैधव्यके ग्यारह वर्ष बिल्कुल एकान्तमें काटती रही हैं। ब्राह्मणके सिवाय किसी दूसरेके हाथका बना कच्चा भोजन वे खा नहीं सकतीं और ब्राह्मण-कुटुम्ब उस ग्राम-भरमें शायद एक ही है। तीन-चौथाई

आज़ादकी माताजी

बस्ती मुसलमानों और भीलोंकी है। पैसेकी कहींसे आमदनी नहीं। कहींसे कुछ मिल गया, तो दोनों वक्तका भोजन एक वक्त बनाकर रख लिया। कोदों और दाल ही उनका खाद्य रहा है। और वह कभी-कभी बासा ही खाती रही हैं। ग़रीबी में कौन किसको पूछता है? भला हो आज़ादके साथियोंका, जिन्होंने माताजीकी एकाध बार खोज-खबर तो ली! पर वे सब स्वयं अत्यन्त साधनहीन और व्यस्त रहे हैं। अतएव माताजीके जीवनके पिछले ग्यारह वर्ष घोर संकटमें बीते हैं और यह बात हम सबके लिए अत्यन्त लज्जाजनक है।

पर दूसरोंको दोष न देकर हम स्वयं अपनेको ही अपराधी

मानते हैं। यदि हम वशम्पायनजीका लेख पढ़नेके बाद तुरन्त भाबरा चले गए होते, तो शायद कुछ-न-कुछ सेवा उनकी हो ही जाती। पर हम सोचते-विचारते ही रहे और यह आवश्यक कर्त्तव्य हमसे न बन पड़ा!

माताजीके दर्शन करते समय हमें ख़याल आया कि आज भी देशमें सैकड़ों शहीदोंके निराश्रित कुटुम्ब सहानुभूतिके दो शब्दोंके भूखे हैं। आज भी वे प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कोई कृतज्ञतापूर्ण हृदयसे दो-चार बातें उनके स्वर्गीय प्राणीके विषयमें सुनावे, उन्हें कुछ सान्त्वना दे, उनकी कुछ सुने, उन्हें आँसू बहानेका कुछ मौक़ा दे।

माताजी अपने बच्चे चन्द्रशेखरकी बातें किसीको सुनाना चाहती थीं—अमर शहीद आज़ादकी नहीं। उस आज़ादको
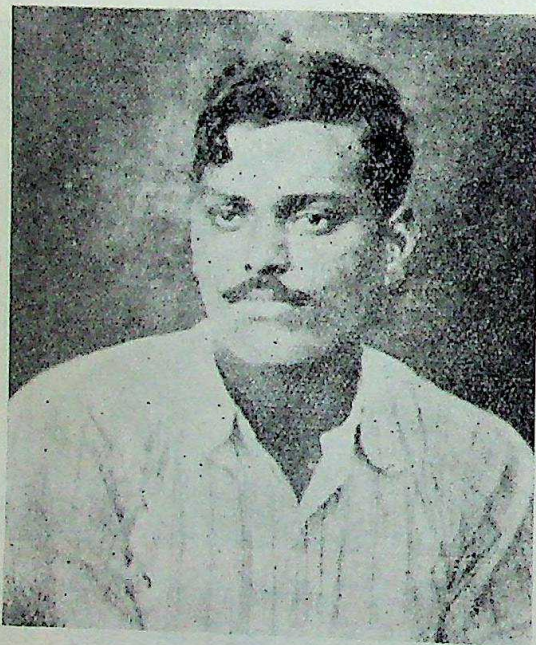
अमर शहीद चन्द्रशेखर आज़ाद

तो वे तब भी नहीं समझ सकी थीं, आज भी नहीं समझ पातीं। वे तो उसी चन्द्रशेखरको जानती हैं, जो उनके पेटमें नौ महीने रहा था, जो बर्फ़ीका बड़ा प्रेमी था, जो उनसे झगड़-झगड़कर पैसा लिया करता था और जो पिताजीसे (तिवारीजीसे) बोलता भी न था!

माताजी लड़कियोंको अपनी बातें सुनातीं और आज़ादका ज़िक्र आते ही उनका गला भर आता और वे फूट-फूटकर रोने लगतीं। माताजीने कहा—"बेटा चन्द्रशेखर जब पैदा हुआ था, तब कमज़ोर-सा था। हमारे यहाँ गाय-भैंस तो थीं, पर वे दूध बहुत थोड़ा देती थीं। इसलिए दूध हम घीके लिए जमा देती थीं और थोड़े-से दूधमें बहुत-सा साबूदाना मिलाकर खीर बना देती थीं और दिनमें कई बार वही खीर बच्चे (चन्द्रशेखर) को दिया करती थीं। ज़्यादा दूध हमारे यहाँ होता ही न था, पर बच्चा साबूदाना खा-खाकर ही ख़ूब मोटा-ताज़ा बन गया। पास-पड़ोसकी स्त्रियाँ कहने लगीं—'बच्चा तो बहुत सुन्दर लगता है!' कहीं उनकी नज़र न लग जाय, इसलिए चन्द्रशेखरके काजल लगाकर उसके माथेपर डिठौना लगा दिया करती थी। बच्चा ख़ूब तन्दुरुस्त हो गया था। हाय! क्या मैंने उसे इतनी फ़िकिरसे इसीलिए पाला-पोसा था कि वह किसी दिन गोलीसे मारा जाय!" इतना कहते-कहते माताजीका गला भर आया और फिर उनके आँसू रुकते ही न थे! लड़कियाँ भी विह्वल हो गईं! उन आँसुओंको पोंछनेकी शक्ति भला किसमें है?

फिर माताजी सुनाने लगीं—"चन्द्रशेखर अपने पिताजीसे ज़्यादा नहीं बोलता था। जो-कुछ उसे लेना होता, मुझसे ही माँग लेता था, और मैं भी उसके पिताजीके पैसोंकी चोरी करके उसे दे दिया करती थी। जब वह बाहर चला गया था, तब भी चिट्ठी मेरे पास भिजवाकर रुपए मँगाया करता था और मैं तिवारीजीकी चोरीसे उसे दो-चार रुपए भेज ही देती थी! बच्चेके लिए मैंने बापकी चोरी की!" ऐसा कहते-कहते माताजी फिर रोने लगीं। जब चोरीका पता चल जाता, तो तिवारीजी नाराज़ होकर कहते—"तुम्हींने लड़केकी आदत ख़राब कर दी है।"

शहीद आज़ादके पूज्य पिताजी पं० सीताराम तिवारी बगीचेकी रखवाली करते थे और उनका वेतन था पाँच रुपए महीना! पर वह बुड्ढा अजीब आनबानका आदमी था। क्या मजाल कि कोई आदमी एक अम्बिया भी बागसे ले जाय! खुद तो कभी लेनेसे रहे! एक बार स्थानीय तहसीलदार साहबने बगीचेसे छाँटकर बढ़िया बैंगन अपने घरके लिए मँगाए, तो तिवारीजीने बगीचेकी ताली ही उन्हें वापस भेज दी और कहला दिया कि यह बेईमानी हमसे नहीं होगी! अच्छे बैंगन आप छाँट लेंगे, तो बाज़ारमें बाक़ीका भाव गिर जायगा! रियासतको घाटा रहेगा। मुझसे यह पाप नहीं होगा। आप ही बगीचा सम्हालिए! तहसीलदार साहब घबरा गए! उन्होंने

ताली तिवारीजीको ही लौटा दी।

मास्टर रुद्रनारायणजीने यह घटना हमें सुनाई और कहा—"जब वह बुड्ढा बड़े स्वाभिमानसे कहता : 'इस तिवारी ने छदामके लिए भी किसीका अहसान नहीं लिया', तो उनका चेहरा गौरवकी अनुभूतिसे लाल हो जाता था।"

और जिस समय चन्द्रशेखर आज़ाद कहते थे—"पार्टीसे हमें कुल छै पैसे भोजनके लिए मिलते हैं। इतनेमें पेट नहीं भरता, पर क्या किया जाय? ज़्यादा पैसे हमारे पास हैं ही नहीं। हमारे कुछ साथी डबलरोटी और मक्खन क्यों खाना चाहते हैं, समझमें नहीं आता!" उस समय तिवारीजीकी स्वाभिमानी आत्मा ही उनके आत्मज आज़ादमें बोलती थी।

हमारे निकटस्थ वनके रक्षक भगवानदास (मिठई) को आज़ादके साथ ओरछेके जंगलोंमें भ्रमण करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मिठईने माताजीसे कहा—"माताजी, आपकी भेजी हुई बर्फी हमने भी खाई थी। उसमें इलायची पड़ी थी।"

सुनते ही माताजीने कहा—"हाँ, हमारे बच्चेको बर्फी अच्छी लगती थी, और जब वह भाबरा आया था, तब हमने बर्फी बनाकर उसको दी थी। उसके बाद बच्चेको फिर नहीं देखा। वही आखिरी मिलन था!"

माताजीकी अश्रु-धारा फिर बहने लगी। आज़ादकी जीवित अवस्थामें जब मास्टर रुद्रनारायणजी भाबरा गए थे, तो चलते समय माताजीने ज़बरदस्ती एक रुपया उनकी लड़कीके लिए दिया था और एक अठन्नी यह कहकर दी थी कि "इसकी बर्फी लेकर बेटा चन्द्रशेखरको खिला देना। मेरे बच्चेको बर्फी बहुत भाती है।"

आज़ादने भारतकी स्वाधीनताके लिए क्या-क्या वीरतापूर्ण कार्य किए, इसका पता माताजीको अभी तक नहीं है। कोई आज़ादकी बातें करता है, तो माताजी चुप-छिपकर उसे सुन लेती हैं और फिर बीमार पड़ जाती हैं! उनके हृदयके घाव ताज़े हो जाते हैं, उन्हें ज्वर हो आता है और वे खाना-पीना छोड़ देती हैं। यही नहीं, वे कुछ विक्षिप्त भी हो जाती हैं। ऐसी हालतमें वे यह खयाल करने लगती हैं कि आज़ाद ज़िन्दा है और जान-बूझकर हमें तंग कर रहा है, मिलने नहीं आता! आज़ादकी बाल्यावस्थाकी झलक उनके नेत्रोंमें ['नेत्र'में कहना चाहिए, क्योंकि माताजी आज़ादके लिए सिर पटक-पटककर अपनी एक आँख खो चुकी हैं] अब भी विद्यमान है, जब वह एक ओरसे पीछेसे आकर कन्धा पकड़कर 'ता' किया करता था और फिर दूसरी ओरसे कन्धा पकड़कर 'ता' किया करता था!

माताजी कहती हैं—"सब जगह देख आई, चन्द्रशेखर नहीं मिला। साँतार नदीके किनारे नहीं मिला। ओरछामें नहीं मिला। त्रिवेणीपर नहीं मिला। मुझे आशा लगी थी कि वह कहीं-न-कहींसे निकलकर आ जायगा; पर जब मैं अलफ्रेड-पार्क में गई और वहाँ मुझे वह जगह बताई गई, जहाँ मेरा बच्चा गोलियोंसे मारा गया था, तब मेरी यह आशा भी टूट गई कि बच्चा कहीं मिल जायगा!"

माताजीका स्वास्थ्य दिनों-दिन बिगड़ रहा है। बची हुई आँखमें मोतियाबिन्द हो रहा है। साल-भर चल जायँ, तो चल जायँ! ग़नीमत यह है कि अभी-अभी संयुक्त-प्रान्तीय तथा मध्य-भारतीय सरकारोंने पचीस-पचीस रुपए महीनेकी पेंशन
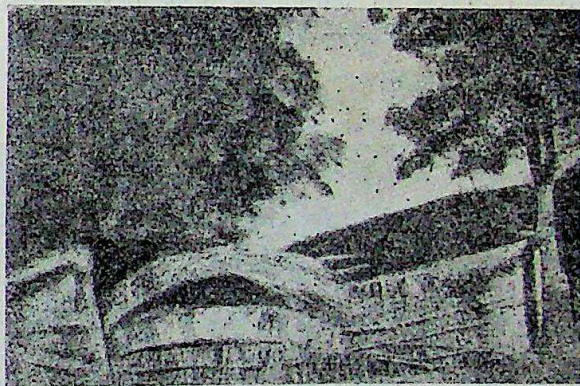
वह झोंपड़ी, जिसमें आज़ादका जन्म हुआ था

कर दी है और इस प्रकार छै सौ रुपए दान करनेका पुण्य लूट लिया है। पर दुर्भाग्यकी बात यह है कि अठारह वर्ष भूखों मरनेके बाद जब यह पेंशन आई है, तो माताजीकी भूख जाती रही है। वह पहलेसे तिहाई-चौथाई रह गई है और बूढ़े आदमीकी भूखका घटना अन्तिम दिनोंके आगमनकी सूचना है।

माताजीके भोलेपनकी हद नहीं। उनकी बस दो इच्छाएँ बाकी हैं—एक तो वे किसी लड़केके विवाहमें 'बन्ना' गाना चाहती हैं और दूसरे द्वारिकाजीके दर्शन करना चाहती हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि आज़ादका बड़ा भाई, जो पोस्टमैन था, इक्कीस वर्षकी उम्रमें जाता रहा था। माताजी कहती थीं—"मैं उसका विवाह करनेके लिए उन्नाव जानेवाली थी!" माताजी 'बन्ना' नहीं गा सकीं। चार बच्चोंको और अन्तमें चन्द्रशेखरको खोकर माताजीकी गोद तो बिल्कुल सूनी

हो गई ; पर वात्सल्यका स्रोत जहाँ-का-तहाँ बना रहा । वह नहीं सूखा । माताजीके मुखसे कभी-कभी बड़े मर्मभेदी वाक्य निकल पड़ते हैं—"बेटा, लोहा भट्टीमें जल जाता है, पत्थर भी टूट-टूटकर राख बन जाता है ; पर मेरा जी तो देखो कि वह पत्थर और लोहेसे भी कड़ा है, अठारह-अठारह वर्षसे भट्टीमें जल रहा है और अभी तक नहीं टूटा ।"

चलते समय माताजीने तीनों लड़कियोंको एक-एक रुपया दिया । उन्होंने कहा—"माताजी, एक ही रुपएमें से हम तीनों बाँट लेंगी ।" पर माताजी बोलीं—"तुम हमारी बिटिया नहीं हो ? बोलो !" लड़कियोंने कहा—"हम तुम्हारी बिटिया हैं ।" माताजीने कहा—"तो फिर हमारा हुकुम मानो । अपने मनकी मिठाई मँगाके खा लेना ।" इस तर्कका उत्तर भला क्या हो सकता था ? मिठईको जब माताजीने चवन्नी दी, तो उसने भी मना किया । माताजीने तुरन्त कहा—"तुम हमारे बेटे नहीं हो ?" चवन्नी लेनी पड़ी ।
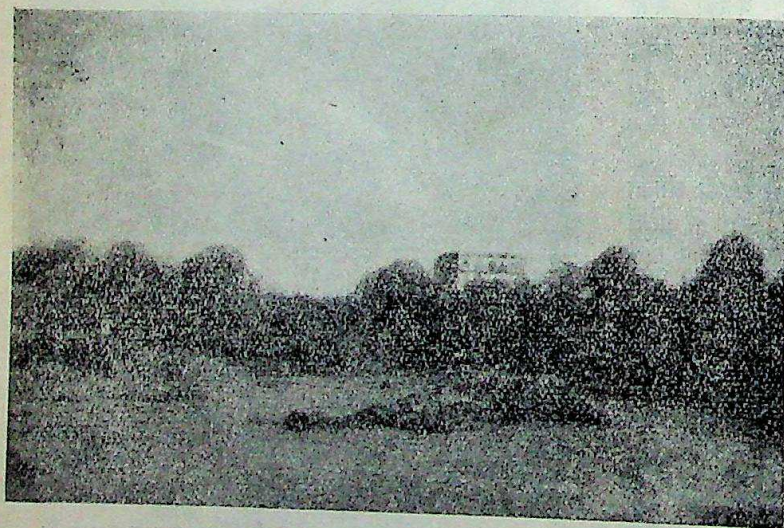
ओरछाके जंगलका एक दृश्य

चलते वक्त मास्टर रुद्रनारायणजी बोले—"चौबेजी, एक काम तुम करा दो, तो माताजीको कुछ सन्तोष हो सकता है । भाबरामें, जहाँ आज़ादका जन्म हुआ था, कोई स्मारक बनवा दो—एक कमरा और बरामदा ही सही—और आज़ादके कार्यक्षेत्र झाँसीमें या अलफ्रेड-पार्क प्रयागमें उनकी एक मूर्ति ।"

मास्टरजी स्वयं अत्युत्तम चित्रकार तथा श्रेष्ठ मूर्त्तिकार भी हैं । मैंने कहा—"मास्टरजी, किसे इतनी फिक्र है कि माताजी के अन्तिम दिनोंमें उन्हें सन्तोष दे ? हाँ, पंडित जवाहरलालजी ने ढाई सौ रुपए माताजीके नाम भेजे हैं और भविष्यमें भी प्रबन्ध करनेका वचन दिया है ; पर ऐसी सहृदयता तथा कर्त्तव्यशीलता क्या हमारे अन्य नेताओं अथवा धनाढ्योंमें है भी ? 'इण्डिया रिपब्लिक' बनने जा रही है, पर इंडियन रिपब्लिकन आर्मीके संचालक चन्द्रशेखर आज़ादको लोग भूल गए हैं ! और फिर इधर कोनेमें पड़े हुए पत्रकारकी बात सुनेगा कौन ?"

मोटर तैयार थी, माताजी चल दीं । आँखोंके सामने आज़ादका और उनके माता-पिताका जीवन चल-चित्रकी भाँति एक साथ घूम गया :

आज़ादका साबूदाना खाना । माथेपर वह डिठौना । बर्फीका प्रेम । पिताजीका अक्खड़पन । माताजीकी कोमलता । चन्द्रशेखर का घरसे भागना । काशी पहुँचना । जेलमें बेंतोंकी सज़ा । आज़ादकी वह भीष्म-प्रतिज्ञा : 'सरकार मुझे ज़िन्दा न पकड़ सकेगी ।'

आज़ादका पंडित जवाहरलालजी से मिलन और उसके बादकी वे सब घटनाएँ, जो भारतीय स्वाधीनता-संग्रामका अध्याय ही बन चुकी हैं ।

और अलफ्रेड-पार्कमें माताजीका वह करुण विलाप !

आज़ाद फरवरी, १९३१ में शहीद हुए और तबसे १८ वर्ष तक हम लोगों द्वारा माताजीकी वह घोर उपेक्षा !

क्या कोई कृत्रिम सिनेमा इस सजीव चित्रका कभी मुक़ाबला करेगा ?

आम्रनिकुंज, टीकमगढ़]

बुढ़ियापुराण

श्री राहुल सांकृत्यायन

यद्यपि अंगरेज़ शासकोंने अपने शासनकी पिछली डेढ़ शताब्दियोंमें हमारे देशके पुरातत्त्व, इतिहास, प्राकृतिक संपत्ति आदिके विषयमें वैज्ञानिक अनुसंधान किए ; किन्तु उन्हें श्रीगणेश ही समझना चाहिए। देशके स्वतंत्र होनेके बाद इस विषयमें हमारी ज़िम्मेदारियाँ बहुत बढ़ गई हैं। हरएक भारतीय विद्वानको अपने-अपने क्षेत्रमें आगे बढ़ना है। कितने ही विषयोंमें पहलेके विद्वानोंका पद-चिह्न उनके लिए सहायक होगा ; किन्तु कितने ही स्थलोंमें उन्हें स्वयं अपना मार्ग बनाना है। साधारण शिक्षित नर-नारियोंको भी संस्कृत होनेके कारण अपनी दिलचस्पीको कुछ और विस्तृत करना होगा, तभी इस क्षेत्रमें काम करनेवालोंका उत्साह बढ़ेगा।

मैं कुछ ऐसे विषयोंपर लिखना चाहता हूँ, जिन्हें शिक्षित जन भी अधिक महत्त्व नहीं देते। लोकगीतोंका महत्व अब कुछ-कुछ लोग समझने लगे हैं, क्योंकि उनमें कितने ही अत्यन्त सरस होते है ; लेकिन शास्त्रोंसे बाहर केवल बुढ़िया-पुराणमें ही पाए जानेवाले लोकाचारों और टोटका-टोनोंके वैज्ञानिक महत्वको बहुत कम अनुसंधानका विषय बनाना पसन्द करते हैं। एक शिक्षिता महिलाने मुझसे कुछ साहित्यिक सेवा बतलानेके लिए कहा। मैंने उनसे कहा कि अथसे लेकर इति तक विवाहकी सारी विधियों, लोकाचारों, टोटका-टोनों, गीतोंको कोहबर-ठापा आदिके चित्रोंके साथ जमा कीजिए। उस महिला ने इसे परिहास समझते हुए कहा—'कोई-कोई लोकगीत तो बहुत मीठे होते हैं।' यही धारणा सभी शिक्षितोंकी नहीं है। आजकल कान्यकुब्ज ब्राह्मणों (षट्कुल), अग्रवालों (कदीम), पछाहीं खत्रियों और कुलश्रेष्ठ कायस्थोंकी वैवाहिक विधियोंपर चार महिलाएँ काम कर रही हैं, जिनमें डा० किरणकुमारी गुप्ताने अग्रवाल-वैवाहिक विधिके कामको आगे बढ़ाया है। उनके लिखने और दूसरी अग्रवाल-महिलाओंसे बातचीत करने पर मुझे मालूम होता है, इस ग्रन्थको चौदह अध्यायोंमें विभक्त करना पड़ेगा और वह चार सौ पृष्ठोंसे कमका नहीं होगा। उसमें एक-तिहाई अंश लोकगीतोंका होगा। उसके अध्यायोंके विषय निम्न प्रकार होंगे :
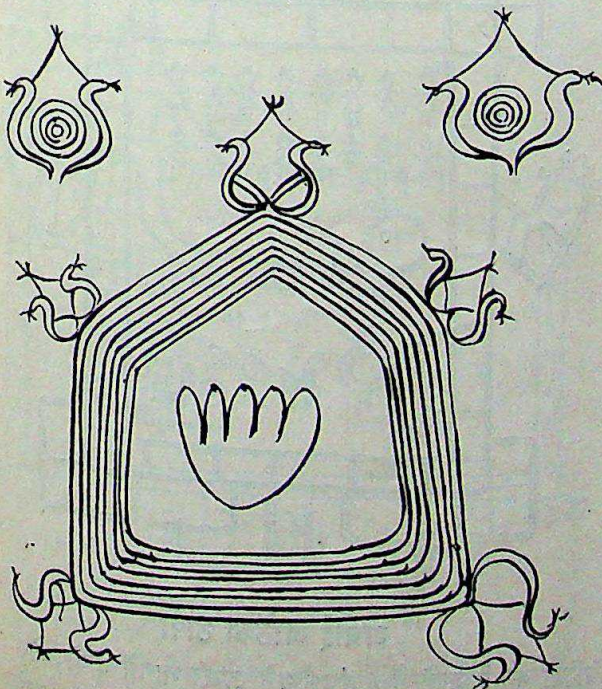
श्रीगणेश नमो

ब्याहका ठपा

अध्याय १—(विषय-प्रवेश) अग्रवाल-वंश-परिचय। उसकी उपजातियाँ, वंशावली, गोत्र और मूल स्थान, पारस्परिक संबंधमें विधि-निषेध।

अध्याय २—(संबंध-निश्चय) कन्याकी विवाह-योग्य अवस्था, पितृ-कुलमें आर्थिक और दूसरी तरहकी चिन्ता, वरकी खोज, कन्या देखना, गोद भरना (गीत-सहित), मिलनी और संबंध-निश्चय।

अध्याय ३—(कन्या-कुलमें तैयारी) सिक्का (गीत-सहित), सगाई (गीत-सहित), दावत (गीत-सहित) और पीली चिट्ठी (गीत और चिट्ठीके पुराने नमूनों-सहित)।

अध्याय ४—(कन्या-कुलमें लगनकी तैयारी) लगन (गीत-सहित), तेल (गीत-सहित), हल्दी या मांगर (गीत-सहित), गूँगा तेल (गीत-सहित), मढ़ा (गीत-सहित) गोदभरी (गीत-सहित), ठापा (गीत-सहित), रतजगा या ताई (गीत-सहित) और भात (गीत-सहित)। प्रत्येक विधि-विधानका ऐसा वर्णन लिखना

होगा, जिसमें सर्वथा अपरिचित आदमीको भी बात समझमें आ जाय। साथ ही बेल या रेखाचित्र, मंडप और कलश आदिके चित्र तथा नक्शे भी देने होंगे। आभूषणों तथा वस्त्रोंके रेखाचित्र होने आवश्यक हैं।

अध्याय ५—(वर-कुलमें तैयारी), गीतों और विधि-वर्णनके साथ सिक्का, सगाई, दावत और पीली चिट्ठी।

अध्याय ६—(लगनकी तैयारी) गीत आदिके साथ तेल, हल्दी इत्यादि विधियां, चुनरी सीना और दावत।

अध्याय ७—(वर-कुलमें बारातकी तैयारी) गीत और विधि-वर्णनके साथ चाक-पूजन, घुड़चढ़ी, बारातका प्रस्थान और रतजगा।

अध्याय ८—(वर-कुलमें खोरिया) खोरिया भिन्न-भिन्न नामोंसे बिहारसे राजस्थान तक प्रचलित है। बारातके चले जानेपर स्त्रियां एकत्रित हो सहस्राब्दियों बीत गए युगकी भाँति बड़ी स्वच्छन्दतापूर्वक नाच-नाटक, गाना-बजाना करती हैं, जिसमें पांच वर्ष तकके लड़के भी नहीं जाने पाते। इसीलिए बहुतसे पुरुष खोरियाके अस्तित्वको नहीं जानते। इस अध्यायमें खोरियाका सविस्तर सोदाहरण वर्णन करना होगा।

अध्याय ९—(कन्या-कुलमें बारातके लिए तैयारी) चाक-पूजन, कुढ़ला या गौर तथा दूसरी विधियां गीतों और वर्णनोंके साथ।

अध्याय १०—(कन्यादान) बारातका आगमन, चढ़त, बरौनिया, खेत जाना, बारौठी, विवाह-संस्कार गीत और विधि-वर्णनके साथ सभी बातें लिखनी चाहिएँ।

अध्याय ११—(विवाहके दूसरे दिन कन्या-कुलमें) कुँवर-कलेऊ, कँगना, तिलक या पलँग, छन्द, मिलनी, रंग खेलना, विदा और बखेर गीतों और विधि-वर्णनोंके साथ।

अध्याय १२—(विवाहके दूसरे दिन वर-कुलमें) दिन-भर गाना-बजाना, बेल रखना, वर-वधूका आगमन, बहू लेना, द्वार रोकना, आरती, वर-वधूका देव-पूजन, मुँहदेखाई, बहूभात या बहूगस्सा और रतजगा गीतों और विधि-वर्णनोंके साथ।

अध्याय १३—(कन्या-कुलमें विवाह-विधि-समाप्ति) मढ़ा सिराना, गोरहारी, लाल कोठारी भेजना और दसईं भेजना गीतों और विधि-वर्णनोंके साथ।

अध्याय १४—(वर-कुलमें विवाह-विधिकी समाप्ति। बहूकी सिरगुथी, मढ़ा सिराना, देवमन्दिरमें वर-वधूका फूलछड़ी या संटी खेलना, बहूकी विदाई। यहाँ भी गीतों और विधि-विधान का वर्णन पूरी तौरसे रहेगा।

विवाहके अवसरपर सबसे अधिक गीत गाए जाते हैं, इसलिए ऐसी पुस्तकमें उनका अच्छा संग्रह हो सकेगा। उच्च-कोटिके गीतोंके पानेके लिए कुल-वृद्धाओंके चरणोंमें जाकर अधिक संख्यामें गीतोंको उतारना पड़ेगा। बीस अच्छे गीतोंके लिए आपको सौ-दो-सौ गीत जमा करने पड़ेंगे। यदि हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तोंकी प्रत्येक बोलीकी पाँच-पाँच जातियोंकी वैवाहिक विधियोंपर उक्त प्रकारकी पुस्तकें लिखी जायँ, तो उनकी संख्या पचाससे कम न होगी। यदि वैज्ञानिक दृष्टिसे इस कामको करें, तो ५० ग्रन्थोंके तुलनात्मक अध्ययनसे नृवंश, मानव-तत्त्व, सांस्कृतिक इतिहास और भाषातत्त्व-संबंधी महत्त्व-पूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

विवाहके समय दीवारपर कहीं गेरूसे और कहीं हल्दी मिले चावलके आटेसे ठापा (कोहबर) लिखा जाता है। इसे कहीं-कहीं ब्याहकी बेल भी कहते हैं। बेल आठ समानान्तर सरल रेखाओंसे बनी पंचकोण होती है, जिसके पाँचों कोनोंपर आड़-

अघोई आठेंका ठापा
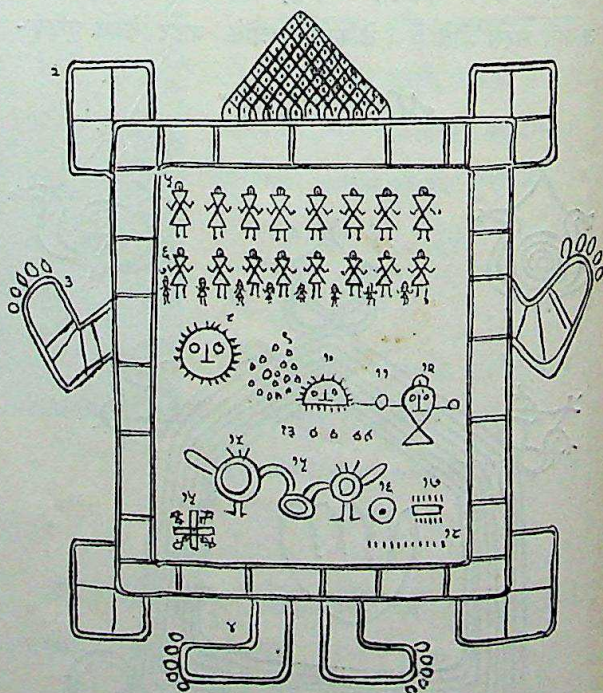
चिड़ियाँ बनाई जाती हैं। पंचकोणके ऊपरी भागमें दोनों ओर जोड़े मोर अंकित किए जाते हैं। पंचकोणकी दोनों बगलोंमें

पाँच अँगुलियों-सहित दो हाथ नीचेकी ओर दो पैर खींचे जाते हैं। पंचकोणके बीचमें लाल रंगमें हाथका पंजा बनाया जाता है। यह पछाहीं अग्रवालोंके ब्याहकी वेल है। (विशेषके लिए पृष्ठ ४१८ पर दिया गया चित्र देखिए)।

जन-कलाके गुणोंके कई पहलू हैं। एक ओर उसमें सरस कविता दिखाई पड़ती है, तो दूसरी ओर सरस अभिनयका स्वाद आता है। इतिहासके अनुसंधानकर्त्ता उसे पकड़कर इतिहासके आरंभिक युग तकका पता पाते हैं और कितने ही चिर-विस्मृत चिह्नों और संकेतोंको वहाँ सजीव देखते हैं। एक जन-कला-प्रेमीने सौके क़रीब गोदनेके रेखाचित्र एकत्रित किए हैं। इनमें उन्हें कितने ही ऐसे चिह्न मिले हैं, जो पुराने सिक्कों तथा मोहेनजोदड़ोंके लिपि-संकेतोंमें मिलते हैं। गोदना गोदनेवाली स्त्रियोंके गोदना-गीतोंका यदि अच्छा संग्रह किया जाय, तो वह कम महत्त्वका न होगा।
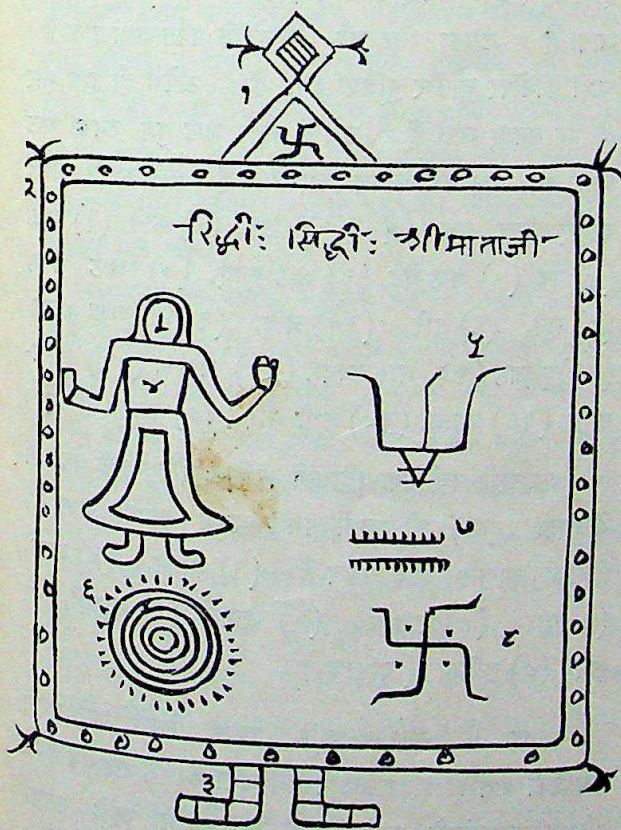
माहेश्वरियोंका अघोई-ठापा

मंगलाचारके लिए कितने ही निरर्थक बच्चोंके खेल-जैसी बातें की जाती हैं, अनिष्टके डरसे कोई गृहिणी उनका उल्लंघन कर सकती। बात ज़रा-सी है, किन्तु न-जाने उसके न करनेपर वरका अनिष्ट हो जाय, कन्या विधवा हो जाय। इसी भयसे सहस्राब्दियोंसे ये विधियाँ दुहराई जा रही हैं, उस समयसे दुहराई जा रही हैं, जब कि सचमुच हमारी जाति शैशवावस्थामें थी।

पर्व-त्योहारोंपर हमारे यहाँ कितनी ही तरहके ठापा या भीत-चित्र लिखे जाते हैं। एक मथुरिया चतुर्वेदी महिलाने तो उनकी संख्या एक कौड़ीसे भी अधिक बतलाई। इन ठापोंमें एक है अघोई। दीवालीसे एक सप्ताह पहले कातिकके कृष्ण-पक्ष की अष्टमीको अघोईकी आठें कहते हैं। शायद अघोई आठें पश्चिमी युक्तप्रांत और राजस्थानमें ही मनाई जाती है। और वहाँ भी शायद कुछ ही जातियाँ इसे मनाती हों। मनानेवाली सभी जातियोंके ठापे भी एक-से नहीं होते। अघोई आठें ब्राह्मण पुरोहितोंका बनाया त्योहार नहीं मालूम होता, या यों कहना चाहिए कि यह उन त्योहारोंमें है, जिन्हें लोकाचारसे उठाकर हरितालिकाकी भाँति ब्राह्मणोंने शास्त्राचारमें दाखिल नहीं कर पाया। इसीलिए अघोई आठेंकी कथा, पुरोहितकी सहायता बिना, स्त्रियाँ स्वयं कह-सुन लेती हैं। जो कथा हम यहाँ दे रहे हैं, उसमें पूर्वी युक्तप्रांतकी 'पिंडिया'की कथासे दूरका संबंध मालूम होता है। दोनोंमें पुत्रकी लालसा दीख पड़ती है। 'पिंड़िया-कथामें' चेरियाँ (दासी) रोने-धोनेकी लालसासे अपने पुत्रोंमें से किसीकी मृत्यु चाहती हैं; पर व्रतके कारण वैसा हो नहीं पाता और दूसरी ओर अपुत्रा रानी एक पुत्र पानेके लिए घुल-घुलकर मरती दीख पड़ती है। अघोई आठेंकी कथा श्रीमती कुन्ती (कासगंज) के अनुसार निम्न प्रकार है :

"देवरानी-जेठानी छः रानियाँ थीं। बच्चे छओंके होते थे, पर छोटी रानीके लड़के बरस-भरके होते-होते अघोई आठेंको मर जाते थे। इसी प्रकार सात बच्चे पैदा हुए और मर गए। आठवाँ पैदा हुआ। छठीकी रातको बेमाता आई। माँने उसके पैर पकड़ लिए। बहुत गिड़गिड़ाकर उसने बेमातासे आठवें पूतके जीवनकी भीख माँगी। बेमाता द्रवित हुई और बोली—"बेटी, यह मेरे वशकी बात नहीं है। अघोई आठेंको स्याऊ-माता आवेगी। उसीके हाथमें सब-कुछ है। तू आठ नाँदोंमें मिठाई, खीर, फल आदि भरवा रखना। वह एक-एकको बड़े मनसे खाकर अघा जायगी। आठवीं नाँदके बाद चारपाई बिछाकर बिस्तरा लगा रखना। स्याऊ-माता खा-पीकर थक गई रहेगी और चारपाई देखकर वहाँ सो जायगी। फिर धीरे-

धीरे उसके पैर ना-ना कहनेपर भी दबाते रहना। साथ ही बच्चेको चिउँटी काटकर जब-तब रुला भी देना। स्याऊ माताके पूछनेपर तब तक कुछ न कहना, जब तक वह तिरबाचा न भर दे। स्याऊ-मातासे तिरबाचा भरवाकर कहना कि यह तुम्हारे कानकी फुरेरी माँगता है। स्याऊ-माता फुरेरी दे देगी। फिर तू एक नहीं, आठ जीते पूतोंकी माँ हो जायगी।'

"बेमाता छठीकी रातको आकर चली गई। बच्चा बढ़ने लगा। कातिकका महीना, अघोईकी आठेंका सबेरा आया। पाँचों जेठानियोंने कहा—'जल्दी-जल्दी अघोई आठें पूज लें, नहीं तो सदरोई (सदा रोनेवाली) रोने लगेगी। वे जानती थीं कि अघोई माता देवरानीके आठवें बच्चेको उठा ले जायगी और वह फिर रोना-धोना शुरू करेगी। लेकिन उनकी देवरानी ने अबकी बड़ी तैयारी की थी। आठों नाँदें मधुर भोजनोंसे भरी थीं। सुन्दर पलँगपर साफ़ नरम बिछौना बिछा था। स्याऊ (साँप) माता आई। नाँदमें बढ़िया मिठाई देखकर लपक पड़ीं। खूब खाया। अगली नाँदमें उससे भी अच्छा, तीसरी और आगेकी नाँदोंमें और अधिक स्वादिष्ट भोजन था। अघोई मातावाली नहीं थीं, वे खाती ही रहीं। आगे बिछी चारपाई देखकर उसपर पड़ रहीं। रानीने बैठकर पैर दबाना शुरू किया। अघोई माता चलनेको तैयार हुई, तो रानीने कहा—'ज़रा बालोंमें तेल डाल दूँ, खुले सिर न जाइए।' रानीने बालोंमें तेल डाला। फिर वह बाल काढ़ने लगी और साथ-साथ बच्चेको चिउँटी भी काटती जा रही थी। बच्चा रोने लगता, तो स्याऊ-माता रोनेका कारण पूछतीं। रानीने कहा --'काहेको पूछती हो? जो वह माँगता है, उसे क्या तुम दोगी?' स्याऊ-माताने कहा—'दूँगी।' रानीने तिरबाचा भरवाकर कहा—'यह तुम्हारे कानकी फुरेरी माँगता है।' स्याऊ-माता देतीं नहीं तो क्या करतीं। फुरेरी देते ही पहलेके सातों मरे लड़के एक-एक करके धरतीपर कूद पड़े। स्याऊ-माताने कहा—'तूने मुझे ठग लिया।'

"रानीके आँगनमें आठों लड़के खेलने लगे। उसकी खुशी का क्या कहना! उसने दरज़ी बुलवाए कपड़े सीनेके लिए, गाना-बजाना करनेवाले बुलाए नाच-उत्सव मनानेके लिए, हलवाई बुलाकर पापड़ी-पूआ तैयार करवाने लगी। मान (बूआ, ननद आदिको) देनेके लिए पापड़ी, पूआ, साड़ी, बर्त्तन, रुपए आदि आठों चीज़ें तैयार होने लगीं। जेठानियाँ पूजा कर चुकीं, लेकिन सदरोईके रोनेकी आवाज़ नहीं सुनाई पड़ी। उन्हें बड़ा अचरज हुआ। उन्होंने यह कह करके बच्चोंको भेजा कि देखो तो, चाची रोती नहीं, उसके घरमें क्या हो रहा है? बच्चोंने जाकर देखा। वहाँ खूब गाना-बजाना हो रहा था। हलवाईकी भट्ठी चल रही थी। आँगनमें आठ-आठ बच्चे खेल रहे थे। छोटी रानीने जेठानियोंके बच्चोंको भेजकर उनकी माताओंको बुलाया, खिलाया-पिलाया। स्याऊ-मैयाने जैसा उसका किया, वैसा सबका करे।"

अघोई आठेंमें पुरोहितका काम इतना ही है कि अघोई-ठापेके नीचे ज़मीनपर चौक पूरकर रखे, गन्ना, मूली, बेर, सकर-कन्दी, बैंगन आदिके सामने पूजा कर दे और चार पापड़ी, चार पूआ लेकर विदा हो जाय। अघोई आठें जीवितपुत्रा स्त्रियोंका ही त्योहार है। अघोई ठापा भीतपर चौकोर क़िले-जैसा बनाया जाता है। उसका सिर कई शिखरोंके पर्वत-जैसा होता है। चारों कोनोंपर चौकोर बुर्जियाँ होती हैं। ठापेमें दो हाथ और दो पैर बनाए जाते हैं। ठापेके भीतर आठ पुत्र, उनकी आठ बहुएँ तथा आठ बच्चे अंकित किए जाते हैं। सारे ठापेमें अंकित वस्तुएँ निम्न प्रकार हैं—(१) सिर, (२) कोने, (३) हाथ, (४) पैर, (५) आठ बेटे, (६) आठ बहुएँ, (७) आठ पोते, (८) सूर्य, (९) तारे, (१०) चांद, (११) मिट्टीका करवा, (१२) बुढ़िया, (१३) चार करवा, (१४) चौपड़, (१५) स्याऊ-माता, (१६) प्याला, (१७) कंघी और (१८) कलावा या डोरा।

माहेश्वरी पचीसिया-वंशियोंमें आश्विन और चैत्रके नवरात्रों में माता (दुर्गा) की पूजामें अघोई ठापा बनाया जाता है, जिसकी आकृति और संकेत है—(१) कलश, (२) मंडप, (३) द्वार, (४) माताजी, (५) आरती, (६) छाबड़ी, (७) कंघी, (८) सथिया (स्वस्तिक)।

आशा है 'नया समाज'के पाठक मिटते जाते पुराने समाजकी बातोंको इतिहासके पन्नोंमें जमा करनेमें सहायक होंगे, और बुढ़ियापुराणके नाम-शेष हो नष्ट होनेसे पहले उसकी सामग्री जमा करनेमें सहायक होंगे।

सम्भवामि युगे-युगे

श्री चन्द्रदत्त पांडे

अशेष स्वर्ग-सुख भोगनेके बाद युधिष्ठिरको छोड़ चारों पाण्डव और कृष्णा कर्म-विपाकके अटल नियमोंके कारण पृथ्वीपर पुनः अवतरित होनेके लिए प्रस्थानकी तैयारी करने लगे। द्रौपदी-सहित चारों भाई प्रसन्न थे कि अबकी बार बात-बातमें टाँग अड़ानेके लिए युधिष्ठिर साथमें न होंगे। पिछली बार राजाके घरमें जन्म लेनेपर भी जो अकथनीय कष्ट उन्होंने सहे थे, जंगलोंकी धूल छानी थी, विराटके यहाँ भृत्य बनकर अपमान की घूँट पी थी, उसकी स्मृति अभी तक ताज़ी थी। यही नहीं, कुरुक्षेत्रकी भूमिमें शत्रुओंको निश्शेष करनेके उपरान्त जब राज्य-लक्ष्मीको भोगनेका अवसर आया, तब युधिष्ठिरने भाइयोंको हिमालयकी दुर्गम घाटियोंकी ओर महाप्रस्थान करनेका नादिर-शाही आदेश दे दिया! द्रुपद-पुत्रीने पाण्डवोंके घर आकर रोते-रोते जो सम्पूर्ण ज़िन्दगी बिता दी, हर्ष और उल्लासका एक क्षण भी जिसने न देखा और जिसने न-जाने कितनी लालसाएँ, कितनी कामनाएँ हृदयकी हृदयमें दबा दीं, उसका खयाल भी युधिष्ठिर भूल गए।

महाप्रस्थानके समय अर्जुनने कहा—"महाराज, मैं तो पहले ही कहता था कि युद्धसे उपरत हो जावें। बन्धु-बान्धवोंको मारकर रुधिर-प्रदिग्ध भोगोंको भोगनेसे क्या लाभ? तब आपने कृष्णको मेरे पास भेजा और उन्होंने कहा—'अर्जुन, इस अनार्य और अकीर्तिकर क्लैव्य और कश्मलका त्याग करो। युद्ध करो और पृथ्वीका राज्य भोगो।' आपने भी कृष्णका समर्थन किया। अब जब कि राज्य-लक्ष्मी पाँवोंपर लोट रही है, तब आप वैराग्यकी चर्चा कर रहे हैं! तब क्यों आपने मानव-रक्तसे मुझे हाथ रँगनेको कहा? क्यों रणभूमिको रक्त-धारासे आप्लावित कराया?" युधिष्ठिरके पास उत्तर नहीं था। उन्होंने वीतरागकी-सी हँसी हँस दी।

इस बार चारों भाई हर्षमें भरे थे कि युधिष्ठिरका साथ छूटा। खूब मनमानी करेंगे। मगर धर्मराजने उनकी आशाएँ मिट्टीमें मिला दीं। अकेलेमें युधिष्ठिरको बुलाकर धर्मराज बोले—"वत्स, चारों पाण्डव फिर भारतवर्षकी ओर शीघ्र जानेवाले हैं, मगर मैं चिन्तासे उद्वेलित हो उठा हूँ। मेरी प्रार्थना है कि तुम भी साथ जाओ।"

युधिष्ठिर बोले—"प्रभो, मेरे तो समस्त कर्मोंका क्षय हो चुका है। वैराग्य और तपस्यासे दुरन्त इच्छाओंका दमनकर मैंने कर्म-पाश छिन्न कर डाले हैं। मैं सायुज्य और सान्निध्य सभी प्रकारकी मुक्तियोंका अधिकारी हूँ। आप क्यों मुझे बार-बार जन्म-मरणके बन्धनोंमें डाल रहे हैं? मुझे अब आप अपने परमात्म-भावमें अन्तर्हित कर लीजिए। भीम, अर्जुन आदिको जाना है, तो जायँ।"

धर्मराज बोले—"चारों भाई शीघ्र जानेवाले हैं, इसीलिए तो मैं चिन्तित हूँ, वत्स! द्रौपदी भी साथमें रहेगी। उसके एक इंगितपर भीम-अर्जुन जो-कुछ न कर दें, वही कम है। तुम साथ रहोगे, तो उनपर नियंत्रण रहेगा। एक बात और भी है—अब गाण्डीव और पाशुपतका युग नहीं रहा। दुर्बुद्धि-ग्रस्त, विनाशोन्मुख मनुष्यने ऐसे-ऐसे भयंकर अस्त्र बना डाले हैं, जो परिमाणमें अत्यन्त क्षुद्र होनेपर भी प्रलय मचानेकी सामर्थ्य रखते हैं। उदाहरणके लिए अणु-बमको लो। यह एक छोटी-सी गेंद होती है, मगर क्षण-भरमें ही इससे एक सम्पूर्ण देश ध्वस्त हो सकता है। मेरे देखते-देखते अभी कुछ दिवस पूर्व इससे दो बड़े नगर ध्वस्त हो गए। यद्यपि इस अस्त्रके बनानेका रहस्य अभी कुछ लोगोंको ही विदित है, मैं खुद भी अभी चक्करमें पड़ा हूँ, मगर अर्जुन-जैसे लगनवाले व्यक्तिसे यह रहस्य कब तक छिपा रहेगा। दो दिनकी तपस्यासे ही वह इसकी सम्पूर्ण क्रिया-प्रक्रिया-विनियोग सीख लेगा। तब क्या होगा, इस कल्पनासे ही मुझे रोमांच हो आता है। तुम साथ जाओगे, तो मैं निश्चिन्त होकर सो सकूँगा। तुम दोनों भाइयोंको नियन्त्रणमें रखे रहोगे और तुम्हारे जानेसे मेरा एक और कार्य भी होगा। कलियुगके प्रथम चरणमें ही कल्मषोंके भारसे धरा धँसने लगी है। तुम्हारे जानेसे धर्म-राज्यकी स्थापना होगी। विनाशके पथपर अग्रसर होती हुई मानव-जातिकी रक्षा हो सकेगी। मेरी प्रार्थना कहो, आज्ञा कहो, तुम्हें माननी ही पड़ेगी। नहीं तो समझ लो, वृद्ध हो चुका हूँ, जहाँ एक बार खाट पकड़ी, फिर....' कहते-कहते धर्मराज

का कण्ठ रुँध आया।

युधिष्ठिरका धैर्य छूट गया। तर्क करनेकी प्रवृत्ति जाती रही। बोले—"प्रभो, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।"

अपने भाइयोंको जब युधिष्ठिरने यह समाचार दिया, तो भीम झुँझलाकर बोले—"आप क्यों साथ जाना चाहते हैं? जब कि आपके कर्मोंका क्षय हो चुका है, आप क्यों मुक्ति छोड़ कर नीचे उतरना चाहते हैं?"

दूसरे भाई भी समाचार सुनकर प्रसन्न नहीं हुए। युधिष्ठिरने भाइयोंको समझाया-बुझाया, व्याज-स्तुति की और किसी प्रकार शान्त किया। धर्मराजने भीम और अर्जुनके सम्बन्धमें जो-कुछ कहा था, युधिष्ठिरने उसे प्रकट नहीं किया। व्यक्तिगत अनुभवसे वे भी सीख चुके थे कि कब घुमा-फिराकर बात कहना सत्य भाषणसे श्रेयस्कर है।

अब द्रौपदी अड़ गई। बोली—"मैं तो आपके साथ नहीं चलनेकी। मैं किसीकी चाकरीकर पेट भर लूँगी, मगर अपने को दूसरी बार द्यूतके खेलमें दाँवपर न लगने दूँगी।"

इन तीखे व्यंग-वाणोंसे ज्येष्ठ पाण्डव अत्यन्त मर्माहत हुए। दुखी होकर बोले—"कृष्णे, क्यों बीती बातोंको दुहराकर मेरे व्रणोंपर नमक छिड़कती हो? क्या तुम समझती हो कि मैं अब भी द्यूतासक्त हूँ?"

अन्तमें द्रौपदीने इस शर्तपर साथ जाना स्वीकार किया कि युधिष्ठिर उसके कार्योंमें किसी प्रकारका हस्तक्षेप न करेंगे।

पाण्डवोंके चलनेका समय आ गया। देव-गन्धर्व-यक्ष-मरुत स्त्री-पुरुषोंने शंखघोष और पुष्पवर्षा-सहित उन्हें विदा किया।

—२—

हस्तिनापुर आकर पाण्डवोंने देखा, एक क़िलेके खण्डहरों को छोड़कर उनके आसमुद्र साम्राज्यकी स्मृति दिलानेवाली एक भी वस्तु नहीं बची है। उन्हें एक भी ईंट-प्रस्तर या काष्ठखंड ऐसा न मिला, जो परिचित हो। द्रौपदी-प्रसाधन-गृहमें अब बाटाके जूतोंकी दुकान थी। भीम-मल्ल-विद्यालयमें दहीबड़े बिक रहे थे। भीष्म-सरोवरमें शरणार्थियोंके शिविर खड़े थे। नये-नये मकान, लम्बी-चौड़ी काली सड़कें, ऊँची दुकानें, लोगोंकी अजीब पोशाकें, युवक-युवतियोंके निराले आमोद-प्रमोद, रथोंके स्थानमें वेगसे दौड़नेवाली रंग-बिरंगी मोटर-गाड़ियाँ, शोरगुल, दौड़-धूप। यह वह पुराना हस्तिनापुर ही नहीं रह गया था।

लम्बी यात्राके कारण पाण्डव थक गए थे। चार दिन चार रातसे खाना-पीना-सोना कुछ भी नहीं हुआ था। एक प्रशस्त, वृत्ताकार, दूर्वादल-हरित उद्यानको देखकर कृष्णाने आराम करनेकी इच्छा प्रकट की। उसके म्लान-मुखको देखकर पाँचों पतियोंसे न रहा गया और सब लोग एक सघन मौलश्रीकी छायामें बैठ गए। एक आदमीसे पूछनेपर विदित हुआ कि उस स्थानका नाम कनाट प्लेस है। युधिष्ठिर तो बैठते ही ध्यान-मग्न हो गए। भीम अपने रेशमी उत्तरीयसे कृष्णाको व्यजन करने लगे और अर्जुन शीतल जलकी तलाशमें चल दिए। सामने एक आदमी ठेलेपर हिम-शिलाएँ, कुछ रंग-बिरंगी बोतलें और काँचके गिलास लिए चला जा रहा था।

अर्जुनने उससे कहा—"भइया, थोड़ा-सा जल पिला दो।"

"बर्फका पानी चार पैसे गिलास और सोडा-लेमन छः आनेका है। बोलो, क्या दूँ?"—उसने पूछा।

"धन्य है कलिके प्रभावको!" अर्जुनने कहा—"जल भी बिकने लगा है!"

भीम होते, तो शायद ठेलेको हथेलीपर रखकर चल देते, मगर अर्जुन अपने शील और समझदारीके लिए सब भाइयोंमें प्रख्यात थे। अपरिचित जन-समूहमें लड़ाई-झगड़ेसे दूर रहने में ही उन्होंने श्रेय समझा और जलके लिए यमुनाको ओर चल दिए।

कनाट प्लेसमें इन पाँच नर-शार्दूलोंके साथ एक अनन्य सुन्दरीको देखकर बलात् सबका ध्यान आकृष्ट हो जाता था। इनका तेजस्वी रूप, सिंहकी-सी गति, धीरोदात्त व्यक्तित्व देख कर लोग समझ ही नहीं पा रहे थे कि ये कौन कहाँसे आ गए। उसके सुडौल बलिष्ठ शरीर, प्रदीप्त दृष्टि, प्रांशु बाहु, वृषस्कन्ध, ग्रीवावलम्बि-कुञ्चित केश, मणि-कुण्डल-युक्त कर्ण—इन सबकी अनुपम शोभा देखते ही बनती थी। इनके मध्यमें सुशोभित थी कृष्णा—विधाताकी आद्या-सृष्टिका रूप, सहस्रांशु-कर-विकच-कमल-सी आँखें, प्रवालारुण अधरोष्ठ, शिरीष-पुष्पोंसे अधिक सुकुमार बाहु, विद्रुमस्थ मुक्ताफल-सो स्मित, मृणालसूत्रान्तरहीन प्रवृद्ध पाण्डुर उरोज, शलाकाञ्जन-निर्मित भ्रू-चाप, लोध्र-पराग-रंजित मुख, लाक्षारागांकित चरण, मुक्ता-ग्रथित वेणी, मणि-खचित हेम-मेखला, स्वर्ण-वलय-युक्त प्रकोष्ठ, चूड़ामणि, ग्रैवेयक, ललन्तिका, कर्णवेष्टन और तरलसे दमकती हुई देह!

दूसरी ओर पार्कमें, फुटपाथोंपर दुबले-पतले, चश्माधारी, सिगरेट-दग्ध ओष्ठवाले बाबू अपनी रूज-पाउडरसे लिपी-पुती,

कटे-छटे केशोंवाली, स्थूलमध्या, उदराभिमुखपयोधरा बीवियोंके साथ घूम-फिर रहे थे। ये गृहलक्ष्मियाँ साड़ी-जम्पर और जवाहरातोंकी दुकानोंको लुब्ध दृष्टिसे देखती जाती थीं और कभी-कभी दुकानोंके अन्दर भी चली जाती थीं। जब उनकी दृष्टि पाँच पतियोंकी भार्या द्रौपदीपर पड़ती, तो कुटिल मुस्कान द्वारा मानो वे अपने आभिजात्य-कल्चरकी घोषणा करती थीं।

"आप कौन हैं ?" युधिष्ठिरने नेत्रोन्मीलन करते हुए विस्मित होकर सामने खड़े एक कोट-पैंटधारी बाबूसे पूछा।

"यह लीजिए मेरा कार्ड। खाकसारको पी० एस० शर्मा कहते हैं। मैं ए० पी० आई०का पत्र-प्रतिनिधि हूँ, मि० युधिष्ठिर! अपने पत्रके लिए आपसे स्टेटमेंट लेने आया हूँ। ठहरिए, पहले मैं आप लोगोंका एक फोटो ले लूँ।" पाण्डवोंके कुछ कह सकनेके पूर्व ही उसने केमरा निकालकर खटकाया और 'थैंक यू' कहकर गलेमें लटका लिया। "अच्छा, तो आप लोग वही पाँचों पाण्डव हैं, जो कभी इस नगरीके शासक रह चुके हैं ?"

"इस नगरीके ही नहीं, सम्पूर्ण भारतके सम्राट रह चुके हैं महाराज युधिष्ठिर। आपने महाभारत पढ़ा है ?"—अर्जुनने शर्मासे पूछा।

"अजी, पढ़ा है। महाभारत ही क्या, सभी भारत पढ़े हैं। हम पत्रकारोंको प्रत्येक विषयका अध्ययन करना होता है।" शर्माने कहा—"ठहरिए, मैं आपकी बात लिख लूँ।" वह तेज़ीसे लिखने लगा। "तो आप लोग फिरसे अपनी सम्पत्तिका 'क्लेम' करने आए हैं ? आपको अदालतमें 'प्रूव' करना पड़ेगा कि आप असली पाण्डव ब्रदर्स हैं—मिस्टर पाण्डुके लड़के और मि० धृतराष्ट्रके भतीजे। अकेले महाभारतसे काम नहीं चलेगा। कठिनाई यह है, मि० युधिष्ठिर, कि आप कई हज़ार वर्ष बाद आ रहे हैं। दूसरे लोगोंने आपकी ज़मीन और जायदाद हथिया ली हैं। वे आसानीसे उसे छोड़ेंगे नहीं। आजकल अदालत प्रत्येक बातके लिए प्रमाण माँगती है। आपके गवाहोंमें कोई बचा है नहीं। मैं तो आपको राय दूँगा कि यहाँके प्रमुख वकील मि० केवलराम शोभारामसे आप लोग मिलें।"

"आप किससे क्या कह रहे हैं ? भारतके चक्रवर्ती सम्राट महाराज युधिष्ठिर यहाँकी अदालतमें यह कहने जायँगे कि हमें हमारी सम्पत्ति दिलाई जाय! आपको ज्ञात है कि हमने अपने बाहुबलसे इस देशको जीता था। हमने भूरिश्रवा, चेदिराज, जयद्रथ, शकुनि, महारथी कर्ण, विकर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा-जैसे प्रबल पराक्रमी वीरोंका मान-मर्दन किया। मृत्युञ्जयी भीष्म, धनुर्वेदाचार्य द्रोण-जैसे अप्रतिम योद्धा हमसे पराजित हुए। स्वयं किरातवेशधारी देवादिदेव भी अर्जुनको समर-भूमिमें पराङ्मुख न कर सके। क्या हम न्यायालयमें दीनोंकी तरह याचना करें ? हुँः!"

भीमके हुंकारसे आँधी-सी उठी और शान्त हो गई।

शर्माने कहा—"मैं मानता हूँ, मि० भीम, कि यह आपकी 'प्रेस्टीज'का सवाल है, मगर मुझे तो और कोई रास्ता नहीं दिखाई देता। अब शारीरिक बल द्वारा अधिकार प्राप्त करना संभव नहीं रह गया है। जिस गाण्डीव धनुषने आपको अनेक बार युद्धोंमें विजयी बनाया था, वह भी आजके युगमें बाँसके एक टेढ़े-मेढ़े डंडेसे अधिक महत्वका नहीं रह गया। लुई और विकर्सकी बन्दूकोंके सामने धनुष और बाण अब पुराने हो चुके। हाँ, अगर आप लोग शब्द-वेधी बाण चलाना अभी तक न भूले हों, तो इनके प्रदर्शनसे आपको काफ़ी आर्थिक लाभ हो सकता है।"

गाण्डीवके अपमानसे अर्जुनकी भौंहें ईषत् कुंचित हो गईं। नासा-रन्ध्रोंसे आगकी लपटें निकलने लगीं। युधिष्ठिर सशंक हो उठे। उन्होंने शर्माको चुप रहनेका संकेत किया। कुरुक्षेत्रमें एक बार वे स्वयं भूल कर चुके थे। बड़े भाईका लिहाज़ छोड़कर तब अर्जुनने उनसे जो-कुछ कहा, युधिष्ठिर उसे भूले न थे।

"अच्छा, अब मैं चलता हूँ। फिर आऊँगा।" ए० पी० आई० का प्रतिनिधि उठा और सलाम करता हुआ चला गया। अर्जुनकी दृष्टि देख चुका था, अधिक रुकनेका उसे साहस न हुआ।

रात हो गई थी। लोगोंका आना-जाना कम हो गया था। पुलिसका सिपाही आकर बोला—"अब आप लोग यहाँसे उठिए। रातको पार्कमें रहनेकी इजाज़त नहीं है।"

भीम इस असभ्य व्यक्तिके गालपर एक झापड़ जड़नेवाले ही थे कि युधिष्ठिरके संकेतसे रुक गए। युधिष्ठिरको अपना वास्तविक परिचय देनेका साहस न हुआ। लोगोंके व्यवहारसे उनकी विरक्तिकी सीमा न रह गई थी। कोमल कण्ठसे वे बोले—"सिपाही भइया, हम लोग परदेशी हैं। यहाँका हाल नहीं जानते। कोई ऐसा स्थान बताओ, जहाँ हम रात-भर

रह सकें।"

"कहाँसे आ रहे हैं आप लोग?" सिपाहीका सन्देह जाग्रत हो उठा—"और आपके साथ ये बाईजी?"

"ये मेरी पत्नी कृष्णा हैं।"

"कृष्णा हम पाँचोंकी पत्नी हैं।"—भीम तड़ाकसे बोले। उनमें धैर्य और शीलका तो पूर्णरूपेण अभाव ही था। जब कोई भाई द्रौपदीको अपनी अकेलेकी पत्नी बतलाता, तब वे तावमें आ जाते थे।

सिपाही कठोर आवाज़में बोला—"देखिए मिस्टर, यह मज़ाक ठीक नहीं, वर्ना चौबीस घंटेके लिए तो मैं आपको कोतवालीमें रखवा ही दूँगा।"

युधिष्ठिर खिन्न होकर बोले—"वृकू, तुम तो जो मन आता है, कह देते हो। सिपाही भइया, यह लड़का है अभी। मज़ाककी आदत पड़ गई है। तुम कुछ खयाल न करना।"

पाण्डवोंने बहुत देर तक आश्रयकी तलाश की। कोई भी होटलवाला अलौकिक-से दीखनेवाले इन स्त्री-पुरुषोंको आश्रय देनेको राज़ी न होता था। सभी तरह-तरहका सन्देह करते थे। बड़ी रातको द्रौपदीके दो स्वर्ण-वलय जमानत रखनेपर एक साधारण होटलमें सबसे ऊपरका एक कमरा उन्हें मिल गया।

—३—

प्रातःकाल ही मि० शर्मा अपने एक साथीको लेकर होटल में आ पहुँचे। साथीकी आँखोंपर सुनहरी फ्रेमका चश्मा था। गौरवर्ण चेहरा था, तोतेकी-सी नाक थी, भौंहें धनुषाकार, अधरोंमें पाइप, सफेद पैंट-कमीज़ और हवामें लहराती हुई रेशमी टाई।

'हलो, मि० अर्जुन!" कहते हुए शर्माने मध्यम पाण्डवसे हाथ मिलाया। शर्माके आगमनका समाचार सुनकर दूसरे भाई भी आ गए। इस अपरिचित महानगरीमें बन्धु कहो, मित्र कहो, एकमात्र वही था। उसी समय स्नान-गृहसे द्रौपदी बाहर निकली। उसका सद्यःस्नात सौन्दर्य जलधिसे निकलते हुए सूर्यकी स्वर्णिमाभा-सा दमक रहा था। शर्मा और उसका साथी अपलक होकर कुछ क्षणके लिए उसीको घूरते रहे। फिर शर्माने सँभलकर अपने साथीका परिचय कराया—"आप हैं मिस्टर टसलावाला, 'नई दुनिया' मूवीटोनके अध्यक्ष और प्रोप्राइटर। सिनेमा-व्यवसायमें आप चोटीके आदमी हैं। अखबारोंमें मिसेज़ कृष्णाके चित्र देखकर आप तत्काल ही मेरे साथ चले आए। आपने अखबार देखा नहीं। ये लीजिए, दो अखबार तो मेरी जेबमें ही पड़े हैं।"

जेबसे समाचारपत्र निकालकर शर्माने पाण्डवोंके सामने फैला दिए। दोनोंमें मुखपृष्ठपर द्रौपदीके बड़े-बड़े चित्र थे। दूसरे पृष्ठोंपर पाँचों भाइयोंके चित्र भी थे। आश्चर्यसे पाण्डव उन चित्रोंको देखने लगे।

शर्माने कुछ देर बाद कहा—"कल तक आप लोग देखिएगा, हिन्दुस्तानके सभी पत्रोंमें आप लोगोंके आगमनके समाचार और चित्र होंगे। आज हवाई-जहाज़से ये चित्र बम्बई, मद्रास वगैरह बड़े-बड़े शहरोंमें पहुँच चुके हैं। मैं आप लोगोंकी सहायता करना चाहता हूँ, मि० युधिष्ठिर! जब तक भारत-सरकार आप लोगोंके 'क्लेम्स' (दावों) पर कोई फ़ैसला नहीं दे देती, मैं तो राय दूँगा कि कृष्णाजी सिनेमा-संसारमें कुछ दिन काम करने लगें। इससे आप लोगोंकी बहुत-सी कठिनाइयाँ सहज ही दूर हो जायँगी। एक बड़ी सहूलियत आपको यह होगी कि 'हायर सर्कल्स'में आप आसानीसे प्रवेश कर पायँगे। राज्यके बड़े-बड़े पदाधिकारी, सचिव, मंत्रिगण संगीत और नृत्यके प्रशंसक हैं। अनेक मंत्रियोंको तो संगीतका खासा चस्का लगा हुआ है। मिसेज़ कृष्णाके स्टेजपर उतरते ही फिल्मी जगतमें क्रान्ति मच जायगी। क्यों, मिस्टर टसलावाला?"

"ओ यस, मोस्ट पोज़िटिवली," टसलावालाने दाँतोंसे पाइप दबाए हुए निहायत अजीबो-गरीब अदाके साथ कहा—"शी इज़ एन एमैच्योर।"

भीमसेनके अधर-स्फुरणसे कुछ सहमकर शर्माने कहा—"आप क्रोध न करें, मिस्टर सेन! आप आजकलके एटीकेटसे परिचित नहीं हैं। आजके समाजमें स्त्रीका क्या स्थान है, उसे आप बिल्कुल ही नहीं जानते। भारत-सरकार आपके मामलेमें न-मालूम कितना विलम्ब करे। 'डेमोक्रेसी'का सबसे बड़ा दोष है 'रेड-टेपिज़्म', उसका दीर्घसूत्री स्वभाव।"

शान्तप्रकृति युधिष्ठिर शर्माके इन विवेकपूर्ण वचनोंसे बहुत ही प्रभावित हुए। टसलावालाने दो-एक दाँत दिखाते हुए कहा—"मैं आपको ब्लैंक चेक देनेको तैयार हूँ, मिसेज़ कृष्णा! आप जो चाहें, वेतन भर सकती हैं।"

भीमसेनके सिंह-गर्जनसे आधी दिल्ली काँप उठी। लोगोंको भय हुआ कि कहीं सरकसका शेर छूट गया है। भीम बोले—"मूर्ख, नराधम, राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंके यष्टा, अप्रतिम

योद्धा पाण्डवोंकी वीर भार्या भरण्यभुक् बनकर जीवन-अर्जन करेगी ?"

युधिष्ठिर बोले—"शान्त, वृक्कू शान्त ! द्रौपदीको अपना मत व्यक्त करने दो।"

द्रौपदीने तो बहुत पहले ही अपना निश्चय कर लिया था। वर्षों तक छायाकी तरह पतियोंका अनुसरणकर मन, वचन और कायासे पातिव्रत धर्मका पालन करनेपर भी उसने देख लिया कि न तो उसे मुक्ति ही मिली, न अक्षय स्वर्गकी ही प्राप्ति हुई। फिर भी स्पष्ट शब्दोंमें कुछ कह सकनेका साहस करते ही उसके कपोल सहज लज्जासे अरुण हो उठे। सहस्रों वर्षोंके संस्कारोंकी जो गहरी रेखा मानसपर अंकित हो चुकी थी, उसे मिटाना आसान न था। कुछ देर मौन रहनेके उपरान्त धीमी आवाज़में उसने कहा—"अगर आपकी आज्ञा हो, तो···"

"तुम सर्वथा स्वतंत्र हो, कृष्णे!"—युधिष्ठिर बोले।

"तो आप मेरे 'आफ़र'को स्वीकार करती हैं ?"—टसलावालाका दिल बाँसों उछल रहा था।

कृष्णाकी मौन स्वीकृतिपर भीमसेनने पूरा ज़ोर लगाकर हृदयसे बाहर निकलता हुआ 'हुंकार' किसी प्रकार रोक लिया।

कृष्णाका हाथ पकड़कर टसलावाला अपनी कारमें जा बैठा।

"मैं फिर आऊँगा।" कहते हुए शर्माने भी उनका अनुसरण किया।

"क्या कृष्णाको अकेले भेजना उचित हुआ, महाराज ? मेरा दिल आशंकासे भर रहा है।"—अर्जुन बोले।

युधिष्ठिर नीचे बाज़ारमें दो बनियोंकी गाली-गलौज सुननेमें दत्तचित्त थे।

—४—

केवलराम शोभाराम सालिसिटर्सके विशाल भवनमें बैठे हुए पाँचों भाई चाय पी रहे थे। चायके बाद स्वर्गलोक-मर्त्यलोककी अनेक गप्पें होने लगीं। वकील होनेके कारण केवलराम इतने अधिकारपूर्ण स्वरमें बात कर रहे थे, मानो सभी कुछ उनका देखा-सुना हो, सभी लोग उनके परिचित हों। 'हलो-हलो' फोनकी घंटी बजी। "मैं गृह-सचिवके कार्यालयसे बोल रहा हूँ। आप ?"

"मैं केवलराम शोभाराम फर्मका सीनियर पार्टनर हूँ।"

"पाण्डवा ब्रदर्सकी अर्ज़ी हमें मिल गई है। क्या आप सन्तुष्ट हैं कि ये लोग असली वही महाभारतवाले पाण्डवा हैं ?"

"इसमें कोई सन्देह नहीं है।"

"तो आप उनसे कहिए कि अपनी मालगुजारीके आंकड़े पेश करें। उनको 'प्रिवी पर्स' मिल सकती है। जहाँ तक प्रिन्सेसकी सम्पत्तिका प्रश्न है, उसका फ़ैसला एक समिति करेगी। अधिकारोंका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। तोपोंकी सलामीका प्रश्न सन्तोषजनक रीतिसे हल हो जायगा। अच्छा तो..." फोनकी घंटी फिर बज गई।

शर्माने कहा—"मैं तो पहलेसे जानता था। आजकल जो-कुछ भी मिल जाय, दबा लेना चाहिए, मि० युधिष्ठिर, और बाक़ीके लिए लड़ाई जारी रखनी चाहिए।"

केवलरामकी बड़ी रोलसमें बैठकर सब लोग कुतुबमीनार देखने गए। मोटर सत्तर-अस्सी मीलकी गतिसे भागने लगी। मीनार देखकर सभी भाई प्रसन्न हुए।

"आह, अगर कृष्णा भी साथ होती!"—भीमके मुँहसे गहरा निःश्वास निकल गया।

"अजी, चिन्ता मत करो। टसलावाला सब दिखा देगा।"

युधिष्ठिरने पूछा—"किस लिए और किसने बनाया है यह मीनार ?"

"अल्तमश नामके एक सुल्तानने। एक हज़ार वर्षके लगभग हो चुके हैं।"

युधिष्ठिर बोले—"देखो भीम, मामूली आदमी भी ऐसे काम कर गए हैं कि आज तक उनकी स्मृति बची है। अबकी बार हमें भी एक मीनार, जो इससे ऊँचा हो, बनवाना चाहिए।"

"जो आज्ञा, महाराज!"—भीमने कहा।

"मगर आपको इसकी इजाज़त नहीं मिलेगी।" शर्माने सिर हिलाते हुए बतलाया—"आपको सीमेंट वग़ैरह नहीं मिल सकता। सरकारके सामने शरणार्थियोंके लिए भवन बनानेका सवाल सबसे अहम है। चोरबाज़ारसे आप सीमेंट खरीदेंगे, तो दिवाला निकल जायगा।"

तीसरे दिन पाण्डव लोग दिल्लीके प्रमुख उद्योगपति सेठ झाबरमलके यहाँ चाय पीकर बैठे ही थे कि सैकड़ोंकी संख्यामें कालेजके छात्र-छात्राओं, पत्रकारों तथा खिलाड़ियोंने उन्हें घेर लिया। सब 'इन्टरव्यू' चाहते थे। शर्माकी सलाह मानकर पाण्डवोंने प्रशंसक भीड़को दर्शन दिया। कितने ही कैमरा खड़क उठे और प्रश्नोंकी बौछार शुरु हुई :

क्या आप लोग गवर्नर-जनरलसे मिल चुके हैं ?

कृष्णाजीको देखना चाहते हैं हम।
हमें आपका 'आटोग्राफ़' चाहिए।
आप लोग क्या 'साउथ इंडिया'का भी टूर करेंगे ?
कुरुक्षेत्रकी लड़ाईका कुछ हाल बताइए।
क्या कृष्णाजी कथकली-नृत्य जानती हैं ?
चीनमें कम्युनिस्टोंकी विजयका भारतपर क्या असर पड़ेगा ?
भारतको कामनवेल्थमें रहना चाहिए या नहीं ?
कश्मीर किस पक्षमें अपना निर्णय देगा ?
रूसके साथ युद्ध होगा कि नहीं ?
क्या मिसेज कृष्णा आल इंडिया वीमेन्स कान्फ्रेन्सकी सभानेतृ बनना स्वीकार करेंगी ?
क्या नेहरू-सरकारकी औद्योगिक नीति ठीक है ?
क्या आप लोग यूरोप और अमरीका भी जायँगे ?
कृष्णाजी आपमें सबसे अधिक किसे चाहती हैं ?

अधिकांश प्रश्नोंके उत्तरमें युधिष्ठिरने यह कहकर छुटकारा पा लिया कि हम लोग वस्तुस्थितिका अध्ययन कर रहे हैं, सहसा कोई मत प्रकट करना उचित नहीं समझते। इस समय तो हम धर्म-संस्थापनके उद्देश्यको सामने रखकर कार्य करेंगे। कलियुगके प्रारम्भमें ही अनाचारों और दुराचारोंकी वृद्धि देख कर धर्मराज क्षुब्ध और चिन्तित हो उठे हैं। आज समय न होने से हम अधिक देर तक बातचीत नहीं कर सकते। विवशताके लिए क्षमा चाहते हैं।

एक महाशयने कहा—"क्या आर० एस० एस०से आपका कोई सम्बन्ध है ? धर्म-संस्थापनकी बातसे तरह-तरहके सन्देह उठ सकते हैं।"

शर्माने युद्धिष्ठिरके कानमें कुछ कहा।

महाराज बोले—"आप सभी महानुभाव अच्छी प्रकार जान लें कि आर० एस० एस० से हमारा कोई भी सम्बन्ध नहीं है। मैं ज़ोर देकर इस कथनको दुहराता हूँ।"

शर्माने कहा—"आज सन्ध्याको चित्रामें कृष्णाका अभिनय और नृत्य है। क्या आप लोग चलेंगे ?"

"अवश्य। अभी चलें ?"—सहदेव बोले।

सबने चौंककर सहदेवकी ओर देखा। वे पीछे कोनेमें दुबके बैठे थे। आज जीवनमें पहली बार उन्होंने कृष्णाके सम्बन्धमें ऐसी आतुरता दिखाई थी। यद्यपि पाँचों भाई द्रौपदी के पति थे, किन्तु भीम और अर्जुनने उसपर कुछ ऐसा अधिकार जमा रखा था कि सहदेव पति होते हुए भी ऐसे लगते थे, मानो द्रौपदीके पुत्र हों।

सेठ झाबरमलजीने अपनी कार और एक कोठी पाण्डवोंके रहनेके लिए दे रखी थी। कारमें बैठकर सब लोग टसलावालाके स्टूडियोकी ओर चले। बाहर लोहेके फाटकपर एक बन्दूकधारी दरबान बैठा था।

भीमने गाड़ीसे उतरकर कहा—"अन्दर जाकर कृष्णाको सूचित कर दो कि भीमसेन मिलने आए हैं।"

सिपाही प्रत्युत्तरमें खिलखिलाकर हँस पड़ा।

क्रुद्ध वृकोदर बोले—"सुना नहीं तुमने क्या ?"

"अजी साहब, मैं बहरा नहीं हूँ। भइया, क्यों कृष्णाबाई को दिल दे बैठे हो ? जाकर कहीं कुश्ती लड़ो। कृष्णाबाईके लिए बड़े-बड़े रईसों और वज़ीरोंकी मोटरें आ-आकर लौट गई हैं। अभी तक दस हज़ार स्कूली लौंडे आ चुके हैं। सभी एक नज़र देखना-भर चाहते हैं, मगर..." वाक्य अधूरा ही रखकर पहरेदारने बाएँ हाथका अँगूठा हिलाया, जिसका जो-कुछ भी अर्थ होता हो, भीम समझ न सके। अपमानित और लज्जित होकर मुँह लटकाए हुए वे अपनी कारमें आकर बैठ गए।

रातको केवल सहदेव ही जाकर कृष्णाका अभिनय देख पाए; क्योंकि टसलावालाने एक ही फ्री-पास भेजा था। टिकट कभीके बिक चुके थे। शर्मा-जैसा प्रत्युत्पन्नमति व्यक्ति भी उस रोज़ टिकट न मिलनेसे चित्राके फाटकसे टसलावालाको गाली देता हुआ लौट आया। दूसरे दिन सुबह सभी भाइयोंने अखबारमें पढ़ा, कृष्णा अगले सोमवारको हवाई-जहाज़से दक्षिण-भारतकी यात्रापर जानेवाली हैं।

—५—

एक दिन सभी भाई महाराज युधिष्ठिरके समक्ष आकर उदास स्वरमें बोले—"महाराज, अब लौट चलें। बहुत दिन हो गए। कृष्णाके बग़ैर जीवन सूना-सूना और नीरस लगता है। एक दिन दो मुहूर्त्तको आई थी, उसी समय टसलावालाका आदमी उसे बुला ले गया।"

युधिष्ठिर बोले—"मैं भी यही चिन्ता कर रहा था। यहाँ रहकर केवल काल-यापन हो रहा है। कोई कुछ सुनता ही नहीं। धर्म-कर्मकी ओर किसीका ध्यान ही नहीं है। मनुष्य-जाति तीव्र गतिसे विनाश-पथपर दौड़ रही है। उसकी रक्षा संभव नहीं है।"

शर्माने राय दी—"कल सार्वजनिक सभामें भाषण देनेके

बाद आप लोग जायँ। नहीं तो धर्मराज शायद उल्टे-सीधे सवाल करने लगेंगे।"

दूसरे दिन संध्या-समय सभास्थलमें काफ़ी भीड़ थी। हज़ारों की संख्यामें औरतें उपस्थित थीं। कुछ मर्द भी थे। धर्म-सम्बन्धी सभा होनेके कारण प्रमुख राजनीतिक दलोंके लोगोंकी उसमें दिलचस्पी न थी। आर० एस० एस० वालोंने युधिष्ठिरकी आड़में कांग्रेसके विरुद्ध विष-वमन करनेका अच्छा अवसर देखा। वैसे तो उन्हें आम सभामें बोलनेका साहस न होता था। आर० एस० एस०के एक सदस्यने स्वयंभू मंत्रीके रूपमें स्वागत-भाषण के उपरान्त दो-चार शब्दोंमें पाण्डवोंकी धर्मनिष्ठाकी प्रशंसा करके जो साम्प्रदायिक नीतिका प्रतिपादन करना शुरू किया कि शर्मा घबराकर बगलें झाँकने लगा। भोले-भाले पाण्डव मौन होकर सुनते रहे। कुछ देर बाद ही पुलिसका एक उच्च कर्मचारी सदलबल आ पहुँचा। स्त्रियाँ उठ-उठकर घरोंको जाने लगीं। प्रमुख व्यक्ति मोटरमें भरकर थानेपर ले जाए गए।

शर्मा समझ रहा था। महाराज युधिष्ठिर और दूसरे भाइयोंका आर० एस० एस०से किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं है। उन्हें दिल्लीकी राजनीतिका रत्ती-भर भी हाल नहीं मालूम। मगर पुलिस-अफ़सरका सन्देह दूर नहीं हो रहा था।

इसी समय कृष्णा कारसे उतरकर थानेके अन्दर आई। ससम्भ्रम पुलिस-अफ़सर उठ खड़ा हुआ और उसे अपनी कुर्सी पर बिठाया।

"आपको भ्रम हुआ है, मि० सोख्ता! पाण्डव लोग किसी भी राजनीतिक दलसे सम्बन्धित नहीं हैं।"

"जब आप कहती हैं, तो मैं उन्हें अभी मुक्त किए देता हूँ।"—सोख्ता साहब बोले।

उसी समय पाँचों भाई मुक्त होकर बाहरके कमरेमें आए। सब मौन और अत्यन्त खिन्न थे। बहुत देर बाद उन्होंने कृष्णाको पहचान पाया। उसका रूप ही बदल गया था, मानो यह उनकी कृष्णा ही न हो। आँखोंमें गहरे काले रंगका चश्मा, बाल कटे-छँटे, पाँवोंमें ऊँची एड़ीके जूते और हाथमें सोनेकी छोटी घड़ी बँधी थी।

"अरे, कृष्णा! तुम यहाँ!" इसके अतिरिक्त युधिष्ठिर एक शब्द भी न बोल सके।

कृष्णाने कहा—"ये सब बातें बादमें होंगी, पूडी डार्लिंग! मैं किसी प्रकार दो मिनट निकालकर यहाँ आ पाई हूँ। अब आप लोग शीघ्र लौट जायँ। आप लोगोंके इस प्रकार थानेमें बन्द होते रहनेपर मेरी क्या खाक इज्ज़त रह जायगी दिल्लीमें? अच्छा, मैं चली। साढ़े आठपर डिनर है। टा-टा!"

कृष्णाकी कार वेगसे दौड़ती हुई दृष्टिसे ओझल हो गई। पाण्डव-बन्धु असीम शक्तिशाली भीमसेनकी पीठपर बैठ गए और पवन-तनय भी अन्तरिक्ष-मण्डलको प्रकम्पित करते हुए विद्युत्-वेगसे उड़े और देखते-देखते आकाशकी नीलिमामें विलीन हो गए!

मुझसे तुम कैसे कह सकते?

श्री नेमनारायण, एम० ए०

मुझसे तुम कैसे कह सकते?
गीतोंका मन्दिर बनवाया, उसमें मेरा दर्शन करते;
भावोंकी धारामें पड़ तुम मेरी ओर बहा करते।
शब्दोंका मेला खड़ा किया, उसमें मुझको खोजा करते;
छन्दोंका बना आवरण तुम सन्देश मुझे भेजा करते।
क्या इसीलिए तुम कवि बनकर कविताके चरण लिखा करते?
तिर्यक् रेखाओंमें उभार जब मनके भावोंको भरते;
तब जो-कुछ चित्रित करना था, उसको तो सहज भुला देते।

कल्पना-लोककी प्रेयसिका आकर्षक चित्र बना देते;
पहचाने जानेके भयसे गहरे रंगोंसे ढँक देते!
क्या इसीलिए तुम चित्रकार चित्रोंमें रंग भरा करते?
अपनी आँखोंकी नीरवता प्रतिमाकी आँखोंमें भरते;
निज मुखपर छाई करुणासे प्रतिमाका मुख धूमिल करते।
प्रतिरूप बना अपना उसको प्राणोंसे प्राण सँजो देते;
प्रश्नोंका उत्तर मिले-मिले तब तक तुम चूम लिया करते।
क्या इसीलिए तुम शिल्पकार प्रतिमाको प्राण दिया करते?

सच्चा स्वराज्य चाहिए

पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

देशमें स्वराज्य तो हो गया, पर स्वराज्यसे जो सुख होना चाहिए, वह नहीं हुआ। इसलिए बहुतसे विचारवान लोगोंकी समझ है कि सच्चा स्वराज्य अभी नहीं हुआ। और बात भी ठीक है। स्वराज्यका अर्थ है प्रजा-राज्य, पर प्रजाका राज्य नहीं हुआ। उसकी जो दुर्गति पहले थी, उसमें बढ़ती चाहे भले ही हो गई हो, कमी नहीं हुई। इसका कारण क्या है? पुराने लोग कर्मफल वा ग्रहदशाका चक्र उत्तर दे सकते हैं; पर असाम्प्रदायिक राज्यमें ऐसे हेतु सामने नहीं लाए जा सकते और लाए भी जायँ, तो उन्हें कौन मानेगा?

अंगरेज़ी राज्यका काम था देशमें शान्ति रखना और उसपर किसी देशका आक्रमण न होने देना। इसके लिए वह पुलिस और सेना रखता था और इनपर बहुत अधिक धन व्यय करता था। अवश्य ही कुएँकी माटी कुएँमें हो लग जाती थी। कहीं बाहरसे रकम नहीं आती थी। हां, जब कभी रेल आदि बनानेका प्रयोजन होता था, तब विदेशी रक़म आती थी और उसपर हमें व्याजकी गरांटी करनी पड़ती थी और इस प्रकार हमारे देशमें विदेशियोंकी सत्ता दृढ़ की जाती थी। शिक्षा, स्वास्थ्य आदिपर अंगरेज़ सरकार बहुत कम खर्च करती थी। शिक्षा-संस्थाएँ और अस्पताल आदर्श-रूपसे स्थापित किए जाते थे। इसका फल यह हुआ कि हमारे देशमें निरक्षरताने डेरा डाल दिया। आज भी सौ भारतवासियोंमें कम-से-कम ८५ निरक्षर ही हैं। यक्ष्मा, प्लेग, हैजा, चेचक, मलेरिया ही नहीं, कालाजार, गर्दनतोड़ आदि अनेक रोगोंका यह अखाड़ा हो रहा है।

पौष्टिक भोजन, जिसके अभावसे मनुष्य दुर्बल हो जाता और रोगोंसे लड़नेकी शक्ति खो बैठता है, बहुत दिनोंसे कठिनाईसे मिलता था और अब तो साधारण भोजनके भी लाले पड़ रहे हैं। इससे मनुष्यकी जीवनीशक्ति, जो पहले ही कम थी, और भी कम हो गई है। ब्रिटिश सरकार विदेशोंसे अन्न मँगानेमें जितना खर्च करती थी, उससे कहीं अधिक स्वदेशी सरकार खर्च कर रही है; क्योंकि खाने-भरको अन्न ही नहीं मिलता। वस्त्र भी पहननेको नहीं मिलता। यदि इस देशके लोगोंको नंगे रहनेका अभ्यास न होता, तो शायद लोगोंके लँगोटी लगानेकी नौबत आ जाती। जीवनोपयोगी पदार्थोंकी महँगी जैसी बढ़ी है, उसके देखते लोगोंकी आमदनी घटी है। जो माल बेचते हैं, चाहे किसान हों या दुकानदार, उन्होंने अपने दाम बढ़ा लिए हैं। जो अपनी मजूरी बेचते हैं, अर्थात् जो दूसरोंका काम करके रोटी कमाते हैं, उनकी मजूरीका दाम भी बढ़ गया है। परन्तु मध्यम-श्रेणीके लोगोंकी, जो नौकरी-पेशा हैं, कठिनाइयोंका पारावार नहीं है; क्योंकि उनके वेतन चीज़ोंकी महँगीके देखते बढ़े नहीं, और ये ही इस स्वराज्यमें सबसे अधिक कष्ट पाते हैं और दुखी हैं।

दूध जो तीन-चार आने सेर किसी समय कलकत्तेमें बिकता था, वह दस-बारह आने सेर लखनऊमें बिक रहा है। कलकत्ते में तो डेढ़ रुपए सेर हो गया है। छः आने सेरके सरसोंके तेल का दाम आजकल दो रुपए और कहीं-कहीं इससे भी अधिक है। जलानेकी लकड़ी जो रुपएमें दो मन मिलती थी, अब ढाई-तीन रुपए मन हो रही है। जितनेमें धोतीकी एक पुड़िया (१० जोड़े धोतियाँ) आती थी, उतनेमें एक जोड़ा धोतीका मिलने लग गया। एक रुपएका गेहूँ कोई एक आदमी लेकर नहीं चल सकता था, उसे छोटे-से गमछेमें बाँधकर ले आता है। घी तो दुर्लभ नहीं, अलभ्य हो गया। १८९८ के अकाल में ढाई सेरका घी बिका था, पर इस अकालमें ढाई छटाँकका भी विशुद्ध घी मिल सकेगा, इसमें सन्देह है। इस अवस्थामें स्वराज्यसे कौन प्रसन्न हो सकता है? हां, करोड़ों और लाखों रुपए जिन्होंने कमाए हैं, वे तो इस स्वराज्यकी बलि-बलि जायँगे, अथवा जो कल जूतियाँ सटकाते घूमते थे और आज संयोगसे उच्चासनपर पहुँच गए हैं, उन्हींका यह स्वराज्य है।

जन-साधारणको अन्न-वस्त्र चाहिए, पर वह वर्तमान स्वराज्य नहीं दे सकता। वह दे सकता है बड़ी-बड़ी स्कीमें, जिनमें करोड़ों-अरबोंका खर्च है। पर सरकारके पास रुपए नहीं हैं। इसलिए जब तक किसीसे रुपए उधार न लिए जायँ, तब तक ये स्कीमें कागज़पर ही रह जायँगी। और उधार कौन दे? वही, जिसके पास रुपया हो। उद्योगपति कहते हैं कि हम तो

रुपया उधार देते नहीं, लेते हैं। किससे लेते हैं? जो अपने रुपएसे कुछ कमाना चाहते हैं। सभी उद्योगपतियोंको रुपए नहीं मिलते। बाज़ारमें जो अच्छे और सफल कारोबारी समझे जाते हैं, वे जब कोई कम्पनी खड़ी करते हैं, तब उनके नाम पर, उनकी व्यापार-बुद्धि और कार्यकुशलतापर, विश्वास करके लोग रुपए देते हैं। यह दूसरी बात है कि उनकी कोई स्कीम फेल हो जाय या वे कुछ गड़बड़ी करें। परन्तु राष्ट्रीयकरणके नामसे उद्योगपति घबराते हैं। सोचते हैं कि हम तो अपने खून-पसीनेको एक करके उद्योग खड़ा करेंगे और जब वह चमकनेपर आवेगा, तब सरकारकी राष्ट्रीयकरण-नीति लागू हो जायगी। इस प्रकार अन्धेके रस्सी बँटने और बकरेके चबाने की कहावत चरितार्थ होगी।

ऐसी अवस्थामें देशके बाहरसे पूँजी मँगानेका विचार सरकार कर रही है। संसारमें इंगलैंड नामी साहूकार था, परन्तु दूसरे महासमरके बाद उसे आप दूसरोंके सामने हाथ पसारना पड़ा और आज भी उसकी अवस्था ऐसी नहीं है कि अपने खज़ानेसे किसीको कुछ उधार दे सके, क्योंकि वहाँ आप चूहे दण्ड पेल रहे हैं। इसलिए इंगलैंड यदि हमारी कुछ सहायता कर सकता है, तो इतनी ही कि अपने सेठसे हमारी सिफारिश कर दे। पर सेठ-साहूकार ऐसे मामलोंमें किसी सिफारिशपर काम नहीं करते। जब करते हैं, तब अपने मनसे और अपने ढंगसे। वर्ल्ड बैंकका प्रतिनिधि-मण्डल यहाँ आया था। उसने यहाँकी अर्थ-व्यवस्था देखी, तो उसे नशेबन्दीकी सरकारी स्कीम नापसन्द हुई और उसने यह विचार भी प्रकट किया कि उन्हें रुपया उधार क्या दिया जाय, जो अपनी सनकमें करोड़ रुपएकी आमदनी बर्बाद कर देते हैं। और भी सुननेमें आया है कि उसने दामोदर-घाटी-स्कीमको भी दोषपूर्ण बताया है।

यदि ये बातें ठीक हों, तो मानना पड़ेगा कि जगत्सेठ अमरीकासे रुपए उधार लेनेके लिए हमें उसकी शर्तें माननी पड़ेंगी। इसमें सन्देह नहीं कि कोई साहूकार जब अपनी रकम की वसूलीके रंग-ढंग देख लेगा, तभी उधार देगा। वह व्यर्थ अपनी रकम क्यों फँसा देगा? इसलिए हम ऋणदाताको दोषी नहीं ठहराते। पर बात यह है कि हमें अपनी नीति ऋणदाता की नीतिके अनुसार बदलनी पड़ेगी। 'रहिमन ते नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं। तिन ते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं॥' हमें नशेबन्दीका अन्त करना पड़ेगा और अपनी स्कीमें अमरीकासे पास कराके चलानी पड़ेंगी, यदि हमें अमरीका से उधार लेना होगा। यह डालर-इम्पीरियलिज़्म (साम्राज्यवाद) का एक रूप है। जिसको अमरीकाका रुपया लेना होगा, वह हज़ार बार झख मारकर उसकी शर्तें मानेगा।

लड़कपनमें रसायनशास्त्रका यह सिद्धान्त पढ़ा था—'हम न कोई चीज़ पैदा कर सकते हैं और न नष्ट कर सकते हैं, पर उसका रूप बदल सकते हैं।' वही बात भारत-शासनके विषयमें कही जा सकती है। पहले इसका रूप गोरा था, पर अब साँवला हो गया है। गोरी जातिके उच्चाधिकारी जो पहले थे, उनकी जगह साँवले अधिकारी बैठ-भर गए हैं; पर शासन उसी गतिसे चल रहा है। भाषण करना हमारे उच्चाधिकारियों का काम है और शासन-शकट वही हाँकते हैं, जो पहले हाँका करते थे। वही पुरानी शराब नई बोतलोंमें ढाल दी गई है। १९०५ के बंग-भंगके आन्दोलनके समय कहा जाता था कि भारतवासी गोरी नौकरशाहीके बदले काली नौकरशाही स्थापित करना चाहते हैं। सचमुच हमारी इच्छा ऐसी नहीं थी, पर हुआ यही। इतना ही नहीं, पहले जो स्थायी कर्मचारी अपना उत्तरदायित्व समझकर काम करते थे, अब वह बात उनमें भी नहीं-सी रह गई है। शासकका स्तर ऊँचा होनेके बदले नीचा हो गया है।

छोटे कर्मचारियोंमें घूसखोरी और बेईमानी बहुत पहलेसे चली आती है; पर पहले इसका बाज़ार इतना गर्म नहीं था, जितना आज है। इसलिए आज चोरबाज़ारी और घूसखोरीकी निन्दा चाहे जितनी की जाती हो, उनमें कमीके बदले बढ़ती ही हुई है। इसका कारण यह है कि महासमरके फलस्वरूप लोगोंका जैसा नैतिक पतन आज हुआ है, वैसा पहले कभी नहीं हुआ था। गोरे उच्चाधिकारियोंमें कोई बेईमान या घूस-खोर नहीं होता था, यह बात नहीं है; पर उनमें इक्का-दुक्का ही ऐसा निकलता था। परन्तु आजकल सिफारिशी टट्टू अधिक होते हैं। भाई-बिरादरीके लोग, नातेदार, यार-दोस्त जहाँ तक मिलते हैं, भर्ती कर लिए जाते हैं। जैसे कांग्रेसमें हर तरहके लोग पहुँच गए, वैसे ही कांग्रेस-सरकारके कर्मचारियोंमें भी उन्हींकी भीड़ लग गई है। योग्यता और ईमानदारीका मान घट गया है। इसलिए शासनमें वह उज्ज्वलता नहीं रही, जो अंगरेज़ी अमलदारीमें थी।

अंगरेज़ी अमलदारीकी प्रशंसा करनेके लिए ये पंक्तियाँ नहीं

लिखी गई हैं। हमारा अभिप्राय यह दिखाना है कि हमारा स्तर जितना ऊँचा होना चाहिए, नहीं है। अधिकार-प्राप्तिकी होड़-सी मंत्रियोंमें जब लगी है, तब इतर लोगोंकी क्या कही जाय? मद्रासके प्रधान-मंत्री-पदके लिए कांग्रेस-हाईकमांड चाहता था कि राजाजीको दिया जाय। उसके विरुद्ध श्री प्रकाशम् को मद्रासियोंने चुना। यह तमिल लोगोंको अच्छा न लगा कि आन्ध्र प्रधान-मंत्री हो, इसलिए खिचड़ी पकाई गई और रामस्वामी रेड्डियार प्रधान-मंत्री बनाए गए। इनके विरुद्ध फिर खिचड़ी पकी, तो उन्हें हटना पड़ा और कुमारस्वामी राजा प्रधान-मंत्री हो गए। फ्रान्सके प्रधान-मंत्रित्वकी तरह मद्रास भी नाम पैदा कर रहा है। पर मद्रासके अनुयायी भी हैं, जिनमें पहला नाम पश्चिम-बंगालका समझना चाहिए। जिस समय वहाँ अव्यवस्था थी, लोगोंके जानोमालको खतरा था, उस समय डा० प्रफुल्लचन्द्र घोषने मंत्रिमण्डल बनाया और शान्ति स्थापित की। आज भी लोग प्रफुल्ल बाबूकी प्रशंसा करते हैं। पर धनिक-वर्ग उनसे प्रसन्न न था, इसलिए कुछ भीतरी कार्रवाइयाँ हुईं, जिनका रहस्य प्रकट नहीं हुआ। डा० घोषको प्रधान-मंत्रित्वसे हटना पड़ा और डा० विधान राय राइटर्स बिल्डिंगमें शोभायमान हुए। डा० घोष गांधी-मार्गी कांग्रेसमैन थे, पर डा० राय गांधीजीके डाक्टर थे। इसके सिवा इस परिवर्तनका कारण किसीको मालूम नहीं हुआ।

मद्रासका दूसरा अनुयायी पूर्वी पंजाब है, जिसने डा० गोपीचन्द भार्गवको हटाकर श्री भीमसेन सच्चरको प्रधान-मंत्री बनाया है। किस दोषके लिए डा० भार्गव अयोग्य और श्री सच्चर किस गुणके कारण योग्य समझे गए, इसका पता किसे है? वास्तवमें कांग्रेसके अन्दर पार्टियाँ हैं और वे उखाड़-पछाड़में लगी रहती हैं। जिसका प्राधान्य होता है, उसकी गद्दी छीननेके लिए दूसरा पक्ष यत्न करता है ओर छीन भी लेता है। सच तो यह है कि इन कांग्रेसवालोंने देशके सामने कुछ अच्छा और ऊँचा आदर्श नहीं रखा, जिससे कांग्रेसकी बदनामी करनेका लोगोंको अवसर मिल जाता है। कहावत है कि एक गन्दी मछली सारे तालाबको गन्दा कर देती है, पर यहाँ तो बहुत-सी गन्दी मछलियाँ हैं। अब डा० गोपीचन्दको सच्चर-मंत्रिमंडलमें लेनेका आदेश पार्लमेंटरी बोर्डने दिया है। इसका फल क्या होगा, इस विषयमें कुछ कहना ठीक नहीं है। फिर भी एक म्यानमें दो तलवारें कैसे रह सकेंगी, यह पार्लमेंटरी बोर्डको सोचना उचित था। पड़ोसी प्रदेशकी अवस्था तो आशाका संचार नहीं करती। हाँ, 'न तू चाले मेरी और न मैं चालूँ तेरी' नीति पर कुछ समय तक काम चल सकेगा।

प्रदेशोंके प्रधान-मंत्रियोंकी जब यह दशा हो, तो राज्य-संघोंके मंत्रियोंकी क्या कही जाय, जहाँ व्यवस्थित नियमित शासन देखनेका अवसर ही मंत्रियोंको नहीं मिला, जहाँकी राजनीति षड्यंत्र और उखाड़-पछाड़के लिए ही प्रसिद्ध रही है। इन मंत्रियोंको तो गर्मागर्म स्पीचें झाड़ने और जेल जाने तथा लाठी-चार्जके सिवा किसी कार्यका अनुभव और ज्ञान हुआ ही नहीं। प्रजासत्ताके नामपर ये मंत्री बनाए गए हैं सही, परन्तु यहाँ प्रजाका प्रतिनिधित्व प्रजामंडलको आप-से-आप मिल गया है। ब्रिटेनमें यदि मजूर-सरकारमें अनुभवशून्य मंत्री पहुँच गए, तो वहाँ स्थायी कर्मचारियोंने उनका काम बिगड़ने नहीं दिया। रियासतोंमें स्थायी कर्मचारियोंका प्रजासत्ताके साथ घुणाक्षर-न्याय-सम्बन्ध भी नहीं है। ये जिस वातावरणमें पले हैं, उसीका अनुभव मंत्रियोंको होता है। फल यह है कि रियासतोंके शासनमें प्रजासत्ताके गुण तो आए ही नहीं, घरके धान भी पोयालमें मिल गए।

ध्वंसात्मक टीकाके बदले रचनात्मक टीका होनी चाहिए। इसलिए वर्त्तमान अवस्थाकी त्रुटियाँ दिखानेके बाद सुधारका रास्ता बताना चाहिए। ऐसी टीका हमारे लेखकी न की जाय, इसलिए हम प्रकृत विषयकी चर्चा करेंगे। राष्ट्रीय सरकार से हमने बड़ी-बड़ी आशाएँ की थीं; पर अवस्थामें कोई सन्तोषजनक परिवर्त्तन नहीं हुआ, क्योंकि पुराने ढरेंपर ही शासन चल रहा है। सरकारको सबसे अधिक ध्यान अन्न-वस्त्रके उत्पादन की ओर देना चाहिए। यदि यही अवस्था रही, तो इस सरकारके विरुद्ध जो असन्तोष उत्पन्न होगा, उसकी तुलनामें पिछले असन्तोष फीके पड़ जायँगे। हमारा देश इसी कारणसे डिमोक्रेसी वा प्रजा-राज्य न हो जायगा कि पं० जवाहरलाल उसके प्रधान-मंत्री और राजाजी गवर्नर-जनरल हैं। डिमोक्रेसीमें प्रजा शिक्षित होनी चाहिए। पर यहाँ भारत-सरकार शिक्षापर अपनी आयका १ प्रतिशतसे भी कम खर्च करती है, और किसी प्रादेशिक सरकारका शिक्षा-व्यय १० प्रतिशत भी नहीं है। हमारे प्रदेशोंसे ट्रावनकोर राज्यमें शिक्षितोंकी संख्या अधिक है। हमारे मंत्रियोंकी शिक्षाकी स्कीमें तो हैं, पर उनसे कुछ तत्त्व नहीं निकलता। छोटे-छोटे बच्चोंपर

किताबोंका इतना बोझ रहता है कि वे लद्दू पशु बन जाते हैं। उनका ज्ञान नहीं बढ़ता। अंगरेज़ी शासनकी शिक्षा-व्यवस्थाकी हम निन्दा तो करते हैं, पर आजके विद्यार्थीकी अपेक्षा पुराना विद्यार्थी अधिक ज्ञान रखता था। शिक्षक भूखों मरते हैं। उन्हें ऋषियोंके आदर्शका स्मरण दिलाया जाता है, पर यह कोई नहीं सोचता कि ऋषियोंको अन्न-वस्त्रकी चिन्ता नहीं रहती थी। और फिर शासक स्वय क्या जनकके आदर्श पर चलते हैं? डा० मांटेसोरीका कहना है कि शिक्षकको जीवनोपयोगी वेतन तो दो। सिलोनमें शिक्षा निःशुल्क है, पर हमारे देशमें उसका व्यय बढ़ता ही चला जाता है। बिहारमें शिक्षाकी अच्छी व्यवस्था हो रही है। पर सरकारको कम-से-कम आयका २० प्रतिशत शिक्षापर अवश्य व्यय करना चाहिए। यह न करके डिमोक्रेसीकी बात कहना आत्म-प्रवंचना है।

प्लैनिंगकी चर्चा तो बहुत होती है; पर शिक्षा, स्वास्थ्य आदि राष्ट्र-निर्माण-कार्योंमें राष्ट्रीय सरकार भी धन व्यय करनेमें कृपणता करती है। सेना, नौसेना और आकाश-सेना बढ़ानेका हम विरोध नहीं करते; परन्तु शिक्षा और स्वास्थ्यकी उपेक्षा न होनी चाहिए। प्रौढ़ शिक्षापर तो ध्यान ही नहीं दिया जाता। जो लोग अशिक्षित रहेंगे, वे अपने मताधिकारका सदुपयोग नहीं कर सकेंगे। वे तो ग्रामके लोगोंकी तरह दल-बन्दीमें फँस जायँगे और मताधिकारका दुरुपयोग करेंगे। यह न भूलना चाहिए कि १७ करोड़ मतदाताओंको शिक्षित करना है। इसपर प्रश्न हो सकता है कि रुपया कहाँसे आयेगा। हमारा उत्तर है, खर्च घटाइए। दो वर्ष पहले क्या मंत्रियों, डिप्टी-मिनिस्टरों, पार्लमेंटरी सेक्रेटरियोंके दौरोंपर इतना खर्च होता था, जितना आज हो रहा है? और यह भी तो नहीं है कि शासनमें उन्नति हुई हो। रेलवे-विभागमें मिनिस्टर तो दो-दो हैं, पर व्यवस्थामें कोई उन्नति नहीं हुई। आज मंत्री और उनके सेक्रेटरी ज़मीनपर पैर रखना शानके खिलाफ़ समझते हैं। आकाशमें उड़े बिना उन्हें सुख ही नहीं मिलता। नौकरों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। क्या इतने मिनिस्टरों, डिप्टी-मिनिस्टरों इत्यादिकी नियुक्तिसे शासन-व्यवस्थामें कोई उन्नति हुई है? यदि नहीं, तो क्यों नित्य नये विभाग खुल रहे हैं? यदि आप आय-व्ययमें तारतम्य न रखेंगे और राष्ट्र-निर्माण-कार्योंकी इसी प्रकार उपेक्षा करेंगे, तो यह सरकार फ्रेंच सरकारकी दुरवस्थाको प्राप्त हो जायगी। फिर कम्युनिज़्मके विरुद्ध जेहादसे भी कोई लाभ न होगा। समय रहते सावधान होना चाहिए। हमें सच्चे स्वराज्यकी आवश्यकता है, इस मुलम्मेकी नहीं।

बया

श्री रामइक़बालसिंह 'राकेश'

बादामी चम्पई तुम्हारी चोंच, चढ़ी शानपर कला-कटारी तेज़;
फ़ालसई, कत्थई तुम्हारे पंख, पेट तुम्हारा उजला जैसे शंख।
पंजे बड़े और कांटे नाखून, खैरी ग्रीवा, दुम भूरी रंगीन;
रामबाँस, केला, कुश, सरपत, कांस, जिनके वल्कतंतु, रेशोंसे नर्म;
बेर, ताड़, पीपलमें छायादार, बना तुम्हारा खोंता तुम्बाकार।
शिवका जैसे जटाजूट विस्तीर्ण, औंधा लटका बोतल-सा संकीर्ण;
घटपर्णी पौधे-सा नलिकाकार, कपट-कल्पनाका जिसमें विस्तार;
बने विवर जिसमें लमछवने गोल, खोल और खाने ऊपर तक पोल।
ढलवाँ, सीढ़ीदार चढ़ाव-उतार, भूलभुलैयाँवाले, चक्करदार;
राजलाल, पंड़की, हारिल, कठफोर, शकरखोर,
दरजिन या पीलक, मोर;
नहीं तुम्हारी कला-चंचुके तुल्य कर सकते निर्माण नीड़-प्रासाद।
हे मेरे प्रिय बंधु कला-सम्राट, तुलसी, शेक्सपियर, शेली विख्यात!
नहीं तुम्हारा भूतलसे संसर्ग और नहीं अम्बरसे भी संपर्क;
पर तुम दोनोंके मालिक-मज़दूर, दोनों लोकोंमें, दोनोंसे दूर।
रहो टँगे उल्टे त्रिशंकु-से मूढ़, रहो झूलते झूले घनमें झूम।
जनवाणीकी पिकी क्षुब्ध निरुपाय उड़ती फिरती अंधकारमें हाय!
रहनेको न बसेरा, ठौर-ठिकान, ढूँढ़ रही आश्रय होकर हैरान।
पर, तुम अपना एक अलग संसार निर्मित करते पैगोडा, मीनार;
मिट्टीमें चिपका नीलम उड्डीन, जला नगीने जुगनूके रंगीन;
दीप निराले पंखदार गतिवान, चमकीले अबरक-जैसे द्युतिमान।
परदेनुमा फाँफके भीतर पैठ, बेफ़िक्रीसे अगम कूपमें बैठ;
से अंडे मत भद्दे, धब्बेदार, धूमिल, मटिये, गंदूमे, बेकार;
परम्पराके छिलके-से प्राचीन, अवगुंठित आदर्शोंसे गतिहीन;
जड़वत् ढेले अथवा उपल-समान, मत अंडे दो मटमैले निष्प्राण।
नोचेंगे भूखे आलोचक गिद्ध आज तुम्हारी अमर कलाकी लाश!
ऊँचे आसमानसे चक्कर काट, नीचे उतर भूमिपर ठोस सपाट;
हे मेरे प्रिय विहग कला-शृंगार, मेरा धन्यवाद तुमको सौ बार।

नया समाज : नया मानव—१

श्री रावी

नई दुनिया और नये समाजकी चर्चा आजकल चारों ओर है। पुरानी परिस्थितियों और व्यवस्थाओंसे लोग ऊब उठे हैं। उन्हें वे अपने सुख और विकासमें बाधक पाते हैं। वे उनमें परिवर्त्तन चाहते हैं। आप परिवर्त्तन चाहते हैं, तो परिवर्त्तन अनिवार्य है; लेकिन इसमें कुछ गुत्थियाँ हैं, आपके इस चाहनेमें कुछ उलझनें हैं। नई दुनिया और नये समाजका अर्थ है: नया मानव, परिवर्त्तित मानव। यदि नई दुनिया और नये समाजकी नई परिस्थितियाँ और नई व्यवस्थाएँ मनुष्यको परिवर्त्तित करके अपने अनुकूल नहीं बनातीं, तो उनका नयापन निरर्थक, अस्तित्वहीन है। यदि समाजका मनुष्य अपने-आपको बदलनेके लिए तैयार नहीं है, तो समाजकी परिस्थिति और व्यवस्थाका बदलना उसके लिए सुखका नहीं, संकटका ही कारण होगा। क्या आप समझते हैं कि आप और नये समाज का स्वागत करनेवाले सभी लोग परिवर्त्तन चाहते हैं? आइए, इसकी थोड़ी छानबीन करें।

मान लीजिए कि नये समाज और नई व्यवस्थाकी स्थापना के लिए कोई एक दिन—उदाहरणार्थ पहली जनवरी, १९५१—निश्चित कर दिया जाता है। समाजके और संसारके बड़े-बड़े जन-नायक इस स्थापनाके लिए पूरा सहयोग देनेका निश्चय कर लेते हैं और देवता लोग भी उस दिन अपने विमानोंपर बैठकर पृथ्वीपर पुष्प-वर्षा करनेका वचन दे देते हैं। उस दिनका नाम घोषित होते ही सारे संसारमें—कहनेकी सुविधाके विचारसे मैं इस बातको अपने एक देशीय समाज तक ही सीमित रखकर कहूँगा—प्रसन्नताकी एक बाढ़ उमड़ पड़ती है। नई पीढ़ीके युवक-युवतियोंके हृदय उत्साहसे नाच उठते हैं और पुराने लोग भी कह देते हैं—'अच्छी बात है, आए यह नया दिन, जिसमें तुम लोग सुखी रहो। हमारा क्या है, कुछ दिनके मेहमान हैं, भले-बुरे जैसे भी होंगे, शेष दिन भी काट ही लेंगे।' उस आनेवाले दिनके स्वागतमें सारे समाजमें एक अभूतपूर्व शानदार नवयुग-सप्ताह मनाया जाता है।

और जब वह उत्सव-उत्साह कुछ शान्त होता है, तब लोग सोचने लगते हैं: यह नया समाज कैसा होगा? इसकी स्थापनाके दिनके पहले हमें उसकी व्यवस्थाका कुछ सविवरण पता भी तो होना चाहिए। जो अमीर हैं, वे सोचेंगे: नये समाजमें शायद कोई अमीर या ग़रीब नहीं रहेगा। यह तो आखिर होना ही चाहिए। लेकिन उसकी स्थापनाका दिन बहुत करीब रखा गया है। हम चाहते हैं कि उसके पहले-पहले लड़केका विवाह ज़रा ठीक धूम-धामसे हो जाता और गर्मियोंके लिए शिमलेमें और सर्दियोंके लिए बम्बईमें हमारी एक-एक कोठी बन जाती। १ जनवरी सन् '५१ तक तो यह सब नहीं हो सकता। वास्तवमें तो यह अगली शताब्दीमें प्रारम्भ करने का काम था। ग़रीब आदमी सोचेंगे: निस्संदेह उस दिनसे हमारा रोटी-कपड़ेका प्रश्न हल हो जायगा। अमीर अमीर न रहेंगे और ग़रीब ग़रीब न रहेंगे। लेकिन अमीरोंकी मोटरकारोंका क्या होगा? उनके हाथसे निकलनेके बाद अगर वे हमारे चौधरियों और मुखियों के हाथ पड़ गईं, तो वही उनपर सवारी करेंगे और हम देखते रह जायँगे। यह भी कोई नया समाज होगा? नहीं, नहीं, हम उस नये दिनको तब तक स्वीकार नहीं करेंगे, जब तक इन सब बातोंका ठीक-ठीक फ़ैसला पहलेसे न हो जायगा। जिनकी पत्नियाँ सुन्दर और सेवाशील होंगी, वे सोचेंगे: नये समाजमें कहीं ऐसी व्यवस्था तो न होगी कि जो भी चाहे हमारी पत्नियोंसे प्रेम करने लगे और उन्हें उनके साथ जानेसे रोकनेका हमारे पास कोई नैतिक या क़ानूनी अधिकार न रहे! इस सम्बन्धमें हम उस नई व्यवस्थाको समझे बिना कभी स्वीकार नहीं करेंगे। सुन्दर लड़कियोंके धार्मिक पिता कहेंगे: नये समाजकी व्यवस्थामें हम और सब-कुछ सह सकते हैं; लेकिन हमारी लड़कियाँ विवाहसे पहले किसी व्यक्तिसे प्रेम करने के लिए स्वतन्त्र हों, यह पतन हम कभी नहीं सह सकते। अच्छे आदर्शवादी लोग कहेंगे: नये समाजकी व्यवस्थामें बुरे लोगोंका किसी प्रकार भी अधिकारपूर्ण हाथ न होना चाहिए, नहीं तो वे बड़ी बुराइयाँ उत्पन्न कर देंगे। वह व्यवस्था अच्छे, तपे-निखरे व्यक्तियोंके ही हाथमें होनी चाहिए। यह निर्णय हुए बिना नई व्यवस्थाका चलन अत्यन्त घातक होगा। बुरे आदर्श-हीन या विलासी लोग कहेंगे: नई व्यवस्थामें भी यदि

आदर्शों और प्रतिबन्धोंके पचड़े लगे रहे तो वह व्यर्थसे भी अधिक हानिकर चीज़ होगी। जब तक हमें यह निश्चय न करा दिया जायगा कि उस व्यवस्थामें मनुष्य पूर्णतया स्वतन्त्र और स्वच्छन्द होगा, तब तक हम उसे पास नहीं फटकने देंगे। कम-से-कम इन ढोंगी, विचार-भीरु आदर्शवादियोंका तो उस व्यवस्थाके संचालनमें कोई हाथ नहीं होना चाहिए।

और ज्यों-ज्यों वह निश्चित—१ जनवरी सन् '५१ का—दिन समीप आता जायगा, उस व्यवस्थाके सम्बन्धमें लोगोंकी आशंकाएँ, प्रश्न और चिन्ताएँ बढ़ती जायँगी। नई व्यवस्थाका निर्विचार और निर्विरोध स्वागत लोग तभी तक कर सकते हैं, जब उसका आविर्भाव उनके लिए सुनिश्चित हो। जिस क्षण उन्हें पूरा निश्चय हो जायगा कि वैसा कोई परिवर्त्तन सचमुच होनेवाला है, उनके प्रश्न और उनकी माँगें उबल पड़ेंगी। और वह नये समाजके प्रारम्भका दिन यदि सर्व-साधारणके सुख और सहमतिका दिन होना है, तो वह सदैव आगे और फिर उससे आगेके लिए टाला जाता रहेगा और कभी नहीं आयगा। समाजका वह दिन नया दिन कभी नहीं मनाया जायगा और देवताओंके लिए पुष्प-वर्षाकी घंटी कभी नहीं बजेगी। फिर भी लोग एक नये समाज, नई व्यवस्थाकी—एक नये परिवर्त्तनकी - कामना करते हैं। वे कामना करते हैं, इसलिए कि उस परिवर्त्तनका एक सँकरा पार्श्व ही—और वह भी बहुत धुँधले रूपमें —वे देख पाते हैं। वे केवल अपनेसे अधिक समृद्ध और सुखी लोगोंपर ही दृष्टि डालते हैं। उनकी कोठियों, उनकी कारों और उनकी अधिक सुन्दर लड़कियोंके मुक्त सम्पर्कपर ही उनकी निगाह जाती है। वे सोचते हैं: परिवर्त्तित समाजमें इन ऊँचे लोगोंकी ये चीज़ें कुछ न कुछ हमारे हिस्सेमें भी आयँगी। लेकिन उस परिवर्त्तनका दूसरा अधिक विस्तृत-खुला पार्श्व वे नहीं देखते। वे भूल जाते हैं कि उनके समाजमें उनसे भी कम सुखी, कम समृद्ध और कम सुन्दर लड़कियोंवाले परिवारोंकी संख्या इनकी अधिकतावाले परिवारोंसे कहीं अधिक है, और लेन-देनकी स्वतन्त्रतावाली व्यवस्थामें जितना उन्हें ऊपरवालोंसे मिल सकता है, उससे कहीं अधिक अपनेसे नीचेवालोंको उन्हें देना पड़ सकता है। वे भूल जाते हैं कि उनके समाजमें प्रत्येक व्यक्तिकी औसत दैनिक आमदनी दस पैसेके लगभग है और सारे समाजके लिए किसी सुखकर व्यवस्थाके निर्माणमें वे घाटेमें ही अधिक आ सकते हैं। नये समाजकी कामना करनेवाले मध्यवर्गके ये पढ़े-लिखे लोग किसी भी ऐसे नये परिवर्त्तन और नई सामाजिक व्यवस्थाको स्वीकार नहीं कर सकते, जो सर्व-साधारणके हितकी दृष्टिसे क़ायम की जाय। वे केवल अपने लिए थोड़ी-सी और सम्पत्ति तथा सुविधाएँ चाहते हैं और इन्हें ही नई व्यवस्थाके नामसे पुकारते हैं। अब यह आपके अपने हृदयकी गहराईमें सोचनेका प्रश्न है कि क्या आप सचमुच नये समाज और नई व्यवस्थाका निर्माण चाहते हैं?

परिवर्त्तन और नवनिर्माण

समाजमें आप जो-कुछ चाहते हैं, वह क्या सचमुच नये समाजका निर्माण ही है? प्रत्येक शिक्षित और प्रगतिशील विचार रखनेवाला समाजमें कुछ परिवर्त्तन चाहता है। लेकिन यदि आप इसकी गहराईमें जायँ, तो वह परिवर्त्तन कुछ व्यक्तिगत सुविधाओं, आश्वासनों और रक्षाओंकी माँगसे भिन्न और कुछ नहीं है—वह नये समाजका निर्माण नहीं है।

समाजमें परिवर्त्तन सदैवसे होते आए हैं। जब जिस राजनीतिक दल और जिस विचारधाराके पोषकोंके हाथमें शक्ति आई है, उसने समाजकी व्यवस्था और परिस्थितिमें अपने अनुकूल परिवर्तन किए हैं। इन्हीं परिवर्त्तनोंने समय-समयपर और देश-देशमें साम्राज्यवाद, साम्यवाद, जनतन्त्रवाद, एकतंत्रवाद, स्वतंत्रवाद, अर्थतंत्रवाद, आस्तिकवाद, नास्तिकवाद, आदर्शवाद आदि अगणित वादोंको जन्म दिया है, और जब जहाँ जैसा परिवर्त्तन आया है, लोगोंने प्रायः उसके जुएको अपने कंधोंपर स्वीकार करने और उसके नीचे सुख-सन्तोषकी साँस लेनेका प्रयत्न किया है। लेकिन किसी भी वादके नीचे कोई भी जन-समूह अधिक देर सुख-सन्तोषकी साँस नहीं ले पाया। यदि यह ठीक है कि किसी भी वादका पूरा, निर्बाध प्रयोग अभी तक नहीं किया जा सका है, तो इसका कारण यही है कि किसी भी वादका पूरा, निर्बाध प्रयोग अव्यावहारिक और अप्राकृतिक है।

संसारके सबसे बड़े और सबसे अधिक लोक-हितैषी वाद, साम्यवादकी विफलता अब हमारे सामने स्पष्ट है। सम्भव है, इस वादके अन्तर्गत सभी व्यक्तियोंके लिए रोटी और कपड़ेकी समस्याका हल निकल आए; लेकिन केवल रोटी-कपड़ेसे ही तो मनुष्यका काम नहीं चल सकता। साम्यवादी रूस आज सुखी और सुरक्षित नहीं है। साम्यवादमें शत्रुओंको जन्म देनेकी जितनी शक्ति है, उतनी शायद दूसरे किसी भी वादमें नहीं है।

रूसने अपने वाद द्वारा अपने लिए जितने बड़े शत्रुको जन्म दिया है, उतना बड़ा शत्रु संसारमें किसी दूसरे देशका नहीं है। शत्रुका सृजन—भले ही उसे आगे चलकर पराजित कर दिया जाय—सुख और सुरक्षाका मार्ग कभी नहीं हो सकता। संघर्ष शान्तिका साधन कभी नहीं हो सकता; एक प्रकारके साधनसे दूसरे प्रकारका साध्य कभी प्राप्त नहीं हो सकता।

राजनीतिक वादोंकी यह बात दूसरे सामाजिक वादोंपर भी लागू होती है। केन्द्रीकरणवाद और विकेन्द्रीकरणवाद, कर-श्रम-वाद और कल-श्रम-वाद, संग्रहवाद और वितरणवाद, नियंत्रणवाद (उदाहरणार्थ एक पति या एक पत्नी-वाद, एक-प्रियवाद, स्वच्छन्दवाद, परधनवाद) और स्वच्छन्दतावाद आदि किसी या किन्हीं भी वादोंके आयोजनसे समाजका काम नहीं चल सकता। यह बात कुछ और स्पष्टीकरण माँगती है। परिवर्त्तन और नवनिर्माण एक ही नहीं, दो अलग-अलग बातें हैं। परिचित इतिहास-युगके प्रारम्भसे हमारे समाजमें परिवर्त्तन अनेक बार हुए हैं, नवनिर्माण नहीं। परिवर्त्तन हमारी कुछ समस्याओंका अस्थायी उपचार है और उससे नई समस्याओंका जन्म अनिवार्य है। परिवर्त्तन बाहरसे थोपी हुई एक विभिन्नता है, नवनिर्माण भीतरसे उगी हुई एक कृति है।

किसी नगरके परिवर्त्तन और उसके नवनिर्माणमें क्या अन्तर है? आप उस नगरके कुछ मकानोंको तोड़ देते हैं, सड़कें चौड़ी कर देते हैं, कुछ नई सड़कें और पार्क बनवा देते हैं और कुछ नये ढंगके मकान बनवा देते हैं। नगर कुछ अधिक सुन्दर और सुविधाजनक देखनेमें लगता है। इसे आप परिवर्त्तन कहते हैं। यह परिवर्त्तन आंशिक भी हो सकता है और सम्पूर्ण भी। नगरके सारे भवनोंको ढहाकर और उनकी जगह नये भवन बनाकर आप उस नगरको पूर्णतया परिवर्त्तित कर सकते हैं। और उस नगरसे कुछ दूर हटकर खुली भूमिमें आप नई सामग्रीसे एक नये नगरका निर्माण करते हैं और पुराने नगर-निवासियोंको वहाँ ला बसाते हैं। यह उस नगरका नवनिर्माण है। नई दिल्लीका निर्माण इसी प्रकार हुआ है और नये आगरेके निर्माणकी भी ऐसी ही योजना कुछ लोगोंने बनाई है। पहले प्रकारके कार्य—परिवर्त्तन—के लिए, भले ही वह परिवर्त्तन सम्पूर्ण ही हो, विध्वंसकी आवश्यकता है। उसमें पुरानी सामग्रीका भी बहुत-कुछ उपयोग है। वह पुरानी भूमि मलग्राही ढँकी नालियोंके ऊपर ही स्थित है। उसका वातावरण पूर्ण-परिवर्त्तित नहीं है। लेकिन दूसरे प्रकारके कार्य—नव-निर्माण—में सब-कुछ नया है। उसमें विध्वंसका कोई स्थान नहीं है। बाहरसे किसी वस्तुके आकारका बदलना परिवर्त्तन है; भीतरसे नये आकारका उभार निर्माण है। पहलेमें परिश्रमपूर्वक विध्वंस करना आवश्यक है, दूसरेमें निर्माणके साथ-साथ बाहरी जीर्णावशेषोंका आवश्यक विध्वंस अपने-आप, बिना प्रयास, होता चलता है।

यह स्पष्ट है कि समाजके जीवित रहनेके लिए नवनिर्माण आवश्यक है। बिना इसके उसमें सड़ाँद और जलन पैदा हो रही है। एक ओर भूखों और नंगोंकी संख्या बढ़ रही है, दूसरी ओर कुछ लोगोंके गुप्त गोदामोंका संग्रह बढ़ रहा है। मनुष्य मनुष्यसे डरता है। दूसरेका अपहरण ही वह अपने निर्वाहका एकमात्र चारा समझता है। इस अपहरणको वह कभी-कभी बहुत सुन्दर नाम देता है। वह उसे प्रायः प्रेम, शिक्षण, संरक्षण, पथ-प्रदर्शन, सेवा आदि सुन्दर-सुन्दर नामोंसे पुकारता है। वह कहता है: यह मेरी पत्नी है। मैं इससे प्रेम करता हूँ। इसे भी मुझसे प्रेम करना चाहिए। इसे किसी दूसरेसे, या दूसरेको इससे, प्रेम नहीं करना चाहिए। यह मेरा पुत्र है। मैं इसे उत्तम शिक्षा देकर अच्छे-से-अच्छे मार्गपर चलाना चाहता हूँ। इसे मेरा भरपूर आज्ञाकारी होना चाहिए और मेरे बताए मार्गपर चलना चाहिए। यह मेरा आश्रित है। मैं इसकी रक्षामें तत्पर हूँ। इसे सदैव मेरे अनुकूल, मेरे पीछे चलना चाहिए। यह मेरा शिष्य है। इसका पथ-प्रदर्शन मेरा कर्त्तव्य है। मेरी बातोंपर इसे पूर्ण विश्वास करना चाहिए और मेरी आज्ञाके पालनमें तत्पर रहना चाहिए। यह मेरा स्वामी है। मैं इसकी सेवा करता हूँ। इसे मेरी सभी सेवाएँ सहर्ष स्वीकार करनी चाहिएँ और मेरा उचित पुरस्कार सदैव प्रस्तुत रखना चाहिए।

आजका समाज यही है। आप पूर्व-धारणाओंसे अपने-आपको स्वतंत्र करके देखें, तो परिवारमें, पड़ोसमें, व्यवसायमें, सभाओं-संस्थाओं और शासन एवं शिक्षण-विभागोंमें लेनेकी प्रवृत्ति देनेकी प्रवृत्तिसे सदैव आगे है। आजके समाजका सारा विधान, उसकी सारी नैतिकता, सारी आदर्शवादिता और धार्मिकता इस लेनेकी, अधिकार रखनेकी, प्रवृत्तिपर आरूढ़ है। यह प्रवृत्ति इतनी सूक्ष्मता, इतनी चतुरता से समाजके भीतर व्याप्त है कि आप इसे इसके उघरे रूपमें नहीं

देख पाते। कुछ भी हो, समाजके नव-निर्माणकी आवश्यकता अनिवार्य है। समाजकी व्यवस्था, उसके रीति-रिवाज, रहन-सहन अथवा लोक-रुचिमें थोड़ा या बहुत परिवर्त्तन समाजका नव-निर्माण नहीं है। कोई भी परिवर्त्तन ऐसा नहीं हो सकता, जिसमें आगे परिवर्त्तनकी आवश्यकता न पड़े। कोई परिवर्त्तन नहीं, केवल नवनिर्माण ही प्रगतिशील हो सकता है। नव-निर्माणके लिए हमें समाजमें किसी भी परिवर्त्तन या तोड़-फोड़के पहले समाजको अच्छी तरह देखने-समझनेकी आवश्यकता है।

समाजकी वर्तमान व्यवस्था

संग्रह, अपहरण और भयकी प्रवृत्तिपर खड़ी हुई है। इस प्रवृत्तिका पहला और सबसे बड़ा केन्द्र है परिवार। पिता-पुत्र और पति-पत्नीके बीच जो भयंकर अपहरण चलता है, उसका अनुमान अभी लगाया नहीं गया। उसकी भयंकरता तब और भी बढ़ जाती है, जब उस अपहरणको प्रेम, शिक्षण और संरक्षण नामके चमकीले वस्त्रोंमें लपेटकर रखा जाता है। उस दशामें आप उन्हें उघारने-परखनेका साहस नहीं करते, उसकी बात ही नहीं सोचते।

आप कहते हैं, माँका प्रेम सर्वोच्च, निस्वार्थ, पवित्रतम है। उसकी 'पवित्रतम'तामें संदेह करनेका साहस आप नहीं करते; उसके सामने आप सदैव सिर झुका देते हैं। लेकिन माँके प्रेमसे बढ़कर बर्बर और अंधा प्रेम हमारे आजके समाजमें दूसरा कौन है? वह अपने एक बेटेके लिए पड़ोसीके दस बेटोंकी जान ले सकती है! निस्संदेह बेटेके लिए वह अपनी भी जान दे सकती है; लेकिन क्या यह कोई पवित्र, निःस्वार्थ प्रेम है? मूर्खतापूर्ण मोहको ही क्या ऊँचा प्रेम कहते हैं? यदि यही प्रेम है, तो पशुओंमें मनुष्योंसे कम प्रेम नहीं है! मातृ-प्रेमके आगे आप असहाय हो जाते हैं, उसे अपनी श्रद्धा और कृतज्ञताका नाम देते हैं और उसका बदला अपने माँ-बापके नाती-पोतों—अपनी सन्तान—से निकालते हैं। पिताकी इच्छा और आज्ञाका पालन करनेके लिए आप एक अबोध मुग्धा बालिकाको गरीब या विजातीय होनेके कारण पैरोंसे ठुकराकर उसके हृदयका खून कर देते हैं और उसे पितृ-आज्ञा-पालन, रामका आदर्श, कहते हैं। अपनी पत्नीको आप स्वयं परिश्रमपूर्वक कमाकर खिलाते-पहनाते हैं; क्योंकि आपकी दृष्टिमें उसका सुन्दर, सुसज्जित और स्वस्थ दिखना आवश्यक है। आप उसे घरके आँगनमें बन्द रखते हैं। आप उसपर किसीकी, और किसीपर उसकी, प्रशंसा या अनुराग-भरी दृष्टि नहीं पड़ने देना चाहते। उसे आप किसी पर-पुरुषकी बात नहीं सोचने देते। आपके आदेशपर आपकी शय्यासे अनुपस्थित रहनेका उसका अधिकार कभी नहीं है। आपकी तृप्तिके मार्गमें आप जितने भी बच्चे उसे देते जायँ, उनकी माँ बननेके लिए वह बाध्य है। इस सबको आप पत्नी-भरण, पतिव्रत और धर्माचरण कहते हैं! और आपकी पत्नी भी इन शृंखलाओंमें जकड़ी हुई अपने-आपको कर-पग-हीन पाती है। वह हिल-डुल नहीं सकती। विवश हो, वह सदैव आपका सहारा पकड़ती है। अपने जीवनका कोई दूसरा चारा उसके पास नहीं रह जाता। आपकी टाँगोंसे चिपटी रहनेके लिए वह—वैसी परिस्थिति आनेपर—उनसे छूट जानेकी अपेक्षा उन्हें तोड़कर रख लेना ही पसंद करती है। इसे वह पतिभक्ति और पतिपरायणताका नाम देती है!

यह सब अपहरण-मात्र है और इसीकी आधार-शिलापर पारिवारिक स्नेह-सम्बन्ध स्थापित है। परिवारमें उत्पन्न होकर मनुष्य बचपनसे ही इस अपहरणकी प्रवृत्तिमें पलता है और आगे इसीका पोषण करता है। पाठशालाका छात्र बनकर वह गुरुजनोंसे अपहरणकी कला सीखता है और फिर स्वयं गुरु बनकर शिष्योंका अपहरण करता है—वह उन्हें विचार-भीरु और कर्म-भीरु बनाकर अपनी सेवा और अपने विश्वासोंके अनुगमनमें ही लगाए रखता है। व्यवसायी बनकर वह अपने व्यापारियों और ग्राहकोंका अपहरण करता है, मिल-मालिक बनकर मज़दूरोंका अपहरण करता है और मज़दूर बनकर मालिकका अपहरण करनेके लिए पूरा बल लगाता है। पूँजीपति बनकर वह निर्धन-वर्गका अपहरण करता है। उस अपहरण किए हुए धनके एक अंश द्वारा जब वह निर्धन-वर्गका कुछ और भी बड़ा नैतिक अपहरण करता है, तब वह उसे दान और त्यागका नाम देता है। जन-नायक बनकर वह जनताके मानसिक स्वातंत्र्य और विचार-क्षमताका अपहरण करता है; अनुगामी बनकर अपने नेताके बौद्धिक स्वास्थ्य और शारीरिक विश्रामका अपहरण करता है। इन अपहरणोंको अनुशासन, संरक्षण, पथ-प्रदर्शन, देशभक्ति, राष्ट्रोन्नतिके कर्णप्रिय और भयंकर-से-भयंकर अपहरणको आत्म-रक्षाका नाम देकर काम चलाया जाता है। घरमें, सड़कपर, हर कहीं अपहरणकी भूमिकापर ही सारा व्यवहार चलता है। पुरुष-वर्ग स्त्री-वर्गका और स्त्री-वर्ग पुरुष-वर्गका अपहरण करता है। सड़कोंपर सज-बजकर चलती हुई तरुणियोंका अभिप्राय नवयुवकोंका अपहरण-मात्र होता है।

उनपर युवकोंकी दृष्टि अपहरणकी कामनासे रँगी होती है। इसे दोनों वर्ग प्रेम, आकर्षण और सौन्दर्य-सत्कार कहते हैं!

संभव है, ऊपरका सारा कथन अतिरंजित और उग्र हो। लेकिन यदि आप समाजका नवनिर्माण चाहते हैं, तो समाजकी वर्त्तमान व्यवस्था और उसकी आधारभूत प्रवृत्तिको कठोर प्रश्नोंकी कसौटीपर कसना ही पड़ेगा। प्रत्येक प्रश्नका—वह कितना ही अतिरंजित और उग्र जान पड़े—उत्तर आपको ढूँढ़ना पड़ेगा, तभी आप समाजके सड़ते हुए मर्मस्थलोंको देख सकेंगे। समाजके प्रेम, सत्कार, शिक्षण और संरक्षणमें जो-कुछ इन सुन्दर नामोंका सचमुच अधिकारी है, वह उग्र-से-उग्र प्रश्नोंकी कसौटीपर भी खरा उतरेगा। समाजकी इन सुन्दर नामोंकी चीज़ोंमें गन्दगीकी बहुत मिलावट है; प्रश्नोंकी कसौटी ही उन्हें परखनेका एकमात्र उपाय है। समाजके सड़ते हुए मर्मस्थल अब अवश्य नहीं हैं। यह सड़न उसकी नींवमें फैल चुकी है। इसीके सम्पर्कसे हमारे मस्तिष्क जर्जर हो आए हैं। उनमें सोचने-समझनेकी, कहीं भी क्षण-भर पाँव टिकाने तककी, शक्ति नहीं है। प्रश्नोंका सामना करते उन्हें डर लगता है, 'पाप' लगता है। उन प्रश्नोंसे भागकर वे कहीं छिप रहना चाहते हैं। स्वस्थ और सजग मस्तिष्कके क्या ये ही लक्षण हैं? ऐसा मस्तिष्क प्रेम, सत्कार, शिक्षण, संरक्षणको समझ सकता है?

अपने दिवंगत मित्रकी तरुणी, 'धर्मग्रस्ता' कुलीन विधवासे आप कहिए कि आप उसे पसंद करते हैं और उससे विवाह करना चाहते हैं। क्या वह आपके इस प्रश्नका सामना कर सकेगी? बिलकुल नहीं। वह 'हाँ' या 'ना' कोई भी उत्तर आपको नहीं दे सकेगी। वह केवल एक चीखके साथ आपसे दूर भाग जायगी और फिर आपका मुँह देखते भी उसे डर लगेगा। वह समझेगी कि आप उसके दिवंगत पतिदेवके साथ विश्वासघात करके उन्हें और स्वयं उसे भी नरकमें घसीटना चाहते हैं। यह समाज है—उसकी धार्मिकता, चरित्रवादिता, आदर्शवादिता बुरी बात बुरी क्यों है और भली बात भली क्यों है, यह सोचनेकी स्वतन्त्रता इस समाजमें नहीं है। उसके उपास्यें, देवताओं और आदर्शोंको आप कसौटीके आसनपर निमंत्रित नहीं कर सकते। समाजने ऐसी ही शिक्षा अपने सदस्योंको दी है। समाजका छिछला चरित्रवाद और आदर्शवाद उसके भोगवाद और विलासवादसे अधिक भिन्न नहीं है। दोनोंकी नींव संग्रह, अन्धानुकरण और भयकी प्रवृत्तिपर है। दोनों एक ही वस्तुके दो रूपान्तर हैं, दोनों समाजके लिए विष हैं।

नये समाजका निर्माण पुराने समाजको, उसकी ऊपर कही गई प्रवृत्तिको समझे बिना नहीं हो सकता। उसे समझनेके लिए साहस और स्वतन्त्र दृष्टिकी आवश्यकता है, नई खोजकी आवश्यकता है। समाजका प्रचलित प्रेम, सत्कार, शिक्षण और संरक्षण सच्चा प्रेम-सत्कार-शिक्षण-संरक्षण नहीं है। इनका अस्तित्व है। बिना इनके समाज क्षण-भर भी जीवित नहीं रह सकता। लेकिन ये चीज़ें मनुष्यके धर्मग्रस्त और भयग्रस्त मस्तिष्कके नीचे बहुत गहराईमें गड़ी हुई हैं। उनका न प्रचलित आदर्शवादसे कोई सम्बन्ध है, न स्वच्छन्द विलासवादसे ही। नये समाजका निर्माण करनेके लिए इन्हें उस गहराईसे खोजकर लाना होगा।

बोल !

श्री ईश्वरचन्द्र जैन

बोल, ओ युगके प्रवाही बोल!

यह कि—
जीवन वेदना के मूल में है?
या कि पथ के शूल में है?
या हृदय की भूल में है?
रक्त के संकेत से तू रुद्ध जीवन खोल!
बोल, ओ युगके प्रवाही बोल!

यह कि—
पृथ्वी या कि संस्कृति डोलती है?
देव मनुका या कि पशुता बोलती है?
रंग की या रक्त-लाली खौलती है?
चीर दे पट और बलिका हो मनुजसे मोल!
बोल, ओ युगके प्रवाही बोल!

यह कि—
मानव रक्त देकर रस जगाए,
और अपने खूनसे बलि-पथ सजाए,
मृत्यु-मुखमें भैरवीका गीत गाए,
प्रलय की वेला कि तू निर्माण का रस घोल!
बोल, ओ युगके प्रवाही बोल!

शान्ति और युद्ध

श्री जैनेन्द्रकुमार

दुनिया एक युद्धसे मुश्किलसे पार हुई है कि दूसरा उसके सिरपर आ मँडराया है। इससे दुनियाकी आजकी समस्या है शान्ति। जगह-जगह शान्तिके लिए सभाएँ हो रही हैं। उन लोगोंको तरफसे जो सोचते हैं, और उनकी तरफसे भी जो करते हैं, ऐसा मालूम होता है कि सभी चाहते शान्ति हैं; पर पाते हैं कि जाने-अनजाने, अपनेसे या अपने बावजूद, वे युद्धमें बढ़े चले जा रहे हैं।

निश्चय ही कोई युद्ध नहीं चाहता। युद्ध होगा, तो शस्त्रास्त्रकी तैयारीमें लगे पक्ष उसकी ज़िम्मेदारी सदा दूसरेपर डालेंगे। लड़नेवाले दोनों दल आप-अपनेको शान्तिवाला बतायँगे और उन्हें झूठ भी नहीं मानना होगा। कारण, लड़ाई सचमुच उन्होंने चाही नहीं है, सिर्फ बनाई है। इस बातको समझ सकें, तो समस्या पकड़में आ जाय। जो लड़ते हैं, वे लड़ना (शुरू करना) नहीं चाहते। लेकिन उनमें हरएक मानता है कि दूसरा हमला करे, तो जवाबमें लड़नेके सिवाय उपाय नहीं रहता। मरना जब धर्म नहीं है, तो धर्म जीना है। इससे जीनेपर जब आ बनती हो, तब जान बचा लेना ही धर्म ठहरा। इस तरह सुरक्षामें शत्रुको मारना या अपनी तरफसे उसकी जानका खतरा पैदा कर देना आवश्यक धर्म बन आया। हम देखें कि लड़ाई यों जीनेकी अनिवार्य शर्त्तके रूपमें हमारे बीच आ जाती है।

जंगलमें प्राणीका जीवन कैसे चलता है? वहाँ हरएक स्वतन्त्र है कि जिसको बने मारे-खाए और जैसे हो अपनेको मारे और खाए जानेसे बचाय। इस प्रकारकी सम्पूर्ण स्वतन्त्रताका नाम है जंगली जीवन। आदमी उसीमें से आया है। शायद आज भी उसमें ही रहता है, लेकिन अपने रहनेके ढंगको सभ्य कहता है। जानवरको जंगली और अपनेको सामाजिक बताता है। लेकिन अगर जीनेका तरीका उसका यही है कि जो हो हथियाए और जैसे बने अपनेको बचाए, तो उसको जानवरसे कुछ और कैसे कहना होगा?

वन्य पशुओंकी लड़ाई जिन्होंने देखी है, बताते हैं कि अद्भुत होती है। कमालकी पैंतरेबाज़ी वहाँ देख लीजिए। इधर शेरके पास नहँदार पंजे हैं, तो सूअरके पास तीखे दाँत। इस तरह अलग-अलग खूबियोंके हथियारोंसे मुकाबलेमें वह चोटें चलती हैं कि सौन्दर्यका विलक्षण चमत्कार उपस्थित होता है। बड़े लोगोंके बैठकखानोंमें इसीसे विलासकी नहीं, तो अधिकांश वैसी ही तस्वीरें आपको मिलेंगी। इस तरह युद्ध प्राणियों का सबसे प्रिय खेल रहा है। उसके दबावके तले कला-कौशल और ज्ञान-विज्ञान वेगसे खिल उभरे हैं। जीवन मानो उस समय रससे आ भरता है। नसें फराफरा उठती हैं और मन उमंगकी पेंगें ले उछलता है। ज़िन्दगी सूनी नहीं रह जाती, जैसे सारसे भर आती है। मारनेके उछाहमें आदमी अपनी जान हथेलीपर ले खुद मौतमें बढ़ चलता है। प्राण लेनेकी कोशिशमें प्राणपर खेल जाना उसे असल जीना लगता है।

युद्धसे यह सब होता है। इससे युद्धको छोड़ना सहसा उसके वशकी बात नहीं है। इतना उत्कृष्ट रस वह दूसरी किस चीज़से पा सकता है? इसलिए जान पड़ता है कि हम थोड़े-बहुत जो शान्तिसे रहते हैं, सो इस ढंगसे कि उसके फलमें युद्ध जल्दी अनिवार्य हो आए। युद्ध मानो घटना नहीं है, वह हेतु है। हमारी जीवन-विधिका वह फलित फल है, मानो वह हमारी सिद्धि है। इसलिए शान्तिके सवालको इस रूपमें देखना ठीक न होगा कि युद्धसे कैसे बचा जाय। युद्ध द्वारा आखिर कुछ तो हम चाहते हैं! उस आशाको एकदम शून्य नहीं किया जा सकता। केवल अभाव तो टिकना नहीं। इससे अभावात्मक होकर शान्ति कभी आनेवाली नहीं है। वैसी तो क़ब्रकी शान्ति है। उसके लिए चैतन्यको खोकर जड़ बनना धर्म हो जायगा। वह निष्क्रियता चाहती दीखेगी। वह शान्ति मानो माँगेगी कि हम अपनेको ह्रस्व करें, नाना निषेधोंसे प्राण-प्रवाहको जकड़ बाँधें। वह निरन्तरताकी जगह स्थिरता चाहेगी और गति-मात्र, कर्म-मात्र, उसके लिए भीतिके कारण होंगे।

आदि-कालसे शान्तिके साधक सन्त हमको मिलते आए हैं। हमसे मतलब विश्वके सभी देशोंको। अपने भारतको लें, तो वह बात और भी सच है। लेकिन उन महात्माओंने अपनी जो शान्ति और मुक्ति साधी, तो क्या वह असल इष्ट वस्तु थी?

क्या समाजमें व्याप्त युद्धके प्रति उसमें हठात् विमुखता न थी? या समाज-मान्य युद्ध-नेताका सहारा ही न था? युद्ध-जेता राजन्योंके प्रश्रयमें रहकर क्या उन्होंने अपनी शान्तिको युद्धका एक तरह प्रार्थी शरणार्थी ही नहीं प्रमाणित किया? किन्तु अपने भारतमें हम देखते हैं कि ऋषि-मुनियों और सन्त-तपस्वियों की लम्बी परम्पराको प्रेरणा देनेवाले महापुरुष हुए राम और कृष्ण, जिन्होंने युद्ध लिया ही नहीं, युद्ध किया। क्रिया और जय साधी। राम और कृष्ण क्या राजा और योद्धा नहीं थे? और पश्चिमके मसीह ईसाको क्या इसलिए सूली देना ज़रूरी हुआ होगा कि वे नितान्त एवं एकान्त शान्ति-साधनामें रहे? फांसी निश्चय ही उसको लगेगी, जो चुप और निष्क्रिय न होगा, वरन् प्रबल और पराक्रमी होगा। योद्धा उसे होना ही चाहिए। मुहम्मद साहब, जिनका धर्म ही शान्ति कहलाया, क्या लड़ाइयोंके लड़नेसे तनिक आराम पा सके? इसलिए शान्ति की बात सोचने योग्य है, तो इस कारण नहीं कि युद्धसे बचना है। बचानेवाली शान्ति तात्कालिक रूपसे कायरकी और अन्तिम रूपसे शवकी है। वह विचारकी वस्तु ही नहीं। घर-गिरस्ती बांधकर बैठनेवाला हर आदमी वैसी सुख-शान्तिकी सेज अपने यहां सजाता है। वहां भोगको प्रतिष्ठित करता है। इस शान्ति-भोग और उसकी सुरक्षाके लिए जाने फिर क्या-कुछ नहीं हो सकता। मोटे पत्थरके किलेकी लंबी-चौड़ी प्राचीरें क्या इसीलिए नहीं उठाई जाती कि अन्दर महलोंकी शान्ति अक्षुण्ण रहे? युद्ध इसी सुख-शान्तिमें से होते हैं।

हम सब उस अपनी सुख-शान्तिको पक्की दीवारोंसे और पक्के हिसाबसे घेरकर ऐसा सुरक्षित बना लेना चाहते हैं कि कोई उसपर न झपट सके, न कोई साझेको आ सके। इसीका करिश्मा है कि सब कहीं हाय-हाय और नोंच-खसोट मची हुई है। यही चाह समूहोंके नामपर संगठित होकर खुल खेलती है, तो युद्धका रंग भर लाती है। अपनी छोटी-मोटी शान्तियोंकी चिन्ता और रक्षा ही वह बारूद है, जो इकट्ठी होकर और चिंगारी पाकर आसमानको अपने स्फोटसे रंगारंग और लाल कर उठती है। तब खूबसूरतियां खिलती हैं कि जिनको लेकर इतिहासके वर्क जगमग हो रहते हैं। यानी युद्धसे विमुख होकर अपनाई जानेवाली शान्ति खुद उस युद्धके लिए ईंधन है। हम नहीं लड़ते, यह कहनेसे लड़ाई कम नहीं होती, सिर्फ हम कम होते हैं। हमारी लड़ाईका बोझ दूसरे कन्धोंपर जाकर स्थायी और पक्का ही बनता है। ऐसा तनखादार सिपाही पैदा होता है, जिसका पेशा लड़ना बनता है। और युद्ध सबसे ऐश्वर्यशाली उद्योग और व्यवसाय बनता है। फिर आधुनिक सेनापति कभी लड़ते सुना गया है? वह उल्टे शान्त रहता है, जब कि सिपाही उसीकी लड़ाई लड़ते हैं। बल्कि और पीछे जाइए, तो घरमें बैठा या सभामें बोलता युद्ध-सचिव और भी ब-आराम और शान्त है। इसका मतलब है कि लड़ाई उसकी (रची) है, इसीसे उसका लड़ना दूसरोंपर है। पेशेवर सिपाही क्यों लड़ते हैं? क्योंकि एवज़में मिलनेवाले वेतन-भत्तेसे अपने चौथेपनमें वे कुछ घर-बारी सुख-शान्ति अपने लिए जुटा पानेकी आशा रखते हैं। हम सबकी अपनी-अपनी शान्तियोंकी चिन्ता ही युद्धकी सामग्री और अवसर बनती है।

इसलिए प्रश्नपर ऐसे विचार करना बेकार हो जाता है, जैसे युद्धका अभाव शान्ति हो या दोनों परस्पर विरोधी हों। ऐसे एकान्ती और सिद्धान्ती विचारसे दुनिया युद्धके लिए खुला खेत हो रहती है, जिससे सिर्फ़ शान्तिवादी किनारा खींचनेकी अपने लिए छुट्टी पा जाते हैं। लेकिन ये दोनों सूरतें सही ज़िन्दगीकी नहीं हैं। शान्ति यदि इष्ट है, तो सबकी और सबके बीच होकर इष्ट है। अन्यथा वह छलना है। इससे प्रश्न यह होता है कि हम जो मार-काटके ज़रिए पाना और बचाना सोचते हैं, क्या उस पाने और बचानेकी पद्धति कुछ दूसरी भी हो सकती है? क्या अहिंसाका उपाय भी कुछ हो सकता है? हर वस्तुस्थितिमें किंचित् अन्याय और असत्य गर्भित है। उसी निराकरणके अर्थ जीवन है और जीवनमें गतिबोध है। काल, जिसका लक्षण परिणमन है, अन्यथा होता ही क्यों? उस गर्भित असत्य और अन्यायपर रुककर, उसे यथावत् अपनेमें स्वीकार करके, तो जीवनका और कालका प्रवाह सार्थक हो नहीं सकता। इस अन्याय और असत्यको इसलिए उभारते और उखाड़ते ही चलना होता है। इसीसे है कि चैतन्यका प्रतीक पुरुष विद्रोही दीखता और शहीद बनता है, दूसरा कुछ हो नहीं सकता। उसके द्वारा परिस्थितिपर जो चैतन्य अवतरित होता है, वह स्थितिमें जड़ जमाए स्वार्थोंको विचलित और क्षुब्ध कर उठता है। विकास इस तरह स्थिति और गतिके परस्पर प्रतिघात और प्रत्यावर्त्तन द्वारा ही सम्पन्न होता है। साफ ही युद्ध इसमें अनिवार्य प्रक्रिया है। वर्तमान यदि अतीतकी ही पीठ है, तो भविष्यको उसपर आघातके रूपमें ही पड़ना होगा।

अन्यथा वर्तमान भविष्यका आवाहन भी हो सकता है। अतीतसे जड़ित होकर वर्तमानपर बन्धन और अवरोध बननेवाले तत्त्व भविष्यके अवतरणको आघात मानकर प्रत्याघातसे ही लेनेको लाचार होंगे। यों संघर्षमें से प्रगति सधेगी। द्वैतमें से ही अद्वैत यात्राको बढ़ते चलना होगा।

शब्द द्वैत ऊपर आ गया। यह शब्द श्रद्धाका है। इसलिए भाषामें उसे कम आना चाहिए। लेकिन संहारमें ही अगर जीवनके अथ और इतिको नहीं देख लेना है, यदि उसमें से आगे किसी अर्थ अथवा इष्टकी निष्पत्ति पाना है, तो श्रद्धाको उतना असंगत नहीं मान लेना होगा और शान्तिका प्रश्न श्रद्धाका प्रश्न है, वह ऐक्यकी निष्ठाका प्रश्न है। जो अपने लिए निजकी शान्ति रच बैठना चाहता है, वह कालके प्रवाहमें अड़चन बनता है। वह मरनेसे बचना और आरामसे जीना चाहता है। इन सब कारणोंसे महाकालका आखेट बनता है। डरते-रोते उसे जीना और वैसे ही मरना है। ऐसा ही व्यक्ति है, जो अपने चारों ओर पदार्थ जोड़ता और उसकी ओट में मानो गतिसे और नियतिसे बचनेकी युक्तिमें चतुर स्वार्थकी स्थापना करता है। काल-गति ढाहती-धड़धड़ाती हुई उसकी छातीपर से जब चलती है, तो लगता है, जैसे शान्तिका और धर्मका अपलाप हो रहा है। पर वह अप्रतीति है। कारण, शान्तिका धर्म हिंसाके अधर्मसे मोर्चा लेता हुआ ही चलनेको बाध्य है। उससे किनारा काट चलनेवाली शान्ति क्योंकि प्रवंचना है, इससे यज्ञारम्भमें सबसे पहले वही स्वाहा होती है।

शायद ऊपर खतरनाक भाषा आ गई। पर खतरेसे बचकर सत्यकी तरफ चलना कैसे होगा? 'शान्तिके लिए' नहीं, 'शान्तिके द्वारा' हमें जीना है। साध्यको साधनमें गर्भित और तत्सम रहना होगा। फिर उस संकल्पका आदमी सुरक्षा कभी खोजेगा ही नहीं। उसे मृत्युसे बचना नहीं है। उसे किसीसे कुछसे बचाना नहीं है। उसे सबसे तदाकार होना है। उसे सर्वात्मसे तादात्म्य पाना है। इसीलिए जहाँ युद्ध है, वहाँ भी वह है, यद्यपि अहिंसक होकर है। युद्धसे अलग होनेवाली शान्ति हिंसाके लिए जब कि इंधन है, तब युद्धके समक्ष रहनेवाली अहिंसक कर्मपरायण शान्ति उस हिंसाके लिए भयावह ललकार है। ऐसी शान्तिसे बचनेका प्रश्न स्वयं युद्धके लिए उपस्थित होता है, युद्धसे बचनेका प्रश्न उस शान्तिके लिए नहीं उठता। यही नहीं, बल्कि शान्तिका तो सतत प्रश्न है कि युद्ध कहाँ है, जिससे जहाँ हो, वहीं वह पहुँचे और कहे—'भाई, तुम जानते हो, तुम्हारी वीरता सिर्फ कायरता है। तुम्हारे शस्त्रास्त्रका भय मुझे कैसे हो सकता है, बल्कि उस कारण तुमपर दया होती है! तुमपर संहार सवार है, तो लो, यह मैं हूँ। मुझपर प्रहारकर शायद तुम पहचानो कि मैं दुश्मन नहीं हूँ, बल्कि वह हूँ, जिसके लिए तुम भटक रहे हो।' ऐसी जो शान्ति है, वह संसारके सर्वश्रेष्ठ योद्धासे अलग रह कहाँ सकती है। वह योजनाकी वस्तु नहीं, साधनाकी वस्तु है। इसीसे आजकी शान्ति-योजनाएँ युद्ध-योजकोंकी नक्शेबन्दीका भाग बनी देखी जाती हैं। योजनामें शान्ति नहीं है, जैसे कि फार्मुलामें आग नहीं है। सूरज होकर ही कोई धूप दे सकता है और शान्त होकर ही कोई शान्ति बढ़ा सकता है। अर्थात् जमाव-जुटावसे, संख्या-गणनासे, तंत्रसे और यंत्रसे उसका सम्बन्ध नहीं है। उसका सम्बन्ध आत्मासे और आत्म-संस्कारसे है।

ऊपर तत्त्वकी बात आ गई। उसे ही व्यवहारमें उतारकर देख लेना है। उदाहरणके लिए हालका विश्व-युद्ध लें। सब जानते हैं, उससे पहलेकी वर्साईकी सन्धिके नीचे शुद्ध न्याय नहीं था, शक्ति-न्याय था। शुद्ध न्याय प्रेमका नियम पालता है। प्रेमका नियम है कि असमर्थको वस्तु-जगतकी अधिक सुविधा चाहिए। समर्थ छोड़ सकता है, इसलिए शक्तिमान अशक्तको अधिक देकर और स्वयं कम लेनेको तैयार होगा, अंतमें तो उसे निरीह निपट रहना है। यह है सिद्धान्त प्रेमका, धर्मका, यशका, क्रासका। पर वर्साई-सन्धिने पराजित जर्मनीको अंग-भंगको न्याय माना, अपमानको उसका पुरस्कार बनाया। जर्मनी क्या उस राष्ट्रीय अहं भावनाका ही नाम न था, जो अमुक प्रदेश और अमुक-संख्यक लोगोंको परस्पर मिलाए और उठाए रखे हुए थी? उसकी कृतार्थताकी ओर न ले जाकर दूसरे विशिष्ट राष्ट्रीय अहंकारोंके जुटावके ज़ोरसे तोड़ने और तिरस्कृत करनेकी कोशिश क्या मानवीय न्याय हो सकती थी? तो उसका परिणाम ही न्याय कैसे आता? कुछ ही वर्षोंमें हिटलरमें मूर्त होकर क्या वह राष्ट्र-चेतना, उद्बुद्ध और उद्धत, यूरोपके लिए चुनौती नहीं बन उठी। वर्साई वह समय था, जब हम राष्ट्रीय अस्मिताओंका विष हर लेते और राष्ट्र-भावनाको संस्कार दे पाते। पर अहंकारसे अहंकारको चोट दी, तो परिणाममें उत्क्रुद्ध अहंकारको जन्म लेना ही था।

तिरस्कारमें से अहंकार छोड़ और क्या फूलेगा ?

वर्साईका उदाहरण फिर दोहराया जा रहा है। एक बार फिर शस्त्रोंकी बहुलता और प्रबलताके हाथ जय आई है। जयमें से न्याय-निर्णयका अधिकार आया है। जय शस्त्रकी है, तो निश्चय न्यायको भी शस्त्रमें ही होना होगा। हम देख चुके हैं, और आगेके लिए भी ध्यान रखें कि शक्तिका न्याय वह नहीं है, जो समाधान ला सकेगा। वह दानवी न्याय है, यानी वह अन्यायका बीज बोकर अगली पीढ़ीके नाम युद्धकी फसल काटनेका काम दे जाता है। ठीक है, युद्धको तो होना होगा। अन्याय मानवताकी आत्मामें बिना धड़के बैठ नहीं सकता। उस विकारको फटना और मिटना होगा। युद्ध विकारका विस्फोट है। पर विकार पके और फूटे, तो फिर अपने बीज मनुष्यताके अंतरंगमें और गहरे डाल जाय—क्या चिरकाल तक यही होता रहेगा ? क्या संस्कार आगे आकर विकारसे मोर्चा न लेगा ? क्या हिंसाओंमें ही युद्ध होगा ? क्या एक भी पक्ष कभी मारने से इंकार करके मरनेकी प्रतिज्ञा लेकर आगे न बढ़ेगा कि युद्धकी ही अन्त्येष्टि हो ?

एक आदमी हमारे बीच होकर गया है। महात्मा नहीं कहता, अवतार नहीं कहता ; मैं उसे आदमी कहता हूँ। वह आदमीके सिवा और उससे ज़्यादे कुछ न था। उसने प्रकृतिसे बदला नहीं निकाला कि मुझे नुकीली दाढ़, नाखून और पंजे क्यों नहीं दिए ? शरीरका वैसा बल क्यों नहीं दिया ? नहीं, उसने अपने इन्सान होनेको विनम्र और कृतज्ञ भावसे स्वीकार किया। सींगों, पंजों और दाढ़ोंकी जगह काम देनेको उसने तरह-तरहके हथियार गढ़नेमें पुरुषार्थ नहीं माना। उसने जानवरसे बराबरी नहीं ठानी। उसने माना कि जानवरसे कम हूँ, इसीमें इन्सान हूँ। इस कमीमें ही मेरी भलाई है। इन्सानमें जिस्म कम है कि जिससे दिल ज़्यादे हो सके। और दिमाग़ भी उसे ज़्यादे है। उस ज़्यादा दिमाग़से क्या वह जानवरसे जिस्मकी ताक़तमें कम नहीं, ज़्यादा होना चाहता ? अरे, यह खुद जानवरपन है, जो दिमाग़को उस काममें लगाता है। यह जो इन्सानको दिल मिला है, दिमाग़ क्या उस नेमतको नहीं समझेगा, नहीं सँवारेगा ? इस तरह उस आदमीने अपने दिमाग़को, उसकी रत्ती-रत्ती शक्तिको, अपने या दूसरेकी दरिंदगीको नहीं, इन्सानियतको बढ़ानेमें लगाया।

यह आदमी अब उठ गया है। जीया तब कभी पल-भर वह शान्तिसे न रह पाया। कौन आफ़त थी, जो उसके सिर न टूटी। एक हंगामा चारों तरफ रहा और उसके बीच वह चला किया। बड़े-बड़े उसने मोर्चे लिए और लड़ाइयाँ लड़ीं। आरामकी एक साँस उनके भाग न आई। कर्म-लेख ही उसका ऐसा रहा। क्या-कुछ उसके पास न पहुँचा ? सब विभूति, जो दुनिया चाहती है, उसके इर्द-गिर्द घूमती रही। पर उसके एक कनपर भी हाथ नहीं डाला, मुट्ठी नहीं बाँधी। कुछ अपने-तईं वह न ले सका। चार हाथ कपड़ेसे आगे उसे यहाँ ज़रूरत न हुई। खानेको साग-पात और रहनेकी बाँस-फूँसकी झोंपड़ी उसे नेमत बनी। यह आदमी शान्तिके एकान्तमें नहीं गया। युद्धके घमासानकी तरफ ही उसके क़दम रहे। या कहो, जहाँ पहुँचा, वहाँ उसके साथ आँधी पहुँची। देहात आया, तो वहाँ भी राजों और राजधानियोंकी राजनीति झपट लपकी। लेकिन जैसे राजके और युद्धके जोड़-तोड़ और दाँव-पेंच विनती करते आए और उसने उन्हें पुचकार कर लिया। शान्तिको उसने कहीं भी बाहर नहीं खोजा। सुबह-शामकी प्रार्थनाके सहारे वह उसे अपने अन्दर सँजोए रहा। फिर युद्ध उसका कर्म था, क्योंकि शान्ति उसका धर्म था। इस धर्म-युद्धमें मुसकराहट उसकी ललकार बनी और प्रेम उसका अस्त्र। शत्रु इसमें मित्र हुआ और सगा उसे शत्रु।

यह आदमी निपट आदमीके ढंगसे अभी हाल हमारे बीच जी गया है। एकदम आदमीका था, इससे वह ढंग हमें समझ नहीं आया। बहुत अनोखा वह हमें लगा और कभी तो अचरज हुआ कि यह देवदूत तो नहीं है। लेकिन कुछको दानव भी उसमें दीख आया। शायद अपने हिले स्वार्थके क्षोभमें से उन्होंने देखा हो। वह, जो हो, अपने सीनेपर हमारी गोली खाकर हमें हाथ जोड़ता, मानो हमसे क्षमा माँगता, अपनी विदा ले गया है। अब वह आँखसे ओझल है और उसके भारतमें स्वराज है। स्वराजमें उस आदमीके ही कुछ साथी सरकार बनाकर बैठे हैं। वे उसीकी राह चलना चाहते हैं। उसकी वह चली-चलाई राह तो बिछी दीखती है, पर आगे बतानेके लिए वह खुद पास नहीं है। ऐसे वे साथी बड़ी उलझनमें हैं। तरह-तरहके दुश्मनोंसे घिरकर वे फौजें बढ़ा रहे हैं, पकड़-धकड़ कर रहे हैं, कारखाने बिठा रहे हैं और इस तरह हिन्दुस्तानको सुरक्षित, लैस और मालामाल बनानेकी कोशिशमें लगे हुए हैं। वह आदमी उघाड़े बदन, पाँव-पाँव

चलता था। अपनी श्रद्धामें उसे जल्दी न थी। लेकिन ज़माना जाने कैसा है। इसलिए उससे सीखे, साथियोंको हवाकी गति से और विद्युत्‌के वेगसे चलना हो रहा है। कारण, पश्चिम आगे है और पूर्वको पश्चिमके बराबर होना है।

और इधर पश्चिमी गोलार्द्धमें संयुक्त राष्ट्रसंघकी बैठकें चलती हैं, जो सरगर्म होती हैं। वाद-प्रतिवाद ही नहीं, कामका उत्पादन भी तत्परतासे हो रहा है। जर्मनी, जिसने सिर उठाया था, बिछा पड़ा है और मालूम होता है कि मित्र लोगोंकी शत्रुके खत्म होते ही आपसी मित्रताकी ज़रूरत भी खत्म हो गई है, बल्कि बीचसे शत्रुता उठकर दोनों मित्रोंको अपनी तरफ ललचा रही है। शत्रु मिटा, पर उसका कारण जैसे और नवेली बनी शत्रुता अँगड़ाई लेकर दोनोंको मोह रही है।

ऐसेमें वह आदमी याद आता है, जो इस पूर्णता और अकिंचनतासे जीया कि हमारे शब्दोंकी दुई उसकी सचाई घेर नहीं पाती। वह सौ फी-सदी युद्धका आदमी था, जैसे कि सौ ही फी-सदी वह शान्तिका आदमी था। सच यह कि वह सौ फी-सदी आदमी था। इसलिए इस या उसमें कम-अधिक बँटकर वह नहीं हो सकता था। जिसका था, पूरा-का-पूरा था, और अचरज कि वह सबका था। अनेकता यहाँ वस्तुओं, विधानों और विवादोंकी है। धारणाएँ और कामनाएँ अनेक हैं; पर वह अखंड एक था—इससे निर्धारण और निष्काम था। लौकिक विविधताओंमें एक-सा व्याप्त या विमुक्त था। शायद वह केवल चिन्मय था। ऐसेको दल-मत आपसमें कैसे बाँटकर बैठें? लेकिन भला है कि अब बाहर वह कहीं नहीं है और हम लाचार हैं कि उसे अपने भीतरसे ही पायँ। वहाँके सिवा उसे कहीं देखा, रखा और पाया नहीं जा सकता। ग्रंथोंमें नहीं, म्यूज़ियममें नहीं, समाजों-संघोंमें नहीं, शायद उस अंदरमें ही उसे जगाकर हम आसन्न युद्धको अवसन्न और शान्त करनेकी राह बूझ और बना-बता सकते हैं।

असफल

श्री हंसकुमार तिवारी

वेदनाको तुम न वाणी दे सके!

बाँटता नित ही शलभ है दीपका दुख,
मृत्यु मानो काव्य, जीवन एक आमुख
दीपकी जाती उनींदी रात युगसे
घुट रहा मन और मिलता ही नहीं मुख
इस जलाने और जलनेकी जलनको
बूँद-भर भी तुम न पानी दे सके!

यह पड़ा इस पार, है उस पार कोई
बीचमें दुस्तर विभाजक धार कोई
एक मनकी बँट गई दो दूर, दुनिया
जोड़ता है कामनाका तार कोई
यह भरोसे की चिरंतन वंचना है
और कोई तुम न यानी दे सके!

फूल नभको मुँह किए नित फूटता है
गंधका निश्वास रह-रह छूटता है
चाँद-सूरजके नयन अनिमेष ही हैं
तड़पकर नभका सितारा टूटता है
शब्द वंचित इस व्यथाकी रागिनीको
बाँध सुरमें, तुम न सा-नी दे सके!

स्वप्न उठकर सत्यपर यों फूलते हैं
ज़िंदगी में हम मरण को भूलते हैं
कल्पतरु की आस में आँखें बिछाए
भूमि से ही विमुख पुतले धूल के हैं
कल्पना की इस क्षितिज-सी शून्यता को
क्षीण छवि का तुम न धानी दे सके!

हो न पाता जब हृदयका भार टलमल
टूट कर खाता पछाड़ें श्याम बादल
आह सोंधी गंधकी भर एक ठंढी
हाय, युग-युगसे पड़ा बेहोश भूतल
रूप-दीना विवशताको स्वर्ग-भू की
मूर्त्ति कोई तुम न ध्यानी दे सके!

हम न जीना चाहते, नित जी रहे हैं
हम न मरना चाहते, मर ही रहे हैं
एक भ्रम का थामकर तिनका तुनुक हम
इस अथाह अकूल में बह भी रहे हैं
युग-युगों की इस निरर्थक नित्यता के
आज तक भी तुम न मानी दे सके!

विस्फोट

श्री उदयशंकर भट्ट

नाटकके पात्र

अपरा— नवीन कवयित्री
हरिहर— छायावादी आलोचक
प्रद्युम्न— छायावादी कवि और आलोचक
उमापति— गांधीवादी आलोचक
सिद्धनाथ— प्रगतिवादी आलोचक
संपादक— 'साधना' मासिक पत्रिकाका
शान्तिस्वरूप— जिज्ञासु तथा कवि
श्रोता, छेदी नौकर आदि

[स्थान—एक बँगलेका कमरा। समय—शामके साढ़े पांच बजे। अपरादेवीके बँगलेका सुसज्जित कमरा। आज सायंकाल साढ़े छः बजेसे नगरकी एकमात्र हिन्दी-साहित्य-परिषद्का अधिवेशन होनेके कारण कमरेमें कुर्सियों और कोचोंके बजाय कालीनों और चादरों द्वारा कमरेको सजाया गया है। किनारे-किनारे कई गावतकिए रख दिए गए हैं। उत्तराभिमुख दीवारके साथ छोटी टेबिलपर कुछ मासिक तथा साप्ताहिक पत्र रखे हैं। कमरेके दोनों दरवाज़े बाहर बरामदेकी ओर खुलते हैं और एक दरवाज़ा पश्चिमकी तरफ है। धीरे-धीरे पश्चिमकी तरफसे अपरादेवी एक नौकरके साथ प्रवेश करती है। अपराका सुडौल, स्वस्थ, गौर, सुन्दर शरीर, रुचिपूर्ण परिधान। वयस लगभग सत्ताइस-अट्ठाइस। हाथमें एक छोटी-सी कविताकी कापी।]

अपरा—छेदी, हां, ठीक है। यह टेबिल ज़रा इधर और सरका दो और देखो, कानिस्तके फूलदानोंको ज़रा पीछे हटा दो। ऐसा न हो, ये उठते-बैठते किसीके सिरपर आ गिरें।

छेदी—जी! (वैसा ही करता है)

अपरा—ठीक है। हां, तो अब क्या रह गया?

छेदी—आपने चाय तैयार करनेको कहा था न।

अपरा—हां, हां, चाय तो तैयार होगी ही। यह सामनेकी सिकुड़न ठीक कर दो। (वैसा करनेपर) हां, अब ठीक है। मेरा खयाल है, मैंने तुमसे कुछ और भी कहा था।

छेदी—मिठाई, सरकार!

अपरा—अरे मूर्ख, मिठाई तो है ही। हां, याद आया। (खुलकर) देखो, वह सिगरेटका डिब्बा, दियासलाई और राख झाड़नेकी ट्रे लाकर रख दो। (हाथकी घड़ी देखकर) छः बजकर पैंतीस मिनट हो गए हैं। अभी तक कोई नहीं आया। आने ही वाले होंगे। (इसी समय हरिहरका प्रवेश) आइए हरिहरजी, पधारिए।

हरिहर—अभी और कोई नहीं आया?

अपरा—आ रहे होंगे। समय तो हो गया है, आप बैठिए। गर्मी है, प्यास तो लगी होगी। छेदी, ओ छेदी! कहिए, शरबत पीजिएगा या लेमोनेड? लेमोनेड पीजिए। छेदी, ओ छेदी, देखो, साहबके लिए लेमोनेड लाओ।

(छेदी जाता है)

हरिहर—तो आप आज कौन-सी कविता सुनायँगी?

अपरा—(लज्जा, संकोचसे) मैं क्या जानूँ कविता, वैसे ही कुछ लिख लेती हूँ।

हरिहर—नहीं, नहीं, ऐसी बात नहीं है। जैसा आपका रूप, सौन्दर्य है, कविता भी वैसी ही है। उस दिनवाली कविताने तो रंग जमा दिया था। मुझे नहीं मालूम था कि आप ऐसा सुन्दर लिख लेती हैं।

अपरा—आपकी कृपा है हरिहरजी, अन्यथा मैं क्या हूँ। आप तो बहुत बड़े आलोचक हैं। जिसपर आपकी कृपा हो··· मैं चाहती हूँ...(छेदी लेमोनेड लाकर देता है)

हरिहर—(गिलास लेकर पीता हुआ) मैं तो आज ही आपके बँगलेपर आया। स्थान बड़ा रमणीक है।

अपरा— यह कोठी हमने पिछले साल बनवाई है। मैं चाहती हूँ, अपनी इन तुकबन्दियोंको पुस्तकाकार छपवा दूँ। मेरी सहेलियाँ बहुत ज़ोर दे रही हैं।

हरिहर—अवश्य, अवश्य। भला, यह भी कोई कहनेकी बात है। (छेदीसे) ऐ, देखो!

अपरा—यह गिलास ले जाओ, छेदी!

हरिहर—रमणीसे ही स्थान रमणीक बनता है। ज्ञात होता है, प्राचीन आचार्योंने रमणीकका जो 'सुन्दर' अर्थमें प्रयोग किया है, वह रमणीके कारण ही।

अपरा—(गर्व, मुस्कराहटके साथ) खूब! क्या व्याख्या की है आपने! किन्तु मेरे घरके लिए तो यह व्याख्या....

हरिहर—अपरादेवी, आप सचमुच अपरा हैं। कवितामें जिस नारी-सौन्दर्यकी कवि कल्पना करता है, आलोचक जिस सौन्दर्य-वर्णनकी कविसे आशा करता है, वह वाह्य दृष्टिसे आपमें है।

अपरा—और अन्तर्दृष्टिसे?

हरिहर—(झेंपकर) वाह्यसे ही तो अन्तरकी परीक्षा होती है, जैसे धुएँको देखकर अग्निका अनुमान किया जाता है।

अपरा—(वक्रिमासे) तो मेरा रूप धुएँके समान हुआ (जैसे कुछ नाराज़ हो गई हो)!

हरिहर—(घबराकर) नहीं, नहीं, हरगिज़ नहीं। आप बिल्कुल ग़लत समझीं। यह तो दृष्टान्तमें यहाँ केवल कार्य-कारण-भावसे सम्बन्ध कहा है मैंने। फिर भी मुझे यह कहना चाहिए, जैसे बिजलीके प्रकाशको देखकर उसके अंतरंगका ज्ञान किया जाय।

अपरा—क्या आप मेरी कविताओंपर एक छोटी-सी भूमिका लिख देनेकी कृपा करेंगे?

हरिहर—अवश्य, अवश्य। भला, आप ऐसा क्यों कहती हैं, अपरादेवी? आपकी कविताओंपर लेख भी लिखूँगा। आप देखेंगी, थोड़े ही दिनोंमें आपकी गणना....[प्रद्युम्न, उमापति, सिद्धनाथ और शान्तिस्वरूपका प्रवेश। प्रद्युम्न हरिहरकी तरह छायावादी कवि और आलोचक है। उमापति गांधीवादी लेखक और कहानीकार है। सिद्धनाथ प्रगतिवादी है। शान्तिस्वरूप कवि है। इसके साथ कुछ अन्य सदस्य भी प्रवेश करते हैं। हरिहर अपरासे वैसे ही बातें करता हुआ] हाँ, तो मैं आपसे कह रहा था कि कला जीवन-सापेक्ष्य है। जब तक दोनोंमें आधार-आधेय-सम्बन्ध होगा...

प्रद्युम्न—(बैठते हुए) यों कहो, कला ही जीवन है।

उमापति—गांधीवाद जीवनको ही कला मानता है। उसमें आधार-आधेय-सम्बन्धके लिए स्थान ही नहीं है।

हरिहर—अपना-अपना मत है, अपरादेवीजी! मैं कलाको जीवन-सापेक्ष्य मानता हूँ। कला जीवनका प्रत्यक्षीकरण है। कलाहीन जीवन प्रगतिवाद है। (सब हँसते हैं।)

सिद्धनाथ—(तिलमिलाकर) तुमने प्रगतिवादको समझा ही नहीं, हरिहर! तुम्हारा अध्ययन अधूरा है। एक छायावादी आलोचक प्रगतिवादके सम्बन्धमें इससे अधिक भ्रान्त धारणा नहीं बना सकता।

उमापति—प्रगतिवादसे तुम्हारा क्या तात्पर्य है? गांधीवाद भी सबसे बड़ा प्रगतिवाद है।

प्रद्युम्न—गांधीवादी भी प्रगतिवादी हो सकता है, छायावादी भी।

सिद्धनाथ—गांधीवादको प्रगतिवादी मानना प्रगतिवादका अपमान है। वह तो एकमात्र प्राचीनतावादी है। पुराने समयको फिरसे लानेकी कल्पना करनेवाला, मशीन-युगका विरोधी।

शान्तिस्वरूप—(बगलसे एक मासिकपत्र निकालकर) मैं आप लोगोंसे एक बात पूछना चाहता हूँ।

हरिहर—हाँ, आप सब लोग आ गए हैं, कार्यवाही प्रारम्भ होनी चाहिए।

शान्तिस्वरूप—आप सब आलोचक यहाँ बैठे हैं, इसीलिए मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ। (सारे आलोचक इसे अपना गौरव समझते हैं।)

सब—हाँ-हाँ, पूछिए न। हमारी सभाका एक उद्देश्य यह भी है कि साहित्यके सम्बन्धमें जिज्ञासा-पूर्ति की जाय।

अपरादेवी—सभापतिका निर्वाचन कर लीजिए। (दो-तीन स्त्रियोंका प्रवेश) आओ बहन, आओ। इधर बैठो।

शान्तिस्वरूप—इस युगके श्रेष्ठ कवि नगेशजीकी यह कविता 'साधना'के नये अंकमें प्रकाशित हुई है।

हरिहर—मैंने वह कविता पढ़ी है, सुन्दर कविता है।

प्रद्युम्न—घोर छायावादी, किन्तु क्रान्तिकारी।

उमापति—वह गांधीवादका श्रेष्ठ उदाहरण है।

सिद्धनाथ—आँख खोलकर पढ़िए, वह एकदम प्रगतिवादी कविता है।

शान्तिस्वरूप—हो सकता है, वह गांधीवादी, छायावादी अथवा प्रगतिवादी कविता हो, मैं उसका अर्थ जानना चाहता हूँ।

एक आवाज़—कविताका अर्थ समझना हो, तो स्कूलमें जाइए साहब, यह पाठशाला नहीं है।

दूसरी आवाज़—विद्वद्गोष्ठीमें किसी बातको समझना बुरा तो नहीं है।

तीसरी आवाज़—हरिहरजी हिन्दीके श्रेष्ठ आलोचक हैं।

पहली आवाज़—प्रद्युम्नजी भी किसीसे कम नहीं हैं।

चौथी आवाज़—आलोचक तो बस एक है सिद्धनाथ कामरेड !

शान्तिस्वरूप—भाइयो, मैं जानता हूँ, यह पाठशाला नहीं है; किन्तु यह व्यर्थ समय खोनेका स्थान भी नहीं है। सौभाग्यसे इस समय हिन्दीके श्रेष्ठ आलोचक उपस्थित हैं। यदि आप आज्ञा दें, तो मैं उनसे निवेदन करूँगा कि वे उक्त कवितापर अपनी सम्मति दें। उक्त कवितापर कई प्रकारके मत हैं, उसका अर्थ समझा दें।

कुछ लोग—अवश्य, अवश्य। हाँ साहब, कहिए, क्या कहना है? यह भी खूब रही !

एक श्रोता—तुम भी यार बड़े घोंचू हो। कुछ कहानी-वहानी सुनते, कुछ कविता-अविता होती, तो कुछ मज़ा भी आता।

दूसरा श्रोता—तुम नहीं जानते, इस कवितापर बड़ा वितंडा उठ खड़ा हुआ है। कुछ लोगोंकी राय है, यह नगेशजी की निकम्मी कविता है, कुछ इसे उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानते हैं।

तीसरा श्रोता—भली जी, क्या खूब ! हाँ साहब, सुनाइए, वह क्या कविता है ?

हरिहर—(उठकर) शान्तिस्वरूपजीका प्रश्न बड़े महत्वका है। मैं उससे सहमत हूँ कि इस कवितापर विचार होना चाहिए। (लोग 'हाँ-हाँ, कहिए' कहते हैं) मैं एक आलोचककी दृष्टिसे कह सकता हूँ कि नगेशजीकी यह कविता उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसमें छायावादी काव्य-सौन्दर्यके स्तर धीरे-धीरे खुलते जाते हैं। जीवन और सौन्दर्यका इतना अच्छा विश्लेषण बहुत कम अन्यत्र देखनेमें आया है। मानो कविकी अनुभूति संवेद्य चेतना इन पंक्तियोंमें आकर एकत्र हो गई हो।

सिद्धनाथ—(खड़ा होकर) मेरे मतमें यह कविता उनकी सर्वश्रेष्ठ प्रगतिवादी रचना है।

हरिहर—यह शिष्टाचारके विरुद्ध है कि आप बीचमें बोलें।

सिद्धनाथ—मैंने अपना मत व्यक्त किया है। यदि तुम्हें बोलनेका अधिकार है, तो मुझे भी है।

हरिहर—मैं मानता हूँ, किन्तु जब मैं बोल रहा हूँ, तब तो आपको नहीं बोलना चाहिए।

एक श्रोता—यह बुर्जुआ शिष्टाचार है, साहब ! हाँ, कामरेड, तुम बोलो।

दूसरा श्रोता—क्या शिष्टाचार भी बुर्जुआ होता है ?

पहला श्रोता—अवश्य, यह सामन्त-युगकी देन है। प्राचीन कालमें राजा जब बोलता था, तब वह दूसरे लोगोंकी ज़बान बन्द कर देता था। दूसरे लोग चुपचाप सिर झुकाए सुना करते थे।

हरिहर—सुनिए, तो मैं आपसे कह रहा था कि...

उमापति—क्या खूब ! हरिहरजी, आप भी खूब हैं ! अरे भले आदमी...

दूसरा श्रोता—हरिहरजीको बोलने दीजिए, साहब !

उमापति—(खड़ा होकर) मैं हरिहरजीसे प्रार्थना करूँगा कि हवाई लड़ाई क्यों कर रहे हैं। पहले लोगोंको कविता तो सुना दीजिए, जिससे वे आपकी बातें समझ सकें।

एक श्रोता—यह धूलमें लट्ठ मारा जा रहा है। (हँसता है) आलोचक हैं, आलोचक ! कोई मज़ाक थोड़े ही है !

हरिहर—मैं आपको कविता सुनाता हूँ। शान्ति भाई, (हाथ बढ़ाकर) ज़रा दीजिए तो वह कविता।

शान्तिस्वरूप—कविता मैं ही क्यों न सुना दूँ। मैं चाहता हूँ, कविता सुनाकर जो-कुछ मुझे कहना है, वह कह लूँ, फिर उसपर विवाद हो।

उमापति—चलिए, आप ही सुना दीजिए।

(शान्तिस्वरूप कविता पढ़ता है)

स्वर्ग-नरक, सृष्टि-स्थिति-जीवन प्राण प्रलय चंचल-स्थिर,
विश्व-प्रकृतिकी चरम विकसिता, आभा-सी मधु स्मृति चिर,
प्रतिक्षण आविलमें डाल रही, प्रतिक्षण कर्दममें पाल रही,
चिर-सृष्टि रूप चिर-सुखमयि तू चिर-दृष्टिकूट चिर-दुखमयि तू,
जन-जन-मनसे रूढ़िवादका व्यावर्त्तन कर फिर-फिर,
स्वर्ग-नरक, सृष्टि-स्थिति-जीवन, प्राण प्रलय चंचल-स्थिर।

शान्तिस्वरूप—यह नगेशजीकी 'साधना'के प्रथम पृष्ठपर प्रकाशित कविता है। संपादकने इस कविताके नीचे एक नोट दिया है, वह भी सुनिए : "नगेशजीकी यह क्रान्तिकारी रचना प्रकाशित करते हुए हमें हर्ष हो रहा है। उस दिन जब यह छपने जा रही थी, तभी अपने युगके एक आलोचक इसे पढ़कर सहसा कह उठे—वाह, नगेशजी सचमुच इस युगके सर्वश्रेष्ठ कवि हैं ! कितने प्राण हैं इस रचनामें ! हमारा विश्वास है, पाठक इस रचनाको पढ़कर तृप्ति-लाभ करेंगे।—संपादक।"

श्रोता लोग—(आलोचकोंकी वाह-वाह करते सुनकर) वाह-

वाह, कितनी सुन्दर रचना है !

शान्तिस्वरूप—'साधना'-संपादककी आज्ञाशिरसा स्वीकार करने के बाद भी मैं इस रचनाका पूर्वापर नहीं समझ पाया।

एक श्रोता—हां भाई, अर्थ नहीं समझमें आया। तुम समझे ?

दूसरा श्रोता—(घबराकर) मैं, मैंने तो सुनी ही नहीं।

हरिहर—सौभाग्यसे मैं उस समय 'साधना'-संपादकके पास बैठा था।

प्रद्युम्न—मैंने छपनेसे पूर्व यह कविता पढ़ी है।

सिद्धनाथ—यह कविता शुद्ध प्रगतिवादी है। 'जन-जन-मनसे रूढ़िवादका व्यावर्त्तन कर फिर-फिर...!' और प्रगतिवाद किसे कहते हैं। वाह खूब ! (पंक्ति दोहराता है)

उमापति—यह पंक्ति शुद्ध गांधीवादको दृष्टिमें रखकर लिखी गई है। 'जन-जन-मनसे रूढ़िवादका व्यावर्त्तन कर फिर-फिर...!' ज्ञात होता है, जन-जन-मन कहकर कवि जन-जनके मनको झनझना रहा हो। (दोहराकर) 'जन-जन-मनसे रूढ़िवादका व्यावर्तन कर फिर-फिर...!' इस कवितामें कविने 'व्यावर्त्तन' द्वारा रामराज्यकी कल्पना की है।

एक श्रोता—'व्यावर्त्तन' क्या ? उसका अर्थ भी कीजिए न।

दूसरा श्रोता—चुपचाप सुनते जाओ, बीचमें मत बोलो।

सिद्धनाथ—'रूढ़िवादका व्यावर्त्तन' यह कैसे सम्भव हो सकता है ?

शान्तिस्वरूप—हां, मैं चाहता हूँ, 'व्यावर्तन'का अर्थ समझा दिया जाय।

हरिहर—मेरा विचार है, प्रद्युम्नजी इसपर अपनी सम्मति प्रकट करें। आलोचनाके क्षेत्रमें उनका अपना स्थान है।

प्रद्युम्न—प्रारम्भ तुमने किया था, तुम्हीं कहो। मुझे जो-कुछ कहना होगा, बादमें कहूँगा। किन्तु इतना मैं मानता हूँ कि यह शुद्ध छायावादी कविता है। छायावादी कविताके के सारे तत्त्व इसमें विद्यमान हैं।

अपरा—यदि आप लोग आज्ञा दें, तो मैं कुछ कहूँ।

सब—अवश्य, अवश्य।

अपरा—मेरी तुच्छ बुद्धिमें इस कविताका अर्थ ही समझमें नहीं आया। कृपया पहले इसका अर्थ कर दीजिए। फिर वाद-विवाद हो, तो अच्छा।

एक श्रोता—कविता सुनते समय तो सबने ऐसे सिर हिलाया, मानो विश्व-ब्रह्माण्डका ज्ञान पचाए बैठे हैं।

दूसरा श्रोता—तुम चुपचाप मज़ा लो, देखते जाओ।

उमापति—हां, भाई हरिहर, कहो न।

सिद्धनाथ—अर्थपर ही तो मतभेद है।

शान्तिस्वरूप—मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह कविता कविने किस वस्तुको लक्ष्य करके लिखी है ?

हरिहर—यदि आप लोग चाहें, तो मैं इसकी व्याख्या कर सकता हूँ।

प्रद्युम्न—आलोचक व्याख्या ही कर सकता है। हां, हरिहरजी, कहिए।

हरिहर—इसमें कविने चिन्ता, अनुभूतिकी अन्विति की है। कविका तात्पर्य है, स्वर्ग और नरकके निर्माणमें, सृजन और स्थितिमें, प्राणोंके प्रलय तथा उसके जीवनमें सदा ही विश्व-प्रकृतिका विकास होता रहता है।

एक श्रोता—क्या प्रलयमें भी प्रकृतिका विकास होता है ?

हरिहर—(झल्लाकर) हां, प्रलयमें भी विकास होता है। सृष्टि की गतिकी चरमावस्था प्रलय है। चरमावस्थाका नाम ही विकास है। सुनिए तो, (गलेका घूँट गुटककर) हां, मैं कह रहा था, इस कवितामें कविने जीवनके सभी तत्त्वोंका समावेश कर दिया है, इसीलिए कवि कहता है : 'विश्व-प्रकृतिकी चरम विकसिता आभा-सी मधु स्मृति चिर...!' विश्वके मानवमें परस्पर भेद है। कुछ स्वभावगत, कुछ परिस्थितिगत उसमें व्यक्ति, काल, देशका व्यवच्छेद रहता है। फिर भी मानव-मात्रके सम्पूर्ण चेतनकी हम चार वृत्तियाँ मानते हैं—उन्नता, सहायिका, सचेतना और अचेतना। अचेतना जड़ है, जो सृष्टि-मात्रमें व्याप्त है। यदि हम चारोंको विश्वकी सीमामें बद्ध कर दें...

शान्तिस्वरूप—क्षमा कीजिए, आपकी की व्याख्या तो कवितासे भी दुरूह है। मैं तो कुछ भी न समझ सका।

एक श्रोता—आलोचक हैं, कोई हँसी-मज़ाक है ! नहीं सुनना था, तो घरपर बैठे होते। अब पूछा है, तो सुनना पड़ेगा।

हरिहर—मुझे खेद है, मैं इससे नीचे स्तरपर नहीं उतर सकता। यदि आप नहीं सुनना चाहते, तो मैं बैठ जाता हूँ।

अपरा—तो आप कुछ ऐसी बात कहिए, जो समझमें भी आवे।

दूसरी स्त्री—यह आपने मनोविज्ञानकी मनकी चार वृत्तियोंका वर्णन किया है। वे ठीक हैं, किन्तु इससे अर्थ तो स्पष्ट नहीं होता। मेरी प्रार्थना है, हमें मूर्ख जानकर कुछ समझानेकी कृपा कीजिए।

तीसरी स्त्री—प्रश्न यह है, यह दर्शन है अथवा काव्य ?

एक श्रोता—यह नगेशजीकी कविता है और हरिहरजीकी आलोचना, इससे अधिक और कुछ भी नहीं है।

दूसरा श्रोता—यह कविता क्या कविने दार्शनिकोंके लिए लिखी है या हमारे लिए ? फिर जन-साधारणकी पत्रिका 'साधना' में क्यों प्रकाशित की गई ?

प्रद्युम्न –(खड़ा होकर) ज्ञात होता है, आपने कविता कोई हँसी-ठट्ठा समझ रखा है कि किसीने पढ़ी और आपने वाह-वाह कर दी !

एक श्रोता—तो क्या हम यहाँ समाधि लगाने आए हैं ? सीधे-सादे ढंगसे अर्थ कीजिए, तो कुछ समझमें भी आवे।

हरिहर—कविता हृदयके रससे पूर्ण होती है। जब कविकी अनुभूति चरम दशाको पहुँच जाती है, तभी स्वतः प्रेरणाके रूपमें वह फूट पड़ती है।

एक श्रोता—यह आपकी बात हमारी समझमें आई। अगर इसी तरह अर्थ करें, तो कविताका रस भी प्राप्त हो।

हरिहर—(बैठता हुआ) मुझे खेद है, मैं इससे नीचे स्तरपर नहीं उतर सकता। आपको ज्ञात है, शेक्सपियरकी एक-एक लाइनपर आलोचकोंने पृष्ठ-के-पृष्ठ रँग डाले हैं। प्रद्युम्नजी, आप ही इन्हें समझाइए।

एक स्त्री—ज़रा 'व्यावर्त्तन'का अर्थ भी समझाइए।

हरिहर—'व्यावर्त्तन के कई अर्थ हैं। मैंने उक्त पंक्तिपर विचार नहीं किया कि वहाँ कौन-सा अर्थ ठीक बैठता है।

प्रद्युम्न—बात यह है, पाठक काव्यका रस दो तरहसे प्राप्त करता है—एक सामूहिक रूपसे और दूसरा प्रतिपद रसप्लावन द्वारा। आलोचककी दृष्टि कविके दूरस्थ ध्येयकी तरफ़ होती है। आलोचक वहीं पहुँचता है, वहाँसे फिर प्रत्येक पंक्तिका रस ग्रहण करता हुआ व्याख्या करता है। यह तो स्पष्ट है कि नगेश साधारण कवि नहीं है। वह इस युगका श्रेष्ठ कवि है। मैं आप लोगोंके लिए कह रहा हूँ...स्पष्ट है, उसने जो-कुछ लिखा है, वह व्यर्थ या बकवास नहीं हो सकता। अवश्य उसमें कोई-न-कोई महत्ता है, जिसे आलोचकको ढूँढ़ना होगा। यदि हरिहरजीकी प्रशंसा न समझी जाय, तो मैं कहूँगा कि वे आजके श्रेष्ठ आलोचक हैं।

एक स्त्री—तो आप इस धारणाको लेकर चलते हैं कि नगेश साधारण कवि नहीं है, इसीलिए उसकी कोई रचना साधारण स्तरकी नहीं हो सकती ?

एक श्रोता—इसमें भी कोई सन्देह है। भला, नगेशकी भी कोई रचना साधारण समझी गई है! उसकी प्रत्येक रचना मासिक पत्रोंके प्रथम पृष्ठपर छपती है और हम न समझमें आनेपर भी विश्वास कर लेते हैं कि यह उक्त कविकी महान रचना है !

सिद्धनाथ—मैं आपसे एक बात कह सकता हूँ कि नगेशजीकी पिछली रचनाओंमें बुर्जुआपन है, इसलिए उनके छन्द, लय, काव्य एकदम गतिहीन हो गए हैं। इधर कुछ दिनोंसे हमें विश्वास होने लगा है कि वे प्रगतिवादकी तरफ़ बढ़ने लगे हैं—अर्थात् उनकी विचारधारामें भारी उथल-पुथल मच रही है। वे व्यक्तिगत न होकर सामूहिक रूपसे मनुष्य एवं मनुष्यगत काव्य-तत्त्वोंको आधार मानकर लिखने लगे हैं। इस कवितामें स्पष्ट ही कविने 'जन-जन मनसे रूढ़िवादका व्यवर्त्तन' माना है।

एक श्रोता—जब तक कवि जनताका कवि नहीं बनता, तब तक उसकी कविताका कोई महत्त्व नहीं है।

दूसरा श्रोता—जनाब, कवि भटियारा नहीं है, जो हर ऐरे-ग़ैरे नत्थू-खैरेकी बातें लिखे।

सिद्धनाथ—जीवन व्यक्ति नहीं है, वह समष्टि है। जो समष्टिका ध्येय लेकर चलता है, लोग उसीकी कविता पढ़ते हैं। एक महलकी अपेक्षा धर्मशालाका अधिक महत्त्व है। तुम्हारे घरमें संगमरमरका फ़र्श है, तुम्हारे पास मोटर है, यह कौन जानता है ? एक आदमीके पेट भरकर खा लेनेसे सारा देश सुखी नहीं कहला सकता।

शान्तिस्वरूप—किन्तु 'व्यावर्त्तन'का अर्थ तो समझा दीजिए।

हरिहर—(झल्लाकर) 'व्यावर्त्तन'का अर्थ है प्रत्यावर्तन। किन्तु मेरे पास इस बातके प्रमाण हैं कि कवि साम्यवादी नहीं है। एक कवितामें, जो हालमें ही प्रकाशित हुई है, कविने कहा है....

अपरा—ठीक इस तरह हम वादका एक खण्ड समाप्त कर सकेंगे।

हरिहर—ठहरिए, ज़रा याद कर लूँ...वह है (याद करता हुआ) 'आत्महीन...' न-जाने आगे क्या है।

शान्तिस्वरूप—आप ठीक कहते हैं। वे पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:

आत्महीन, अध्यात्महीनका सम्भव नहीं प्रकृत मन;
चिर-ईश्वर ही ध्येय विश्वका वह चिर-नव-मन-चेतन !

हरिहर—अब आपको विश्वास हो गया कि कवि मार्क्सवादमें विश्वास नहीं करता। वह ईश्वरको नहीं छोड़ सकता।

दूसरा श्रोता—तो अब तक सिद्धनाथजी हवाई-क़िले ही बना रहे थे!

तीसरा श्रोता—तुम नहीं जानते, दौड़ते घोड़ेकी क़ीमत ज़्यादा होती है।

चौथा श्रोता—इन प्रगतिवादियोंने सोचा, लाओ, नगेशकी कविता का बहाना लेकर लोगोंको बहकावें, ताकि प्रगतिवाद...

पाँचवा श्रोता—नगेशको हमने प्रगतिवादी दलसे निकाल दिया है। यह देखिए, कलके 'सारस' पत्रमें संपादकने लिखा है...

पहला श्रोता—हाँ साहब, क्या लिखा है, वह भी सुना दीजिए।

उमापति—इससे स्पष्ट हो गया कि कवि गांधीवादी है। गांधी पर उसकी ओजस्विनी कविता भी है।

सिद्धनाथ—आज मेरा भ्रम दूर हो गया। वैसे मैंने हृदयसे नगेशको कभी कवि नहीं माना, वह तुक्कड़ है—भ्रान्त, पूँजीवादी रोगसे ग्रस्त, दुर्बल, पुंसत्वहीन कवि।

अपरा—आपने 'व्यावर्त्तन'का अर्थ प्रत्यावर्त्तन कर डाला। यदि मैं भूलती नहीं हूँ, तो प्रत्यावर्त्तनका अर्थ है वापस लौटना। तो क्या इस कवितामें कवि हमें रूढ़िवादकी ओर लौटनेका आदेश दे रहा है?

प्रद्युम्न—यहाँ हमें रूढ़िवादका वाच्यार्थ न लेकर लक्ष्यार्थ लेना होगा—अर्थात् वैदिक युग, रामराज्यकी ओर लौटना।

एक श्रोता—वाह प्रद्युम्नजी, वाह! क्या व्याख्या की है आपने!

सिद्धनाथ—यदि रूढ़िवादका अर्थ रामराज्य है, तो इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि मनुष्य मूल प्रकृति, नंगेपनकी ओर जाय, या जहाँसे आया है, उसी तरफ़ क्यों न चले। स्पष्ट ही यह न कविता है, न कुछ—व्यर्थकी बकवास है। बेतुके, बेमतलब शब्दोंका जोड़ है, जिन्हें यह कवि नामधारी जीव स्वयं ही नहीं जानता। यह कवि उस बच्चेकी तरह है, जो कभी रोता है, कभी हँसता है और कभी अतुकांत, असम्बद्ध प्रलाप करता है।

एक श्रोता—मनुष्यका यह रूप भी बड़ा शोभन है, जो अभी-अभी एक घड़ी पहले जिसकी प्रशंसा करते नहीं थकता था, वह अब झाड़ू लेकर उसके पीछे पड़ गया है!

दूसरा श्रोता—क्या सिद्धनाथ भी उस अबोध बच्चेकी तरह नहीं हैं, जो अभी प्रशंसा कर रहे थे और अब गाली दे रहे हैं? अपने जालमें आप ही फँस रहे हैं!

हरिहर—यही सिद्धान्तवाद है! (हँसता है)

प्रद्युम्न—यह प्रगतिवाद है! (हँसता है)

सिद्धनाथ—(ठठाकर) नहीं, छायावाद है साहब, नपुंसकतावाद!

हरिहर—नपुंसकतावाद प्रगतिवाद होगा। ज़बान संभालकर बोलो।

सिद्धनाथ—सुनो हरिहर, तुम आलोचक होगे, तो यहाँ भी कम आलोचक नहीं हैं। ज़्यादा बकोगे, तो उठकर दो पटखनी लगाऊँगा कि छठीका दूध याद आ जायगा। मैं कहता हूँ और फिर कहता हूँ, छायावाद नपुंसकतावाद है, जिसमें न स्वस्थ सौन्दर्य है, न स्वस्थ ज्ञान। इधर-उधरके बीस-तीस शब्द सुन-सुनाकर, कुछ अधूरा दर्शन देख-दाखकर, तुकबन्दी करने लगे, जिसका न मनुष्यसे सम्बन्ध है, न जीवनसे, न जगतसे, न किसीसे। अपनी अतृप्त वासनाके आवरणमें ईश्वर, प्रकृतिका बहाना लेकर ये टुटपूँजिए जो कहने लगे, वह हो गया छायावाद!

प्रद्युम्न—(सहमकर) सुनो सिद्धनाथ, तुम प्रगतिवादी बनकर हमें डराना चाहो, तो हम डरनेवाले नहीं हैं। हम जानते हैं, तुम्हें शास्त्रोंका कितना ज्ञान है। मार्क्स पढ़कर, इधर-उधरसे सुनकर मज़दूर-किसानोंका हित चिल्लाने-मात्रसे तुम आलोचक नहीं बन सकते। तड़ाक-फड़ाक, पटखनी देने या व्यंग्य द्वारा गाली देने-मात्रसे कोई आलोचक नहीं बन सकता। जिसे 'व्यावर्त्तन'-जैसे शब्दका अर्थ नहीं आता, जिसे काव्यकी पूर्वापर संगतिका ज्ञान नहीं है और जो हीन स्तरकी, केवल मज़दूर-किसानोंकी दुहाई देकर लिखी गई तुकबन्दियोंको श्रेष्ठ काव्य मानता है, हम जानते हैं, वह कैसा प्रगतिवादी आलोचक है।

सिद्धनाथ—तुम मूर्ख हो।

प्रद्युम्न—तू मूर्ख, गधा, पाजी। (अकड़कर) बोलता ही जाता है!

सिद्धनाथ—गाली देगा, तो मुँह तोड़ दूँगा, उल्लू कहींका!

हरिहर—बको मत, सिद्धनाथ!

सिद्धनाथ—तुम मत बको, बदमाश कहींके।

प्रद्युम्न—तू बदमाश।

सिद्धनाथ—अबे, मैं कहता हूँ, मुँहमें लगाम लगा, नहीं तो ज़रा-सी देरमें ज़मीन चाटता दिखाई देगा। (बाँहें चढ़ाता है)

प्रद्युम्न—बहुत मत बोल। जा, मुँह काला कर।

सिद्धनाथ—(प्रद्युम्नको गलेसे पकड़कर) बोल, घोंट दूँ गिची?

प्रद्युम्न—(गला दबनेसे) मार...मार....साले !

एक स्त्री—हाय, हाय, बेचारेको मारे डालता है ! बचाओ ।

दूसरी स्त्री—चलो, भागो। भागो यहांसे। अच्छी कविता सुनने आई हम लोग। (लोग छुड़ाते हैं : हटो, मूर्ख मत बनो। ज़रा-सी कविताके पीछे लड़ने लगे ! दो पार्टियां बन जाती हैं।)

पहली पार्टी—सारा दोष सिद्धनाथका है। इसीने पहल की है। इसीने गाली दी है।

दूसरी पार्टी—ग़लत बात है। सारा दोष प्रद्युम्नका है। वही बदमाश है।

पहली पार्टी—चुप रहो।

दूसरी पार्टी—तुम चुप रहो।

अपरा—(चिल्लाकर) आप लोग ज़रा-सी बातके पीछे लड़नेके लिए पागल हो उठेंगे, ऐसी आशा मुझे नहीं थी। यह सभ्य लोगोंका काम नहीं है। यहां स्त्रियां हैं, सभ्य लोग हैं। बड़ा ही खेद है कि हम लोग इन बातोंके पीछे मनुष्यता भी खो बैठें।

(सब लोग अपनी-अपनी जगह बैठ जाते हैं। प्रद्युम्न कुर्ता झाड़ता है। सिद्धनाथ ज़ोरसे सांस लेता हुआ कभी-कभी प्रद्युम्न और हरिहरको देखता है। शान्तिस्वरूप इस लड़ाईका ध्यान न करके कभी-कभी नगेशकी कवित पढ़ता है। दो पार्टियोंमें विभक्त होकर लोग नीचेको निगाह किए बैठ जाते हैं। इसी समय 'साधना'-संपादक प्रवेश करता है। अपरा उसे देखकर 'आइए, बैठिए' कहती है। फिर चुप बैठ जाती है।)

संपादक—(थोड़ी देर तक सब तरफ देखता हुआ) क्या बात है, इतनी चुप्पी क्यों है ? अरे खूब ! मालूम होता है, जैसे सांप सूँघ गया हो। क्या हुआ ? कुछ कहोगे भी। अपरादेवीजी, आप ही कहिए, क्या हुआ ? हरिहर, तुम्हारी ज़बान तो कभी रुकती ही नहीं थी।

एक श्रोता—संपादकजी, छायावाद-प्रगतिवादमें कौन पुंलिंग है, कौन स्त्रीलिंग ?

संपादक—छाया और प्रगति दोनों स्त्रीलिंग हैं और वाद पुंलिंग।

दूसरा श्रोता—तभी-तभी, इसीलिए खून होते-होते बच गया।

संपादक—खून, क्या कहते हो, खून ! बताओगे भी।

एक श्रोता—संपादकजी, नगेशजीकी कविताने क्रान्ति कर दी थी। वह तो कहो....

दूसरा श्रोता—क्रान्ति होते-होते रह गई।

संपादक—नगेशजीकी कविताने ? यह तो मैं देख रहा हूँ, पर बात क्या हुई ? क्यों हरिहर !

हरिहर—सिद्धनाथसे पूछो।

संपादक—क्यों सिद्धनाथ !

सिद्धनाथ—मुझसे क्या पूछते हैं आप। पूछिए इन्हीं लोगोंसे।

उमापति—नगेशजीकी कविताने लोगोंको पागल बना दिया। हरिहर और प्रद्युम्न कह रहे हैं कि 'साधना'में प्रकाशित यह कविता छायावादी है। मैं कहता हूँ, यह गांधीवादी है। सिद्धनाथ कहते हैं, यह प्रगतिवादी है।

एक श्रोता—अब कहां कहते हैं, प्रगतिवादी है ?

उमापति—हां, अब नहीं कहते। सब कहते हैं, नगेश कवि नहीं है, तुक्कड़ है। बस, इसी बातपर, इसी समर्थनमें तू-तू मैं-मैं हो गई। हाथापाईकी नौबत आ गई।

संपादक—बस, (हँसता है, हँसता ही जाता है) खूब!

एक श्रोता—संपादकजी, आप भी खूब हैं, हँस रहे हैं !

दूसरा श्रोता—मैं तो मान गया, आपने 'साधना'में जो-कुछ लिखा है, वह ठीक है। सचमुच उस कविताने क्रान्ति कर दी।

संपादक—(हँसते हुए) अपरादेवी, आप मुझे क्षमा करें।

अपरा—आखिर आप इतना हँस क्यों रहे हैं ?

संपादक—हँस इसलिए रहा हूँ कि नगेशने हमको खूब बेवकूफ बनाया।

सब—(हैरान होकर) क्या कहते हैं, आप !

संपादक—(हँसता हुआ) मैं जो कहता हूँ, उसका मेरे पास प्रमाण है। 'साधना'में प्रकाशित उस कविताके संबंधमें नगेशने मुझे एक पत्र लिखा है। बड़ा दिलचस्प पत्र है। (सब लोग आश्चर्य-चकित होकर कहते हैं – पत्र !) हां, पत्र। उसमें मेरी भी मरम्मत की गई है और आलोचकों को अच्छा खासा मूर्ख बनाया गया है।

अपरा – सारी लड़ाईकी जड़ वह कविता है। हां, सुनाइए।

संपादक—नगेशजी लिखते हैं : "मेरी वह रचना आपने 'साधना'में प्रकाशित कर दी, इसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। आपको ज्ञात है, मैं पिछले तीस वर्षसे कविताएँ लिखता आ रहा हूँ। मैंने उसके द्वारा यथेष्ट यश प्राप्त किया है।" आप लोग सुन रहे हैं न ?

सब--हाँ, कहते चलिए।

संपादक—वे लिखते हैं : "उस दिन मैं गंगा-तटपर बैठा था। अचानक मेरे मित्र कह उठे—क्या आप तत्क्षण कविता बना सकते हैं ? मैंने उत्तर दिया—हाँ ! और उसके साथ ही बोलना प्रारंभ कर दिया। मेरे मित्र लिखने लगे। तीन-चार मिनटमें वह रचना तैयार हो गई। मित्रने पूछा—क्या यह रचना ऐसी है कि आपकी अच्छी रचनाओंकी समता कर सके ? मैंने उत्तर दिया—मैं अब इस परिस्थितिमें हूँ कि जो भी मामूली चीज़ मैं लिखकर भेज दूँ, वह न केवल छप ही जायगी, बल्कि आलोचक उसपर विचार करनेको भी बाध्य होंगे। तमाशा देखनेके लिए मेरे मित्रने वह कविता आपको भेज दी। मैं उस ऊटपटांग रचनाको कविता नहीं कहता। आपने उसे 'साधना' के प्रथम पृष्ठपर प्रकाशित करते हुए क्रान्तिकारी रचना कहकर अपनी टिप्पणी भी जड़ दी !

हरिहर-प्रद्युम्न—क्या कहते हैं आप ? आश्चर्य है !

श्रोता—हैं, सब गुड़ गोबर !

अपरा—नगेशजीने लिखा है ? (सब आश्चर्यमें भर जाते हैं)

संपादक—अभी और भी है। नगेशजी आगे लिखते हैं : "निश्चय ही वह मेरी तुकबंदी है। उसमें परस्पर-विरोधी, एकांगी, विश्रृंखलित भाव हैं। पहली पंक्ति अर्थहीन है। दूसरी परस्पर-विरोधी। तीसरी-चौथी अप्रासंगिक। शेषमें भी कोई ऊँचा भाव नहीं है। 'जन-जन-मनसे रूढ़िवादका व्यावर्त्तन कर फिर-फिर' - इस पंक्तिमें 'मनसे' की जगह 'मनका' होना चाहिए और 'रूढ़िवाद'की जगह 'रूढ़िवादसे'। और भी उसमें बहुत दोष हैं। किन्तु आपने उस निरर्थक कविताको क्रान्तिकारी कहकर छाप दिया। इससे यह सिद्ध होता है कि संपादक और आलोचककी (स्पष्ट लिखनेके लिए मुझे क्षमा कीजिए) दृष्टि वस्तुपर नहीं, व्यक्तिपर रहती है। व्यक्तिकी महत्ता और गौरवके सामने आप-से-आप सिर झुका देते हैं।"

उमापति—मैं मनमें कह रहा था, 'व्यावर्त्तन'का अर्थ ठीक नहीं बैठता।

शान्तिस्वरूप—मैं इतनी देरसे क्या झक मार रहा था ?

हरिहर—मैं भी कहूँ, यह बात क्या है !

संपादक—पत्र अभी समाप्त नहीं हुआ है। विस्फोट होना शेष है। वे आगे लिखते हैं : "अब मैं अपनी बात कहूँ। पिछले बहुत दिनोंसे कविता लिखते रहनेके कारण बहुतसे शब्द मेरे अपने बन गए हैं। उन शब्दोंको मैं जैसे चाहूँ, तोड़-मरोड़कर प्रयोगमें ले आता हूँ। उसका भी कारण है, वह यह कि कुछ तो आप लोगोंकी कविताके लिए बराबर माँग आनेके कारण और कुछ अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखनेके लिए स्पष्ट और अच्छे भाव न उदित होनेपर मैं शब्दोंसे खिलवाड़ करके पाठक, आलोचक और संपादकको चकमा देता रहता हूँ। जब मेरा काम उन शब्दोंसे नहीं चलता, तब मैं नए, निगूढ़, अप्रकृत, बहुर्थक शब्दोंको लेकर उनका प्रयोग करता हूँ। तब तो मैंने देखा है कि मेरी प्रतिभापर पाठक स्तब्ध, आलोचक मुग्ध तथा दिङ्मूढ़ और संपादक भयभीत एवं नतमस्तक हो जाता है। आलोचक ज़मीन और आस्मानके कुलाबे मिलाता हुआ मेरे कवित्वको, मेरे ज्ञान-भंडारको, मेरे विचारोंको, मेरी प्रतिपल उन्मेषित, गूढ़, अव्यक्त, अर्थहीन भाव-धाराको अपनी निगूढ़, अव्यक्त दार्शनिक शैली द्वारा पुरिपुष्ट करता है। और वह निकृष्ट, भद्दी, रसहीन रचना दर्शनोंका प्रस्फोट, जीवनका विश्लेषण, गहन तत्त्वोंका सृजन करनेवाली कहलाने लगती है। यह मैं अब इसलिए लिख रहा हूँ कि मैं अब अधिक आत्म-प्रवंचना नहीं कर सकता। आपका—नगेश"

(संपादक पत्र ज़मीनपर रख देता है और सबके मुँहकी ओर देखता है। काफी देर तक सन्नाटा छाया रहता है।)

सिद्धनाथ—(हँसता है) खूब है, खूब लिखा है !

हरिहर—संपादकजी, सच कहिए, क्या यह नगेशका पत्र है ?

प्रद्युम्न—अनन्त सत्यका उद्घाटन हुआ है आज !

उमापति—युग-युगकी प्रवंचना दूर हो गई है ?

दूसरा श्रोता—विस्फोट हुआ है, विस्फोट !

छेदी—बीवीजी, मैं चाय ले आया हूँ।

संपादक—हाँ, मधुरेण समापयेत्। खूब रही !

(हँसता है। सब योग देते हैं। फिर भी हरिहर और प्रद्युम्न जैसे जड़ हो गए हैं। दिखाई देता है, प्यालोंकी चायमें नगेशके पत्रकी प्रत्येक पंक्ति धुएँके साथ उठकर वातावरणमें लीन हो रही है।)

अठारहवीं सदीके रमते राम

प्राणनाथ पुरी

डा० मोतीचन्द्र, एम० ए०, पी-एच० डी० (लंदन)

भारतीय संस्कृतिके इतिहासमें यात्रियों और घुमक्कड़ोंका एक विशेष स्थान रहा है। इन यात्रियोंमें व्यापारियोंका मुख्य स्थान था। पर उनकी यात्रा एक विशेष लक्ष्यसे होती थी और वह था व्यापार। अगर इन भारतीय व्यापारियोंने अपने यात्रा-विवरण छोड़े होते, तो इसमें सन्देह नहीं कि वे विश्व-साहित्यकी एक अपूर्व संपत्ति बन जाते। पर जो-कुछ भी यात्रा-विवरण हमें पालि और प्राकृत साहित्योंसे मिलता है, उससे पता चलता है कि प्राचीन कालमें यात्राकी अनेक कठिनाइयोंके होते हुए भी भारतीय व्यापारियोंके सार्थ न केवल इस देशमें ही, वरन् विदेशोंमें भी बराबर चलते रहे। समुद्र-यात्रा उस समय आजकी तरह सरल न थी। जहाज़ छोटे और कमज़ोर होते थे और तूफ़ानोंमें उनके टूट जानेसे बहुधा व्यापारियोंको अपनी जानें गँवानी पड़ती थीं। साथ ही समुद्री डाकुओंका भी उन्हें बराबर भय बना रहता था। जिन राज्योंसे होकर उनका मार्ग गुजरता था, उनपर चोर-डाकुओंका तो भय था ही, राजे भी उन्हें मालदार जानकर उनसे कसकर शुल्क वसूल करते थे। मध्य-एशियाके प्रसिद्ध कौशेय मार्गपर भी उन्हें मार्गकी अनेक कठिनाइयोंसे होड़ लेनी पड़ती थी। पर इन सब कठिनाइयोंके रहते हुए भी भारतीय व्यापारी अपने कर्त्तव्यसे कभी विचलित नहीं हुए। प्राचीन व्यापारियोंने न केवल इस देशकी आर्थिक उन्नति ही की, बल्कि अनक्षित भावसे वे इस देशके सांस्कृतिक दूतोंका भी काम करते रहे। इनके सार्थोंके साथ खाने-कमानेके लिए अनेक नट, नर्तक, चित्रकार, मूर्त्तिकार आदि भी हो लेते थे और उनसे भारतीय ललित-कलाओंका दूसरे देशोंमें प्रचार होता था।

प्राचीन भारतमें एक दूसरे तरहके भी यात्री होते थे, जिनका ध्येय केवल संसार देखना और भारतीय संस्कृतिका संदेश भिन्न देशोंमें पहुँचाना था। बौद्ध धर्मकी स्थापनाके बहुत पहले श्रमण और ब्राह्मण बराबर देशके कोने-कोनेमें घूमकर अपने स्वतंत्र विचारोंका लोगोंमें प्रचार करते थे। बौद्ध धर्मकी स्थापना होनेके बाद तो बहुजनहितायकी भावनासे प्रेरित होकर बौद्ध भिक्षु देशके कोने-कोनेमें यात्राएँ करने लगे। कुषाण-युगमें तो कुछ बौद्ध भिक्षु मध्य-एशियाकी अनेक कठिनाइयोंको पार करते हुए चीन तक और कुछ दूसरे जहाज़ोंसे सिंहल होकर द्वीपान्तर पहुँचने लगे। लगता है, इन श्रमणोंका पर्यटन बौद्ध धर्मके समाप्त हो जानेपर भी कभी रुका नहीं। मध्य-कालके अवधूत तो वास्तवमें रमते राम थे। एक स्थानमें जमकर मठाधीश बन बैठना तो उनके सिद्धान्तके बिलकुल प्रतिकूल था। वे सदा तीर्थों, नगरों, पहाड़ों और जंगलोंमें घूमते हुए अपनी साधनाका प्रचार करते रहते थे। भारतमें मुसलमानोंकी राज्य-संस्थापनाके बाद भी जोगियोंने अपना देश-पर्यटन कभी नहीं छोड़ा। इतना ही नहीं, दक्षिण-भारतमें तो इन जोगियोंने बीजापुरी सल्तनतको भी प्रभावित किया। इन अवधूतोंको, जैसा कबीरने कहा है, 'सिंहोंके नहिं लेंहड़े, साधु न चलैं जमात'के अनुसार भीड़-भाड़में अथवा साज-सामानके साथ यात्रा करनेसे घृणा थी। वे अकेले ही चल निकलते और रास्तेमें माँग-जाँचकर अपना पेट भर लेते थे। उनमें जो साधक होते थे, उनका तो सब जगह मान होता था, और बाकी केवल घूम-फिरकर और तीर्थ-यात्रा करके ही संतोष कर लेते थे। अगर इन अवधूतों और साधुओं ने अपने यात्रा-विवरण लिखे होते, तो वास्तवमें वे भारतीय साहित्य और इतिहासकी बहुत-सी कमियोंको पूरा करनेमें समर्थ होते। पर उन्हें इन सब ऐहिक बातोंसे क्या मतलब था? इन घुमक्कड़ोंका पता हम दक्षिण-भारतके मंदिरोंमें मकरंदनाथ अथवा ऐसे ही नामवाले छोटे-छोटे लेखोंसे पाते हैं। इसमें शक नहीं कि उनकी जहाँगीर-युगमें और शायद उसके बहुत पहले भी पेशावर तक पहुँच थी और शायद इसी रास्ते ईरान होकर वे बाकू तक पहुँचते थे, जहाँ अब भी शिवका एक छोटा मंदिर है।

हमारे सौभाग्यवश इन अनगिनत घुमक्कड़ोंमेंसे प्राणनाथ पुरीका यात्रा-विवरण बच गया है और इसे बचानेका पूरा श्रेय बनारसके रेजिडेंट मि० जोनेथन डंकन (१७८७—१७९५) को है। डंकन १८वीं सदीके उन थोड़े-से अंगरेज़ अफ़सरोंमें थे, जिन्हें बनारसके लोगोंसे बड़ा स्नेह था, और जब तक डंकन बनारसमें थे, तब तक उनका यही प्रयत्न रहा कि नगरकी अवस्था सुधरे। 'एशियाटिक रिसर्चेज़'के पाँचवें भागमें डंकनने

दो अवधूतोंके यात्रा-वृत्तान्त दिए हैं। उनमें एकका नाम प्राणनाथ पुरी था। वे ऊर्द्धबाहु तपस्वी थे। डंकनको पता चला कि प्राणनाथ पुरीने संसार-भरकी यात्रा की थी। उनसे मिलकर जब डंकनने इस यात्राका कुछ वृत्तान्त सुना, तो उन्होंने अपने एक लेखकको उसे हिन्दीमें लिखनेका आदेश दिया। डंकन को इस बातका पूरा विश्वास था कि प्राणनाथने उनसे कोई बात बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कही। उनके यात्रा-वृत्तान्तमें जो-कुछ थोड़ी-सी असंगतियाँ थीं, उनका कारण प्राणनाथकी स्मृतिका कुछ कमज़ोर पड़ जाना था।

प्राणनाथ कन्नौजके रहनेवाले एक राजपूत थे। नौ बरस की अवस्थामें अपने घरसे भागकर उन्होंने गंगाके किनारे बिठूर में संन्यास ग्रहण किया। यह घटना अहमदशाह अब्दाली द्वारा मथुरा लूटनेके तीन बरस पहले घटी। १७५६ के करीब प्राणनाथ प्रयागके माघ-मेलेमें आए और वहाँ ऊर्ध्वबाहु तक तपका व्रत ग्रहण किया। प्रयागसे चलकर कालपी, उज्जैन, बुरहानपुर होते हुए उन्होंने एलोराके प्रसिद्ध मंदिरोंको देखा। इसके बाद गोदावरी पारकर वे पूना, सतारा और दूसरे नगरोंमें होते हुए बिदनूर पहुँचे। उस समय बिदनूर एक रानीके अधिकारमें था। बिदनूरसे चलकर वे श्रीरंगपट्टन पहुँचे, जहाँ प्राणनाथके अनुसार नंदराज और देवराजका राज्य था। यहाँसे वे कामचेरीके घाटको पार करते हुए मलाबारमें घुसे। फिर यहाँ से वे एक ऊजड़ प्रदेशमें होते हुए रामेश्वर पहुँचे। रामेश्वरकी यात्रा करनेके बाद वे चोल-मंडलकी सैर करते हुए उड़ीसामें जगन्नाथपुरी आ गए।

जगन्नाथपुरीमें कुछ दिन ठहरनेके बाद प्राणनाथ उसी रास्तेसे पुनः रामेश्वर गए और वहाँसे लंका जा पहुँचे। लंकामें उन्होंने कांडीकी सैर की और माणिकगंगापर कार्त्तिकेयके दर्शन किए। इसके बाद उन्होंने एक बहुत ऊँचे पर्वतपर स्थित श्रीपादकी यात्रा की। इसी पर्वतपर उन्होंने भूपति अथवा रावण-तालबमें स्नान किया और सीताकुण्डकी यात्रा करते हुए वे श्रीपाद पहुँचे; पर यहाँ पूजा करके पुनः उसी रास्तेसे लौट आए। लंकासे प्राणनाथ मलाया पहुँचे। वहाँ वे लंकाके एक सेठके यहाँ दो महीने तक ठहरे। बादमें इस सेठने एक जहाज़से प्राणनाथ के चीन जानेका प्रबन्ध करा दिया। मलाबारके समुद्र-तटके भूगोलका उन्होंने बड़े विस्तारके साथ वर्णन किया है, जिससे पता चलता है कि उनकी स्मरणशक्ति काफ़ी तीव्र थी। मलाबार के समुद्र-तटसे होते हुए वे बम्बई पहुँचे और वहाँसे द्वारका। द्वारकासे वे मुलतान होते हुए हिंगुलाज पहुँचे। यहाँ देवीका दर्शन करके वे वापस लौटे और अटकका रास्ता पकड़ा। यहाँ से वे सड़के-आज़मपर यात्रा करते हुए हरिद्वार पहुँचे।

प्राणनाथ एक स्थानपर ठहरनेवाले व्यक्ति नहीं थे। उन्होंने पुनः अपनी यात्रा आरम्भ कर दी। उत्तरी पंजाब होते हुए वे काबुल पहुँचे और वहाँसे बाम्यान। यहाँ उन्होंने बुद्ध की बहुत-सी मूर्त्तियोंके दर्शन किए, गोकि उस समय बाम्यान आदमियोंसे सूना था। अफ़ग़ानिस्तानके इस प्रदेशमें घूमते-घामते उनकी गज़नीके पास डेरा डाले हुए मुहम्मदशाहकी फौज से भेंट हो गई। उस समय अहमदशाह नाकके नासूरसे पीड़ित थे, इसलिए उन्होंने प्राणनाथसे इस बीमारीकी कोई कारगर दवा पूछी। बेचारे प्राणनाथ वैद्यक न जाननेसे बड़े फेरमें पड़े कि बादशाहको क्या जवाब दें; पर वे थे हाज़िर-जवाब। उन्होंने फौरन उत्तर दिया कि बादशाहके नासूर और सल्तनतमें अविच्छिन्न सम्बन्ध है, इसलिए नासूर अच्छा होनेके माने बादशाह को खतरा है। बादशाह और उसके वज़ीरोंको इस तर्कमें सचाई देख पड़ी और वे उनकी बात मान गए। गज़नीसे घूमते-घामते हेरात और मशदके रास्ते खुरासान होते हुए प्राणनाथ केस्पियन समुद्रके किनारे अस्तराबाद जा पहुँचे। यहाँसे बाकूके पास उन्होंने बड़ी ज्वालामुखीके दर्शन किए। प्राणनाथ के अनुसार वहाँके लोग इसे दागिस्तान कहते थे। प्राणनाथ इस ज्वालामुखीको ईश्वरी प्रेरणा न मानकर इसका कारण आसपासमें मिट्टीका तेल होना मानते थे।

ज्वालामुखीमें ११ महीने ठहरकर केस्पियनमें एक जहाज़ पर सवार हो वे अस्त्राखान पहुँचे। इस जगह अच्छी संख्यामें हिन्दू-व्यापारी रहते थे। इन्होंने प्राणनाथकी बड़ी आवभगत की। अस्त्राखानका वर्णन करते हुए प्राणनाथका कहना है कि शहरके नीचे एक नदी बहती थी। यह नदी निश्चयपूर्वक वोल्गा है। प्राणनाथके अनुसार जाड़ेमें यह नदी जम जाती थी और लोग उसपर पैदल यात्रा करते थे। अस्त्राखानसे आठ दिनकी यात्राके बाद प्राणनाथ रूसकी राजधानी मास्को पहुँचे। प्राणनाथके अनुसार उस समय वहाँ एक बीवीका राज था। मास्कोमें वे पाँच दिनों तक एक आर्मीनियन सरायमें टिके। प्राणनाथका कहना है कि वहाँ एक इतना बड़ा घंटा था कि उसके नीचे सौ आदमी खड़े हो सकते थे! मास्कोमें उन्हें यह

भी पता चला कि पीटर्सबर्ग होते हुए ग्रेट-ब्रिटेन एक महीनेमें पहुँचा जा सकता है। प्राणनाथ मास्कोके आगे नहीं बढ़े। वहाँ से अस्त्राखान वापस चले आए। वहाँसे वे शमकी, शेरवाँ, तबरेज़, हमदन होते हुए इस्फहान पहुँचे। इस्फहानमें चालीस दिन ठहरकर शीराज़ पहुँचे। उन दिनों वहाँ करीमशाहका राज था। प्राणनाथका कहना है कि उनकी उम्र उस समय चालीस सालके क़रीब रही होगी। करीमशाहके दरबारमें उनकी दो अंगरेज़ोंसे भी भेंट हुई, जिनमें एकका नाम मि० लिस्टर था।

शीराज़से घूमते-घामते प्राणनाथ फारसके दक्षिणी समुद्र-तट पर अबू शहरके बंदरगाहमें पहुँचे और वहाँसे खारेकके टापूमें। प्राणनाथके अनुसार खारेक उस समय मीर मन्नाके अधिकारमें था। मीर मन्नाने यह टापू डचोंसे छीन लिया था। मीर मन्ना की आमदनी पड़ोसियोंकी लूट-पाटसे थी। इस टापूमें बहुतसे हिन्दू भी रहते थे। यहाँसे प्राणनाथ बहरैन पहुँचे और वहाँके मोतीके प्रसिद्ध व्यापारको देखा। यहाँसे प्राणनाथने बसराके लिए जहाज़ लिया; पर रास्तेमें बंबई और तातारी जहाज़ोंने उनके जहाज़की तलाशी लेकर आगे बढ़ने दिया। इसका कारण अंगरेज़ोंका बहरैनके सुल्तान सुलैमानके विरुद्ध युद्ध-घोषणा थी। इस घटनाके बाद सलामतीके साथ प्राणनाथका जहाज़ बसरा पहुँचा। वहाँ उनकी बहुतसे हिन्दू-व्यापारियोंसे भेंट हुई और उन्होंने गोविंदराय और कल्याणराय नामके दो विष्णु-मंदिरोंके भी दर्शन किए। बसरासे दजलाके साथ-साथ प्राणनाथ बगदाद जाना चाहते थे; पर इसमें वे सफल नहीं हो सके। इसके बाद वे बसरासे फारसकी खाड़ीके बंदरगाह मशकतमें पहुँचे। यहाँ भी उनकी बहुतसे हिन्दुओंसे मुलाक़ात हुई। मशकतसे वे निर्विघ्न सूरत पहुँचे। पर यहाँ भी प्राणनाथकी घुमक्कड़ प्रकृतिने उन्हें बहुत दिनों तक नहीं रहने दिया। सूरतसे वे जहाज़ लेकर मोचाके बन्दरगाहमें पहुँचे, जहाँ उनकी बहुतसे हिन्दुओंसे मुलाक़ात हुई। वहाँसे वे पुनः भारत लौटे और सिंध अथवा कच्छके समुद्र-तटपर सन्यानपुर नामके किसी बंदरगाहपर उतरे।

सन्यानपुरके बंदरगाहसे वे बलख पहुँचे और वहाँसे बुखारा। बुखारामें उन्होंने ख्वाजा चिश्तीकी दरगाह देखी। उन्होंने अपनी ज़िंदगीमें इस दरगाह-जैसा ऊँचा मीनार कभी नहीं देखा था। बुखारासे बारह दिनकी यात्रा समाप्त करके वे समरकंद पहुँचे। उनका कहना है कि उस समय समरकंद एक बहुत बड़ा शहर था और उसके नीचे एक बड़ी नदी बहती थी। समरकंदसे प्राणनाथ दस दिनोंमें बदख़्शाँ पहुँचे, जहाँ उन्होंने आसपासकी पहाड़ियोंमें लाल मिलनेकी बात सुनी। बदख़्शाँसे वे कश्मीर पहुँचे और वहाँसे पहाड़ी रास्तोंसे होते हुए गंगोत्री पहुँचे। उनका कहना है कि उन्होंने गंगोत्रीमें भागीरथकी एक मूर्त्ति देखी। उनके अनुसार गंगोत्रीसे तीस कोस दक्खिनमें जमुनाका उद्गम-स्थान जमनोत्री पड़ता था। गंगोत्री की यात्रा समाप्त करके दक्खिन-पूर्वकी ओरसे प्राणनाथ अवधमें आए और वहाँसे नेपालका रास्ता पकड़ा। प्राणनाथ नेपालके कई शहरोंका, जिसमें काठमांडू मुख्य था, वर्णन करते हैं। उनका कहना है कि नेपालमें चार नदियाँ थीं—नागमती, विष्णुमती, रुद्रमती और मनमती। काठमांडूसे सात दिनकी यात्राके बाद वे गोसाईंथान पहुँचे, जहाँ पुराणोंके अनुसार विष-पान करके महादेव सो गए थे। गोसाईंथानकी हिमाच्छादित पर्वतमालाकी यात्रा करनेके बाद प्राणनाथ काठमांडू लौट आए और वहाँसे तिब्बतकी ओर चल पड़े। तिब्बतके रास्तेमें उन्होंने लोहेके सिकड़ोंसे बने एक पुलसे कोसी नदी पार की। वे कहते हैं कि कोसी नदीसे तीन मीलके फासलेपर लेस्ती नामक स्थानपर नेपाल और तिब्बतकी सीमा थी और यहाँ दोनों देशोंके रक्षक तैनात थे। यहाँसे एक दिनकी यात्राके बाद प्राणनाथ तिब्बतमें खासा नामके एक छोटे-से नगरमें पहुँचे। यहाँसे वे चेहंग होते हुए कुर्नी पहुँचे, जहाँ यात्रियोंको दस्तक दिए जाते थे। वहाँसे पहाड़ियोंको पार करते हुए वे तिंगरीके मैदानमें पहुँचे। यहाँसे गंगेर तक एक दिनका रास्ता था। इसके बाद इन्होंने फांगी अर्थात् एक पुल पार किया। प्राणनाथ ल्हासा तककी हरएक मंज़िलका नाम देते हैं। ल्हासामें उन्होंने दलाईलामाके निवास-स्थल पोतालाके दर्शन किए। ल्हासासे वे देगार्चे पहुँचे। यहाँ तासी लामा रहते थे। यहाँसे ८० दिनोंकी यात्राके बाद वे मानसरोवर पहुँचे। मानसरोवरका वर्णन प्राणनाथके ही शब्दोंमें सुनिए :

"मानसरोवरकी परिधि ६ दिनोंकी यात्रा है। इसके परिक्रमा-पथपर पचीस गुमड़ियाँ अथवा मंदिर हैं। रास्तेमें रहनेवाले दौकी कहलाते हैं और ये तिब्बतियोंकी तरह कपड़े पहनते हैं। मानसरोवर तो एक झील है, पर उसके बीच में एक बाँटनेवाली दीवार-सी है। इसका उत्तरी भाग मानसरोवर और दक्खिनी भाग लुंकध अथवा लुंकदेह कहलाता है। मानसरोवरसे एक नदी और लुंकदेहसे दो नदियाँ निकलती हैं। पहली नदीको

ब्रह्मा कहते हैं, जो परशुरामकी तपस्याके कारण ब्रह्मपुत्र नाम धारण करके पूर्वकी ओर बही है। लुंकदेहसे सरजू, जो अयोध्याके नीचे बहती है, और शतद्रु जो पंजाबमें बहती है, निकलीं। मानसरोवरसे दो दिनके रास्तेपर नेरीलदाख शहर है, जिसके राजा पहले हिन्दू थे, पर अब मुसलमान हो गए हैं। यहाँके निवासी तिब्बतियोंकी तरह हैं। लदाखसे ७ दिनके रास्तेपर दक्खिनमें कैलासचुंगरी है, जिसके उच्च शिखरपर, लोगोंके कहनेके अनुसार, एक भोजपत्र-वृक्षकी जड़के नीचेसे गंगा निकलती है। यह स्थान चार मीलकी चढ़ाईपर है। इसके भी ऊपर एक चोटी है, जहाँ कोई नहीं जाता। मैंने सुना है कि सबसे ऊँची चोटीपर एक सोता है। यहाँ तक एक जोगी पहुँच गया था; पर जैसे ही उसने इसमें अपनी कानी अँगुली डाली, वह जम गई। कैलासचुंगरीसे चार दिनके रास्तेपर ब्रह्मदण्ड नामकी पर्वत-श्रेणी है, जहाँसे अलकनन्दा निकली है। वहाँसे दक्खिन पाँच-छः दिनोंके रास्तेपर बद्रीनाथ और केदारनाथके मंदिर हैं। इन पर्वतोंसे केदारगंगा और शिवगंगा निकलती हैं, जो अलकनन्दाके साथ कर्णप्रयाग और देवप्रयाग में गंगासे आ मिलती हैं। देवप्रयागसे गंगा एक धार होकर हरिद्वार तक जाती है।"

मानसरोवरकी यात्रा करके प्राणनाथ नेपाल और तिब्बत पहुँचे। ल्हासासे उन्हें गवर्नर-जनरल हेस्टिंग्सके पास एक खरीता ले जानेको कहा गया। यह खरीता उन्होंने सर्वश्री कारवल, बोगल और इलियटके सामने मि० हेस्टिंग्सको सुपुर्द कर दिया। इसके बाद हेस्टिंग्सने चेतसिंह और ग्राहमके नाम सिफारिशी पत्रोंके साथ प्राणनाथको बनारस भेज दिया। कुछ दिनोंके बाद हेस्टिंग्सने आशापुरकी माफी जमींदारी उन्हें जागीरमें दे दी। श्री डंकनका कहना है कि जब तक वे बनारसमें थे, तब तक प्राणनाथका घूमना-फिरना नहीं छूटा था। वे अक्सर नेपाल तथा हिन्दुस्तानके दूसरे तीर्थोंकी यात्रा करने निकल जाया करते थे।

हम ऊपर कह आए हैं कि डंकनकी आज्ञासे एक लेखकने हिन्दीमें प्राणनाथका यात्रा-विवरण लिखा और इसीका संक्षिप्त रूप डंकनने 'एशियाटिक रिसर्चेज़'में प्रकाशित किया। क्या ही अच्छा होता कि प्राणनाथका यह हिन्दी-बयान मिल जाता; क्योंकि इससे बहुतसे भौगोलिक प्रश्नोंपर प्रकाश पड़नेकी संभावना है। जैसा कि डंकन स्वयं स्वीकार करते हैं, दूसरे कामोंमें फँसे रहनेके कारण वे प्राणनाथसे उनकी यात्राओंका अधिक विवरण नहीं ले सके और न प्रसिद्ध विद्वान विल्फर्डसे प्राणनाथकी यात्राओंकी भौगोलिक जाँच-पड़ताल ही करवा सके। जो भी हो, यह तो निस्संदेह कहा जा सकता है कि प्राणनाथ केवल एक धर्मान्ध साधु न होकर एक कुशल यात्री थे। उनकी यात्राओं में तीर्थ-दर्शनका प्रयोजन तो था ही; पर रूस और ईरानकी सैर तो उनके सैलानी होनेके ही प्रमाण हैं।

प्राणनाथकी यात्राको अगर हम आधुनिक वैज्ञानिक यात्राओंकी कसौटीपर जाँचें, तो शायद वह इतनी खरी न उतरे। पर इस सम्बन्धमें हमें ध्यान रखना चाहिए कि जिस समय प्राणनाथने अपनी लंबी-चौड़ी यात्रा की, उस समय बहुत कम यूरोपीय यात्री ऐसे थे, जिनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक रहा हो। प्राणनाथ एक रमते जोगी थे, जो इतिहास और भूगोलके चक्करमें कभी नहीं पड़े; फिर भी बहुत समय बीत जानेपर वे उन स्थानोंके संबंधमें नहीं भूले, जिन्हें उन्होंने स्वयं देखा था। बाकूके पास बड़ी ज्वालामुखीका प्राणनाथ द्वारा वर्णन बिल्कुल सत्य है; क्योंकि हमें इस बातका पता है कि वहाँ एक छोटा-सा देवीका मन्दिर कुछ दिनों पहले न था, जिसे एक भारतीय साधुने उन्नीसवीं सदीके आरम्भमें बनवाया था। रूसी उल्लेखोंसे हमें इस बातका भी पता है कि अट्ठारहवीं सदीके मध्य तक अस्त्राखानमें भारतीय व्यापारियोंकी एक बस्ती थी। प्राणनाथ द्वारा मानसरोवरका वर्णन भी वैज्ञानिक दृष्टिसे बहुत-कुछ ठीक है। इनका लुंकदेह आजकलका राकसताल लागंग है। राकसतालसे सतलजके निकलनेकी बात भी सही है। ब्रह्मपुत्र और गंगा मानसरोवरसे नहीं निकलतीं; पर जिस कालमें प्राणनाथने अपनी यात्रा की, उस समय तो लोगोंका यही विश्वास था कि ये दोनों नदियाँ भी मानसरोवरसे निकलती थीं। यदि प्राणनाथने इसमें भूल की, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। कैलास और मानसरोवरके बारेमें प्राणनाथने कुछ पौराणिक कथाओंका भी उल्लेख किया है। इन उल्लेखोंसे प्राणनाथकी यात्राकी सचाईके बारेमें कुछ कमी नहीं पड़ती। जिन हिमालय-प्रदेशोंमें प्राणनाथ गए, उनमें तो सबसे पहले अंगरेज़ यात्री मूरक्राफ्टने १८२५ में यात्रा की। इस तरह हम देखते हैं कि प्राणनाथ पहले ही यात्री थे, जिन्होंने हमें मानसरोवर इत्यादिके बारेमें बहुत-कुछ बतलाया है।

क्या अहिंसक राष्ट्र संभव है ?

प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र

राजनीति-विज्ञानमें राष्ट्रके मूलभूत सिद्धान्तोंपर जहाँ विचार किया गया है, वहाँ बल-प्रयोग या हिंसाका सिद्धान्त भी स्वीकार किया गया है। लीकाकने अपने ग्रन्थमें लिखा है—"राष्ट्र-शक्तिका आरम्भ उस समय हुआ, जब मनुष्यने मनुष्यको बलपूर्वक अपने अधीन करके दास बनाया; एक जातिने दूसरी जातियोंको, जो अपेक्षाकृत दुर्बल थीं, पराजित करके उनपर अपनी सत्ता स्थापित की और बलपूर्वक उनकी भू-संपत्तिपर अपना प्रभुत्व कायम किया। बल-प्रयोगकी इसी प्रक्रिया द्वारा क्रमशः एक उपजातिसे राज्यका, राज्यसे साम्राज्य का विकास हुआ।" कार्ल मार्क्स, एंजेल्स आदि समाजवादी लेखकोंने भी राष्ट्र-शक्तिके विकासमें बल-प्रयोगके सिद्धान्तका समर्थन किया है। लेनिनके अनुसार समाजके विभिन्न वर्गोंके बीच जो विरोधिता है, उसमें कभी सामंजस्य नहीं हो सकता और इस सामंजस्यहीनताके फल-स्वरूप ही राष्ट्र-शक्तिकी उत्पत्ति हुई है। राष्ट्रकी उत्पत्तिके संबंधमें बल-प्रयोगका जो यह सिद्धान्त है, वह सर्वथा निर्मूल नहीं कहा जा सकता। शायद ही कोई ऐसा राष्ट्र हो, जिसका अस्तित्व युद्धमें प्राप्त सफलता पर निर्भर न करता हो। आज भी राष्ट्रको रक्षाके लिए पुलिस और सैन्य-शक्ति अनिवार्य मानी जाती है। बाहरी शत्रुके आक्रमणसे राष्ट्रकी रक्षाके लिए सैन्य-शक्ति और आन्तरिक शान्ति एवं सुव्यवस्थाके लिए पुलिस-शक्ति प्रत्येक राष्ट्रके आवश्यक अंग मानी जाती हैं। कुछ लेखकोंने तो राष्ट्रकी सार्वभौम सत्ताको एकमात्र बल-प्रयोगपर ही निर्भर माना है। शक्ति-प्रयोगका आश्रय ग्रहण किए बिना भी राष्ट्रका अस्तित्व संभव हो सकता है, इस सिद्धान्तको महात्मा गांधीके सिवा अन्य किसी चिन्तकने स्वीकार नहीं किया है। महात्मा गांधीने ही सर्वप्रथम सभ्य मानव-जातिके सामने यह आदर्श रखा था कि समाजका संगठन संपूर्ण अहिंसाके सिद्धान्तपर संभव हो सकता है।

राष्ट्रके अस्तित्वके लिए शक्ति-प्रयोग अनिवार्य रूपमें आवश्यक भले ही हो; किन्तु एकमात्र शक्ति-प्रयोगके बलपर ही राष्ट्रका गठन हो सकता है और राष्ट्रकी सत्ताके सामने जनता शक्ति-प्रयोगके भयसे ही सिर झुकाती है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। और भी कई ऐसी बातें हैं, जिनके कारण जनता स्वेच्छासे आत्म-कल्याणके लिए राष्ट्रकी सत्ताको स्वीकार कर लेती है। हाँ, यह बात सत्य है कि जहाँ राष्ट्र है, वहाँ शक्ति भी उसके साथ अवश्य है। राष्ट्रके सिवा अन्य किसी भी संस्थाको बल-प्रयोगका अधिकार नहीं होता। राष्ट्रका काम है समाजके कल्याणके लिए क़ानून और नियम बनाना और उनके अनुसार कार्य हो सके, इसकी व्यवस्था करना। किन्तु समाजमें ऐसे लोग भी हो सकते हैं, जो राष्ट्रके इस कार्यमें बाधा प्रदान करें, समाज-कल्याणके उसके उद्देश्यको सफल न होने दें। ऐसे लोगोंमें सामाजिक आदर्शोंके प्रति कोई श्रद्धा नहीं होती और वे स्वभावसे ही दुर्वृत्त होते हैं। उनके दमनके लिए राष्ट्रके हाथमें शक्तिका होना आवश्यक है, अन्यथा राष्ट्रमें अशान्ति एवं विशृंखला उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकती। राष्ट्र लोक-कल्याणके लिए जो कार्य करता है, उनमें बाधा न पहुँचे, इसके लिए उसके हाथोंमें अस्त्र-बल होना आवश्यक है। किन्तु राष्ट्र सब समय अस्त्र-बलका प्रयोग करके ही समाजका कल्याण कर सकता है, यह भी नहीं कहा जा सकता।

राष्ट्रके अन्तर्गत जितने भले-बुरे लोग होते हैं, उन सबके साथ राष्ट्रका संबंध होता है। सब मनुष्य साधु प्रकृतिके नहीं होते, इसलिए हम इस बातकी आशा अभी नहीं कर सकते कि कोई भी राष्ट्र संपूर्ण अहिंसात्मक बन सकता है। संपूर्ण रूपसे हिंसाका वर्जन कोई भी राष्ट्र नहीं कर सकता। गांधीजीने भी इस बातको स्वीकार किया था कि किसी भी देशकी सरकार के लिए यह संभव नहीं है कि वह पूर्णरूपसे अहिंसाके सिद्धान्त को मानकर चले। ऐसा करनेपर अराजकताकी सृष्टि हुए बिना नहीं रह सकती। उन्होंने 'हरिजन'में लिखा था—"कोई भी सरकार, जो वस्तुतः शासन करना चाहती है, अपने राज्यमें अराजकताको नहीं फैलने दे सकती। इसीलिए मैंने कहा है: अहिंसाके आधारपर प्रतिष्ठित सरकारको भी एक छोटी-सी पुलिस-शक्तिकी आवश्यकता होगी।" आगे चलकर अपने उसी लेखमें उन्होंने लिखा था—"चूँकि किसी देशकी सरकार सब लोगोंको

प्रतिनिधित्व करती है, इसलिए पूर्णरूपसे अहिंसक बननेमें वह सफल नहीं हो सकती।"

गांधीजी रामराज्यके आदर्शपर बराबर ज़ोर दिया करते थे। तुलसीदासने अपनी रामायणमें यह आदर्श उपस्थित किया है। इस प्रकारके राज्यमें दुष्ट प्रकृतिका एक भी मनुष्य नहीं रह जायगा, सब लोग आपसमें प्रीतिपूर्ण व्यवहार करेंगे तथा कोई दीन, दरिद्र और अवध नहीं रह जायगा। वहाँ न तो कोई लंपट या कामुक होगा और न एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिको सतायगा। सब लोग अपने-अपने धर्ममें रत रहेंगे। इस प्रकारके आदर्श राज्यमें राष्ट्र-शक्तिका प्रयोजन बिलकुल नहीं रह जायगा। केवल राष्ट्र-शक्तिका प्रयोजन ही नहीं, बल्कि राष्ट्रका प्रयोजन भी नहीं रह जायगा। साम्यवादमें जिस राष्ट्रहीन आदर्श समाजकी कल्पना की गई है, वही आदर्श सपूर्ण अहिंसक समाज द्वारा भी चरितार्थ हो सकता है। इस प्रकारका समाज संपूर्ण रूपसे अराजकतावादी होगा। गांधीजीके शब्दोंमें—"संपूर्ण अहिंसाके आधारपर गठित और परिचालित समाज विशुद्ध रूपमें अराजक होगा।" इस प्रकारके समाजमें राजाका अस्तित्व निरर्थक हो जायगा। अब यदि कोई यह प्रश्न करे कि क्या इस प्रकारका समाज कभी संभव हो सकता है, या यह आदर्श कोरा आदर्श ही बना रहेगा, कभी चरितार्थ होनेवाला नहीं, तो इसके उत्तरमें गांधीजीने बताया था—"जिस हद तक हम अपने जीवनमें अहिंसाको चरितार्थ कर सकेंगे, उस हद तक यह आदर्श समाज भी चरितार्थ किया जा सकता है।" इसका अभिप्राय यह हुआ कि जिस राष्ट्रके स्त्री-पुरुष अपनी प्रवृत्तियों को संयत रखकर मनुष्यत्वकी दृष्टिसे जहाँ तक ऊँचा उठनेमें समर्थ होंगे, वहाँ तक उस राष्ट्रमें बल-प्रयोगकी आवश्यकता कम होती जायगी। हाँ, यह कहना कठिन है कि वह दिन निकट भविष्य में कभी संभव हो सकता है या नहीं, जब कि मनुष्य अपनी पाशविक वृत्तियोंको संपूर्ण संयत रखकर इस प्रकारका आचरण करेगा, जिससे उसके आचरण द्वारा दूसरोंको किसी प्रकार भी क्लेश नहीं पहुँचे। सब मनुष्य या अधिकांश मनुष्य मनसा-वाचा-कर्मणा परस्परके व्यवहारमें सहानुभूतिशील बने रहेंगे।

आदि-युगसे लेकर अब तक मनुष्य सभ्यताके पथपर जितना ही अग्रसर हुआ है, उतना ही उसने अपनी पाशविक वृत्तियोंको संयत करनेका अभ्यास ग्रहण किया है। बर्बर मनुष्य में और सभ्य मनुष्यमें यही बहुत बड़ा अन्तर है। बर्बर मनुष्य अपनी प्रवृत्तियों द्वारा जीवनमें परिचालित होते हैं। प्रवृत्तियों के वे दास होते हैं। इसके विपरीत सभ्य मनुष्य अपनी प्रवृत्तियों को सयत रखनेकी चेष्टा करते हैं, जिससे वे समाजमें अन्य लोगोंके साथ मिलकर रह सकें। काम, क्रोध, लोभ, मोह-जैसे विकार उनके अन्दर भी होते हैं; किन्तु वे उनके आवेगको संयत आचरणमें रखकर वे अपनी पाशविक वृत्तियोंसे ऊपर उठनेकी चेष्टा करते हैं। सभ्यताके आदि-युगसे लेकर अब तक मनुष्य अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियोंको अपने वशमें रखकर प्रगतिके पथपर अग्रसर होनेका अभ्यास अपने अन्दर करता आ रहा है। सहज प्रवृत्तियोंको वशवर्त्ती रखनेके कारण ही मानव-सभ्यताकी जय-यात्रा संभव हुई है। यदि मनुष्य एकमात्र प्रवृत्तियोंका दास बना रहता और इन्द्रिय-सुखको ही अपने जीवनका चरम ध्येय समझता, तो ज्ञान-विज्ञान, साहित्य-संगीत, कला, धर्म-दर्शन आदिकी जो आश्चर्यजनक उन्नति हुई है, वह संभव न हुई होती। वासनाओं को चरितार्थ करनेमें नहीं, बल्कि वासनाओंको संयत रखकर ज्ञान-विज्ञानकी अराधना करने तथा अपने हृदयको उदार और अपनी अनुभूतिको व्यापक बनानेमें उसने यथार्थ आनन्दकी उपलब्धि की है। यथार्थ आनन्दकी उपलब्धि उसने अर्थ-संग्रह एवं भोगैश्वर्यमें नहीं, बल्कि त्याग, तितिक्षा, संयम तथा परदुःख-कातरतामें की है। यदि यह बात नहीं होती, तो बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, कन्फ्यूसियस, शंकर, रामानुज, सुकरात, प्लेटो और गांधी-जैसे सन्त, महात्मा एवं मनीषी आविर्भूत नहीं हुए होते और मानव-सभ्यता उनके महिमोज्ज्वल दानोंसे मण्डित नहीं हुई होती। ज्ञानानुशीलन, धर्म एवं दर्शन-ग्रन्थोंका मनन तथा साहित्य और कलाकी सृष्टिका जो आनन्द है, वह आनन्द क्या स्थूल भोगोंके आनन्दसे किसी भी रूपमें तुच्छ कहा जा सकता है? हाँ, इतना अवश्य है कि इस प्रकारके आनन्दकी उपलब्धि करनेकी क्षमता सब लोगोंमें नहीं होती। अभी समाजकी जो अवस्था है, उसमें अधिकांश मनुष्य इन्द्रिय-सुख और विषय-भोगके स्थूल आनन्दको ही परमानन्द मान बैठे हैं और इसे चरितार्थ करनेमें वे सहज प्रवृत्तियों द्वारा ही बहुत-कुछ परिचालित होते हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि ऐसे मनुष्योंमें कुछ निसर्गजात दोष होते हैं और उनका सुधार हो ही नहीं सकता। नहीं, प्रत्येक मनुष्यमें पाशविक वृत्तिके साथ-साथ दैवी वृत्ति या दैवी सम्पद् अवश्य होती है। इस दैवी वृत्तिका जितना ही उद्-बोधन होगा, उतना ही उसके अन्दर शुभ बुद्धि, लोक-संग्रह-

कामना जाग्रत होगी और वह अपनी पाशविक वृत्तियोंको संयत रखकर काम करना सीखेगा। समुचित शिक्षा एवं विनयानुशासन द्वारा मनुष्यके अन्दर इस प्रकारका संस्कार बद्धमूल करना होगा। बचपनसे ही मनुष्यको यह शिक्षा देनी होगी कि हिंसा-प्रतिहिंसा, युद्ध-विग्रह, परपीड़न एवं परशोषण, परराज्य-हरण एवं साम्राज्य-विस्तार बर्बरोचित और अमानुषिक कर्म हैं। इस प्रकारके कर्म जघन्य होनेके कारण सर्वथा वर्जनीय हैं। मनुष्यका यथार्थ कल्याण वासना एवं भोग-कामनाके उद्दाम वेगको संयत रखकर चलनेमें है, न कि उनके उच्छ्वासमें अपने को प्रवाहित कर देनेमें। युद्ध और हिंसा मनुष्यकी पाशविक वृत्तिको उत्तेजन प्रदान करके उसे मनुष्यत्वके स्तरसे बहुत नीचे गिरा देते हैं। युद्ध उसके पशुत्वका परिचायक है, हिंसा उसकी पाशविक वृत्तिका निदर्शन है। इसके विपरीत शान्ति उसके देवत्वका तथा प्रेम उसके मनुष्यत्वका द्योतक है। मनुष्य-मनुष्य के बीच यदि प्रेम और शान्तिके साथ मिल-जुलकर रहनेकी इच्छाका सर्वथा लोप हो जाय, तो एक दिनके लिए भी समाज का टिके रहना असम्भव हो जायगा और सभ्य समाज वन्य समाजमें परिणत हो जायगा। समाजमें यदि हिंसाकी प्रवृत्तिको प्रश्रय दिया जायगा, भोगैश्वर्यकी लालसाको अबाध रूपमें चरितार्थ करनेके लिए सभी लोगोंको स्वतंत्रता प्रदानकी जायगी, पशु-शक्तिके नग्न नृत्यपर उल्लास प्रकट किया जायगा, तो अवश्य ही इससे सभ्यताकी प्रगति पंगु हो जायगी और मनुष्य में जो दैवी गुण होते हैं, उनके प्रति हमारे मनमें कोई श्रद्धा नहीं रह जायगी। इस प्रकारके समाजमें सभ्यताकी श्रेष्ठतम कृतियों—साहित्य, शिल्प, धर्म, दर्शन, विज्ञान आदि - के लिए कोई स्थान नहीं रह जायगा और पशु-बलकी प्रबलता एवं औद्धत्यके सामने सबको परास्त होना पड़ेगा। इस प्रकारका समाज किसीके लिए काम्य नहीं हो सकता। बल-प्रयोग, बलात्कार और नये-नये मानव-संहारी शस्त्रास्त्रोंके आविष्कारसे मानव-सभ्यताकी रक्षा और शान्तिकी स्थापना नहीं हो सकती, इस बातको आजके बहुसंख्यक मनुष्य हृदयंगम इसलिए नहीं कर रहे हैं कि अब तक उनके अंदर इस प्रकारके संस्कार बद्धमूल करनेकी चेष्टा नहीं की गई है। उनमें शुभ बुद्धि जाग्रत हो और पाशविक वृत्तिको वे संयत रखनेकी आवश्यकता अनुभव करें, इसके अनुकूल उन्हें शिक्षा देनेके लिए कोई व्यापक कार्यक्रम अभी तक किसी भी राष्ट्रकी ओरसे कार्यान्वित नहीं किया गया है। इसके विपरीत अब तक युद्ध और युद्धके विजयी वीरों और सेनानायकोंकी प्रशंसा एवं स्तुतिमें ही काव्यों एवं महाकाव्योंके पृष्ठ रँगे गए हैं। यह सब होनेपर भी सभी देशोंमें समय-समयपर ऐसे मनीषी महापुरुष उत्पन्न हुए हैं जिन्होंने मानव-जातिको शान्ति एवं प्रेमकी कल्याणमयी वाणी सुनाकर पशु-बलकी नीति त्यागनेका उपदेश दिया है।

गांधीजीने मानव-जातिके सामने प्रेम और अहिंसाका जो आदर्श उपस्थित किया, वह इसलिए नहीं कि यह उनकी महज खामखयाली थी और वे वास्तविक जगतसे दूर केवल कल्पना-लोकमें विचरण करनेवाले भावुक वीर थे। मनुष्यकी दैवी वृत्ति पर, उसकी शुभ बुद्धिपर उनका अखण्ड विश्वास था और अपने इसी विश्वासके बलपर उन्होंने मानव-जातिके उस सुदूर भविष्य का अपनी स्वच्छ दृष्टिसे संदर्शन किया था, जब कि समाजकी संस्थिति एवं संरक्षणके लिए शक्ति-प्रयोगकी आवश्यकता बिलकुल नहीं रह जायगी। इस समय जितने राष्ट्र हैं, वे बल-प्रयोग द्वारा शान्ति-स्थापन एवं समाज-संरक्षणकी चेष्टा करते हैं; किन्तु इससे क्या यह परिणाम निकाला जा सकता है कि एकमात्र दण्डके भयसे ही राष्ट्रके अंदर रहनेवाले सब लोग चोरी, डकैती, परपीड़न, हिंसा आदि कर्मोंसे विरत रहते हैं! क्या उनकी शुभ बुद्धि इसके लिए उन्हें प्रेरित नहीं करती! यदि अधिकांश मनुष्योंमें शुभ बुद्धिकी यह प्रेरणा नहीं होती, उनकी सामाजिक प्रवृत्ति उन्हें समाजके प्रति श्रद्धायुक्त नहीं बनाती, तो क्या कोई भी राष्ट्र-शक्ति पाशविक वृत्तियोंकी उन्मादनासे समाजकी रक्षा करनेमें समर्थ होती? यदि सब मनुष्य अन्याय एवं अपराध, दुष्कर्म एवं दुर्नीतिकी ओर प्रवृत्त नहीं होते, तो इसका कारण यह नहीं है कि राष्ट्र-शक्तिकी नंगी तलवार उनके सिरपर लटक रही है, बल्कि इसलिए कि उनकी शुभ बुद्धि, उनकी समाज-कल्याणकी भावना उनके अंदर जागरूक है, और मनुष्यके मनुष्यत्वकी जो महिमा है, उसका जो सौन्दर्य और माधुर्य है, वही उन्हें सब प्रकारके दुष्कर्मोंसे विरत रखनेमें समर्थ होता है। गांधीजी मनुष्यके इसी आन्तरिक सौन्दर्यपर, उसकी शुभ बुद्धिपर विश्वास करते थे और इसे जाग्रत करके बल-प्रयोगकी आवश्यकताको निरर्थक सिद्ध करना चाहते थे। किन्तु यह किस प्रकार हो सकता है! केवल मनुष्यकी शुभ बुद्धिको हिंसा एवं प्रतिहिंसा, घृणा एवं विद्वेषके विरुद्ध जाग्रत करनेसे ही काम नहीं चल सकता।

इसके साथ ही न्याय एवं नीतिके प्रति भी मनुष्यके मनमें आस्था उत्पन्न करनी होगी। मनुष्य अपराध केवल इसलिए नहीं करते कि अपराध करनेकी उनमें स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, बल्कि इसलिए भी कि उन्हें समाजमें अनीति एवं अन्याय का, उत्पीड़न एवं शोषणका शिकार बनना पड़ता है। समाजमें हिंसा एवं बल-प्रयोगकी आवश्यकता न रह जाय, इसके लिए यह भी आवश्यक है कि समाजमें धन-वैषम्य और उसके फल-स्वरूप दैन्य एवं दारिद्र्यका अस्तित्व लुप्त कर दिया जाय। समाज-व्यवस्थाके मूलमें जो अनीति एवं अन्याय है, उसके कारण भी बहुतसे लोगोंको अपराध करनेके लिए बाध्य होना पड़ता है। जहां अन्यायको प्रश्रय दिया जायगा, असत्यको सत्यके स्थानपर प्रतिष्ठित किया जायगा, वहां हिंसाका निराकरण नहीं किया जा सकता। सत्य और अहिंसा दोनों एक-दूसरेके पूरक हैं। यही कारण है कि एक ओर गांधीजी जहां प्रेम एवं अहिंसाके आधारपर समाजको प्रतिष्ठित करना चाहते थे, वहां दूसरी ओर इस समाजको सर्वोदय समाजका रूप भी देना चाहते थे—अर्थात् ऐसा समाज, जिसमें सभी मनुष्योंके मनुष्यत्व का उदय हो, सबको अपने व्यक्तित्वके विकास तथा आत्म-प्रकाशका पूर्ण सुयोग प्राप्त हो और एक भी व्यक्तिको—चाहे वह कितना ही साधारण एवं अधम क्यों न हो—अन्याय एवं अत्याचारका, शोषण एवं उत्पीड़नका शिकार न होना पड़े। इस प्रकारके समाजमें निस्सन्देह राष्ट्रके लिए शक्ति-प्रयोगकी आवश्यकता कदाचित् ही उपस्थित होगी और इस राष्ट्रके नागरिक अपने व्यावहारिक जीवनमें क्रमशः अहिंसाकी श्रेष्ठता की उपलब्धि करते हुए हिंसाके प्रति स्वाभाविक विरक्ति प्रकट करने लगेंगे। गांधीजी अपने आदर्श रामराज्य और सर्वोदय समाजके दूसरे रूपकी कल्पना अपने मनमें पोषण करते थे और इसे वास्तविक रूपमें परिणत करके मानव-जातिका शाश्वत कल्याण साधन करना चाहते थे।

गीत

श्री देवनाथ पाण्डेय 'रसाल'

सत्यकी खोजमें सृष्टि थक सो गई,
स्वप्न केवल मिला है मिला देवता!
एक ही बिन्दुसे है बना सिन्धु यह,
एक ही रश्मिसे है बना इन्दु यह,
दृष्टिकी जो परिधिके परे शून्य वह,
शून्यके क्या परे द्वार है बन्द यह?
तृप्तिको सत्य जगने लिया मान,
भ्रम यह पला आ रहा है पला देवता!
धूप खिल कह रही पासकी छाँह में,
छाँह मिट कह रही धूपकी चाह में,
आदि औ' अन्तके मध्य जग कह रहा—
हूँ सृजन औ' प्रलयकी सुलभ थाह मैं।
रूपकी ज्वालमें आदिसे ही जला जग,
चला आ रहा है चला देवता!
मेघसे बूँद झर-झर धरा पर गिरी,
बूँद बन मेघ नभके नयनमें तिरी,
नाश-निर्माणके दोल पर झूलती,
सृष्टि है आ रही वासनासे भरी;
शूलमें साधका फूल खिल धूलमें ही,
मिला आ रहा है मिला देवता!
भावनाने गढ़े रूप सुन्दर नये,
कल्पनाने विविध रंगके पुट दिये,
तुष्टि लेकिन न उरकी हुई, हो सकी—
हो सकेगी कभी प्रश्न क्या हल हुए?
वंचनामें इसी वासना-तृप्ति की,
जग छला आ रहा है छला देवता!
रूप निश्चित नहीं दृष्टिका दोष यह,
रूप अगणित कहूँ आत्म-संतोष यह,
आत्मकी वंचनाको समझ सत्य ही,
तत्त्वका खोल पाया नहीं कोष यह;
भेदका भाव भ्रम डाल जगके हृदयमें,
ढला आ रहा है ढला देवता!

तीर्थ-यात्रा

श्री रामकुमार

केवल चार मीलके अन्तरपर उस बूढ़े दम्पत्तिका मकान था, परन्तु फिर भी अकेले जाना अखरने लगा। नीचे देश आनेसे पूर्व एक बार उन दोनोंसे मिलना आवश्यक था। दूसरे उनकी दो पुस्तकें मेरे पास रखी थीं, उनको भी वापस करना था। अन्तमें जानेसे दो दिन पूर्व प्रातःकाल नाश्ता करके एक मित्रको ज़बरदस्ती अपने साथ ले गया और उससे वादा किया कि केवल पुस्तकें वापस करके लौट आऊँगा और मेरा साथी ऊपर ही खड़ा रहेगा।

मानसून आरम्भ हो चुका था। आकाश प्रातःकालसे ही बादलोंसे घिरा हुआ था। उस दिन हवामें सर्दी थी। बादल धुएँके रूपमें एक कोनेसे दूसरे कोनेमें मटरगश्ती कर रहे थे और दूरके पहाड़ बादलोंके आवरणमें धीरे-धीरे छिपकर अपना अस्तित्व खोते जा रहे थे। लगभग दो मील तक बस्तीका रास्ता पार करके फिर सुनसान मार्ग आरम्भ हो गया। एक ओर पहाड़की चट्टानें थीं और दूसरी ओर चीड़ तथा दूसरे पेड़ोंसे ढँका हुआ गहरा खड्ड था। कभी-कभी तेज़ हवाके झोंकेसे पेड़ोंकी घनी शाखाएँ हिल उठती थीं, मानो किसी नर्त्तकीकी भुजाएँ अपनी कलाका प्रदर्शन कर रही हों। शिमलेमें वर्षा-ऋतुका वातावरण स्पष्ट रूपसे झलक रहा था। मेरे साथीको भय था कि कहीं बारिश पड़नी आरम्भ न हो जाय। अतः हम दोनोंने चाल तेज़ कर दी। रास्ता और भी ऊबड़-खाबड़ आरम्भ हो गया; परन्तु ठंडी हवाके झोंकोंसे न तो कभी रास्तेके विषयमें सोचा और न कभी थकानका ही अनुभव किया। कभी कोई इक्का-दुक्का पहाड़ी मिल जाता था। मेरा साथी आश्चर्य प्रकट कर रहा था कि मेरे ये परिचित बस्तीसे उतनी दूर क्यों रहते हैं? जब उनके पास पर्याप्त धन है, तो वे आबादीमें क्यों नहीं रहते? मैं मन-ही-मन उन दोनोंके भाग्यपर ईर्ष्या कर रहा था, जो वास्तविक दुनियाके कोलाहलसे दूर, एक शान्तिमय निस्तब्ध स्थानमें, अपनी ही दुनियामें मगन रहते हैं, जिन्हें संसारके अन्य प्राणियोंकी आवश्यकता नहीं, जिन्होंने अपने अन्दर ही अपना साथ खोज निकाला है और इसी कारण उन्हें किसीका अभाव नहीं खटकता।

रास्ता बिल्कुल शान्त था। केवल कहीं-कहीं ऊपर वृक्षोंपर कोई जंगली पक्षी अजीब-सा स्वर निकाल बैठता था, जिससे निस्तब्ध वातावरण सिहर उठता था। बादल और घने हो गए थे, पासके पेड़-पौधे तक धुंधमें छिप गए थे। आखिर अपने
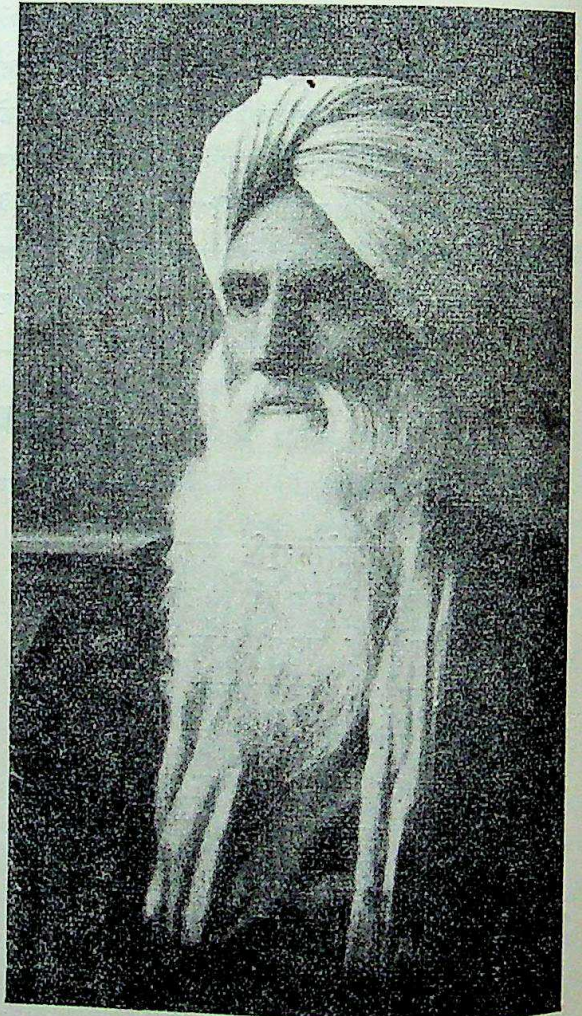
सरदार उमरावसिंह शेरगिल

मित्रको ऊपर ही छोड़कर मैं नीचे उनके मकानकी ओर बढ़ गया। दूसरे ही दीवारोंपर लगे श्वेत चमकते पत्थर दिखाई दिए। छोटा-सा दोमंजिला मकान था, जिसके चारों ओर बाग था। बाहर बरामदेमें तीन-चार कुर्सियोंपर कपड़ेकी बड़ी-सी छतरी

लगी थी। मकानके चारों ओर 'वीपिंग विलोज़'की झुकती हुई बेलें देखकर मैं एकबारगी सिहर उठा। ढलानपर फूलोंकी क्यारियाँ थीं। बाहर चौकीदारसे मैंने मैडमको बुलानेके लिए

सरदार उमरावसिंह शेरगिलकी पत्नी

कहा। उनके पतिके पास पहले जाकर जल्दी छुटकारा पाना असम्भव था; क्योंकि वे सदा मुझसे संस्कृत या फारसी साहित्य की चर्चा आरम्भ कर दिया करते थे, जिसमें घंटों बीत जानेपर भी समयका पता नहीं चलता था। दूसरे मैडमकी पुस्तकोंको लौटाना भी था।

मैडमकी अवस्था ५२ वर्षके लगभग थी। बालोंमें सफ़ेद और काले दोनोंका ही मिश्रण था। चौड़ा श्वेत मुख और मोटे लाल होंठ, मझोला क़द और तनिक भारी शरीर, स्कर्टमें उनका शरीर काफ़ी स्वस्थ दिखाई देता था; परन्तु कुछ मानसिक क्लेश होनेपर स्वास्थ्यके प्रति उदासीन हो गई थीं। मुझे देखकर ही मुस्करा दीं और अभिवादन करके अपने कमरेमें ले गईं। उनके बैठनेवाले कमरेके बीचों-बीच एक बड़ा-सा प्यानो रखा था, जिसके पास ही एक स्टूल पड़ा था। कोनेमें शीशेकी तीन आलमारियाँ थीं, जिनमें बड़े कलात्मक ढंगसे पुस्तकें चुनी हुई रखी थीं। दूसरे कोनोंमें तीन-चार आरामकुर्सियाँ रखी थीं, जिनपर श्वेत कवर चढ़े हुए थे। कमरेकी दीवारोंपर उनकी विश्व-विख्यात स्वर्गीय पुत्रीके बनाए हुए तैलचित्र टँगे थे। अन्य चित्रकारोंके भी कुछ चित्र तथा प्रिन्टस् लगे थे। एक ओर प्रसिद्ध संगीतकार सोपानका बड़ा-सा चित्र बना हुआ था, जिसे फ्रेंच चित्रकार गाटियरने बनाया था। दीवारके निचले भागपर उनकी पुत्रीके अनगिनत फोटो टँगे थे। किसीमें वह चित्र बना रही थी, तो किसीमें वह अपना शृंगार कर रही थी। कमरेकी खिड़कियोंमें से बाहर धुंधका साम्राज्य स्पष्ट रूपसे दिखाई दे रहा था।

उसी कमरेसे लगे हुए एक छोटे-से कमरेमें मैडम मुझे ले गईं। वह उनका पढ़ने तथा बैठनेका कमरा था। यहाँ भी मेज़ पर पुस्तकें बिखरी हुई थीं। उनकी पुत्रीके कुछ स्केच इधर-उधर लटक रहे थे। वे चाय पी रही थीं। उन्होंने कहा—"मैं अकेली चाय नहीं पीती, अपने सब नौकरोंको पास बुला लेती हूँ और इनसे बातें करती जाती हूँ।"

उनकी कुर्सीके पास ही तीन पहाड़ी स्त्रियाँ और उनके कुछ बच्चे बैठे गिलासोंमें चाय पी रहे थे। किसीके हाथमें बिस्कुटका टुकड़ा था, तो किसीके हाथमें टोस्टका। बच्चोंके पास मिठाईकी गोलियाँ, टाफ़ी इत्यादि थीं। मैडमकी इस अजीब-सी दुनियाको देखकर मैं आश्चर्यचकित-सा रह गया। इनसे बातचीत करते समय उन्हें किसी शहर-निवासीकी आवश्यकता कैसे पड़ सकती थी? मुझे पास ही कुर्सीपर बिठाकर उन्होंने उन सबको विदा किया। वे मेरी ओर घूरती हुई कमरेसे बाहर चली गईं। मैं भी चाय पीने लगा। पास ही मेज़पर एक पुस्तकको खोलकर देखा, तो अवाक् रह गया। उसमें दो प्रसिद्ध लेखकोंका निजी पत्र व्यवहार था। गुस्टव फ्लाबर्ट और जार्ज सैंडसके पत्र थे। चाय पीते समय मैडम बतलाने लगीं कि किस प्रकार छः वर्ष पूर्व उनकी प्रिय पुत्रीकी असामयिक मृत्युने उनके जीवनमें एक तूफ़ान खड़ा कर दिया था और नियतिके उस प्रहारने उनके जीवनकी जड़ें तक हिला दी थीं। उसके कारण अब तक उनका स्वास्थ्य सुधर नहीं पाया है। मैं जानता था कि उसकी मृत्युके पश्चात् पाँच वर्ष तक मैडमने किसीसे उसके विषयमें एक शब्द

तक नहीं कहा था। उसकी चर्चा तक करना मानो उनके लिए सबसे बड़ा पाप था। फिर वे पत्र दिखाने लगीं, जो सहानुभूति प्रकट करनेको विश्वके कोने-कोनेसे उनके पास आए थे। इंग्लैंड के राजा और प्रधान-मंत्री, भारतके वाइसराय, गवर्नर तथा दूसरे नेताओंके पत्रोंका बड़ा मोटा-सा पुलिंदा उनकी दराज़में रखा था। कई बार बातें करते समय उनका गला इतना रुँध जाता था कि मुझे उनके रोनेपर संदेह होने लगता था, और जब अपनी दृष्टि ऊपर उठाता, तो उनके नेत्र आँसुओंसे भरे हुए जान पड़ते थे।

फिर उन्होंने अपने परिवारके फोटो दिखाने आरम्भ किए। हंगरीमें किस प्रकार वे अपने भारतीय पतिसे पहले-पहल मिलीं और बुडापेस्टमें उन्हें पिछले महायुद्धमें कितनी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। बुडापेस्ट, रोम, पेरिस तथा अन्य शहरोंकी फली-फूली प्रकृतिके सुन्दर चित्र थे। फिर उनकी दोनों पुत्रियोंके बचपनके फोटो, दोनोंका बचपन, परस्पर खेलना और झगड़ना, नाटक करना इत्यादि। इन चित्रोंके लगभग दस अलबम थे। उनके पतिको फोटोग्राफीका बहुत शौक था और सब फोटो उन्हींके खींचे हुए थे। उन्होंने कहा—"इन सबको देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो ये सब कहानियाँ अभी कलकी ही हों। कभी-कभी तो मुझे ऐसा विचार आता है कि मैं भारतमें नहीं, हंगरीमें अपने मकानमें बैठी हूँ। जीवनके इस अन्तिम प्रहरमें भी ऐसा जान पड़ता है कि मेरा सूर्य अभी क्षितिजमें बहुत दूर है।" कुछ देर रुककर फिर बोलीं—"(उनकी पुत्री) सदाके लिए चली गई, इसपर मुझे विश्वास नहीं होता। इसी कमरेमें जब मैं प्यानो बजाया करती थी, तब वह अपना चित्र पूरा करके चुपचाप मेरे पीछे खड़ी रहती थी। वह प्रायः मुझसे कहती थी कि मैं सोपानका संगीत बजाऊँ और वह चित्र बनाए ; क्योंकि कानोंमें संगीतके साथ-साथ उसके विचार भी दूसरी दुनियामें पहुँच जाते थे। परन्तु वह अपनी कलामें इतनी मगन हो जाती थी कि संगीत समाप्त होनेपर भी उसे इसका ध्यान नहीं रहता था और मैं चुपचाप दूसरे कमरेमें चली जाती थी। आज उसके चित्रोंको दीवारोंपर टँगे देखकर कल्पना भी नहीं कर सकती कि उनका बनानेवाला अब कभी वापस लौटकर नहीं आयगा।"

थोड़ी देर तक हम दोनों चुपचाप रहे। वे अपनी पुस्तकों को ठीक करती रहीं। बाहर वर्षा होने लगी थी और कभी-कभी बादल गरज उठते थे। ऊपर खड़े हुए अपने साथीका ध्यान एकबारगी मुझे आया, परन्तु फिर विलीन हो गया। बातचीतके रुखको बदलनेके लिए मैं उनकी पुस्तकोंको देखने लगा। सोपान, बीठोफ़न, वागनर, शूमने और अन्य संगीतकारों की जीवनियाँ पड़ी थीं—कोई फ्रेंचमें, कोई जर्मनमें और कोई हंगेरियनमें। मैडमसे पता चला कि वे अंगरेज़ी, जर्मन, फ्रेंच, इटैलियन और हंगेरियन जानती हैं। मैं अवाक् रह गया। उनके पुस्तकोंके कोष और उनके मस्तिष्कमें भरे ज्ञानके भंडारकी कल्पना करके उनसे ईर्ष्या होने लगी। यूरोपके उच्च

मैडम शेरगिल

कोटिके साहित्यका अध्ययन उन्होंने भलीभाँति किया था। किसी भी बड़े लेखककी पुस्तकका नाम लेनेपर उनका सिर स्वीकृतिसे हिलने लगता था। अपने भाईकी लिखी हुई पाँच-छः पुस्तकें हंगेरियन भाषामें उन्होंने दिखाईं, तब जान पड़ा कि वे कलाकारोंके परिवारमें से हो आई हुई हैं और उन्हींके कारण उनकी एक पुत्री इतनी महान कलाकार बन सकी और दूसरीने संगीतका विशेष अध्ययन किया। हम दोनों क़ालीनपर ही बैठकर पुस्तकें देखने लगे। सुन्दर जिल्दोंवाली मोटी-मोटी

विदेशी भाषाओंमें लिखी गई पुस्तकोंके विषयमें वे विस्तारसे उनसे संबंधित अपने भावोंका प्रदर्शन करती जा रही थीं और मैं एक अबोध बालककी भाँति चुपचाप सुनता जा रहा था। कितनी ही पुस्तकोंके लेखकोंने मैडमको बड़े सुन्दर शब्दों में अपनी रचनाएँ उपहार-स्वरूप दी थीं। मैडमका परिचय यूरोपके साहित्यिक महारथियोंसे कितना था! संगीतके विषयमें उनका ज्ञान अथाह था। किसी समय अपने शहरके सभी जल्सोंमें प्यानोपर सोपान और बीटोफ़नका संगीत बजानेका निमंत्रण उन्हें मिला करता था और उनका संगीत सुननेके लिए लोग व्याकुल रहते थे। यहाँ भी कितनी ही बार वायसरायके घरमें वे प्यानो बजा चुकी हैं। जीवनके इस सायंकालमें यदि उन्हें कहीं शान्ति मिलती है, कहीं प्रकाशकी रेखा दिखाई देती है, तो वह उनको संगीतमें ही मिलता है। संगीतसे अलग होकर उनकी दुनियामें केवल अंधकार और निराशा ही हैं।

इतनेमें उनके ७२ वर्षके पति आ गए। उनकी श्वेत दाढ़ी, चश्मा, झुर्रियोंसे भरा हुआ उनका चेहरा और पतला-दुबला शरीर देखकर उनके मुखपर एक बौद्धिक आभा दिखाई देती है। वे संस्कृत और फारसीके बड़े भारी विद्वान हैं। गीताके प्रत्येक श्लोकका बड़ा अजीब-सा अर्थ वे निकालते हैं। हंगरीमें ही उनका परिचय मैडमसे हुआ था और वहींसे वे उन्हें अपने साथ भारत ले आए थे। उर्दूके प्रसिद्ध कवि इक़बालसे उनकी घनिष्ट मित्रता थी। इतनी अवस्थामें भी वे ५ मील रोज़ चलते हैं और अपने स्वास्थ्यका बड़ा ध्यान रखते हैं। उनके कमरेमें संस्कृतकी पुस्तकें बिखरी रहती हैं। चारपाई के पास ही रेडियो है। दाईं ओर टाइपराइटर रखा है और पास ही बिजलीका स्विच है। जब कभी कोई विचार मनमें आता है, तो आधी रातको ही टाइपराइटर द्वारा वे उसे व्यक्त कर देते हैं। पति-पत्नी दोनों अपनी-अपनी दुनियामें मगन रहते हैं। वे इस समय अपनी पत्नीसे कैंची माँगने आए थे। मुझसे थोड़ी देर बातचीत करके वे पुनः अपने कमरेमें लौट गए।

अपने साथीका ध्यान आते ही मैंने विदा माँगी; परन्तु वर्षाने मैडमने जाने नहीं दिया। मैं भी थोड़ी देरके लिए और रुक गया। इस समयका उपयोग करनेकी मैंने ठानी और उनसे प्यानो बजानेके लिए कहा। उन्होंने मेरे हाथमें उमर खय्याम की कविताकी पुस्तक पकड़ा दी और प्यानोके पास ही खिड़कीके सामने एक आरामकुर्सीपर बैठकर पुस्तक पढ़नेको कहा और स्वयं प्यानो बजाने बैठ गईं। सोपानका संगीत आरम्भ हो गया। मैं पुस्तकके पन्ने उलटने लगा। पुस्तकमें चित्र भी थे। अंगरेज़ीमें एक-एक रुबाईके पास उनके पतिने बड़े सुन्दर अक्षरों में फ़ारसीमें भी वही शेर लिख रखा था। पहले-पहल तो मैंने उसे छाया ही समझा था। सोपानका संगीत धीरे-धीरे प्रवाहमें बहता जा रहा था। मुझे मैडमकी झुर्रियोंवाली सफ़ेद उँगलियाँ बड़ी तेज़ीसे प्यानोपर दौड़ती हुई दिखाई दे रही थीं। कभी-कभी कोई अजीब-सा स्वर लगाकर वे मुस्कराने लगती थीं। संगीत तेज़ होता गया। बाहर बादल गरज रहे थे और वर्षा भी हो गई थी। मैडमकी उँगलियाँ और भी जल्दी-जल्दी चलने लगीं, मानो बहुत शीघ्र ही वे सहारा पा लेना चाहती हों। प्यानोके स्वर निस्तब्ध कमरेमें गूँजने लगे। मैंने पुस्तक बन्द करके एक ओर रख दी। कमरेमें हलचल मची हुई थी। उनकी उँगलियाँ प्यानोके एक सिरेसे चलकर अन्त तक दौड़ जाती थीं और दूसरा हाथ शान्त होकर स्वर बजाए जा रहा था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो कोई भटकती हुई आत्मा तूफ़ानके कोलाहलमें आश्रय पानेका विफल प्रयास कर रही हो। सब स्वर एक प्रकारकी हलचलका दिग्दर्शन करा रहे थे। चारों ओर अशांति और विनाशका वातावरण दिखाई दे रहा था। मैं भी किसी भावी आशंकासे काँप उठा। संगीतकी अपार शक्तिका परिचय मुझे उस दिन मिला। मैडमके होंठोंपर अब भी क्रूर हँसी खेल रही थी। उनकी गर्दन घूम रही थी, मानो वे अपना अस्तित्व भूल चुकी हों। बादल बड़े ज़ोरसे गरजा और मैडम प्यानो छोड़कर खड़ी हो गईं। मैं अवाक् होकर उनका मुख देखने लगा। पसीनेकी बूँदें उनके लाल माथेपर झलकने लगी थीं। सफ़ेद मुख लाल हो गया था। बाल सिर हिलाते-हिलाते माथेपर आ गए थे, जिन्हें पीछे हटानेका विचार उनके मनमें नहीं आया। फिर उन्होंने कहा—"मुझे यह सिंफनी बड़ी अच्छी लगती है। जब मैं बड़ी अधीर हो जाती हूँ, तो इसीसे मुझे सान्त्वना मिलती है।"

अन्तमें उनसे विदा लेकर मैं चला आया। मेरे साथीने बतलाया कि मैंने पाँच मिनटकी जगह दो घंटे लगाए हैं; परन्तु मैं उसे कैसे समझाता कि इन दो घंटोंमें मैंने जो-कुछ देखा है, जो-कुछ पाया है, वह शायद ज़िंदगीमें कभी न पा सकूँ। यह मेरे लिए किसी प्रकार भी बौद्धिक तीर्थ-यात्रासे कम नहीं था, जहाँ कलाके विभिन्न पहलू मुझे पूर्ण विकसित दिखाई दिए।

क्या इस तीर्थ-यात्राको मैं कभी भूल सकूँगा ?

और इस घटनाके ठीक दस दिन पश्चात् ३१ जुलाई, १९४२ को यह समाचार मिला कि विश्व-विख्यात चित्रकार स्वर्गीय अमृत शेरगिलकी माँ मैडम शेरगिलने आत्म-हत्या कर ली ! विश्वास न हो सका, क्योंकि क्रिकेट-मैचों और रेसोंके समाचारोंसे भरे हुए किसी भी समाचारपत्रमें यह खबर प्रकाशित नहीं हो सकी थी। केवल सारे शरीरमें एक अजीब-सी सिहरन हुई, जिसमें मैं सिरसे लेकर पाँव तक काँप उठा। जीवन और मृत्युके बीच जो घनी और काली चादर है, उसका रहस्य समझनेका प्रयास करने लगा। परन्तु आज उनके पति शेरशिलने जब विस्तारमें स्वयं यह घटना सुनाई, तो हृदय चीत्कार कर उठा। उनके शब्दोंमें—"३१ जुलाईको वे समर-हिलसे छोटा शिमला किसी कामसे गए। उनके जानेके पश्चात् मैडम मकानमें से एक बन्दूक ले आईं और नौकरसे उसको चलानेकी विधि पूछने लगीं। नौकरने बतला दिया, परन्तु शीघ्र ही जाकर उनकी पुत्री इन्दिराको यह समाचार दे दिया। इन्दिरा भी अपनी माँकी दशा जानती थीं। अतः वे तत्क्षण दौड़ी-दौड़ी आईं और मैडमसे बन्दूकवाली घटनाके विषय में पूछा। इसपर वे हँसने लगीं और कहा कि वे केवल बन्दरों को मारनेके लिए ही ऐसा पूछ रही थीं। इन्दिराके चले जानेपर लगभग आध घंटे पश्चात् मैडमके कमरेमें बड़े ज़ोरकी आवाज़ आई। उन्होंने बन्दूकसे अपने पेटका निशाना बनाया था। शामको उनके पति लौटकर आए। तब तक उनका श्वास चल रहा था। जब सूर्यकी अन्तिम किरण पहाड़ोंके पीछे छिप गई, तभी मैडम भी सदाके लिए विदा हो गईं !"

वे अपने पतिके लिए तीन पत्र छोड़ गई हैं, जिनमें अपनी आत्म-हत्याका कारण लिखा है। जीवनके प्रति अब उनकी कोई चाह बाकी नहीं रही थी। पहले अमृत और अब मैडम...। घटना बताते समय बूढ़े शेरगिलकी श्वेत दाढ़ीके बाल काँप रहे थे और दुःखसे कातर होकर वे अपनी मूँछें नोंचते जाते थे। उनका गला रुँध रहा था और आँखें भरी हुई थीं।

जीवन और मृत्युके उस खेलपर जब कभी मैं सोचता हूँ, तो मेरी आँखोंके सामने मैडम घूम जाती हैं और शिमलेके वे दिन कलकी घटनाएँ प्रतीत होते हैं !

देवी सरोजिनी

श्री गुरुदयाल मल्लिक

विशद मैदान और उत्तुंग गिरि-शृंगोंकी गायिका !

दिव्यलोककी किन सुदूर तारकाओंके मर्मगत रहस्योंको
गुम्फित किया है तुमने अपने गीतोंके आनन्दमय उच्छ्वासमें ?
मानवताके कौन-से करुण-मधुर संगीतको
ढाल दिया है तुमने अपनी जादू-भरी मुरलीकी सरस स्वर-धारामें ?
वह कौन जादूगर था, जिसने मेघमन्द्र स्वरमें तुम्हें ललकारा—
कि स्वप्नोंके मधुमय संसारसे,
कल्पनाकी अलस अलकापुरीसे—
निकलकर एक हो जाओ उस राह चलते बटोहीके साथ,
जो युगों-युगोंसे संघर्ष और वेदनासे जूझता-लड़खड़ाता
चला आ रहा है ?
देशकी महिमामयी चारण !
तुम्हारी बाँसुरीके स्वरोंने हमारी आज़ादीके सात्विक संग्राममें —
कायरको भर दिया ओजसे,
नारीको पुण्यमयी शक्तिसे,
तरुणोंको पर्वत-शृंग फाँदनेकी उद्दाम अभिलाषासे,
श्वेतकेशी वृद्धोंको देशके सोए भाग जगानेकी आशासे।
और कुछ ऐसा ही हुआ कि—
तमसाच्छन्न प्रासाद, अवसन्न कारागार,
गरबीले दरबार और ममताहीन सभा-भवन
सब किसी अलख आघातसे भहराकर गिर पड़े—
धूलिसात् हो गए !
और तब जैसे सूरजकी नवारुण रश्मियाँ झर पड़ीं,
प्रेम और मुक्तिका पुण्य समीर लहरा उठा—
प्रेम ? मातृभूमिका, और
मुक्ति ? मानव-आत्माकी —जो पूर्णताके स्वर्ग
को इसी धरतीपर बसाना चाहती है।

मौत

श्री महेंद्रकुमारी भण्डारी

आज उस क्षयग्रस्त रोगिणीकी मृत्युका समाचार सुनकर मुझे अपार दुःख हुआ। उस अभिमानिनीको, जिसने कभी किसीका आधिपत्य स्वीकार नहीं किया, किसी इकाईकी तो इतनी सामर्थ्य ही कहाँ, सारा समाज भी अपने अस्वाभाविक नियमों और मर्यादाओंके झूठे पाखंडमें नहीं बाँध सका; उसे क्षयने केवल तीन महीनेमें ही मौतके मुँहमें धकेल दिया। शायद वहाँ उसका अभिमान, अपनत्व, अस्तित्व सभी कुछ समाप्त हो गया था; नहीं तो मैं कभी विश्वास नहीं करती कि वह मृत्युसे इतनी जल्दी परास्त हो जायगी।

जब मैंने उसे पहली बार देखा था, तब न तो मुझे उसके प्रति कोई आकर्षण ही हुआ था, न कोई जिज्ञासा ही। घरमें शुरूसे ही शिक्षा पाई थी कि उन लोगोंसे घनिष्टता बढ़ाना हमें शोभा नहीं देता, जो आर्थिक दृष्टिसे अपनेसे काफी नीचे हों। और उसी शिक्षाका अक्षरशः पालन करते हुए मैं कभी ऐसे-वैसे लोगोंसे सीधे मुँह बात भी नहीं करती थी। किन्तु न-जाने कौन-सी अज्ञात प्रेरणासे प्रेरित होकर मैं धीरे-धीरे उसकी ओर खिंचती चली गई और अनजानेमें ही उससे इतना घुल-मिल गई कि अन्तमें तो मुझे हमारे दो होनेमें भी संशय होने लगा। उसके दो वर्षोंके संसर्गने ही अठारह वर्षोंसे दकियानूसीपनकी जमी हुई काईको धो-पोंछकर मेरे दिल और दिमाग दोनोंको स्वच्छ और निर्मल बना दिया। अब मैं न छोटे-बड़ोंमें कोई भेद समझती हूँ, न उन लोगोंसे संसर्ग बढ़ानेमें मुझे किसी प्रकारकी हिचकिचाहट ही होती है। बड़े घरकी लड़की होनेके झूठे गर्वकी जो कालिमा पुती थी, उसे मैंने अपनी आत्माके प्रकाशसे साफ़ कर दिया है।

मैं बचपनसे ही ज़िद्दी थी। जब तक कोई बात मेरी समझमें अपने-आप न आ जाती, तब तक किसीके लाख प्रयत्न करनेपर भी मैं उसे मानती नहीं थी। मेरी इस आदतसे घरके सभी लोग परेशान थे। ऐसी ज़िद्दी लड़कीको यदि कोई दो वर्षोंके भीतर ही बाहरसे भीतर और ऊपरसे नीचे तक एकदम परिवर्त्तित कर दे, तो इसपर दूसरोंको आश्चर्य करनेका पूरा अधिकार है। उसके जीवनकी कहानी जब मैंने शुरूमें सुनी थी, तो वह मुझे बड़ी ही विचित्र लगी। यदि यह भी कहूँ कि उसे सुनकर उस स्त्रीके प्रति मेरे मनमें घृणाके भाव भर गए, तब भी अत्युक्ति न होगी। किन्तु अब उसके जीवनकी प्रत्येक घटनापर जब मैं दृष्टि डालती हूँ, तो पाती हूँ कि जो घृणा पहले उसके प्रति थी, वह मेरे दो वर्ष पुराने, संकीर्ण और ओछे विचारोंके प्रति हो जाती है। मेरा मन लज्जा और ग्लानिसे परिपूर्ण हो उठता है। पहले इस दकियानूसी समाजके दृष्टिकोणसे देखती थी, तब मुझे उसका जीवन विचित्र लगता था, उसके विचार असंयत लगते थे। किन्तु आज उसीको जब मैं अपने बदले हुए दृष्टिकोणसे देखती हूँ, तो यह समाज मुझे विचित्र लगता है और इसकी प्रचलित रूढ़ियाँ घृणास्पद। कहना न होगा कि उसके संसर्गने मुझे नया मस्तिष्क, नई आत्मा और प्रत्येक वस्तुको देखनेके लिए दृष्टि भी नई दे दी।

उसका नाम रेखा था। उसने किस जातिमें जन्म लिया, इससे न तो उसके जीवनका ही कोई सम्बन्ध है, न कहानीका ही। केवल इतना-भर जान लेना पर्याप्त होगा कि उसका जन्म मध्य-वर्गके एक घरमें हुआ था। लड़की होनेके नाते खींच-तानकर उसे जैसे-तैसे आठवीं कक्षा तक स्कूल भेजकर पढ़ा दिया गया था। बादको घरपर ही उसकी शिक्षा हुई थी। उसके माता-पिता घरपर उसे शिक्षा तो क्या दे रहे थे, कहना चाहिए समाजने आदर्श स्त्रीके लिए जो एक साँचा तैयार कर रखा है, उसे उसीमें ढालनेकी चेष्टा कर रहे थे। उसे शिक्षा मिल रही थी समाजके मनकी, क्योंकि समाज कभी नहीं चाहता कि स्त्री अपने सबल रूपमें उसके सामने आय। वह तो चाहता है कि स्त्री उसके गढ़े हुए साँचेमें ढलकर ही उसकी जीर्ण-शीर्ण मशीनका एक पुर्ज़ा बन जाय। इस नियमका उल्लंघन किसी भी सीमा तक उसे सह्य नहीं होता। यही कारण था कि उसके माता-पिताने शुरूसे ही तोड़-मरोड़कर, ठोंक-पीटकर उसके व्यक्तित्वका, उसकी आत्माका, खून करके उसे अपने निर्मित साँचे में ढालना आरम्भ कर दिया था। एक साधारण माता-पिताकी तरह उनकी भी यह कामना थी कि उनकी कन्या समाज द्वारा

निर्मित 'आदर्श स्त्री'की प्रतिलिपि-मात्र बनकर उनका नाम उज्ज्वल करे। किन्तु लाख चेष्टा करनेपर भी उसे वे अपने मनके अनुकूल नहीं बना सके। रेखाके जो आसार नज़र आ रहे थे, वे उन्हें शुभ नहीं लगे, और उन्होंने इस भारसे मुक्त होनेके लिए जल्दी-से-जल्दी उसका विवाह करनेकी सोची। बहुत दौड़-धूपके पश्चात् एक लड़का ठीक करके उन्होंने रेखाका विवाह कर दिया। उससे कुछ पूछा भी नहीं गया। और उसने भी जैसे उसे जीवनकी एक महत्वहीन घटना समझकर अविचलित भावसे ग्रहण कर लिया। हमारे यहाँ विवाहको बहुत ही महत्त्व दिया जाता है। स्त्री और पुरुष दोनोंकी ही जीवन-धाराएँ विवाहके पश्चात् एक दूसरी ही दिशामें बहने लगती हैं; लेकिन उसपर मानो इसका कुछ प्रभाव ही नहीं पड़ा। उसने अपने पतिका निष्कपट प्रेम पाया; किन्तु उसने भी कभी अपने पतिको प्यार किया अथवा नहीं, यह मैं नहीं जानती। सौभाग्यवश कहूँ अथवा दुर्भाग्यवश, विवाहके एक वर्ष बाद ही उसके पतिका देहान्त हो गया। विधवाके कठोर और भीषण जीवनकी कल्पना करते ही मुझे तो नारकीय जीवन भी सुखद लगने लगता है।

कुछ दिनोंके रोने-धोनेके पश्चात् जब विधवा-जीवनकी व्यावहारिक समस्याको घरवालोंने उसके सम्मुख रखा और उसे उन सब नियन्त्रणोंका पालन करनेको बाध्य किया, तो रेखाने एक दिन सबके सामने निर्भय होकर कह दिया—"समाजके बनाए हुए नियमोंको पालनेकी न मैं इच्छुक हूँ और न उनमें मैं विश्वास ही रखती हूँ। पति-पत्नीके प्रेमको आप लोगोंने और आपके इस पाखंडी समाजने जितना महत्व दे रखा है, मेरे लिए वह सारहीन है, महत्वहीन है। आप लोग इस मतको अपना सकते हैं कि पति और पत्नीकी आत्मा एक होती है और पतिके मरनेपर पत्नीको इसी ऐक्यको सत्य सिद्ध करनेके लिए जीवित रहते हुए भी मृतके समान रहना चाहिए। पर मेरी तो इस बातमें आस्था ही नहीं कि दो आत्माएँ भी कभी एक हो सकती हैं। यदि यही सत्य होता, तो जन्म-जन्मान्तर तक वे सदैव ही पति-पत्नीके रूपमें अवतीर्ण होते। किन्तु ऐसा तो होता नहीं। प्रेमका आत्मासे सम्बन्ध अवश्य है; पर वह दो आत्माओंकी घनिष्ठतामें योग-भर दे सकता है, उनको एक कदापि नहीं कर सकता। उस घनिष्ठताके टूटनेपर अपने सम्पूर्ण जीवनको दुखी बना लेना तो घोर मूर्खता है। जो-कुछ बीत चुका, उसकी यादको लेकर मैं अपना सारा भविष्य रो-रोकर बिता दूँ, इतनी बज्रमूर्खा मैं नहीं।"

सब आश्चर्य-चकित थे, दंग थे, क्रोधित थे, दुखी थे और भी न-जाने क्या-क्या रहे होंगे, मैं नहीं जानती। पर बिना कुछ कहे ही घरके सभी लोगोंके हाव-भावसे उसने जान लिया कि उसे घर छोड़नेका नोटिस मिल गया है। वह घर छोड़कर चली भी गई। अपने विश्वासों और विचारोंके सहारे विधवा होनेके एक वर्ष पश्चात् ही उसने अपनी इच्छासे दूसरा विवाह कर लिया। यह एक वर्ष उसने कैसे बिताया, यह उसने मुझे कभी नहीं बताया। बस, इतना ही कहा था—"तुम विश्वास रखो, मैंने इस एक वर्षमें कोई भी ऐसा कार्य नहीं किया, जिसके लिए कभी मेरी आत्मा मुझे धिक्कारे। समाजकी दृष्टिमें चाहे मैं पतिता होऊँ, नीच और गिरी हुई होऊँ; लेकिन मेरी अपनी दृष्टिमें मैं गंगा-जलकी तरह पवित्र और निर्मल हूँ। यदि मेरी आत्मा मुझे कलंकित नहीं समझती, तो मुझे और किसीके मतकी तनिक भी परवाह नहीं है। मेरे लिए तो इतना ही बहुत है कि मैं अपनी नज़रोंमें न गिरूँ।"

अपने दूसरे विवाहके विषयमें कहते हुए उसने कहा था—"मैंने विवाह छिपकर नहीं किया था। सबसे साफ़ शब्दोंमें कह दिया था कि विधवाका नियमित, नियन्त्रित और कठोर जीवन मुझसे व्यतीत नहीं होगा। जिससे विवाह किया, उसे भी कह दिया था कि मैं विधवा हूँ। अपने दूसरे विवाहके उपलक्षमें लोगोंकी कितनी लांछना मुझे सहनी पड़ी है, यह मैं ही जानती हूँ। लेकिन मैं कभी इसके लिए ज़रा भी दुखी नहीं हुई। मैं मानती हूँ कि यदि मैं समाजके नियमानुसार चलती, तो समाजकी दृष्टिमें मैं आदरणीय स्थान ग्रहण कर सकती थी। पर उस समाजके, जिसके नाम तकसे मुझे घृणा है, आदरसे तो उसकी लांछना झेलना ही मैंने अधिक श्रेयस्कर समझा। इसीलिए मैंने कभी अपने-आपको उसका आदर पानेको बाध्य नहीं किया। मैं तो इस बातमें विश्वास ही नहीं रखती कि कोई जीवनको अस्वाभाविक नियमोंमें भी बाँधकर रख सकता है। यदि समाजकी 'मर्यादा'का घेरा संकीर्ण है, तो यह निरी मूर्खता है कि उस मर्यादामें रहनेके लिए हम जीवनको भी संकीर्ण बना डालें। मैं तो उन्हींको आदरकी दृष्टिसे देखती हूँ, उन्हीं लोगोंके लिए मेरे दिलमें जगह है और उन्हींके जीवनको वास्तविक जीवन भी मानती हूँ, जो समाजके

तथाकथित नियमोंके घिसे-घिसाए पथपर न चलकर अपना मार्ग स्वयं बनाएँ, नियमोंके सारको, उनके तत्त्वको समझकर अपने नियम भी स्वयं बनाएँ और उन्हींके अनुसार अपना जीवन व्यतीत करें।"

रेखाने जिस व्यक्तिसे विवाह किया था, उसके साथ उसका करीब छः महीनेसे सम्पर्क था। उसके विचार रेखाको अपने विचारोंसे मिलते हुए-से प्रतीत हुए। अपनी ही तरह उसे भी समाजकी ओरसे उपेक्षणीय पाकर उसने उसे अपना जीवन-साथी चुन लिया। पर शादीके कुछ ही दिनों पश्चात् उसे अपनी भूल मालूम हो गई। वह स्वच्छन्द प्रकृतिकी थी, अपने पतिके सभी मित्रोंके साथ उतनी ही स्वतन्त्रतासे उठती-बैठती, हँसती-बोलती और घूमती-फिरती थी, जितनी अपने पतिके साथ। घरकी चहार-दिवारीमें बन्द रहकर संसारका प्रतिबिम्ब उसीमें देखना और अपने पतिमें ही समस्त प्राणियोंकी झलक देखना उसके स्वभावके ही विरुद्ध था। किन्तु उसका पति यह सब कुछ बर्दाश्त नहीं कर सका। जब पहले-पहल उसके पतिने इस पर आपत्ति उठाई, तो उसे महान आश्चर्य हुआ। छः महीनेके संसर्गमें उसने उसमें कभी ऐसी भावनाओंका आभास तक नहीं पाया था। वह समझ ही नहीं सकी कि एकाएक उसके पतिको यह हो क्या गया है? पर धीरे-धीरे उसे सब समझमें आ गया। वह अब पत्नीत्वके घेरेमें बँध गई थी। पतिसे अपना अलग और स्वतंत्र व्यक्तित्व वह रखे, यह उसका पति चाहे कितने ही प्रगतिशील विचारोंका क्यों न हो, कैसे सह सकता था! एक दिन उसके पतिने उसे बुलाकर कहा—"रेखा, तुम जिस प्रकार स्वच्छन्दतापूर्वक जीवन व्यतीत करती हो, उसे मैं कभी भी बर्दाश्त नहीं कर सकता। तुम्हारा अब विवाह हो गया है और तुम मेरी पत्नी हो। तुम्हें मेरी ही छत्रछायामें रहना होगा। मुझसे भिन्न तुम्हारा अपना कोई अस्तित्व अब नहीं है। प्रकृतिने स्त्रीको शासन करनेके लिए नहीं, शासित होनेके लिए बनाया है, और तुम भी एक स्त्री हो। प्रकृतिके नियमोंको तुम्हें मानना होगा। तुम्हारा क्षेत्र है घर और कर्त्तव्य है आत्म-समर्पण। तुम्हें अपने अस्तित्वको अपने पतिके अस्तित्वमें मिला देना होगा। रेखा, तुमने भारतवर्षमें जन्म लिया है—भारतीय ललनाओंका आदर्श और उनके सतीत्वकी गौरव-गाथाएँ तुम्हारे सामने हैं। क्या उन सबका तुम्हें कभी खयाल नहीं आता? पर-पुरुषोंके साथ स्वच्छन्दतासे बोलने-बतलाने, घूमने-फिरनेमें क्या तुम्हारी अन्तरात्मा तुम्हें कभी धिक्कारती नहीं?"

पतिके मुँहसे यह सब सुन रेखाके मस्तिष्कमें एक साथ ही अनेक बातें उठीं। उसे क्रोध आया, अपनी भूलपर दुःख और पश्चात्ताप हुआ। अपने पतिके लिए शायद घृणा भी उमड़ी होगी; लेकिन उसने सबको दबाकर कहा—"अन्तरात्मा! मनुष्यकी अपनी अन्तरात्मा तो उसके जन्म लेते ही मर जाती है। फिर तो समाज द्वारा उसका निर्माण होता है और उसीके परिणाम-स्वरूप मनुष्यकी अन्तरात्मा उसी कार्यको अनुचित समझने लगती है, जिसे समाज अनुचित समझता है। हमारे मनोंमें शुरूसे ही ठोंक-पीटकर समाजके नियमोंके प्रति श्रद्धा और अन्धे होकर उनका अनुसरण करनेकी भावना भर दी जाती है। यही अन्ध-विश्वास एवं श्रद्धा अन्तरात्माका स्थान ले लेते हैं। इससे भिन्न तो अन्तरात्माका कोई अस्तित्व है ही नहीं। मैं तो पहले ही कह चुकी हूँ कि समाजके नाम-मात्र से मुझे घृणा है और इसीलिए मेरी आत्माका निर्माण जन-साधारणकी आत्मासे भिन्न हुआ है। फिर वह मुझे कैसे धिक्कारे, यह तो तुम्हीं सोच सकते हो।" कुछ देर चुप रहकर वह बोली—"और सतियोंका आदर्श, उसे तुम मुझे याद रखनेको कहते हो और आशा करते हो कि उसे याद रखकर मैं गौरव अनुभव करूँगी? मैं सच कहती हूँ कि मेरा तो उनके स्मरण-मात्रसे ही लज्जासे सिर झुक जाता है। यदि वह पुरुष द्वारा नारीपर थोपा गया नियम था, तो पुरुषोंकी नृशंसताका इससे बढ़कर कोई दूसरा उदाहरण मिलना कठिन है। और यदि यह स्त्रियोंकी अपनी इच्छाका फल था, तो स्त्रियोंकी स्वावलम्बन-भावनाकी शून्यता आश्चर्य करने योग्य है।" रेखाने फिर कहना आरम्भ किया—"क्या स्त्रियोंका अपने पतिसे भिन्न और स्वतंत्र कोई अस्तित्व ही नहीं? क्या वे इतनी हीन हैं कि अपने पतिके मरते ही स्वयं भी समाप्त हो जायँ अथवा रहें, तो केवल वैधव्यका बाना धारणकर, उसकी प्रतिच्छाया बनकर रहें? यदि तुम्हारा ईश्वर और तुम्हारी प्रकृति यही कहती है कि स्त्रीको अपना अस्तित्व पुरुषमें मिला देना चाहिए, पुरुषमें एकात्म हो जाना चाहिए, तो एक बार मेरी ओरसे अपने उस ईश्वरसे अवश्य पूछ देखना कि फिर एक भिन्न स्त्री-जातिका निर्माण करनेकी महँगी मूर्खता उसने क्यों की? त्याग, गौरव और भी न-जाने कितने झूठे और छूँछे विशेषणोंसे तुम पुरुषोंने स्त्रियोंको इस प्रकार अलंकृत कर रखा है कि वे बेचारी अपना वास्तविक रूप

कभी देख और पहचान ही नहीं पातीं। अलंकारोंकी चमक-दमकमें ही उनकी दृष्टि उलझ जाती है और इसे तो वे एकदम भूल ही जाती हैं कि इन सबके नीचे है उनका अपना वास्तविक सौन्दर्य। यदि भूले-भटके कोई स्त्री अपनी पैनी दृष्टिसे अपनेपनको जान जाती है, यदि वह अपनेको पुरुषके दायरेके बाहर का जीव समझने लगती है, तो सारा समाज उसके पीछे इस प्रकार हाथ धोकर पड़ जाता है कि उसे हारकर अपने अस्तित्व को दूसरोंमें मिला देना पड़ता है।"

रेखाके पतिने स्वप्नमें भी कल्पना नहीं की थी कि उसकी बातका उसे इतना करारा उत्तर सुननेको मिलेगा। रेखाकी बातोंसे वह तिलमिला उठा और बदला लेनेकी भावनासे या अपने विवाहसे असन्तुष्ट होकर उसने घरसे ग़ायब रहना शुरू कर दिया। एक दिन रेखाको मालूम हुआ कि उसके पतिने दूसरा विवाह कर लिया है। इस चोटको भी उसने सहन कर लिया। वह जिस प्रकार इसके जीवनमें आया, उसी प्रकार चला भी गया। लेकिन फिर वह एक दिनके लिए भी अपने पतिके घरमें नहीं रह सकी। जिसने उसके साथ इतना बड़ा विश्वासघात किया और उसे त्याग दिया, उसके घरमें आश्रिताकी तरह रहकर, उसके घरके टुकड़े खाकर, जीना वह कभी भी बर्दाश्त नहीं कर सकती थी।

वहाँसे निकलकर उसने हमारे घरके सामने एक छोटी-सी कोठरी किराएपर ले ली थी और वहींपर वह मोहल्लेके बच्चोंको इकट्ठा करके पढ़ाया करती थी। छोटी-छोटी लड़कियोंको मामूली सिलाई आदि भी सिखाती थी। उसने अपने जीवनकी कहानी सबसे पहले मुझे ही सुनाई थी और उसे सुनकर मैंने उसे एकदम पेटमें रख लिया था; क्योंकि मैं अच्छी तरह जानती थी कि यदि ये सब बातें मोहल्लेवालोंको मालूम हो जायँ, तो उसकी एक दिनके लिए भी ख़ैर नहीं होगी। मैंने भी जिस दिन पहली बार उसकी कहानी सुनी, तो मेरा मन घृणा और ग्लानिसे भर उठा। हृदयके भाव मेरे मुखपर भी स्पष्ट हो गए। उन भावों को उसके मँजे हुए मस्तिष्कने एकदम पढ़ लिया और वह बोली—"तुम भी मुझसे घृणा करो, यह तो बड़े आश्चर्य और दुःखकी बात है। एक स्त्री यदि स्त्रियोंपर लगाए गए अस्वाभाविक ओर अनुचित बन्धनोंको तोड़नेकी चेष्टा करती है, तो दूसरी स्त्रियोंको तो उससे सहानुभूति रखनी चाहिए। उससे घृणा करके तो वह स्वयं यह सिद्ध कर देगी कि स्त्रियोंको समाज और पुरुषके लगाए हुए सब नियम-बन्धन स्वीकार हैं।"

मैंने तभी अपने मुखका भाव बदलते हुए कहा—"नहीं, नहीं, मैं तुमसे घृणा नहीं करती; लेकिन मुझे सब-कुछ बड़ा ही विचित्र-सा लगता है।"

वह बोली—"लम्बी गुलामी और कठिन नियन्त्रणके बाद स्वतन्त्रता तो क्या उसकी कल्पना भी बड़ी विचित्र लगती है। वह आनन्ददायक तो अवश्य होती है; पर गुलामीके बन्धनोंमें हम ऐसे जकड़ जाते हैं कि उस आनन्दका स्वरूप और उसकी अनुभूति ही भूल जाते हैं और हमें फिर वह आनन्द भी जिसकी सब कामना करते हैं, विचित्र और आश्चर्यजनक लगने लगता है। तुम्हारी भी लगभग यही हालत है।"

कुछ दिन बाद वह बीमार पड़ी। धनाभावके कारण मामूली बुखारका इलाज भी नहीं हो सका और न खाने-पीनेकी भी कोई ठीक व्यवस्था हो सकी। इस हालतमें उस मामूली-से बुखारने ही धीरे-धीरे क्षयका रूप धारण कर लिया। बचनेकी कोई उम्मीद नहीं रही। पास-पड़ोसके लोग उसकी कुछ मदद करते, यह तो दूरकी बात, उल्टे तानेज़नी करने लगे—'बड़ी बुरी औरत है। एकदम भ्रष्टा है। इसकी पिछली बातें अब तक मालूम नहीं थीं, इसीलिए लोग भली औरत समझकर अपने बच्चोंको इसके पास पढ़ने भेजते रहे। क्या मालूम था कि यह ऐसी कुलक्षणी है।'

मैंने सब-कुछ सुना और सुनकर आश्चर्य तो नहीं हुआ, क्योंकि उनसे इसके अतिरिक्त और उम्मीद ही क्या की जा सकती थी; पर मुझे लोगोंपर क्रोध बहुत आया और साथ ही दुःख भी बहुत हुआ। मैं उसी समय घरवालोंके लाख मना करनेपर भी उसके पास गई। कुछ देर उसके पास बैठी रही और बैठे-बैठे उसकी करुण दशापर आँखोंसे आँसू बहाती रही। थोड़ी देर बैठकर मैं घर लौट आई और घर आनेके कुछ ही देर बाद बुढ़िया महरीने आकर खबर दी कि वह मर गई!

मैं सन्न रह गई। जाकर आँगनमें खड़ी हो गई, जहाँसे उसकी कोठरी दिखाई देती थी। चार भंगी खड़े उसे ले जाने का उपक्रम कर रहे थे। दो बुड्ढे, जो मुहल्लेमें ही रहते थे, खड़े हुए कह रहे थे—'अरे चार आदमियोंसे क्या होगा? कोई इसका अकेलीका बोझ ढोकर तो ले नहीं जाना है। इसके पापोंका बोझ भी तो ढोना होगा! दो-एक भंगियोंको कहींसे और पकड़ कर लाओ। भले आदमी तो इसे छूकर ही अपवित्र हो जायँगे।'

हिन्दके शरणार्थी

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

आज़ादी प्राप्त करनेके लिए हमारे देशने एक बहुत बड़ी क़ीमत अदा की है। अभी यह कहना कठिन है कि यदि यह क़ीमत अदा न की गई होती, तो हमारा देश आज़ाद हो सकता या नहीं। भविष्यके गर्भमें छिपी घटनाओंके आधारपर आगामी पीढ़ियोंके ऐतिहासिक ही इस बातका निर्णय कर पायँगे कि हमारी आजकी पीढ़ीने देशके दो टुकड़े करनेवाली योजनाको स्वीकारकर ग़लती की थी या एक समझदारीका कार्य किया था। सम्भव है कि भविष्यमें भी आजकी तरह, इस सम्बन्धमें दो ही मत बने रहें।

जहाँ तक हिन्दुस्तानका सम्बन्ध है, आज़ादी प्राप्त करनेकी यह क़ीमत देशके एक भागने ही दी है। १५ अगस्त, १९४७ से पहले देशके दोनों भागोंमें (१५ अगस्तसे देश जिन दो राष्ट्रोंमें बँट जाता था) हिन्दू-मुसलमानोंकी संख्या इस प्रकार थी :

हिन्दुस्तान (हैदराबादको छोड़कर)

मुसलमान	४,२९,०४,०००
अन्य	२६,३०,९२,०००
कुल आबादी	३०,५९,९६,०००

पाकिस्तान (बहावलपुर समेत)

हिन्दू और सिक्ख	१,६३,८८,०००
अन्य	४,७९,४४,०००
कुल आबादी	६,४३,३२,०००

इस तरह प्रस्तावित हिन्दुस्तानमें १४ प्रतिशत मुसलमान और प्रस्तावित पाकिस्तानमें २५·५ प्रतिशत हिन्दू और सिक्ख बने रहते थे, और दोनों राष्ट्रोंमें अल्पमतोंकी इस बड़ी संख्या की विद्यमानताके आधारपर यह सम्भावना की जा सकती थी कि दोनों राष्ट्र अपने अल्पमतोंके साथ अच्छा और न्यायपूर्ण व्यवहार करेंगे। इसी कारण बड़े पैमानेपर आबादीके परिवर्तनको कभी गम्भीरतापूर्वक सोचा भी नहीं गया था।

परन्तु व्यवहारमें यह आशा पूरी नहीं हुई। एक महा-विनाशक भूकम्पकी तरह, एक प्रलयकारी तूफ़ानकी तरह, देश के विभाजनके साथ-ही-साथ लाखों-करोड़ों व्यक्ति अचानक इधर-से-उधर और उधर-से-इधर इस तरह धकेल दिए गए, जिस तरह आँधी सूखे पत्तोंको उड़ा ले जाती है। वास्तवमें पाकिस्तानका बुनियादी आधार ही यह था कि हिन्दू और मुसलमान दो विभिन्न राष्ट्रोंके नागरिक हैं। सन् १९४० से मि॰ जिन्ना सदा हिन्दुस्तानमें रहनेवाले 'महान मुस्लिम राष्ट्र' को ही सम्बोधित किया करते थे। जब मुसलमान अपनेको हिन्दका वासी समझते ही न थे, तो उनका हिन्दसे चले जाने को उतावले हो उठना स्वाभाविक था। मुस्लिम-लीगके नेताओं ने ऐसा ही किया। उनके ज़हरीले भाषणोंसे देशमें अगस्त, १९४६ ही से जो विद्वेषाग्नि व्याप्त हो गई थी, वह अगस्त, १९४७ में महाभयंकर ज्वालाओंके रूपमें धधक उठी।

विभाजन होनेके सिर्फ़ ६ महीनोंके भीतर ही हिन्दुस्तान और पाकिस्तानमें अल्पमतोंकी संख्या इस प्रकार रह गई :—

हिन्दुस्तान (हैदराबादको छोड़कर)

मुसलमान	३,७०,००,०००
हिन्दू तथा अन्य	२७,००,००,०००
कुल आबादी	३०,७०,००,०००

पाकिस्तान

हिन्दू	९४,००,०००
सिक्ख	(लगभग) ०
मुसलमान तथा अन्य	५,३८,००,०००
कुल आबादी	६,३२,००,०००

इस तरह हिन्दुस्तानमें मुसलमानोंकी संख्या १४ प्रतिशत की जगह १० प्रतिशत ही बच रही है, और पाकिस्तानमें हिन्दू २५·५ प्रतिशतकी अपेक्षा १४·८ प्रतिशत बाक़ी बचे हैं। ये संख्याएँ भी स्थायी नहीं हैं। पश्चिम-पंजाब और सीमा-प्रान्तके प्रायः सभी हिन्दू और सभी सिक्ख हिन्दुस्तान चले आए हैं। सिन्धमें हिन्दुओंकी संख्या १२ लाखसे घटकर ६०,००० के लगभग बाक़ी बच रही है। पूर्वी बंगालसे २० लाख हिन्दू पश्चिम-बंगालमें आ चुके हैं। उधर हिन्दुस्तानसे भी लाखों मुसलमान पाकिस्तानमें चले गए थे; परन्तु अब उनमें से

बहुतसे मुसलमान इस मुल्कमें वापस लौट आना चाहते हैं।

जैसा कि हमने इस लेखके शुरूमें कहा है, हिन्दुस्तानकी आज़ादीकी क़ीमत उन ५०,१६,००० हिन्दुओं और सिक्खोंने दी है, जो पश्चिमी पंजाब, सीमा-प्रान्त और सिन्धमें अपना सभी कुछ छोड़कर हिन्दुस्तान चले आए हैं। पाकिस्तानसे आए हुए ये ५१,१६,००० हिन्दुस्तानके नागरिक, जिन्हें आज 'शरणार्थी' कहा जाता है, अपने करीब ५,००,००० सगे-सम्बन्धियोंका बलिदान देकर आए हैं। इनकी करीब ४०,००० बहनें अपहृत और अपमानित हुई और कम-से-कम दस अरब रुपयोंके मूल्यकी चल और अचल सम्पत्ति हिन्दुस्तानके ये नागरिक भारतवर्षके उन प्रदेशोंमें छोड़ आए हैं, जो आज पाकिस्तानके उत्तर-पश्चिमी भाग कहलाते हैं।

आज लगभग दो बरस बीतनेवाले हैं, और हिन्दके इन शरणार्थियोंकी एक बहुत बड़ी संख्या आज भी खानाबदोशोंकी ज़िन्दगी बसर करनेको लाचार है। यह ठीक है कि हिन्दुस्तान की यह शरणार्थी-समस्या एकदम अचानक और इतने बड़े पैमानेपर उठ खड़ी हुई कि वैसी समस्या संसारके आज तकके इतिहासमें और कभी किसी भी देशमें उत्पन्न नहीं हुई। वैसे संख्याकी दृष्टिसे पिछले महायुद्धके ६ बरसोंमें लगभग पाँच करोड़ व्यक्ति यूरोपके विभिन्न देशोंमें स्वेच्छापूर्वक या ज़बरदस्ती, कम-अधिक समयके लिए स्थानान्तरित हो गए थे। परन्तु इस समय तक उनमें से अधिकांश व्यक्ति अपने-अपने देशोंको वापस लौट गए हैं। इधर हिन्दके शरणार्थियोंके पाकिस्तानमें लौटकर जानेका सवाल ही पैदा नहीं होता।

नवम्बर, १९४७ में अखिल-भारतीय कांग्रेस-कमेटीने यही निश्चय किया था कि इन शरणार्थियोंको पाकिस्तानमें वापस लौट जाना चाहिए। राष्ट्रके पिता पूज्य बापूजीकी भी तब तक यही राय थी; परन्तु बादमें परिस्थितियोंको देखकर पूज्य बापूजीकी राय बदल गई। उनकी इच्छा तो यही थी कि हिन्द और पाकिस्तानमें परस्पर इतनी घनिष्ठ मित्रता क़ायम हो जाय कि दोनों राष्ट्रोंके नागरिक पूरी आज़ादीसे चाहे जहाँ आ-जा सकें, चाहे जिस राष्ट्रमें अपना काम-काज कर सकें। परन्तु अनुभवसे उन्होंने देख लिया कि पाकिस्तानमें हिन्दू और सिक्ख सुरक्षित दशामें और इज़्ज़तकेसाथ नहीं रह सकते। इसी कारण अपने महानिर्वाणसे पूर्व बापूजी यह निश्चयकर चुके थे कि वे स्वयं पाकिस्तान जायँगे और वहाँका वातावरण इस तरहका बनानेकी कोशिश करेंगे कि हिन्दू और सिक्ख वहाँ इज़्ज़त और सुरक्षाके साथ रह सकें। उससे पहले वे किसी हिन्दू या सिक्खको वापस जानेकी राय देनेको तैयार नहीं थे।

बापूकी तेरहवींसे सिर्फ़ एक दिन पहले पाकिस्तानके लाहौर-हाईकोर्टके बार-रूममें बहुतसे प्रमुख मुसलमान एडवोकेट बापू और उनके असाधारण बलिदानके सम्बन्धमें प्रशंसापूर्ण बातचीत कर रहे थे। पाकिस्तानके एक बहुत प्रसिद्ध वकील चुपचाप यह बातचीत सुन रहे थे। किसी नौजवान वकीलने इन तजुर्बेकार और मशहूर वकीलसे कहा—"आप महात्मा गांधीके बारेमें चुप क्यों हैं?" उन साहबने उत्तर दिया—"महात्मा गांधीके लिए मेरे दिलमें भी बहुत ऊँचा स्थान है। दुनियाकी कुल तवारीखमें इतनी बड़ी हस्तियाँ बहुत कम हुई हैं। मगर सवालका एक और पहलू भी है। आप लोगोंके मुँहसे महात्मा गांधीके सम्बन्धमें इतने भावुकतापूर्ण उद्‌गार सुनकर अचानक मुझे खयाल आया कि आखिर पाकिस्तानके नेस्तनाबूद हो जानेका आखिरी खतरा भी गांधीजीकी मौतके साथ समाप्त हो गया!" कई वकीलोंने अचरज-भरी आवाज़में एक साथ पूछा—"यह किस तरह?" वे साहब बोले—"इस तरह कि महात्मा गांधी अकेले शख्स थे, जो इस सूरतमें भी, इतना खून-खराबा हो जानेके बावजूद भी, हिन्दुस्तान और पाकिस्तानको फिरसे मिलाकर एक मुल्क बना सकते थे। पाकिस्तान और हिन्दुस्तानकी कुल ३८ करोड़ आबादीमें और किसी शख्समें वह ताक़त नहीं है—यहाँ तक कि क़ायदे-आज़ममें भी नहीं। आज उनकी वफ़ातकेसाथ पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के एक हो जानेका खतरा हमेशाके लिए दूर हो गया है।"

उक्त साहबके दृष्टिकोणसे हमारा दृष्टिकोण भिन्न है; परन्तु महात्मा गांधीकी सामर्थ्यके सम्बन्धमें उन्होंने जो-कुछ कहा, वह पूरी तरह सत्य है। इसी बातको मैं दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कहना चाहूँगा कि यदि बापू जीवित होते, तो कभी हिन्दके शरणार्थी यह आशा कर सकते थे कि वे उन प्रदेशोंमें सम्मान और सुरक्षाके साथ फिरसे आबाद हों, जहाँ उनका जन्म हुआ था। परन्तु अब इस बातकी सम्भावना तक नहीं है कि ये शरणार्थी वापस जा सकेंगे। अब तो हमें इसी बातपर कटिबद्ध होना होगा कि इन ५१,१६,००० व्यक्तियोंको हमें हिन्दमें नए सिरेसे बसाना है।

यह एक सचाई है कि हिन्दके वर्तमान प्रधान-मन्त्री

तथा अन्य जिम्मेदार नेताओंने देशका विभाजन हो जाने तक पंजाबके हिन्दुओं और सिक्खोंको यह राय दी थी कि वे अपने घर-बार छोड़कर हिन्दुस्तानमें न आयँ। उसके बाद, बहुत जल्द भारत-सरकारने यह अनुभव कर लिया कि पश्चिम-पंजाबसे हिन्दुओं और सिक्खोंको निकाले बिना कोई चारा ही नहीं है। यह भी एक सचाई है कि देशके विभाजनके लिए पंजाब, सीमा-प्रान्त और सिन्धके अल्पमतोंकी राय नहीं ली गई थी। यह तो स्पष्ट ही है कि शरणार्थियोंकी क्षति का पूरा उत्तरदायित्व देशके विभाजनपर ही है।

इन परिस्थितियोंमें हम नहीं जानते कि क़ानूनी स्थिति क्या है; परन्तु न्यायकी दृष्टिसे यह स्पष्ट है कि शरणार्थियोंके पूरे-के-पूरे नुक्सानका उत्तरदायित्व भारतीय राष्ट्रको अपने ऊपर लेना चाहिए। जो लोग हिन्द छोड़कर पाकिस्तान चले गए हैं, वे इतनी अल्प सम्पत्ति इस देशमें छोड़ गए हैं कि हिन्दके शरणार्थियोंकी त्यक्त सम्पत्तिका वह दसवां हिस्सा भी नहीं है। इसका मतलब यह है कि शरणार्थियोंके लिए हिन्दको क्रमशः ९ अरब रुपयोंका प्रबन्ध करना है और प्रति ६० व्यक्तियोंके पीछे उन्हें एक नया व्यक्ति इस देशमें आबाद करना है। इन ९ अरब रुपयोंका एक बड़ा भाग नई परिस्थितियाँ उत्पन्नकर बिना मुद्राके पूरा किया जा सकता है। यह इस तरह कि पूर्वी पंजाबमें १५-२० नए नगर आबाद किए जायँ और वहाँ सरकार मुफ्त अथवा लागतके दामोंपर ज़मीन शरणार्थियोंको दे। १० बरसोंमें ज़मीनके इन टुकड़ोंकी कीमत स्वयं दसगुनी हो जायगी। नुक्सानका मुआवज़ा देते हुए इन सब बातोंका हिसाब लगा लिया जा सकता है।

२. भारतीय व्यवसायी आज जो अनर्जित आय बना रहे हैं—विशेषतः कपड़े और खांड़के व्यवसायी—उनकी अतिरिक्त आय टैक्स लगाकर सरकारको वसूल कर लेनी चाहिए और यह सब-की-सब शरणार्थियोंके निमित्त व्यय होना चाहिए।

३. पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगालको छोड़कर शेष सारे भारतपर कम-से-कम पाँच वर्षोंके लिए एक शरणार्थी-टैक्स लगना चाहिए, जिसकी आय शरणार्थियोंपर खर्च की जाय।

४. लाटरी और प्राइज़ बाण्डोंसे भी २०-२५ करोड़ रुपया एकत्र किया जा सकता है।

पूर्वी पंजाब नवीन भारतका सीमा-प्रान्त है, और उसकी सुरक्षाके लिए उसे समृद्ध बनाना अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा हिन्द कभी सुरक्षित नहीं रह सकता। और पूर्वी पंजाबको समृद्ध बनानेके लिए हिन्दकी शरणार्थी-समस्याका हल हो जाना आवश्यक है।

ये शरणार्थी

श्री इन्दुमती कौशल

देशके बँटवारेने जो समस्या लाकर सबके सामने खड़ी कर दी, वह एक-एक प्राणीके लिए विकट है। जिनके घर-द्वार, खेत-खलिहान, व्यापार और पुरखोंकी धरती छूटी, वह वातावरण, जिसमें वे इतने बड़े हुए, छिना और जिन्हें कई तरहकी आपत्तियाँ सहकर, अपने जनोंकी बलियाँ देकर, अपने साथ ज़ोर करके जान बचानी पड़ी, उनका मानवता तथा संसारके प्रति क्रोध बहुत हद तक समझमें आता है। जिस समय वे लोग आ रहे थे—घाव अभी ताज़े थे - उस समय क्षमा, विचार तथा मानव-मनोविज्ञानकी बात करना केवल समुद्रमें पत्थर फेंकनेकी ही बात न थी, बल्कि आगमें घी डालनेकी कहिए। इस सद्यः स्वतंत्र देशकी सरकारने और सामूहिक रूपमें जनताने जो सहायता-सहयोगके हाथ बढ़ाए, वह उस बवण्डरमें बहुत बड़ी बात थी। किसी भी देशके इतिहासमें अधिकार तथा सरकार बदल सकती है, परन्तु जनताकी बाढ़ एक जगहसे दूसरी जगह जाकर सीमित हो रहे, यह इसी देशमें हुआ। इसीलिए यह आकस्मिक धक्का पाकर लोगोंका क्षुब्ध हो उठना स्वाभाविक था। पर अब जब कि लगभग दो साल हो चुके हैं, सब प्रान्तोंमें क्रमशः सिंधी और पंजाबी परिवार बसते चले जा रहे हैं, प्रान्तोंके पूर्वनिवासियों और उस जगह शरण लेनेवाले लोगोंको इस समस्यापर ठंडे दिलसे विचार करना चाहिए। यह ठीक है कि देश एक है, सभी वासियोंका कर्त्तव्य है, उसके हरएक

पुत्र-पुत्रीकी सहायता करना ; पर जिनकी सहायता की जाती है, उन्हें भी तो इसे अपना पूरा स्वत्व न समझ कर उपकारके ही रूपमें अपनाना चाहिए, उसके लिए कृतज्ञ होना चाहिए। पर वे लोग मदद स्वीकार करते हैं और कृतज्ञताके बदले प्रान्तीय लोगोंकी कठोरता, बेरहमी आदिकी दुहाई भी देते रहते हैं। मनमें प्रश्न उठता है कि क्या ऐसे लोग वास्तवमें सहायताके पात्र हैं ? हम सबको अपनी मनोवृत्तियाँ बदलनी ही होंगी, नहीं तो प्रान्तीय सभ्यताओंकी भिन्नता तथा रहन-सहनके अलग-अलग तरीकोंका एक-दूसरेमें मिश्रण न हो सकेगा और भेदकी खाइयाँ ज्यों-की-त्यों रहेंगी। उदाहरणके लिए युक्त-प्रान्तकी स्त्रियाँ पंजाबी स्त्रियोंसे अधिक संकोची और सादी हैं। उन्हें सिंधी अथवा पंजाबी स्त्रियोंकी तरह घूमने-फिरनेकी स्वतंत्रता भी विशेष नहीं है। मैं जब पहले-पहल इस प्रान्तमें आई, तो मुझे भी यह दक़ियानूसीपन ज़रा बुरा लगा। कभी बाज़ार चली जाती थी, तो लोगोंकी आँखें सहन नहीं होती थीं। पर धीरे-धीरे कुछ मैं बदली और कुछ लोग भी बदले, और आज १० वर्ष बाद मैं सोचती हूँ कि मैंने यहाँसे कुछ पाया भी है और शायद कुछ दिया भी। इसी प्रकार सिन्ध तथा पंजाबसे आई हुई बहनें भी कर सकती हैं।

एक परिवार रावलपिण्डीसे आया था। अगस्तके शुरूमें ही वे लोग हरिद्वार चले गए थे। ये लोग अपने साथ कालीन-रेडियोसे लेकर अचार-घीके मर्तबान तक ले आए थे। हरिद्वारसे फिर कुछ दिन पश्चात् किसी बड़े शहरमें जाकर रहनेकी इच्छा जाग्रत हुई। परिवारके स्वामीको पेन्शन मिलती है, इसलिए आर्थिक सहायताकी कोई आवश्यकता नहीं थी। पर वे जाकर अन्य ज़रूरतमन्दोंके पथकी बाधा बने। एक मित्रने उन्हें दो कमरे रहनेको दिए। वहाँ उन्होंने ऐसा व्यवहार किया कि अन्तमें मित्रको ही भागना पड़ा। उसपर भी उनके घरकी स्त्रियाँ इधर-उधर जहाँ जातीं, युक्त-प्रान्तके लोगोंकी बेमुरव्वती और हृदयहीनताकी शिकायत करतीं और पण्डित नेहरू तथा सरदार पटेलके शरणार्थी बनकर शरणार्थियोंके कष्टोंका अनुभव करनेकी बातें कहतीं ! यदि कोई प्रतिवाद करता, तो कह उठतीं—'आप लोग आनन्दसे घरमें बैठी हैं न, इसलिए ऐसा कहती हैं। ईश्वर करे, आप लोगोंपर भी हम-जैसी मुसीबत आय और आप भी ऐसे ही गृहहीन हो जायँ, तब हमारी व्यथा आपकी समझमें आयगी।' उनके साथ जो-कुछ हुआ है, उसमें मनुष्य अवश था। फिर भी उनके सहायतार्थ जो-कुछ अपने देशभाई कर सकते हैं, किया ही है। इतनेपर भी इन लोगोंका इस तरहका रुख हैरत और खेद ही पैदा करता है।

बाज़ारमें एक पंजाबी और युक्त-प्रान्तके एक मुसलमानकी दुकानें अगल-बगल लगती थीं। अब जो कोई भी हिन्दू अपने पुराने परिचयके कारण उस मुसलमानसे सौदा खरीदने जाता, वही उन पंजाबी महाशयकी गलियों और निन्दाका पात्र बनता। विवश होकर बेचारे मुसलमानको अपनी दुकान दूसरी जगह ले जानी पड़ी। पंजाबमें हुई बातोंका बदला यहाँ लेनेकी प्रवृत्ति अभी तक भी गई नहीं है। क्या यह घृणा, द्वेष और कटुताका प्रतीक बन यों सदा जीती ही रहेगी ? यदि हाँ, तो फिर शायद यही जी सकती है, इसके साथ मानवता और सज्जनता नहीं। इससे देशका भला होना भी असम्भव है।

एक बहुत बड़े कैम्पकी एक सामान्य-सी घटना है। एक दिन वहाँ आग लग गई थी। एक बुड्ढा व्यक्ति अपनी बेवकूफ़ीसे अपने दस हज़ारके नोट, जो ओढ़नेकी उस गुदड़ीमें सिले हुए थे, आगकी भेंट कर गया। यदि वह सोचता कि मैं जो यह गुड़गुड़ी तथा फटी गुदड़ी लिए ग़रीबका स्वाँग न भरकर सरकारकी ओरसे मुफ्त रहने तथा खानेके अधिकारको छोड़ दूँ और जाकर कहीं थोड़ी-सी रकमसे काम शुरू कर दूँ, तो सम्भव है, उसका वह सब बच जाता और वह आदरसे जीवन यापन करता। ऐसी एक नहीं, बीसियों घटनाएँ प्रतिदिन हो रही हैं। फलतः एक ओर सहायता देनेवालोंका धीरज छूट रहा है और दूसरी ओर कई नितान्त अधिकारी सहायतासे वंचित रह रहे हैं।

मेरा मतलब यह नहीं कि सभी शरणार्थी नाशुक्रे और ग़ैरज़िम्मेदार हैं। पर इतना मुझे ज़रूर लगा कि उन्होंने अपने अनुभवोंसे जितना सीखना चाहिए, नहीं सीखा दूसरी ओर इधरके लोगोंकी मनोवृत्तिको भी थोड़ा बदलना उचित है। ये शरणार्थी तो भयंकर दुर्घटनाओंके भुक्तभोगी हैं, जो सर्वस्व लुटाकर आए हैं, फिर भी भिखारी बहुत कम हैं, अधिकांश अपने हाथोंसे ही कमाकर खाते हैं। सहायता या सहानुभूतिसे भी बढ़कर ये बहुत हद तक हमारे आदरके पात्र हैं—होने चाहिएँ। इन उखड़े हुए बिरवोंको यदि हम अनुकूल धरती देंगे, तभी न ये फिर जम पायँगे। स्वतंत्रताकी वेदीपर पंजाबके लोगोंने जितना बलिदान दिया है, उतना किसी प्रान्तवासीने नहीं और उसके लिए हमें उनका कृतज्ञ होना ही चाहिए।

बापू विचार

अभय

सत्य, अहिंसा आदि व्रतोंका पालन निर्भयताके बिना नहीं हो सकता। आज चूँकि सब दर भय समाया हुआ है, इसलिए निर्भयताका चिंतन करना और उसकी तालीम देना बहुत ज़रूरी है, और इसीलिए उसे व्रतोंमें जगह दी गई है। जो सत्यपरायण रहना चाहते हैं, वे न जात-पाँतसे डरें, न सरकारसे डरें, न चोरसे डरें, न ग़रीबीसे डरें, न मौतसे डरें।

सहिष्णुता

(सत्याग्रह) आश्रमकी यह मान्यता है कि संसारमें जितने भी चालू और मशहूर धर्म हैं, वे सब सत्यको जाहिर करते हैं। लेकिन चूँकि वे सब अपूर्ण मनुष्य द्वारा व्यक्त हुए हैं, इसलिए उन सबमें असत्यका भी मिश्रण हो गया है। इसका मतलब यह कि हममें जितना अपने धर्मके लिए मान हो, उतना ही मान दूसरोंके धर्मोंके लिए भी होना चाहिए। जहाँ ऐसी सहिष्णुता हो, वहाँ न एक-दूसरेके धर्मका विरोध पैदा होता है, न दूसरे धर्मवालेको अपने धर्ममें लानेकी कोशिश की जाती है। लेकिन यह प्रार्थना की जाती है कि जो दोष सब धर्मोंमें हों, वे सब दूर हों। और इस भावनाको हमेशा मज़बूत करना ज़रूरी है। ('सत्याग्रह-आश्रमका इतिहास')

कल-कारख़ानोंके एवजमें क्या ?

मैं नहीं मानता कि किसी मुल्कको किसी भी हालतमें बड़े-बड़े कल-कारखानोंका विकास करनेकी ज़रूरत होनी चाहिए। दरअसल, मैं तो यह मानता हूँ कि घरेलू रोज़गार-धंधोंके ज़रिए अपने लाखों झोंपड़ोंकी हालत सुधारकर, सादा मगर उम्दा ज़िंदगी अपनाकर, और दुनियाके साथ हेल-मेल और अमनसे रहकर ही आज़ाद हिंदुस्तान 'त्राहि-त्राहि'की पुकार मचानेवाली दुनियाके तईं अपना फर्ज़ अदा कर सकेगा। धन और दौलतकी पूजाने हमपर बहुत ही तेज़ रफ्तारसे काम करनेवाली जो मशीनी ताकत लाद दी है, उसकी नींवपर खड़े किए गए उलझनपर भौतिक जीवनके साथ ऊँचे विचारोंका कोई मेल नहीं बैठता। हम बढ़िया जीवन जीनेकी कला सीख कर ही ज़िंदगीकी सारी मिठासको प्रकट कर सकेंगे।

खतरों या जोखमोंसे भरा जीवन बितानेमें एक तरहका नशा चाहे हो, मगर हमें खतरोंका सामना करते हुए जीनेमें और खतरोंसे भरी ज़िंदगी बितानेमें जो फ़र्क़ है, वह अच्छी तरह समझ लेना होगा। जो आदमी खूंख्वार जानवरोंसे भरे और उनसे भी ज्यादा खूंख्वार आदमियोंसे बसे जंगलोंमें बिना बंदूकके एक भगवानका भरोसा रखकर तनहा रहनेकी हिम्मत दिखाता है, वह खतरोंका सामना करके जीनेवालोंमें है। दूसरा हमेशा हवामें ऊपर-ऊपर रहता है और कभी-कभी औंधे सिर जमीनपर उतर आता है। उसकी यह कसरत देख कर जो लोग दंग रह जाते हैं, वे उसकी तारीफ़ करने लगते हैं। इस तरहका आदमी खतरोंसे भरी ज़िंदगी बिताता है। एक अपने सामने कोई मक़सद रखकर जीता है, दूसरेके सामने ज़िंदगीका कोई मक़सद होता ही नहीं।

जिस दुनियाने अपनेको सिरसे पैर तक हथियारोंसे लाद रखा है और जिसके ठाट-बाट और दिखावेकी कोई हद नहीं है, उसके मुकाबलेमें लंबाई-चौड़ाई और आबादीमें काफ़ी बड़ा, मगर इक्का-दुक्का कोई देश इस तरहकी सादी ज़िंदगी बिता सकता है या नहीं, यह एक सवाल है, जो अश्रद्धालु लोगोंके मनमें शक पैदा कर सकता है। मगर इसका जवाब सीधा और सरल है। अगर सादी ज़िंदगी जीने लायक है, तो उसके लिए कोशिश की जानी चाहिए; फिर भले वैसी कोशिश करनेवाला कोई एक ही आदमी हो या कुछ इने-गिने लोगोंका अपना एक दल हो।

इसके साथ ही मैं यह भी मानता हूँ कि कुछ खास उद्योग, जो मानिंद चाबीके हैं, जरूरी होंगे। मैं उस समाजवादको नहीं मानता, जिसमें लोग या तो घरमें बैठकर बातें करते हैं या

हथियारोंकी मददसे मरने-मारनेमें यक़ीन रखते हैं। मैं अपनी श्रद्धाके अनुसार अमली काम करनेमें मानता हूँ। मैं उस दिन की राह देखता बैठना नहीं चाहता, जब सबके दिल बदल जायँगे और सब एक-से हो जायँगे। इसकी मैं 'की-इंडस्ट्रीज़' यानी खास-खास उद्योगोंकी फ़ेहरिस्त तैयार करनेके झमेलेमें न पड़कर यह चाहूँगा कि जिन उद्योगों या कल-कारखानोंमें बहुत से लोगोंको एक साथ काम करनेकी ज़रूरत पड़े, उनकी मालिक सरकार हो। सरकारके जरिए मज़दूर अपनी कमालवाली या अनगढ़ मज़दूरीका फल बहैसियत मालिकके पाते रहेंगे। लेकिन मेरे खयालमें ऐसी सरकार तो सिर्फ अहिंसाकी बुनियादपर ही खड़ी हो सकती है। इसीलिए मैं दौलतवालोंकी दौलत उनसे जबर्दस्ती छीनूँगा नहीं, बल्कि मैं उनसे दरख्वास्त करूँगा कि वे एक आदमीकी मिल्कियतको सरकारकी मिल्कियतमें बदलनेमें मेरी मदद करें। क्या करोड़पति और क्या भिखारी, समाजकी निगाहमें कोई अछूत नहीं। दोनों एक ही बीमारीके अलग-अलग पहलू हैं। क्या ग़रीब और क्या अमीर सब इन्सान ही हैं।

हिंदुस्तानमें और दूसरे मुल्कोंमें हमने हैवानियतके जो नज़ारे देखे हैं और जो शायद आगे भी देखने पड़ जायँगे, उनके रहते भी मैं अपनी यह श्रद्धा, यह एतक़ाद, जाहिर करता हूँ। हम खतरोंका सामना करते हुए जीना सीखें।

('हरिजन-सेवक', २२-९-४६)

हम प्रार्थना करें

अब इसमें कोई शक नहीं मालूम होता कि कुछ ही समय में हिंदुस्तान राजनीतिक आज़ादी पा जायगा। इस आज़ादीमें हम प्रार्थनाके साथ प्रवेश करें। प्रार्थना फ़ुरसतके वक्त बुढ़ियाके दिलबहलावकी चीज़ नहीं। अगर उसके रहस्यको ठीक-ठीक समझ लिया जाय और उसका ठीक इस्तेमाल किया जाय, तो वह हमको काम करनेकी अजीब ताक़त देती है।

तो अब हम प्रार्थना करें और यह जान लें कि अहिंसाका रहस्य क्या है और उसके जरिए हासिल की गई आज़ादीको कैसे टिकाया जा सकता है। अगर हमारी अहिंसा कमज़ोरोंकी है, तो यह समझ लेना चाहिए कि ऐसी अहिंसासे आज़ादी टिकाई नहीं जा सकेगी। इसीसे यह भी साबित होता है कि एक लंबे अरसे तक हम हथियारोंके ज़रिए अपनी हिफ़ाजत करने की ताक़त नहीं पा सकेंगे। हमारे पास न हथियार हैं और न उनकी जानकारी है। हममें ज़रूरी अनुशासन भी नहीं। नतीजा यह होगा कि हमको दूसरे राष्ट्रकी मददपर मदार रखना पड़ेगा और सो भी बराबरीके नाते नहीं, बल्कि शिष्य और गुरुके नाते। इस खयालसे कि हलके दरजेका शब्द कानोंको कठोर लगेगा, उसका इस्तेमाल नहीं किया है।

इसलिए साफ़ तौरपर यह महसूस किया जाना चाहिए कि आज़ादी हासिल करनेकी तरह ही उसे क़ायम रखनेके लिए भी अहिंसाका सहारा लिए बिना चारा नहीं। इसका मतलब यह हुआ कि जो अपनेको हमारे दुश्मन समझते हैं, उन सबके लिए हमें अहिंसाका इस्तेमाल करना है। जिन्होंने करीब ३० साल तक अहिंसाकी तालीम पाई है, उनके लिए यह चीज़ बहुत ज़्यादा न होनी चाहिए। अहिंसाका मंत्र है: 'अपनी इज्ज़त और आज़ादीके लिए मरो।' यह नहीं कि 'ज़रूरत पड़नेपर मारो और मारते हुए मरो।' बहादुर सिपाही क्या करता है? वह मौक़ा पड़नेपर ही मारता है और ऐसा करते हुए अपनी जान जोखिममें डालता है। अहिंसा इससे ज़्यादा धीरज और त्यागकी उम्मीद रखती है। किसीकी जान लेते हुए अपनी जानको जोखिममें डालना ज़्यादा आसान क्यों मालूम होता है? और क्या वजह है कि बिना मारे मरना दिव्य माना जाय? यह सोचना कि मारनेके धंधेको सीखे बिना मरा नहीं जा सकता, निरा भ्रम है। हम इस भ्रममें न फँसें। बार-बार भ्रमकी ही रट लगाए रहनेसे हम उसमें फँस जाते हैं और उसीको सच समझने लग जाते हैं।

लेकिन टीका करनेवाले या निंदा करनेवाले यह पूछेंगे कि जब यह चीज़ इतनी आसान है, तो प्रार्थनाको किस लिए बीचमें डालते हो? इसका जवाब यही है कि जीवनकी अलग-अलग हालतोंमें और आखिरी हालतमें, राष्ट्रकी आज़ादी और इज्ज़त की रक्षाके लिए अपने-आपको मिटा देनेकी जो भव्य और वीरतापूर्ण कला हमें सीखनी है, उसके लिए हमें प्रार्थना पहला और आखिरी सबक़ है।

प्रार्थनाके लिए ईश्वरमें सजीव श्रद्धाकी ज़रूरत है। बिना ऐसी श्रद्धाके सत्याग्रहके सफल होनेकी कल्पना नहीं की जा सकती। भगवानको हम किसी भी नामसे क्यों न पहचानें, उसका रहस्य यह है कि वह और उसका क़ानून एक ही है।

('हरिजन-सेवक', १४-४-४६)

कुमारी कन्या ?

यदि लड़का कुँवारा रहे, तो समाज बुरा नहीं मानता ; परन्तु यदि लड़की कुमारी रह जाय, तो सब कोई उसकी ओर उँगली उठाने लगते हैं, कानाफूसी आरम्भ हो जाती है। जो कन्या बीस वर्ष तक अविवाहित रह जाती है, उसे कैसी-कैसी बातें तथा कैसे-कैसे व्यंग्य सुनने पड़ते हैं, इसे वही जानती है। इस स्थितिमें क्या त्रुटि है ? यह कदापि नहीं कि अविवाहित लड़कियोंकी संख्यामें एकाएक वृद्धि हो गई, बल्कि यह कि समाजके नेताओं—विशेष तौरपर स्त्रियों—के विचारानुसार उसका विवाह हो जाना चाहिए था। काश, स्त्रियाँ अपनी ही जातिके प्रति अधिक सहानुभूतिपूर्वक सोचतीं और व्यवहार करतीं ! यदि किसी बीसवर्षीया कन्याका विवाह नहीं हुआ है, तो लोग सोचते हैं कि उसमें अवश्य कोई त्रुटि है, कोई अवगुण है। परन्तु यदि इसी उम्रके किसी लड़केका विवाह नहीं हुआ हो, तो यही कहा जायगा कि उसके योग्य कोई लड़की नहीं मिली। यह बात हमारी नारी-संबंधी धारणाकी द्योतक है। स्वाधीन भारतमें ऐसे विभेद और असमानता आदिको स्थान नहीं होना चाहिए। हो सकता है कि स्त्रीका आदर्श पत्नी—और सुतरां माँ—बननेमें ही हो ; परन्तु वर्त्तमान परिस्थितिमें प्रत्येक स्त्रीके लिए यह आदर्श अनिवार्य नहीं हो सकता। विशेषज्ञोंके अनुमानके अनुसार द्वितीय महायुद्धके कारण अगले बीस वर्षोंमें कुमारी स्त्रियोंकी संख्यामें और भी वृद्धि होगी।

हमारे यहाँ बीस वर्षकी आयु तक तो कन्याको विशेष चिन्ता नहीं होती ; पर उसके बाद तो मिलने आनेवाली प्रत्येक स्त्री बिलकुल साधारण ढंगसे पूछ बैठती है कि लड़कीके विवाह की बात कहाँ चल रही है ? और फिर बिना उत्तर पाए ही 'हाँ, हाँ, अब तो जल्दी ही विवाह कर देना चाहिए ; अधिक समय तक वयप्राप्त कुमारी कन्या घरमें शोभा नहीं देती !' कन्याके मस्तिष्कमें भविष्यके स्वप्न विवाहकी इच्छाके साथ ही रहते हैं। जब विवाहकी समस्या विकराल रूप धारणकर सामने आती है, तो उस स्थितिमें माता-पिता अपना सर्वस्व देकर भी कन्याका विवाह करनेके लिए अधीर हो जाते हैं। कन्याका विवाह उसके गुण, रूप तथा उसे धर्मपत्नी बनानेके हेतु नहीं, बल्कि चाँदीके टुकड़ोंके लिए होता है। वह यह सब समझती है, फिर भी कुछ नहीं कर पाती। इसका एक बड़ा कारण उसके अन्तरमें पत्नी बननेकी, अपना घर बसानेकी, इच्छाका विद्यमान होना भी हो सकता है। क्या बचपनसे वह विवाह, पति, अपना घर, बच्चों आदिकी बातें नहीं सुनती आ रही ? पत्नी बननेमें उसे एक कल्पित आनन्द तो आता ही है ; पर इस प्रकार अपनी अपूर्णताकी ओर अधिक ध्यान देनेकी वह आदी भी हो गई है। उसे भय है कि अविवाहित रहकर वह निःसहाय एवं अकेली रह जायगी। तो क्या विवाह करके हर लड़की अनिवार्यतः सुखी ही होती है ? किस लड़कीने अपने परिवारमें कई दादियों और नानियोंको दिन-भर अकेले पड़े-पड़े गालियाँ और सूखी रोटियाँ खाते नहीं देखा होगा ?

यथार्थमें कुमारी स्त्री तो सबसे अधिक स्वतंत्र है। अपने घरका निर्माण करते समय उसे बहुत ही कम कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। अपनी विवाहिता बहनोंकी अपेक्षा वह अधिक स्वतंत्र है। एक कुमारी स्त्रीके लिए विवाहिता स्त्रीकी अपेक्षा प्रसन्न रहना अधिक सरल है, क्योंकि उसे घरके एक हज़ार एक धन्धोंसे मुक्ति मिलती है। विवाहिता स्त्रीकी तरह उसे घरमें बँधे रहनेकी ज़रूरत नहीं। अगर कुमारी लड़कियोंमें कमी है, तो साहस, पुरुषार्थ, स्वावलम्बन और स्वतंत्रताको व्यापक भावना की। यदि वे अपनी कल्पित अपूर्णताकी ओरसे ध्यान हटाकर इस बातकी ओर ध्यान दें कि उनमें से प्रत्येक स्वतंत्र रूपसे कुछ कर सकती है, प्रत्येकके पास एक मस्तिष्क तथा अन्य सृजनात्मक शक्तियाँ विद्यमान हैं, तो विवाहके बिना जीना उनके और समाज के लिए इतना कठिन न हो। पत्नीत्व और मातृत्व हर स्त्रीके लिए अनिवार्य एवं गौरवास्पद हैं, यह निरा दकियानूसी खयाल है। समाजको कुमारी लड़कियोंकी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी अविवाहित पुरुषों अथवा विवाहिता बहनोंकी। अगर लड़कियाँ

विवाहके रूपमें सिर्फ गहने-कपड़ेके लोभसे जीवन-भर पुरुषोंकी बाँदी बनकर उनकी अधीनता स्वीकार करनेको ही अपने जीवनकी सार्थकता समझती हैं, तब तो बलिहारी है उनकी समझको ; अन्यथा जिस प्रकार अनेक पुरुष आजीवन अविवाहित रहकर देश और समाजकी सेवा करते हैं, वे भी कर सकती हैं।—आशालता, ४ विष्णु रोड, देहरादून।

हमारे होटल और रेस्तराँ

आधुनिक समयमें बढ़ते जानेवाले शहरोंमें हम होटलोंकी अनिवार्य आवश्यकताको महसूस करते हैं। देशमें उद्योगीकरणके विकासके साथ-साथ जीवन-यापनके खर्चकी वृद्धि, मकानोंकी तंगी तथा नौकर आदिकी समस्या हर समय हमारे सामने रहती है। खाद्य-पदार्थोंपर कंट्रोल होनेके कारण दोनों समयके खानेकी व्यवस्था करना भी एक सिर-दर्द मालूम होता है। इसके अलावा लकड़ी, कोयला, बर्तन, चीनीके बर्तन आदि कई चीजें हैं, जिनकी आवश्यकता एक मामूली-से रसोईघरमें—चाहे वह दो व्यक्तियोंका हो, चाहे बीसका—ज़रूर होती है। पर यह जुटा सकना भी सबके लिए संभव नहीं। फिर स्त्रियोंकी सारी शक्ति घर-गृहस्थीकी व्यवस्था तथा रसोईके इन्तज़ाममें ही खर्च हो जाती है। इसके अलावा रोज़ दोनों समय वही काम—चूल्हा जलाना, खाना बनाना, बर्तन धोना आदि—वर्षोंसे चला आ रहा है और उसे उसी पुराने ढंगके अनुसार करना होता है, जिसमें आजकल की पढ़ी-लिखी स्त्रियोंको विशेष दिलचस्पी नहीं मालूम होती।

जिस समयमें से हम गुज़र रहे हैं, वह युग-परिवर्त्तनका संधि-काल है। हमारे रहन-सहन तथा घर-रसोई आदिकी रूप-रेखा और कार्योंमें परिवर्त्तनकी नितान्त आवश्यकता है। पाश्चात्य देशोंकी भाँति हम अपने घरोंमें भी रसोईके लिए बिजली अथवा गैसके चूल्हे, सफाई और कपड़े धोनेके यंत्र लगवा सकते हैं, जिनमें मानव-श्रमकी कम-से-कम आवश्यकता होगी और बिजली द्वारा बहुतसे काम संपन्न हो सकेंगे। उसमें बहुत सुविधा हो जायगी तथा स्त्रियोंकी बहुत-सी शक्ति अपव्यय होनेसे बच जायगी। लेकिन कुछ धनी लोगोंके सिवा मध्य-वर्ग तथा निम्न मध्य-वर्गके लिए अपने घरोंमें इन यंत्रोंको खरीदना तथा उपयोगमें लाना आसान नहीं। इस प्रकारकी सभी चीज़ें बहुत महँगी होनेके कारण उनकी पहुँचके बाहर हैं। इसके अलावा आधुनिक ढंगके मकान अधिक तादादमें बनेंगे, तभी इन सब सुविधाओंका उपयोग करना सर्व-साधारणके लिए सम्भव हो सकेगा। पर इन सब नवीन सुविधा-साधनोंके बावजूद पुराने और नएके बीचके समयकी अवधिके लिए हमें अपने खाने और चायके लिए अधिकतर होटलों और रेस्तराँओंका ही आश्रय लेना पड़ेगा। आज यदि हममें से अधिकांश नगर-निवासी चाहें, तो भी इनसे बच नहीं सकते। बड़े शहरोंमें एक स्थानसे दूसरे स्थानकी दूरीके कारण भी कई बार प्यास तथा भूख लगनेपर हम इनमें चले जाते हैं। कभी-कभी घरके एक-से खाने और वातावरणसे उकताकर भी इनकी शरण लेनी पड़ती है।

लेकिन यह अत्यन्त खेदकी बात है कि नागरिक जीवनमें इतने आवश्यक होनेपर भी हमारे होटल-रेस्तराँमें सफाईकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। सस्ते और मामूली होटलोंकी बात तो जाने दीजिए, महँगे, ऊँचे क़िस्मके नये फैशनेबल होटलों तकमें खानेके हालको छोड़कर यदि चौके वगैरहकी व्यवस्था देखी जाय, तो वहाँ बननेवाली चीज़ोंको खानेका कभी जी नहीं चाहेगा। चाय और खानेके बर्त्तन एक ही बाल्टीमें डुबोकर धो दिए जाते हैं। ऐसे बर्त्तनोंमें खाना-पीना जनताके स्वास्थ्यके लिए खतरनाक है। खाद्य-पदार्थों तथा तरकारी वगैरहको ठीकसे साफ करके धोया तक नहीं जाता। खाद्य-सामग्री किस हद तक शुद्ध रहती है, इस संबंधमें तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता। पानीके ग्लास वगैरह भी काफी गन्दे रहते हैं। अच्छे-अच्छे और ऊँचे किस्मके होटल-रेस्तराँओं तकमें दालमें कंकर तथा रोटीमें मिट्टी खानेमें मालूम होती है।

होटलोंके व्यवस्थापक-मंडलको चाहिए कि बाहरी टीम-टामके साथ ही रसोईघर तथा खाद्य-सामग्रीकी शुद्धतापर भी उचित ध्यान दें। प्लेट तथा प्याले भी या तो गरम पानीसे धुलने चाहिएँ या धोनेके बाद गरम भाफ़में सुखाए जाने चाहिएँ। ऐसा करनेसे यदि उनमें कोई कीटाणु हों, तो नष्ट हो जायँगे। इस प्रकार साधारण और भयंकर बीमारियोंके फैलनेका कम खतरा रहेगा। इसके सिवा प्रत्येक बैरे और खानसामेके लिए नौकर होनेके बाद ६ महीनेका कोर्स स्वास्थ्य-शिक्षामें पास करना आवश्यक होना चाहिए।
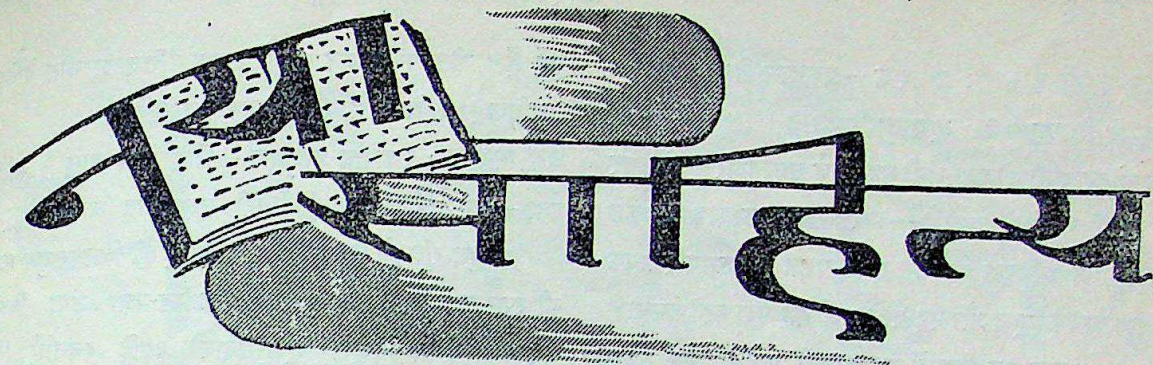
हिन्दी-पत्रकारिता और जनपद-साहित्य

हिन्दीकी पत्र-पत्रिकाएँ : सम्पादकद्वय—श्री अखिल विनय और श्री गौण्डाराम वर्मा 'चंचल' ; प्रकाशक—हिन्दी-साहित्य-समिति, बिरला-कालेज, पिलानी ; मूल्य ३।)

हिन्दी-साहित्यमें जिस वस्तुके अभावका अनुभव वर्षोंसे किया जा रहा था, उसकी पूर्ति इस पुस्तकके द्वारा हुई है। यद्यपि इस ओर पहले भी प्रयत्न हुए हैं ; पर जितने विस्तृत एवं गम्भीर रूपमें हिन्दीकी पत्र-पत्रिकाओंका परिचय इसमें है, वैसा अन्यत्र देखनेमें नहीं आया। सम्पादकके महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्वको बतलाते हुए हिन्दी-पत्रोंके सवा सौ वर्षोंका इतिहास चार युगोंमें विभाजित किया गया है। पूर्व-भारतेन्दु-काल, भारतेन्दु-काल, उत्तर-भारतेन्दु-काल और द्विवेदी-काल तथा वर्तमान काल आदि। प्रत्येक युगके पत्रोंकी विवेचना करते हुए यह भी स्पष्ट किया गया है कि किस पत्रिकाका जनतामें अधिक प्रचार हुआ है और क्यों? विदेशोंमें प्रसिद्ध होनेवाली पत्रिकाओंमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी 'कवि-वचन-सुधा' है, जिसकी प्रशंसा फ्रांसके सुप्रसिद्ध विद्वान गार्सा द तासीने अपने पत्रमें की। इस इतिहाससे हिन्दी-भाषाके क्रमिक विकास का भी अच्छा ज्ञान होता है। हिन्दीकी आधुनिक पत्र-पत्रिकाओंके विषयानुकूल विभाजनमें भी पर्याप्त परिश्रम किया गया है। पत्रिकाओंके पते और वार्षिक चंदेके अतिरिक्त उनकी संक्षिप्त आलोचना भी दी गई है।

हिन्दीकी प्रादेशिक भाषाएँ : प्रकाशक—प्रकाशन-विभाग, भारत-सरकार, दिल्ली ; पृष्ठ ८० (डिमाई साइज) ; मूल्य ॥।)

पिछले वर्ष अप्रैल-मईमें अखिल-भारतीय रेडियोसे जनपद-साहित्य-संबंधी जो भाषणमाला प्रसारित हुई थी, उसे अब पुस्तक-रूपमें प्रकाशित किया गया है। इसमें राजस्थानी, व्रजभाषा, बुन्देलखंडी, भोजपुरी, अवधी और मैथिली भाषाओं और उनके साहित्योंके सम्बन्धमें हिन्दीके अधिकारी विद्वानोंके भाषण हैं, जो अपना स्थायी महत्त्व रखते हैं। इन्हें प्रकाशित कर प्रकाशन-विभागने हिन्दीकी बहुत बड़ी सेवा की है। ऐसी संग्रहणीय पुस्तक प्रत्येक स्कूल, कालेज और सार्वजनिक पुस्तकालयमें रहनी चाहिए।

अच्छी हिन्दीका नमूना: लेखक—श्री किशोरीदास वाजपेयी ; प्रकाशक—जनवाणी प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स लि०, ३६ वाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता ; पृष्ठ १९६ ; मूल्य २॥)

पं० किशोरीदास वाजपेयी हिन्दीके माने हुए विद्वान हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें उन्होंने उदाहरण देकर भाषाकी शुद्धतापर प्रकाश डाला है। इसमें उन्होंने कितने ही ऐसे गलत शब्दोंका उल्लेख किया है, जिनका प्रयोग हिन्दीके चोटीके विद्वान भी धड़ल्लेसे करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि इसको पढ़नेसे भाषा-संबंधी कितनी ही भ्रान्तियाँ दूर होंगी। पुस्तक कामकी है।

आज़ादीके बाद : श्रम और श्रमजीवी

स्वाधीनताकी चुनौती : लेखक—प्रो० शान्तिप्रसाद वर्मा ; प्रकाशक—नवयुग साहित्य-सदन, इन्दौर, पृष्ठ ३७४, मूल्य ७)

आज़ादीकी एक मंज़िल तय करनेके बाद यथार्थमें देशके सामने वे समस्याएँ उपस्थित हुई हैं, जिनके हलपर उसका और एक बहुत बड़ी हद तक विश्वका भविष्य निर्भर करता है। समाजशास्त्रके अध्यापक होनेके नाते विद्वान लेखकने देश और उससे संबंधित पड़ोसी राष्ट्रोंकी सामाजिक, अर्थनीतिक तथा राजनीतिक समस्याओंका बड़े सुलझे हुए ढगसे विवेचन किया है। सबसे बड़ी बात यह है कि उन्होंने प्रगतिशील दृष्टिकोण रखकर बहुत बड़ी बौद्धिक ईमानदारीका परिचय दिया है। किन बुराइयोंको दूरकर हमें किस प्रकारकी व्यवस्था करनी चाहिए, इसकी स्पष्ट एवं ठोस रूप-रेखा आपने प्रस्तुत की है। इस तरहकी उपयोगी पुस्तक समाजशास्त्रके विद्यार्थीके लिए तो अनिवार्य है ही, हर नागरिकको भी अवश्य पढ़नी और पढ़ाई जानी चाहिए।

दामोदर-घाटी-योजना: प्रकाशक—प्रकाशन-विभाग, भारत-सरकार, दिल्ली; पृष्ठ ५२ ; मूल्य ॥), अजित्द ।

दामोदर-घाटी-योजना-जैसी महत्वपूर्ण समस्यापर—जिसपर पत्रोंमें काफ़ी चर्चा हो चुकी है—भारत-सरकारका अब तक कुछ कोई सुंदर एवं अधिकृत प्रकाशन न होना इस बातका परिचायक है कि प्रकाशनके मूल्य और महत्वको अभी वह पूरा नहीं समझती है । प्रस्तुत पुस्तक इस दिशामें एक अच्छी परिचयात्मक क़दम है । इसमें योजनाके सम्बन्धमें लगभग सारा आवश्यक विवरण दिया गया है । एक बड़े मानचित्र और चित्रोंसे विषयको अधिक बोधगम्य बनाया गया है । टेनेसी-वेली-योजनाके चित्र देखकर पाठकको दामोदर-योजनाके लाभ समझनेमें काफ़ी सहूलियत होगी । आशा है, भविष्यमें सरकार इस विषयपर अधिक अच्छे प्रकाशन करेगी ।

विश्व-काव्य : युग-क्रान्ति

विश्व-काव्य (दो भाग): संग्रहकर्त्ता-अनुवादक—श्री बालकृष्ण बलदुवा ; प्रकाशक—लक्ष्मी-प्रकाशन-मंदिर गोरखपुर-कानपुर ; मूल्य २॥)+२॥)

प्रस्तुत ग्रन्थमें प्रमुख मिसरी, यहूदी, चीनी, जापानी, अरबी, फारसी, यूनानी, लेटिन, इटालियन, फ्रांसीसी, स्पेनिश, पुर्त्तगीज़, रूसी, अंगरेज़ी और अमरीकन कलाकारोंके काव्यके नमूनोंका हिन्दी-रूपांतर है । इनमें जीवनके शाश्वत सत्योंको विश्व-मानवने किस प्रकार देखा है, उसकी आत्माका एक खास अच्छा परिचय मिल जाता है । हिन्दीमें यह अपने ढंगकी अनोखी पुस्तक है, हमारा विश्वास है, हिन्दी-संसार इसे चाव के साथ पढ़ेगा ।

प्रांगण और मनके गीत : रचयिता—उपर्युक्त ही ; प्रकाशक-गंगा-ग्रन्थागार, लखनऊ ; मूल्य क्रमशः २) और १)

प्रस्तुत दोनों पुस्तकोंमें लेखकके मन-प्रांगणमें खेलनेवाली भावना और कल्पनाके मूर्त रूपोंका संग्रह है । 'प्रांगण' उनकी कविताओं और 'मनके गीत' उनके गद्य-गीतोंका संग्रह है । कविताएँ विषाद-व्यथासे लेकर समाज-विश्व तक विविध विषयोंपर हैं । उनमें एक भावुक हृदयका स्पन्दन है, एक व्याकुल मनकी वेदना है । पर साथ ही शिवाजी और प्रतापका नाम लेते ही उसका ओज भी गमक उठता है । रचनाएँ सुन्दर और मनको छूनेवाली हैं । 'मनके गीत' में एकसे लेकर २४ पंक्तियों तकके गद्य-गीत हैं, जिनमें 'प्रांगण'की-सी ही भावनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं । गीत सुन्दर बन पड़े हैं । एक पंक्तिवाला गीत देखिए : 'मालिक ! शक्ति दे या फिर पागल कर दे !'

युग-क्रान्ति : रचयिता-प्रकाशक—श्री शिवदयाल जांगिड़, पता—श्रमजीवी आश्रम, सिहोदरी, लक्ष्मणगढ़ (जयपुर); मू० १)

प्रस्तुत संग्रहमें लेखककी ८ कविताएँ हैं, जिनपर युग-क्रान्ति की स्पष्ट छाप है । बापू, मनुज, क्रान्ति-यज्ञ, नंगा किसान, श्रम-कण, भूखा मजूर, भूख-भवानी आदि रचनाएँ विशेष अच्छी बन पड़ी हैं । लेखक अभी नए हैं, पर उनके भावोंमें परिपक्वता और भाषामें ओज है । हमें आशा है, आगे चलकर वे हिन्दी-संसारके सामने अपनी और भी श्रेष्ठ रचनाएँ रखेंगे । 'युग-क्रान्ति' हिन्दी-जगत्में समादृत होगी, ऐसा हमें विश्वास है ।

विविध

रंगीला-मारवाड़ : (रामू-चनणा) लेखक—श्री भरत व्यास ; प्रकाशक—व्यास ब्रदर्स, ६१८ विठ्ठल बाड़ी, विठूबा लेन, बम्बई ; पृष्ठ ८४ ; मूल्य १॥)

प्रस्तुत नाट्य-पुस्तक व्यासजीने मारवाड़ीमें लिखी है । यह नाटक कलकत्ते और बम्बईमें कितनी ही बार रंगमंचपर सफलतापूर्वक अभिनीत हो चुका है । रामू-चनणाकी करुण कहानी भाषा-प्रान्त-निर्विशेष किसी भी व्यक्तिके हृदयको स्पर्श किए बिना नहीं रह सकती ।

राजकमल वर्ष-बोध : संपादक—ओंप्रकाश ; प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ; पृष्ठ ४६४ ; मूल्य ५)

वर्ष-बोधके आरंभमें भारतकी जनता, देशके बँटवारे तथा प्रस्तावित विधानके मसविदेका संक्षिप्त इतिहास दिया गया है । साथ ही केन्द्रीय सरकार, प्रान्तीय सरकारों, देशी रियासतों, ट्रेड-यूनियन-इतिहास, ग़रीबी और महँगाई, उद्योग-धन्धों, खेती-बारी, सिंचाई, पशु-धन, व्यापारिक संस्थाओं, बन्दरगाहों, शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात आदि देशके प्रायः सभी प्रमुख विषयोंपर प्रकाश डाला गया है, जिसे पढ़कर काफी जानकारी हासिल की जा सकती है । भारत-जैसे अशिक्षा-प्रधान देशमें ऐसी डाइरेक्टरियोंकी खासी ज़रूरत है, ताकि कम पढ़े-लिखे लोग भी अपने देशके हरएक विषयका थोड़ा-बहुत ज्ञान प्राप्त कर सकें । वर्ष-बोधके संपादक और प्रकाशक साधुवादके पात्र है । साथ ही आशा की जानी चाहिए कि जो विषय अभी बाकी रह गए हैं, आगामी वर्ष उनका भी इसमें समावेश कर दिया जायगा ।

दिल्लीमें अध्यापिकाओंको सैन्य-शिक्षा

एक महीना पहले नौ अध्यापिकाओंका एक दल सैन्य-शिक्षा प्राप्त करनेके लिए दिल्ली-छावनी आया है। ये महिलाएँ राष्ट्रीय सैन्य-शिक्षार्थी-दलकी लड़कियोंकी सेना (गर्ल्स-डिवीज़न) की अफ़सर होंगी। पूर्वी पंजाब, पश्चिमी बंगाल और मध्य-प्रांतसे आनेवाली इन अध्यापिकाओंको राजपूताना-राइफ़ल्स रेजिमेंटल-सेंटरमें आफ़िसर कमांडिंगके निरीक्षणमें सैन्य-शिक्षा दी जा रही है। इनको व्यायाम, ड्रिल, मोटर-गाड़ियोंका चलाना, मोटरके पुर्जोंकी जानकारी, वायरलेस, सिगनेलिंग, रेडियो-टेलीफोनिंग, मोर्स टेलीग्राफी, टेलीफोन-केन्द्रोंका संचालन आदि कार्य सिखाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्राथमिक चिकित्सा, रोगी-सुश्रूषा, आरोग्य-साधन एवं स्वच्छता और हवाई-आक्रमणसे बचनेके सभी उपायोंकी भी शिक्षा दी जाती है।

प्रारम्भमें इन अध्यापिकाओंने सैन्य-शिक्षाको कुछ कष्टप्रद अनुभव किया, किन्तु धीरे-धीरे वे इसकी आदी हो गई हैं। अब उनमें इसके लिए बड़ा उत्साह है और वे अपने शिक्षणकी सफल समाप्तिके बाद सैन्य-शिक्षार्थी-दलमें कमीशन प्राप्त करनेकी बड़ी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रही हैं। इसके उपरान्त वे अपने-अपने प्रांतोंमें चली जायँगी और अपनी शिक्षा-संस्थाओंमें लड़कियोंके दल तैयार करेंगी। यद्यपि इन अध्यापिकाओंको एक ऐसे सैन्य-दस्तेमें शिक्षा दी जा रही है, जहाँ मुफ्त खाने-पीने और ठहरनेके लिए विशेष प्रबंध किया गया है; फिर भी शीघ्र ही एक शिक्षण-स्कूल प्रारम्भ करनेका विचार है। बालिकाओंके शिक्षणके लिए सैनिक आधारपर एक संगठन स्थापित करनेका भारत-सरकारका यह प्रथम प्रयत्न है। ब्रिटेनके महिला-दलकी भाँति सरकारने पिछले महायुद्धके समय महिला-सहायक-दल और भारतीय नौ-सेनाके महिला-दलका संगठन किया था; किन्तु गर्ल्स-डिवीज़नका संगठन बिल्कुल भिन्न आधारपर किया जा रहा है। इस योजनाका उद्देश्य लड़कियोंके व्यक्तित्वका विकास करना, उन्हें अधिक आत्म-विश्वासी बनाना, उनके शरीरको सुगठित करना और राष्ट्रीय संकटके समय उन्हें पुरुषोंके समान कार्य करनेके योग्य बनाना है। उन्हें संकेत-कार्यालयों, एक्सचेंजों, वायु-आक्रमण, सूचना-केन्द्रों और कल्याण-कार्योंमें लगाया जा सकता है, जिससे कि मोर्चोंपर अधिकाधिक पुरुषोंको भेजा जा सके। ('हिन्दुस्तान')

आयर-प्रजातंत्र

आजसे ठीक ३३ वर्ष पूर्व ईस्टर सोमवारके दिन आयरलैंडके कुछ आदर्शवादी साहित्यिकों तथा कलाकारोंके दलने ब्रिटिश आधिपत्यके खिलाफ़ विद्रोह किया था। लेकिन ब्रिटिश अधिकारियोंने अपने ज़ोर-ज़ुल्मसे उसे एक ही दिनमें दबा दिया। पर निरंतर होनेवाली अंगरेज़ोंकी ज़ुल्म-ज़्यादतियोंने आयरिश लोगोंके देश-प्रेमको ठोकर मारकर जाग्रत किया और आयरिश जनताकी आज़ादीका आन्दोलन दबकर भी मरा नहीं। वह ३३ वर्ष तक बराबर चलता रहा। उस समय मुट्ठी-भर लोगोंका यह रुख यद्यपि आयरिश जनताके साथ मेल नहीं खाता था, लेकिन नेताओंके जेल जाने तथा प्राणदंडकी सज़ा मिलनेके फल-स्वरूप देश-प्रेमकी एक नई भावना जाग्रत हुई और समूचे देश में आन्दोलन व्यापक हो चला। पहले-पहल अमरीका और फ्रांस द्वारा विद्रोहका झंडा गाड़नेके परिणाम-स्वरूप १७९० में यहाँ प्रजातंत्रके आदर्शकी प्रेरणा मिली। इसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप १७९८, १८०२, १८४८ और १८६७ में आयरलैंडमें अनेक स्थानोंपर विद्रोह हुए; पर इनमें से किसी एकको भी कहींसे महत्त्वपूर्ण सहयोग नहीं मिला। १९१६में भी विद्रोहियोंको अधिक सहयोग नहीं मिला; पर उन्होंने यह महसूस किया कि उनके बलिदानोंसे जनतामें देश-प्रेमकी भावना अवश्य जाग्रत होगी।

यह बात बड़ी दिलचस्प है कि १९२१ में आयरिश बहुमतने औपनिवेशिक दरजेको स्वीकार करनेका समर्थन किया था।

थोड़े-से लोग ही पूर्ण स्वतंत्रता तथा अंगरेज़ोंसे सब प्रकारसे संबंध विच्छेद करनेके पक्षमें थे। १९२० के प्रारंभमें ऐसा प्रतीत हुआ कि यह पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करनेका विचार एक बार और खत्म हो रहा है और आयरलैंड ब्रिटिश कामवेल्थका एक वफ़ादार और संतुष्ट सदस्य बन गया है। पर आयरिश सरकारने आन्दोलनकी समाप्तिके एक वर्ष बाद जिन व्यक्तियोंको जेलोंसे मुक्त किया, उन्होंने बाहर आते ही सरकारको फिर चुनौती दी। इन हारे हुए असंतुष्ट प्रजातंत्रियोंने स्वाभाविक रूपसे वैध उपायों द्वारा शक्ति-संग्रह करनेका प्रयत्न किया। केवल हथियारोंके बलपर सीधे तौरसे लड़नेमें वे जीत नहीं सकते थे। उनके गरम भाषणोंसे आयरिश लोगोंमें एक बार फिर उत्कट देश-प्रेमकी लहर दौड़ गई। धीरे-धीरे अंगरेज़ोंके प्रति आयरिश जनताका रुख इतना कड़ा और असहयोगपूर्ण हो गया कि उनके लिए शासन चलाना कठिन हो गया और चुनावमें सफल होकर डी-वेलेराके दलने शासन-सत्ता सम्हाली। पहले इसने गवर्नर-जनरलको उड़ाया और सम्राट तो नाम-मात्रके लिए रह गए। १६ वर्षकी इस नीतिने आयरिश लोगोंके विचारोंमें पूर्ण क्रान्ति भर दी और २५ वर्ष पूर्व जो आयरलैंड ब्रिटिश कामनवेल्थका एक वफ़ादार उपनिवेश-मात्र मालूम होता था, उसने मज़बूतीसे उसकी गुलामीके जुएको हमेशाके लिए उतार फेंका।

फिल्मों द्वारा सामाजिक चेतना

रूसके सिवा अधिकांश देशोंमें आकर्षक विज्ञापनों तथा अभिनेत्रियोंके अवांछनीय चित्रोंको दिखाकर जनताको फिल्म देखनेके लिए प्रलुब्ध किया जाता है। अक्सर ये फिल्में मनोरंजनके नामपर जनताकी निकृष्ट वृत्तियोंको ही उत्तेजना देती हैं। कुछ फिल्में ऐसी भी आ जाती हैं, जिनका उद्देश्य सामाजिक समस्याओंका हल पेश करना नहीं रहता है, तो कम-से-कम उनकी झाँकी देना ज़रूर। पर इतना ही काफी नहीं है। जनसाधारणमें सामाजिक चेतना जाग्रत करनेके लिए जागरुक सरकारोंको स्वयं कुछ करना चाहिए। रूसने तो एक पंचवर्षीय योजना बनाई है, जिसमें इस कार्यके लिए भी सामाजिक दृष्टिसे अच्छी फिल्मोंके निर्माण और प्रचारकी विशेष चेष्टा की जायगी। अभी हाल ही में संयुक्त राष्ट्रसंघके सूचना-विभागकी ओरसे तीन ऐसी छोटी फिल्में बनाई गई हैं। इन फिल्मोंको देखकर किसी भी दर्शकमें सामाजिक चेतना उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकती।

पहली फिल्म 'माँ' है। इसमें एक ग्रामीण भारतीय स्त्री सीतादेवी शिशु-पालनकी शिक्षा तथा अच्छे विचार लेकर अपने गाँव वापस लौटती है। ग्रामवासी बड़े दक़ियानूसी हैं; पर सीतादेवीकी बातोंपर उनका विश्वास जम जाता है। जिस प्रकार माँ बच्चेकी देख-भाल करती है, इस फिल्ममें उसकी तुलना गाँव की फसलकी देख-भालसे की गई है। और इस रूपकको विभिन्न रूपोंमें बड़ी सुन्दरतासे दिखाया गया है। एक तरहसे ग्राम-सुधारकी यह खासी अच्छी भूमिका है।

दूसरी फिल्म 'बच्चा'में भी सीतादेवी ही काम करती है। उसके गाँवमें माताका प्रकोप होता है। वह टीका लगानेवाले को बुलाती है; लेकिन गाँववाले उसके इस कार्यको सन्देहकी दृष्टिसे देखते हैं और टीका लगवानेसे इन्कार कर देते हैं। जब मातासे बहुत मौतें होने लगती हैं, तो निराश हो तथा डरकर गाँववाले टीका लगवानेको राज़ी हो जाते हैं। एक छोटे बच्चेके माँ-बाप इसी महामारीमें मर जाते हैं। सीतादेवी उस बच्चेका भार स्वयं अपने ऊपर ले लेती है और उसका पालन-पोषण करती है। इस प्रकार वह धीरे-धीरे गाँववालोंको शिशु-पालन-सम्बन्धी अपने विचारोंसे प्रभावित करती एवं उन्हें उनके अनुकूल बनानेमें सफल होती है। अन्तमें सीतादेवी पड़ोसके गाँवोंमें भी अपना कार्य जारी करती है। इस ओर दिलचस्पी बढ़ानेके लिए वह एक शिशु-प्रदर्शनी करती है, जिसमें उसके द्वारा पाले गए बच्चेको प्रथम पुरस्कार मिलता है। गाँववाले दूसरोंके सामने उसे उदाहरणके रूपमें रखनेके लिए उससे बच्चेको माँगते हैं और वह उसे उन्हें दे देती है। इतनी सफलताके बावजूद सीतादेवी उदास होकर वापस अपने गाँव जाती है। वहाँ गाँवके सब बच्चे उसका अभूतपूर्व स्वागत करते हैं, जिससे वह महसूस करती है कि वे सब उसीके बच्चे हैं।

तीसरी फिल्म 'जाति'में दिखाया गया है कि गाँव एक ऐसी सामूहिक जाति है, जिसमें प्रत्येक स्त्री-पुरुषकी कुछ ज़िम्मेदारी है, जो उन्हें सबकी सुख-सुविधाके लिए उचित रूपसे पूरी करना चाहिए। इसमें ग्रामवासियोंको नागरिकताके मूल तत्त्वोंको सिखाने की चेष्टा की गई है। आज तो एक औसत ग्रामीण अपनी किसी प्रकारकी नागरिक ज़िम्मेदारी नहीं समझता। वह जो भी कुछ करता है, अपने लिए तथा अपने परिवारके लिए ही। इस फिल्ममें उसके मनमें यह बात उतारनेकी चेष्टा की गई है कि सारा गाँव ही उसका परिवार है और उसके सब निवासियोंके प्रति उसकी कुछ ज़िम्मेदारी है।

शंघाईका पतन

नानकिङ्के बाद संसारके चौथे बड़े नगर शंघाईका पतन चीनी गृह-युद्धके यवनिका-पातकी पूर्व सूचना है। इसके बाद अब चीन उस बिना शीशेके धड़की तरह हो गया है, जो अधिक दिन साँस नहीं ले सकता। दो दिन पहले तक राष्ट्रीय सरकार द्वारा शंघाईकी रक्षाके लिए नागरिकोंके घर लिए जाने, बालूके बोरों द्वारा नए मोर्चे खड़े किए जाने, महत्त्वपूर्ण स्थानों और जहाज़ोंके फूँके जाने, शत्रु-एजेण्टों और अफवाहें फैलानेवालोंको कठोर दंड दिए जाने, फार्मोसासे अमरीकनों द्वारा शिक्षित सहायक सेना बुलाने आदिके धुँआधार प्रोपेगंडाके बाद बिना किसी मुक़ाबलेके शंघाईको छोड़कर चले जानेसे ज़ाहिर है कि उसकी शक्ति और स्थिति कैसी है। रायटरके संवादसे स्पष्ट है कि विदेशी बाशिन्दोंने राष्ट्रीय सरकारके इस प्रोपेगंडापर कभी विश्वास न कर अपनी रक्षा और स्थानान्तरित होनेकी व्यवस्था स्वतः की और शंघाईके अन्य लोग आक्रमणकारियोंकी अपेक्षा अपने 'रक्षकों'से अधिक भयभीत थे। कम्युनिस्टों द्वारा न्हाङ्पू का घेरा न डाले जानेका जो भी कारण राष्ट्रीय सेनापतियोंने समझा हो, उनका अन्दाज़ बिल्कुल ग़लत निकला। यिङ्को, चिङ्वाङ्ताओ, चाइफू और विहाइवेईकी तरह शंघाईको भी वे डंकर्क नहीं बना सके। सैनिक और नैतिक बलके साथ-साथ उनकी बुद्धिका भी ऐसा दिवाला निकल गया कि अपने प्राण और सारे खाद्य-पदार्थ लेकर इतिहासके पृष्ठोंमें सिर्फ़ कायरताका कलंक बनकर रहनेको वे मुद्रा-प्रसार-ग्रस्त शंघाईको निस्सहाय-निरवलंब छोड़कर भाग गए। उनका यह पलायन मंचूरिया और शान्तुङ्की पराजयोंके बाद कहे गए जनरल हो-यिन-चिनके इन शब्दोंकी याद दिला देता है—"राष्ट्रीय सेनाओंकी नैतिक भित्ति ढह गई है और कम्युनिस्टों द्वारा घिरे नगरोंमें उसे सुधारने-सम्हालनेके लिए कुछ भी नहीं किया जा सका। खाद्य-पदार्थ अफ़सरोंने हथिया लिए और घायल सैनिकोंको ले जानेवाले हवाई-जहाज़ोंमें खुद और अपने परिवारवालोंको स्थानान्तरित किया।" इसीलिए नागरिकोंने अपने इन 'रक्षकों' का कभी कहीं भी साथ नहीं दिया—शंघाईमें भी नहीं।

पीकिङ्के एक ग़ैर-कम्युनिस्ट पत्रने कुछ दिन पूर्व लिखा था—"पिछले २० वर्षोंसे कुओमिन्ताङ्-सरकारने कभी जनताके हितका खयाल तक नहीं किया। चीनको संगठितकर लड़ा जाय, इसकी उसने न चेष्टा की और न जनताने उसका साथ ही दिया। अनेक स्थानोंपर सैनिकोंसे ज़्यादा नागरिक हताहत हुए। शासनकी अयोग्यता और भ्रष्टता, जनताका अविश्वास और असहयोग, खाद्य-पदार्थोंका अभाव सरकारी कर्मचारियों और छात्र-छात्राओंकी अनुशासनहीनता और धनिकोंकी सब-कुछ बटोरकर भागनेकी धृष्टताने राष्ट्रीय सेनाकी पराजय और नैतिक दिवालियापनको और भी आगे बढ़ाया।" ये पंक्तियाँ राष्ट्रीय सरकारकी स्थितिको स्पष्ट करती हैं। इनकी यथार्थता मंचूरिया, शान्तुङ् और नानकिङ्के बाद शंघाईमें चरितार्थ हुई और अब शायद कैण्टन तथा दक्षिणी चीनके अन्य नगरोंमें भी होने जा रही है।

कामनवैल्थ और भारत

यद्यपि भारतके कामनवैल्थमें रहनेके लन्दन-समझौतेको विधान-निर्मातृ-परिषदने (और कांग्रेस-महासमितिने भी) भारी बहुमतसे स्वीकार कर लिया है, फिर भी उसका जो 'कमज़ोर' विरोध हुआ है, वह अपनी खास अहमियत रखता है। 'स्टेट्समैन'के शब्दोंमें 'समर्थनसे विरोध विशेष रूपसे उल्लेखनीय' था। और इस कमज़ोर विरोधपर भी नेहरूजीको पूरे ४५ मिनट तक कैफ़ियत देनी पड़ी! उन्होंने हँसीमें कहा कि "मैं कोई अच्छा सौदा करनेवाला नहीं हूँ"। उनकी समूची वक्तृता पढ़ जाने और उनकी दलीलोंको तौलनेके बाद हमें उनका यह कथन अक्षरशः सत्य लगता है। शायद इसीलिए सदा अच्छा सौदा करनेवाले कूटनीति-विशारद अंगरेज़ोंने उन्हें ठग लिया। दुःख इस बातका उतना नहीं है कि वे ठगा गए, बल्कि इस बातका है कि वे अभी भी अपने-आपको ठगाया हुआ न समझ कर ऐसा समझते हैं, मानो उन्होंने बहुत बड़ी सफलता प्राप्त की है! उनका यह कहना कि लंदन-समझौता कांग्रेसकी प्रतिज्ञाओं और परम्पराके प्रतिकूल नहीं है, हमें तो किसी भी

रूपमें ठीक नहीं मालूम होता। इसके लिए एक बार नेहरूजी द्वारा पेश किए गए स्वतंत्रताके प्रस्ताव, प्रतिज्ञा और उसपर हुए उनके भाषणको देख लेना-भर काफ़ी है। उनका यह कहना भी ठीक नहीं कि इससे भारतकी स्थिति, उसकी स्वतंत्रता और सार्वभौमतामें कोई अन्तर नहीं आया है। अगर ऐसा ही है, तो फिर इसकी ज़रूरत ही क्या थी? नेहरूजी द्वारा (और गवर्नर-जनरल राजाजी द्वारा भी!) इसके समर्थनके लिए गांधीजीके नामकी ओट लेना उनकी बातको कमज़ोर और उन दलीलोंको काफ़ी बेजान-सा बना देता है।

वैधानिक दृष्टिसे भले ही ब्रिटेनने हिन्दको स्वतंत्र सार्वभौम प्रजातंत्रके रूपमें अपने (अधीन नहीं) 'समान' मान लिया हो; पर वस्तु-स्थिति तो इसके सर्वथा प्रतिकूल ही है। शेर और बकरीकी समानता भला कैसी? पुरानी बातोंके कारण अंगरेज़ोंके प्रति औसत भारतीयका जो अविश्वास और कटुता है, उससे कम-से-कम नेहरूजी और उनके समर्थक प्रभावित नहीं। पर आज दक्षिण-अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, मलाया, कश्मीर और संयुक्त राष्ट्रसंघमें ब्रिटेनका भारतके प्रति जो रुख है, क्या नेहरूजी उससे अपने-आपको बहुत अधिक उपकृत और कृतज्ञ समझ रहे हैं? उनकी अर्थनीतिक लाभकी बात एक हद तक उचित है, पर क्या वैसा बिना कामनवेल्थमें रहे संभव न था? क्या स्वतंत्र सार्वभौम प्रजातंत्र होकर भी हिन्द ब्रिटेनके सिवा किसी दूसरे राष्ट्रसे इस सहायताकी आशा नहीं रख सकता? फिर इस संबंधमें ब्रिटेनके उपनिवेशों और अर्द्ध-उपनिवेशोंका महँगा अनुभव क्या हमारी आँखें खोलनेके लिए काफ़ी नहीं है? सच तो यह है कि हमारी अर्थनीतिक स्थिति मौजूदा शोषक व्यवस्थाके आमूलचूल परिवर्त्तनसे ही बदलेगी—ब्रिटेनकी सहायतासे नहीं—और उसके लिए जन-साधारणका सहयोग-समर्थन अनिवार्य है। लन्दन-समझौता हमें उस जन-विरोधी मोर्चेके विरुद्ध घसीटनेकी भूमिका है, जो आज साम्राज्यवादी राष्ट्र अपने फिसलते हुए पाँवोंको रोकनेके लिए बना रहे हैं। मलाया, बर्मा और हांगकांगमें इसका एक रूप है और आस्ट्रेलिया तथा दक्षिण-अफ्रीकामें दूसरा। इस सम्बन्धमें कोई भूल या भ्रम नहीं रहना चाहिए कि (ब्रिटिश) कामनवेल्थ एक वर्ण-विशेषके (गोरे) साम्राज्यवादियोंकी शोषण-नीति क़ायम रखनेका गुट्ट-मात्र है। यही कारण है कि जिस उत्साहसे लंदन-समझौतेको ब्रिटिश जनता और पार्लमेंटने स्वीकार किया, भारतीय जनता और विधान-निर्मातृ-परिषदने नहीं।

हिन्दके प्रति ब्रिटेनका रुख

विश्वास और सद्भावना पैदा करनेवाला तो नहीं देख पड़ता। अभी हाल ही में संयुक्त राष्ट्रसंघकी जनरल असेंबलीमें जब भारत और दक्षिण-अफ्रीकाके झगड़ेके निबटारेके लिए एक संयुक्त बैठक करनेके फ्रांस-मैक्सिकोके प्रस्तावपर मत लिए गए, तो ब्रिटेन तटस्थ रहा! गत ४ मईको मलायामें एस० ए० गणपति नामके एक भारतीयको सिर्फ़ इसलिए फाँसी दे दी गई कि उसके पाससे एक पिस्तौल और ६ कारतूस बरामद हुए थे। इस क़ानूनी हत्याको रोकनेके लिए मलाया और ब्रिटेन-स्थित अपने प्रतिनिधियों द्वारा हिन्द-सरकारने ब्रिटिश आकाओंके सामने फरियादें कीं, पर कोई नतीजा न निकला। साम्बशिवम् नामके एक दूसरे भारतीयको भी प्राणदंड दिया गया है! हैदराबादमें गुप्त रूपसे हथियार पहुँचानेवाले सिडनी काटनके रहस्यका अब पूरी तरह भंडाफोड़ हो चुका है। कश्मीरके बारेमें जितना शरारत-भरा प्रोपेगंडा हो रहा है, उतना किसी देशमें किसी भी 'समान मित्र'के लिए नहीं हो रहा। स्थानाभावके कारण यहाँ हम केवल एक उदाहरण देते हैं। लाहौरके 'पाकिस्तान टाइम्स'में अभी हाल ही में सर विलियम बार्टनका एक ६ कालमका लेख छपा है। इसमें उन्होंने कश्मीरके इतिहास और हिन्द-पाकिस्तानके दावोंको बड़े ग़लत और भ्रांतिपूर्ण ढंगसे पेश किया है और फरमाया है कि 'पाकिस्तान शेख़ अब्दुल्लाके, जो कांग्रेसके गुर्गे हैं, तत्त्वावधानमें हुए मत-संग्रहको स्वीकार न करेगा।' पाकिस्तान और तथाकथित 'आज़ाद कश्मीर-सरकार'को सबसे अधिक सहयोग-समर्थन ब्रिटेनमें ही मिला है। ऐसे उदाहरणोंकी कमी नहीं है।

दक्षिण-अफ्रीका और भारतीय

यद्यपि संयुक्त राष्ट्रसंघने दक्षिण-अफ्रीकामें भारतीयोंकी स्थितिकी जाँच करनेके लिए एक कमीशन नियुक्त करने तथा दोनों देशोंके प्रतिनिधियोंकी आपसमें बात करानेके प्रस्ताव पास किए हैं; पर वहाँ दिन-ब-दिन बदसे बदतर होती जानेवाली स्थितिको देखते हुए हमें भय हो रहा है कि इनसे बहुत जल्द उसमें सुधार नहीं हो पायगा। इधर राष्ट्रसंघमें बड़ी-बड़ी निरर्थक बहसें होती हैं, उधर भय और आतंकसे त्रस्त भारतीयों पर नित नए सितम ढाये जा रहे हैं। भारतीय बसोंपर आक्रमण, अन्य बसोंमें से भारतीयोंको घसीटकर मारने तथा भारतीयोंकि

घर-दुकानोंपर हमले करने और आग लगानेकी घटनाएँ तो जैसे रोज़मर्राका क्रम हो गया है। डरबनके केटोमैनर-क्षेत्रमें भारतीयोंका चलना-फिरना तक मुश्किल हो गया है। कई बसों और फैक्ट्रियोंमें आग लगा दी गई है। रेसों तकमें भारतीयोंको बुरी तरह पीटा गया है। पुलिस अथवा गोरोंसे उन्हें कोई सहायता-संरक्षण नहीं मिल रहा। पिछले दो महीनोंमें ही कोई १०० से अधिक भारतीय और मारे गए तथा १००० से ऊपर घायल हुए। इस आतंक और आततायीपनको रोकने के लिए भारत-सरकारको राष्ट्रसंघकी अपीलों—जिनका पिछले २ वर्षोंमें कुछ भी नतीजा नहीं निकला है—के सिवा कुछ और भी करना चाहिए।

अल्पसंख्यक और संरक्षण

विगत ८ अगस्त, १९४७ को विधान-निर्मातृ-समितिने अल्पसंख्यकोंके संरक्षणके सम्बन्धमें सिफारिशें करनेको सरदार पटेलकी अध्यक्षतामें एक सलाहकार-समिति बनाई थी। पहले इसने मुसलमानों, सिखों और परिगणित जातियोंके लिए संरक्षणों की सिफ़ारिश की थी। दिसंबर १९४८ में समितिने अपनी सिफ़ारिशें बदलकर केवल परिगणित जातियोंके लिए—जिनमें पिछड़ी हुई सिख-जातिके लोग भी शामिल हैं—फिलहाल १० वर्षों तकके लिए संरक्षणोंकी सिफ़ारिश की है। विधान-निर्मातृ-परिषद्में समितिकी रिपोर्टपर हुई बहससे ज़ाहिर है कि विचारशील सिखों और मुसलमानोंने—जो अल्पसंख्यक होनेके नाते विशेषाधिकारों और संरक्षणोंकी माँग किया करते थे—भी इसे पसंद किया है। सांप्रदायिक आधारपर पृथक निर्वाचन और संरक्षणोंका परिणाम हम देख चुके हैं। उस अप्रिय और खूनी इतिहासकी फिर कभी पुनरावृत्ति न हो, इस बातकी भरसक चेष्टा करनी चाहिए। चूँकि भारत एक गैरसांप्रदायिक प्रजातंत्र होने जा रहा है, सरकारको चाहिए कि वह जात-पाँत के भेद-भावको दूर करनेकी पूरी-पूरी चेष्टा करे। हरिजनोंकी शिक्षा और समाजमें उनकी स्थिति ऊँची करनेकी भी सरकारी और सार्वजनिक चेष्टा होनी चाहिए, ताकि १० वर्ष बाद 'हरिजन' या पिछड़े हुए होनेके नामपर किसीको संरक्षण माँगने या देनेकी ज़रूरत न पड़े। यह काम हमें चेष्टा करके करना है। जब तक देशका एक भी अंग कचा या पिछड़ा रहेगा, हम उसे किसी भी नामसे क्यों न पुकारें, स्वस्थ राष्ट्र वह कदापि नहीं कहा जायगा। राष्ट्रकी स्वस्थता हर व्यक्तिकी स्वस्थता, विकास और समान स्वतंत्रतासे बनती है।

कांग्रेसमें कार्यकर्त्ता कहाँ ?

पिछले महीने दिल्लीमें हुई कांग्रेसके अध्यक्षों और मंत्रियोंकी कान्फ्रेंसने तीन दिनकी बैठकोंके बाद तय किया कि उसके संगठनको अधिक मज़बूत और व्यापक बनाया जाय। उसने अनुशासनको अधिक कड़ा करने और स्त्रियों, किसानों तथा विद्यार्थियोंके सहकारी संगठन करनेका भी निश्चय किया। कांग्रेस-कमेटियों और प्रान्तीय सरकारोंके पारस्परिक संबंधोंके बारेमें भी उसने कुछ बातें तय कीं। इसके कुछ ही दिन बाद देहरादून में हुई कांग्रेस-महासमितिकी बैठकमें राष्ट्रपतिने कांग्रेसियोंमें अनुशासनहीनताकी शिकायत करते हुए कहा कि प्रान्तीय सरकारोंको कांग्रेसजनोंका यथेष्ट सहयोग नहीं मिल रहा है। सच तो यह है कि आज जब कांग्रेसके हाथमें सत्ता है, लगभग हर कांग्रेसी या तो पदके पीछे दौड़ता है या पदारूढ़ लोगोंसे लाभ उठाने-उठवानेकी चेष्टामें है। बापूजीका नाम आज व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि और अपनी दुर्बलता छिपानेको लिया जाता है। कांग्रेससे सत्तारूढ़ होनेके बादसे लोग या तो यह महसूस नहीं करते कि दरअसल काम करनेका समय अब आया है, या फिर समझ बैठे हैं कि सब-कुछ अपने-आप हो जायगा। रचनात्मक कार्योंकी बात करना एक अर्थहीन मज़ाक-सा हो गया है। जिन गाँवों और पिछड़ी जगहोंमें कार्यका बहुत बड़ा क्षेत्र है, वहाँ कोई जाकर काम नहीं करना चाहता। सबको आज उन शहरोंसे मोह हो गया है, जहाँ लीडरी, नौकरियाँ, ठेके, दलबंदियाँ आदि राजनीतिका रस बन रही हैं। इनमें से किसे चिन्ता है कि खाने, कपड़े और अन्य प्रकारके कष्टोंसे जनताका असंतोष बढ़ रहा है। यदि यह बढ़ता ही गया, तो एक दिन कांग्रेसका नाम इतिहासके पृष्ठोंमें ही रह जायगा। राष्ट्रपति अनुशासन कड़ा करनेकी बात कहते हैं। पर यह कौन किसपर लागू करेगा ? गत ६ मार्चको जब सरदार पटेल अपने पूर्वी पंजाबके दौरेके सिलसिलेमें अम्बालेमें कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओंकी एक मीटिंगमें बोलने जा रहे थे, तो एक कांग्रेसीने हँसकर उनसे कहा—'लेकिन यहाँ तो कांग्रेसी कार्यकर्त्ता हैं ही नहीं ! यदि होते, तो आज पंजाबकी यह दशा थोड़े ही होती।' पंजाब ही क्यों, समूचे देशके बारेमें यही बात कही जा सकती है। और कहाँ हैं कांग्रेसी कार्यकर्त्ता ? मध्य-भारत, राजस्थान, मद्रास, पश्चिमी बंगाल आदिमें पदोंके लिए जो कुत्ताफजीती हो

रही है, उससे बढ़कर कांग्रेसके लिए कलंक और बेइज्ज़तीकी बात और क्या हो सकती है ? इस फिज़ामें काम कौन करे, कहाँ और क्या ? पर कांग्रेसके कर्णधारोंको इस ओर ध्यान देना चाहिए तथा कागज़ी प्रस्तावोंसे आगे बढ़कर कांग्रेस-संगठनको सजीव, सक्रिय एवं व्यापक बनानेकी पर्याप्त चेष्टा करनी चाहिए ; नहीं तो कांग्रेस ही नहीं, देशका भविष्य भी अन्धकारमय हो सकता है।

हिन्दू-कोड-बिल और कांग्रेस

एक ओर कांग्रेसी सरकारें स्त्रियोंको गवर्नर, राजदूत, केन्द्रीय मंत्री, धारा-सभाओंकी सदस्या, संयुक्त राष्ट्रसंघकी प्रतिनिधि और शासनमें उच्च पद दे रही हैं और दूसरी ओर कांग्रेसके अध्यक्ष तथा विधान-निर्मातृ-परिषद्के सभापति हिन्दू-कोड-बिल-जैसे सामान्य सुधारोंसे भी अपनी असहमति प्रकटकर उसे स्थगित करनेकी बात कह रहे हैं ! वे नहीं जानते कि ऐसा करके वे न सिर्फ कांग्रेसकी प्रतिष्ठा और अनुशासनकी रही-सही भावनाको भी दफ़ना रहे हैं, बल्कि उन प्रतिक्रियावादी कुचक्रियोंके हाथ भी मज़बूत कर रहे हैं, जो धर्म, संस्कृति, नैतिकता, परिवार, सुख-शान्ति-जैसे सुहावने-लुभावने शब्दोंकी ओटमें आज भी नारीको अपने पाँवकी जूती बनाए रखना चाहते हैं। उनके इस तरहके अनधिकृत, अनुचित और अहितकर वक्तव्योंकी चर्चा हम पिछले अंकोंमें कर चुके हैं। वे भले ही बिलकी बातोंसे सहमत न हों, पर उन्हें भूल न जाना चाहिए कि देशके शिक्षित नारी-समाजकी उत्कट माँग और आवश्यकताको देखकर ही कांग्रेसी सरकारने उसे पेश किया है और देशका जाग्रत नारी-समाजने उसका हृदयसे स्वागत किया है। यही नहीं, बिलमें नारीको जिस तरहकी स्वतन्त्रता और समानता देनेका उल्लेख है, उसे एकाधिक बार गांधीजीने अपने भाषणों और लेखोंमें सर्वथा नैतिक और उचित माना है। मौजूदा केन्द्रीय सरकारकी स्वास्थ्य-मन्त्रिणी राजकुमारी अमृतकौर ने स्पष्ट कहा है कि यह बिल 'भारतीय महिलाओंको अनावश्यक सामाजिक रूढ़ियोंसे मुक्त करके अपने देशकी सेवा करने के लिए और अधिक स्वतन्त्रता प्रदान करेगा।' तो क्या राष्ट्रपति और विधान-निर्मातृ-समितिके सभापति नहीं चाहते कि नारियाँ अन्ध-परम्पराओं और घातक रूढ़ियोंसे मुक्त हों ? क्या वे नहीं चाहते कि वे देशकी अधिक सेवा करनेकी स्वतन्त्रता और सुविधा पावें ? अछूतोंकी ही भाँति जिस पीड़ित-शोषित नारीकी मुक्ति, स्वतंत्रता और समानाधिकारके लिए बापूने जीवन-भर कार्य किया, प्रेरणा दी और कांग्रेसमें उन्हें अग्र स्थान दिया ; आज अपने-आपको बापूजीके उत्तराधिकारी कहने और समझनेवाले कांग्रेसके ये उच्चाधिकारी ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे उनके कार्य और आदर्शको धूलमें मिलानेका कारण बनें, यह देश और कांग्रेसके लिए कम दुःख और लज्जाकी बात नहीं है। पर सन्तोषकी बात यही है कि कांग्रेसमें ऐसे लोग अधिक नहीं हैं, जो एक ही साँसमें राजनीतिक और आर्थिक स्वतन्त्रता एवं समानताकी माँग भी करें और सामाजिक प्रतिगामिता, अन्याय तथा अनीतिको क़ायम भी रखना चाहें। हमें विश्वास है, कांग्रेसी सदस्योंका बहुमत इस सामान्य-से बिलको व्यर्थ ही खटाईमें न पड़ने देगा।

सामाजिक क्रान्तिकी आवश्यकता

कलकत्तेमें मईके अन्तिम सप्ताहमें हुए सामाजिक क्रान्ति-सम्मेलनके नाम भेजे गए अपने संदेशमें राजकुमारी अमृतकौर ने कहा है—"मुल्ककी आज़ादीका हमारे लिए कोई अर्थ नहीं होगा, अगर हम हर क्षेत्रमें सुव्यवस्था नहीं लाते। हर समाज आज बेकार हुए रीति-रिवाजोंकी रूढ़ियोंकी दासतासे बेज़ार है। आजकी गतिशील दुनियामें हम एक ही जगह चिपके नहीं रह सकते। अतः हमें दृढ़तासे समाज-सुधारकी गतिको बढ़ाना चाहिए, ताकि हमें ग़ुलाम बनाने और हमारे विकासको रोक रखनेवाले अन्यायों और असमानताओंसे समाजको नजात मिले।" श्री बी० जी० खेरने कहा है—"पर्देको तुरन्त हटाया जाना चाहिए।" जयपुरकी महारानी गायत्रीदेवीजीने कहा है—"देशके राजनीतिक विकासके साथ ही समाज-सुधार भी होना चाहिए। अब जब कि हमें स्वराज्य मिल गया है, हमें उन सब रूढ़ियों, अन्ध-परम्पराओं और अनुपयोगी रीति-रिवाजोंको त्याग देना चाहिए, जो हमारी दृष्टि और संस्कृतिको संकीर्ण बनाते हैं। ये रूढ़ियाँ हमें एक ऐसी जीवनसे बाँध रखती हैं, जो युग-धर्मके अनुकूल नहीं और न ही समाजको ऊँचा उठाने तथा अधिक सुखी बनानेमें सहायक हैं। पर्दा, बाल-विवाह और स्त्रियोंकी निरक्षरता इसी श्रेणीमें आती हैं।" लगभग ऐसे ही सन्देश अन्य कई गण्य-मान्य व्यक्तियोंसे भी आए हैं। सम्मेलनके अध्यक्ष तथा स्वागताध्यक्षके भाषणों और सम्मेलनमें पास हुए प्रस्तावोंसे स्पष्ट है कि आज देशकी नई पीढ़ी पर्दे-जैसी जंगली और अमानुषिक प्रथा, विवाहमें लड़के-लड़कीकी परतंत्रता तथा आडम्बर और फ़िज़ूल

खर्चों, स्त्री-पुरुषकी असमानता और नारीकी परतंत्रता तथा धर्म, संस्कृति और समाजके नामपर उसके साथ होनेवाले अन्याय-अनीतिको सहन करने तथा क़ायम रखनेको एक पलके लिए भी तैयार नहीं। इन अन्यायों, अनीति, अन्ध-परम्पराओं, अनावश्यक और अहितकर रूढ़ियोंको उखाड़ फेंके बिना समाजका स्वस्थ और स्वाभाविक विकास सभव ही नहीं। और बिना सामाजिक क्रांतिके राजनीतिक एवं अर्थनीतिक विकास और स्वस्थता कभी संभव ही नहीं। क्या हम आशा करें कि नई पीढ़ीके युवक और युवतियाँ देशके प्रत्येक नगर-ग्राममें सामाजिक क्रांति-सम्मेलनकर इस बातकी प्रतिज्ञा करेंगे कि वे कम-से कम अपने जीवनमें जात-पाँत, दहेज, लेन-देन, पर्दा, बिना पसंद और स्वीकृतिकी शादियाँ आदि नहीं करेंगे और न किसी प्रकारका ऊँच-नीच या बड़े-छोटेका भेद ही बरतेंगे। इसके बिना कोरी राजनीतिक स्वतंत्रताका सर्व-साधारणके लिए कोई अर्थ नहीं।

समाज-सेवा और स्त्रियाँ

भारतमें इतनी समस्याएँ और इतना काम है कि अकेली सरकार चाहे, तो भी उन सबको नहीं कर सकती। इस दिशा में अन्यान्य देशोंकी तरह ही भारतीय महिलाएँ भी बहुत-कुछ कर सकती हैं। पिछले दिनों बम्बईमें मनाए गए समाज-सेवा-दिवस पर बोलते हुए प्रान्तके प्रधान-मंत्री श्री खेरने कहा—"देशके सामने गरीबी, अस्वस्थता, निरक्षरता, सामाजिक विषमताएँ एवं रूढ़ियाँ और हमारी दृष्टि तथा मनोवृत्तिको संकीर्ण बनानेवाली अनेक अनीतिकर एवं हानिकर प्रवृत्तियाँ हैं, जिनसे समाजको मुक्त करना है। देशकी आज़ादीके बाद अब इस ओर ध्यान देना आवश्यक हो गया है। समाज-सेवा भारतका प्राचीन आदर्श रहा है, पर आज हम वह भावना नहीं देखते। नैतिक दृष्टिसे हम बहुत गिर गए हैं। अतः इस दिशामें सामूहिक एवं संगठित प्रयत्न होना चाहिए।" कलकत्तेमें मनाए गए इस दिवस पर बोलते हुए पश्चिमी बंगालके रिलीफ़-मंत्री श्री मैतीने कहा—"प्राचीन भारतमें समाज-सेवाका आदर्श था। इस युगमें गांधीजीने इसे प्रोत्साहन दिया। भारतीय परम्पराके अनुसार उन्होंने धर्म और राजनीतिका चरम लक्ष्य मानव-सेवाको ही बनाया।" आजके पूँजीवादी युगमें आदर्श और नैतिकता हमारे जीवनमें गौण होते जा रहे हैं, अतः उनकी बात हम नहीं कहते। परसम्पन्न घरोंकी शिक्षित महिलाएँ, जिन्हें न जीविकोपार्जनकी चिन्ता है और न अपने घर-गृहस्थीका ही कोई विशेष काम करना पड़ता है, अपने खाली समयके सदुपयोग एवं सात्त्विक सुख-सन्तोषके लिए समाज-सेवाको अपना सकती हैं। सरकारकी अपेक्षा वे अनेक समाज-सेवा-कार्य अधिक पटुता, लगन और ठोसपनके साथ कर सकती हैं। अन्यान्य देशोंमें समाज-सेवाका अधिकांश कार्य महिला-स्वेच्छासेविकाएँ ही करती हैं। भारतमें तो उच्च अंगरेज़ अफ़सरों और धनाढ्य लोगोंकी स्त्रियोंने इस दिशामें बहुत-कुछ किया है। क्या हम आशा करें कि हमारी शिक्षित बहनें इस ओर विशेष ध्यान देंगी?

महिलाओंका युद्ध-विरोधी प्रदर्शन

अनेक देशोंके इतिहासमें महिलाओं द्वारा जहाँ-तहाँ युद्ध-विरोधी-प्रदर्शनोंका उल्लेख मिलता है; क्योंकि पति, पुत्र, सगे-संबंधियों और घर-सम्पत्तिके विनाशके रूपमें नारीको ही युद्धकी विभिषिकाका सबसे निकृष्ट शिकार बनना पड़ता है। पिछले महीने जब केन्द्रीय लन्दनकी लुडगेट-हिलके पास ब्रिटिश सेना युद्ध समाप्तिकी चौथी वार्षिकी मना रही थी, तो बहुत-सी स्त्रियोंने युद्ध-विरोधी प्रदर्शन किए। उनके पोस्टरोंपर लिखा था—'हम युद्ध नहीं चाहतीं!' इसके उत्तरमें उन्हें मिले घुड़सवार पुलिसके डंडे! और सेनाकी परेड निर्विघ्न हुई!!

स्त्रियोंकी शिक्षा-दीक्षा

पिछले महीने कन्या-गुरुकुल, देहरादूनमें दीक्षान्त भाषण देते हुए युक्त-प्रान्तके शिक्षा-मंत्री बाबू संपूर्णानन्दजीने कहा—"स्त्री-शिक्षाके सम्बन्धमें दो विचार-धाराएँ हमारे देशमें चल रही हैं। एक ओर उन लोगोंके स्वप्न या विचार हैं, जिनके सामने अस्पष्ट रूपसे प्राचीन भारतका आदर्श उपस्थित है। उनमें से इस समय भी कुछ ऐसे रूढ़िवादी लोग हैं, जो स्त्रीके लिए कामचलाऊ शिक्षाको ही पर्याप्त समझते हैं और जनताके सम्मुख सावित्री, गार्गी आदिका नाम प्रस्तुत करते हैं। वे पातिव्रत्य आदि धर्मके पालनमें उच्च शिक्षाको कोई विशेष स्थान नहीं देते। परन्तु उनका यह विचार अव्यवहार्य तथा अनुचित है। स्त्रीको भी प्रकृतिप्रदत्त बुद्धि तथा रुचिका विकास करनेका पूर्ण अधिकार है। प्राचीन कालसे सभी शास्त्रोंमें स्त्रियोंका अधिकार था। आज भी वैसा ही करना होगा। हमें यह समझ लेना चाहिए कि न तो हम प्राचीन कालको ज्यों-का-त्यों ला सकते हैं और न ही वर्तमानका अपलाभ कर सकते हैं। इस समय हमें सर्वतोमुखी समन्वयकी आवश्यकता है।...दूसरी पद्धतिको हम अर्वाचीन कह सकते हैं। अभी तक इसके सामने

कोई आदर्श न था। यह लड़कोंकी शिक्षाका अनुकरण-मात्र था। परन्तु अधिकांश स्त्रियोंके जीवनक्रम पुरुषोंके जीवनसे भिन्न होनेके कारण अब उनकी शिक्षामें परिवर्त्तन करनेका विचार हो रहा है। विज्ञान आदि विषयोंके साथ-साथ यदि स्त्री को सुगृहिणी बननेकी शिक्षा न दी गई, तो उसकी शिक्षा अधूरी होगी। हमारे स्कूलोंकी कन्याएँ अपने देशकी कथा-कहानियोंसे सर्वथा अपरिचित हैं। ये कथाएँ आर्य-जातिके आदर्शों व आकांक्षाओंके मर्मस्पर्शी चित्र हैं। यदि इसका उपाय न किया गया, तो एक ही पीढ़ीमें यह स्रोत सूख जायगा।"

माननीय सम्पूर्णानंदजीके विचारोंकी ओर हम देशके मनीषी शिक्षणशास्त्रियोंका ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं। आजकी स्त्री-शिक्षा लड़कोंके शिक्षाक्रमकी अधूरी नक़ल-मात्र है। उसे इतने दिनों तक पता नहीं कैसे लड़कियोंके गले उतारा जाता रहा, मानो उनके जीवनका उद्देश्य भी क्लर्की हो! यही कारण है कि इस भौंड़ी किताबी शिक्षाने न तो नारीके मन-मस्तिष्क और व्यक्तित्वका ही विकास किया और न उसे बदलते हुए ज़मानेके अनुरूप ही बनाया। आज जो पढ़ी-लिखी लड़कियोंमें पचासों दोष ढूँढ़ते हैं, उन्हें इस तथ्यको भूल न जाना चाहिए। पर अब हमें नए सिरेसे स्त्री-शिक्षाकी योजना बनानी चाहिए, जिसमें आवश्यक किताबी शिक्षाके साथ शारीरिक शिक्षा, गृह-कार्य, सेवा-सुश्रूषा, प्राथमिक चिकित्सा, नृत्य-संगीत, समाज-सेवा, सेक्स और शिशु-पालन आदि व्यावहारिक विषयोंकी शिक्षा भी दी जाय। जिनमें प्रतिभा और रुचि हो, उन्हें अभिलषित विषयकी उच्च शिक्षा एवं शोध-कार्य करनेकी पूरी स्वतंत्रता एवं सुविधा मिलनी चाहिए। अच्छा हो यदि इस शिक्षाक्रमको तैयार करनेका काम सरकार कुछ उच्च शिक्षाप्राप्त महिलाओंकी एक समितिके सुपुर्द करे।

विश्व-समस्याएँ और नारी

संयुक्त राष्ट्रसंघकी जनरल असेंबलीकी भारतीय सदस्या और अखिल-भारतीय महिला-कान्फ्रेंसकी उपाध्यक्षा श्रीमती रेणुका रायने गत २१ मईको लन्दनमें भारतीय महिलाओंकी एक सभामें कहा —'मेरा विश्वास है कि यदि संयुक्त राष्ट्रसंघकी जनरल असेंबली और उसकी विविध समितियोंमें अधिक महिलाएँ रहें, तो विश्व-समस्याओंको अधिक मानवीय ढंगसे हल किया जा सकता है। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि असेंबलीमें ५८ देशोंके प्रतिनिधियोंमें से केवल ४ महिला-प्रतिनिधि हैं और २ या ३ एवज़ी प्रतिनिधि। मैं यह नहीं कहती कि स्त्रियोंको सिर्फ़ इसलिए प्रतिनिधि बनाकर भेज दिया जाय कि वे स्त्रियाँ हैं; बल्कि स्त्री होनेके नाते उनकी योग्यता और क्षमताको कम न कूता जाय। मेरा तो विश्वास है कि यदि लेक सक्सेसमें अधिक महिला प्रतिनिधि हों, तो दुनियामें ज़्यादा सुख-शान्ति हो सकती है।" अन्तमें आपने भारत-सरकारसे संयुक्त राष्ट्रसंघमें अधिका-धिक महिला-प्रतिनिधि भेजनेका अनुरोध किया। हम श्रीमती रायके मतसे सर्वथा सहमत हैं और सरकारसे अनुरोध करेंगे कि वह शिक्षित महिलाओंकी शक्ति, योग्यता और क्षमताका अधिकाधिक लाभ उठाय। महिलाओंको भी इस दिशामें अधिक सजग और सचेष्ट होना चाहिए।

पुलिस और फौजमें स्त्रियाँ

रेल, तार, डाक, टेलीफ़ोन, अस्पताल, शिक्षणालय, दफ़्तर आदिके साथ ही अब पुलिस और फौजमें भी भारतीय महिलाएं ली जाने लगी हैं। यह एक शुभ लक्षण और बदलते हुए युगके प्रति हमारी जागरूकताका प्रमाण है। इन विभागोंमें महिलाओं के जानेसे जहाँ सामान्य कामोंसे छुट्टी पाकर अधिक पुरुष बड़े कामोंके लिए मिलेंगे, वहाँ स्त्रियोंमें आत्म-विश्वास, दृढ़ता, साहस और स्वावलम्बनके रूपमें सच्ची स्वतंत्रता आयगी और वे समाज के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होंगी। दुर्भाग्यवश अब तक हमारे देशमें नारीको दुर्बल, परमुखापेक्षी और असूर्यम्पश्या बनाकर रखा गया है। अतः शुरू-शुरूमें स्त्रियोंको स्वावलम्बन की ओर क़दम बढ़ानेमें बड़ी विरोध-बाधाओंका सामना करना पड़ेगा। पर हमें विश्वास है कि आजकी युवती मिथ्या भय, कल्पित खतरों और प्रतिष्ठाकी अतिरंजित भ्रांतिमें अपने-आपको धोखा न देकर साहस और दृढ़ताके साथ जीवनके विविध क्षेत्रों में क़दम बढ़ायगी। पुलिस और फौजकी नौकरीसे अर्थ-प्राप्ति के साथ ही उसमें समयकी पाबन्दी, व्यवस्थित कार्य-प्रणाली और अनुशासनकी भावना आयगी, जो भविष्यके पारिवारिक और सामाजिक जीवनके लिए आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

हिन्दू-महासभा फिर राजनीतिमें

अपना एक आठ उद्देश्योंका आकर्षक-सा राजनीतिक और अर्थनीतिक कार्यक्रम प्रकाशितकर हिन्दू-महासभाने फिर राजनीतिक क्षेत्रमें प्रवेश करनेकी घोषणा की है। इस कार्यक्रम में ऐसी कोई बात नहीं, जो उसकी साम्प्रदायिक संकीर्णताका आभास दे; पर इससे उसके भविष्यका आभास तो मिल ही

सकता है। सबसे ज़्यादा उसे शिकायत है नागरिक स्वतंत्रता के अपहरणसे ; पर साथ ही वह सरकारके कम्युनिस्ट-विरोधी अभियानमें भी सहयोग देनेको तैयार है ! इन शब्दोंके पीछे राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघके काम और नामको छिपानेका असाधारण, किन्तु असफल कौशल देख पड़ता है। स्वस्थ जनतंत्रके विकासके लिए विरोधी-दलोंका महत्त्व असाधारण है। पर क्या हिन्दू-महासभा वह कार्य कर सकेगी ? क्या वह ग़ैर-साम्प्रदायिक प्रजातंत्रके शासनकी बागडोर सम्हाल सकती है ? इस बातसे हम इन्कार नहीं करते कि उसमें भी योग्य आदमियों की कमी नहीं। उनमें से बहुतोंकी राष्ट्रभक्ति और ईमानदारीमें भी हमें संदेह नहीं। पर उनका दृष्टिकोण भारतके लिए हानिकर रहा और आज़ाद हिन्दके लिए भी कम घातक नहीं होगा। धर्म और संस्कृतिके नामपर उसके नेता भोले और अपढ़ हिन्दुओंको ठगनेमें भले ही सफल हों ; पर समूचे देशको तो वे ग़ारत ही करेंगे। अतएव विवेकशील व्यक्तियोंसे हम अनुरोध करेंगे कि वे सांप्रदायिकताके इस मनहूस ख़तरेको फिर सिर न उठाने दें।

प्राचीन हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ

युक्तप्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके आठवें अधिवेशनके अवसरपर प्राचीन कालकी ३०० हिन्दी हस्तलिखित प्रतिलिपियों की प्रदर्शनीका उद्घाटन करते हुए आचार्य नरेन्द्रदेवने कहा—भारत-सरकार प्राचीन कालीन भारतीय हस्तलिखित प्रतिलिपियों को संग्रह करनेके लिए आन्दोलन आरम्भ करे। उन्होंने कहा कि सदियों पूर्व ये प्रतिलिपियाँ खोई गई थीं ; किन्तु अब ये चीन, ब्रिटेन, इटली तथा तिब्बत आदि देशोंमें हैं। बहुत-सी हस्त-लिखित प्रतिलिपियाँ, जो विदेशी विद्वानों व विद्यार्थियों द्वारा भारतीयोंकी अज्ञानता तथा पथ-भ्रष्टताके कारण यहाँसे ले जाई गई थीं, अब भी लन्दन तथा अन्य स्थानोंके अजायबघरोंमें मिलती हैं। संस्कृत तथा पालिमें लिखी गई पुस्तकें सदियों पूर्व भारतमें प्राप्त नहीं थीं, यद्यपि छान-बीन करनेपर तिब्बतके मठों तथा चीन व जापानमें उनके अनुवाद अब भी मिल सकते हैं। यदि इन देशोंसे ये प्रतिलिपियाँ प्राप्त न हो सकें, तो कम से कम उनके फोटो या उनकी नक़ल प्राप्त की जानी चाहिएँ।

पंडित कृष्णाराम मेहता

का गत मास ७० वर्षकी अवस्थामें 'लीडर' पढ़ते-पढ़ते हृदयकी गति रुक जानेके कारण देहावसान हो गया। स्व० चिन्तामणि के साथ मिलकर आपने 'लीडर'की नींव डाली और ३६ वर्ष तक उसके संचालक-संपादक रहे। यद्यपि आप गुजराती-भाषा-भाषी और अंगरेज़ीके पत्रकार थे, पर आपने ही सर्वप्रथम लीडर प्रेससे 'भारत' निकाले जानेका स्वागत किया। लीडर प्रेससे बादमें अनेक उपयोगी हिन्दी-ग्रन्थोंका प्रकाशन हुआ। आप ही की प्रेरणासे सर्वप्रथम 'लीडर'में हिन्दी-पत्रोंके अग्रलेखों का सारांश जाने लगा। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा और हिन्दू-विश्वविद्यालयकी स्थापनामें भी आपका हाथ था। उदार विचारोंके होनेके कारण आपने सम्पादन-कार्यमें जिस सहिष्णुता, संयम, निष्पक्षता और विशाल हृदयताका परिचय दिया, उनके कारण 'लीडर' और आप सदा आदरके साथ याद किए जाते रहेंगे।

सर मनोहरलाल

के निधनके रूपमें पंजाबने अपना एक बहुत बड़ा अर्थनीति-विशारद और मूक सेवक खो दिया। १९३५ के इंडिया-ऐक्टके मातहत पंजाबमें बनी पहली स्वशासित प्रान्तीय सरकारके अर्थ-मंत्रीके रूपमें आपने जो-कुछ किया, उसके लिए पंजाब आपको कभी भुला नहीं सकेगा। बिना किसीके दिखावे या प्रचार-प्रोपेगंडाके आपने छुआछूत और ऊँच-नीचका जिस सक्रिय रूपसे विरोध किया, वह आपके मानसकी उच्चताका परिचायक है।

संचालकः
नया समाज-ट्रस्ट

संपादक
मोहनसिंह सेंगर

वर्ष १: खंड १] [अंक १—६

जनवरीसे जून १६४६ तककी विषय-सूची

हालैण्ड

बंगाल-बर्मा लाइन

माल लाने-ले जानेकी नियमित सर्विस

कलकत्ता और चटगाँवसे हर महीनेमें दो बार स्वेज, पोर्ट सईद, जिनोआ, मार्सेल्ज़, बोलोन और स्पेन तथा भूमध्य-सागरके बंदरगाहों

एन्टवर्प, राटर्डम,

एम्सटर्डम, हाम्बुर्ग, गिडोनिया बंदरगाहोंके लिए जहाज़ चलते हैं और स्केण्डीनेवियाके बंदरगाहों, सेंटोज़, रियो तथा रिवर-प्लेट पोर्ट्स तक माल पहुंचनेकी भी व्यवस्था है।

एजेण्ट :

जावा-बंगाल लाइन

२७ डलहौज़ी स्क्वायर,

कलकत्ता-१

टेलीफोन नं०—कलकत्ता : ४४०, ४४१, ४४२ और ४४३

गांधी-साहित्य

'मंडल' द्वारा गांधीजी के सम्पूर्ण साहित्य-प्रकाशन की
योजना के अन्तर्गत पहली पुस्तक

प्रार्थना-प्रवचन

दो खण्डोंमें प्रकाशित हो चुकी है। सुन्दर छपाई, बढ़िया काग़ज़ और आकर्षक जिल्द, २२४ प्रवचन, ८५० पृष्ठ, मूल्य केवल ५॥)

इन पुस्तकों का हिन्दी जगत में हार्दिक स्वागत हुआ है। कुछ विद्वानों और लोक-नेताओं की सम्मतियाँ देखिये :

आचार्य विनोबा

"बापू के प्रार्थना-प्रवचन की आवृत्ति, जो आपने प्रकाशित की है, देखी। अल्पमोली और बहुगुणी है। बापू के विचार लोगोंमें फैलानेका उत्तम उपाय उनके साहित्यको, उन्हींकी भाषामें और बिना किसी भाष्यके प्रगट करना है। और वही आपने किया है। यह आपने एक भगवद् उपासना की है।"

डा० राजेन्द्रप्रसाद

"मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि 'सस्ता साहित्य-मंडल' ने गांधी-साहित्य-माला निकालनेका विचार किया है और दो ग्रन्थ निकाल भी दिये हैं, जिनमें दिल्ली में दिये हुए उन प्रवचनोंका संग्रह है जो महात्माजी प्रार्थना के बाद दिया करते थे। ये प्रवचन यथासाध्य उनके ही शब्दोंमें दिये गये हैं। और यह इनकी बड़ी विशेषता है। गांधी-साहित्य का प्रचार होना चाहिए। और यह प्रयत्न उस प्रचार में सहायक होगा, यह मेरा विश्वास है। मैं संचालकों को बधाई देता हूं कि उन्होंने यह प्रशंसनीय और आवश्यक संकल्प किया है और उसकी पूर्ति भी आरम्भ हो गई है।"

श्रीकृष्णदास जाजू

"गांधीजी ने आखिरी करीब दो बरसोंमें प्रार्थना के साथ जो प्रवचन किये थे, उनका संग्रह इन भागोंमें किया गया है। भारतकी उस समयकी दशाका ख्याल करके जो बातें अत्यन्त उपयुक्त थीं, वे बतलाई गई हैं। उनकी उम्रका वह समय भी ऐसा था कि जब उनकी प्रज्ञा परिणत दशाको पहुंच चुकी थी और भारत को अत्यन्त आवश्यक विषय पर वे संदेश दे रहे थे। यह संदेश सदा के लिए उपयोगी साबित होगा। इसलिए सबको ये प्रवचन बहुत ध्यानपूर्वक पढ़ने चाहिएं। प्रकाशकों ने इसकी कीमत यथासम्भव कम-से-कम रखी है। पाठकोंको इसका पूरा लाभ उठाना चाहिए। छपाई-सफाई अच्छी है।"

गांधी-साहित्य के आगामी प्रकाशन :

१. अनासक्तियोग, गीता-बोध, मंगल-प्रभात (एक जिल्द में)
२. अनीति की राह पर
३. आज़ादी के बाद (१५ अगस्त १९४७ से लेकर २९ जनवरी १९४८ तक के लेखों का संग्रह)

विशेष जानकारी के लिए लिखें—

व्यवस्थापक,
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

क्या कभी आपने गौर किया है
कैसे गैस मैण्टल जलता है
गैस बत्तीकी नालीसे होकर उसके मुँहके चारों ओर लगी थैलीनुमा जालीमें आक्सीजन पहुँचता है और इसीके जलनेसे रोशनी होती है। अगर बत्तीकी यह नाली भर जाय अथवा जालीके छिद्र काजलसे रूँध जायँ, तो यह पूर्णतया प्रज्वलित नहीं हो सकेगी और उसी अनुपातमें रोशनी भी धीमी होगी। इसकी जाँच-पड़तालके लिये ओरियण्टल गैस कम्पनी लि० और कलकत्ता कारपोरेशनने, जो कलकत्तेकी सार्वजनिक रोशनीके लिये जिम्मेदार है, क्रमशः अपने-अपने क्षेत्रमें काफी सुव्यवस्था कर रखी है, फिर भी जब-तब ये धीमी हो ही जाती हैं।
(क्या जनता नगरको पूर्णतया प्रकाशमय रखनेमें सहायता करेगी ?)
आम रास्तोंकी बत्तियों के सम्बन्धमें कलकत्ता-कार्पोरेशनको रिपोर्ट कीजिये
★
मैदानकी बत्तियों के लिये ओरियण्टल गैस कं० लि० को सूचित कीजिये
दि ओरियण्टल गैस कम्पनी लिमिटेड,
(इंग्लैंडमें संगठित)
आफिस : १२-ए, पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता ★ कारखाना : केनाल वैस्ट रोड, कलकत्ता

भँवरमल सिंघी द्वारा रत्नाकर प्रेस, कलकत्तामें मुद्रित और 'नया समाज'-कार्यालय, ३३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्तासे प्रकाशि

जनवरी, १९५०

मैनेजिंग एजेण्ट्स :—मेसर्स सेकसरिया सन्स लि०, सेकसरिया चैम्बर्स, १३९, मीडोस स्ट्रीट, फोर्ट, बम्बई

क्या कभी आपने गौर किया है
कैसे गैस मैण्टल जलता है
गैस बत्तीकी नालीसे होकर उसके मुँहके चारों ओर लगी थैलीनुमा जालीमें आक्सीजन पहुंचता है और इसीके जलनेसे रोशनी होती है। अगर बत्तीकी यह नाली भर जाय अथवा जालीके छिद्र काजलसे रूँध जायँ, तो यह पूर्णतया प्रज्वलित नहीं हो सकेगी और उसी अनुपातमें रोशनी भी धीमी होगी। इसकी जाँच-पड़तालके लिये ओरियण्टल गैस कम्पनी लि० और कलकत्ता कारपोरेशनने, जो कलकत्तेकी सार्वजनिक रोशनीके लिये जिम्मेदार है, क्रमशः अपने-अपने क्षेत्रमें काफी सुव्यवस्था कर रखी है, फिर भी जब-तब ये धीमी हो ही जाती हैं।
(क्या जनता नगरको पूर्णतया प्रकाशमय रखनेमें सहायता करेगी ?)
आम रास्तोंकी बत्तियों
के सम्बन्धमें कलकत्ता-कार्पोरेशनको रिपोर्ट कीजिये
मैदानकी बत्तियों
के लिये ओरियेण्टल गैस कं० लि० को सूचित कीजिये
दि ओरियण्टल गैस कम्पनी लिमिटेड
(इंगलैण्डमें संगठित)
आफिस : १२-ए, पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता ★ कारखाना :
कलकत्ता

हर बीमारी में हर समय काम आनेवाली सुप्रसिद्ध औषधि

सत्यजीवन

पूरे ब्यौरेके लिये लिखें—

प्रतापमल गोविन्दराम

११६, खेंगरापट्टी कलकता।

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

१. **भारतमें विवेकानन्द**—मूल्य ५) रु०।

२. **श्रीरामकृष्णवचनामृत**—अनु० 'निराला', तीन भागोंमें, प्रथम भाग, मूल्य ६) रु०, द्वितीय भाग, मूल्य ६) रु०, तृतीय भाग, मूल्य ७॥) रु०।

३. **श्रीरामकृष्णलीलामृत** (विस्तृत जीवनी)—पं० द्वारकानाथ तिवारी, दो भागोंमें, प्रत्येक भागका मूल्य ५) रु०।

४. **विवेकानन्द-चरित**—श्री मजूमदार, मूल्य ६) रु०।

५. **विवेकानन्दजोके संगमें** (वार्तालाप)—श्री शरच्चन्द्र, मूल्य ५।) रु०।

स्वामी विवेकानन्द कृत—पत्रावली (दो भागोंमें), प्रत्येक भागका मूल्य २=) ; महापुरुषोंकी जीवनगाथाएँ १।) ; राजयोग १=) ; स्वाधीन भारत! जय हो! १=) ; कवितावली ॥=) ; ईशदूत ईसा ।=) ; भारतीय नारी ॥।) ; शिक्षा ॥=) ; धर्मरहस्य १) ; मेरी समरनीति ।≡) ; धर्मविज्ञान १॥=) ; मेरा जीवन तथा ध्येय ॥) ; मरणोत्तर जीवन ॥) ; श्रीरामकृष्ण धर्म तथा संघ ॥=) ; कर्मयोग १॥=) ; हिन्दू-धर्म १॥) ; प्रेमयोग १।=) ; भक्तियोग १।=) ; आत्मानुभूति १।) ; परिव्राजक १।) ; प्राच्य और पाश्चात्य १।) ; शिकागो-वक्तृता ॥=) ; मेरे गुरुदेव ॥=) ; हिन्दूधर्मकेपक्षमें ॥=) ; वर्त्तमान भारत ॥) ; पवहारी बाबा ॥) ; विवेकानन्दजीकी कथाएँ १।) ; श्रीरामकृष्ण उपदेश ॥=)।

श्रीरामकृष्ण आश्रम, (न), धन्तोली, नागपुर-१, सी० पी०

कलकत्ता क्रेडिट कारपोरेशन लि०

SWADESHI COTTON MILLS Co. LTD CAWNPORE
स्वदेशी कॉटन मिल्स कम्पनी लि० कानपुर
INDIA
लाहौर
कलकत्ता
कानपुर
बम्बई
मद्रास
मैनेजिंग एजेन्ट्स
जैपुरिया ब्रदर्स
लिमिटेड
K.P.C. Ltd.
J.B.19

जेमिनीका
निशान

संचालक
नया समाज-ट्रस्ट

नया समाज

सम्पादक
मोहनसिंह सेंगर

(स्वतंत्र विचारोंका सचित्र हिन्दी-मासिक)

विषय-सूची : जनवरी, १९५०

वार्षिक ८)] 'नया समाज' कार्यालय, ३३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१ [इस अंकका मूल्य ।||)

वर्ष २ : खंड २]   कलकत्ता, जनवरी, १९५०   [अंक १ : पूर्णाङ्क १६

शान्तिवादियोंसे

श्री 'भग्नहृदय'

तुम शान्ति चाहते हो, इसलिए शान्तिवादका प्रचार करना चाहते हो ? तुम्हें युद्धसे विरक्ति है, इसलिए तुम युद्ध-मात्रका विरोध करते हो, उससे असहयोग करते हो । पर तुमने कभी यह भी सोचा है कि विरक्ति ही तो विराम नहीं है, विरोध और असहयोग ही तो शान्तिके सोपान नहीं हैं। युद्धोंका निषेध शान्तिका ज़रिया हो सकता है । लक्ष्य तो जीवनका वह विधान ही होगा, जिसमें युद्धको पनपनेके कारण ही न बनें। जीवनका ऐसा विधान निर्माण करना ही शान्तिका लक्ष्य होना चाहिए, और इस लक्ष्यकी प्राप्तिमें युद्ध, विरोध, संघर्ष और शान्ति अवश्यम्भावी हैं । इनसे बचनेके लिए शुतरमुर्गकी तरह अपनी आँखें बन्द करके आत्मवादी और आत्म-कल्याणी बन सकते हो ; पर इस नीतिसे क्या युद्ध कभी बन्द हुए हैं, या अब होंगे ? शान्तिवादी बनने और कहलवानेका सन्तोष तुम चाहे पा सको ; पर शान्तिका विधान सफल नहीं होगा ।

मानव-जातिके हज़ारों वर्षोंके पुराने इतिहासमें तुम्हारे-जैसे शान्तिवादियोंका सर्वथा अभाव तो कभी भी नहीं था ; पर युद्ध कभी बन्द नहीं हुए, क्योंकि मानव द्वारा मानवका शोषण कभी बन्द नहीं हुआ । शान्तिवादियोंने युद्धकी निन्दा की, युद्धमें सहयोग नहीं दिया, युद्धकी पीड़ा अनुभव की, युद्धमें मरनेवाले लोगोंके प्रति समवेदना भी महसूस की ; पर मानव-जातिके इतिहासपर यह प्रश्नचिह्न आज भी खड़ा है कि युद्धोंको अनिवार्य बनानेवाले शोषणको बन्द करनेके लिए उन्होंने क्या किया ? जिस समाज-व्यवस्था और राज्य-व्यवस्थाने शोषणको प्रोत्साहन दिया और युद्धकी आवश्यकताको बढ़ाया, उसे बदलनेके लिए किए हुए प्रयत्नोंका कुछ भी इतिहास है ? गांधीके इतिहासको अपना इतिहास न कहना । वह तुम्हारे-जैसा शान्तिवादी नहीं था, अवश्य नहीं था—चाहे तुम कितना ही सेवाग्रामके आश्रममें सम्मिलित होकर प्रस्ताव पास करो और गांधीके सन्देशवाहक बननेका प्रयत्न करो । सेवाग्राम संघर्षकी भूमि रहा है । गांधीका जीवन संघर्ष—निरन्तर संघर्ष—का जीवन रहा है । उसने शान्तिवादका उपदेश नहीं दिया, वैषम्यके अंगारोंको शान्तिवादकी राखसे ढँकनेकी कोशिश नहीं की ; बल्कि वैषम्यको उत्पन्न करनेवाली शक्तियोंसे संघर्ष करके मानव-जीवनको शोषणमें जलनेसे बचानेकी लघु चेष्टा की । गांधी वैसा शान्तिवादी नहीं था, जैसे कि तुम हो ! उसकी अहिंसामें पलायनवादकी कायरता और निर्बलता नहीं थी—उसने कभी संघर्षसे बचनेकी कोशिश नहीं की । उसने समाजमें फैली हुई हिंसाको बन्द करनेके लिए संघर्ष किया, ऊपर-ऊपरसे अहिंसाको थोपनेकी कोशिश नहीं की। अहिंसाको उसने संघर्षसे भागनेका नहीं, लड़नेका शस्त्र बनाया और व्यवहार किया । अहिंसक प्रतिकार और युद्धकी विधि उसने समाजको दी ।

अपने जीवनमें हर प्रकारकी हिंसाका परिहार रखकर जीना ही अहिंसा नहीं है । मानव-सृष्टिकी समग्र व्याप्तिमें

हिंसाकी ताकतोंसे लड़कर जीवनका अहिंसक विधान खड़ा करना ही अहिंसाकी सच्ची प्राप्ति है। हर समाजमें ही ऐसे लोग हुए हैं और आज भी हैं, जो शान्ति चाहते हैं, किसी प्रकारका शोषण नहीं करते, अशान्ति और विग्रहके कारण नहीं बनते। पर जीवनका अहिंसक स्वरूप इतने तक ही तो सीमित नहीं। उसे तो समाजमें फैले हुए शोषण, विग्रह और अशान्तिके कारणोंको दूर करनेके लिए लड़ना है। गांधीजीकी अहिंसाके सम्बन्धमें कहा गया है—"अहिंसक विरोध अहिंसक, प्रतिकार या अहिंसक संघर्ष उनकी अहिंसाका सच्चा स्वरूप है। अहिंसक
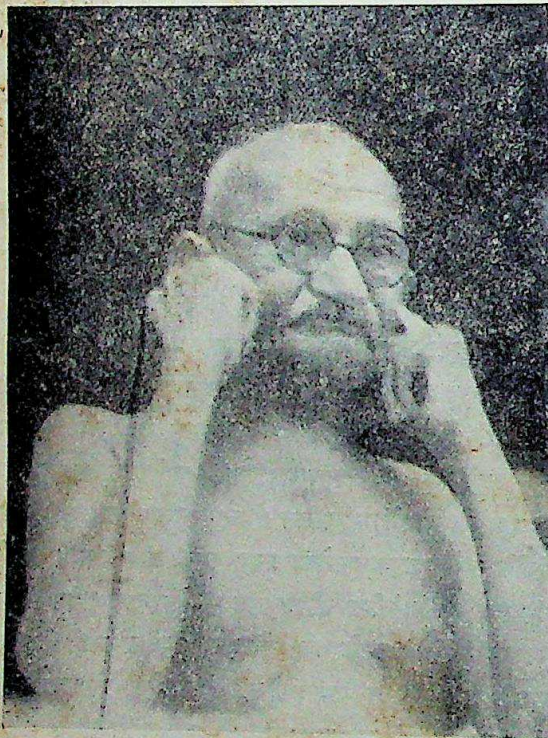
मेरे नामपर···मेरी कुटियासे···!

बनकर क्षात्रधर्मका त्याग करनेवाले आज तक बहुत हुए, पर अहिंसाको क्षात्रधर्मका बाना पहनाया अकेले गांधीजीने।.... उनकी अहिंसामें संघर्ष है, युद्ध है, प्रतिकार है; पर वह उच्च तलपर है।" क्या तुम्हारे शान्तिवादकी कल्पना इस तरहकी है?

माना कि समाजमें जो शोषण चल रहा है, तुम उसमें सीधा हिस्सा नहीं लेते हो। पर क्या उसके परिणामोंसे तुम बचे हो और उसको बन्द करनेके लिए तुमने कोई उपाय किया है? तुम्हें मालूम क्यों नहीं कि जिस भारतवर्षकी भूमिपर तुम शान्तिवादकी सभा करनेके लिए आए हो, उसके अतल पेटमें आज भूखकी आग जल रही है, तो उसे शान्त किए बिना यह शान्ति कैसी? जिन्होंने तुम्हें वहाँ बुलाया है, उनसे तुम पूछते कि जिस रुपएसे तुम्हारी यात्राओंका प्रबन्ध हुआ है, सम्मेलनका आयोजन किया गया है, वह कहाँसे आया है? उस पैसेसे शान्तिवाद क़ायम हो सकेगा? जिन गवर्नरों और प्रधान-मन्त्रियोंके स्वागत-भरे भाषण तुमने सुने और सुनाए, उन्होंने शान्तिकी कितनी आराधना की है? पूछो उन बँगलों की दीवारोंसे और आगे-पीछे चलनेवाले बन्दूकधारियोंसे। जिन्होंने हज़ारों रुपयोंकी मालाएँ तुम्हारे गलोंमें डालीं, वे शान्तिवादी हैं, या शान्ति चाहते हैं, यह समझनेकी भूल तुम न करना। गांधी और रवीन्द्रके वादोंका मरहम भी मानवताके घावोंको न मिटा सकेगा। आज तो संघर्ष और क्रान्तिकी ज्वाला ही चाहिए। जिस व्यवस्थामें से तुम आज जीवनका पोषण ले रहे हो, उसको तोड़ना ही आजकी आवश्यकता है। इसे खत्म करनेके लिए क्रान्तिकी ज्वाला चाहिए। गांधीजीने समाजको जो ज्वाला दी थी, वही चाहिए। ज्वालामयी शान्तिमें भाषाका विरोधाभास भले ही मालूम हो, पर जीवनका एकान्त सत्य भी है। कविकी भाषामें 'तोष शान्तिका ज़हर' और यहाँ न बढ़ाओ।

आज मानवको अन्यायके प्रतिकारका मार्ग बताओ, उसे प्रतिकारसे विमुख न करो। प्रतिकारकी अहिंसक ताक़तका विकास करो। शान्तिवादके नामपर संघर्षसे हटनेके लिए न कहो। संघर्षसे हटनेमें मृत्यु है—उसकी नहीं, तो दूसरोंकी तो निश्चित ही। मृत्युको शान्तिवादके नामसे सजाओगे? मानवको शान्ति तभी मिल सकेगी, जब शोषणसे मुक्ति मिलेगी, अभाव और अन्याय बन्द होंगे, भेद और विषमता मिटेगी। जो-कुछ करो, इनके लिए करो। तभी शान्ति और अहिंसाका मतलब होगा। इन विषमताओंके चक्रव्यूहसे अपनेको अलग रखकर बच जानेसे संघर्ष और युद्धका अन्त न होगा। इस चक्रव्यूह को ही तोड़ना है—मानवको प्रतिकारका बल चाहिए, प्रतिकार की दृष्टि चाहिए और प्रतिकारका न्याय्य और अहिंसक ढंग चाहिए। पर संघर्ष और प्रतिकारसे भागनेका मन्त्र उच्चारण न करना। संघर्षसे ही शान्तिका उदय होगा, और अन्याय एवं विषमताके विरुद्ध सजग संघर्षकी ताक़तसे ही वह क़ायम रह सकेगी।

एशिया और भारत

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

भारत एशियाका एक बहुत बड़ा प्रायद्वीप है, जो उसके दक्षिण-मध्यमें बड़े प्रमुख स्थानपर अवस्थित है। यहाँसे पश्चिममें ईरान, अफ़ग़ानिस्तान, अरब और तुर्की; उत्तरमें नेपाल, तिब्बत, चीनी तुर्किस्तान और चीन तथा दक्षिण-पूर्वमें बर्मा, मलय, हिन्दचीन और हिन्देशियको याता-यातके सूत्र बिखरे हुए हैं। इसके समुद्री सीमान्तोंने भी इसे शेष संसारसे पृथक न रखकर इसके अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंके विकासमें सहायता दी है। भारतका इतिहास महान एशियाके इतिहासके साथ घनिष्ट भावसे सम्बद्ध है और एशियाके इतिहास तथा संस्कृतिपर भारतका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है।

बुद्धके समय (ई० पूर्व ६ठी शताब्दी) से पहलेका भारतीय इतिहास पुरातत्त्वकी दृष्टिसे एकदम कोरा-सा ही समझा जाता था, यद्यपि प्राचीन भारतीय साहित्यमें जहाँ-तहाँ उसके इस युगके अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंका उल्लेख मिलता है। चालू शताब्दीके प्रथम दो दशकोंमें पंजाबके हड़प्पा और सिन्धके मोहेंजोदड़ोमें हुई खुदाईके फल-स्वरूप दो विराट और सम्पन्न भारतीय नगरोंके अवशेष मिले हैं, जिनसे इस दिशामें नया प्रकाश पड़ा है। इन नगरोंके पकी ईंटोंके सुन्दर मकानों, नालियों, सुचारु गलियों आदिको देखकर आधुनिक भारतके नगरोंको भी डाह होगा। इनमें मिली पत्थर और मिट्टीकी मूर्त्तियाँ, आभूषण, पात्र, शृंगार-प्रसाधन (ताँबेकी कंघियाँ, आईना, उस्तुरे आदि), खिलौने, खिलाड़ी, औज़ार, सीप, हड्डी और हाथीदाँतका सजावटका सामान और घरोंमें रोज़ काम आनेवाले मिट्टीके बर्त्तन, नर-नारी और देवी-देवताओं की मूर्त्तियाँ भारतकी उस प्राचीन सभ्यताकी परिचायक हैं, जो सिन्धुकी तराईसे भूमध्यसागर तक फैली थी। इन नगरोंके आस-पासकी दीवारों तथा चित्रमय मुहरोंसे पता चलता है कि उन दिनों शासन और संस्कृतिमें भारत काफ़ी बढ़ा-चढ़ा था। शान्तिवादी होनेके कारण उस समयके भारतीयोंने आध्यात्मिक संस्कृति और भौतिक विकासमें काफ़ी प्रगति की थी।

इन नगर-राज्योंमें जिस संस्कृतिका विकास हुआ, वह स्वभावतया शहरी थी। उनके समकालीन सुमेरियन तथा मेसोपोटामियाकी अकाडियन-संस्कृतियोंके सम्पर्कोंसे पता चलता है कि ई० पू० २५०० में ऐसे उन्नत एवं समृद्ध नगर थे। मेसोपोटामिया, मिस्र और भारत इस प्राचीनतम संस्कृतिके क्रीड़ाक्षेत्र थे। मेसोपोटामियाके ऊर तथा अन्य नगरोंमें सिन्धुकी तराईके कारीगरोंकी बनाई हुई बहुत-सी चीज़ें मिलती हैं। भारतीय साहित्यमें उसके वैदेशिक सम्बन्धोंके अनेक उल्लेख हैं। इनमें से अधिकांश यवनों—ग्रीकों और रोमनों—से सम्बन्ध रखते हैं। महाभारत तकमें रोमनगरका 'रोमा'

खरकंछ (काबुल) के पास मिली सूर्यदेवकी मूर्त्ति

नामसे उल्लेख है। पाणिनी द्वारा किए गए आयोनियाके ग्रीकोंके ग्रन्थोंके ज़िक्रसे पता चलता है कि यह सम्पर्क ई० पू० पाँचवीं शताब्दीमें था। यवनों और भारतीयोंमें विशेष सम्बन्ध-सम्पर्क ई० पू० चौथी शताब्दीके अन्तमें हुआ। कालसी (देहरादून) में पाए गए अशोकके शिलालेखोंसे प्रमाणित होता है कि भारतका सम्पर्क न केवल उसके सीमान्तके पास,

बल्कि मिस्र, सीरिया, मेसीडोनिया आदिपर भी शासन करनेवाले ग्रीक राजाओंसे था। इनमें मौर्य-सम्राट चन्द्रगुप्तके तथा इनके मौर्य-साम्राज्यमें राजदूत रहते थे। इन प्रदेशोंमें मौर्य-सम्राटकी ओरसे स्वास्थ्य तथा जन-सेवा-कार्य भी किए गए हैं। सर्वप्रथम अशोकने अपने व्यापक दृष्टिकोण, दूरदर्शिता एवं सहिष्णुताके कारण एशियाकी अन्तःएकताके विचारको मूर्त्त रूप दिया।

ईसाकी आरम्भिक शताब्दियोंमें पाश्चात्य ग्रीकों और रोमनोंका भारतसे दो तरहका सम्बन्ध था : दक्षिण भारतसे व्यापारिक आदान-प्रदान और उत्तर-पश्चिमी भारतसे सांस्कृतिक सम्बन्ध। भूमध्यसागरके क्षेत्रसे भारतका जो समुद्री व्यापार था, उसके फलस्वरूप दक्षिणमें रोमके सोनेके सिक्कोंकी बाढ़-सी आ गई थी। पाण्डीचेरीके पास अरिकामेडू नामके एक समुद्रतटीय नगरमें, जो ईसाकी पहली-दूसरी शताब्दियोंमें भूमध्यसागर-क्षेत्रसे होनेवाले व्यापारका प्रमुख केन्द्र था, हाल ही में हुई खुदाईमें ईसाकी पहली शताब्दीके पूर्वार्द्धके इटलीके लाल चमकीले मिट्टीके बर्त्तन, रोमके लैम्प, काँचके बर्त्तन, ग्रीस-रोमके जवाहरात और भूमध्यसागर-क्षेत्रके शराबके व्यापारके परिचायक प्याले-बोतलें आदि मिले हैं। अरिकामेडूमें एक ऐसी काली तश्तरी मिली है, जो खूब पकाई हुई और भीतर गोल किनारीदार है, जो भूमध्यसागर-क्षेत्रकी कारीगरीका एक लोकप्रिय नमूना है।

उत्तर-पश्चिम भारतसे पश्चिमका जो सांस्कृतिक सम्पर्क हुआ, उसके परिणाम-स्वरूप भारत और ग्रीस-रोमकी कलाओंका अद्भुत सम्मिश्रण हुआ। यही ईसाकी प्रथम शताब्दीकी बौद्ध कला है, जो गान्धार-श्रेणीकी कलाके नामसे प्रख्यात हुई। अपनी प्राथमिक अवस्थामें यह कला आधुनिक पेशावरके आस-पास पाई जानेवाली पाषाण-प्रतिमाओंमें प्रकट हुई और उत्तर-कालीन हुई पूर्वी अफ़ग़ानिस्तानके आधुनिक जलालाबाद (प्राचीन नगरहारा) में पाई जानेवाली मिट्टीकी मूर्त्तियोंमें, जो अफ़ग़ान कलाके नामसे प्रसिद्ध हुई। पर पश्चिमके सम्मिश्रणके बावजूद मूलतः यह कला भारतीय ही है; क्योंकि इसमें जिन आध्यात्मिक भावों और विचारोंकी अभिव्यक्ति हुई है, उनसे तत्कालीन पश्चिम अनभिज्ञ था। गान्धार-कलाकी प्राचीन भावोंकी द्योतक जो पाषाण-प्रतिमाएँ तक्षशिलामें मिली हैं, वे भारत-कोरिन्थियन कलाका सम्मिश्रण हैं। फूलोंसे सजी कामदेवकी मूर्त्ति रोमन कलाका प्रभाव है। भारी-भरकम कोट-पैजामा पहने ठिंगने पुजारी सीथियन और मद्यदेव रोमन कलाके परिणाम हैं। तक्षशिलामें मिली मिस्रके बालदेवता हारपोक्रेट्स तथा बुद्ध और बोधिसत्त्वकी मिट्टी और पत्थरकी मूर्त्तियाँ (ईसाकी दूसरीसे लेकर छठवीं शताब्दीकी) हेलेनिक और भारतीय कलाओंके मिश्रणको स्पष्ट प्रकट करती हैं। उत्तर-पश्चिम भारतीय संस्कृतिपर हुए ग्रीक कलाके इस आक्रमणका उल्लेख ई० पू० दूसरी शताब्दीके लेखोंमें अनेक जगह मिलता है। उसका प्रभाव और सम्मिश्रण केवल पत्थर-मिट्टीकी मूर्त्तियों

कपिसा (अफ़ग़ानिस्तान) में मिला पूर्ण घट

तक ही सीमित न था, बल्कि आभूषणों, जवाहरात, चाँदी-सोनेके सिक्कों और बर्त्तनोंपर भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

भारत और ईरानके सम्बन्धोंकी जड़ें आर्य-जातिके प्रारम्भिक इतिहासमें पाई जाती हैं। भारतमें आनेसे पहले आर्य जिन दो शाखाओंमें विभाजित हो गए, उनमें से ईरानी एक हैं। दोनोंकी भाषाओं एवं साहित्योंसे भी यह बात

प्रमाणित होती है। फारसी भाषा ससानीय-युगकी पहेलवी और पुरानी ईरानीसे ही निकली है और इसका शब्दकोष तथा व्याकरण मूलतः आर्यभाषाका ही है। एक हज़ार वर्षसे भी अधिकसे जो पारसी भारतमें रह रहे हैं, उन्होंने इस थातीको सुरक्षित रखा है। ई० पू० ५१८ में फ़ारसके सम्राट दारा द्वारा भारतके फारसी साम्राज्यमें मिलाए जानेका उल्लेख मिलता है। 'बहिश्ताँ' में पहले-पहल भारतको 'हिन्दु' लिखा है, जो 'सिन्धु'का ही फारसी रूप है। इस सम्पर्कके परिणाम-स्वरूप दाराके एकेमेनियन साम्राज्यकी राजभाषा 'आरमाइक' हुई, जो गान्धारकी स्थानीय प्राकृतका ही रूप है। तक्षशिलामें अशोकका एक आरमाइकमें लिखा शिलालेख मिला है। इस भाषाके शिलालेख मिस्र, एशिया-माइनर, अरब, ईरान और भारतमें मिलते हैं, जिनसे इन देशोंकी सम्बन्ध-श्रृंखलाका पता चलता है। ई० पू० पहली शताब्दीमें सिस्तानके सीथियनों द्वारा तक्षशिला, मथुरा और उज्जैनको केन्द्र बनाकर भारतमें फिर अपना साम्राज्य स्थापित किए जानेके कारण इस कालमें भारतपर ईरानका फिर विशेष प्रभाव पड़ा। ससानीय-कालमें भारत और ईरानका सांस्कृतिक आदान-प्रदान काफ़ी हुआ। दोनों देशोंमें राजदूतोंका विनिमय हुआ, भारतमें ससानी सिक्के चलने लगे और भारतीय पाषाण-प्रतिमाओं तथा मिट्टीकी मूर्त्तियोंपर फारसी चेहरे-मोहरे अपना प्रत्यक्ष असर डालने लगे। अजन्ताकी गुहामें एक भारतीय शासकके दरबारका चित्र है, जिसमें फारसी राजदूतके स्वागतका दृश्य दिखाया गया है। इसे चालुक्यराजा पुलिकेशीनके दरबारमें (ईसाकी सातवीं सदी) खुसरो द्वितीयके राजदूतका आगमन बताया जाता है।

भारत और ईरानके सम्बन्धोंका सबसे महत्त्वपूर्ण चिह्न है मथुरामें मिला Lion Capital, जिसपर खरोष्ठीमें कुछ लिखा है। यह ई० पू० पहली शताब्दीके मथुराके सीथियन शासकोंका एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक दानपत्र है, जिसके अन्तमें सम्पूर्ण शकस्तान (सिस्तान) के कल्याणकी कामना की गई है। मथुरामें मिले कुछ पाषाण-प्रतिमाओंके शिरोंपर का तिकोना शिरस्त्राण शकोंकी 'तिगरा-खुदा' शाखाका है। सूर्य-पूजक ईरानियोंने भारतमें आकर हमारे सूर्यदेवताके रूपमें भी परिवर्त्तन ला दिया। ईसाकी पहली शताब्दीके बादसे छठी तक तो हमारे सूर्य भगवानका रूप एकदम फारसका ही हो जाता है—लम्बा कोट, पायजामा और बूट पहने। इसे भारतीय साहित्यमें 'औदिच्य वेष' (उत्तरका वेष) कहा गया है। विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें तो फारसियोंकी कमरपेटीको, जो कि सूर्यका एक प्रधान चिह्न है, 'यावियंग' (पहेलवी शब्दका संस्कृत रूप) कहा गया है। इसमें इस बातका भी उल्लेख है कि सूर्य-मन्दिरोंकी स्थापनाके लिए शकद्वीपसे ब्राह्मणोंको आमन्त्रित किया गया था। पुराणोंमें जिन 'एडुकाओं'का ज़िक्र आता है, उनसे मिलते-जुलते 'ज़िगूरात' फारसमें अभी भी मौजूद है।

भारतका पड़ोसी अफ़ग़ानिस्तान तो कई शताब्दियों तक

ससानी-कालका एक शिर (राजघाट)

हमारा सांस्कृतिक प्रदेश रहा है। ऋग्वेदमें अफ़ग़ानिस्तानकी सीमाओंका उल्लेख है—कन्धार (गान्धार), बलख (बलहिका), हरिरुद (सरयू), अरगन्दाब (हरुवावती=सरस्वती), क़ाबुल(कुम्भा), अफ़ग़ान (अश्वकायन), पख़तून (पक्थान) आदि। बौद्ध धर्म और कलाकी उन्नतिमें एक हज़ार वर्ष तक अफ़ग़ानिस्तानका महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है और भारत तथा केन्द्रीय एशियाके मार्गपर उसकी उपजाऊ घाटियोंमें धर्म और शिक्षा-प्रचारकी अनेक संस्थाएँ रही हैं। फारसी साम्राज्यका सिकन्दर द्वारा उन्मूलन कर दिए जानेके बाद उसके आधिपत्यका अन्तकर

चन्द्रगुप्त मौर्यने जिस भारतीय साम्राज्यकी स्थापना की, उसमें अफ़ग़ानिस्तान भी था। कुशन-साम्राज्यमें भी अफ़ग़ानिस्तानका एक भाग शामिल था। ईसाकी दूसरी और पाँचवीं शताब्दियोंमें जो गान्धार-कला पनपी (चूने और मिट्टीकी मूर्त्तियोंके रूपमें), उसका केन्द्र अफ़ग़ानिस्तान ही था। जलालाबादके निकट हद्दा और आक्ससकी तराईमें बसे कुन्दुसमें बुद्ध और बोधि-सत्त्वकी जो मूर्त्तियाँ और उनके पूजक मिले हैं, वे उत्तर-पंजावके तक्षशिलामें मिली मूर्त्तियोंसे हू-ब-हू मिलते हैं। काबुलसे ५० मील उत्तर बेग्राम (प्राचीन कपिसा) में भारतीय हाथीदाँतकी खुदाईकी चीज़ोंका बहुत बड़ा संग्रह मिला है। इनमें अशोक-कालीन पूर्ण घट, बुद्ध, बोधिसत्त्व और सूर्यकी खुदाइयाँ विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। यही मथुराके कारीगरोंको हाथीदाँतकी खुदाईकी कलामें शीर्षस्थान दिलानेके लिए काफ़ी है।

भारतके पूर्वी पड़ोसी हैं बर्मा, स्याम, मलय, कम्बोडिया, चम्पा और हिन्देशिया (सुमात्रा, जावा, बाली)। इनके धर्म, भाषा, कला और वास्तु-विद्यापर भारतका जो गहरा प्रभाव पड़ा है, वह यहाँ पाए जानेवाले अवशेषोंसे स्पष्ट है। कई शताब्दियों तक ये क्षेत्र भारतके सांस्कृतिक प्रदेश रहे हैं। ईसाकी चौथी शताब्दी तक इनमें से प्रत्येकमें हिन्दू-राज्य स्थापित हो चुके थे, जो संस्कृतको राजभाषा और दक्षिण-भारतीय लिपिको राजलिपिके रूपमें उपयोगमें लाते थे। ईसाकी पाँचवींसे आठवीं शताब्दियों तककी यहाँकी मूर्त्ति और वास्तु-कलाएँ इस समयकी भारतीय कलाओंका ही रूप जान पड़ती हैं। सुदूर-पूर्वसे सम्बन्ध-सम्पर्क बहुतकर उसके दक्षिण-पूर्वी बन्दरगाहोंसे जाने-आनेवाले जहाज़ोंकी यात्राओंपर निर्भर करता था। मलयके वेलेज़ली-प्रदेशमें रांगामाटी (बंगाल) के भारतीय महानाविक बुद्धगुप्तका एक मूल संस्कृत लेख मिला है। बर्माकी तो लिपि, धर्मशास्त्र और धर्म भारतकी ही देन हैं। ईसाकी पाँचवींसे आठवीं शताब्दी तक भारतका बर्मापर बड़ा प्रबल प्रभाव रहा। पागान और प्रोम (प्राचीन श्रीक्षेत्र) के पास ह्मावज़ाके एक प्राचीन मन्दिरमें मिली बुद्धकी मूर्त्तियाँ (वज्रासनमें), ताड़ और स्वर्ण-पत्रोंपर लिखे हुए धर्मग्रन्थ आदि इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

चमोंकी भूमि चम्पा एक हज़ार वर्ष (ईसा-पूर्वकी तीसरीसे ईसाकी सातवीं शताब्दी) तक चमों और भारतीयोंकी मिश्रित संस्कृतिका केन्द्र रहा है। ईसाकी तीसरी शताब्दीमें चम्पामें कुठार नामक हिन्दू-राजा राज्य करता था। इसके बाद पाण्डुरंग हुआ, जिसका राज्य समुद्र-तटपर स्थित फानरंग तक फैला था। इस तरह चम्पा पूर्वमें हिन्दू-संस्कृतिका आदि-केन्द्र रहा है। ईसाकी चौथी शताब्दीमें धर्मराज श्री भद्रवर्मन द्वारा मिसोनमें स्थापित किया गया शिव-मन्दिर दीर्घकालसे प्रमुख राष्ट्रीय तीर्थ रहा है। ७५५ ई० में भद्रवर्मनके राजवंशका लोप हो गया। इस समय तक भाषा (संस्कृत), धर्म (भारतीय ब्राह्मण-धर्म) आदिकी दृष्टिसे चम्पा भारतका ही एक प्रदेश रहा।

मोहेंजोदड़ोंमें मिली माताकी एक मूर्त्ति

चम्पामें पाए गए संस्कृत लेखोंसे भारतमें प्रचलित तत्कालीन संस्कृतकी प्राचीन कविताका अच्छा आभास मिलता है। इसी प्रकार फ्रांसीसी हिन्दचीनमें ९०० ई० में यशोवर्मन द्वारा बनवाया गया अंगकोरथोम (अंगखोर=यशोधरपुरा) का 'अंगकोरवाट' मन्दिर एक श्रेष्ठ और भव्य इमारत है।

हिन्देशियाके द्वीपोंमें भारतीय अक्सर आया-जाया करते थे। ईसाकी चौथी और पाँचवीं शताब्दियोंके उनके लेखोंसे

पता चलता है कि उस समय जावा (यवद्वीप) में तमुरा नामके हिन्दू-राजाका शासन था। हिन्देशियाका स्वर्ण-काल शैलेन्द्र-राज्यवंशका शासन-काल (७३२ से ८६० ई०) माना जाता है, जब कि भारतसे बहुत अधिक यातायात और आदान-प्रदान होता था। इस राजवंशका केन्द्रीय सुमात्रामें बड़ा प्रतापी 'श्रीविजय-साम्राज्य' था, जिसका भारत और अन्यान्य पड़ोसी देशोंसे राजनीतिक, व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध था। बौद्ध मतके अनुयायी होनेसे इन राजाओंने न सिर्फ अपने साम्राज्यमें, बल्कि सुदूर नालन्दा तकमें बौद्ध विहारोंकी स्थापना की। नालन्दामें मिले एक ताम्रपत्र (८४०ई०) से प्रकट है कि सुवर्णद्वीप (सुमात्रा) शैलेन्द्रवंशीय राजा बालपुत्रदेवने मगध-राजसे अनुरोध किया था कि वे पाँच गाँव खरीदकर नालन्दा-विश्वविद्यालयको दे दें, ताकि उनसे वहाँ विदेशी छात्रोंके लिए स्थापित विहारका खर्च पूरा किया जा सके। जावाके बोरोबुदुर का स्तूप, बौद्ध विहारोंमें मिलीं प्रज्ञापारमिता और लोकेश्वरकी मूर्तियाँ इस सांस्कृतिक प्रभावकी स्पष्ट परिचायक हैं। भारत और हिन्देशियाका यह सांस्कृतिक सम्बन्ध ईसाकी १५वीं शताब्दी तक रहा, जिसका प्रमाण दक्षिण-भारतके कोरोमण्डल-तटके धूलिसात बन्दरगाह नागापट्टममें मिली बौद्ध मूर्तियाँ (११वीं और १५वीं ईस्वीकी) हैं। ईसाकी ९वीं और १०वीं शताब्दियोंमें जावा और सुमात्रासे आकर अनेक बौद्ध यहाँ बस गए थे, जिनके लिए चोलराजा राजराजने (९८५-१०१८ ई०) दो विशाल बौद्ध विहार बनवा दिए थे। इन विहारोंमें १५वीं शताब्दी तक विदेशी पर्यटक बराबर ठहरते थे।

सिंहल अथवा लंकाने भी धर्म-भाषा और कला तथा स्थापत्यमें भारतसे बहुत-कुछ पाया है। किन्तु भारत भी पालीके बौद्ध साहित्य और उसके विशद भाष्योंकी सुरक्षाके लिए लंकाका कम आभारी नहीं है। भारतीय साहित्यमें सीलोनका लंका, सिंहल, ताम्रपर्णी और आम्रद्वीप आदि नामोंसे उल्लेख है। भारतमें रामायण-कालसे ही लंका एक घरेलू-सा शब्द बन गया है। किन्तु इतिहासमें पहले-पहल सम्राट अशोकके दूसरे शिलालेखमें ताम्रपर्णी द्वीपका ज़िक्र आया है, जहाँ उन्होंने बौद्ध मिशनरी भेजनेका तय किया था। इसे बौद्धमतका अनुयायी बनानेका श्रेय युवराज महेन्द्र और उनकी बहन संघमित्राको है। संघमित्रा द्वारा बौद्धगयासे ले जाई गई बोधिवृक्षकी शाखा लंकाके जयमहाबोधिमें आज भी फल-फूल रही है। गुप्त-कालके एक लेख (५८८-८९ ई०) से पता चलता है कि महानाम नामक लंकाके एक बौद्ध भिक्षुने उस स्थानपर एक मन्दिर बनवाया, जहाँ कि बुद्धको ज्ञान हुआ था। प्रयागमें खड़े समुद्रगुप्तके स्तंभपर के उल्लेखसे भी ज़ाहिर है कि समुद्रगुप्तका लंकाके राजासे (३५२-३७९ ई०) सम्पर्क था। लंका-नरेशने समुद्रगुप्तसे अनुरोध किया था कि वे उसे बौद्धगयामें लंकाके भिक्षुओंके लिए एक विहार बनानेकी अनुमति प्रदान करें। सातवीं शताब्दीमें जब ह्वेनसाङ् भारत आया, तो उसने इस विहारमें १००० भिक्षुओंके होनेकी बात लिखी है। पाँचवीं शताब्दीमें सिंगरिया (सिंहगिरि) पर बने राजप्रासादमें अजन्ताकी कलाकी स्पष्ट छाप है। यही बात पोलन्नरुआ (१२वीं शताब्दीके पुलस्तिपुर) के मन्दिरोंके बारेमें भी कही जा सकती है।

चीन और भारतके सांस्कृतिक आदान-प्रदानका इतिहास ईसाकी पहली शताब्दीसे लेकर कोई १२०० वर्ष तकका लम्बा काल है। बौद्ध और अन्य भारतीय साहित्यकी चीनी अनुवादों द्वारा रक्षाकर चीनने भारतकी सच्ची और लुप्तप्राय सांस्कृतिक थातीको सुरक्षित रखा है। यह सारा साहित्य चीनी त्रिपिटककी ५००० पोथियोंमें आज भी विद्यमान है। भारतीय विद्वान बराबर चीन जाते रहे हैं और वहाँसे जिज्ञासु विद्यार्थी धर्म, ज्ञान और विश्वासोंका नया प्रकाश पाने बराबर भारत आते रहे हैं। हर्षके समयमें यह सम्बन्ध काफी घनिष्ट हो गया, जब कि चीनमें भारतीय दूतावास (६४१ ई०) खुला और भारतमें चीनी मिशन (६४३ ई०) आया। प्रसिद्ध चीनी विद्वान ह्वेनसाङ् हर्षकी राज-सभामें आया और १० वर्ष तक नालन्दा-विश्वविद्यालयमें रहकर भारतीय विद्याओंका अध्ययन किया। भारतसे लौटकर उसने नालन्दा-विहारके अध्यक्षको तीन पत्र संस्कृतमें लिखे और पाए, जिनका चीनी-अनुवाद आज भी प्राप्य है। बौद्धगयामें अनेक चीनी लेख हैं, जिनसे प्रकट है कि मध्य-युगमें बौद्ध तीर्थोंकी यात्रा करने चीनी भारतमें निरन्तर आते रहते थे। तंजोर-ज़िलेमें सुंग-काल (९६०-१२७९ ई०) के अनेक चीनी सिक्के मिले हैं, जिनसे इस बातकी पुष्टि होती है कि चोल-कालमें दक्षिण-भारतसे चीनका व्यापारिक सम्बन्ध था। पांडीचेरीके पासके एरिकामें मिले चीनके रंगीन बर्त्तनोंसे भी पता चलता है कि १०वीं और १२वीं शताब्दीमें भारतके इस समुद्र-तटपर चीनी जहाज़ आते रहते थे। मुग़लोंके महलोंमें कुछ रंगीन चीनी तश्तरियाँ मिली हैं, जिनमें से एकपर 'शाहज़ादा

शाहशुजा' (शाहजहाँका पुत्र) और '१६४७ ई०' लिखा है।

कैलास और मानसरोवरका प्रदेश होनेके कारण तिब्बत भारतके बहुत निकट रहा है। सहस्रों भारतीय प्रतिवर्ष इन स्थानोंकी यात्रा करते हैं। यह आवागमन महाभारत-कालसे जारी है। ईसाकी सातवीं शताब्दीमें तिब्बतने बौद्ध मत और ब्राह्मी-लिपिको अपनाया और उन्हें बहुत थोड़े परिवर्त्तनके साथ आज तक सुरक्षित रखा है। इसका श्रेय तिब्बतके राजा स्रोंग-त्सांग सांपोको है। चीनकी तरह तिब्बतने भी बहुत-सा भारतीय साहित्य तिब्बती अनुवादोंके रूपमें सुरक्षित रखा है। इनमें से सबसे उल्लेखनीय है सुवर्णाक्षरोंमें लिखी हुई 'प्रज्ञापारमिता' और 'कंजुर'। धातु-मूर्त्तियाँ और रेशमकी चित्रकारी तिब्बतकी विशेषता है। मन्दिरोंपर लगे रेशमके भण्डोंपर, जिन्हें 'थानक' कहते हैं, अनेक भारतीय धर्म-गुरुओं (दिग्नाग, असंग, नागार्जुन, आर्यदेव, वसुबन्धु, धर्मकीर्त्ति आदि) के चित्र बने हैं।

नेपालसे भारतका सम्बन्ध ईसाकी दूसरी शताब्दीसे है। इस समय मगधके लिच्छवियोंने भारतसे नेपालमें जाकर अपना राज्य क़ायम किया और अपने साथ भारतीय संस्कृतिको भी वहाँ ले गए। इसीलिए नेपालकी भाषा, साहित्य, धर्म, कला आदिपर भारतका गहरा रंग है। नेपालकी बनी विष्णु, शिव, पार्वती और तान्त्रिक मतके बौद्ध देवताओंकी मूर्त्तियाँ विशेष चमत्कापूर्ण हैं। तुन् हुआङ्की सहस्र बुद्धोंकी गुफ़ाओंमें मिलीं नेपालकी ध्वजाएँ वहाँकी चित्रकलाके सुन्दर नमूने हैं। ईसाकी १७वीं और १८वीं शताब्दोंकी अधिकांश नेपाली ध्वजाएँ भारतीय प्रभावको स्पष्ट बताती हैं। मुस्लिम-आक्रमणके कारण जब बंगाल और बिहारके अधिकांश बौद्ध विहार तोड़ दिए गए, तो उनके बहुतसे हस्तलिखित ग्रन्थ नेपाल ले जाए गए, जहाँ वे आज भी सुरक्षित हैं। इनमें मगधके राजा महेन्द्रपालके समयमें ताड़पत्रपर लिखित 'प्रज्ञापारमिता' (८९४ ई०)और दूसरी उसकी प्रति रामपालदेव (१०९३ई०) के समयकी विशेष उल्लेखनीय है। खोज करनेपर सम्भवतः अन्य कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी वहाँ मिल सकें।

चीनी तुर्किस्तान 'एशियाका हृदय' कहा जाता है। इसके पूर्वसे पश्चिम १५०० मील लम्बे और उत्तरसे दक्षिण ६०० मील चौड़े भू-भागमें चीनको पश्चिमसे जोड़नेवाला और उत्तरमें कूचा, काराशहर (अग्निदेश), तुरफान तथा दक्षिणमें यारकन्द, खोटान, निया और मीरां होता हुआ जानेवाला यात्रा-मार्ग है। ये 'रेशमके मार्ग' कहलाते हैं, जहाँसे चीन और भारतका हज़ारों वर्षोंसे आवागमन रहा है। इन मार्गोंपर अवस्थित नगर चीनसे भारत आने और भारतसे चीन जानेवालोंके विश्राम-स्थल रहे हैं। इनमें मिले पुरातत्त्वके छोटे-बड़े अवशेषोंसे चीन-भारतके सम्बन्धों एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान पर काफ़ी प्रकाश पड़ता है। इसी क्षेत्रमें बौद्ध मतको केन्द्र-बिन्दु बनाकर भारत, चीन, ईरान, बैक्ट्रिया और ग्रीसकी सभ्यता-संस्कृतिका अद्भुत मेल हुआ। इसी क्षेत्रसे अपनी केन्द्रीय एशियाकी तीन यात्राओं (१९००-१, १९०६-८, १९१३-१६) में सर आरेल स्टाइनने कलाके नमूनों तथा संस्कृत, चीनी, सीरियाई, सोगदी, तुर्की और अपेक्षाकृत अपरिचित तोचारी और खोटानी भाषाओंकी पाण्डुलिपियोंके रूपमें अशेष महत्वकी सामग्री एकत्र की है। हज़ार बुद्धोंके मन्दिरसे रेशमपर बने अद्भुत चित्र मिले हैं। इन ग्रन्थों और चित्रोंमें बौद्धकालीन भारतीय संस्कृतिकी यथेष्ट देन है। इन स्थानोंमें बुद्ध और बौद्ध देवताओंके अनेक अद्वितीय चित्र और मूर्त्तियाँ मिली हैं। अस्ताना-क़ब्रिस्तानके पास भारतीय केक-पेस्ट्री, सूती-ऊनी-रेशमी वस्त्र, सींग-चमड़ेकी चीज़ें आदि मिली हैं। नियामें खरोष्ठी-लिपि और प्राकृत भाषामें, जो दक्षिण-पूर्वी तुर्किस्तानकी राजभाषा थी, अनेक महत्त्वपूर्ण लेख मिले हैं। इनसे और सर आरेल स्टाइनको हज़ार बुद्धोंके मन्दिर में मिले रेशमी चित्रोंसे भारतीय प्रभाव स्पष्ट झलकते हैं। इन चित्रोंका प्रयोग ध्यानस्थ होनेवालोंके लिए 'ध्यान-पट' के रूपमें किया जाता था। इसीलिए इसमें बोधिसत्त्व, अमिताभ, मंजुश्री, मैत्रेयी आदिको विशेष स्थान दिया गया है। अमिताभके स्वर्ग सुखावतीका चित्रण विशेष रूपसे सुन्दर हुआ है। ईसाकी सातवीं शताब्दीके भारतीय तीर्थस्थानों—श्रावस्ती, कपिलवस्तु राजगृह और वाराणसी—के चित्र चीनी भाषामें लिखे गए विवरण-सहित हैं। संभवतः ये चित्र भारतसे लौटते हुए चीनी यात्री अपने साथ लाए होंगे।

मार्च-अप्रैल, १९४७ में नई दिल्लीमें हुए एशियाई सम्मेलनके अवसरपर एक एशियाई संस्कृति-प्रदर्शिनीका आयोजन किया गया था, जिसमें एशियाई देशोंके सांस्कृतिक आदान-प्रदानके सूचक अनेक बहुमूल्य चित्र, चित्रपट, मूर्त्तियाँ, पाण्डुलिपियाँ आदि प्रदर्शित की गई थीं। इन्हें देखकर मुझे ऐसा लगा कि क्या इस सबके द्वारा विशाल भारत और विशाल एशियाके इतिहासमें एक नए अध्यायकी सृष्टि नहीं की जा सकती?

नये युगमें हिन्दी

श्री राहुल सांकृत्यायन

हिन्दीका इतिहास उतना ही भव्य है, जैसा कि विश्वकी किसी भी उन्नत-से-उन्नत भाषाका हो सकता है। आठवीं शताब्दीसे हिन्दी-साहित्यका इतिहास शुरू होता है। संस्कृत, पाली, प्राकृतकी महानिधियोंके कारण उस आदि-युगमें भी हमें सरह, स्वयम्भू, पुष्पदन्त-जैसे महाकवि प्राप्त हुए। उस युगकी सारी कृतियोंकी हम रक्षा नहीं कर पाए; किन्तु जो भी अपभ्रंशके ग्रन्थ-रत्न बचकर हम तक पहुँचे हैं, वे हमारे गर्वकी वस्तु हैं। स्वयम्भू और सरहने दोहा और चौपाईमें जो कविताएँ आरम्भ कीं, वे गोस्वामी तुलसीदाससे होकर पण्डित द्वारकाप्रसादके 'कृष्णायन' तक पहुँची हैं। मध्य-युगमें कबीर, सूर, तुलसी-जैसे काव्यनिर्माता हुए, जिनकी कृतियाँ आज भी हमारे रोज़-रोज़के उपयोगमें आती हैं। तृतीय युगमें देव, बिहारी, भूषण, पद्माकर-जैसी प्रतिभाएँ हिन्दी-क्षेत्रमें प्रादुर्भूत हुईं। हिन्दीका आधुनिक काल अभी आधी शताब्दीसे कुछ ही पहले आरम्भ हुआ। यद्यपि हमारे यहाँ भारतेन्दु, श्रीधर, हरिऔध, मैथिलीशरण, पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी आदि कितने ही उच्चश्रेणीके कवि पैदा हुए हैं; लेकिन इतनेपर भी यदि हमें सन्तोष नहीं होता, तो यह अच्छे लक्षण हैं। हमारी हिन्दी भारतकी आधी भूमि और लोगोंकी भाषा है, साहित्य-क्षेत्रमें उसीके अनुरूप गुण और परिमाणमें उसकी देन होनी चाहिए।

हिन्दीका गद्य-साहित्य

हिन्दी-गद्य-साहित्य नई चीज़ है। हमने इस क्षेत्रमें भारतकी कितनी ही भाषाओंसे पीछे काम आरम्भ किया, जिसका प्रभाव होना ज़रूरी ठहरा। साहित्यके माध्यम या शैलीके परिपक्व होनेमें कुछ समय लगता है। हिन्दीकी गद्य-शैलीको परिपक्व हुए मुश्किलसे तीन दशाब्दियाँ हुई हैं। उन्नीसवीं सदीमें जब ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और बंकिमचन्द्र बँगला-गद्य-साहित्य-गगनमें अपनी ज्योति फैला रहे थे, उस समय हम चटसालसे बाहर नहीं हुए थे। यह हिन्दीकी किसी स्वाभाविक त्रुटिके कारण नहीं हुआ। जहाँ दूसरी भारतीय भाषाओंके गद्य-पद्यकी भाषा क्या होगी, उसके बारेमें कोई सन्देह या प्रतिद्वन्द्विताका सवाल नहीं था, वहाँ हमारे यहाँ हिन्दी-क्षेत्रमें अनेक स्वतन्त्र भाषाएँ थीं, जिनमें मैथिली, अवधी, ब्रज और राजस्थानीका स्वतन्त्र लिखित साहित्य भी मौजूद था और उच्चकोटिका था। जिस भाषाको हिन्दी गद्य और पद्यकी भाषा और अन्तमें सारे राष्ट्रकी राष्ट्रभाषा बननेका सौभाग्य मिलनेवाला था, वह लिखित साहित्यसे सूनी थी। जब मेरठ-कमीश्नरीके साढ़े तीन ज़िलोंकी इस भाषाको व्यापक क्षेत्रके लिए स्वीकार भी कर लिया गया, तो वहाँ हिन्दी-उर्दूका झगड़ा खड़ा हो गया। इस झगड़ेमें उर्दूकी पीठपर अंगरेज़ी शासकोंका हाथ था। वे नहीं चाहते थे कि भारतकी स्वतन्त्र भावनाओंकी प्रतीक हिन्दी आगे बढ़े। कचहरियोंमें अंगरेज़ीके बाद उर्दूका स्थान था, जिसके लिए वर्त्तमान शताब्दीके आरम्भ तक कायस्थ और कश्मीरी उर्दूके भक्त हो हिन्दीको फूटी आँखों नहीं देखना चाहते थे। कायस्थों और कश्मीरियोंमें यह बात किसी जात-पाँतके कारण नहीं थी। युक्त-प्रान्त, बिहार, राजस्थान आदिमें जो नौकरी-पेशा जातियाँ या वर्ग थे, वे सभी उर्दूको अर्थकरी भाषा समझते थे और उसकी चरण-धूलि सिरपर लगाते थे। यह भी एक कारण था, जिसकी वजहसे हिन्दी उतनी ही जल्दी अपने पैरोंपर खड़ी न हो पाई, जितनी जल्दी कि बँगला और दूसरी भाषाएँ—हालाँकि बँगलाके गद्यके निर्माणका आरम्भ भी १८वीं-१९वीं शताब्दीकी सन्धिमें उसी कलकत्तेसे हुआ था, जहाँ हिन्दी और उर्दूके गद्यका आरम्भ।

हम अपने गद्य-साहित्य—उपन्यास, कहानी, निबन्ध आदि—से असन्तुष्ट भले ही हों; लेकिन हमारे पास प्रेमचन्द-जैसे विश्वके लेखकोंमें स्थान रखनेवाला उपन्यासकार हैं। जैनेन्द्र, वृन्दावनलाल वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, अज्ञेय, यशपाल आदि-जैसे लेखनीके धनी अपनी कथा-रचनाओं द्वारा हिन्दीके गौरवको बढ़ानेवाले मौजूद हैं। हाँ, हम यह मानते हैं कि हमारे साहित्य और उसके स्रष्टाओंका परिमाण और संख्या हमारी संख्याके अनुरूप नहीं है। यहाँ साहित्यिक प्रतिभा रखनेवाले तरुण प्रायः अधखिले ही मुर्झा जाते हैं। कालके आघातसे नहीं, बल्कि अपने परिश्रम और साधनाके अभावके कारण वे आगे बढ़ नहीं पाते।

हमारे साहित्य-सेवियोंको यह बात ध्यानमें रखनी होगी कि जैसे-तैसे कुछ पंक्तियाँ काली करके सन्तोष कर लेनेसे अब काम नहीं चलेगा, न मित्रमंडलीमें परस्पर एक-दूसरेकी प्रशंसा पा लेनेसे काम चलेगा। साहित्य-पारखी पहले भी अपने ही मित्र नहीं हुआ करते थे। उसकी प्रतीक्षा आनेवाली पीढ़ियाँ करती रही हैं और आज भी करेंगी, जिन पीढ़ियोंके ऊपर किसी भी सिफारिश या चापलूसीका प्रभाव नहीं पड़ सकता। आज हिन्दी हमारे सारे देशकी राजभाषा स्वीकार हो चुकी है। दूसरे देश भी इस बातको नोट कर रहे हैं। पेरिस-विश्वविद्यालयमें हिन्दी लेनेवालों छात्रोंकी संख्या चौगुनी हो गई है, और विश्वविद्यालयको एक और अध्यापक नियुक्त करना पड़ा है। दुनियाके दूसरे स्वतन्त्र देशोंमें भी हिन्दी-पठन-पाठनका विस्तार होना आवश्यम्भावी है। फिर अपने देशके सभी प्रान्तोंके स्कूलोंमें हिन्दी पढ़ना अनिवार्य बनाया जा रहा है। यह सभी जानते हैं कि सेना और केन्द्रिय नौकरियों तथा राजदूतिक सेवाओंके लिए हिन्दीका ज्ञान आवश्यक है। इसलिए भला कैसे कोई प्रान्त हिन्दी सीखनेमें अपनेको पीछे रख सकता है? इस प्रकार हमारे साहित्यके पारखी अब केवल हिन्दी-भाषा-भाषियों तक ही सीमित नहीं रहे, बल्कि सारे भारतकी दूसरी भाषाओंके विद्वान तथा विदेशी हिन्दी-भाषाभिज्ञ भी अपनी कसौटीपर रखेंगे। इसलिए हमारे साहित्य-सेवियोंको अपने दायित्वको अच्छी तरह समझना चाहिए और ऐसे साहित्यका निर्माण करना चाहिए, जो भारतके दूसरे प्रदेशों तथा विश्वमें हमारे मस्तकको ऊँचा रख सके। हमें विश्वास है कि हम इस परीक्षामें उत्तीर्ण होंगे।

जहाँ तक काव्य, कथा-साहित्य या निबन्धोंका सम्बन्ध है, हमारे पास काफी पूँजी है और शब्द-निधि पूर्ण है, जिसके द्वारा हम अपने सारे भावोंको स्पष्ट और सूक्ष्मतापूर्वक प्रकट कर सकते हैं। किन्तु राजनीतिक परतन्त्रताके कारण देशकी और भाषाओंकी भाँति हिन्दी भी राज-काज और ज्ञान-विज्ञानके उपयोगके लिए अधिक विकसित नहीं हो सकी। आज राजनीतिक परतन्त्रताके हटने और हिन्दीको राजभाषा मान लेनेपर उसके विकासके सारे रास्ते खुल चुके हैं। जिस तरह अंगरेज़ीमें सभी विषयोंका माध्यम बननेकी क्षमता है और उसके पास विशाल साहित्य है, उसी तरह अब हिन्दीको भी अपनेको बनाना है। देशकी स्वतन्त्रताके साथ जब देशका संविधान बनने लगा, उसी समय हिन्दीसे माँग की गई कि वह संविधानको अपना रूप दे। भारतीय संविधानके मसौदेके चार अनुवाद किए जा चुके थे, जिनमें दो हिन्दीके और एक-एक हिन्दुस्तानी और उर्दूके थे। इनमें तीन सरकारी या अर्द्ध-सरकारी थे। इनसे सन्तुष्ट न होकर संविधान-सभाके सभापतिने हिन्दी-अनुवादके लिए एक विशेषज्ञ-समिति नियुक्त की, जिसने अभी हालमें अपना अनुवाद तैयार किया है, और वह जनवरीमें प्रकाशित हो जायगा। संविधान या विधान (क़ानून) का अनुवाद किसी ऐसी भाषामें करना आसान नहीं है, जिसमें विधान-सम्बन्धी साहित्य और परम्परा स्थापित नहीं हो चुकी है। लेकिन हम कह सकते हैं कि जो अनुवाद हालमें तैयार हुआ है, वह सन्तोषजनक सिद्ध होगा। इस अनुवादके साथ-साथ हमें आठ सौसे अधिक विधान-सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दोंको निश्चित करनेका अवसर मिला। अनुवाद-समितिके छः सदस्योंमें तीन हिन्दी और तीन अहिन्दी-भाषी थे। यह आवश्यक समझा गया कि अधिकांश संस्कृतकी होनेसे परिभाषाएँ ऐसी होनी चाहिएँ, जो सारे देशमें एक-सी हों। इसीसे तेलुगू, बँगला और मराठी भाषा-भाषी विशेषज्ञ भी समितिमें रखे गए। इसका परिणाम बहुत सुन्दर हुआ। परिभाषाओंको लेते समय हमने पूरब, पश्चिम और दक्षिणकी भाषाओंका भी ध्यान रखा और बिना हिचकके इन भाषाओंसे भी शब्द लिए गए। संविधान-सभाके सभापतिने सारे देशकी एक तरहकी परिभाषा हो, इसके लिए हिन्दीके अतिरिक्त आसामी, बँगला, उड़िया, तेलुगू, तमिल, मलयालम, कन्नड़, मराठी, गुजराती, पंजाबी, कश्मीरी, संस्कृत और उर्दूके भी विशेषज्ञोंका सम्मेलन बुलाया, जिसने विवेचना करके संविधानके आठ सौ शब्दोंपर अपनी मुहर लगा दी। इन आठ सौ शब्दों में ९० प्रतिशत ऐसे शब्द हैं, जिन्हें तमिल, कश्मीरी और उर्दूको छोड़कर बाकी सभी भाषाएँ स्वीकार करने जा रही हैं। तमिल और कश्मीरीमें भी बहुत बड़ी संख्यामें यही पारिभाषिक शब्द लिए जायँगे और बाकीको फुटनोटमें रखकर लोगोंको परिचित होनेका मौका दिया जायगा। जहाँ तक संविधानके लिए आवश्यक शब्दोंका सम्बन्ध है, वे हमारे पास अब मौजूद हैं। इन परिभाषाओंको लेनेमें किसीने दुराग्रह नहीं किया था। हमारा ध्यान केवल इसी ओर था कि शब्द सुगम और आसानीसे उच्चारण करने योग्य हों तथा जिन्हें भारतकी अधिक-से-अधिक भाषाएँ स्वीकार कर लें। उर्दूवाले भाइयोंको कुछ हताश ज़रूर होना पड़ा और उनके साथ नये

मुल्ला हिन्दुस्तानीवालोंको भी सन्तोष नहीं हो सका। लेकिन इसमें कसूर किसका है? जिन अरबीके शब्दोंके लिए लोग आमफहम और सर्वत्र प्रचलित होनेका दावा करते थे, उनसे दूसरी भाषाओंके विशेषज्ञ यदि अपनेको अनभिज्ञ कहते हैं, तो उनके मत्थे कैसे इन शब्दोंको थोपा जा सकता था? वैसे जो अरबी या फारसीके शब्द अन्य भाषा-भाषी अधिकांश प्रान्तोंमें प्रचलित थे, उनको लेनेमें संकोच नहीं किया गया। अरबीके करार, रद, जामिन, दावा, ज़िला, शर्त, मंजूरी, जुर्माना, वकील, वादा-जैसे शब्द स्वीकार कर लिए गए हैं। इसी तरह और भी बहुप्रचलित कितनी ही विदेशी भाषाओंके शब्द संविधान-परिभाषाओंमें लिए गए हैं:—

दास्तावेज (फारसी)	डिग्री (अंगरेज़ी)
मंजूरी "	फीस "
लगान "	गज़ट "
सिफारिश "	प्रोमिसरी नोट "
बन्दी "	अपील "
कारखाना "	बैंक "
बेकारी "	बोर्ड "
कुर्की (तुर्की)	चेक "
बाज़ार "	कम्पनी "
नौकरी (मंगोल)	फेडरल "

अधिक प्रगतिशील शब्द

भारतकी भिन्न-भिन्न भाषाओंके विशेषज्ञ प्रतिनिधियोंने बड़े सौहार्दके साथ परिभाषाओंके सम्बन्धमें निर्णय किया। कौन शब्द कहाँ चलता है और कौन नहीं चलता, इसका पता लग जानेपर भी सभी लोगोंने शब्दोंकी लेन-देनमें बड़ी उदारतासे काम लिया। परिषदके वाद-संवादसे सभी लोगोंको मालूम हुआ कि सारे देशमें अधिक प्रगतिशील वे ही शब्द हैं, जो संस्कृतसे आए हैं। उनके भी तद्भव रूपोंका एक-सा प्रचार बहुत कम देखा जाता है और तत्सम रूप ही सर्वत्र ग्राह्य है। हिन्दी-भाषा-भाषी तथा उत्तरी भाषाओंके कुछ और प्रतिनिधियोंके लिए पंच और पंचायत अति प्रचलित शब्द मालूम होते हैं; लेकिन तेलुगू, मलयालम आदि दक्षिणी भाषाओंके लिए वे अपरिचित शब्द हैं। इसलिए 'मध्यस्थ' शब्द स्वीकार करना पड़ा। संस्कृतके भ्रमसे बन्दी शब्दको सभी भाषाओंने क़ैदीके अर्थमें स्वीकार किया। यद्यपि यह फारसीका शब्द है, जिसके सत्यनारायण-कथामें आनेसे कितने ही लोग समझते हैं कि यह संस्कृतका शब्द है। संस्कृतमें बन्दी नहीं, वन्दी शब्द है, जो वन्दीजन वन्दना करनेवाला या स्तुति-पाठकका पर्याय है। 'बन्द' संस्कृतके 'बन्ध' धातुका फारसी रूप है, जहाँ महाप्राण व्यंजनोंका अक्सर अल्पप्राण बन जाता है और 'बन्ध' 'बन्द' का रूप लेता है। संस्कृतके बन्ध धातुके धकारको अल्पप्राण 'द' नहीं बनाया जा सकता। अस्तु। 'दोधरा' तद्भव शब्द है, जिसे दक्षिणवालों के लिए द्विगृह बनाना पड़ा। कभी-कभी रूढ़िके कारण एक ही जगह दो शब्द रखना पड़ा। नागरिक और नागरिकता हिन्दी, बँगला आदिमें बहुप्रचलित शब्द है; किन्तु दक्षिणमें उसे चालाक या चालाकीके अर्थमें प्रयुक्त किया जाता है, इसलिए उन लोगोंने पौर और पौरत्व स्वीकार किया।

प्रान्तीय भाषाओंसे भी कुछ शब्द लिए गए हैं। इनमें पंचाठ कश्मीरी भाषाका है, जो 'एवार्ड' का पर्यायवाची है। इसी तरह 'फिशरी' के लिए 'मीनक्षेत्र' तमिल मीन शब्दको लेकर बनाया गया है, जो पहले भी द्रविड़-भाषासे संस्कृतमें लिया जा चुका था। संविधानके जो पारिभाषिक शब्द विशेषज्ञोंकी परिषद्ने स्वीकार किए, सभी निर्विरोध नहीं स्वीकृत हुए; किन्तु साढ़े तीन दर्जन सदस्योंमें से किसी शब्दके विरोधी आधे दर्जन रहे। सबने अन्तमें आशा प्रकट की कि स्वीकृत शब्दोंको सारे देशमें प्रचलित किया जायगा। इन्हीं स्वीकृत शब्दोंका उपयोग हिन्दी-अनुवादोंमें किया गया है।

भावकी नहीं, शब्दकी प्रधानता

साधारण दृष्टिसे देखनेपर कोई-कोई शब्द अनावश्यक गढ़े-से मालूम होंगे और कोई-कोई कह उठेंगे कि उनकी जगह कोई अधिक प्रचलित शब्द लिया जा सकता था। कोई अधिक प्रचलित शब्द क्या, प्रचलित शब्द भी छोड़ा नहीं गया है। लेकिन क़ानूनकी बारिकियोंको ध्यानमें रखना भी आवश्यक था—विशेषकर अंगरेज़ी क़ानून-परम्पराका हमारा देश अभी भी अनुसरण कर रहा है—उसमें भावकी नहीं, शब्दकी प्रधानता मानी जाती है। शब्दकी व्याख्यापर बड़े-बड़े मुकदमोंके फैसले निर्भर करते हैं। रूस और जर्मनी-जैसे देशोंमें भावोंको प्रधानता दी जाती है, इसलिए वहाँ शब्दोंके सम्बन्धमें बालकी खाल नहीं खींची जाती। हमें सम्मति, अनुमति, सहमतिकी तरह कई शब्द सूक्ष्म भेदोंको दिखलानेके लिए स्वीकार करने पड़े हैं। सरकारी अधिकारियों और मन्त्रिमण्डल आदिके सम्बन्धके स्वीकृत कुछ शब्द निम्न प्रकार हैं:—

Administrator-General—महाप्रशासक
Admiralty—नावधिकरण
Advocate-General—महाधिवक्ता
Attorney-General—महान्यायवादी
Auditor-General—महालेखा-परीक्षक
Board (district)—ज़िलापालिका
Board (local —स्थानीय पालिका
Chief Minister—मुख्य मन्त्री
(Prime Minister)—प्रधान-मन्त्री
Civil Courts—व्यवहार न्यायालय
Commission—आयोग
Committee (Select)—प्रवरसमिति
Constituent Assembly—संविधान-सभा
Consul—वाणिज्यदूत
Controller—महालेखा-परीक्षक
Council of Ministers—मन्त्रिपरिषद्
Council of States—राज्य-परिषद्
Council (Regional)—प्रादेशिक परिषद्
Court (Magistrate)—न्यायालय (दण्डाधिकारी)
Court (Supreme)—उच्चतम न्यायालय
Court (Session Judge)—सत्र-न्यायालय
Court of Wards—प्रतिपालक अधिकरण
Criminal Law—दण्ड-विधि
Custom (duty)—सीमा-शुल्क
Defence—प्रतिरक्षा
District Council—ज़िला-परिषद्
Duty (Excise)—उत्पादन-शुल्क
Duty (Death)—मरण-शुल्क
Ellectorial College—निर्वाचकगण
Executive—कार्यपालिका
Excutive power—कार्यपालक शक्ति
Government—सरकार
Governance—शासन
Governor—राज्यपाल
House of the people—लोकसभा
Immunities—उन्मुक्तियाँ
Impeachment—महाभियोग
Instrument—लिखत
Insurance—बीमा
Judge—न्यायाधीश
Justice (Chief)—न्यायाधिपति
Legislative Assembly—विधान-सभा
Legislative Council—विधान-परिषद्
Lietenant Governor—उपराज्यपाल
Minister—मन्त्री
Municipal Corporation—नगर-निगम
Municipal Committee—नगर-समिति
Municipality—नगरपालिका
Parliament—संसद्
Pass ports—पार-पत्र
Police—आरक्षक
Port Quarantine—पतन-निरोधा
President—राष्ट्रपति
Prime Minister—प्रधान-मन्त्री
Proportional representation—अनुपाती प्रतिनिधित
Provisions—उपबन्ध
Regional Commissioner—प्रादेशिक आयुक्त
Savings—व्यावृत्ति
Staffs—कर्मचारीवृन्द
Stock exchanges—श्रेष्ठिचत्वर
Suspend or Suspended—निलम्बन
Territorial—जलप्रांगण
Training—प्रशिक्षण
Tribunal—न्यायाधिकरण
Acting—कार्यकारी
Airways—वायु-पथ
Arbitrator—मध्यस्थ
Armed forces—सशस्त्र-बल
Chairman—सभापति
Disqualification—निर्योग्यता
Involve—अन्तर्ग्रस्त
Prohibition (writ of)—प्रतिषेध (लेख)
Tranquility—प्रशान्ति

केन्द्रने शासन और विधान (क़ानून)-सम्बन्धी परिभाषाओंके

निर्माणका काम भी हाथमें ले लिया है। ये परिभाषाएँ ४० हज़ारसे कम न होंगी। हमें आशा है, वह १९५१ तक खत्म हो जायँगी। सारे देशके न्यायालयों, विधानमण्डलों तथा पार्लमेण्ट एवं सरकारी कार्यालयोंके व्यवहारके ५० हज़ार शब्दोंमें ४९ हज़ार यदि एक हो जायँ, तो यह हमारी राष्ट्रीय एकताके लिए कितनी बड़ी बात होगी, इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं। इसके साथ यह भी याद रखनेकी बात है कि ऐसी एकताके लिए ज़बरदस्तीकी आवश्यकता नहीं। वह तो आसामी, बँगला, उड़िया, तेलुगू, मलयालम, कन्नड़, मराठी, गुजराती, हिन्दीकी स्वाभाविक प्रवृत्तिके ही उपयोगसे सुसाध्य है। इस एकताके कारण हमारी भाषाएँ एक दूसरेसे और भी नज़दीक आ जायँगी, इसमें सन्देह नहीं। यह हिन्दी ही नहीं, देशकी सारी भाषाओंका सम्मिलित उत्थान है, जिससे हमारी भाषाओंका नया युग आरम्भ हो रहा है। इसको पूरा करनेके लिए वैज्ञानिक परिभाषाओंके सम्बन्धमें इसी प्रकारके प्रयत्नकी आवश्यकता है।

वैज्ञानिक परिभाषाओंकी संख्या ४-५ लाख सुनकर घबरानेकी आवश्यकता नहीं है। जिन लोगोंने परिभाषा-निर्माणमें हाथ लगाए हैं, वे जानते हैं कि यह इष्टसाध्य ही नहीं, कृतसाध्य भी हैं। किन्तु यह अच्छा नहीं है कि यह काम भिन्न-भिन्न भाषाएँ अलग-अलग करें। इससे परिभाषाओंमें भिन्नता आयगी, जिसे परिभाषाओंके संस्कृतमूलक होनेके कारण आसानीसे रोका जा सकता है। यह खेदजनक बात है कि हिन्दीमें भी परिभाषाओंके निर्माणका काम एकसे अधिक जगहोंमें हो रहा है। सबसे अच्छा तो यह होता कि इस कामको भी केन्द्र अपने हाथ ले लेता। लेकिन हमारे शिक्षा-मन्त्री और शिक्षा-विभागकी जो नीति है, उससे कोई आशा नहीं रखी जा सकती। अभी तो इन्हें जैसे हो, तैसे अरबी-फारसी शब्दोंको हिन्दीके मत्थे मढ़नेके महायोजनसे ही फुर्सत नहीं है। हिन्दी-क्षेत्रके बाहरके कितने ही बड़े-बड़े विज्ञानशास्त्रियोंकी धारणा है (जिसके पोषक हिन्दी-क्षेत्रमें भी दुर्लभ नहीं हैं) कि अपनी भाषा द्वारा ज्ञान-विज्ञानका अध्ययन हमारे ज्ञान-तलको नीचे गिरा देगा। इसलिए साइन्सका अध्ययनाध्यापन केवल अंगरेज़ी द्वारा होना चाहिए। उनके तर्कके अनुसार तो हमारे राष्ट्रको साइन्सके सम्बन्धमें सदा अंगरेज़ीका मुँह जोहते रहना चाहिए। लेकिन क्या जापानने विज्ञानकी शिक्षा आरम्भ करते समय ऐसा सोचा था? हमारे एक-एक ज़िलेके बराबर देश अपने विश्वविद्यालयमें अपनी भाषा द्वारा शिक्षा देते क्या कभी ऐसा सोचते हैं? वे ऐसा करके सफल रहे हैं, इसका पता तो उनके यहाँके विज्ञानके नोबेल-पुरस्कार-विजेता हैं। विज्ञानकी शिक्षामें कोई भी देश अपनी भाषा तक ही अपने ज्ञानको सीमित नहीं रखता। सभी देशोंके अनुसन्धानकर्त्ता दो-तीन दूसरी समृद्ध भाषाओंका भी व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करते हैं। हमारे देशमें भी यही करना होगा और विज्ञानके विद्यार्थियोंके लिए यूरोपकी समृद्ध भाषाओंमें से कम-से-कम दोके व्यावहारिक ज्ञानको अत्यावश्यक मानना होगा। लेकिन इससे अपनी भाषाके माध्यम बननेकी अनिवार्यताको कम नहीं किया जा सकता। वैज्ञानिक परिभाषाओंके निर्माणका प्रबन्ध जब तक केन्द्रसे नहीं होता, तब तक हमें हाथ-पर-हाथ रखकर बैठे नहीं रहना चाहिए। बिहार, युक्त-प्रदेश, मध्य-प्रदेश, मध्य-भारत, राजस्थान और पंजाबकी सरकारोंको सम्मिलित रूपसे इस कामको चाहे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके द्वारा या स्वतः कराना चाहिए। केवल १५ विद्वानों और १५ सहायकोंके दो वर्ष और दस लाखके व्ययकी आवश्यकता है, यदि सम्मेलन द्वारा इस कामको कराया जाय।

हिन्दीको इस नये युगमें अपने साहित्यकी पूर्णताको प्राप्त कराना है। परिभाषाओंके बन जानेकी देर है। साहित्यका सृजन तो स्वतः होने लगेगा; क्योंकि उसकी सबसे बड़ी माँग स्कूलों और कालेजोंकी पाठ्य-पुस्तकोंके रूपमें होगी, जिसके लिए प्रकाशक सब-कुछ करनेके लिए तैयार हैं। हिन्दी-माध्यमसे विज्ञान-पढ़े लोगोंकी संख्या-वृद्धिके अनुसार वैज्ञानिक साहित्यके सृजनमें भी वृद्धि होगी।

वर्ड्सवर्थ और प्रकृति

श्रीमती शचीरानी गुर्टू, एम० ए०

अनादि कालसे प्रकृतिकी मनोरम क्रोड़में मानवकी सहज अन्तर्वृत्तियाँ प्रश्रय लेती आई हैं। मानवके चारों ओर प्रकृति फैली हुई है। प्रकृतिका रूपात्मक सौन्दर्य मनुष्यके मानसपर प्रतिबिम्बित हो रहा है, और प्रकृतिकी गति मानस-चेतनाको ग्रहण कर रही है। इहलोक और परलोक दोनों ही के साधक प्रकृति-बालाके मादक सौन्दर्य एवं रूप-लावण्यके समक्ष श्रद्धानत हैं। राजप्रासादोंकी कृत्रिम शोभा और नगरोंका क्रीड़ा-कौतुक इस प्रवृत्तिका दमन न कर सका। योगियोंकी साधारण दृष्टि भी इस कला-विलासिनीके सौन्दर्योपभोगका लोभ संवरण न कर सकी। यही कारण है कि जीवके प्रत्येक स्पन्दनमें प्रकृतिकी अगणित वर्षोंकी तपस्या प्रतिफलित है।

प्रकृति-उपासक महाकवि विलियम वर्ड्सवर्थकी कृतियोंमें प्रकृति मानो सजीव हो उठी है। उनकी कवितामें न तो कल्पनाकी क्रीड़ा है, न कलाकी विचित्रिता। वह है प्रकृतिकी ही एक मनोहर झाँकी और उसीके स्वरूपका मधुर ध्यान। प्रारम्भसे ही कविका बाल-हृदय प्रकृतिके विभिन्न रूपोंके प्रति प्रश्नशील है और वह प्रकृतिकी गति और विभिन्नतामें किसी व्यापक रहस्यात्मक शक्तिका संकेत पाना चाहता है। वह समझना चाहता है और प्रकृतिके समस्त प्रसाधनों एवं अलंकारोंपर मुग्ध हो अपनेसे ही प्रश्न करता है—ये वस्तुएँ कैसे उत्पन्न हो गईं? ये गुलाब, चमेली, बेला इत्यादि पुष्प क्यों खिलते हैं? अगणित पुष्पों एवं श्यामल द्रुम-लताओंसे विभूषित विशाल कानन, अनन्त ऊर्मियोंसे प्रताड़ित गहन गम्भीर समुद्र, मन्द-मन्द गरजते मेघोंका मेरु-रंजित शृंगोंसे लगा दिखाई देना और फिर उस पर्वतके नीचे स्वच्छ शिलाओंपर फैले हुए जलमें आकाश और बनस्थलीका प्रतिबिम्ब, लहलहाते हुए खेतों और जंगलों, हरी घासके बीच घूम-घूमकर बहते हुए नालों, काली चट्टानोंपर चाँदीकी भाँति ढलते हुए झरनों, मंजरियोंसे लदी हुई अमराइयों, झाड़ियों, चहचहाते पक्षियों, ओस-कणों और जल-प्रपातके गम्भीर गर्त्तसे उठी हुई सीकर-निहारिकाके मनोहर दृश्योंको वह मनोमुग्ध दृष्टिसे देखता है। उसे जलसिक्त तात्कालिक जोती हुई धरती तथा भोली चितवनवाली ग्राम-वनिताओं, बाल्यावस्थाके साथी वृक्षों, रंग-बिरंगे मधु-मदिर सुगन्धिवाही पुष्पों, नीलम-सदृश हरित कँटीले कटावदार पौधों, विविध रसपूर्ण कच्चे या पक्के फलों, प्रियतम अम्बुधिकी चाहमें दौड़ी जानेवाली सरिताओं एवं समस्त प्राकृतिक उपादानोंमें असाधारणत्वकी प्रतीति तथा चिर परिचित साहचर्य-सम्भूत रसकी अनुभूति होती है:—

Magnificient
The morning rose in memorable pomp
Glorious as ever I had beheld in front
The sea lay laughing at a distance; near
The solid mountain shone, bright at the clouds,
Grain-tinctured, drenched in empyrean light;
And in the meadows and the lower grounds
Was all the sweetness of the common dawn
Dews, vapours, and the melody of birds
And labourers going forth to till the fields.
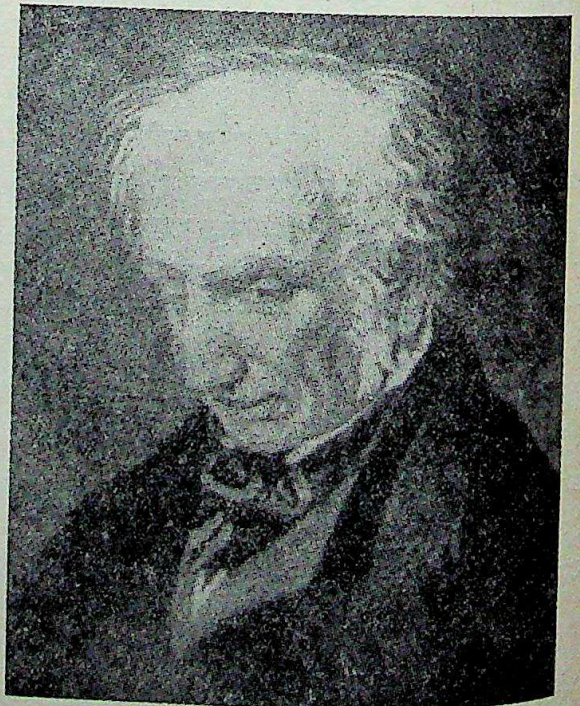
विलियम वर्ड्सवर्थ

ज्यों-ज्यों कविकी बुद्धिका विकास होता है, उसकी सहज भावनाकी सौन्दर्यानुभूतिमें प्रकृति सचेतन और सप्राण हो

उठती है, पुनः उसीके साथ सम होकर आनन्दसे उल्लसित होती है। शनैः-शनैः इस आत्म-चेतनाके प्रसारमें प्रकृति सर्वचेतन हो उठती है और उस क्षण प्रकृति उसे अपनी ही चेतनाका एक रूप और गति प्रतीत होती है।

वाणी मूक है और शब्द मौन; उसकी आत्मा इस दृश्यके सौन्दर्य-रसका आस्वादन कर रही है। मन, शरीर, प्राण सभी तो उसमें विलय हो गए हैं, उसका पार्थिव शरीर ही मानो उसमें जा समाया है। उन दृश्योंमें ही वह खोया-सा खड़ा है, उन्हींमें उसकी चेतना और प्राण केन्द्रित हैं। ईश्वर-प्रदत्त सुखोंमें विभोर वह अपने अन्तर्मानसको विचारोंसे नितांत शून्य पाता है, इनमें ही मानो वे खो गए हैं। धन्यवाद वह नहीं दे सकता। शोक प्रकट करनेमें भी वह असमर्थ है। अपनी मूक अन्तर्चेतनासे एकरूप हो वह उस परम शक्तिकी अभ्यर्थना में संलग्न है, जिसने उसका सृजन किया और जो उस दिव्य-प्रेम एवं ब्रह्मानन्दकी अनुभूति कर रहा है, जो प्रशंसा और अनुनयसे परे है।
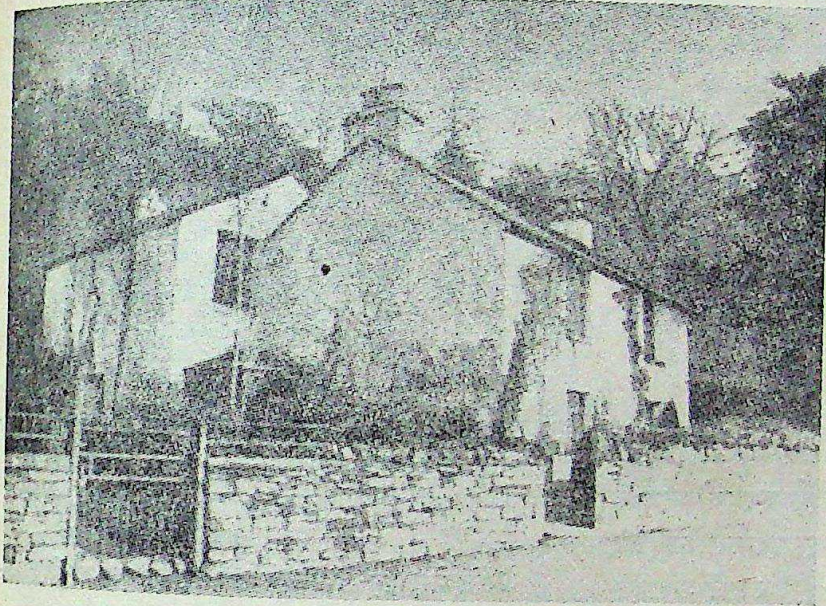
प्रकृतिकी गोदमें वर्ड्सवर्थकी कुटिया

Ocean and earth, the solid frame earth
And ocean's liquid mass in gladness lay
Beneath him.—Far and wide the clouds were touched
And in their silent faces could be read
Unutterable love. Sound needed none,
Nor any voice of joy; his spirit drank
The spectacle; sensation, soul and form
All melted into him; they swallowed up
His animal being; in them did he live,
And by them did he live; they were his life.
In such access of mind, in such high hour
Of visitation from the living God,
Thought was not; in enjoyment it expired,
No thanks he breathed, he professed no regret;
Rapt into still communion that transcends
The imperfect offices of prayer and praise
His mind was a thanksgiving to power
That made him; it was blessedness and love.

अर्थात् पृथ्वी और समुद्र, समस्त दृश्य जगत् और उसके समक्ष फैला हुआ अम्बुधिका निस्सीम जल-समूह एक विचित्र आनन्दानुभूतिसे ओतप्रोत हैं। इतस्ततः जलको स्पर्श करते हुए मेघ अव्यक्त प्रेमकी सृष्टि करते हैं। आनन्दकी अभिव्यक्तिमें

प्रकृतिके इस सर्वचेतनवादी दृष्टिकोणमें कविकी अनुभूति प्रकृतिसे ऐसी समन्वित हो जाती है कि उसे प्रकृतिके प्रति आश्चर्य-चकित और प्रश्नशील होनेका अवसर ही नहीं मिलता। यही कारण है कि वह सर्वचेतनवादी सृष्टिके स्रष्टा और सृजन के सूत्रधारके प्रति अपना आग्रह प्रकट नहीं करता। वह अपनी सीमाओंमें अनिश्वरवादी ही रहता है। प्रकृति ही उसके जीवनका आधार, प्रेमकी साधना, है। उसके प्रत्येक संकेतमें, जिज्ञासामें, प्रार्थनामें, ध्वनिमें प्रकृतिका अनुग्रह निहित है। वही उसकी प्राणाधिका सखी, जीवन-सहचरी, संरक्षिका, पथ-प्रदर्शिका, आनन्ददायिका, पवित्र भावोंका सृजन करनेवाली जीवन-ज्योति है:

Well-pleased to recognize
In Nature and the language of the sense
The anchor of my purest thoughts
The guide, the guardian of my heart,
And soul of all my moral being.

प्रकृतिके विभिन्न स्वरूपोंने कविकी भावनाओंको विलोड़ित किया है। अलंकारोंसे विभूषित हो वह बहुरंगिनी उसकी भावनाओंको हँसाती-रुलाती है और कभी चेतन-मानवके

अगाध-प्रेम एवं समादरकी भावनापर मुग्ध हो उसपर अपना बरदान बिखेरती है। कभी वह सरल साधिकाकी भाँति ज्ञानोपदेश द्वारा उचित मार्ग-निर्देश करती है और कभी रहस्यमयी चुँदरी ओढ़कर उसके लिए गूढ़-चिन्तनका विषय बन जाती है। यही नहीं, वह कभी चंचला स्वयं माननीय रूप धारणकर छायावादी अवगुण्ठनसे झाँक उसे विमोहित करती है और कभी आकर्षक, मनोहारी, अल्हड़ भावसे अतीतकी मधुर स्मृतियोंको गुदगुदा देती है। प्रेमकी अभिव्यक्तिके रूपमें कवि अपने भावोंको प्रकृतिमें प्रतिबिम्बित देखता है। प्रेमकी वेदनाका रूप यदि प्रकृतिमें है, तो प्रेमकी तृप्ति भी उसीमें दिखाई देती है। कभी-कभी प्रकृतिके विराट वक्षःस्थलमें वह अपने भावोंको भर सामनेसे हट जाता है :

The gross and visibie frame of things
Relinquishes its hold upon the sense
Yea, almost on the mind itself, and seems
All unsubstantialised.

सच तो यह है कि प्राकृतिक सौन्दर्य एवं सौकुमार्यकी उपासनामें अहर्निश निरत वर्ड्सवर्थने सुन्दर एवं सरस भावोंकी लड़ियाँ पिरोकर अपने काव्यको सजाया है। उसकी अन्तर्हित भावनाएँ मानो साकार हो उठी हैं :

It was on April morning; fresh and clear,
The rivulet delighting in its strength,
Ran with a youngman's speed; and yet the voice
Of waters which the river had supplied
Was softened down into a vernal tone
The spirit of enjoyment and desire
And hopes and wishes, from all living things
Went circling, like a multitude of sound

अर्थात् अप्रैलका सुन्दर, स्वच्छ प्रभात है। क्षुद्र नदी अपनी पूर्णतासे गर्वित हो यौवनकी मदमाती चालसे प्रवाहित हो रही है। नदीके बहते जलकी प्रतिध्वनि वासन्तिक वायुमें जा विलीन होती है। सभी सजीव वस्तुओंसे आनन्द और आकांक्षा, आशाएँ और इच्छाएँ विभिन्न ध्वनियोंकी भाँति फूटी पड़ रही हैं।

ग्रीष्म-जैसी मनहूस ऋतुका वर्णन करते हुए कोई भी कवि प्रकृतिके उन नाना रूपों एवं दृश्यों तक नहीं पहुँच पाया है, जिसका वर्णन वर्ड्सवर्थकी कविताओंमें अनायास ही मिलता है :

The northern downs
In clearest air ascending, showed far off
A surface dappled over with shadows fleecy
From brooding clouds.

यहाँ देखिए—गर्मीकी प्रचण्डताको भी वह छन्दोबद्ध कर सकता है :

Flaunting summer when he throws
His soul into the briar rose.

कविके लिए व्यक्त सत्य है—प्रकृति और मानव। इन्हींके आध्यात्मिक प्रणयका रूप उसे सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। इन्हींसे अन्तर्भूत रूप-व्यापार उसके हृदयपर मार्मिक प्रभाव डालकर उसके भावोंका प्रवर्त्तन करते हैं। इन्हीं रूप-व्यापारोंके भीतर उसे भगवदीय कलाका साक्षात्कार होता है, इन्हींका सूत्र पकड़कर उसकी भावना अव्यक्त सत्ताका आभास पाती है। प्रकृतिके रोम-रोममें, कण-कणमें एक दिव्य, अलौकिक शक्ति सन्निहित है। उसकी दृष्टिमें प्रकृति निर्जीव नहीं, प्रत्युत् सजीव एवं सप्राण है। वह मनुष्यके दुःख-सुखमें योग देती है। वह उसके साथ रोती है, हँसती है। वह उसकी महत्त्वाकांक्षाओं, दुर्बलताओं, इच्छाओं, वेदनाओं तथा सुखोंमें सदैव साथ रहती है। एक स्थलपर वह कहता है :

And it is my faith that every flowr enjoys
the air it breathes.

अर्थात् मेरा दृढ़ विश्वास है कि प्रत्येक पुष्प वायुके श्वास-प्रश्वासका अनुभव करता है।

प्रकृति ही उनके जीवनकी क्रीड़ा एवं मधुर मुस्कान है—
It is her privilege, through all the years of this our life to lead from joy to joy. प्रकृतिके विस्तृत प्रांगणमें उसे निरन्तर अव्यक्त सत्ताका आभास होता है :

A motion and a spirit that impels
All thinking things
All objects of all thoughts
And rolls through all things.

कविके कानोंमें निरन्तर यह प्रश्न गूँजता रहता है—वह कौन शक्ति है, जो यह सब चुपचाप करती है ? अन्तमें इस जिज्ञासाका समाधान होता है—प्रश्नका उत्तर भी कविको स्वयं ही मिल जाता है कि निस्सन्देह इस अनुपम सृष्टिका स्रष्टा कोई अव्यक्त शक्ति है, जिसने मनुष्य-मात्रकी रक्षाके लिए केवल अपनी इच्छाशक्ति द्वारा इसका सृजन किया है। तो क्या मानव-जीवनमें ज्योतिका अन्तर्साक्ष्य करानेवाली प्रकृति ही है ? कविकी वाणी मूक हो जाती है, भाव स्तब्ध हो जाते हैं। उसे प्रकृतिके गर्भमें, सृष्टिके अन्तरालमें अद्भुत, अलौकिक, दिव्य प्रकाशका आभास होता है, जो उसके रोम-रोममें परिव्याप्त होकर कविता द्वारा व्यक्त होता है।

गुरुदक्षिणा

श्री रतनलाल बंसल

एक-एक, दो-दो करके सौसे अधिक वर्ष बीत गए, तब कहीं एक दिन गुरु विश्वामित्रने अपने शिष्य गालवसे कहा—"वत्स गालव, मैं तेरी सेवा-सुश्रूषासे प्रसन्न हूँ। जा, तेरी साधना पूर्ण हुई।"

गालवके आनन्दका वारापार नहीं। ओह, कैसा स्वर्णिम क्षण है यह, जब गुरुजीके मुखसे ये अमृत-वचन निकले हैं! अब तो वह भी शिष्य बनानेका अधिकारी हो गया। बड़े-बड़े राजाओंके पुत्र अब उसके आश्रममें भी पढ़नेके लिए आवेंगे। अभिमानी-से-अभिमानी राजा भी अब उसके चरणोंमें प्रणाम करेंगे। आशीर्वादका एक वाक्य सुननेके लिए धनी-से-धनी गृहस्थ वैश्य अब उसकी भी बाट जोहा करेंगे और उसके निकलनेके मार्गमें भी किसी दीवारके पीछे सहस्रों शूद्रोंकी टोलियाँ अब यह प्रतीक्षा किया करेंगी कि गालव मुनि इधरसे निकल जायँ, तो उनके पदोंका स्पर्श-प्राप्त पथ-रजके दो कण फाँककर अपना जीवन धन्य कर लें।

गालव इस सुखद कल्पनामें इतना तन्मय हो गया कि उसे गुरु विश्वामित्रकी उपस्थितिका स्मरण भी न रहा। उसने एक बार पृथ्वीपर अपने माथेको टेककर उन पूर्वजोंको साष्टांग प्रणाम किया, जो इस प्रकारका विधान रच सके थे।

"क्या सोच रहा है, गालव? मैं कह रहा हूँ कि तेरी साधना पूर्ण हुई। अब तू अपने घर लौट सकता है।"—विश्वामित्रने स्नेह-भरे स्वरमें कहा।

गुरुके इन वाक्योंने शिष्यके मनको नवचेतना दी और गालवको बोध हो आया कि वह इस समय गुरु विश्वामित्रके सम्मुख है। उसने कहा—"आपके चरणोंकी कृपा है, देव! आपकी इस कृपाके लिए मैं जन्म-जन्म आभारी रहूँगा। किन्तु गुरुदेव, बिना गुरुदक्षिणा चुकाए मैं घर कैसे वापस जा सकता हूँ?"

विश्वामित्रको इस बातका गर्व रहा है कि वे अन्य ऋषियोंकी भाँति लीक-लीक नहीं चलते। वशिष्ठ-जैसे प्रधान पुरोहितको पराजितकर, शास्त्र-मर्यादा और उनके समस्त विधि-विधानोंकी उपेक्षा करके उन्होंने जन्मजात क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मणकी संज्ञा प्राप्त कर ली थी। ब्राह्मण जो-कुछ कहते-करते हैं, उसपर दिन-रात आघात करना ही उनका मनोविनोद था। अतः गुरुदक्षिणाकी रूढ़ि भी क्यों न भंग कर दी जाय, यह विचार उनके मनमें स्वभावतः उठा, और वे तत्क्षण बोल उठे—"गालव, गुरुदक्षिणाकी चिन्ता मत करो। मैं तुमको इस भारसे मुक्त करता हूँ। बिना गुरुदक्षिणा प्राप्त किए ही मैं तुमको तुम्हारी साधनामें उत्तीर्ण घोषित करता हूँ।"

गालवका आनन्द द्विगुणित हो गया। किन्तु तभी उसे एक सन्देहने आ घेरा। विश्वामित्रकी शिष्यता स्वीकार करनेके कारण यों भी ब्राह्मण उससे द्वेष मानेंगे। फिर कहीं उन्होंने यह अपवाद फैला दिया कि गालव बिना गुरुदक्षिणा चुकाए ही गुरुके आश्रमसे चला आया है, तो कहीं उसे मिलनेवाली दान-दक्षिणामें व्यवधान न उपस्थित होने लगे। गालव कुछ क्षण तक सोचता रहा। उसके पश्चात् उसने विनीत स्वरमें कहा—"आपकी उदारता अभिनन्दनीय है, गुरुदेव! किन्तु बिना गुरुदक्षिणा दिए मैं अपनेको कैसे उत्तीर्ण समझ सकूँगा? मेरी प्रार्थना है कि आप गुरुदक्षिणाके लिए कुछ तो आज्ञा करें।"

विश्वामित्रने ब्राह्मणोंके हाथों जो लांछना और तिरस्कार सहे हैं, उनके कारण वे ब्राह्मणों द्वारा रचे गए शास्त्रोंके आधारपर अपना क्षणिक विरोध भी नहीं सह पाते। विश्वामित्र समझ गए कि गालव शास्त्र-मर्यादाके कारण ही गुरुदक्षिणाके लिए आग्रह कर रहा है। उनका क्रोध भभक उठा और उन्होंने दाँत किटकिटाते हुए कहा—"मूर्ख! तू गुरुदक्षिणा देना ही चाहता है, तो चन्द्रमाके समान उज्ज्वल वर्णके आठ सौ घोड़े, जिनके कान कृष्ण वर्णके हों और जो उत्तम वंशके हों, लाकर दे। मैं यही गुरुदक्षिणा तुझसे माँगता हूँ।"

गुरु विश्वामित्र यह कहकर अपनी कुटीमें चले गए। गालवको जान पड़ा कि क्षण-भरमें उसके समस्त सुख-स्वप्न धूलमें मिल गए। 'अब यदि बिना गुरुदक्षिणा चुकाए ही वह चला जाय, तो?'—गालवने अपनेसे ही प्रश्न किया। किन्तु इसके उत्तरने उसके रोम-रोमको सिहरा दिया। फिर तो वह शापभ्रष्ट शिष्य माना जायगा और चाण्डालसे भी बदतर समझा जायगा। समाज उसे तिरस्कृत करेगा। यजमान उसका मुँह देखना भी पाप समझेंगे और स्वयं उसके परिवारके

व्यक्ति भी उससे घृणा करेंगे। गालव वहीं बैठ फूट-फूटकर रोने लगा।

—२—

राजा ययातिका दरबार लगा हुआ था। अकस्मात् द्वारपालने सूचना दी कि पक्षिराज गरुड़ अपने एक ब्राह्मण मित्रके साथ राजासे मिलने आए हैं। सुनते ही राजा ययाति द्वारपर स्वागत करनेके लिए चले। ब्राह्मणके आगमनकी सूचना पाते ही राजसिंहासनको त्यागकर उसकी अभ्यर्थनाके लिए दौड़ पड़ना राजाओंके सम्मान और जनताके प्रति उनके आतंकमें वृद्धि ही करता था। लाखों-करोड़ों प्रजाजन इसी भयसे राजाका निरंकुश शासन सहते रहते थे कि राजाओंपर ब्राह्मणकी कृपादृष्टि है। राजा उनसे श्राप दिलाकर हमें भस्म करा सकता है।

पक्षिराज गरुड़ और गालवको लिए हुए राजा पुनः दरबारमें लौटा, तो समस्त दरबारियोंने दोनों अतिथियोंकी भाँति-भाँतिसे अभ्यर्थना की। तत्पश्चात् पक्षिराजने गालवका परिचय राजाको देते हुए बताया कि गालव गुरुदक्षिणा दे सकें, इतना धन माँगनेके लिए राजा ययातिकी शरणमें आए हैं।

गालव महर्षि विश्वामित्रके शिष्य हैं, यह सुनते ही ययाति काँप उठा। क्षण-भरमें भड़क उठनेवाले महर्षि विश्वामित्रके—जो वशिष्ठ-जैसे ब्राह्मणोंके नेताकी इच्छाके विरुद्ध भी ब्राह्मण बन कर ही रहे—शिष्यको सन्तुष्ट कर देनेमें ही कुशल है। किन्तु ययाति इतना धन कहाँसे लावे, जिससे गालव वैसे आठ सौ घोड़े खरीद सकें, जैसे महर्षि विश्वामित्रने माँगे हैं। ययाति बहुत देर तक यही सोचता रहा। उसकी साँप-छछूँदरकी-सी गति हो रही थी। ब्राह्मणको असन्तुष्टकर लौटानेमें भी विपत्ति है; क्योंकि इससे ब्राह्मणोंकी मानहानि होती है, और यदि ब्राह्मणोंके प्रति जनतामें अश्रद्धा उत्पन्न हो गई, तो राज्य-शक्तिका मुख्याधार ही समाप्त हो जायगा। किन्तु सन्तुष्ट करना भी तो असम्भव है।

अन्तमें राजा ययातिने कहा—"महर्षे! अब मैं पहलेकी तरह धनी नहीं हूँ, जो आपको इतना धन दे सकूँ, जिससे आप गुरुदक्षिणामें देने योग्य आठ सौ अश्व खरीद सकें। पर देव, मैं आपको निराश भी नहीं लौटा सकता। अतः मैं आपको एक ऐसा रत्न भेंट करूँगा, जिसे बेचकर आप गुरुदक्षिणा जुटाने योग्य धन प्राप्त कर सकेंगे।"

गालवको सन्तोष हुआ। पक्षिराज गरुड़के मुखपर भी सन्तोषकी आभा दिखाई देने लगी। समस्त दरबारी जिज्ञासा-भरे नेत्रोंसे राजाके मुँहकी ओर देखने लगे।

"देव, मेरी एक कन्या है—अपूर्व सुन्दरी और सभी गुणोंसे सम्पन्न। उसका नाम माधवी है। त्रिलोकमें कोई ऐसा नहीं, जो उसे वरण करनेकी इच्छा न रखता हो। सुर, असुर, आर्य, अनार्य, सभीको मोह लेनेकी उसमें अपूर्व शक्ति है। मैं अपनी उस पुत्रीको आपके अर्पित कर रहा हूँ। आप उसे किसी भी राजाको बेचकर सहज ही गुरुदक्षिणा जुटाने योग्य धन प्राप्त कर सकेंगे।"

राजाने अपने ऊपर आई हुई यह आपत्ति ऐसी निपुणताके साथ टाल दी, यह देखकर दरबारके नीतिज्ञ सदस्योंका हृदय प्रसन्नता और सन्तोषके आनन्दसे भर उठा। वे जानते थे कि माधवीके रूप-लावण्यकी प्रशंसासे आकर्षित होकर यदि किसी दिन कोई भी ऋषि उसे माँग बैठते, तो राजाको उसे देना ही पड़ता। इसलिए उस कन्या द्वारा विश्वामित्र-जैसे शक्तिशाली व्यक्तिकी कृपा प्राप्त कर लेनेमें केवल लाभ-ही-लाभ है। साधारण दरबारी राजाकी ऐसी ब्राह्मण-भक्ति देखकर पुलकित हो उठे। उनकी जिह्वा साधारण जनतामें इस घटनाका प्रचार करनेके लिए आतुर होने लगी। कुछ लोग राजाका जय-जयकार भी करने लगे।

जब गालव उस अपूर्व लावण्यवती कन्याको साथ लेकर चले, तो उनका हृदय सफलताके आनन्दसे ओतप्रोत था। आगे-आगे गालव, उनकी बगलमें गालवके मित्र पक्षिराज गरुड़, पीछे अपने रूपका प्रकाश फैलाती हुई सभीत हरिणीकी भाँति कन्या माधवी, उसके पश्चात् राजा ययाति और फिर दरबारी तथा प्रजाजन। नगरकी सीमा समाप्त हो जानेपर दूसरे लोग वापस लौट गए। और भविष्यकी आशंकासे भयभीत माधवीको लेकर गालव अपने मित्र गरुड़के साथ शीघ्रतासे एक विशेष दिशामें बढ़ने लगे।

उत्तरार्द्ध

वृक्षों, लताओं तथा भाँति-भाँतिके झाड़-झंखाड़ोंसे युक्त उस घोर वनमें एक शिलाखण्डपर बैठी हुई ययाति-पुत्री माधवीका मन आज पूर्व-स्मृतियोंसे पुनः भर उठा है। उसे स्मरण आ रहा है कि किस प्रकार उसके पिता ययातिने उसे एक अनजाने व्यक्ति गालवको दान कर दिया था कि वे उसे अपनी गुरुदक्षिणा जुटानेके लिए किसी धनी आदमीके हाथों बेच दें। चलते समय किस प्रकार उसकी माताने अपनी

छातीसे उसे छिपा लिया था। किन्तु बेचारी माँ उन नरपुंगवोंसे भला कैसे उसकी रक्षा कर सकती थी! बाहर खड़ा जनसमूह राजा ययातिका जयजयकार कर रहा था। धर्म और ब्राह्मण-भक्तिकी वेदीपर आज एक निरीह कन्याका बलिदान जो हो रहा था! माधवीको स्मरण हो आया कि उस जयजयकारमें और किसी पशुको बाँध दिए जानेपर आखेटकों द्वारा होनेवाली हर्षध्वनिमें कितनी अधिक समता थी!

इसके पश्चात् माधवीके नेत्रोंके सम्मुख एक दूसरा चित्र आ गया। इक्ष्वाकुवंशी राजा हर्यस्वके दरबारमें गालव माधवीके साथ प्रविष्ट होते हैं। गालवका ब्राह्मण-वेश देखते ही हर्यस्व राजसिंहासनसे उतरकर उनकी अभ्यर्थना करता है; किन्तु तभी उसकी दृष्टि माधवीपर पड़ती है। ओह, कैसी कामलोलुप दृष्टि थी वह! माधवीका समस्त शरीर उस दृष्टिका स्मरण करके आज भी सिहर-सा उठा।

फिर गालवने किस प्रकार भरे दरबारमें माधवीके अंग-प्रत्यंगका प्रदर्शन करते हुए उसके बदलेमें राजासे आठ सौ अश्व माँगे थे। किस रसिकतासे राजाने माधवीका निरीक्षण किया था और फिर गालवकी हाँ-में-हाँ मिलाते हुए बोल उठा था—"सचमुच गालव, आप जिस कन्याको लाए हैं, वह—

उन्नतेषून्नता षट्सु सूक्ष्मा सूक्ष्मेषु सप्तसु।
गम्भीरा त्रिषु गम्भीरेष्वियं रक्ता च पञ्चसु॥

षट् उन्नत स्थानों (हाथ, पाँव, कुच, नितम्ब, चक्षु और स्कन्ध) में उन्नत है और सात सूक्ष्म स्थानों (केश, दाँत, त्वचा, हाथ-पाँवकी उँगलियाँ और उनके पोरुये) में सूक्ष्म है। तीन गम्भीर स्थानों (नाभि, स्वर और मन) में गम्भीर है और पाँच रक्त-स्थानों (करतल, नेत्र-प्रान्त, तालु, जिह्वा और अधरोष्ठ) में रक्तवर्ण है।"

गालव राजाके इस रस-भरे वर्णनपर ठठाकर हँस पड़े थे और उस हँसीमें सभी दरबारियोंने साथ दिया था। एक तरुण कन्याका मोल इस प्रकार उन धर्मात्माओंके दरबारमें हो रहा था! छिः…छिः! माधवीने दोनों हाथोंसे अपने मस्तकको थाम लिया। उसे भय था कि कहीं वह फट न जाय। स्मृतियोंके चलचित्र फिर भी उसके नेत्रोंके आगे नाचते ही रहे।

फिर गालवने उस कन्याके बदलेमें राजासे आठ सौ अश्व माँगे थे; पर राजाके पास केवल दो सौ ही अश्व थे। गालवको जान पड़ा था, जैसे हाथमें आया हुआ गाहक निकला जा रहा है और उधर राजाका मुख भी मलिन हो गया था।

रास-विलासकी जो कल्पनाएँ माधवीको देखते ही उसके मनमें उन्मत्त होकर नाच उठी थीं, वे सब जैसे एक स्वप्नके समान मिथ्या सिद्ध हुई जा रही थीं!

और मैं?… माधवी सोचने लगी कि उस समय मेरी क्या हालत थी? ओह, मैंने चाहा था कि अब यह मोल-तोल शीघ्र-से-शीघ्र समाप्त होकर मुझे कोई निश्चित् आश्रय मिल जाय। मैं जानती थी कि गालव यदि यहाँसे असफल होकर लौटे, तो फिर किसी दूसरे राज-दरबारमें मेरा इसी प्रकार प्रदर्शन करेंगे। आह, कैसा नग्न प्रदर्शन था वह!

राजाने तभी प्रस्ताव किया—"हे महामुने! यदि आप इस कन्याको एक पुत्र उत्पन्न होने तक मेरे पास रख सकें, तो इसके बदलेमें मैं आपको वैसे दो सौ घोड़े देनेको सहर्ष प्रस्तुत हूँ, जैसे आप चाहते हैं।"

गालव चिन्तामें पड़ गए थे। उनको चाहिएँ थे आठ सौ अश्व और राजासे मिलेंगे केवल दो सौ ही। उस समय गालवने यह सिद्ध कर दिया था कि महर्षि विश्वामित्रसे उन्होंने केवल दर्शन ही नहीं पढ़ा है, बल्कि वणिक बुद्धिकी दीप्तता भी प्राप्त की है। 'एक पुत्र उत्पन्न होने तकके समयके लिए दो सौ अश्व, तो फिर इसी प्रकार चार राजाओंके पास बारी-बारीसे इस कन्याको रख देनेपर आठ सौ अश्व मिल ही जायँगे। पर इस भोगी हुई कन्याको कोई दूसरा राजा इसी मूल्यमें ले सकेगा?…' गालवके मनमें उस समय यही चिन्ता शंका उत्पन्न कर रही थी। कन्याओंका क्रय-विक्रय तो दिन-रात चलता ही रहता था, अब उनको इस प्रकार किरायेपर उठानेका एक नया प्रयोग गालव करने जा रहे थे; पर उसके हानि-लाभपर भलीभाँति विचार करके ही वे आगे बढ़ना चाहते थे।

"मुझे पूर्वकालमें किसी ब्रह्मवादीने वर दे रखा है कि सन्तान उत्पन्न करनेके पश्चात् भी मेरा यौवन कन्याके समान ही बना रहेगा।"—तभी माधवीने गालवसे कह दिया था। करती भी क्या? वह किसी प्रकार मुनि गालवसे मुक्ति चाहती थी। भिन्न-भिन्न राज-दरबारोंमें जाकर गाय, घोड़ी, हथिनीकी भाँति अपने नख, केश, दाँत आदिकी परीक्षासे मुक्ति चाहती थी। सहस्रों दरबारियोंके मध्य राजाके मुँहसे अपने नितम्बों और उरोजोंके अश्लील वर्णनसे मुक्ति चाहती थी। धर्मके नामपर पुरुष, ऋषि, मुनि, राजा यह सब कर सकते थे, कर रहे थे; पर वह तो अन्ततः नारी ही थी न।

गालवको आश्वासन मिला। माधवीको एक पुत्र उत्पन्न होने तक राजा हर्यस्वकी भार्याके रूपमें रहना पड़ा। फिर एक दिन माधवी एक पुत्रकी माँ हो गई। उस घोर आत्मदाहके जीवनमें नवजात शिशुका मुख-दर्शन उसे अमृतके समान जान पड़ा था; किन्तु दूसरे ही दिन गालव उपस्थित थे। अश्वोंको अमानत-रूपमें राजाके पास ही छोड़ माधवीको लेकर फिर वे किसी दूसरे ग्राहककी खोजमें चल पड़े। नवजात शिशु माधवीसे छीन लिया गया था।

अब यह एक दूसरा राज-दरबार है। काशी-नरेश दिवोदास इसके स्वामी हैं! गालवको माधवीके साथ देखते ही उनके नेत्रोंमें प्रसन्नता नाच उठी। राजा हर्यस्वने केवल दो सौ अश्वोंके ही बदलेमें कैसी काम-कलानिधिको हस्तगत कर लिया है, अपने राजदूतोंसे इसका सम्पूर्ण विवरण उनको पहले ही मिल चुका था। फलतः गालवको यहाँ न माधवीका प्रदर्शन करना पड़ा और न मोल-तोल ही। अब बाज़ार-भाव निश्चित हो चुका था।

एक पुत्र उत्पन्न होने तक अभागी माधवीको राजा दिवोदासकी भार्याके रूपमें भी रहना पड़ा। राजा दिवोदासने माधवीके साथ कैसी-कैसी और किस-किसके समान काम-लीलाएँ कीं, इसका सरस वर्णन करनेमें महाभारतकारको दस श्लोकोंकी रचनाका श्रम उठाना पड़ा है। किन्तु क्या फिर भी वह वर्णन पूर्ण हो सका है? माधवी पुनः एक पुत्रकी माँ बनी; किन्तु इस बार पुत्रका जन्म उसे प्रथम प्रसवकी भाँति क्षणिक सुख भी नहीं दे सका। माधवी जानती थी कि कल ही उसे किसी दूसरे राज-दरबारमें चल देना है।

हुआ भी यही। दो-दो पुत्रोंकी स्मृतिको हृदयमें दबाए माधवी गालवके साथ राजा उसीनरके दरबारमें पहुँची। गालवने बहुतेरा चाहा कि राजा उसीनर माधवीको एक पुत्र होनेकी अवधिकी अपेक्षा दो पुत्र होनेके समय तक रखें और शेष चार सौ अश्व मुझे दे दें; किन्तु राजा उसीनरके पास केवल दो सौ ही अश्व थे, कम-से-कम उसने कहा यही था। अन्तमें गालव इसके लिए भी तैयार हो गए। माधवी फिर एक पुत्र उत्पन्न होने तक राजा उसीनरकी भार्या बनकर रही। वह फिर माँ बनी और फिर उसका पुत्र उससे छीन लिया गया। हथिनी, घोड़ी, गायसे भी जो सन्तानें होती हैं, वे भी तो इन पशुओंके स्वामीकी ही होती हैं; फिर माधवीको ही अपने पुत्रोंको अपने साथ ले जानेका क्यों अधिकार न था?

गालवके पास अब छः सौ अश्व हो चुके थे। शेष दो सौ अश्व अब कहाँसे आवें, इसी टोहमें वे कुछ दिन को रहे। परामर्शके लिए अपने मित्र पक्षिराज गरुड़के पास भी गए; किन्तु सभी जगहसे उनको केवल यही उत्तर मिला कि इस प्रकारके अश्व किसीके पास नहीं हैं। तब क्या इतना श्रम उठाकर भी गालवकी मनोकामना पूर्ण नहीं हो सकेगी? किन्तु गालवकी वणिक बुद्धिने पुनः उनका साथ दिया। माधवीके शरीर-विक्रयसे मिले छः सौ अश्वों और स्वयं माधवीको लेकर गालव महर्षि विश्वामित्रके चरणोंमें जा उपस्थित हुए।

"ये छः सौ अश्व और दो सौ अश्वोंके बदलेमें स्वयं इस रूपवती कन्याको गुरुदक्षिणा-स्वरूप लाया हूँ, देव!"—गालवने विनम्र स्वरमें महर्षिसे कहा।

महर्षिने माधवीको एक बार देखा और तुरन्त ही बोल उठे—"तू प्रारम्भमें ही मेरे पास क्यों नहीं आ गया था, गालव? अन्यथा इस रूपवती कन्याको लेकर ही मैं सन्तुष्ट हो जाता। फिर भी मुझे तेरी भेंट स्वीकार है। जा, मैं सन्तुष्ट हुआ।"

गालव तुरन्त सब छोड़-छाड़कर गृहकी ओर चल दिए। जिस माधवी द्वारा वे अपनी कामनाको पूर्ण कर सके थे, उसको ओर एक बार देखने तकका भी कष्ट उन्होंने नहीं उठाया! किन्तु यह भी अच्छा ही था। दरबारमें माधवीकी रूपराशिका निर्लज्ज प्रदर्शन और मोल-तोल करनेवाले गालवसे माधवीके लिए कुछ न सुनना ही सुखद था।

माधवी अब महर्षिकी भार्या बनी। समयपर महर्षिसे भी उसने एक पुत्र प्रसव किया। मुनिने पुत्रको अपने पास रख लिया और माधवीको पुनः उसके पिताके गृह भेज दिया। माधवीके कष्टोंका अब भी अन्त न हो सका।

इसके पश्चात्‌की कहानी अत्यन्त संक्षिप्त है। राजा ययाति माधवीको पुनः प्राप्तकर उसके लिए वर खोजने निकलते हैं। इस यात्रामें माधवी भी उनके साथ है। वह अपना काला मुँह किसीको नहीं दिखाना चाहती; किन्तु बिना यह विश्वास किए कि चार-चार पुत्रोंकी माँ बननेके पश्चात् भी माधवीमें रूप-यौवन शेष रहा है, भला कौन उसके साथ विवाह करनेके लिए तैयार होगा?

घूमते-घामते माधवी इसी वनमें जा पहुँची थी। उसने देखा था कि वनमें भाँति-भाँतिके पशु-पक्षी स्वच्छन्दतासे विचरण कर रहे हैं। न यहाँ कोई अपनी पुत्रीको दान करता

है, न दान लेनेवाला उसे किरायेपर उठाता है। मादाएँ अपने बच्चोंको साथ लिए जहाँ चाहे फिरती रहती हैं। कोई उनको अपने पुत्रोंसे विलग करनेकी चेष्टा नहीं करता।

'मानव पशुसे श्रेष्ठ है'—सहस्रों बार सुनी हुई इस उक्तिका खोखलापन उस दिन माधवीके सम्मुख जैसे साकार होकर नाच उठा था। वह पशु-पक्षियोंको देखती, तो देखती ही रह जाती। उसे अनुभव होता कि कम-से-कम इन पशुओंमें न कोई ययाति है, न गालव है, न राजा हर्यस्व है, न राजा दिवोदास है, न राजा उशीनर है और न महर्षि विश्वामित्र है। माधवीका मन पशुओंके साथ ही रहनेको ललचा उठा। उसे मानवका दर्शन भी अप्रिय लगता था।

फिर एक दिन उसने मानव-समाजको अन्तिम प्रणाम कर लिया और तभीसे इसी वनमें जीवन व्यतीत कर रही है। वह पशुओंकी ही भाँति रहना-सहना, खाना-पीना, दौड़ना-भागना चाहती है। उसीका दिन-रात अभ्यास करती रहती है। 'मैं मनुष्य हूँ', इसे वह पूर्णतः भूल जाना चाहती है। पशुओं-जैसा जीवन अपनानेमें उसे किसी सीमा तक सफलता भी मिल चुकी है; किन्तु अपना मन वह कैसे पशुओं-जैसा बना ले? किसी हरिणीको अपने शावकके साथ चरते देख उसे अपने चारों पुत्रोंका स्मरण हो आता है। वह यह सब-कुछ भूल जाना चाहती है; किन्तु स्मृतियाँ उसका पीछा नहीं छोड़तीं। आज भी कितना समय उसका इसीमें बीता है!

माधवीने एक बार चौंककर आकाशकी ओर देखा। ओह, कितना समय बीत गया इस व्यर्थके ऊहापोहमें! उसने देखा, शिलाखण्डका कुछ भाग गीला-सा हो गया है। तो क्या माधवी रोई भी है? इतनेमें हवाका एक झोंका आया और माधवीको एक अप्रिय, किन्तु परिचित गन्धका अनुभव हुआ। यह मानवकी गन्ध थी। दूसरे ही क्षण वृक्षोंपर बैठे पक्षियोंने देखा कि एक मानवी हरिणीकी भाँति वनके अन्तर-प्रदेशकी ओर भयभीत होकर भागी जा रही है।*

* महाभारतके उद्योगपर्वकी एक कथाके आधारपर।

अनल-बीज

प्रो० केसरी

मिट्टीके घन अन्धकारसे निकल ज्योतिकी छुरी-धारसे
नवल प्रबल जीवनके अंकुर वसुधामें छाए!
जैसे नवप्रकाशके शिशु-गण कंचन-तन सुशोभित उन्मन,
खोल अलस-तन्द्राका गोपुर ये जीवनके नूतन अंकुर
धरती - माताकी पुकारपर मुसकाए, आए!
नवबीजोंकी चन्दनबाड़ी, खूँसे गरम धराकी नाड़ी,
सूखी मिट्टीके अन्तरकी रस-धारा छलकी!
जैसे अन्तरतमसे तमके मोती उग आए शबनमके,
और शून्यके गुहा - गर्भसे तारावलि झलकी!
शारदीय मैदान - खेतमें माणिक-मरकत सेंत-मेंतमें
किसने यों क्षितिके आँगनमें जगमग बिखराए?
नवल प्रबल जीवनके अंकुर वसुधामें छाए!
देखा, विरह-विधुर मटमैला धरतीका तन ढेला-ढेला
और खड़ा ऊपर छातीके शोषक घास-काशका मेला
किन्तु छिपी अक्षय यौवनकी भीतर जो सनेहमय बाती
उसे चाहिए अनल-बीज, ज्यों चातकको स्वाती!
नवबीजोंकी शिखा - स्फुलिंगिनी मिट्टीको छू गई रंगिनी
और फूटकर दीपावलि-सी उमड़ी हरियाली!
नवजीवनकी बीज-शक्तिसे निकल देख लो, पंक्ति-पंक्तिसे
उग आए हैं शत-शत युगपत रवि-शशि छविशाली!
शक्ति धरामें जो सोती है, छिपा सीपमें जो मोती है,
उसे जगा दो, फिर देखो मिट्टी कंचन बन जाए!
नवल प्रबल जीवनके अंकुर वसुधामें छाए!
वैसे ही असहाय अकिंचन निरावरण विवर्ण हत-जीवन
माटीकी मूरतें अपावन, धरतीके असंख्य शोषित जन
जिनके रक्तहीन पंजरमें रस - विहीन जैसे बंजरमें
कभी न नूतन आशाओंके अंकुर लहराए!
क्योंकि शक्ति जो इनमें सोती, छिपा सीपमें है जो मोती,
उसे जगानेके हित किसने अनल - बीज बोए?
नवविचारके अनल-बीज दो, नए स्वप्न, कुछ तरल चीज़ दो
अहो बीजप्रद पिता! विश्वके शोषित तिमिराक्रान्त मानवको—
नवसंस्कृतिके अनल-बीज दो,
जिससे युगके अन्धकारसे निकल ज्योतिकी छुरी-धारसे
नवल प्रबल जीवनके अंकुर जगमें छा जाएँ!

साहित्य और सहज भाषा

श्री हंसकुमार तिवारी

साहित्यसे सहज भाषाकी माँग बड़े ज़ोरोंसे की जाने लगी है। वास्तवमें यह माँग कुछ बुरी नहीं। जो लोग इसपर ज़ोर दे रहे हैं, अवश्य ही वे सब प्रकारसे साहित्यके शुभैषी ही होंगे। लेकिन साथ ही एक बात यह भी सोचनेकी है कि जो साहित्यकार साहित्यके जन्मदाता हैं, स्वयं वे ही उसका अशुभ कैसे चाह सकते हैं? उनके लिए तो साहित्यके शुभका आग्रह ही स्वाभाविक है। अतः इससे हम यह विश्वास कर सकते हैं कि औरोंकी अपेक्षा साहित्यकार सहज भाषाके कुछ कम हिमायती नहीं होंगे।

रस और रूप

शब्दकोश और व्याकरणको सामने रखकर साधारणतया कोई साहित्य नहीं रचता। रीति, अलंकार या वक्रोक्तिके युगमें शायद ऐसा होता हो। राजशेखरकी 'काव्य-मीमांसा'में ऐसे ही कवियोंका उल्लेख मिलता है, जो भाव और अर्थकी राई-रत्ती चिन्ता न करके केवल चुने हुए शब्दोंकी माला गूँथा करते थे और आचार्य शास्त्र तथा व्याकरणसे उन शब्दोंके जैसे-तैसे अर्थ और संगति प्रमाणित कर दिया करते थे। कहा जाता है, इस नियमित अभ्याससे आगे चलकर वैसे लोग कवि हो भी जाते थे। हो जाते होंगे कवि, किन्तु शास्त्र तो तब भी ऐसे बने कविको कवि नहीं मानता था। कविकी प्रतिभा तबसे अब तक जन्मजात ही मानी जाती रही है। अलबत अभ्यास और अनुशीलनसे कवित्व-शक्तिका विकास हो सकता है। जो हो, तब चाहे जो भी होता रहा हो, अब तो यह बात सिद्धान्त-रूपमें ग्रहण की जा चुकी है कि केवल शब्दोंका कारुकार्य और कुछ हो सकता है, साहित्य नहीं हो सकता। रचनाके दो ही प्रधान तत्त्व हैं—एक उसका रस, दूसरा उसका रूप। रूपके हिसाबसे साहित्यमें शैलीका एक खास महत्व है। किन्तु शैलीसे हमारा अभिप्राय रीति अथवा शब्द-सौष्ठव, पद-योजना और वाक्य-विन्याससे ही नहीं है। अभिप्राय है भावके उपयुक्त वाणी-रूपसे, चिन्मयके वाङ्मय प्रकाशसे। रस ही काव्य या साहित्यसे कामनाकी वस्तु है, इसलिए रूपके आधारको निष्प्रयोजनीय नहीं कहा जा सकता। शराब और पैमानेकी तरह साहित्यमें आधारभूत और आधारका स्थान नहीं होता। किसी भी और कैसे भी पैमानेसे आप शराब पी सकते हैं। शराबकी उत्तमताके हिसाबसे ही नशेकी उत्तेजना होती है। पैमानेकी सुन्दरता-असुन्दरतासे रुचिमें अन्तर चाहे आता हो, प्रभावमें विकृति नहीं आती। फिर पैमाना शराबसे एकरस नहीं होता। पीनेसे वह निःशेष होता है, उसे फिर-फिर भरनेकी ज़रूरत पड़ती है। किन्तु जिस वाणी-रूपमें सत्य आत्मप्रकाश करता है, वह उससे कभी विच्छिन्न नहीं होता। आप जितना ही भाषाके पैमानेसे उसे पीते चले जायँ, वह बार-बार छलकता ही आता है; क्योंकि जिस प्रांजल-रूपमें वह हृदयसे रूप-परिग्रह करता है, वह स्थायी और कालान्तरव्यापी हुआ करता है। मूर्त्ति या चित्रमें अंकित भावकी तरह साहित्यकी प्राप्तिकी यह छाप भी अपने उसी रूपमें निर्विकार रहती है। बात यह है कि किसी भी प्रकारकी चिन्तना, किसी भी प्रकारका भाव जब तक हमारी चेतनामें रूप लेता है, तब तक वह वर्त्तमान और गतिशील होता है; वाक्यमें रूप ग्रहण करते ही वह स्थिर और एकरूप हो जाता है। शापनहोरने चिन्तनके साथ लेखनीका वही सम्बन्ध बताया है, जो सम्बन्ध भ्रमणसे छड़ीका है। छड़ी न हो, तो अधिक स्वच्छन्दतासे चला जा सकता है। उसी प्रकार यदि लेखनी न हो, तो चिन्तन-कार्य और सुगमतासे चल सकता है। इसलिए भावके वाणी-रूपमें जो रस सिंचित होता है, वह न केवल स्थायी, वरन् अखण्ड होता है।

रूप और रसकी इसी अखण्डता और अविच्छिन्नताके लिए कलाके अनेक प्रवाद-वाक्य प्रचलित हैं। कहना व्यर्थ होगा कि उसके यथार्थ अर्थका आज तक अनर्थ ही होता रहा है, जैसे—कलाके लिए कला। अपने कविता-विषयक सुप्रसिद्ध व्याख्यानमें ब्रैडलेने यही कहा है। कहते हैं, कभी किसीने रवि बाबूसे किसी कविताका अर्थ पूछा, तो उन्होंने कहा - 'इस कविताका अर्थ स्वयं यह कविता है।' उनके इस कहनेसे या 'कलाके लिए कला' कहनेसे काव्यका लक्ष्य जीवन-निरपेक्ष नहीं हो जाता। इसका यथार्थ अर्थ तो यह है कि जिस भाषा-रूपमें भाव बाहर आता है, उससे वह ऐसा संश्लिष्ट होता है कि उससे भिन्न उसकी व्याख्या नहीं हो सकती। उस अखण्डतामें ही उसे देखा जा सकता है। शब्द और अर्थ जिस प्रकार

पार्वती-परमेश्वरके समान एकीभूत हैं, भाव और भाषा भी वैसे ही अभेद्य हैं। इसीलिए पोपने जब शैलीको विचारोंका परिधान कहा, तो कार्लाइलने उसमें संशोधन किया कि नहीं, शैली परिधान नहीं, उसका त्वक है। कार्लाइल यों बनावटी भाषाका विरोधी रहा। भाषाके जिस कृत्रिम इन्द्रजालको लोग शैली या स्टाइल कहते हैं, उसको कार्लाइलने साहित्यके लिए आवश्यक नहीं माना है। उसका कहना है, किसी ग्रन्थकी अच्छाई-बुराईके लिए भाषा-शैलीका कोई महत्व नहीं। इस भाषा-शैलीसे रीतिके आडम्बरको ही समझना चाहिए; क्योंकि कृत्रिम भाषा शैलीका अंग नहीं है। भावको मूर्त और अगोचरको गोचर करनेके लिए भाषाकी जहाँ तक उपयुक्तता है, वह आवश्यक अंश वस्तुतः अलंकार नहीं। शरीरकी सुन्दरतामें लावण्य जैसा स्वाभाविक और अभिन्न है, भावके रूप-विधानमें अकृत्रिम शैली वैसी ही स्वाभाविक है, अलंकार उसके लिए एक अतिरिक्त और अनावश्यक भार है। कुरूपको गहनोंसे रूपवान नहीं बनाया जा सकता, और जिसके रूप है, गहना उसको बोझ ही होता है। साहित्यमें सत्य जब प्रांजल हो उठता है, तो अलंकार उसके लिए बाधक ही नहीं, निरर्थक भी होता है। प्रांजलताका यथार्थ मर्म मार्मिकता है। यह मार्मिकता स्वतः अनुभूत हो सकती है, समझाई नहीं जा सकती। जैसे आगकी बात लीजिए। उसकी जलन ऐसी है कि जो भी उसमें हाथ देगा, वह जलेगा। यह बात हमें किसीको समझानी नहीं पड़ती। भावकी प्रांजलता भी इतनी ही साफ होती है। उसका आवरण चाहे जटिल हो, चाहे सरल, भाव भावुकके हृदयको बुरी तरह छू लेता है। उसके इस प्रभावके लिए किसी प्रकारकी टीका-टिप्पणीकी आवश्यकता कदापि नहीं होती। इस मार्मिकताके लिए भावको भाषागत अलंकारका आभरण नहीं पहनना पड़ता। यह मार्मिकता सत्यको उपलब्ध करनेवाली हार्दिकतासे ही समाविष्ट हो जाती है। वैष्णव काव्यमें दिखाया गया है कि कृष्णसे मिलनेके लिए राधाने अपने गलेका हार तक उतार फेंका। इसका मतलब यह है कि सत्यकी उपलब्धिमें अलंकार एक अनावश्यक आडम्बर ही नहीं, बाधा भी है। सत्यका प्रकाश स्वतः सहज सुन्दर होता है। जो सत्यको रूप दे सकता है, वह रीति और अलंकारका आडम्बर नहीं रखता। सत्यके सम्बन्धमें जिसकी दृष्टि धुँधली होती है, जिसका ज्ञान सन्दिग्ध होता है, वही अपने अन्तरकी इस शून्यता को भरनेके लिए, रचनामें वस्तुके अभावको भरनेके लिए शब्दोंका लम्बा सोपान तैयार करता है, प्राणकी महिमाके बजाय शृंगारको ही लक्ष्य बनाता है। फलस्वरूप अपनी चिन्ताशीलताके दिखावेके लिए नई टेकनीक और नई शैलीकी आड़ लेकर वक्तव्योंको वाक्यके बोझोंसे ढँक देता है। अपनी विद्या-बुद्धिके अभावको ही विद्या-बुद्धिका प्रभाव दिखानेके प्रबल मोहमें ऐसे लोग न जाने भाषाकी कैसी-कैसी कारीगरी करते हैं। अतः जो सही मानीमें साहित्यकार हैं, वे जटिल भाषाके पक्षपाती नहीं हो सकते। जिन्हें वास्तवमें कुछ वक्तव्य नहीं होता, वे ही श्लेष, विरोधाभास, असामंजस्य और जटिल शब्दावलीसे साहित्यके आवरणको जटिल बनाया करते हैं, इसलिए कि कुछ समझ नहीं पानेके कारण लोग यह समझेंगे कि इसमें भारी-भरकम कुछ है ज़रूर, जिसे कि हम नहीं समझ पाते। फलतः भाषाकी क्लिष्टता न तो साहित्यका सौन्दर्य है, न साहित्यकारकी साधना।

आत्मप्रकाश और सहज भाषा

सहज भाषाके लिए रचनाकारमें आग्रह होनेका एक प्रमाण मिलता है। रचना करनेका तात्पर्य है देहकी कारासे मुक्त होना। इसीलिए कलाको आत्मप्रकाश कहा गया है। आत्मप्रकाशका मतलब ही है बहुतोंमें अपना प्रसार और प्रतिष्ठा। तुलसीने जिस स्वान्तःसुखकी चर्चा की है, उसका अर्थ अपने सुख-जैसी एक छोटी बात नहीं है। आत्मप्रकाश द्वारा अपनेको जो सुख मिलता है, वह इसलिए कि अपने 'स्व' को संकीर्ण सीमासे मुक्ति और समष्टिमें विस्मृति मिलती है। 'मैं' की प्रतिष्ठा भी अपने-आपसे नहीं होती, बहुतोंके बीचमें उसे बिखरा देनेसे ही हो सकती है। इसलिए रचनाकारका स्वान्तःसुख चिड़ियोंके गीत-जैसा उसीके लिए नहीं, उसका लक्ष्य समाज है। स्वयं तुलसीने ही कहा है—'उपजहिं अनत, अनत सुख लहहीं।' व्यक्तिनिष्ठ साहित्यकी भी मर्मवाणी यही होती है, देखनेमें आत्मकेन्द्रित भले ही हो। ऐसी रचनाओंका प्रथम पुरुष मैं समग्र मानव-समाज, समस्त मानव-सत्ताके लिए ही अपने विस्तारकी कामना करता है। यदि ऐसा नहीं हो, तो वैसी सृष्टि रवीन्द्रके शब्दोंमें अनासृष्टि ही होगी। रवीन्द्रने रचना के हिसाबसे सृष्टिकी तीन कोटियाँ निर्धारित की हैं—सृष्टि, असृष्टि और अनासृष्टि। सृष्टिमें अनेक 'मैं' उस 'एक' को देखता है, असृष्टिमें अनेक 'मैं' अपने बिखरे हुए अनेकत्वको देखता है और अनासृष्टिमें प्रत्येक 'मैं' सबसे अलग अपने-आपको ही देखता है। इस दृष्टिसे समाज सृष्टि है, भीड़ असृष्टि और

रेलमपेल अनासृष्टि। व्यक्तिनिष्ठ साहित्य तभी साहित्य पदवाच्य होता है, जब उसका बीज-रूप 'मैं' समष्टिमें अपनी शाखा-प्रशाखाएँ फैलाकर फल देता है। साहित्य-सृष्टिकी दो प्रवृत्तियाँ देखी जाती हैं—भावनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ। ठीक इसी प्रकार रचनाकारमें दो प्रकारकी दृष्टियाँ देखी जाती हैं—विषयनिष्ठ और विषयिनिष्ठा। सच्चा साहित्यकार हम उसे ही कहेंगे, जो एक सीमापर दोनों दृष्टियोंका गंगा-सागर कर दे सकता है, जो वैयक्तिक भावनाओंको नैर्व्यैयक्तिक रूप दे सकता है। प्रतिभाके पुत्र ऐसा कर सकते हैं, बल्कि ऐसा ही करते हैं। वे अपने अन्तरके अनुभूत सत्यको न केवल बाहर प्रकट करते हैं, वरन् उसे स्थायित्व देते हैं। उसकी अनुभूति व्यक्ति-सीमासे उठकर मनुष्य-मात्रकी अनुभूति होती है। वह विशिष्ट होकर भी निर्विशेष व्यंजना करते हैं और इस प्रकार उनका विशेष प्रत्यक्ष रूपमें निर्विशेष होकर सर्वजन संवेद्य होता है। हाँ, तो हम यह कहना चाह रहे थे कि जब साहित्यकी सार्थकता बहुतोंसे ही सिद्ध होती है और बहुतोंमें अपनी प्रतिष्ठाके लिए ही कोई रचना करता है, तो उसे सहज भाषाका पक्षपाती होना ही चाहिए। इस दशामें क्लिष्ट और जटिल भाषाके लिए रचनाकारको अनावश्यक आसक्ति, निरर्थक हठ और दुराग्रह हो भी कैसे सकता है?

सहज भाषाकी स्वाभाविकता

अब आप पूछ सकते हैं कि जब साहित्यका सर्वस्व एवं साहित्यकारकी साधना सहज भाषा ही है, तो सहज भाषाकी माँग क्या बला है? क्लिष्टता होती, तो परिहारकी आवश्यकता थी; जटिलता होती, तो दूर करनेकी चेष्टा होती। किन्तु कुछ भी नहीं है, तो निरर्थक माँग सरल भाषाकी क्यों हो रही है? उत्तरमें हम कहेंगे, कुछ तो ज़रूर है। जो भाषा सहज होती है, वह सीधी भी होती है, यह नहीं कहा जा सकता। भाषाकी सरलता और बात है और सुबोधता और बात—विशेषकर चारु साहित्यके लिए; क्योंकि भाषा तो मात्र वक्तव्य वस्तुका वाहन है। इसलिए उसका रूप वक्तव्यकी प्रकृतिके अनुसार ही होगा। दो छोटे-छोटे उदाहरण देखिए। पहली दो पंक्तियाँ उर्दूके कवि 'नूह' की हैं—

इश्कमें वह पार मंलज़ि कर गया ;
मरते मरते, मरते मरते मर गया।

इनमें एक भी शब्द ऐसा नहीं आया है, जिसमें कुछ दुरूहता हो या शब्दकोष टटोलनेकी आवश्यकता पड़े। चमत्कार का भी कोई मोह नहीं है; किन्तु भावकी दृष्टिसे इसकी प्रकृति उतनी सीधी नहीं, जितनी कि देखते ही झलक आती है। चूँकि इसमें भाव प्रांजल है, इसलिए बात जीको तो तुरत छू लेती है, पाठकको भाषाकी शक्तिकी ओर ध्यान देनेका अवसर भी नहीं मिलता, नहीं तो चार बार मरते शब्दके बेढंगे प्रयोगमें घुल-घुलकर मरनेकी जिस पीड़ाको ढंगसे कहा गया है, व्यंजना की उस खूबीपर भी प्रसन्नता होती। अथवा शेक्सपियरके 'किंग लीयर' की निम्नोक्त पंक्तियाँ—

दाउ विल्ट कम नो मोर
नेवर, नेवर, नेवर, नेवर, नेवर,
प्रे यू अनटू दिस बटन।

भाषाके जिस सहज धर्म एवं उपयुक्त शक्तिका निर्वाह ऊपरको पंक्तियोंमें है, उससे कहीं अधिक गहरी वेदनाको रूप इन टूटे-फूटे शब्दोंमें मिला है; क्योंकि इसमें न रीति है, न अलंकार, न सुष्ठु शब्द-योजना, न पद-विन्यास। फिर भी ये पंक्तियाँ मार्मिक हैं। क्यों? क्योंकि उस असीम वेदनाकी भाषा भी क्या हो सकती है, उसकी भाषा निर्भाषा ही है। किन्तु नीचे दासकी विरह-विदग्ध पंक्तियाँ देखिए—

अब तौ बिहारीके वे बानक गए री,
तेरी तन-दुति-केसरको नैन कसमीर भो।
श्रौन तुव बानी स्वाति बूँदनके चातक भे,
साँसनको भरिबो द्रुपदजाके तीर भो।
हियको हरष मरु-धरनि को नीर भो
री, जियरो मनोभव-सरनको तुनीर भो।
ए री! बेगि करिकै मिलापु थिर थापु
न तौ आपु अब चहत अतनुको सरीर भो॥

भाषा तो यहाँ भी कुछ कठिन नहीं है, किन्तु कथनकी प्रकृतिसे उसमें सुगमता नहीं है। इसमें उपमा, रूपक, प्रसंग अनेक कुछ आ गए हैं और यह भावकी प्रेरणासे स्वतः आ गया है, कविने शास्त्रके नियमोंको सामने रखकर इसकी रचना नहीं की। अब यदि इनमें शब्दोंका हेर-फेर किया जाय, तो अभिव्यक्तिका जो रूप है, वह टिक नहीं सकता। इनके लिए उपयुक्त शब्द यही और ये ही हैं। जिन शब्दोंमें भावने मूर्ति ग्रहण की, यदि वे उपयुक्त हैं, तो उनमें संशोधनकी गुंजाइश ही नहीं हो सकती। सफल शैलीके लिए उपयुक्तता ही सबसे बड़ी चीज़ है। भावके उस प्रकाशमें से एक शब्दका भी दूसरा शब्द उसी वज़नका नहीं बैठाया जा सकता, बशर्ते कि वह अभिव्यक्ति

सचमुचकी अभिव्यक्ति हो। जार्ज सेंट्सबरीने मिल्टनकी शैलीमें से ऐसे उदाहरण दिए हैं, जैसे—'दि स्वार्ट स्टार स्वेयरली लुक्स।' इसमें 'स्' का एक अनुप्रास है। यह अनुप्रास आयास-लब्ध नहीं, स्वतः स्फूर्त्त है। अतएव किसी भी रूपसे इसमें परिवर्त्तन सौन्दर्यका विधातक ही होगा। यदि अनुप्रास न देकर पंक्ति यों कर दी जाय—'दि फीयर्स स्टार रेयरली लुक्स', तो आप पाएँगे कि अनर्थ हो चुका है। स्वयं मिल्टनने प्रयुक्त क्रिया-विशेषणकी जगह 'स्टिन्ट्ली' देना चाहा था और देखा कि पंक्तिका गला घुट जायगा। कवितामें उपयुक्त शब्द स्वतः जब आ जाता है, तो युक्त-तर्कसे उसे हटाना असंभव हो जाता है। ऐसे उपयुक्त शब्द होते भी अमूल्य हैं। संसारके किसी रत्नको उसके तुल्य नहीं समझा जा सकता। 'गौर्गौः कामदुग्धा सम्यक् प्रयुक्ता स्मर्यते बुधैः। दुष्प्रयुक्ता पुनर्गोत्वं प्रयोक्तुः सैव शंसति।' जैसा कि हम कह चुके हैं, ऐसे उपयुक्त शब्द कविके निर्वाचन-कौशलसे नहीं आते, बल्कि उस विषयकी प्रकृतिमें रहते हैं, जिसका वर्णन कवि करता है, अनुभूतिसे ही वे फूट जाते हैं।

भाव और उनकी अभिव्यक्ति

अब इन्हें आप सहज भाषा कहें या नहीं कहें, भावोंकी अभिव्यक्तिके लिए साहित्यको इसीकी शरण लेनी पड़ती है। सूर, तुलसी का घर-घर आदर है। सब उनकी कृतियाँ चावसे पढ़ते हैं; किन्तु यह कहना पड़ेगा कि उन कृतियोंका आदर भाषाकी सहजतासे नहीं है, कम-से-कम सहजका जो अर्थ लिया जाता है। विभिन्न भाषाओंमें जिन-जिन कवियोंकी रचनाएँ अमर हुई हैं, उनमें से एक भी ऐसी भाषा नहीं लिख गए, जिसे तथा-कथित सहज भाषा कही जा सके। शेक्सपियर, मिल्टन, ग़ालिब, रवीन्द्र, बिहारी, केशवदास—ये सब अपने-अपने साहित्यके अन्यतम श्रेष्ठ कवि हो गए हैं। इनमें से एककी भी भाषा सीधी नहीं। कबीरकी भाषाका तो कहना ही क्या। स्वयं अपढ़ थे, पर जो लिख गए, उसके लिए पढ़े-लिखे लोग भी चकराते हैं। और हम यह देखते हैं कि इन सभी कवियोंका लोगोंमें आदर भी है और इनकी रचनाएँ मानव-समाजके लिए कल्याणकर भी रही हैं। सच तो यह है कि राष्ट्रके मानसिक उत्थानके लिए उच्च भाव अनिवार्य हैं और उच्च भावकी प्रकृतिके अनुरूप साहित्यकी जो भाषा होगी, वह होगी तो सहज ही, किन्तु साहित्यिक-संस्कारहीन व्यक्तियोंके लिए उसकी वक्रता सहज-गम्य नहीं होगी। इसलिए कि साहित्यकी सहज भाषा बाज़ारू भाषा नहीं हो सकती, न मोटे अयोजनोंकी भाषा ही हो सकती है। साहित्यिक सहज भाषाका उद्देश्य केवल अपने दैनन्दिन आयोजनोंको प्रकाश करना नहीं है, उसका काम है मनुष्यको पशुताके सामान्य धरातलसे ऊपर उठाना, उसे यथार्थतया मनुष्यताकी महिमासे मंडित करना। अपने इस आदर्शकी रक्षामें कविताको बड़ी कठिन साधना करनी पड़ती है। लालको लाल कह देना और बात है, अच्छेको अच्छा कहना और बात। भलेको भले रूपमें औरोंको समझा देना आसान काम नहीं और यही कष्टसाध्य काम साहित्यको करना पड़ता है। साहित्य ही सदासे यह असाध्य साधन करता आया है, यह साहित्यकी विशेषता है। अरूपको रूप देना और औरोंको भी उसी भावमयतामें निमग्न करनेकी क्षमताने ही साहित्यका आसन विज्ञानसे ऊपर बिछा दिया है। विज्ञान सामान्य सत्य का अन्वेषी और प्रतिष्ठापक है। साहित्य असाधारणका सन्धानी एवं प्रकाशक। विज्ञान मनोविश्लेषणकी विधि और रहस्यका शास्त्र तैयार करता है, साहित्य महान मन और रहस्यवाले मनुष्यके चरित्रकी सृष्टि कर देता है। विज्ञान शरीर-शास्त्रका प्रणयण करता है, साहित्य लावण्यमय रूपकी रचना कर देता है। विज्ञानसे हम मानव-धर्मकी मान्यताओंके अनुकूल सामान्य मनुष्यका परिचय पाते हैं, साहित्य हमें विशिष्ट व्यक्तिको छवि तैयार कर देता है। वैज्ञानिकके मनुष्य और तुलसीके राम, कालिदासकी शकुन्तला, शरत्की कमलमें सामान्य और विशेष दृष्टिका ही अन्तर है। दूसरे शब्दोंमें कहें, तो विज्ञानकी खोज जातिवाचक संज्ञा है, साहित्यकी सृष्टि व्यक्तिवाचक।

अरूपका रूप

रचनाकी विलक्षणता एक आवश्यक गुण है। सिद्धिकी रसदशामें साहित्यका तत्त्व निर्विशेष होता है, किन्तु साधना कालमें सृष्टि एक विशिष्ट रूप-रचना होती है। इस विशिष्टतामें ही रसोद्रेककी शक्ति निहित होती है, रुचि और आकर्षणका केन्द्र होता है। प्रभात और सन्ध्या रोज़-रोज़के चिर-परिचित दृश्य हैं। किन्तु प्रकृतिमें हम जिस प्रकार सन्ध्या-प्रभातको देखनेके अभ्यस्त हैं, रससिद्ध कविके वर्णनमें सन्ध्याकी वह सामान्य छवि ही नहीं मिलेगी, उसमें कविके अपने व्यक्तित्वके सम्मिश्रणसे एक विशिष्टता अवश्य होगी। उदाहरणके लिए एक आलोचकने रवीन्द्रका निम्न सन्ध्या-वर्णन दिया है—

आज एइ दिनेर शेषे
संध्या ये ओइ माणिकखानि पोरेछिलो चिकण कालो केशे,
गेंथे निलेम तारे
एइ तो आमार विनि सूतार गोपन गलार हारे।
एकटि केवल करुण परश रेखे गेलो एकटि कविर भाले
तोमार अनन्त माझे एमन संध्या हयनि कोनो काले
आर हबे ना कभु
एमनि कोरेइ प्रभु
एक निमेषेर पत्र पुटे भरि
चिरकालेर धनिट तोमार क्षणकाले लओ ये नूतन करि।

उपर्युक्त पंक्तियोंमें 'तुम्हारी अनन्त सृष्टिमें ऐसी सन्ध्या और कभी नहीं हुई' तथा 'अपनी चिर-पुरातन निधिको तुम इसी प्रकार एक निमेषके दोनेमें नवीन कर लेते हो' द्वारा कविने रोज़-रोज़ आनेवाली सन्ध्याको एक दिनकी सर्वथा नवीन सन्ध्याका रूप दिया है।

जिन्हें इस बातकी धारणा नहीं कि अरूपको रूप देना और सबके लिए समानगोचर एवं अनुभवगम्य करा देना क्या होता है, उनके लिए रचनाकी ऐसी असाधारणता एक बेतुकी-सी बात होगी। किन्तु वास्तवमें इसके ठोस कारण हैं। एक ही वस्तुको देखनेकी सबकी दृष्टि समान नहीं होती। दृष्टिकी इस असमानतामें ही अनुभूतिकी वैयक्तिकता विशिष्टताका आकार लेती है। दूसरी बात यह भी है कि अरूप अगोचरको देखनेकी अन्तर्दृष्टि सबको होती भी नहीं। जिन्हें वह दृष्टि होती है और साथ ही उस रूपके सम्यक् मूर्त्ति-विधानकी भी स्वर्गीय शक्ति होती है, वह जब उसे सर्वसामान्य दृष्टि-पथपर प्रस्तुत करता है, तो रूप-रचना या वाणी-देह असामान्य हो ही उठती है। इसलिए लोग रचनाकी सहज भाषाके बावजूद उसे सुबोध नहीं पाते और साहित्यपर क्लिष्टता, दुर्बोधता आदिका दोष लगाते हैं। किसीकी भी रचनामें क्लिष्टता नहीं होती, यह तो हम नहीं कहेंगे। जिनकी अन्तर्दृष्टि प्रांजल नहीं, वे सत्यको न तो साफ़ देख सकते हैं, न साफ़-साफ़ उसे दिखा सकते हैं। साहित्यकी भाषाकी जटिलता ऐसी ही स्थितिमें उत्पन्न होती है; किन्तु सत्यको जो सहज ही देखता है, वह सहज ही उसे दिखाना भी चाहता है। सत्यकी प्रकृतिके अनुसार औरोंको वह दुर्बोध चाहने लगे, किन्तु उसकी तो यह विवशता होती है कि उस वाणी-रूपके सिवा उसका दूसरा वाणी-रूप हो भी नहीं सकता; क्योंकि उसके उस रूपमें लेखककी चेतन सत्ता और अन्तर्दृष्टिका योग रहता है। यह उसने जिस रूपमें कहा है वही उसका रूप है—साहित्यमें इसीका नाम शैली है। इस शैलीको शापनहोरने 'कविके मानस-मुखकी आकृति' कहा है। इसकी नकल नहीं हो सकती। शैलीकी नकल और चेहरेपर नकली मुखड़ा पहनना एक है। जटिल हो या सरल, शैलीमें स्वाभाविक भाषाका ही मूल्य है। कृत्रिम शैली मुँह बनाने-जैसी हास्यास्पद बात है। भाषामें भावके उपयुक्त प्रकाशमें भाषागत आदर्श काम नहीं करता; क्योंकि वहाँ ज्ञान नहीं, भावका प्रकाश होता है; युक्ति नहीं, अनुभूतिको रूप दिया जाता है; बुद्धि नहीं कल्पनाका हाथ रहता है। फलस्वरूप ऐसे वाङ्मय प्रकाशकी काव्यशास्त्रकी विधियों और आदर्शों द्वारा विवेचना नहीं की जा सकती। यहाँ भावमयता ही उसका अलंकार होती है, रूपमयता ही उसकी अर्थसंगति है—इसलिए न तो दुर्बोधताको हम इसका दोष कह सकते हैं, न सुबोधताको इसका गुण। अपने उसी रूपमें उसकी पूर्णता है, किसी प्रकारके परिवर्त्तनसे उसका अंग-भंग ही होगा।

ज्ञान और कल्पना

दो अनन्य शक्तियोंने ही मनुष्यको मनुष्य बनाया है। ये दोनों शक्तियाँ सृष्टिकारिणी शक्तियाँ हैं, जिन्हें हम ज्ञान और कल्पना कहा करते हैं। ज्ञान द्वारा हममें प्रकृति और जीवनके तुलनामूलक अध्ययन तथा उसकी व्याख्याकी क्षमता है। और कल्पना हमारी वह क्षमता है, जो वस्तु-जगत् और प्रकृतिके समन्वित विकासमें अपनी भावनाओंको आरोपित कराती है। इसलिए प्रकृत रूपमें कल्पना भी चिन्ता ही है। ज्ञान तत्त्वदर्शी होता है, कल्पना भावावेशिनी। साहित्य चूँकि भावके भोजन से जीवन-धारण करता है, इसलिए कल्पना ही उसका अंग है। कल्पनाकी क्रीड़ाभूमि वह असीम शून्यता है, जो वस्तु-जगत् और कामना-जगत्के बीचमें अगोचर रूपमें फैली है। शब्दसे जिस प्रकार हम आकाशकी सत्ताको आयत्त करते हैं, वाणी-रूपमें हम इसी प्रकार जीवन और प्रकृतिके बीचकी शून्यता को जीवन्त करते हैं। इसीलिए साहित्यकी भाषा ज़रा बाँकी हुआ करती है। भावकी बोली मूलतः रूप है, इसलिए साहित्यमें भाषाको रूप-सृष्टिके लिए लाक्षणिक होना पड़ता है। साधारण तया वाच्यार्थमें शब्दोंकी जो प्रकृति हुआ करती है, वह लाक्षणिकतामें नहीं होती। अगोचरको स्थूलगोचर रूप देनेके लिए जो रूप-विधान अनिवार्य है, उसके लिए भाषाकी लाक्षणिकता आवश्यक हो उठती है। इसमें सदा हँसनेवाले

चाँद भी म्लान दिखाई देता है, फूल घूँघट खोलते हैं, बिजली काले मेघकी कनखी हो जाती है, शबनममें प्रकाश रो देता है, हरियालीमें धरती हँसती है आदि-आदि। यह और कुछ नहीं, हमारी कल्पनाकी क्रिया है, जो सर्वत्र हमारे अपने भावोंका आरोप करती है, प्रत्येक वस्तुमें हमारे सुख-दुःखके अनुसार रंग चढ़ाती है। प्रकृतिमें मानवताका यह आरोप हाल-सालका आविष्कार नहीं, कल्पनाके उदय-कालसे ही संभवतः है। ध्वनिकार आनन्दवर्द्धनने कहा है—'भावान-चेतानपि चेतनवत् चेतनान चेतनवत्। व्यवहारयति यथेष्टं सुकविः काव्ये स्वतन्त्रतया।' अर्थात् कवि अपने काव्यमें स्वतन्त्र होकर अचेतनको चेतन तथा चेतनको अचेतनके समान व्यवहार में लाते हैं; क्योंकि वे मानते हैं कि चेतन पदार्थके समान चेतनाके संयोजनसे अचेतन विषय भी रसमय होते हैं। इस मानवीकरणके अनेक उदाहरण पुराने काव्योंमें मिलते हैं। 'उत्तर-रामचरित'में भवभूतिने लिखा है—'अयि ग्रावा रोदित्यपि दलित वज्रस्य हृदयम्।' यानी पर्वत भी रो देता है और वज्रका हृदय भी फट जाता है। कई जगह पेड़ों और पत्थरोंको मनुष्यकी तरह सम्बोधन करके बातें कही गई हैं। अस्तु।

साहित्य-संस्कारकी कमी

साहित्यमें मानवीकरणके इस व्यापारको बहुत-से लोग सहन नहीं करते, न ही वे यह मानते हैं कि इससे साहित्यका भला हो सकता है। इसपर विशेष कुछ कहनेका यह स्थल नहीं; किन्तु हम महज़ इतना कहेंगे कि जो इस विधानका विरोध करते हैं, वे व्यावहारिकतामें ही इसका अंजाने उपयोग भी करते हैं। वे कहते हैं—वर्षा उतरी। शून्यमें न सीढ़ी है, न वर्षाके हाथ-पाँव हैं; नूपुर उसके पाँव नहीं छोड़ना चाहते – नूपुरके विचार-विवेकके लिए हृदय-मस्तिष्क कुछ भी नहीं है। 'सूर्य प्रसन्न हुआ'—सूर्य एक जड़ अग्निपिंड है, उसमें हर्ष-शोक की जगह नहीं। ऐसे हज़ारों प्रयोग सब कोई रात-दिन करते हैं। यह वस्तुओंपर अपने भावोंके आरोपणके सिवा और क्या है? साधारण बोल-चालमें भी लाक्षणिकताकी भरमार है। उसमें हम बातको पीते हैं, किसीका हाथ पकड़ते हैं, नाक-कान काटते हैं, काल काटते हैं, समयको भगाते हैं, मनको मारते हैं, सौन्दर्यको टपकाते हैं, शोभाको बरसाते हैं आदि-आदि। यही लाक्षणिकता जब रचनामें आती है, तो लोग भाव-ग्रहणमें दुर्बोधताका अनुभव करते हैं। यों साहित्य की शक्तिके अतिरिक्त साहित्यके जो गुण हैं, उनमें प्रसादगुण यानी सहजताको ही सर्वोपरि स्थान दिया गया है। फिर भी साहित्यके प्रति जो यह शिकायत है, उसका यथार्थ कारण जो समझमें आता है, वह यही है कि एक तो साहित्यिक-संस्कार ही लोगोंमें नहींके बराबर है, दूसरा भाषाकी प्रकृतिसे भी वे अभ्यस्त नहीं। साहित्यको सबके जीवनका अंग बनाना है—चाहे उसकी राजनीतिक उपयोगिताकी दृष्टिसे, चाहे सार्थकताकी दृष्टिसे। इसलिए उसे अपेक्षाकृत सहज-सरल बनाना है। किन्तु यह भाषाको बाज़ारू बना देनेसे नहीं होगा, ऐसा हमारा विश्वास है। हाँ, ऐसी रचनाएँ जो सिवा शब्द-कोश और काव्यशास्त्रको साथ रखे समझी ही नहीं जा सकतीं, अपेक्षित नहीं हैं। ऐसी रचना रचना भी नहीं कहलाती। जो सचमुचमें स्वयं सुलझे नहीं होते, वे ही उलझनका साहित्य रचते हैं, जिसमें शब्दोंके गहनोंसे लदा भाषा-शरीर तो होता है, प्राण नहीं होता। किन्तु जो स्वयं सुलझे होते हैं, उनके साहित्यकी भाषा स्वयं सहज होती है, फिर भी कभी-कभी वह भावकी प्रकृतिके कारण सीधी नहीं होती। इसलिए सहज भाषाकी जो माँग साहित्यसे है, उसे हम इकतरफा कहेंगे। साहित्यिक-संस्कार लोगोंमें हो, इसके लिए शिक्षाकी विस्तृत भूमि तैयार करनेकी माँग इससे भी ज़ोरदार होनी चाहिए। उसीमें हमारा, आपका, सबका कल्याण है।

प्यारके क़िस्से

श्री रतनलाल साधु

प्यारके क़िस्से सुने इतने कि बस उकता गए हैं!
हाथ जीवनमें बड़ा है प्रेमका, यह जानते हैं;
विश्वव्यापी है हृदयका रोग भी यह मानते हैं;
पर अनेकों और भी बातें जगतमें क्या नहीं हैं?

जो लुभाए, काम आए, कुछ नहीं ऐसा कहीं है?
प्यार कब, किसने, कहाँ, कितना किया इसमें उलझ
साहित्य औ' संगीतके मुकुलित कुसुम कुम्हला गए हैं!
प्यारके क़िस्से सुने इतने कि बस उकता गए हैं!

वेश्यावृत्तिका अन्त आवश्यक

श्रीमती माया गुप्त, बी० ए०

भारतीय संविधान तयार हो गया। उसमें सैद्धान्तिक रूपसे पुरुष और स्त्रीकी समानता भी स्वीकार कर ली गई। पर दुःखकी बात है कि भारतीय संविधान-सभामें स्त्रियोंकी कुछ संख्या होनेपर भी वेश्यावृत्तिके सम्बन्धमें कोई उचित रुख ग्रहण नहीं किया गया। यह बड़ी शर्मकी बात है; क्योंकि लोग उससे कहीं कम महत्त्वपूर्ण सामाजिक रोगों—जैसे शराबखोरी आदि—के सम्बन्धमें तो सचेतन हैं और कई प्रान्तोंमें इस सम्बन्धमें कुछ क़दम भी उठाए गए हैं, उठाए जा रहे हैं या उठाए जायँगे; पर किसी भी समाजके लिए जो सबसे ग्लानिकर प्रथा या संस्था हो सकती है, यानी वेश्यावृत्ति, उसकी तरफसे हमारे सविधान-निर्माताओं तथा निर्मातृयोंने अपनी आँखें एकदम मूँद लीं। हमारे लिए यह समझना कठिन नहीं है कि ऐसा क्यों हुआ। हमारे वर्त्तमान विधान-निर्माताओं तथा निर्मातृयोंके सामने एक ही महापुरुष गांधीजीका आदर्श था। महात्माजीने किसी बातपर ज़ोर दिया, तो वे भी उस बातपर ज़ोर देते!

यद्यपि महात्माजीका जीवन विविध समस्याओंको सुलझानेमें बीता; फिर भी उन्होंने कई बार दुश्चरित्रतापर अपने पत्रोंमें काफ़ी दृढ़ताके साथ लिखा। इन विषयोंमें उनकी राय यही थी कि व्यक्तिगत चेष्टासे सुधार हो। वेश्यावृत्तिके क्षेत्रमें उनके विचारोंका सारांश यह होगा कि एक तरफ तो वेश्यासे कहा जायगा कि तुम वेश्यावृत्ति छोड़ दो और दूसरी तरफ वेश्यागामियोंसे कहा जायगा कि तुम वेश्यागमन छोड़ दो। इस प्रकार इन्हें समझाने-बुझानेके अतिरिक्त महात्माजीने क़ानून द्वारा वेश्यावृत्तिको रोकने या उसे समाप्त करनेके लिए विशेष कुछ नहीं कहा। स्मरण रहे कि महात्माजीके इस सम्बन्धमें जो विचार थे, वे उनके शराबबन्दी-सम्बन्धी विचारोंसे मिलते-जुलते नहीं हैं। जब कि शराब पीना रोकनेके लिए वे क़ानूनसे शराब बनना, बनाना, बेचना, खरीदना बन्द करना चाहते थे, वे वेश्यावृत्तिके सम्बन्धमें ऐसी बात नहीं सोचते थे। इस असंगतिका कारण यह हो सकता है कि उनके अनुयायियोंके हाथमें क़ानून बनानेका अधिकार आनेके बाद वे बहुत थोड़े ही दिन जीवित रहे। जो-कुछ भी हो, यदि शराबबन्दीके क्षेत्रमें क़ानूनका प्रयोग उचित है, तो वेश्यावृत्तिको रोकनेके लिए क़ानूनकी सहायता क्यों न ली जाय? यदि शराब पीना गर्हित है, तो क्या वेश्यावृत्ति उससे अधिक गर्हित नहीं है? यदि शराब पीनेके कारण समाजमें बहुत-से अपराध होते हैं, तो क्या वेश्यावृत्तिके कारण उससे अधिक अपराध नहीं होते?

इस सम्बन्धमें मैं श्री मन्मथनाथ गुप्तकी लिखी हुई पुस्तक 'अपराध'से कुछ वाक्य उद्धृत करूँगी। वे लिखते हैं—"अपराध और वेश्यामें बहुत ही नज़दीकी रिश्ता है। अपराधी अक्सर या तो जुआरी होते हैं, या वेश्यागामी, या दोनों। इस कारण अपराधके विरुद्ध लड़ाईका कोई भी कार्यक्रम वेश्यावृत्तिको बिना मिटाए पूरा नहीं हो सकता। वेश्या एक गुलामसे भी बुरी है। वह कहनेको तो आज़ाद है; पर वह एक ऐसी गुलाम है, जो कभी आज़ादी पा नहीं सकती। गुलामी-प्रथाकी मुख्य बात है आर्थिक शोषण। किन्तु वेश्या-प्रथामें यह तो है ही, साथ ही यह उसके व्यक्तित्वको अन्तिम दर्जे तक गिरा देता है। वर्त्तमान धन-विभाजन-पद्धतिका यह निकृष्टतम स्वरूप है। रुपएसे एक व्यक्ति एक-दूसरे व्यक्तिके परिश्रमको ही उचित या अनुचित मुआवज़ा देकर खरीद सकता है, ऐसी बात नहीं, बल्कि रुपएसे वेश्याके शरीरको भी भाड़ेपर ले सकता है। वेश्या-प्रथाके उठे बग़ैर यह कहना कि गुलामी-प्रथा उठ गई, केवल एक झूठा सन्तोष है।"

वेश्यावृत्तिकी आवश्यकता!

ऊपरके उद्धरणसे इस सम्बन्धमें परिस्थिति बिलकुल साफ़ हो जाती है। पर यहाँपर यह प्रश्न उठ खड़ा होता है और यह हमारे वैषम्यमूलक समाजमें मौजूद बौद्धिक भ्रष्टाचारका यह एक पहलू है कि कुछ ऐसे समाजशास्त्री मौजूद हैं, जो यह कहनेका साहस रखते हैं कि समाजमें वेश्या-प्रथाका रहना न केवल एक अनिवार्यता है, बल्कि यह समाजका एक आवश्यक अंग है, जिसके बग़ैर समाज रह नहीं सकता। जब ऐतिहासिक दृष्टिसे इस प्रश्नपर विचार किया जाता है, तो हमें ज्ञात होता है कि जबसे मातृ-प्रधान समाजका अन्त होकर पुरुष-प्रधान समाजकी स्थापना हुई है, तबसे वेश्यावृत्तिको समाजके एक अंगके रूपमें देखनेकी प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। जब पुरुषोंके हाथोंमें

समाजके सारे उत्पादनके साधन आ गए और उन्होंने स्त्रियोंकी तरफ़ एक एकाधिकारमूलक रुख अख्तियार किया, उसीके साथ-साथ वेश्याओंके सम्बन्धमें भी इस प्रकारका रुख उत्पन्न हुआ। सच तो यह है कि सम्पत्तिके मालिक पुरुषोंके इस रुखके कारण तथा समाजमें स्त्रियोंका आर्थिक महत्त्व घट जानेके कारण ही इस प्रकारकी वेश्यावृत्तिका उद्भव हुआ। हमारे यहाँ जो देवदासी-प्रथा थी, उसमें भी यही बात थी। दक्षिणमें तो देवदासी-प्रथा अब भी है। प्रत्येक मन्दिरमें देवदासियोंकी एक सेना-सी रहती है। कहनेको तो वे देवताके मनोरंजनके लिए नृत्य-गीत करती हैं, पर असलमें वे वेश्याओंके रूपमें ही हैं। पश्चिममें भी कुछ ऐसी ही प्रथा थी, जिसके बारेमें बर्ट्रेण्ड रसेलने लिखा है:

"It's origin was as lofty as could be. Originally the prostitute was a priestess dedicated to a God or Goddess and in serving the passing stranger she was performing an act of worship. In those days she was treated with respect, and while men used her, they honoured her".

अर्थात् वेश्यावृत्तिकी उत्पत्ति बहुत ही ऊँची थी। पहले वेश्याएँ किसी देव या देवीकी पुरोहिता होती थीं, और आनेवाले यात्रियोंकी सेवा करना ही उनके लिए पूजाका अंग था। उन दिनों इनको सम्मानकी दृष्टिसे देखा जाता था, और पुरुष उनसे काम लेते थे, पर साथ ही उनको सम्मानकी दृष्टिसे भी देखते थे। कालान्तरमें वेश्यावृत्तिसे धर्मका सम्बन्ध टूट गया, इसलिए केवल लेन-देनका व्यापारी सम्बन्ध हो गया। जो कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि वेश्यावृत्ति केवल स्त्रियोंके लिए ही नहीं, सारे समाजके लिए बहुत ग्लानिकर है।

अब इसकी अनिवार्यता तथा अपरिहार्यताके सम्बन्धमें भी बर्ट्रेण्ड रसेलके विचार सुनिए—"जब तक शरीफ स्त्रियोंका सतीत्व महत्त्वपूर्ण ही नहीं, बहुत महत्त्वपूर्ण समझा जाता है, तब तक विवाहकी संस्थाके साथ-साथ एक दूसरी संस्थाको भी, जिसे इसका अंग कहा जा सकता है, रखना ही पड़ेगा—मेरा अभिप्राय वेश्यावृत्तिसे है। प्रत्येक व्यक्ति लेकीके उस प्रसिद्ध कथनसे परिचित है, जिसमें वे यह कहते हैं कि 'वेश्याएँ घरकी पवित्रता तथा हमारी स्त्रियों और कन्याओंके मासूमपनकी संरक्षिका हैं।' इस कथनमें जो भावुकता है, वह रानी विक्टोरियाके युगके लिए सुलभ है; साथ ही जो कहनेका तरीका है, वह भी कुछ पुराना है। फिर भी इसमें वर्णित तथ्य ऐसा है, जिसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता।" बर्ट्रेण्ड रसेलकी तरह सोचनेवाले व्यक्तियोंका हमारे देशमें भी अभाव नहीं है।

मुझे याद है कि जिस समय संयुक्त-प्रान्तकी पुरानी धारा-सभामें वेश्याओंके सम्बन्धमें एक बिल विचारार्थ उपस्थित हुआ था, तो धारा-सभाके कई सदस्योंने इसी प्रकारके तर्क पेश किए थे। ऐसे लोगोंके तर्कोंपर और भी आश्चर्य इस कारण होता है कि ये लोग अनजानेमें उन्हीं बातोंका समर्थन करते हैं, जिन्हें मार्क्सके बाद मार्क्सवादियोंमें सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति एंगल्सने परिवारकी उत्पत्ति-सम्बन्धी अपनी पुस्तकमें कहा है। उनका कहना है कि 'पुरुष-प्रधान समाजमें विवाहका कथित बन्धन तथा उसकी पवित्रता केवल स्त्रियोंके लिए ही है—पुरुषोंके लिए तो सब-कुछ जायज़ है, और वे इधर-उधर हाथ मारकर अपनी क़ानूनी स्त्रीके अलावा भी स्त्रियाँ रखते हैं। बहुपत्नीत्व भी इसीका एक अंग है। इसे तो धर्मका आशीर्वाद भी प्राप्त है। वेश्यावृत्ति इसीका दूसरा पहलू है।'

जो समाजशास्त्री अपने शास्त्रके नामपर ऐसी बातोंका प्रचार करते हैं कि विवाहकी पवित्रताको अथवा घरोंकी पवित्रताको क़ायम रखनेके लिए वेश्यावृत्तिका होना ज़रूरी है, वे दूसरे शब्दोंमें इन बातोंको कहते हैं:—

(१) पुरुष स्वभावतः दुश्चरित्र हैं, और वे किसी भी हालतमें पत्नीव्रतका पालन नहीं कर सकते। इस कारण रियायतके तौरपर उन्हें वेश्याएँ चाहिएँ।

(२) पुरुषकी इस आवश्यकताकी पूर्ति सामाजिक तथा नैतिक दृष्टिसे इतनी आवश्यक है कि लाखों स्त्रियोंको ग़ुलामीसे बदतर हालतमें रखकर उनको उपभोगकी सामग्रीके रूपमें पेश करनेकी आवश्यकता है। दूसरे शब्दोंमें एक समूह (पुरुषों) के आनन्दके लिए दूसरे समूह (स्त्रियों) को आगमें झोंक देनेमें कोई हर्ज़ नहीं।

(३) स्त्रियोंको पुरुषोंकी इस आवश्यकताको मान लेना चाहिए। जब उनके पति वेश्यागमन करें, तो उन्हें इसे आवश्यक एवं उचित समझना चाहिए। इत्यादि।

कहना न होगा कि इस प्रकारके सभी उपसंहार सम्पूर्ण रूपसे अग्राह्य हैं। इस सम्बन्धमें यह स्मरण रखना चाहिए कि अरस्तू भी यह समझते रहे कि समाजके स्थायित्वके लिए दासोंका होना ज़रूरी है। यदि बर्ट्रेण्ड रसेल या अन्य व्यक्ति इस प्रकारकी बात वेश्याओंके सम्बन्धमें सोचते हैं, तो उन्हें

दोष नहीं दिया जा सकता ; क्योंकि वे अपने क्षुद्र स्वार्थोंको नहीं भुला सकते।

वेश्यावृत्तिका दुष्परिणाम

वेश्यावृत्तिके कारण जो भयंकर रोग फैलते हैं और जिनके कारण घरोंकी रक्षा न होकर उनका नाश हो जाता है, और नहीं तो केवल इसीको बन्द करनेके लिए वेश्यावृत्तिको फौरन बन्द कर देना चाहिए। बहुतसे पाश्चात्य देशोंमें—शायद हमारे यहाँ भी—कई स्थानोंमें समय-समयपर वेश्याओंकी डाक्टरी जाँचकी अनिवार्य व्यवस्था है। इसके लिए इन सरकारोंको बधाई न देकर यही कहनेकी इच्छा होती है कि जैसा सड़ा-गला समाज है, वैसे ही सड़े-गले उसकी पद्धतियाँ तथा उपचार भी हैं। भला रोगोंको निरन्तर पैदा करते रहना और फिर उन्हें प्रणाम करना, जिससे कि फिर रोग हो, यह कौन-सी अक़्लमन्दी है ?

वेश्यावृत्ति कोई शाश्वत प्रथा नहीं है। इतिहासके एक विशेष सोपानमें इसकी उत्पत्ति हुई। इस कारण आगे इसका अन्त होना आश्चर्यजनक नहीं है। आधुनिक रूसने व्यावहारिक रूपसे यह दिखला दिया है कि वेश्या-प्रथा समाप्त हो सकती है। इस बातकी आवश्यकता है, कि रूसमें वेश्या-प्रथाको जिस प्रकार समाप्त किया गया है, उसका अध्ययन किया जाय और उसे काममें लगाया जाय। अवश्य इस सम्बन्धमें सबसे पहला कार्य तो सामाजिक-आर्थिक ढाँचेको इस प्रकारसे बदलना होगा कि जिसमें पुरुष द्वारा स्त्रीका शोषण असम्भव हो जाय। जो वेश्याएँ हैं, उनको फौरन कहीं अलग कर दिया जाय और उनमें से जिनकी मानसिक चिकित्साकी आवश्यकता है, उनकी चिकित्सा की जाय, बाकी स्त्रियोंको काम करनेका आदी बनाया जाय और उनमें से जो समाजमें लौटनेके क़ाबिल हो जायँ, उन्हें समाजमें लौटनेका उचित मौका दिया जाय। मैं समझती हूँ कि स्वतन्त्रता-प्राप्तिके साथ-साथ इस ओर ध्यान देना बहुत ही आवश्यक हो गया है।

खँडहरका धन

श्री रांगेय राघव

सूने खँडहरपर मुस्काता उल्लू धीरे-धीरे !

बहुत देरमें सूरज डूबा, उजियारा हत्यारा
बोला बागुर—'भैया, अब तो तुम्हीं दीखते राजा ?'
उल्लू हँसा, आँख थी उसकी चमक उठी पीली-सी,
ऐसे हँसा कि रोया बालक घुटन बाँध ढीली-सी !
सूने खँडहरपर मुस्काता सबको गाली देता,
बिलमें से निकला तब काला साँप साँस-भर लेता !
निकले हल्के-हल्के तारे बोला बागुर हँसकर—
'अरे सूप तो सूप बहत्तर टेक छालनी देखो !'
निकला चंदा, गया चौंधिया बागुर बोला कुढ़कर—
'पन्द्रह दिनकी शान अभागी दुनियावालो देखो !
हम हैं अमर, अमर हैं खँडहर, अमर यही अँधियारा,
नये पुराने ही होते हैं क्षणभंगुर उजियारा !'

बिना हिलाए कान खड़ा था नीरव पत्थर-जैसा,
मोटा गधा भाग धोबीका, कामचोर था ऐसा।
वह मन-ही-मनमें मुस्काया हिली न उसकी काया
गहन चिन्तनोंमें वह डूबा जीवन-बोझ उठाया।
कर्कश स्वरसे कौआ बोला—पंख पूर्ण फैलाकर,
उतर डालसे सूखी, लेकर झोंका, चोंच उठाकर।
मूक गधेकी निडर पीठपर आकर चुप हो बैठा,
गर्दन टेढ़ी करके अपनी एक आँखसे देखा !
कहीं दूर पिड़कुलिया बोली, फिर उल्लू गुर्राया—
'कितने दुश्मन अँधियारेके,' यह उसने दुहराया।
सकल दृश्य है रोगीका मन, या समाजकी छाया,
खँडहरमें धन गड़ा हुआ है, नहीं काम जो आया !

निरन्न जीवन

प्रो० देवराज उपाध्याय

मैं आज आपसे एक विचित्र बात कहने जा रहा हूँ -- वैसी बात, जो बेवकूफ़ीसे भरी-सी लगे और आप एक क्षण यह सोचें कि ऐसी बातें करनेवालेके मस्तिष्ककी कील ढीली-सी हो गई है! पर वैज्ञानिक आविष्कारोंका इतिहास इस बातका साक्षी है कि विज्ञान ऐसे ही हैरत-अंगेज़ मार्गोंसे होकर अपनी उन्नतिकी मंज़िल पार करता चला जा रहा है। आज अन्नके लाले पड़े हैं, भर-पेट भोजन मिलना कठिन होता जा रहा है। जीवनकी जटिलताएँ इतनी बढ़ती जा रही हैं कि उनका सामना करनेके लिए समयका अभाव है। समय मिला भी, तो उतनी शक्ति नहीं कि जीवनकी घुड़दौड़में टिक सकें। क्या ही अच्छा होता कि कोई ऐसा उपाय निकल आता, जिससे बिना भोजनके भी जीवन-धारण संभव हो सकता और हम अपनेको संघर्षके लिए तरोताज़ा पाते। हम किसी तरह अन्न-युद्धके मोर्चेकी बगलसे कतराकर निकल जाते और जीवन-प्रवाहसे मिलकर सुखपूर्वक उसकी लहरोंपर चढ़ बह निकलते। इस तरहका स्वप्न आज ही नहीं, बहुत पहलेसे ही मानव देखता आया है। इसमें सफलता कहाँ तक उसे मिली, यह निश्चित रूपसे कहना कठिन है। इतिहासमें ऐसे प्रमाण मिलते हैं, जिनसे यह पता चलता है कि कुछ जातियोंने इस भोजनकी समस्याको हल कर लिया था। हाँ, इसका रहस्य सर्वसाधारणको विदित नहीं था। जिन थोड़े लोगोंको यह बात मालूम थी, वे इसे छिपाए ही रखना चाहते थे। पर आजका विज्ञान इस रहस्यको सर्वसाधारणके लिए सुलभ कर देना चाह रहा है, और कह रहा है कि घबराओ नहीं, हम ऐसी गोलियाँ (Pep-Tablets) तैयार कर रहे हैं, जिनके निगल लेने-मात्रसे जीवित रहना और हज़ार गुना उत्साहसे जीवन-संघर्षमें जुट पड़ना सम्भव हो सकता है। वह दिन दूर नहीं, जब कि शीशीमें रखी एक-दो बूँदोंको पी लेनेसे भोजनकी सारी आवश्यकताएँ पूरी हो जायँगी। शरीर और प्राणशक्तिपर इसका कुछ भी बुरा असर नहीं पड़ेगा, और हम जीवनका अधिक सदुपयोग करनेमें समर्थ हो सकेंगे।

सर्वशक्तिमान गोली!

कई घुमक्कड़ लोगोंके यात्रा-वृत्तान्तोंमें कुछ ऐसी बातें लिखी मिलती हैं, जिनसे पता चलता है कि कुछ जंगली जातियोंमें ऐसी गोलियाँ प्रचलित थीं, जिन्हें वे लोग खाकर एक सप्ताह तक बिना भोजनके रह और अपना काम मज़ेमें कर सकते थे—शिकार कर सकते थे, लकड़ी काट सकते थे। अर्थात् उनके कार्य-व्यापारोंमें किसी तरहकी शिथिलता नहीं आने पाती थी। ऐसे लोगोंका काम वन-बीहड़ पहाड़ों तथा आगम्य-अज्ञात प्रदेशोंका पता लगाना होता था। कोलम्बस एक ऐसा ही घुमक्कड़ था, जिसने नई दुनिया अमरीकाका पता लगाया था। जेम एक्रोय भी एक ऐसा घुमक्कड़ था, जिसने ऐसी जंगली जातियोंकी चर्चा की है, जिनके पास छोटी-छोटी तुनुक और पूरे गोल तथा अंडाकारके बीचकी शक्लकी एक गोली रहती थी। वे किसी दूसरेको इसे खानेके लिए नहीं देते थे। एक स्थानपर उसने अपने यात्रा-वृत्तान्तमें लिखा है—"मेरे भाईने सरदारकी ओर हाथ बढ़ाया और मुस्कुराया। सरदार तो पहले ठिठका, पर बादमें ऐसा मालूम हुआ कि वह उसे एक गोली देनेको प्रस्तुत है। तब तक इसी बीच काले मनुष्योंके झुंडमें से कोलाहल-ध्वनि-सी सुन पड़ी। सरदार रुक गया। वह झुंडकी ओर मुँह फेरकर ज़ोर-ज़ोरसे कुछ कहने लगा, जिसका मर्म मैं समझ नहीं सका। ... तब तक तीन तीर आकर लगे और मेरा भाई पृथ्वीपर धड़ाम्-से गिरकर मर गया।" आगे चलकर उसीने एक स्थानपर लिखा है—"मैं क़सम खाकर तो यह नहीं कह सकता कि इन लोगोंने छः दिनों तक इन गोलियोंके सिवा और किसी प्रकारका भोजन नहीं किया। हाँ, इतना निश्चित रूपसे कह सकता हूँ कि मैं इतने दिन इन लोगोंके साथ रहा; पर इन्हें भोजन बनाते अथवा कच्चा मांस खाते नहीं देखा।" अन्य यात्रियोंके वृत्तान्तोंसे भी इस बातका समर्थन होता है। जंगली, असभ्य और खानाबदोश जातियोंके पास इस तरहकी आश्चर्योत्पादक वस्तु हो, यह बात सुननेमें अविश्वसनीय भले ही लगे; पर इतना अवश्य है कि उनके पास ऐसी कोई चीज़ अवश्य थी। आज भी ऐसे साधु पाए जाते हैं, जो ऐसी जड़ी-बूटियाँ जानते हैं, जिनके सेवनसे कई दिनों तक भूख न लगे। हाँ, इन बातोंको वैज्ञानिक सचाईपर कसकर हम नहीं

देख सकते ।

जबसे मनुष्यमें ऐतिहासिक दृष्टिकोणका विकास हुआ है और इतिहासको वैज्ञानिक दृष्टिसे देखनेकी प्रवृत्ति हुई तथा घटनाओंको लिपिबद्ध कर रखनेका हौसला बढ़ा है, तबसे भी इस ओर कुछ लोगोंने प्रयत्न किया है। इन प्रयत्नोंका उल्लेख इतिहासके पन्नोंमें पाया जाता है। रिचर्ड स्कोप एक ऐसा ही व्यक्ति था। नेल्सनके दिनोंमें अर्थात् १८वीं शताब्दीमें इस व्यक्तिने एक ऐसी गोलीका आविष्कार किया था, जिसे वह 'शॉगपेलेट्स' कहा करता था। उसने इसका बड़ा ही भड़कीला विज्ञापन किया था और इसकी ओरसे बड़े-बड़े दावे किए थे—'यह जीवन देगी, स्फूर्ति देगी, आपकी नसोंको फौलादकी तरह बना देगी।' इत्यादि-इत्यादि। इतना ही नहीं, उसने कुछ व्यक्तियोंके प्रमाणपत्र भी प्राप्त किए थे, जिन्होंने कहा था कि 'मैं छः दिनों तक इसी गोलीके सहारे रहा, पर मैंने अपनेमें किसी तरहकी कमी महसूस नहीं की। कमीकी बात दूर रहे, मैं कभी भी इतनी स्वस्थताका अनुभव नहीं कर सका।' इनका रंग कुछ-कुछ काला था। ये आकार-प्रकारमें एक बड़े मटरकी तरह और अंडेकी तरह वृत्ताकार होती थीं। पर आज तक इन गोलियोंके रहस्यका पता नहीं चल सका; क्योंकि इस सारे वृत्तान्तका एक बड़े ही आकस्मिक और नाटकीय ढंगसे अन्त हुआ। स्कोपने लन्दनमें एक छोटी-सी दुकान खोल रखी थी। उसने एक दिन घोषणा की कि वह छः गोलियोंको एक साथ खाकर एक सप्ताह तक निरन्न और निराहार रह सकेगा। इस प्रयोगको देखनेके लिए जनता अधिक संख्यामें एकत्र हुई। लोगोंको इसे देखनेकी बड़ी उत्कंठा थी। वह एक-एक करके पाँच गोलियाँ खानेके बाद कुछ रुका; पर जनताने ज़ोर दिया। छठी गोली भी निगल ली गई। पर खाते ही वह उछला और ऐसा मालूम होता था कि वह कुछ कहना चाह रहा है; पर धड़ाम्-से गिरकर मर गया! जनतामें निराशा छा गई और निराशाने ऐसी प्रचण्ड क्रोधाग्निका रूप धारण किया कि उसकी सारी दुकान जला दी गई और सारी सामग्री पैरोंसे रौंदकर नष्ट कर दी गई। किसी वैज्ञानिकको गोली हाथ न लग सकी, ताकि उसका वैज्ञानिक परीक्षण करके देखा जा सकता।

द्वितीय महायुद्ध तो विज्ञानका एक तरहसे स्वर्ण-युग ही कहा जा सकता है। इसने कितने ही गुप्त शस्त्रों, अणु-बम और चालकहीन वायुयानोंका आविष्कार किया। इसी महायुद्धके सिलसिलेमें इस गुप्त भोजनकी भी खबर मिली थी। जर्मनोंकी सेनासे निकल भागनेवाले अनेक सिपाहियोंने इस बातकी सूचाना दी थी कि अन्नके अभावमें जर्मनीके सिपाहियोंको एक तरहकी गोली खिलाई जाती है। इसका आश्चर्यजनक प्रभाव यह होता था कि सिपाहियोंके हृदयसे भय, हार और थकावटकी भावना दूर हो जाती थी। वे हँसते-हँसते, यहाँ तक कि ज़ख़्मी सिपाही भी, युद्धके मोर्चेपर जा डटते थे। सबसे बड़ी बात तो यह कि उन्हें भोजनकी ज़रूरत महसूस नहीं होती थी। जर्मनोंकी पकड़से निकल भागनेवाले प्राइवेट विल्किन्सन नामक एक सिपाहीने—जो जर्मन भाषा भी जानता था, पर यह बात शत्रुओंको मालूम नहीं थी—बताया कि 'जर्मनोंने प्रत्येकको एक-एक छोटी-सी गोली दी। यह कोई बड़ी दीखनेवाली चीज़ नहीं थी। बस, ठीक साधारण मिठाईकी तरह काली-सी दीख पड़नेवाली चीज़ थी। यह प्रथम बार नहीं था कि उन्हें इस तरहकी गोलियाँ दी गई हों। मेरा पक्का विश्वास है कि इन गोलियोंके द्वारा कितनी ही चीज़ें प्राप्त होती थीं—पीड़ा सहन करनेकी शक्ति, आक्रमण करनेका साहस, पराजयमें दृढ़ता और सबसे ऊपर भोजन भी साथ-साथ।' पता नहीं, विल्किन्सन और उसके ही जैसे अन्य सैनिकोंके कथनमें सत्यताका अंश कितना है। मित्र-शक्तियोंके हाथ दो बार ऐसी गोलियाँ लगी थीं, जिन्हें समझा जाता था कि वे जर्मनोंकी अनुमानित भोजनकी गोलियाँ हैं। इनकी वैज्ञानिक परीक्षा कराई गई थी; पर उसका परिणाम कुछ नहीं निकला। वैज्ञानिकोंने कहा कि यह व्यर्थकी चीज़ है, इसमें कुछ भी सार तत्त्व नहीं।

इधर युद्धके बाद अमरीकामें मैसाचूसेट्स इंस्टीट्यूट आफ टैकनालाजीके प्रो० राबर्टस हैरिसने एक जमाए हुए भोजनका आविष्कार किया, जिसे 'फूड मिक्स्चर००XX' कहते हैं। आश्चर्य तो यह है कि इस भोजन-सामग्रीके तैयार करनेमें इतना कम खर्च बैठता है कि एक वर्षके लिए एक मनुष्यके भोजनकी खाद्य-सामग्रीका खर्च एक पौण्ड होता है।

ठोस-लघु आकारमें भोजन

ऊपर दी गई बातें सही हों या नहीं, परन्तु अधिक मात्राकी भोजन-सामग्रीको यान्त्रिक प्रक्रिया द्वारा दबाकर ठोस-लघु आकारमें उपस्थित कर देना कठिन नहीं। इसके लिए जर्मनीके प्रसिद्ध 'ब्राटलिंग पाउडर' और 'एडेल सोया' नामका प्रसिद्ध कृत्रिम भोज्य-सामग्रीकी ओर ध्यान आकर्षित किया जा सकता

है। ग्राटलिंग पाउडर सोयाबीन, अन्न, दूध, अलबुमेनके मिश्रणसे तरह-तरहकी जड़ी-बूटियोंके सहयोगसे बनाया जाता है। यह बहुत पौष्टिक होता है और अन्य शाक तथा भोजनसे सस्ता पड़ता है। एडेल सोया तो सोयाबीनके आटेका प्रोटीन है और वह दबाकर मिश्रीके टुकड़ोंके रूपमें उपस्थित किया जाता है। यह भोजनके रूपमें काफ़ी सफल पाया गया है। परीक्षणसे पता चला है कि भोजनके अभावकी पूर्त्ति इसके द्वारा सफलतापूर्वक की जा सकती है। अभी हाल ही में अमरीकासे 'टेबलेट ए-१' के आविष्कारकी बात सुनी गई है। इसकी ओरसे बड़े-बड़े दावे किए जाते हैं। युद्धके समाप्त होते-होते यह आविष्कार हाथ लगा। कहा जाता है कि इसकी एक गोली खा लेनेके बाद एक पूर्ण वयस्क पुरुष बिना कुछ और भोजन किए दो दिन तक मज़ेमें रह सकता है। साथ ही खानेवाले मनुष्यके बल और स्फूर्तिमें द्विगुणित वृद्धि हो जाती है। किन-किन सामग्रियोंसे इस गोलीका निर्माण होता है, यह सर्वसाधारणको बतलाया नहीं गया है। पर ऊपर जिस 'मिक्सचर००XX' की चर्चा की गई है, उसका परीक्षण करके देखा गया है और वह कसौटीकर ठीक उतरा है।

मानवता एक बड़े ही विचित्र युगसे गुज़र रही है। ऐसी-ऐसी बातें हमारे सामने आ रही हैं, जिनके चलते विश्वके नक्शेमें अभूपूर्व क्रान्ति हमारे सामने ही हो रही है। यह प्रसन्नताकी बात हो सकती है, पर साथ ही चिन्ताकी बात भी कम नहीं है। मनुष्यके सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि इन वैज्ञानिक आविष्कारोंके तेजको सम्हालनेकी योग्यता अपनेमें पैदा करे। वह अपने आन्दर वैसी शक्ति पैदा करे कि वह इन चीज़ोंको झुकाकर, गलाकर, पचाकर अपने अनुरूप बनाकर शक्तिदायक रास्तेके रूपमें परिणत कर सके। तभी मानवताका कल्याण है। यदि मनुष्य इन चीज़ोंकी ऊँचाईके सामने स्वयं झुक गया, तो उसने अपने पैरोंमें कुल्हाड़ी मार ली। हमारा सबसे प्रथम कर्त्तव्य है कि हम मनुष्यकी उच्चतामें विश्वास करें। चण्डीदासके शब्दोंमें 'सुनो रे मानुस भाई सबार ऊपर तुमि सत्य, तोमार ऊपर नाइ।' तभी ये आविष्कार हमारे कामके हो सकते हैं। मनुष्य इन वैज्ञानिक आविष्कारोंको ही प्रधानता देकर भौतिक सुख-सौविध्यको सब-कुछ समझकर चलता रहा है और परिणामस्वरूप एक ही पीढ़ीमें दो-दो विश्वव्यापी युद्धोंकी लपटोंमें उसे झुलसना पड़ा है। यदि उसने अपने सारे व्यापारोंके केन्द्रोंमें मनुष्यकी पवित्र मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा नहीं की और उसके परिणामपर नहीं चला, तो प्रकृति उसे कठोर दण्ड देगी।

मैं तुमपर शपथ चढ़ाता हूं!

श्री भवानीप्रसाद मिश्र

हो दोस्त या कि वह दुश्मन हो, हो राही या परिचय-विहीन ;
तुम जिसे मानते रहे बड़ा, या जिसे समझते रहे दीन ;
यदि कभी किसी कारणसे उसके यशपर उड़ती दिखे धूल ;
तो सख्त बात कह उठनेकी, रे तेरे हाथों हो न भूल !
मत कहो कि वह ऐसा ही था, मत कहो कि इसके सौ गवाह !
यदि सचमुच हो वह फिसल गया, या उसने पकड़ी ग़लत राह
तो सख्त बातसे नहीं, स्नेहसे काम ज़रा लेकर देखो !
अपने अन्तरका प्यार अरे देकर देखो !
कितने भी गहरे रहें गर्त्त, हर जगह प्यार जा सकता है ;
कितना भी भ्रष्ट ज़माना हो, हर समय प्यार भा सकता है।
जो गिरे हुओंको उठा सके, इससे प्यारा कुछ जतन नहीं ;
दे प्यार उठा पाए न जिसे, इतना गहरा तो पतन नहीं।
देखेसे प्यार-भरी आँखें, दुस्साहस पीले होते हैं ;
हरएक धृष्टताके कपोल आँसूसे गीले होते हैं।
तो सख्त बातसे नहीं, स्नेहसे काम ज़रा लेकर देखो !
अपने अन्तरका प्यार अरे देकर देखो !
तुमको शपथोंसे बड़ा प्यार, तुमको शपथोंकी आदत है ;
है शपथ ग़लत, है शपथ कठिन, ये शपथें लगभग आफ़त हैं।
ली शपथ किसीने और कि समझो आफ़त पास सरक आई ;
तुमको शपथोंसे प्यार, मगर शपथें तुमपर छाई-छाई।
तो तुमपर शपथ चढ़ाता हूँ, तुम इसे उतारो स्नेह-स्नेह ;
मैं तुमपर इसको मढ़ता हूँ, तुम इसे बखेरो गेह-गेह।
है शपथ उन्हें करुणाकरकी, है शपथ उन्हें उस नंगेकी ;
जो माँग-माँगकर स्नेह भीख मर गया कि उस भिखमंगेकी।
है सख्त बातसे नहीं, स्नेहसे काम ज़रा लेकर देखो !
अपने अन्तरका स्नेह ज़रा देकर देखो !

जीवन-प्रतियोगिता

श्री पृथ्वीनाथ शर्मा

चारों ओर रात्रिका घोर सन्नाटा था। संयोगिता चारपाई पर शरीर रगड़ रही थी। कमरेके कोनेमें पड़ी हुई तिपाईपर रखे सस्ते टाइमपीसका टिक्-टिक् स्वर वातावरणमें फैलकर उसे मानो चिढ़ा रहा था। उसे समझमें नहीं आता था कि क्या निश्चय करे। कभी उसके सम्मुख अपने तेईसवर्षीय प्रतिभा-सम्पन्न भाईका चित्र आ जाता था, जिसने एक दिन सहसा प्रयोगशालामें परीक्षण करते हुए अपने नेत्रोंकी ज्योति खो दी थी और कभी उसकी कल्पना उस अज्ञात अंगहीन नवयुवकका चित्र खींचने लगती थी, जिसके साथ आयु-पर्यन्त अपने-आपको बाँधनेसे उसके भाईकी समस्या हल हो सकती थी। इश्वरके डाक्टर सभी एकमत थे कि उसका भाई वियनाके विशेषज्ञों द्वारा पुनः नेत्र पा सकता था; पर इससे लिए आवश्यकता थी धनकी—कम-से-कम दस हज़ार रुपएकी। और उनके पास उसका शतांश भी न था। जो-कुछ पिता छोड़ गए थे, वह पहले ही भाईकी बीमारीमें व्यय कर चुकी थी और बच्चे पढ़ानेसे उसे जो मासिक आय होती थी, उससे कठिनतासे उनका गुज़ारा हो रहा था। तब? क्या वह बाँध दे अपने-आपको उस अनजाने सदैव रोगी धन-कुबेर युवकके साथ? किन्तु यह साहस वह कहाँसे लाय? कितनी कठोर शर्तें उन्होंने रखी हैं। वह सहसा चारपाईसे उठ खड़ी हुई। दीवारपर के बिजलीके बटनको दबा दिया। कमरेमें चारों ओर उजाला फैल गया। उसने आगे बढ़कर तिपाईपर पड़े हुए उस छोटे-से अखबारके कटे टुकड़ेको उठा लिया और फिर एक बार उसे पढ़ने लगी।

"आवश्यकता है"—उसमें लिखा था—"मेरे पुत्रके लिए एक कन्याकी। लड़केकी आयु चौबीस वर्ष है। वह शिक्षित तथा सुसंस्कृत है, पर चल-फिर नहीं सकता। लड़कीको निम्न-लिखित शर्तें माननी होंगी: पहली, लड़केसे तुरन्त विवाह करना होगा। दूसरी, आयु-पर्यन्त उसके साथ रहना होगा। तीसरी, घृणाशून्य मनसे उसकी सेवा करनी होगी। लड़कीको बीस हज़ार रुपया तुरन्त और उसके अनन्तर एक धन-कुबेरकी गृहलक्ष्मीको जो-कुछ भी प्राप्त होता है, मिलेगा। केवल शिक्षित लड़कियाँ ही मुझसे पत्र-व्यवहार करें अथवा टेलीफ़ोन पर बात करें।" इसके बाद टेलीफोन नम्बर दिया था।

संयोगिता पढ़कर पर्चा हाथमें लिए-लिए ही फिर सोचमें डूब गई। वह घृणाशून्य मनसे उसकी आयु-पर्यन्त सेवा करनेको तैयार है; पर उसे उनकी गृहलक्ष्मीका पद नहीं चाहिए। यदि वे उसे इसपर विवश न करें, तो वह आधा ही रुपया लेनेको तैयार है। पर यह कैसे सम्भव हो सकता है? वे अपनी शर्तोंसे इधर-उधर कहाँ हो सकते हैं? संयोगिताने एक दीर्घ निश्वास लिया। दो-चार डग कमरेमें चली, फिर टाइम-पीसकी ओर देखा। दिन चढ़नेमें अभी दो घंटेकी देर थी। अब वह चारपाईका सहारा न ले सकेगी। कमरेके कोनेमें एक आरामकुरसी पड़ी थी। वह उसपर अधलेटी-सी जा पड़ी और आँखें मूँद लीं।

भावोंका बवण्डर पुनः उससे छेड़-छाड़ करने लगा। एक ओर उसके भाईका जीवन था, जो उससे बड़ा होकर भी प्रकृतिकी एक ही चोटसे नेत्र गँवाकर उसका आश्रय लेनेके लिए विवश हो गया था और दूसरी ओर था उसका अपना जीवन। उसका जीवन? भाईके अपाहिज होनेसे पहले अवश्य उसने अपने भविष्यका एक काल्पनिक स्वर्ग बनाया था; किन्तु उस महान दुर्घटनाकी सूचना पानेके अनन्तर उसने उस स्वर्गपर सदाके लिए परदा डाल दिया था। वह अपना समस्त जीवन भैयापर उत्सर्ग कर देगी। वह अपने नेत्रहीन अग्रजके नेत्र बनेगी, यह निश्चय उसने किया था। ऐसी परिस्थितिमें उसके जीवनका मूल्य ही क्या है? यदि अपना सर्वस्व समर्पण करके वह भैयाको नेत्र-ज्योति प्रदान कर सके तो इससे बढ़कर और सौभाग्य क्या हो सकता है? किन्तु उस अनजाने रोगग्रस्त युवककी पत्नी वह कैसे बन सकेगी! उसे कँपकँपी आ गई। वह सहसा कुरसीसे उठ खड़ी हुई और बेचैनीसे पुनः कमरेमें टहलने लगी। नहीं, उसे भाईके उज्ज्वल भविष्यके लिए अपने भावोंको कुचलना होगा।

इतनेमें साथवाले कमरेसे उसके भाईने आवाज़ दी—'संयोग, इतनी रात गए भी क्या तुम जाग रही हो?'

'नहीं तो।' संयोगिताने झटपट बत्ती बुझा दी—'यूँही दो क्षणके लिए उठी थी, मोज़े पहननेके लिए। ज़रा सर्दी

लग रही थी।'

'तो अब अच्छी तरहसे रजाई ओढ़कर सो जाओ।'

'बहुत अच्छा।'—संयोगिताने कहा और चुपकेसे चारपाईके बजाय फिर कुरसीपर जा बैठी।

—२—

दिन चढ़नेपर संयोगिता झटपट तैयार हो गई और भाईसे बोली—'मैं थोड़ी देरके लिए बाज़ार जा रही हूँ। कुछ चीज़ें खरीदनी हैं।'

'हो आओ।'—भाईने कहा।

वह धड़कते दिलसे चल पड़ी उस अखबारकी कतरनको पकड़े हुए। उनके मकानके निकट ही दवाइयोंकी एक दुकान थी, जहाँपर टेलीफ़ोन था। वहींसे उसने धन-कुबेरको टेलीफ़ोन करनेका निश्चय किया।

डायलको घुमाकर उसने रिसीवर कानसे लगा लिया और किसी अपरिचित कठोर स्वरकी प्रतीक्षा करने लगी। इतनेमें किसीने सुसंस्कृत मधुर स्वरमें परिचय दिया—'मैं साँवलदास बोल रहा हूँ।'

'साँवलदास?' उसने आश्चर्यसे पूछा और हाथमें पकड़े हुए कतरनकी ओर देखा। 'मैं...'

'हाँ, हाँ', वह ज़रा हँसा और बीचमें ही बोल उठा—'मैं वही हूँ—एस० डी० खन्ना। कहिए।'

'मैंने अखबारमें आपका विज्ञापन देखा है, उसी विषयपर आपसे बात करना चाहती हूँ। क्या मैं आ सकती हूँ?'

'अवश्य।' उधरका स्वर थोड़ा गम्भीर हो चला। 'आपने शर्तें अच्छी तरहसे समझ ली हैं? यदि हाँ, तो पधारिए; यदि नहीं, तो कष्ट...'

इस बार संयोगिताने उसे वाक्य समाप्त न करने दिया—'मैंने सब-कुछ समझ लिया है। आपका मकान ठीक कहाँ है?'

'आप इसकी चिन्ता न करें। आप कहाँसे बोल रही हैं? मैं अभी वहीं मोटर भेजता हूँ।'

संयोगिताने बता दिया और कहा—'मैं मोटरके बिना ही पहुँच जाऊँगी।'

'कृपया दस मिनट तक प्रतीक्षा कीजिए। मेरी गाड़ी तब तक अवश्य पहुँच जायगी। नीली ब्यूक और खाकी-वर्दी वाला छेदी नामका ड्राइवर है।'

संयोगिताने उसको धन्यवाद दिया और दुकानसे निकल कर सड़कके किनारे नीली ब्यूककी प्रतीक्षामें आ खड़ी हुई। न चाहते हुए भी उसका हृदय हाथोंसे निकलकर धक्-धक् कर रहा था। उसे ऐसा लग रहा था, मानो राह चलते भी उसके दिलकी धड़कन अवश्य सुन रहे होंगे। ओठोंको दबाकर वह हृदयसे युद्ध करती हुई अपने भगवानसे बल माँगने लगी कि वे आनेवाली अद्भुत परीक्षामें उस अबलाको सफल करें। सामने कुछ बच्चे आनन्दसे ओतप्रोत खेल रहे थे। वह कुतूहलपूर्वक उनकी ओर देखने लगी। वह भी कभी उन्हींकी भाँति चिन्ता-रहित उल्लासके आकाशकी बन्धन-रहित विहंगिनी थी। कभी! पर अब? और कौन जाने इनके भाग्यमें क्या बदा है। होश सँभालते ही उनमें से किसी एकके सिरपर भी दुःखों और वेदनाओंके पहाड़ टूट सकते हैं।

वह इन्हीं विचारोंमें निमग्न थी कि एक नीली मोटर उसके सामने आ खड़ी हुई। खाकी वर्दीवाला शोफ़र बाहर निकलकर इधर-उधर देखने लगा। संयोगिता उसकी ओर बढ़कर पूछा—'किसकी गाड़ी है?'

'खन्ना साहबकी।'

'और तुम्हारा नाम?'

'छेदी।'—शोफ़रने कहा और मोटरका दरवाज़ा खोल दिया।

संयोगिता चुपकेसे उस मुलायम गद्देदार सीटपर मानो धँसती हुई बैठ गई। शोफ़रने दरवाज़ा बन्द कर दिया और एक ही क्षणमें मोटर उसे लेकर भाग चली।

कुछ ही देरमें राजहंस-सी तैरती हुई वह गाड़ी बड़ी सड़कको पार करके एक छोटी, किन्तु एकान्त सड़कपर हो ली और संयोगिताके देखते-ही-देखते लोहेके एक बड़े फाटकको पार कर गई। अन्दर सड़क लाल गेरूसे रँगी थी और उसके अन्तमें था खन्ना साहबका श्वेत बँगला। बँगलेके ठीक सामने एक मखमल-सी हरी घासका कायदेसे कटा-छँटा लान था। लानके इर्द-गिर्द विविध रंगोंके पौधे लगे हुए थे। उनकी मधुर महक चारों ओर फैल रही थी। उस लानके साथवाली सड़कको चीरती हुई मोटर कोनेके बरामदेके बाहर आ खड़ी हुई। खन्ना साहब बरामदेमें ही संयोगिताकी प्रतीक्षामें खड़े थे। संयोगिताके मोटरसे बाहर निकलते ही गृहस्वामीने मुस्कराकर उसका स्वागत किया और हाथ जोड़कर उसको नमस्कार किया। बरामदेकी दो सीढ़ियाँ ऊपर चढ़ती हुई संयोगिताने उसे प्रतिनमस्कार किया। फिर उसके साथ-साथ कोठीके अन्दर चली गई।

—३—

खन्ना साहबके बड़े ड्राइंग-रूममें जब एक सोफ़ेपर संयोगिता बैठ गई, तो उससे पूछा गया—'अब कहिए?'

'मेरा नाम संयोगिता है।' उसने कहा—'और एक भाईके सिवा मेरा इस संसारमें अब कोई नहीं।'

'आप शिक्षिता हैं?'

'यदि बी० ए० पास करनेसे कोई शिक्षित हो सकता है, तो समझ लीजिए, मैं शिक्षिता हूँ।'

खन्ना साहबने तुरन्त कुछ जवाब न दिया। वे आधा क्षण एकटक संयोगिताका निरीक्षण करते रहे, फिर बोले—'मेरी शर्त्तें आपको मंजूर हैं?'

'हाँ। किन्तु उनपर चलनेका क्रम क्या होगा, यह बता दीजिए?'

'क्रम!' खन्ना इस प्रश्नसे थोड़ा चकित हुए।

'हाँ। मेरा मतलब है, विवाह कब करना होगा, रुपया कब मिलेगा—विवाहसे पहले या पीछे?'

'रुपया विवाह होते ही आपकी झोलीमें डाल दिया जायगा।'

'और बाकी कर्त्तव्य कबसे आरम्भ होंगे?'

'उसी दिनसे।'

'और यदि मैं विवाहके दो-एक दिनके पश्चात् दो मास—केवल दो मास—की छुट्टी माँगूँ, तो मिल सकेगी?'

'वह क्यों?'

'इसलिए....' वह थोड़ा रुकी।

'हाँ, कहिए।'—खन्नाने प्रोत्साहन दिया।

'उसको छोड़िए। पहले आप यह बतलाइए कि छुट्टी मिलना सम्भव होगा या नहीं?'

खन्नाने आधा क्षण सोचा, फिर निश्चयात्मक स्वरमें जवाब दिया—'नहीं, मेरी शर्त्तोंमें यह बात कहाँ लिखी है?'

'आपकी शर्त्तोंमें इसके विरुद्ध भी तो कोई बात नहीं लिखी है। खैर!' संयोगिता उठ खड़ी हुई और बोली—'कष्टके लिए क्षमा चाहती हूँ।'

संयोगितासे कुछ दूर साथवाले कमरेमें एक दरवाज़ा खुलता था। उसके मध्यमें एक रेशमी परदा पड़ा था। उसीको चीरती हुई एक ऊँची आवाज़ उसके कानोंमें पड़ी—'डैडी, इनको जाने न दीजिएगा। मैं इनसे एक बात करना चाहता हूँ।'

'किन्तु...'

'किन्तु-विन्तु कुछ नहीं। कृपया आप इन्हें एक क्षणके लिए इधर लाइए।'

'बहुत अच्छा, बेटा!'—पिताने कहा और आगे बढ़कर परदा एक ओरको हटा दिया।

साथवाले कमरेमें एक गद्देदार आरामकुरसीपर कम्बल लपेटे हुए एक नवयुवक बैठा था। पीत वर्ण, विशाल नेत्र, तीखी नाक, मस्तकपर खेलते हुए रेशमके समान कोमल अस्तव्यस्त काले केश। संयोगिता उसे देखकर चकित रह गई—'राकेश, तुम!'

युवक मुस्कराया—'हाँ, मैं! मैंने यहाँ पड़े-पड़े ही तुम्हारी आवाज़ पहचान ली थी। और यह था भी स्वाभाविक।'

'सो कैसे?'—पिताने चकित स्वरमें पूछा।

'इसलिए'—पुत्र मुस्कराया और बोला—'कि जिस जिह्वाके जौहर मुझे सदा परास्त करते रहे हों, उसे मैं कैसे भूल सकता हूँ। डैडी, भाषण-प्रतियोगितामें कभी एक बार **भी** मैं इनको जीत न सका।'

'भाषण-प्रतियोगिताके दिन हवा हुए,' संयोगिता व्यंगपूर्ण मुस्कराई—'किन्तु जीवन-प्रतियोगितामें मेरी अवस्था तो देखो। पग-पगपर हार रही हूँ।'

'जीवन-प्रतियोगिता!' राकेशके मुखपर पीड़ाकी कुछ रेखाएँ खिंच गईं। उन्हें मानो मिटानेके प्रयत्नमें ही वह किंचित् मुस्कराया और संयोगितासे, जो अभी तक खड़ी ही थी, बोला—'ज़रा बैठ तो जाओ। मुझे तुमसे बहुत बातें करनी हैं।'

संयोगिता सामने पड़ी हुई कुरसीपर बैठ गई।

'मैं थोड़ी देरमें आता हूँ।'—पिताने कहा और वहाँसे खिसक गया।

'अब कहो।' संयोगिता सहानुभूति-सूचक स्वरमें बोली—'तुम विलायतसे कब लौटे, तुम्हारे पिता यहाँ कब आए और तुम्हारे-जैसे स्वस्थ युवकको यह क्या हो गया?'

राकेशने निमिषके लिए संयोगिताकी ओर देखा, फिर जेबसे चाँदीका सिगरेट-केस निकाला और संकेतसे संयोगिताकी आज्ञा प्राप्त करके उसमें से एक सिगरेट छाँटा। उसे सुलगाकर उसके कश खींचता हुआ कहने लगा—'विलायतसे लौटे मुझे अभी केवल छः मास हुए हैं। वहाँपर मैं एक दुर्घटनाका शिकार हो गया था, जिसके कारण मेरी दोनों जाँघें निकम्मी हो गईं। कुछ समय में अपने पिताके पास कलकत्तेमें रहा,

पर वहाँका जलवायु मुझे अनुकूल नहीं बैठा। इसलिए डैडीको मेरे लिए यह बँगला मोल लेना पड़ा और अपना कारोबार छोड़कर यहाँ आना पड़ा।'

'मुझे बहुत ही खेद है,' संयोगिता बोली—'और अब तुम्हें तुम्हारी पत्नीको सौंपकर वे पुनः कारोबारको हाथमें लेना चाहते हैं।'

'हाँ।' राकेशने एक दीर्घ निश्वास लिया—'उनके यहाँ आ जानेसे कारोबार चौपट हो रहा है।'

'भगवान करे, तुम्हें कोई योग्य पत्नी मिल जाय।'

'डैडी द्वारा रखी हुई शर्तोंपर? असम्भव। खैर, तुम बताओ, तुमको डैडीके विज्ञापनने क्यों आकर्षित किया?'

'धनके लोभके कारण।'

'धनका लोभ?' अविश्वासपूर्ण नेत्रोंसे राकेशने संयोगिता की ओर देखा।

'क्यों नहीं?' संयोगिता खिलखिलाकर हँसी—'मैं भी तो मानव हूँ।'

'देखो, मुझे बनाओ नहीं; सच-सच बताओ।' उसके स्वरमें आग्रह था।

संयोगिताकी मुद्रा गम्भीर हो उठी—'मुझे भैयाके इलाजके लिए रुपया चाहिए।'

'सुमनके लिए? उसे क्या हो गया?'—युवकने चकित स्वरमें पूछा।

'प्रयोगशालामें परीक्षण करते हुए नेत्र खो बैठे हैं।'

'नेत्र?' राकेशके स्वरमें सच्ची सहानुभूति थी।

'हाँ, और डाक्टरोंका मत है कि वियनाके विशेषज्ञ उन्हें पुनः दृष्टि दे सकते हैं। किन्तु वहाँ जानेके लिए चाहिए धन और हम हैं अब धनहीन। जो-कुछ पिताजी छोड़ गए थे, वह सब भैयाकी बीमारीमें खर्च हो चुका है। इसीलिए मैं यहाँ आई थी; पर तुम्हारे पितासे सौदा ही नहीं पटा। यदि कहीं मेरी शर्त्त वे मान लेते, तो मैं बीसके बजाय दस हज़ार ही ले लेती।'

राकेशने कुछ जवाब न दिया। वह गहरे सोचमें डूब गया। कालेजके दिनोंमें संयोगिताका व्यक्तित्व विद्यार्थी-जगतका एक अनूठा उज्ज्वल अध्याय था। वह बढ़िया-से-बढ़िया, पर सादे वस्त्र पहनती थी। दम्भ उसे छू भी नहीं गया था, पर आत्माभिमान उसके रोम-रोमसे झलकता था। सबसे हँसकर मिलती थी, पर किसीको अपने निकट फटकने भी न देती थी। और अब? अब भी उसका व्यक्तित्व एक अद्भुत ऊँचाई छू रहा है। भाईको जीवन देनेके लिए अपने-आपको मिट्टीमें मिलाने जा रही है; अपना सर्वस्व निछावर करने जा रही है! और वह सर्वस्व भी है इतना अद्वितीय, जिसे प्राप्त करके बड़ेसे बड़ा पुरुष भी कृतकृत्य हो जाय।

संयोगिता कुछ देर तो चुपचाप बैठी राकेशके मस्तकपर चिन्ताके पड़े हुए बल देखती रही। फिर थोड़ा बेचैन होकर बोली—'अब तुम किस सागरकी गहराईमें उतर रहे हो?'

राकेशके सोचका तार टूट गया, सहसा बोला—'क्या मेरे साथ एक सौदा करोगी?'

'क्या?'

'यदि मैं तुम्हें वियनाका खर्च दे दूँ, तो क्या भूले-भटके कभी-कभी मेरी सुध लेने आ जाया करोगी?'

'तुम्हारी सुध तो मैं अब लेती ही रहूँगी; पर वियनाका खर्च उसके बदलेमें न ले सकूँगी।'

'क्यों?'

'इसलिए कि वह तुम्हारे पिताकी गाढ़ी कमाईके साथ घोर अन्याय होगा।' संयोगिता उठ खड़ी हुई—'अपने पिताजीको मेरा नमस्कार कह देना।'

'भाग क्यों चलीं?'—राकेशके स्वरमें चिन्ता थी।

'फिर कभी आऊँगी।'

वह तेज़ीसे बाहरकी ओर चल दी। खन्ना साहब कहीं भी न दीखे, किन्तु शोफर गाड़ीके निकट खड़ा था। उसने मोटरका दरवाज़ा खोल दिया और वह उसमें जा बैठी। जब मोटर चल दी, तो संयोगिताने एक दीर्घ निश्वास लिया, और उसकी निराशा दो बड़े-बड़े मोतियोंका रूप धारणकर उसके नेत्रोंसे ढुलक पड़ी।

—४—

तीसरे दिन संयोगिताको डाकसे राकेशका पत्र मिला, जिसके साथ दस हज़ारका एक चेक टँका था। संयोगिताने उड़ती हुई दृष्टिसे चेककी ओर देखा और उत्सुकतासे पत्र पढ़ने लगी:

"तुम्हारे स्वभावसे भलीभाँति परिचित होनेपर भी तुम्हें चेक भेजनेकी धृष्टता कर रहा हूँ। यदि बीते हुए दिनोंकी परस्परकी आनन्ददायक प्रतिद्वन्द्विताका ध्यान करके तुम इसे स्वीकार कर लो, तो एक बुझते हुए दीपकको थोड़े दिनोंके लिए संबल मिल जायगा। उसका जीवन सूर्यकी रश्मियोंका कुछ

घड़ियों तक अधिक रसास्वादन कर सकेगा। क्या तुम्हारा महान आत्माभिमान यह 'बलिदान' करनेकी तुम्हें आज्ञा दे सकेगा ? यदि हाँ, तो वियनसे लौटकर दर्शन देनेकी कृपा करना, और यदि नहीं, तो मेरे इस पत्रको एक विकृत मस्तिककी उपज समझकर चेक-समेत टुकड़े-टुकड़े करके धूलमें मिला देना।"

पत्र पढ़कर संयोगिता चकित रह गई। राकेश इस तरह अपना हृदय निकालकर कागज़पर उतार देगा, यह उसने भूलकर भी न सोचा था। अब वह करे, तो क्या ? न तो चेक स्वीकार करते बनता था और न ही उसे धूलमें मिलानेका उसमें साहस था; क्योंकि ऐसा करनेसे राकेशके मनको तीव्र धक्का लगना निश्चित था। राकेशके मनमें कितनी वेदना थी, पत्रका एक-एक शब्द मानो उसका साक्षी था। पर वह दस हज़ार रुपया संयोगिता ले भी कैसे ले, उसका उन रुपयोंपर अधिकार ही क्या है ? बीते हुए दिनोंकी स्वस्थ प्रतिद्वन्द्विता, उसके बीते हुए मधुर दिन, राकेशकी खोई हुई सुनहली घड़ियाँ और भैयाका उजड़ा हुआ ज्योतिर्मय संसार ! क्या ये कभी पुनः लौट सकते हैं ? क्या राकेशका यह कार्य उन्हीं बीते हुए दिनोंको लौटानेका एक प्रयत्न नहीं ? हो सकता है, राकेशके लिए वे दिन फिर न लौट सकें; किन्तु भैया तो अपना ज्योतिर्मय संसार पुनः पा सकते हैं। ऐसी परिस्थितिमें उसे क्या अधिकार है कि वह आत्माभिमानको मनमानी करने दे। उसे यह रुपया स्वीकार करना ही होगा। कहीं वह अपने निश्चयको बदल न दे, यह सोचकर वह झटपट उठी और पैड तथा क़लम उठाकर राकेशको उत्तर लिखने बैठी। उसने लिखा—"मैंने तुम्हारा चेक स्वीकार कर लिया है। क्यों, यह वियनासे लौटकर समझानेका प्रयत्न करूँगी। किन्तु उसे ठीक तरह समझा सकूँगी, इसमें सन्देह है। क्या तुम मेरी प्रतीक्षा करोगे ?"

दूसरे दिन पत्र पढ़कर राकेशका हृदय खिल उठा। प्रतीक्षा ! इसका क्या मतलब ? और उधर जब संयोगिताने ठंडे दिलसे अपने पत्रके विषयमें सोचा, तो उसके मनमें भी यही प्रश्न उठा कि उसने प्रतीक्षाकी बात क्यों लिख दी ?

—५—

वियनाके विशेषज्ञ सचमुच सफल हो गए। उन्होंने सुमन को पूर्णरूपेण पुनः ज्योति प्रदान कर दी। जिस दिन सुमनके नेत्रोंसे पट्टी खोली गई, तो संयोगिता धड़कते दिलसे उसके कमरेके बाहर खड़ी अपने भगवानकी प्रार्थनामें लीन थी। जब नर्सने बाहर निकलकर उसे यह शुभ संवाद सुनाया, तो सहसा उसे नर्सके शब्दोंपर विश्वास नहीं हुआ।

'सचमुच तुम ठीक कह रही हो ?'

'बिलकुल। अभी दो मिनटमें आप स्वयं देख लेंगी। आपरेशन बिलकुल सफल रहा है।'

संयोगिताने कुछ जवाब नहीं दिया। सहसा उसके नेत्र आर्द्र हो उठे और नर्सके देखते-देखते ही उनमें से प्रेमाश्रु ढुलकने लगे। नर्स मुस्कराई और पुनः सुमनके कमरेकी ओर जाती हुई बोली—'अभी आपके अन्दर आनेके विषयमें पूछती हूँ।'

नर्सने संयोगिताको सँभलनेका अवसर देनेके लिए जान-बूझकर आवश्यकतासे अधिक समय लगा दिया। जब वह संतोगिताको अन्दर लिवा ले जानेके लिए बाहर निकली, तो संयोगिता अपने ऊपर काबू पा चुकी थी।

'भैया', संयोगिता मुस्कराती हुई भाईकी चारपाईकी ओर बढ़ी—'क्या आप मुझे देख रहे हैं ?'

'अच्छी तरह। तुम्हारी सफ़ेद साड़ी मैली हो रही है। बाल अस्तव्यस्त हैं। तुम्हें अब अपनी देखभाल ठीक ढंगसे करनी होगी।'

संयोगिताके सहारे पड़ा हुआ सुमन एक क्षणमें ही पुनः बड़े भाईका रूप पा गया, जिसकी मधुर ताड़ना संयोगिताके लिए दुर्लभ हो चुकी थी। आनन्दातिरेकसे बहन खिल उठी और आगे बढ़कर भाईकी चारपाईपर बैठ गई। भाईने स्नेहसे उसका हाथ अपने हाथमें ले लिया और तकियेके सहारे थोड़ा उठकर दूसरे हाथसे उसके केश सँवारने लगा।

कुछ देरके बाद डाक्टरका संकेत पाकर संयोगिता बाहर निकल आई। डाक्टर भी उसके पीछे-पीछे था। संयोगिताने कहा—'मैं आपको कैसे धन्यवाद दूँ, डाक्टर, समझमें नहीं आता।'

'इसकी आवश्यकता नहीं', बूढ़ा डाक्टर मुस्कराया 'उल्टा मुझे तुम्हें धन्यवाद देना है।'

'वह क्यों ?'

'इसलिए कि तुम-जैसी अद्‌भुत लड़कीने मुझे यह आपरेशन करनेका अवसर प्रदान किया।'

संयोगिता मुस्करा दी—'छुट्टी कब मिलेगी ?'

'एक सप्ताहमें।'

डाक्टरसे आज्ञा लेकर संयोगिता चल पड़ी; पर कहीं

दूर न जाकर उसी अस्पतालके साथ सटे हुए बड़े लानके कोनेमें पड़ी एक बेंचपर जा बैठी। भैयाको नेत्र मिल गए! भगवानकी महिमा अनन्त है, वह सोचने लगी। वह राकेशकी कृपा क्या जन्म-भर भूल सकती है? राकेश! क्या भगवानकी दया-दृष्टि उसपर नहीं हो सकती? वह कभी कितना स्वस्थ, कितना सुन्दर, कितना हँसमुख, कितना सुलझा हुआ युवक था, जिसे पाकर कोई भी लड़की कृतकृत्य हो जाती! और आज रुपएका लालच पाकर भी कोई युवती उसके निकट जाना नहीं चाहती! कभी उसे भी राकेशके व्यक्तित्वने आकर्षित किया था, पर अब…? क्या सचमुच वह आकर्षण छिन्न-भिन्न हो गया? राकेशका व्यक्तित्व तो वही है, केवल शारीरिक त्रुटि उसमें आ गई है। क्या वह ठुकराने-योग्य हो गया है? क्या उसकी आत्मामें भी कुछ अन्तर आया है? क्या उसकी आत्मा पहलेसे अधिक उन्नत नहीं हो गई है? क्या केवल आत्मिक सम्बन्धसे ही जीवनकी कठिन यात्रा पार नहीं की जा सकती? क्यों नहीं? कैसे? ये दोनों प्रश्न एक साथ उसके मस्तकमें कौंध गए। वह उठकर खोई-सी उसी लानमें टहलने लगी। फिर धीरे-धीरे लानको पार करती हुई अस्पतालसे बाहर हो गई।

इसके अनन्तर संयोगिताको सुमनकी समस्या तो भूल गई—उसे स्मरण रखनेकी अब विशेष आवश्यकता भी न थी—पर राकेशकी समस्या उसे पग-पगपर सताने लगी। उसने अपने भावुक हृदयको इस ओरसे विमुख करनेका बहुत प्रयत्न किया, पर विफल। राकेशकी देखभाल उसे करनी होगी, यह आवाज़ उसे चारों ओरसे कर्णगोचर होने लगी। किन्तु क्यों? इसका अस्पष्ट उत्तर उसे अवश्य सूझता था; पर न उसे वह पूर्णतया स्पष्ट करना चाहती थी, न उसे स्पष्ट करनेका उसे साहस ही होता था।

—६—

लगभग एक मासके बाद संयोगिता भाईके साथ भारत लौट आई, और यह सारा महीना राकेशकी समस्या दिन-प्रतिदिन उसकी दृष्टिमें अधिक-से-अधिक महत्त्व प्राप्त करती चली गई। किन्तु उसे क्या करना होगा, यह निश्चय वह न कर पाती थी। इसी दुविधामें लीन वह सुमनके साथ घर पहुँच गई।

'भैया, अब आपका कार्यक्रम क्या होगा?'

'मेरा कार्यक्रम!' सुमन बिना हिचकिचाहटके बोला—'यदि विश्वविद्यालयवाले मुझे पुनः ले लें, तो मैं फिर अपने उसी परीक्षण और अनुसन्धानके संसारमें जाना चाहूँगा।'

'जिसमें अपने नेत्र खोए थे!' बहनके स्वरमें आश्चर्य था।

'हाँ, किन्तु ऐसी दुर्घटनाएँ बार-बार नहीं होतीं। घबराओ नहीं, संयोग!'

'बहुत अच्छा, भैया! मान लो कि आपको विश्वविद्यालयमें फिर अपनी जगह मिल जाती है, तो क्या आप मुझे अपने बन्धनोंसे मुक्त कर देंगे?'

'बन्धनोंसे मुक्त! वह क्यों?'

'इसलिए कि मुझे राकेश खींच रहा है। मैं उसकी आवाज़ को अनसुनी करती चली आ रही हूँ; किन्तु बहुत दिनों तक उससे विमुख रह सकूँगी, इसमें सन्देह है।'

सुमनने तुरत कुछ जवाब नहीं दिया। बहनको सिरसे पाँव तक देखा, फिर चिन्तित स्वरमें पूछा—'संयोग, एक बात पूछूँ, ठीक-ठीक उत्तर दोगी?'

'पूछिए।'

'क्या कर्त्तव्यकी बेड़ियोंसे बँधी उपकारका बदला चुकाने उधर जाना चाहती हो, या स्नेहकी साँकल खींच रही है? सच-सच बताना, नहीं तो मेरे हृदयमें जो कसक अभी उठी है, वह असह्य हो जायगी।'

'कर्त्तव्य और स्नेह! इन दोनोंमें कौन बलवान है, यह निश्चय अभी तक नहीं कर पाई हूँ। कसक क्यों?'

'इसलिए कि यदि केवल कर्त्तव्य खींच रहा हो, तो तुम्हारे दिए हुए नेत्र मुझे शायद फिर फोड़ने पड़ें।'

'किस लिए?'

'इसलिए कि तुम्हारा दुःखमय जीवन मैं देख न सकूँगा।'

'भैया!'—संयोगिताका गला भर आया। नेत्र गीले हो गए। आगे बढ़कर भाईके स्कन्धका सहारा लेकर वह खड़ी हो गई। सुमन उसकी पीठ धीरे-धीरे थपथपाने लगा।

कुछ देर दोनों चुप रहे। फिर भाई बोला—'ऐसी स्थितिमें तुम्हें अपना निश्चय पूरी तरह सोच-समझकर ईमानदारीसे करना होगा। उपकारका बदला चुकानेके और भी रास्ते हैं। समझीं!'

'भलीभाँति। आप चिन्ता न कीजिए।'

तीन दिनोंके भीतर सुमनको पुनः विश्वविद्यालयमें जगह मिल गई। इस बीचमें संयोगिताके मनकी गुत्थी भी लगभग सुलझ गई। वह यह कि राकेशके प्रति उसके आकर्षणमें स्नेह कर्त्तव्यसे प्रबल था, इसमें अब कोई सन्देह न रहा। इसलिए जिस दिन सुमन कामपर गया, उसी दुपहरीको संयोगिता

भैयासे आज्ञा लेकर राकेशसे मिलने चली।

राकेश घुटनों तक कम्बल लिए लानमें गद्देदार आराम-कुरसीपर बैठा एक चित्रमय पत्रिकाके पृष्ठ उलट रहा था कि इतनेमें नौकरने प्रवेश किया।

'क्यों ?'—उसने पूछा।

'आपसे एक महिला मिलना चाहती हैं।'

'नाम बताया है ?'—उसने उत्सुकतासे पूछा।

'नाम तो नहीं बताया ; पर शायद वे ही हैं, जो एक बार पहले आई थीं।'

'उन्हें इधर भेज दो।'

नौकरके जाते ही संयोगिता मुस्कराती हुई उसकी ओर बढ़ती उसे दीखी।

'तुम ?' राकेशका मुख खिल उठा। सामने पड़ी कुरसी पर बैठनेका उसे संकेत किया।

'हाँ, मैं।'—कुरसीपर बैठते हुए संयोगिता बोली।

'कब आए तुम लोग ? सुमनके नेत्र ठीक हो गए ?'

'हमें आए चार दिन हुए हैं। तुम्हारी कृपासे भैयाके नेत्र अब बिलकुल ठीक हैं। उसीके लिए तुम्हें धन्यवाद देने आई हूँ।'

'तुम्हें यहाँ आए चार दिन हो गए और मेरे लिए अब फुर्सत मिली और सो भी धन्यवाद देनेके लिए ! ऐसा क्यों ?'

'इसलिए कि यहाँ आनेसे पहले मुझे एक-दो निश्चय करने थे।'

'क्या वे निश्चय हो गए ? अब कभी-कभी मेरी सुधि लेने आ जाया करोगी ?'

संयोगिता मुस्कराई—'अब तुम्हारी सुधिके अतिरिक्त मेरे पास और काम ही नहीं।'

राकेशकी साँस ज़रा तेज़ चलने लगी। उसने धड़कते दिलसे पूछा—'क्या मतलब ?'

संयोगिता गम्भीर स्वरमें बोली—'मतलब यही कि यदि तुम अपने चरणोंमें स्थान दो, तो आयु-पर्यन्त मैं वहीं पड़ी रह सकती हूँ।'

राकेश अवाक् रह गया। सहसा उसे अपने कानोंपर विश्वास नहीं हुआ। उसने कहा—'यह तुम क्या कह रही हो ? मेरे-जैसे पंगुके साथ ! होशमें तो हो ?'

'पूरी तरह। शारीरिक दोषसे आत्मा तो कुण्ठित नहीं होती।'

'किन्तु आत्माको तुम-जैसी अनूठी लड़कीके सिवा देख ही कौन सकता है ?' राकेश आधा क्षण सोचकर फिर बोला—'कभी मैंने तुम्हें पानेका स्वप्न अवश्य देखा था, यह न छिपाऊँगा; पर अब तो उसके विषयमें सोचना भी अनधिकार चेष्टा-सा लगता है। कहीं तुम उपकारका बदला चुकाने तो नहीं आई ?'

'यदि वह चुकाना होता, तो चार दिन पहले यहाँ होती।'

संयोगिताकी कुरसी राकेशके निकट ही थी। उसने अपने दोनों हाथ बढ़ाकर संयोगिताका हाथ पकड़ लिया और प्रेमसे उसे सहलाने लगा।

'तुम कब यहाँ आओगी ?'—राकेशने आनन्दसे ओतप्रोत स्वरमें पूछा।

'अपने डैडीसे कहना कि वे मेरे भैयासे यह तय कर लें। मैं अब चली।' संयोगिता उठ खड़ी हुई।

'इतनी जल्दी क्यों ?'

'दो-एक दिन बन्धनमुक्त विहंगिनी-सा विचरनेको जी चाहता है।'

स्वर्गीय देवीदयालु गुप्त

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

२६-१२-'४६

कुण्डेश्वरसे हम दोनों टीकमगढ़की ओर चले जा रहे थे— कविवर देवीदयालुजी गुप्त और मैं। कविजी अपने घर लौट रहे थे। मैं यों ही पूछ बैठा—"आपके घरपर कौन-कौन हैं ?"

गुप्तजीने कहा—"मैं, मेरी पत्नी और एक चार वर्षकी लड़की मानकुँवरि। एक लड़की और भी थी, पर वह ग्यारह वर्षकी होकर मर गई! उसका नाम था सरीं।"

मैंने पूछा—"कैसे मर गई ? कुछ बीमार थी क्या ?"

गुप्तजीने कहा—"बीमार क्या थी, वह तो भूखों मर गई! मैं अभागा उसे अन्न भी नहीं दे सका और वह दिन-पर-दिन निर्बल होती गई!" और उनके नेत्र सजल थे! मेरे हृदयको भी धक्का लगा और अधिक सहानुभूतिके साथ मैंने उनका शेष वृत्तान्त सुना :

"जब घरमें अनाजका दाना न रहा और कई-कई फाके होने लगे, तो मैं अपने एक रिश्तेदारके यहाँ बाल-बच्चोंको पहुँचा आया, इस उम्मीदसे कि उन्हें वहाँ खाना तो मिल ही जायगा। यद्यपि इस प्रकार बिना बुलाए जाना मेरे लिए बड़े शर्मकी बात थी; पर क्या करता, कोई चारा न था! सरीं मेरी लड़कीका देहान्त वहींपर हो गया, और यद्यपि मैं वहाँसे १०-१२ मीलकी दूरीपर ही था, तथापि मुझे सूचना दी गई दस दिन बाद! मैं ग़रीब जो था, इसलिए मुझे खबर भेजने तककी भी ज़रूरत नहीं समझी गई! मेरी पत्नी सरींकी याद कर-करके अक्सर रोया करती है और उसके साथ मैं भी रोता हूँ।..."

देवीदयालुजी संकोचवश कुछ रुके। मैंने कहा—"आप निस्संकोच वह बात सुना दीजिए।"

वे कहने लगे—"एक दिन ग्रामकी एक बुढ़ियाने आकर सरींसे पूछा—'बिटिया, तुम उपतिकें (बिना बुलाए, खुद ही) क्यों चली आईं ? इससे तो बड़ी बदनामी होती है।' बड़े भोलेपनके साथ उस लड़कीने उत्तरमें बस इतना ही कहा था—'अजा (दादीजी), हमारे घर खानेको अन्न नहीं था, सो चले आए।'"

देवीदयालुजीकी आँखोंसे टप-टप आँसू गिर रहे थे। कुछ देर बाद वे बोले—"मैं भी कैसा अभागा हूँ कि अपनी पुत्रीको अन्न भी न दे सका! उस बातचीतके तीन-चार दिन बाद वह बेचारी मर ही गई! अन्तिम समय मैं उससे मिल भी न सका!"

मैंने भाई देवीदयालुजीको ढाँढ़स बँधाते हुए कहा—"मृत्युको भला कौन रोक सकता है ? इसमें आपका क्या क़ुसूर है ?" पर यह सब शिष्टाचारकी बातें थीं। हम लोग एक मील निकल आए थे। मैंने कहा—"गुप्तजी, आप अपनी छोटी पुत्री मानकुँवरिको मेरा आशीष कहना। कभी-न-कभी उसे देखनेके लिए मैं ज़रूर आऊँगा।"

देवीदयालुजीके चेहरेका भाव कुछ बदला और वे बोले— "आप भला वहाँ क्यों आने लगे! मानकुँवरि चार वर्षकी है, वह मेरे पहुँचते ही पाँवोंसे लिपट जायगी।"

मैंने कहा—"आप विश्वास तो कीजिए। मुझे एक बार आपकी ओर आना ही है।"

देवीदयालुजीने अपनी नोटबुकसे निकालकर एक कविता पढ़ी, जिसका आशय यह था कि उनकी एक पुस्तक अवश्य छपा दी जाय :

> कृपा करिए दीन पर चौबेजी तत्काल।
> एक किताब छपाइए केवल यही सवाल॥
> केवल यही सवाल वचन मुझको दे दीजे।
> होवे मनको धीर सुयश जगमें ले लीजे॥
> कहँ देवी कविराय हृदयकी विपदा हरिए।
> नहीं और अवलम्ब कृपानिधि किरपा करिए॥

मैंने कहा—"एक नहीं, आपकी दो किताबें छपेंगी। चूँकि मेरे नगर फ़ीरोज़ाबादमें आप लूट लिए गए थे, इसलिए उसकी नैतिक ज़िम्मेदारी मुझपर है; सो एक किताब तो फ़ीरोज़ाबादवाले छपा देंगे और दूसरी आपके भक्त और प्रेमी।"

देवीदयालुजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—"दो न सही, एक तो छप ही जाय।"

मुझे कुछ हँसी आ गई और मैंने कहा—"आपने यह 'प्राकृतिक दृश्य' खूब दिखलाया। आप सन्तोषसे घर पधारिए, मैं वचन देता हूँ।"

देवीदयालुजी चले गए, और मैं यही सोचता रहा कि

आत्म-प्रकटीकरण लेखक और कविके लिए कितना अधिक आवश्यक है!

१७-१-'४७

भाई नारायणसिंह परिहारका कार्ड मिला : "क्या लिखूँ और कैसे लिखूँ; फिर भी लिखनेका दुस्साहस कर रहा हूँ और वह यों कि आपके पाससे आकर श्री देवीदयालुजी घर पहुँचते ही निमोनियासे पीड़ित हो गए। मुझे उनके आने तथा बीमार होनेका एक चलता हुआ सन्देश मिला कि फौरन जाकर देखा, तो ज्ञात हुआ कि हालत पिछले ९ दिनसे खराब है। फिर भी चेष्टा की, किन्तु बेकार हुई और वह गत बुधवारको स्वर्गवासी हो गए।—पुनश्च : कविराजकी शय्यापर सिरहाने एक कविता धरी मिली। बीमारीकी हालतमें कब लिख ली, कह नहीं सकता; किन्तु उनकी आत्मिक अभिलाषा स्पष्ट है। अतएव सेवामें प्रस्तुत कर प्रार्थी हूँ कि आत्मिक शान्ति-हेतु इच्छा पूर्ण करनी ही चाहिए। भले ही हिन्दी-जगत् न अपनाए, पर मित्र-जगत् तो अपनाएगा ही। वह कविता यह है :

श्री चतुर्वेदोजीसे प्रार्थना

जैसी अबै लौं कृपा करी दीन पै
या से भविष्यमें दूनी बतइयो।
जो अपराध भये मुझ पै इतै
ताकी हू भूल न चित्तमें लइयो।
औगुन कौ हदयौ तो कहावत
आप बड़े करुणा को दिखइयो।
आशा मेरी कर दीजियो पूरन
एक किताब अवश्य छपइयो।"

कार्ड पढ़कर सिर चकरा गया। भाई देवीदयालुजीकी एक-एक बात याद आने लगी। एक बार वे तीन दिन तक साथ रहे थे, दूसरी बार दस-बारह दिन और तीसरी बार भी पाँच-सात दिन तक उनके सत्संगका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

आत्मचरित

देवीदयालुजी पढ़े-लिखे नाम-मात्रको ही थे; पर कविताकी बीमारी उन्हें बाल्यावस्थामें ही लग गई थी। अपना परिचय वे इस प्रकार देते थे :

पुत्र वासुदेवका बुंदेलखण्ड-वासी व्यक्ति
जन्मभूमि ढेरी ग्राम वैश्य-वंश बोरा हूँ।
केवल उपासक हूँ सिंहवाहिनीका सदा
दाहिनी है किंकर पै भक्ति-भाव कोरा हूँ॥
सुजन-समाजसे सनेह सरसाता सदा
किन्तु गर्वशालियोंका गर्व मुखमोरा हूँ।
देवी कवि-कोविद-कृपाका अभिलाषी बड़ा
कविता कलाका अनभिज्ञ तुकजोरा हूँ॥

जब सितम्बर, १९४५ में वे हमारे साथ दस-बारह दिन रहे थे, मैंने एक दिन उनसे कहा—"आप कहीं नौकरी क्यों नहीं कर लेते?"

उन्होंने उत्तर दिया था—"मेरे-जैसे बेपढ़ेको नौकरी कौन देगा?"

मैंने कहा—"कविता तो आप अच्छी कर लेते हैं।"

उन्होंने उत्तर दिया— "ये तो 'प्राकृतिक दृश्य' है। सचमुच मैं बिल्कुल नहीं पढ़ा।"

'प्राकृतिक दृश्य' पर मुझे हँसी आ गई। गुप्तजी शायद यह कहना चाहते थे कि कविता करना उनका सहज स्वाभाविक गुण है; पर उसके बजाय वे उसे 'प्राकृतिक दृश्य' कहते थे। हम लोगोंने उनका नाम 'प्राकृतिक दृश्य' ही रख छोड़ा था। जब देवीदयालुजी बहुत छोटे थे, उनके पिताजीने एक बार उनसे पड़ोससे नमक मँगवाया। आपने घूम-घामकर यह उत्तर दिया :

चतुरे कौ तारौ लगौ पंगे करत दतौन।
दद्दा तें मौंड़ी कहै घरमें नैंया नौन॥

देवीदयालुजीके पिता श्रीयुत वासुदेवजीके सात पुत्र हुए। प्रथम पत्नीसे श्री गंगाप्रसादजी और द्वितीयसे सर्वश्री बनवारीलाल, मिट्ठूलाल सिट्ठूलाल, बच्चीलाल, मन्नीलाल, मंगलीलाल और देवीदयालु। पिताजी अनाजका व्यवसाय करते थे, और देवीदयालुजीके अन्य भाइयोंने भी पैतृक व्यवसायको ही ग्रहण किया; पर देवीदयालुजीको बाल्यावस्थासे ही कविताकी बीमारी लग गई। पिताजीको पुस्तक-संग्रह करनेका शौक था और स्वयं पढ़ते भी खूब थे। निकटवर्ती ग्रामोंमें उनके पुस्तक-ज्ञानकी धूम थी। ग्रामीण पंडित उनसे घबराते थे; क्योंकि वे पंडितोंकी भूल निकाल देते थे, यद्यपि थे वे बड़े निरभिमानी। इस प्रकार साहित्य-प्रेमका रोग देवीदयालुजीको पैतृक ही था। अन्य भाई लोग व्यापार करके गुजर-बसर करते थे, पर देवीदयालुजी बिल्कुल पंगु ही बन गए। उन्हींके शब्दोंमें सुन लीजिए :

"मेरे पिताजीने सन् '४२ के द्वितीय ज्येष्ठमें अमरपुरकी यात्रा की। मैंने अत्यधिक क्रन्दन किया, परन्तु होता क्या। इसके बाद सब भाई पृथक्-पृथक हो गए और अपनी-अपनी दुकानदारी करने लगे। मैं नराधम हाथ मलते रह गया; क्योंकि मेरे पास एक छदाम नहीं थी। हाँ, श्रीमतीजीके पास कुछ चाँदीकी चीज़ें थीं, वही परमाधार थीं। अब तो मेरे ऊपर विपत्तिके बादल गरजने लगे; क्योंकि श्रीमतीजी अनाज तथा खर्च आदिके लिए वाग्बाण मारने लगीं। मैंने तुक्कड़बाज़ी प्रारम्भ कर दी और राजा-रईसोंके पास जा-जाकर उनकी प्रशंसाकी रेल चलाई। तब भी पेट अधूरा बना रहा। एक बार मैं समथरके प्रधान-मन्त्री सुजानसिंहजीके पास गया, तो मैंने अपनी आर्थिक स्थितिका सांगोपांग वर्णन किया और चार-छः कवित्त उनकी तारीफ़में सुनाए। आपने द्रवित होकर वर्तमान श्रीमान् महाराजा साहबसे कहकर सात रु० मासिकपर ढेरीमें मास्टर नियुक्त करा दिया। मैंने एक वर्षके करीब छात्रों को पढ़ाया। शिक्षा-विभागके इन्स्पेक्टर पं० किशोरप्रसादजी लड़कोंके परीक्षार्थ आए। आपने सरकारी कोठीपर छात्रोंको बुलाकर परीक्षा ली। लड़के विफलतादेवीकी शरण हुए। मुझसे उत्तर माँगा गया, तो मैंने स्पष्टतः कह दिया कि मैं कौन अंगरेज़ी विधानसे पढ़ा हूँ! फिर क्या विलम्ब था। जीविका-दायको सिंहने यमालय भेज दिया। अब मैं निराश्रय होकर श्वानवत् फिरने लगा। जो-कुछ पैतृक सम्पत्ति थी, वह गिरवी रख गई। इसे मैंने अभी तक नहीं उठाई। उठाऊँ कहाँसे? 'नौ खाऊँ और तेराकी भूख' कहावत चरितार्थ हो रही है। दो माहके करीब हुए तब मैं श्रीमतीजीकी पैरकी गूजरी और गाँगरा गिरवी रखकर २२) रु० में फ़ीरोज़ाबाद कामकी तलाश में गया था। वहाँ एक सोनपाल नामका सज्जन व्यक्ति ज़िला एटा गाँव कलुचा नगलाका ६०) रु० के बिस्तर, कपड़े आदि चोरी ले गया। मैं तथा एक साथी दोनों आदमी फ़ीरोज़ाबादसे लँगोटी लगाकर भूखों मरकर घर आए। घर आते ही भीषण कोलाहलकी दुन्दुभी बजने लगी। मैं आठ रोज़का भूखा था, परन्तु श्रीमतीजीने न तो आटा दिया और न रोटी बनाकर खिलाई। मैं तो भूखसे मरा जाता था। तब मैंने श्रीमतीजीकी अच्छी तरह ताड़ना की। अब प्रतिवासी इकट्ठे हुए और भाई रोना सुनकर दौड़ आए। मुझे पकड़ लिया। मैं द्वारे निकल आया। अब भारी भीड़ हो गई। विरदावली मेरी प्रारम्भ हुई। भीतरसे श्रीमतीजी रोकर बोलने लगीं कि इन्होंने घर सत्यानाश कर दिया। छोटी बच्ची अनाथाकी तरह भूख-भूख चिल्ला रही है और ये फ़ीरोज़ाबादसे बिस्तर खोकर बाबाजी बनकर आ गए हैं। अभी तीन चीज़ें गिरवी रखी हैं। पीतलका गगरा, जेजम, गूजरी तीन चीज़ोंके मय ब्याजके ३४) रु० या ३५) रु० बैठते हैं। जब आठ या नौ रोज़में यह कलह-पुरान श्रीमतीजीने बन्द किया, तब मैंने कहा कि मैं टीकमगढ़ जाना चाहता हूँ। तुम्हारी क्या परामर्श है? तब उन्होंने कहा कि फ़ीरोज़ाबाद-जैसे लँगोटी लगाकर न आ जाना। मैंने कहा कि जगदाधार रक्षक है। तब उन्होंने आँखोंमें आँसू डबडबाकर बक्ससे निकाल गुजरी मुझे दे दी। मैं उसे गिरवी रखकर टीकमगढ़ चला आया। भविष्य कर्मदेवाधीन।"

देवीदयालुजीकी कविता

एक बार समथर-नरेश उनके ग्राम ढेरीमें पधारे थे। उस घटनाका देवीदयालुजीने इस प्रकार वर्णन किया है:

ढेरीमें आना हुआ जब आपका,
भारी कृपाकर मोहि बुलाया।
हुक्म दिया तत्काल दयालु हो,
लाओ बनाकर छन्द सुहाया।
तेल उधार मँगाया था रातको,
डालके बाती सुदीप जगाया।
नींद भुलाई करी कविता भली,
पाई न पाई है नाम कटाया!

—२—

हुक्म तरक्कीका दिया काटा नाम नरेश;
आंई जौलाई जभी जौ लाई सन्देश!

—३—

जाती जब आजीविका तब उर धरै न धीर;
देवी बाँझ न जानती प्रसव-कालकी पीर!

वास्तवमें देवीदयालुजीकी नौकरीका छूटना चार प्राणियों के कुटुम्बके लिए महान दुघटना थी। जब वे इस घटनाको सुनाते, तो मुस्कराते जाते थे; पर उनकी उस मुस्कराहटके पीछे घोर हार्दिक वेदना छिपी रहती थी। जब मैंने पूछा कि कितनेकी नौकरी थी आपकी, तो बोले—

"गुजर गए राजा सभी, अनरथ काहु न कीन।
सात रुपैयाकी हती गुजर गुजर* लई छीन।"

* समथर-नरेश गूजर ठाकुर हैं।

मैंने देवीदयालुजीसे कहा—"इस कविताको कहीं न छपाना, नहीं तो राजा साहब आपको जेल भेज देंगे!"

उन्होंने बड़े भोलेपनसे कहा—"जेल क्यों भेज देंगे?"

मैंने कहा—"इसमें आपने उनकी जातिपर व्यंग किया है!"

बेचारे देवीदयालुजी एक हवालातकी सैर कर भी आए थे। उसका वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है :

बाहरका बाबा एक ढेरीमें निवास करे
मेरे ही मकान बीच डेरा डलवाया है।
रपट लिखाई कोतवालको बताया नाम
चोरीका लगाया अभियोग दीन पाया है॥
बैठ रहे बन्दी बने भूख मानती ही नहीं
चौकीदार साथ दादा भोजन कराया है।
होकर अधीर अकुलाया तब रोने लगा
रणदूला वीरपुत्र जाकर छुड़ाया है॥

इसके बाद देवीदयालुजीने लक्ष्मीजीको बीसियों कहनी-अनकहनी सुनाकर आदेश दिया था :

जलजा जलेगी जल्द जलेको जलाती है!
बापकी वहोर डालीं बैरिन कसाइनने,
कसर लगाई नहीं बन्दी वन जाता मैं।
कैदी लोग मार देते आया है नवीन चोर,
हाड़ फूट जाते हाय-हाय डकराता मैं।
जैन साब[1] पूछते कवीजी कहो चोरी करी,
दीजिए बयान प्राण देहमें न पाता मैं।
ठाकुर नरानसिंह[2] मर्द जो बचाता नहीं,
सात पैरीं डूब जातीं बेड़ी खनकाता मैं।

देवीदयालुजीने मानो निश्चय ही कर लिया था कि प्रत्येक भली-बुरी अनुभूतिको छन्दबद्ध कर दूँगा। उनकी 'कवि-यात्रा' में फीरोज़ाबादमें लुटे जानेका वृत्तान्त अत्यन्त करुणोत्पादक है। संकट-कालमें कविता ही उनकी एकमात्र साथिन थी। भोजनके लाले पड़नेपर जब उनकी पत्नी मायके चली गई, तो आप लिखने लगे :

मड़वासे घूम-घूम भाँवरें पड़ी हैं सात,
साथी न कहाई भगे मायके लुगाई है।

एक बार उन्होंने अपनी 'दरिद्रपचोसी' के कुछ अंश मुझे सुनाए, तो मैंने उनसे यही कहा—"गुरुजी, माफ़ कीजिए, आप बड़ी असंस्कृत बात लिखते हैं! कहीं अपने घरवालोंकी इस प्रकार निन्दा की जाती है? एक तो आप कुछ कमाई नहीं करते और फिर ऊपरसे इस प्रकारकी कठोर बातें कहते हैं!"

देवीदयालुजी कुछ सहमे और सिर खुजलाते हुए बोले—"पर जो-कुछ मैंने कहा है, वह सत्य है।"

मैंने उत्तर दिया—"सत्य हो सकता है, पर कहने-कहनेके ढंगमें अन्तर होता है।"

देवीदयालुजी बोले—"मैं कौन अंगरेज़ी विधानसे पढ़ा हूँ! गमार तो हूँ। जैसी बीती, तो कह डाली :

भोजनमें गिनती लगाती नारि रोटियोंकी
शेरके समान गरज लोचन दिखाती है।
एक सेर खाते न कमाते कहीं जाते नहीं
पेट-भर पाते अलसाते नींद आती है।
कविताम़ें बिघ्न डाल देती आन छातीपर
मानती न बात रारहाटको लगाती है।
देवी कवि दारिदजी मास खींच रहे आप
नित्य हड़जाई ये कमाई गीत गाती है।

—२—

चार बजे प्रात नारि बैठ गई चकिया पै
सोरसाथ मायकेका सुयश सुनाती है।
एक चीज तेरी नहीं जानती मैं जीवनमें
रात दिन कलह नदीशमें नहाती है।
कोमल कलेजे बीच काकबाणी साल रही
ठसक बताती इतराती सतराती है।
देवी कवि दारिदजी हो रही निशंक बड़ी
दाँत पीस कुतियासे रंक प्राण खाती है।"

एक बार बरसातमें आपके मकानका पक्खा गिर गया। बजाय इसके कि आप उसकी मरम्मतका कुछ इन्तज़ाम करते, उसपर तुकबन्दी करने बैठ गए :

बदरा बद बरसौ बहुत बासव बैर बिसाय;
गुजरौ गजब गरीब पर पक्खा दियौ गिराय।

जब आप नहरके बंगलेपर चपरासी नियुक्त हो गए, तो वहाँ भी कविता लिख-लिखकर ओवरसियर साहबको सुनाया करते थे। उनके दुर्भाग्यसे दूसरा ओवरसियर आ गया, जिसे कवितासे कुछ भी प्रेम नहीं था। और देवीदयालुजीको 'दाद' के बजाय 'फटकार' ही पुरस्कारमें मिली!

जब देवीदयालुजी हमारे पास १०-१२ दिनके लिए

१. स्थानीय मजिस्ट्रेट। २. स्नेही मित्र और सहायक।

रहे थे, हमने यह विचार किया था कि उनसे कुछ लिखा-पढ़ीका काम लेंगे। पर इसमें हमें निराश होना पड़ा। आप कुण्डके जल-प्रपातकी ओर टहलने गए, तो वहीं बैठकर कविता लिखने लगे। जब देरमें लौटे, तो मैंने पूछा—"आज कहाँ रह गए?"

उत्तरमें आपने 'कुण्डेश्वर* का चित्र-काव्य' सुना दिया—

झर-झर झरना झर रहा करता कलित-किलोल।
उषा और अनिरुद्धका बजा रहा यश ढोल॥
भावनाकी ऊषा आज आती पूजनेको उमा
प्रेम-माल गूँथ-गूँथ मुदित चढ़ाती है।
हेर-हेर फेर-फेर हिय हरसाती महा
लेती बलिहारी करतारीको बजाती है।
हृदय सिहाती दीन करुणा सुनाती खड़ी
होकर विदेह ध्यान आसन लगाती है।
देवो कवि तेरी-सी उदारता न देखी कहीं
चढ़ा बेलपाती वर पाती वर पाती है।

देवीदयालुजीने पूरी कविता सुना दी। मैंने समझ लिया कि मर्ज़ लाइलाज है और मुझे कुछ हँसी आ गई। गुप्तजीको कुछ शका हुई और पूछा—"क्यों, मेरे पद्योंमें क्या कुछ अशुद्धि हो गई है, या भाव ठीक नहीं प्रकट हुए?"

मैंने कहा—"नहीं, आपकी कविता तो बढ़िया है, भाव भी सुन्दर हैं; पर मैं एक दूसरी ही बात सोच रहा था—एक रोगके विषयमें।" गुप्तजी कुछ चौंके। मैंने कहा—"मुझे छाजनकी बीमारी है और आपको कविताका रोग लग गया है, और दोनों असाध्य हैं। थोड़ी देरके लिए ये भले ही दब जायँ, फिर बार-बार उछर आते हैं।"

देवीदायलुजी हँसने लगे और बोले—"तो अब कोई इलाज भी बताइए।"

मैंने कहा—"कविताकी बीमारीका कोई इलाज सुश्रुत और चरकमें भी नहीं। यह तो ज़िन्दगी-भरके लिए समझ लीजिए। इसे भुगतना ही पड़ेगा अब आप एक काम कीजिए। राजा-महाराजाओं और सेठ-साहूकारोंकी तारीफ़में लिखना बन्द कीजिए, वह तो माता सरस्वतीका अपमान है। अब आप अपने जनपद बुन्देलखण्डके विषयमें दस-बीस पद्य लिख दीजिए। यहाँकी प्रकृतिका वर्णन कीजिए। कवि-सम्मेलनोंमें उन्हींको सुना दिया कीजिए।"

पिछली बार—अन्तिम बार—जब देवीदयालुजी पधारे, तो बड़े प्रसन्न थे। वे विवाहके सिलसिलेमें बरातमें आए हुए थे। उन्होंने अपनी नवीन कविता 'बुन्देलखण्ड' देते हुए कहा—"लीजिए आपकी आज्ञाका पालन मैंने कर दिया है। अब इसे छपानेकी ज़िम्मेदारी आपपर है।"

मैंने कहा—"आपकी इस रचनाको मैं किसी कविको दिखला लूँगा। उनसे सशोधन भी करा दूँगा।"

देवीदयालुजी निराश होकर बोले—"चौबेजी, कोई कवि भला मेरे-जैसे ग़रीब तुक्कड़की रचनापर क्यों श्रम करेगा? सबको अपनी-अपनी पड़ी है। ग़रीबोंको कौन पूछता है?"

मैंने कहा—"आप इतने निराश क्यों होते है? मेरे मित्र हरिशकरजी शर्मा बड़े सहृदय कवि हैं। वे अवश्य बड़ी सहानुभूतिपूर्वक आपकी रचनाको पढ़ेंगे।"

देवीदयालुजीको बड़ा सन्तोष हुआ और उन्हें यह आशा बँध गई कि उनकी एक पुस्तिका तो छप ही जायगी। दुर्भाग्य से वह अब तक नहीं छप सकी! भाई हरिशकरजीने सशोधन कर दिया था।

यह बातचीत २६ दिसम्बर, १९४६ को हुई थी और इसके पन्द्रह दिनके भीतर ही देवीदयालुजीका स्वर्गवास हो गया! पैसोंके अभावमें वे स्टेशनसे समथर और अपने ग्राम तक दस-बारह मील पैदल ही गए थे। बुखार उन्हें उस समय था, सो निमोनिया हो गया और उसीमें वे चल बसे। सुना है कि अपनी मृत्युके पूर्व उन्होंने कई जगह कुण्डेश्वरके प्राकृतिक सौन्दर्यकी बड़ी प्रशंसा की थी और कहा था—'हम स्वर्गसे लौट रहे हैं।' जो कविता उनके सिरहाने पाई गई, वही उनकी अन्तिम अभिलाषा थी!

अपने जीवनमें हमें बीसियों कवियोंके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है; पर हमें अभी तक एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिला, जिसे कविताकी बीमारीने इस प्रकार ग्रस लिया हो! उपदेश देना बहुत आसान है। 'शारीरिक श्रम करो, नौकरी करो, मुफ़्तका क्यों खाना चाहते हो?' इत्यादि नसीहतोंसे भरे लेक्चर देनेमें लगता ही क्या है?

देवीदयालुजीने नौकरी की थी, पर वह सात रुपए महीनेकी नौकरी भी छूट गई। सड़कपर मज़दूरी भी की थी—दस आने

* कुण्डेश्वर तीर्थ माना जाता है और यह किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि यहाँपर शिव-पार्वतीकी पूजा करनेके लिए 'उषा' आया करती थी।

रोज़पर—और वे नहरके एक बँगलेपर चपरासी भी रहे थे। फीरोज़ाबादके काँचके कारखानोंमें वे मज़दूरी तलाश करनेके लिए ही तो गए थे, जहाँ उनके कपड़े और बिस्तरोंके साथ काव्य-संग्रह भी चोरी चला गया!

बड़े-बड़े नगरोंमें अनेक बाग-बगीचे हैं और उनपर सहस्रों रुपए व्यय किए जाते हैं; पर ग्रामोंमें तो किसी नीमके पेड़के नीचे बैठकर ही ग्रामीण जनताको छाया और शान्ति मिलती हैं। ये नीम स्वतः ही पैदा होते और नष्ट होते रहते हैं। आप उन्हें खेतों, खलिहानोंपर और अथाईके पास पावेंगे। देवीदयालुजी भी बस इन ग्रामीण वृक्षोंकी तरह ही थे। कृत्रिम संस्कृतिसे वे कोसों दूर थे। पुराने कवियोंको रचनाएँ अथवा अपनी तुकबन्दियाँ सुना-सुनाकर वे समथर-राज्यके साहित्यिक रेगिस्तानमें एक छोटा-सा नखलिस्तान बना रहे थे। आज हमारे सामने मुख्य प्रश्न यह है कि **किस प्रकार साहित्य-गंगाकी धाराओंको ऐसे स्थानोंपर पहुँचाकर उन नखलिस्तानोंको बचाया जाय?**

हमारे ये सब सम्मेलन निरर्थक होंगे तथा परिषदें फ़िज़ूल, यदि उनका कार्य केवल कुछ नगरों तक ही केन्द्रित और सीमित रहे। देवीदयालुजी उन तथाकथित 'क्षुद्र' कवियोंके एक प्रतीक थे, जो ग्राम-ग्राममें पाए जाते हैं, जिन्हें प्रोत्साहन तो क्या, पेट-भर भोजन भी नहीं मिलता और जो अपनी आकांक्षाओंको अपने साथ लिए ही इस संसारसे विदा हो जाते हैं! अखबारोंमें उनका नाम नहीं छपता। न उनके लिए कोई स्वागत-उत्सव होता है, न शोक-सभा! प्रतिष्ठित कवि उन्हें उपहासकी और साहित्यिक इतिहास उपेक्षाकी दृष्टिसे ही देखते हैं। हाँ, उनकी स्मृति उनके कुछ ग्रामीण मित्रोंके हृदयमें अवश्य बनी रहती है, और वही उनका सर्वोत्तम स्मारक है।

———

जौनसार-बावरके आदिवासी हरिजन

श्री धर्मदेव शास्त्री

जौनसार-बावर देहरादून-ज़िलेके अन्तर्गत एक अर्ध-बहिष्कृत प्रदेश है। यह ज़िला अपेक्षाकृत छोटा है। इसकी केवल दो तहसीलें हैं—देहरादून और चकरौता। चकरौता-तहसीलका ही दूसरा नाम जौनसार-बावर है। तहसीलका केन्द्र-स्थान चकरौता है, जहाँ तहसीलदार और एस० डी० एम० की कचहरी है। चकरौता कण्टोनमेण्ट-बोर्डके अन्तर्गत है। सर्दियोंमें नवम्बरसे मार्च तक कचहरी कालसीमें आ जाती है। कालसी पुरानी बस्ती है। यहाँ यमुना-किनारे २३ शताब्दी पुराना सम्राट अशोकका शिलालेख आज भी सुरक्षित है। कालसी अब उजड़ी हुई बस्ती है। कालसीसे जौनसार-बावरका प्रदेश प्रारम्भ होता है। यहाँसे ८ मील चकरौता तक मोटरका मार्ग है। कालसी-चकरौता-मार्गके बीचमें साहिया नामकी बस्ती भी सड़कपर है। यह इस प्रदेशके ठीक केन्द्रमें है। यह व्यापारका केन्द्र है। यहाँसे आलू, अबरक, सोंठ, घी और मिरचें बाहर भेजे जाते हैं, और बाहरसे लोहा, नमक, तेल, कपड़ा, सीरा और गुड़ यहाँ आता है। कालसी, साहिया और चकरौताके अलावा चोहड़पुर भी बड़ी व्यापारिक मंडी है, जो जौनसार-बावरके समीप पश्चिमी दूनमें मोटर-रोडपर ही स्थित है। इस प्रदेशके पूर्वमें यमुना और पश्चिमोत्तरमें टोंस नदियाँ बहती हैं। दोनोंका संगम कालसीके पास होता है। कालसीके पास ही आमला नदी भी यमुनामें मिली है। आमलाके ही किनारेपर कालसी और साहिया हैं। टोंस-पार हिमाचल-प्रदेश है। यमुना-पार टेहरी-गढ़वाल तथा देहरादून हैं। इस प्रकार भौगोलिक दृष्टिसे यह प्रदेश हिमाचल-प्रदेश और टेहरी-गढ़वालसे ही अधिक मिलता है। टेहरी-गढ़वाल और जौनसार-बावरमें परस्पर शादी-ब्याह आदि सम्बन्ध भी होते हैं। दोनोंकी भाषाओंमें भी बहुत-कुछ साम्य है। देवता, ब्राह्मण भी दोनोंके समान हैं। सिरमौर (हिमाचल-प्रदेश) का परशुराम देवता जौनसार-बावरका भी देवता है। इस प्रकार जौनसार-बावर भौगोलिक और सांस्कृतिक दृष्टिसे बृहत्तर हिमालयका और इसीलिए टेहरी-गढ़वाल तथा हिमाचल-प्रदेशका भाग होनेपर भी राजनीतिक दृष्टिसे देहरादून-ज़िलेका ही भाग है।

आदिवासी और नवागन्तुक

१९४१ की मर्दुमशुमारीके अनुसार यहाँकी जनसंख्या

५५६२३ है। इसमें कालसी, साहिया और चकरौताके वे लोग भी शामिल हैं, जो व्यापारके लिए अथवा सरकारी नौकरी आदिके सिलसिलेमें यहाँ रहते हैं। वास्तवमें इस प्रदेशमें ५ शताब्दी पूर्व केवल यहाँके आदिवासी कोल्टे और उनके देवता महासूके वंशज बाजगी-देवाड़ ही रहते थे। ब्राह्मण-राजपूत सीमान्तके हमलोंके समय रक्षाके लिए यहाँ पहाड़में आए और यहाँके आदिवासियोंको दास बनाकर यहीं बस गए। आदिवासियोंको भी अपेक्षाकृत शान्ति तथा निश्चिन्तता मिली और नवीन व्यवस्थाको उन्होंने स्वीकार किया। आदिवासियों और नवागन्तुओंमें तब अभिन्नता हो गई, जब कि ब्राह्मण-राजपूतोंने आदिवासियोंके देवता महासूको अपना देवता मान लिया। देवताके वंशज बाजगी अथवा देवाड़ोंको देवताके भंडारेसे खाना देनेकी व्यवस्था की गई। सबने देवताके नाम मकान, भूमि और पशु देना स्वीकार किया। तब आगन्तुओं और आदिवासियोंमें समझौता हुआ कि महासू देवताकी प्रतिष्ठाके लिए कोई भी चारपाईपर नहीं सोवेगा, गौका दूध और मक्खन देवताको ही दिया जायगा और महासूके अतिरिक्त किसी भी देवताकी यहाँ मुख्यतया पूजा नहीं होगी। आज भी न्यूनाधिक रूपमें ये शर्तें मानी जा रही हैं। कश्मीरपर होनेवाले आक्रमणमें ही सर्वप्रथम कश्मीरसे कुछ ब्राह्मण-राजपूत यहाँ आए थे। मुगलोंके आक्रमण-कालमें भी मैनपुरी, दिल्ली और आगरेकी तरफसे कुछ चौहान राजपूत यहाँ आए। इनमें से कुछका आज भी मुसलमान बने हुए अपने सजातियोंके यहाँ ब्याह-शादियोंमें आना-जाना चलता है। ब्राह्मण-राजपूतोंमें पुराने आर्योंके अनुसार यहाँ परस्पर विवाह होता है। यहाँकी परिस्थितिके अनुसार नवागन्तुओंने इसे स्वीकार किया। इससे इनमें परस्पर प्रीति बढ़ी। यहाँ जंगल, शिकार और खेतीकी सुविधाके कारण नीचेसे ब्राह्मण-राजपूतोंका आगमन होता रहा। परिणाम यह हुआ कि यहाँके आदिवासियोंकी संख्या कम हो गई और नवागन्तुक बहुसंख्यक हो गए। गोरखोंके राज्यमें यहाँके निवासियोंसे भी अधिक मुकाबला ब्राह्मण-राजपूतोंको करना पड़ा। यहाँके आदिवासी दासतामें ही आनन्द अनुभव करनेके कारण धीरे-धीरे पराश्रित और भीरु बन गए।

आदिवासी हरिजनोंकी स्थिति

जौनसार-बावरकी कुल जनसंख्या ५६ हज़ार है, जिसमें से हरिजन १७ हज़ार हैं। ये लोग बहुत ग़रीब हैं—केवल धनकी दृष्टिसे ही नहीं, बुद्धिकी दृष्टिसे भी। सदियोंसे गुलामीमें रहते-रहते आज़ादीका सुख इन्हें मालूम नहीं। आदिवासी कोल्टोंका मुख्य व्यवसाय ज़मींदारोंकी गुलामी करके जीवन निर्वाह करना है। ये लोग परिश्रमी होते हैं तथा जो ज़मींदार दे दे, उसीसे पेट-भरके पशुओंकी तरह उनकी सेवा करते हैं। मालिक इनको पशुओंकी भाँति बेच भी देता है। कोल्टोंको चार भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। अज्ञात कालसे जो कोल्टा एक ज़मींदारकी गुलामी कर रहा है तथा मालिकके घरमें मृत्यु होनेपर घरके आदमीके समान दाढ़ी-मूँछ और सिर मुँड़ाता है, और उसीके घरसे जिसे खाना-कपड़ा मिलता है, वह कोल्टा खुंडित-मंडित है। दो-तीन पीढ़ियाँ पूर्व जिस कोल्टेके पूर्वजने कार्यवश ज़मींदार मालिकसे कुछ रुपए ऋणके लिए थे, तबसे मात कोल्टा सूदके बदलेमें गुलामी करता है। मालिक इस कोल्टेको तभी आज़ाद करेगा, जब कि वह रुपया अदा कर दे। पर गुलाम होनेसे यह कोल्टा रुपया तभी दे सकता है, जब कि वह किसी औरको मालिक बनाकर पहले मालिकके पैसे उससे दिला दे। इसकी दशा भी बुरी है। यह गुलामीकी परम्परामें जकड़ा है। स्वयं मरनेपर इस कोल्टेके पुत्र-पौत्र आदि गुलामी करते रहेंगे। कभी-कभी मालिक मात कोल्टेकी शादीमें उत्साह दिखाता है; क्योंकि उसका कोल्टा शादी करके पुत्र उत्पन्न करेगा, जो उस मालिककी गुलामी करते रहेंगे। अन्यथा मालिकको कोल्टेके मर जानेपर रुपयोंके मारे जानेका भय है। तीसरे प्रकारका कोल्टा संयावत है, जो एक व्यक्तिका नहीं ग्राम अथवा खेतका सम्मिलित कोल्टा है। यह पचायती-गुलाम ग्राममें मरने-जीनेकी खबर पहुँचाता है, मरे हुए ढगरकी गति करता है और बारी-बारीसे मालिकोंकी खेतीमें मदद करता है। यहाँ पहाड़में नई ज़मीन बनाकर उसे अपनी भूमि मानने का रिवाज यद्यपि आज तक नौतोड़ अथवा नई ज़मीन तोड़ने-बनानेका अधिकार ब्राह्मण-राजपूतोंको ही क़ानून द्वारा प्राप्त रहा है; फिर भी हालमें सरकारी अधिकारियोंने नौतोड़का अधिकार आदिवासियोंको भी दिया है। इस प्रकार कुछ कोल्टोंने नई भूमि बनाई है। इनके अलावा कुछ ऐसे भी कोल्टे हैं, जिनके पास अपनी ज़मीन और अपने मकान भी हैं।

खुंडित-मुंडित कोल्टा घरके भाइयोंके समान ही घर सँभालता है। वह घरके अन्य व्यक्तियोंकी तरह सिर और मूँछ मुड़ाता है और शोकमें ३ या ५ दिन तक शामिल रहता है। परन्तु ऐसे उदाहरण भी अब सामने आए हैं, जिनमें

खुंडित-मुंडित कोल्टोंको भी ज़मींदारोंने ज़मीन और मकानसे बेदखल कर दिया है। वास्तवमें सरकारको विशेष आदेश द्वारा यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि खुंडित-मुंडित कोल्टेका भी घरकी सम्पत्तिमें बराबर हिस्सा है। अज्ञात ऋणके सूदके एवज़में ग़ुलाम रखना मानवताकी दृष्टिसे बहुत बुरी बात है। हर्षकी बात है कि युक्त-प्रान्तीय सरकारके प्रधान-मन्त्री पं० गोविन्दवल्लभ पतने २३ मई, १९४९ को चकरौतेमें अपनी घोषणा द्वारा तीन साल पुराना सारा ऋण अवैध घोषित कर दिया है। क़ानूनी भाषामें ऋणके बदले ग़ुलामी समाप्त होनेपर भी व्यवहारमें वह पूर्ववत् चालू है। पुराने ऋणके नए प्रोनोट लिखवाए जा रहे हैं। स्वभावतः ज़मींदारोंने आदिवासियोंका आर्थिक बहिष्कार करनेकी योजना बनाई। अब तक आदिवासी ग़ुलाम होनेसे आर्थिक दृष्टिसे ज़मींदारोंपर ही अवलम्बित रहे हैं। पुराना कर्ज़ सर्वथा समाप्त होनेके बाद ज़मींदारोंसे उन्हें कुछ भी प्राप्त होनेकी आशा नहीं। ऐसी अवस्थामें आदिवासियोंको पुनः संस्थापनके लिए तकावीके रूपमें बिना सूदके हल-बैल और जीवन-निर्वाहके अन्य साधन जुटानेके लिए ऋण मिलना चाहिए।

दास अथवा ग़ुलाम होनेपर भी कोल्टों और दूसरे आदिवासियोंके पास भूमि तथा मकान कैसे हैं, यह प्रश्न स्वाभाविक है। वस्तुस्थिति यह है कि पुराने या नये ऋणके बदले व्यावहारिक रूपमें कोल्टों और अन्य आदिवासियोंका सारा कुटुम्ब दास रहता है; परन्तु खाना ज़मींदार मालिक केवल एक ही व्यक्तिको देता है। शेष कुटुम्बके पालनके लिए यहाँ ब्राह्मण-राजपूतोंने आदिवासियोंको बोने-खानेके लिए भूमि और रहनेके लिए मकान दे रखे हैं। बहुधा इस भूमिको बोनेके लिए आदिवासियोंके पास अपने हल-बैल भी नहीं हैं। उनकी आर्थिक स्थिति सर्वदा दासकी-सी होनेसे उनके पास अपना धन नहीं है। इसलिए ज़मींदारके हल-बैलोंसे ही आदिवासियोंकी भी भूमि जोती-बोई जाती है। प्रायः अनेक पीढ़ियोंसे इन आदिवासियोंके पास रहनेपर भी यह ज़मीन और मकान उनके नाम दर्ज नहीं हैं। इस भूमि और इन मकानोंको प्रान्तीय सरकारने आदिवासियोंकी भूमि और मकान मानकर उनके काश्तकारी-अधिकार स्वीकार किए हैं और उन्हें बेदखल न करनेके आदेश जारी किए हैं।

आदिवासियोंके साथ विश्वासघात

चाहे कुछ भी हो, ब्राह्मण-राजपूतोंने आश्रयदाता आदिवासी कोल्टों और देवाड़ोंको प्रतिज्ञानुसार अन्न-वस्त्र दिए, उन्हें भूखों नहीं मरने दिया। १८१५ में यह प्रदेश गोरखोंसे अगरेज़ी शासनमें आया। गोरखोंके शासनसे जनता बहुत दुःखी थी। अगरेज़ी शासनमें निश्चिन्तता और व्यवस्थाके कुछ दर्शन जनताको मिले। सर्वप्रथम यहाँ भूमिका बन्दोबस्त शुरू हुआ। प्रथम बन्दोबस्त कैप्टेन बर्चने १८१५ में किया। सर्वप्रथम उसी समय नवागन्तुक ब्राह्मण राजपूतोंने अपने आश्रयदाता आदिवासियोंको धोखा दिया। उन्होंने अंगरेज़ शासकोंसे मिलकर बन्दोबस्तीमें भूमि और मकानका स्वामित्व अपने नाम लिखा लिया और आदिवासियोंको विदेशी तथा अधिकारशून्य बना दिया। एकके बाद दूसरे बन्दोबस्त होते रहे। धीरे-धीरे ब्राह्मण-राजपूतोंने आदिवासियोंके सारे अधिकार छीन लिए। शासकोंके साथ बन्दोबस्तके बाद जो यहाँके सयानोंने समझौता किया है, उसे वाजिबुल कहा जाता है। उसे देखनेसे मालूम होता है कि विदेशी शासकोंके साथ मिलकर यहाँके सयानोंने आदिवासियोंको सर्वथा पशुतुल्य माना है। उन्हें नई भूमि बनानेका अधिकार नहीं। वे ज़मींदारके बिके हुए दास माने गए। परिणाम यह हुआ कि जो कोल्टे और देवाड़ आदि साझीदार थे, वे ब्राह्मण-राजपूतोंके ग़ुलाम हो गए और सम्पत्तिके मालिक न रहकर खुद सम्पत्ति बन गए। यह एक षड्यन्त्र था, जिसका पता आदिवासियोंको नहीं था। आदिवासी पूर्ववत सेवा करते रहे, और आज भी कर रहे हैं। ये लोग पुराने रिवाज और समयपर दृढ़तासे क़ायम हैं। उन दिनों दिल और ज़बानकी सचाई-सफ़ाई चलती थी। तब कागज़की ज़रूरत नहीं थी। अब तो दिलकी नहीं, कागज़की सफ़ाई आवश्यक है, जब कि कागज़ आदिवासियोंके सर्वथा विरुद्ध है। कागज़को देखें, तो आदिवासी यहाँ रह ही नहीं सकते। उनका यहाँ कुछ नहीं है। वे लोग आकाशसे गिरे हैं और धरतीमाता उन्हें अपने पेटमें रखनेसे इन्कार करती है; क्योंकि धरतीपर ब्राह्मण-राजपूत अपना ही अधिकार बताते हैं। परिणाम यह है कि आदिवासियोंको उनके पुराने घरों और ज़मीनसे भी यह कहकर ज़मींदार ब्राह्मण-राजपूत बेदखल कर रहे हैं कि मकान और ज़मीन आदिवासियोंके नहीं हैं। इसका बड़ा प्रमाण यह बताया जाता है कि १८७२ के बन्दोबस्तमें ज़मीन ज़मींदारोंके ही नाम दर्ज़ है। वर्त्तमान कांग्रेसी सरकारने अन्तरिम आदेश (रेग्युलेशन) द्वारा तीन सालसे कब्जेमें आ रही भूमि

स्वर्गीय देवीदयालु गुप्त

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

२६-१२-'४६

कुण्डेश्वरसे हम दोनों टीकमगढ़की ओर चले जा रहे थे—कविवर देवीदयालुजी गुप्त और मैं। कविजी अपने घर लौट रहे थे। मैं यों ही पूछ बैठा—"आपके घरपर कौन-कौन हैं?"

गुप्तजीने कहा—"मैं, मेरी पत्नी और एक चार वर्षकी लड़की मानकुँवरि। एक लड़की और भी थी, पर वह ग्यारह वर्षकी होकर मर गई! उसका नाम था सरीं।"

मैंने पूछा—"कैसे मर गई? कुछ बीमार थी क्या?"

गुप्तजीने कहा—"बीमार क्या थी, वह तो भूखों मर गई! मैं अभागा उसे अन्न भी नहीं दे सका और वह दिन-पर-दिन निर्बल होती गई!" और उनके नेत्र सजल थे! मेरे हृदयको भी धक्का लगा और अधिक सहानुभूतिके साथ मैंने उनका शेष वृत्तान्त सुना :

"जब घरमें अनाजका दाना न रहा और कई-कई फाके होने लगे, तो मैं अपने एक रिश्तेदारके यहाँ बाल-बच्चोंको पहुँचा आया, इस उम्मीदसे कि उन्हें वहाँ खाना तो मिल ही जायगा। यद्यपि इस प्रकार बिना बुलाए जाना मेरे लिए बड़े शर्मकी बात थी; पर क्या करता, कोई चारा न था! सरीं मेरी लड़कीका देहान्त वहींपर हो गया, और यद्यपि मैं वहाँसे १०-१२ मीलकी दूरीपर ही था, तथापि मुझे सूचना दी गई दस दिन बाद! मैं गरीब जो था, इसलिए मुझे खबर भेजने तककी भी ज़रूरत नहीं समझी गई! मेरी पत्नी सरींकी याद कर-करके अक्सर रोया करती है और उसके साथ मैं भी रोता हूँ।..."

देवीदयालुजी संकोचवश कुछ रुके। मैंने कहा—"आप निस्संकोच वह बात सुना दीजिए।"

वे कहने लगे—"एक दिन ग्रामकी एक बुढ़ियाने आकर सरींसे पूछा—'बिटिया, तुम उपतिकें (बिना बुलाए, खुद ही) क्यों चली आईं? इससे तो बड़ी बदनामी होती है।' बड़े भोलेपनके साथ उस लड़कीने उत्तरमें बस इतना ही कहा था—'अजा (दादीजी), हमारे घर खानेको अन्न नहीं था, सो चले आए।'"

देवीदयालुजीकी आँखोंसे टप-टप आँसू गिर रहे थे। कुछ देर बाद वे बोले—"मैं भी कैसा अभागा हूँ कि अपनी पुत्रीको अन्न भी न दे सका! उस बातचीतके तीन-चार दिन बाद वह बेचारी मर ही गई! अन्तिम समय मैं उससे मिल भी न सका!"

मैंने भाई देवीदयालुजीको ढाँढ़स बँधाते हुए कहा—"मृत्युको भला कौन रोक सकता है? इसमें आपका क्या कुसूर है?" पर यह सब शिष्टाचारकी बातें थीं। हम लोग एक मील निकल आए थे। मैंने कहा—"गुप्तजी, आप अपनी छोटी पुत्री मानकुँवरिको मेरा आशीष कहना। कभी-न-कभी उसे देखनेके लिए मैं ज़रूर आऊँगा।"

देवीदयालुजीके चेहरेका भाव कुछ बदला और वे बोले—"आप भला वहाँ क्यों आने लगे! मानकुँवरि चार वर्षकी है, वह मेरे पहुँचते ही पाँवोंसे लिपट जायगी।"

मैंने कहा—"आप विश्वास तो कीजिए। मुझे एक बार आपकी ओर आना ही है।"

देवीदयालुजीने अपनी नोटबुकसे निकालकर एक कविता पढ़ी, जिसका आशय यह था कि उनकी एक पुस्तक अवश्य छपा दी जाय :

कृपा करिए दीन पर चौबेजी तत्काल।
एक किताब छपाइए केवल यही सवाल॥
केवल यही सवाल वचन मुझको दे दीजे।
होवे मनको धीर सुयश जगमें ले लीजे॥
कहँ देवी कविराय हृदयकी विपदा हरिए।
नहीं और अवलम्ब कृपानिधि किरपा करिए॥

मैंने कहा—"एक नहीं, आपकी दो किताबें छपेंगी। चूँकि मेरे नगर फीरोज़ाबादमें आप लूट लिए गए थे, इसलिए उसकी नैतिक ज़िम्मेदारी मुझपर है, सो एक किताब तो फीरोज़ाबादवाले छपा देंगे और दूसरी आपके भक्त और प्रेमी।"

देवीदयालुजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—"दो न सही, एक तो छप ही जाय।"

मुझे कुछ हँसी आ गई और मैंने कहा—"आपने यह 'प्राकृतिक दृश्य' खूब दिखलाया। आप सन्तोषसे घर पधारिए, मैं वचन देता हूँ।"

देवीदयालुजी चले गए, और मैं यही सोचता रहा कि

आत्म-प्रकटीकरण लेखक और कविके लिए कितना अधिक आवश्यक है !

१७-१-'४७

भाई नारायणसिंह परिहारका कार्ड मिला : "क्या लिखूँ और कैसे लिखूँ; फिर भी लिखनेका दुस्साहस कर रहा हूँ और वह यों कि आपके पाससे आकर श्री देवीदयालुजी घर पहुँचते ही निमोनियासे पीड़ित हो गए। मुझे उनके आने तथा बीमार होनेका एक चलता हुआ सन्देश मिला कि फौरन जाकर देखा, तो ज्ञात हुआ कि हालत पिछले ९ दिनसे खराब है। फिर भी चेष्टा की, किन्तु बेकार हुई और वह गत बुधवारको स्वर्गवासी हो गए।— पुनश्च : कविराजकी शय्यापर सिरहाने एक कविता धरी मिली। बीमारीकी हालतमें कब लिख ली, कह नहीं सकता; किन्तु उनकी आत्मिक अभिलाषा स्पष्ट है। अतएव सेवामें प्रस्तुत कर प्रार्थी हूँ कि आत्मिक शान्ति-हेतु इच्छा पूर्ण करनी ही चाहिए। भले ही हिन्दी-जगत् न अपनाए, पर मित्र-जगत् तो अपनाएगा ही। वह कविता यह है :

श्री चतुर्वेदीजीसे प्रार्थना

जैसी अबै लौं कृपा करी दीन पै
या से भविष्यमें दूनी बतइयो।
जो अपराध भये मुझ पै इतै
ताकी हू भूल न चित्तमें लइयो।
औगुन कौ हृदयौ तो कहावत
आप बड़े करुणा को दिखइयो।
आशा मेरी कर दीजियो पूरन
एक किताब अवश्य छपइयो।"

कार्ड पढ़कर सिर चकरा गया। भाई देवीदयालुजीकी एक-एक बात याद आने लगी। एक बार वे तीन दिन तक साथ रहे थे, दूसरी बार दस-बारह दिन और तीसरी बार भी पाँच-सात दिन तक उनके सत्संगका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

आत्मचरित

देवीदयालुजी पढ़े-लिखे नाम-मात्रको ही थे; पर कविताकी बीमारी उन्हें बाल्यावस्थामें ही लग गई थी। अपना परिचय वे इस प्रकार देते थे :

पुत्र वासुदेवका बुंदेलखण्ड-वासी व्यक्ति
जन्मभूमि ढेरी ग्राम वैश्य-वंश बोरा हूँ।
केवल उपासक हूँ सिंहवाहिनीका सदा
दाहिनी है किंकर पै भक्ति-भाव कोरा हूँ॥
सुजन-समाजसे सनेह सरसाता सदा
किन्तु गर्वशालियोंका गर्व मुखमोरा हूँ।
देवी कवि-कोविद-कृपाका अभिलाषी बड़ा
कविता-कलाका अनभिज्ञ तुकजोरा हूँ॥

जब सितम्बर, १९४५ में वे हमारे साथ दस-बारह दिन रहे थे, मैंने एक दिन उनसे कहा—"आप कहीं नौकरी क्यों नहीं कर लेते ?"

उन्होंने उत्तर दिया था—"मेरे-जैसे बेपढ़ेको नौकरी कौन देगा ?"

मैंने कहा—"कविता तो आप अच्छी कर लेते हैं।"

उन्होंने उत्तर दिया— "ये तो 'प्राकृतिक दृश्य' है। सचमुच मैं बिल्कुल नहीं पढ़ा।"

'प्राकृतिक दृश्य' पर मुझे हँसी आ गई। गुप्तजी शायद यह कहना चाहते थे कि कविता करना उनका सहज स्वाभाविक गुण है; पर उसके बजाय वे उसे 'प्राकृतिक दृश्य' कहते थे। हम लोगोंने उनका नाम 'प्राकृतिक दृश्य' ही रख छोड़ा था। जब देवीदयालुजी बहुत छोटे थे, उनके पिताजीने एक बार उनसे पड़ोससे नमक मँगवाया। आपने घूम-घामकर यह उत्तर दिया :

चतुरे कौ तारौ लगौं पंगे करत दतौन।
दद्दा तें मौंड़ी कहै घरमें नैंया नौन॥

देवीदयालुजीके पिता श्रीयुत वासुदेवजीके सात पुत्र हुए। प्रथम पत्नीसे श्री गंगाप्रसादजी और द्वितीयसे सर्वश्री बनवारीलाल, मिट्ठूलाल सिट्ठूलाल, बच्चीलाल, मन्नीलाल, मंगलीलाल और देवीदयालु। पिताजी अनाजका व्यवसाय करते थे, और देवीदयालुजीके अन्य भाइयोंने भी पैतृक व्यवसायको ही ग्रहण किया; पर देवीदयालुजीको बाल्यावस्थासे ही कविताकी बीमारी लग गई। पिताजीको पुस्तक-संग्रह करनेका शौक था और स्वयं पढ़ते भी खूब थे। निकटवर्त्ती ग्रामोंमें उनके पुस्तक-ज्ञानकी धूम थी। ग्रामीण पंडित उनसे घबराते थे; क्योंकि वे पडितोंकी भूल निकाल देते थे, यद्यपि थे वे बड़े निरभिमानी। इस प्रकार साहित्य-प्रेमका रोग देवीदयालुजीको पैतृक ही था। अन्य भाई लोग व्यापार करके गुज़र-बसर करते थे, पर देवीदयालुजी बिल्कुल पंगु ही बन गए। उन्हींके शब्दोंमें सुन लीजिए :

"मेरे पिताजीने सन् '४२ के द्वितीय ज्येष्ठमें अमरपुरकी यात्रा की। मैंने अत्यधिक क्रन्दन किया, परन्तु होता क्या। इसके बाद सब भाई पृथक-पृथक हो गए और अपनी-अपनी दुकानदारी करने लगे। मैं नराधम हाथ मलते रह गया; क्योंकि मेरे पास एक छदाम नहीं थी। हाँ, श्रीमतीजीके पास कुछ चाँदीकी चीज़ें थीं, वही परमाधार थीं। अब तो मेरे ऊपर विपत्तिके बादल गरजने लगे; क्योंकि श्रीमतीजी अनाज तथा खर्च आदिके लिए वाग्वाण मारने लगीं। मैंने तुक्कड़बाज़ी प्रारम्भ कर दी और राजा-रईसोंके पास जा-जाकर उनकी प्रशंसाकी रेल चलाई। तब भी पेट अधूरा बना रहा। एक बार मैं समथरके प्रधान-मन्त्री सुजानसिंहजीके पास गया, तो मैंने अपनी आर्थिक स्थितिका सांगोपांग वर्णन किया और चार-छः कवित्त उनकी तारीफमें सुनाए। आपने द्रवित होकर वर्तमान श्रीमान् महाराजा साहबसे कहकर सात रु० मासिकपर ढेरीमें मास्टर नियुक्त करा दिया। मैंने एक वर्षके करीब छात्रों को पढ़ाया। शिक्षा-विभागके इन्स्पेक्टर पं० किशोरप्रसादजी लड़कोंके परीक्षार्थ आए। आपने सरकारी कोठीपर छात्रोंको बुलाकर परीक्षा ली। लड़के विफलतादेवीकी शरण हुए। मुझसे उत्तर माँगा गया, तो मैंने स्पष्टतः कह दिया कि मैं कौन अंगरेज़ी विधानसे पढ़ा हूँ! फिर क्या विलम्ब था। जीविका-गायको सिंहने यमालय भेज दिया। अब मैं निराश्रय होकर श्वानवत् फिरने लगा। जो-कुछ पैतृक सम्पत्ति थी, वह गिरवी रख गई। इसे मैंने अभी तक नहीं उठाई। उठाऊँ कहाँसे? 'नौ खाऊँ और तेराकी भूख' कहावत चरितार्थ हो रही है। दो माहके करीब हुए तब मैं श्रीमतीजीकी पैरकी गूजरी और गागरा गिरवी रखकर २२) रु० में फीरोज़ाबाद कामकी तलाश में गया था। वहाँ एक सोनपाल नामका सज्जन व्यक्ति ज़िला एटा गाँव कलूचा नगलाका ६०) रु० के बिस्तर, कपड़े आदि चोरी ले गया। मैं तथा एक साथी दोनों आदमी फीरोज़ाबादसे लँगोटी लगाकर भूखों मरकर घर आए। घर आते ही भीषण कोलाहलकी दुन्दुभी बजने लगी। मैं आठ रोज़का भूखा था, परन्तु श्रीमतीजीने न तो आटा दिया और न रोटी बनाकर खिलाई। मैं तो भूखसे मरा जाता था। तब मैंने श्रीमतीजीकी अच्छी तरह ताड़ना की। अब प्रतिवासी इकट्ठे हुए और भाई रोना सुनकर दौड़ आए। मुझे पकड़ लिया। मैं द्वारे निकल आया। अब भारी भीड़ हो गई। विरदावली मेरी प्रारम्भ हुई। भीतरसे श्रीमतीजी रोकर बोलने लगीं कि इन्होंने घर सत्यानाश कर दिया। छोटी बच्ची अनाथाकी तरह भूख-भूख चिल्ला रही है और ये फीरोज़ाबादसे बिस्तर खोकर बाबाजी बनकर आ गए हैं। अभी तीन चीज़ें गिरवी रखी हैं। पीतलका गगरा, जैजम, गूजरी तीन चीज़ोंके मय ब्याजके ३४) रु० या ३५) रु० बैठते हैं। जब आठ या नौ रोज़में यह कलह-पुरान श्रीमतीजीने बन्द किया, तब मैंने कहा कि मैं टीकमगढ़ जाना चाहता हूँ। तुम्हारी क्या परामर्श है? तब उन्होंने कहा कि फीरोज़ाबाद-जैसे लँगोटी लगाकर न आ जाना। मैंने कहा कि जगदाधार रक्षक है। तब उन्होंने आँखोंमें आँसू डबडबाकर बक्ससे निकाल गुजरी मुझे दे दी। मैं उसे गिरवी रखकर टीकमगढ़ चला आया। भविष्य कर्मदेवाधीन।"

देवीदयालुजीकी कविता

एक बार समथर-नरेश उनके ग्राम ढेरीमें पधारे थे। उस घटनाका देवीदयालुजीने इस प्रकार वर्णन किया है:

ढेरीमें आना हुआ जब आपका,
भारी कृपाकर मोहि बुलाया।
हुक्म दिया तत्काल दयालु हो,
लाओ बनाकर छन्द सुहाया।
तेल उधार मँगाया था रातको,
डालके बाती सुदीप जगाया।
नींद भुलाई करी कविता भली,
पाई न पाई है नाम कटाया!

—२—

हुक्म तरक्कीका दिया काटा नाम नरेश;
आई जौलाई जभी जौ लाई सन्देश!

—३—

जाती जब आजीविका तब उर धरै न धीर;
देवी बाँझ न जानती प्रसव-कालकी पीर!

वास्तवमें देवीदयालुजीकी नौकरीका छूटना चार प्राणियों के कुटुम्बके लिए महान दुघटना थी। जब वे इस घटनाको सुनाते, तो मुस्कराते जाते थे; पर उनकी उस मुस्कराहटके पीछे घोर हार्दिक वेदना छिपी रहती थी। जब मैंने पूछा कि कितनेकी नौकरी थी आपकी, तो बोले—

"गुजर गए राजा सभी, अनरथ काहु न कीन।
सात रुपैयाकी हती गुजर गुजर* लई छीन।"

* समथर-नरेश गूजर ठाकुर हैं।

मैंने देवीदयालुजीसे कहा—"इस कविताको कहीं न छपाना, नहीं तो राजा साहब आपको जेल भेज देंगे।"

उन्होंने बड़े भोलेपनसे कहा—"जेल क्यों भेज देंगे?"

मैंने कहा—"इसमें आपने उनकी जातिपर व्यंग किया है।"

बेचारे देवीदयालुजी एक हवालातकी सैर कर भी आए थे। उसका वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है :

बाहरका बाबा एक ढेरीमें निवास करे
मेरे ही मकान बीच डेरा डलवाया है।
रपट लिखाई कोतवालको बताया नाम
चोरीका लगाया अभियोग दीन पाया है॥
बैठ रहे बन्दी बने भूख मानतो ही नहीं
चौकीदार साथ दादा भोजन कराया है।
होकर अधीर अकुलाया तब रोने लगा
रणदूला वीरपुत्र जाकर छुड़ाया ह॥

इसके बाद देवीदयालुजीने लक्ष्मीजीको बीसियों कहनी-अनकहनी सुनाकर आदेश दिया था :

जलजा जलेगी जल्द जलेको जलाती है!
बापकी बहोर डालीं बैरिन कसाइनने,
कसर लगाई नहीं बन्दी बन जाता मैं।
कैदी लोग मार देते आया है नवीन चोर,
हाड़ फूट जाते हाय-हाय डकराता मैं।
जैन साब[1] पूछते कवीजी कहो चोरी करी,
दीजिए बयान प्राण देहमें न पाता मैं।
ठाकुर नरानसिंह[2] मर्द जो बचाता नहीं,
सात पैरीं डूब जातीं बेड़ी खनकाता मैं।

देवीदयालुजीने मानो निश्चय ही कर लिया था कि प्रत्येक भली-बुरी अनुभूतिको छन्दबद्ध कर दूँगा। उनकी 'कवि-यात्रा'में फीरोज़ाबादमें लूटे जानेका वृत्तान्त अत्यन्त करुणोत्पादक है। संकट-कालमें कविता ही उनकी एकमात्र साथिन थी। भोजनके लाले पड़नेपर जब उनकी पत्नी मायके चली गई, तो आप लिखने लगे :

मड़वासे घूम-घूम भाँवरें पड़ी हैं सात,
साथी न कहाई भगे मायके लुगाई है।

एक बार उन्होंने अपनी 'दरिद्रपचीसी' के कुछ अंश मुझे सुनाए, तो मैंने उनसे यही कहा—"गुरुजी, माफ़ कीजिए, आप बड़ी असंस्कृत बात लिखते हैं! कहीं अपने घरवालोंकी इस प्रकार निन्दा की जाती है? एक तो आप कुछ कमाई नहीं करते और फिर ऊपरसे इस प्रकारकी कठोर बातें कहते हैं!"

देवीदयालुजी कुछ सहमे और सिर खुजलाते हुए बोले—"पर जो-कुछ मैंने कहा है, वह सत्य है।"

मैंने उत्तर दिया—"सत्य हो सकता है, पर कहने-कहनेके ढंगमें अन्तर होता है।"

देवीदयालुजी बोले—"मैं कौन अंगरेज़ी विधानसे पढ़ा हूँ! गमार तो हूँ। जैसी बीती, तो कह डाली :

भोजनमें गिनती लगाती नारि रोटियोंकी
शेरके समान गरज लोचन दिखाती है।
एक सेर खाते न कमाते कहीं जाते नहीं
पेट-भर पाते अलसाते नींद आती है।
कबितामें बिघ्न डाल देती आन छातीपर
मानती न बात रारहाटको लगाती है।
देवो कवि दारिद्जी मास खींच रहे आप
नित्य हड़जाई ये कमाई गीत गाती है॥

—२—

चार बजे प्रात नारि बैठ गई चकिया पै
सोरसाथ मायकेका सुयश सुनाती है।
एक चीज तेरी नहीं जानतो मैं जीवनमें
रात दिन कलह नदीशमें नहाती है।
कोमल कलेजे बीच काकबाणी साल रही
ठसक बताती इतराती सतराती है।
देवी कवि दारिद्जी हो रही निशंक बड़ी
दाँत पीस कुतियासे रंक प्राण खाती है।"

एक बार बरसातमें आपके मकानका पक्खा गिर गया। बजाय इसके कि आप उसकी मरम्मतका कुछ इन्तज़ाम करते, उसपर तुकबन्दी करने बैठ गए :

बदरा बद बरसौ बहुत बासब बैर बिसाय;
गुजरौ गजब गरीब पर पक्खा दियौ गिराय।

जब आप नहरके बँगलेपर चपरासी नियुक्त हो गए, तो वहाँ भी कविता लिख-लिखकर ओवरसियर साहबको सुनाया करते थे। उनके दुर्भाग्यसे दूसरा ओवरसियर आ गया, जिसे कवितासे कुछ भी प्रेम नहीं था। और देवीदयालुजीको 'दाद' के बजाय 'फटकार' ही पुरस्कारमें मिली!

जब देवीदयालुजी हमारे पास १०-१२ दिनके लिए

---

१. स्थानीय मजिस्ट्रेट। २. स्नेही मित्र और सहायक।

रहे थे, हमने यह विचार किया था कि उनसे कुछ लिखा-पढ़ीका काम लेंगे। पर इसमें हमें निराश होना पड़ा। आप कुण्डके जल-प्रपातकी ओर टहलने गए, तो वहीं बैठकर कविता लिखने लगे। जब देरमें लौटे, तो मैंने पूछा—"आज कहाँ रह गए?"

उत्तरमें आपने 'कुण्डेश्वर* का चित्र-काव्य' सुना दिया—

झर-झर झरना झर रहा करता कलित-किलोल।
उषा और अनिरुद्धका बजा रहा यश ढोल॥
भावनाकी ऊषा आज आती पूजनेको उमा
प्रेम-माल गूँथ-गूँथ मुदित चढ़ाती है।
हेर-हेर फेर-फेर हिय हरसाती महा
लेती बलिहारी करतारीको बजाती है।
हृदय सिहाती दीन करुणा सुनाती खड़ी
होकर विदेह ध्यान आसन लगाती है।
देवो कवि तेरी-सी उदारता न देखी कहीं
चढ़ा बेलपाती वर पाती वर पाती है।

देवीदयालुजीने पूरी कविता सुना दी। मैंने समझ लिया कि मर्ज़ लाइलाज है और मुझे कुछ हँसी आ गई। गुप्तजीको कुछ शंका हुई और पूछा—"क्यों, मेरे पद्योंमें क्या कुछ अशुद्धि हो गई है, या भाव ठीक नहीं प्रकट हुए?"

मैंने कहा—"नहीं, आपकी कविता तो बढ़िया है, भाव भी सुन्दर हैं; पर मैं एक दूसरी ही बात सोच रहा था—एक रोगके विषयमें।" गुप्तजी कुछ चौंके। मैंने कहा—"मुझे छाजनकी बीमारी है और आपको कविताका रोग लग गया है, और दोनों असाध्य हैं। थोड़ी देरके लिए ये भले ही दब जायँ, फिर बार-बार उछर आते हैं।"

देवीदायलुजी हँसने लगे और बोले—"तो अब कोई इलाज भी बताइए।"

मैंने कहा—"कविताकी बीमारीका कोई इलाज सुश्रुत और चरकमें भी नहीं। यह तो ज़िन्दगी-भरके लिए समझ लीजिए। इसे भुगतना ही पड़ेगा अब आप एक काम कीजिए। राजा-महाराजाओं और सेठ-साहूकारोंकी तारीफ़में लिखना बन्द कीजिए, वह तो माता सरस्वतीका अपमान है। अब आप अपने जनपद बुन्देलखण्डके विषयमें दस-बीस पद्य लिख दीजिए। यहाँकी प्रकृतिका वर्णन कीजिए। कवि-सम्मेलनोंमें उन्हींको सुना दिया कीजिए।"

पिछली बार—अन्तिम बार—जब देवीदयालुजी पधारे, तो बड़े प्रसन्न थे। वे विवाहके सिलसिलेमें बरातमें आए हुए थे। उन्होंने अपनी नवीन कविता 'बुन्देलखण्ड' देते हुए कहा—"लीजिए आपकी आज्ञाका पालन मैंने कर दिया है। अब इसे छपानेकी ज़िम्मेदारी आपपर है।"

मैंने कहा—"आपकी इस रचनाको मैं किसी कविको दिखला दूँगा। उनसे संशोधन भी करा दूँगा।"

देवीदयालुजी निराश होकर बोले—"चौबेजी, कोई कवि भला मेरे-जैसे ग़रीब तुक्कड़की रचनापर क्यों श्रम करेगा? सबको अपनी-अपनी पड़ी है। ग़रीबोंको कौन पूछता है?"

मैंने कहा—"आप इतने निराश क्यों होते हैं? मेरे मित्र हरिशंकरजी शर्मा बड़े सहृदय कवि हैं। वे अवश्य बड़ी सहानुभूतिपूर्वक आपकी रचनाको पढ़ेंगे।"

देवीदयालुजीको बड़ा सन्तोष हुआ और उन्हें यह आशा बँध गई कि उनकी एक पुस्तिका तो छप ही जायगी। दुर्भाग्य से वह अब तक नहीं छप सकी! भाई हरिशंकरजीने संशोधन कर दिया था।

यह बातचीत २६ दिसम्बर, १९४६ को हुई थी और इसके पन्द्रह दिनके भीतर ही देवीदयालुजीका स्वर्गवास हो गया! पैसोंके अभावमें वे स्टेशनसे समथर और अपने ग्राम तक दस-बारह मील पैदल ही गए थे। बुखार उन्हें उस समय था, सो निमोनिया हो गया और उसीमें वे चल बसे। सुना है कि अपनी मृत्युके पूर्व उन्होंने कई जगह कुण्डेश्वरके प्राकृतिक सौन्दर्यकी बड़ी प्रशंसा की थी और कहा था—'हम स्वर्गसे लौट रहे हैं।' जो कविता उनके सिरहाने पाई गई, वही उनकी अन्तिम अभिलाषा थी!

अपने जीवनमें हमें बीसियों कवियोंके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है; पर हमें अभी तक एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिला, जिसे कविताकी बीमारीने इस प्रकार ग्रस लिया हो! उपदेश देना बहुत आसान है। 'शारीरिक श्रम करो, नौकरी करो, मुफ्तका क्यों खाना चाहते हो?' इत्यादि नसीहतोंसे भरे लेक्चर देनेमें लगता ही क्या है?

देवीदयालुजीने नौकरी की थी, पर वह सात रुपए महीनेकी नौकरी भी छूट गई। सड़कपर मज़दूरी भी की थी—इस आशे

---

* कुण्डेश्वर तीर्थ माना जाता है और यह किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि यहाँपर शिव-पार्वतीको पूजा करनेके लिए 'उषा' आया करती थी।

रोज़पर—और वे नहरके एक बँगलेपर चपरासी भी रहे थे। फीरोज़ाबादके काँचके कारखानोंमें वे मज़दूरी तलाश करनेके लिए ही तो गए थे, जहाँ उनके कपड़े और बिस्तरोंके साथ काव्य-संग्रह भी चोरी चला गया!

बड़े-बड़े नगरोंमें अनेक बाग-बगीचे हैं और उनपर सहस्रों रुपए व्यय किए जाते हैं; पर ग्रामोंमें तो किसी नीमके पेड़के नीचे बैठकर ही ग्रामीण जनताको छाया और शान्ति मिलती है। ये नीम स्वतः ही पैदा होते और नष्ट होते रहते हैं। आप उन्हें खेतों, खलिहानोंपर और अथाईके पास पावेंगे। देवीदयालुजी भी बस इन ग्रामीण वृक्षोंकी तरह ही थे। कृत्रिम संस्कृतिसे वे कोसों दूर थे। पुराने कवियोंको रचनाएँ अथवा अपनी तुकबन्दियाँ सुना-सुनाकर वे समथर-राज्यके साहित्यिक रेगिस्तानमें एक छोटा-सा नखलिस्तान बना रहे थे। आज हमारे सामने मुख्य प्रश्न यह है कि **किस प्रकार साहित्य-गंगाकी धाराओंको ऐसे स्थानोंपर पहुँचाकर उन नखलिस्तानोंको बचाया जाय?**

हमारे ये सब सम्मेलन निरर्थक होंगे तथा परिषदें फ़िज़ूल, यदि उनका कार्य केवल कुछ नगरों तक ही केन्द्रित और सीमित रहे। देवीदयालुजी उन तथाकथित 'क्षुद्र' कवियोंके एक प्रतीक थे, जो ग्राम-ग्राममें पाए जाते हैं, जिन्हें प्रोत्साहन तो क्या, पेट-भर भोजन भी नहीं मिलता और जो अपनी आकांक्षाओंको अपने साथ लिए ही इस संसारसे विदा हो जाते हैं! अखबारोंमें उनका नाम नहीं छपता। न उनके लिए कोई स्वागत-उत्सव होता है, न शोक-सभा। प्रतिष्ठित कवि उन्हें उपहासकी और साहित्यिक इतिहास उपेक्षाकी दृष्टिसे ही देखते हैं। हाँ, उनकी स्मृति उनके कुछ ग्रामीण मित्रोंके हृदयमें अवश्य बनी रहती है, और वही उनका सर्वोत्तम स्मारक है।

———

जौनसार-बावरके आदिवासी हरिजन

श्री धर्मदेव शास्त्री

जौनसार-बावर देहरादून-ज़िलेके अन्तर्गत एक अर्ध-बहिष्कृत प्रदेश है। यह ज़िला अपेक्षाकृत छोटा है। इसकी केवल दो तहसीलें हैं—देहरादून और चकरौता। चकरौता-तहसीलका हो दूसरा नाम जौनसार-बावर है। तहसीलका केन्द्र-स्थान चकरौता है, जहाँ तहसीलदार और एस० डी० एम० की कचहरी है। चकरौता कण्टोनमेण्ट-बोर्डके अन्तर्गत है। सर्दियोंमें नवम्बरसे मार्च तक कचहरी कालसीमें आ जाती है। कालसी पुरानी बस्ती है। यहाँ यमुना-किनारे २३ शताब्दी पुराना सम्राट अशोकका शिलालेख आज भी सुरक्षित है। कालसी अब उजड़ी हुई बस्ती है। कालसीसे जौनसार-बावरका प्रदेश प्रारम्भ होता है। यहाँसे ८ मील चकरौता तक मोटरका मार्ग है। कालसी-चकरौता-मार्गके बीचमें साहिया नामकी बस्ती भी सड़कपर है। यह इस प्रदेशके ठीक केन्द्रमें है। यह व्यापारका केन्द्र है। यहाँसे आलू, अबरक, सोंठ, घी और मिरचें बाहर भेजे जाते हैं, और बाहरसे लोहा, नमक, तेल, कपड़ा, सीरा और गुड़ यहाँ आता है। कालसी, साहिया और चकरौताके अलावा चोहड़पुर भी बड़ी व्यापारिक मंडी है, जो जौनसार-बावरके समीप पश्चिमी दूनमें मोटर-रोडपर ही स्थित है। इस प्रदेशके पूर्वमें यमुना और पश्चिमोत्तरमें टोंस नदियाँ बहती हैं। दोनोंका संगम कालसीके पास होता है। कालसीके पास ही आमला नदी भी यमुनामें मिली है। आमलाके ही किनारेपर कालसी और साहिया हैं। टोंस-पार हिमाचल-प्रदेश है। यमुना-पार टेहरी-गढ़वाल तथा देहरादून हैं। इस प्रकार भौगोलिक दृष्टिसे यह प्रदेश हिमाचल-प्रदेश और टेहरी-गढ़वालसे ही अधिक मिलता है। टेहरी-गढ़वाल और जौनसार-बावरमें परस्पर शादी-ब्याह आदि सम्बन्ध भी होते हैं। दोनोंकी भाषाओंमें भी बहुत-कुछ साम्य है। देवता, ब्राह्मण भी दोनोंके समान हैं। सिरमौर (हिमाचल-प्रदेश) का परशुराम देवता जौनसार-बावरका भी देवता है। इस प्रकार जौनसार-बावर भौगोलिक और सांस्कृतिक दृष्टिसे बृहत्तर हिमालयका और इसीलिए टेहरी-गढ़वाल तथा हिमाचल-प्रदेशका भाग होनेपर भी राजनीतिक दृष्टिसे देहरादून-ज़िलेका ही भाग है।

आदिवासी और नवागन्तुक

१९४१ की मर्दुमशुमारीके अनुसार यहाँकी जनसंख्या

५५६२३ है। इसमें कालसी, साहिया और चकरौताके वे लोग भी शामिल हैं, जो व्यापारके लिए अथवा सरकारी नौकरी आदिके सिलसिलेमें यहाँ रहते हैं। वास्तवमें इस प्रदेशमें ५ शताब्दी पूर्व केवल यहाँके आदिवासी कोल्टे और उनके देवता महासूके वंशज बाजगी-देवाड़ ही रहते थे। ब्राह्मण-राजपूत सीमान्तके हमलोंके समय रक्षाके लिए यहाँ पहाड़में आए और यहाँके आदिवासियोंको दास बनाकर यहीं बस गए। आदिवासियोंको भी अपेक्षाकृत शान्ति तथा निश्चिन्तता मिली और नवीन व्यवस्थाको उन्होंने स्वीकार किया। आदिवासियों और नवागन्तुओंमें तब अभिन्नता हो गई, जब कि ब्राह्मण-राजपूतोंने आदिवासियोंके देवता महासूको अपना देवता मान लिया। देवताके वंशज बाजगी अथवा देवाड़ोंको देवताके भंडारेसे खाना देनेकी व्यवस्था की गई। सबने देवताके नाम मकान, भूमि और पशु देना स्वीकार किया। तब आगन्तुओं और आदिवासियोंमें समझौता हुआ कि महासू देवताकी प्रतिष्ठाके लिए कोई भी चारपाईपर नहीं सोवेगा, गौका दूध और मक्खन देवताको ही दिया जायगा और महासूके अतिरिक्त किसी भी देवताकी यहाँ मुख्यतया पूजा नहीं होगी। आज भी न्यूनाधिक रूपमें ये शर्तें मानी जा रही हैं। कश्मीरपर होनेवाले आक्रमणमें ही सर्वप्रथम कश्मीरसे कुछ ब्राह्मण-राजपूत यहाँ आए थे। मुगलोंके आक्रमण-कालमें भी मैनपुरी, दिल्ली और आगरेकी तरफसे कुछ चौहान राजपूत यहाँ आए। इनमें से कुछका आज भी मुसलमान बने हुए अपने सजातियोंके यहाँ ब्याह-शादियोंमें आना-जाना चलता है। ब्राह्मण-राजपूतोंमें पुराने आर्योंके अनुसार यहाँ परस्पर विवाह होता है। यहाँकी परिस्थितिके अनुसार नवागन्तुओंने इसे स्वीकार किया। इससे इनमें परस्पर प्रीति बढ़ी। यहाँ जंगल, शिकार और खेतीकी सुविधाके कारण नीचेसे ब्राह्मण-राजपूतोंका आगमन होता रहा। परिणाम यह हुआ कि यहाँके आदिवासियोंकी संख्या कम हो गई और नवागन्तुक बहुसंख्यक हो गए। गोरखोंके राज्यमें यहाँके निवासियोंसे भी अधिक मुकाबला ब्राह्मण-राजपूतोंको करना पड़ा। यहाँके आदिवासी दासतामें ही आनन्द अनुभव करनेके कारण धीरे-धीरे पराश्रित और भीरु बन गए।

आदिवासी हरिजनोंकी स्थिति

जौनसार-बराबरकी कुल जनसंख्या ५६ हज़ार है, जिसमें से हरिजन १७ हज़ार हैं। ये लोग बहुत ग़रीब हैं—केवल धनकी दृष्टिसे ही नहीं, बुद्धिकी दृष्टिसे भी। सदियोंसे गुलामीमें रहते-रहते आज़ादीका सुख इन्हें मालूम नहीं। आदिवासी कोल्टोंका मुख्य व्यवसाय ज़मींदारोंकी गुलामी करके जीवन निर्वाह करना है। ये लोग परिश्रमी होते हैं तथा जो ज़मींदार दे दे, उसीसे पेट-भरके पशुओंकी तरह उनकी सेवा करते हैं। मालिक इनको पशुओंकी भाँति बेच भी देता है। कोल्टोंको चार भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। अज्ञात कालसे जो कोल्टा एक ज़मींदारकी गुलामी कर रहा है तथा मालिकके घरमें मृत्यु होनेपर घरके आदमीके समान दाढ़ी-मूँछ और सिर मुँड़ाता है, और उसीके घरसे जिसे खाना-कपड़ा मिलता है, वह कोल्टा खुंडित-मुंडित है। दो-तीन पीढ़ियाँ पूर्व जिस कोल्टेके पूर्वजने कार्यवश ज़मींदार मालिकसे कुछ रुपए ऋणके लिए थे, तबसे मात कोल्टा सूदके बदलेमें गुलामी करता है। मालिक इस कोल्टेको तभी आज़ाद करेगा, जब कि वह रुपया अदा कर दे। पर गुलाम होनेसे यह कोल्टा रुपया तभी दे सकता है, जब कि वह किसी औरको मालिक बनाकर पहले मालिकके पैसे उससे दिला दे। इसकी दशा भी बुरी है। यह गुलामीकी परम्परामें जकड़ा है। स्वयं मरनेपर इस कोल्टेके पुत्र-पौत्र आदि गुलामी करते रहेंगे। कभी-कभी मालिक मात कोल्टेकी शादीमें उत्साह दिखाता है; क्योंकि उसका कोल्टा शादी करके पुत्र उत्पन्न करेगा, जो उस मालिककी गुलामी करते रहेंगे। अन्यथा मालिकको कोल्टेके मर जानेपर रुपयोंके मारे जानेका भय है। तीसरे प्रकारका कोल्टा सयावत है, जो एक व्यक्तिका नहीं ग्राम अथवा खेतका सम्मिलित-कोल्टा है। यह पचायती-गुलाम ग्राममें मरने-जीनेकी खबर पहुँचाता है, मरे हुए डगरकी गति करता है और बारी-बारीसे मालिकोंकी खेतीमें मदद करता है। यहाँ पहाड़में नई ज़मीन बनाकर उसे अपनी भूमि मानने का रिवाज यद्यपि आज तक नौतोड़ अथवा नई ज़मीन तोड़ने-बनानेका अधिकार ब्राह्मण-राजपूतोंको ही क़ानून द्वारा प्राप्त रहा है; फिर भी हालमें सरकारी अधिकारियोंने नौतोड़का अधिकार आदिवासियोंको भी दिया है। इस प्रकार कुछ कोल्टोंने नई भूमि बनाई है। इनके अलावा कुछ ऐसे भी कोल्टे हैं, जिनके पास अपनी ज़मीन और अपने मकान भी हैं।

खुंडित-मुंडित कोल्टा घरके भाइयोंके समान ही घर सँभालता है। वह घरके अन्य व्यक्तियोंकी तरह सिर और मूँछ मुड़ाता है और शोकमें ३ या ५ दिन तक शामिल रहता है। परन्तु ऐसे उदाहरण भी अब सामने आए हैं, जिनमें

खुंडित-मुंडित कोल्टोंको भी ज़मींदारोंने ज़मीन और मकानसे बेदखल कर दिया है। वास्तवमें सरकारको विशेष आदेश द्वारा यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि खुंडित-मुंडित कोल्टेका भी घरकी सम्पत्तिमें बराबर हिस्सा है। अज्ञात ऋणके सूदके एवज़में गुलाम रखना मानवताकी दृष्टिसे बहुत बुरी बात है। हर्षकी बात है कि युक्त-प्रान्तीय सरकारके प्रधान-मंत्री पं० गोविन्दवल्लभ पंतने २३ मई, १९४९ को चकरौतेमें अपनी घोषणा द्वारा तीन साल पुराना सारा ऋण अवैध घोषित कर दिया है। क़ानूनी भाषामें ऋणके बदले ग़ुलामी समाप्त होनेपर भी व्यवहारमें वह पूर्ववत् चालू है। पुराने ऋणके नए प्रोनोट लिखवाए जा रहे हैं। स्वभावतः ज़मींदारोंने आदिवासियोंका आर्थिक बहिष्कार करनेकी योजना बनाई। अब तक आदिवासी गुलाम होनेसे आर्थिक दृष्टिसे ज़मींदारोंपर ही अवलम्बित रहे हैं। पुराना कर्ज़ सर्वथा समाप्त होनेके बाद ज़मींदारोंसे उन्हें कुछ भी प्राप्त होनेकी आशा नहीं। ऐसी अवस्थामें आदिवासियोंको पुनः संस्थापनके लिए तकावीके रूपमें बिना सूदके हल-बैल और जीवन-निर्वाहके अन्य साधन जुटानेके लिए ऋण मिलना चाहिए।

दास अथवा गुलाम होनेपर भी कोल्टों और दूसरे आदिवासियोंके पास भूमि तथा मकान कैसे हैं, यह प्रश्न स्वाभाविक है। वस्तुस्थिति यह है कि पुराने या नये ऋणके बदले व्यावहारिक रूपमें कोल्टों और अन्य आदिवासियोंका सारा कुटुम्ब दास रहता है; परन्तु खाना ज़मींदार मालिक केवल एक ही व्यक्तिको देता है। शेष कुटुम्बके पालनके लिए यहाँ ब्राह्मण-राजपूतोंने आदिवासियोंको बोने-खानेके लिए भूमि और रहनेके लिए मकान दे रखे हैं। बहुधा इस भूमिको बोनेके लिए आदिवासियोंके पास अपने हल-बैल भी नहीं हैं। उनकी आर्थिक स्थिति सर्वदा दासकी-सी होनेसे उनके पास अपना धन नहीं है। इसलिए ज़मींदारके हल-बैलोंसे ही आदिवासियोंकी भी भूमि जोती-बोई जाती है। प्रायः अनेक पीढ़ियोंसे इन आदिवासियोंके पास रहनेपर भी यह ज़मीन और मकान उनके नाम दर्ज नहीं हैं। इस भूमि और इन मकानोंको प्रान्तीय सरकारने आदिवासियोंकी भूमि और मकान मानकर उनके काश्तकारी-अधिकार स्वीकार किए हैं और उन्हें बेदखल न करनेके आदेश जारी किए हैं।

आदिवासियोंके साथ विश्वासघात

चाहे कुछ भी हो, ब्राह्मण-राजपूतोंने आश्रयदाता आदिवासी कोल्टों और देवाड़ोंको प्रतिज्ञानुसार अन्न-वस्त्र दिए, उन्हें भूखों नहीं मरने दिया। १८१५ में यह प्रदेश गोरखोंसे अगरेज़ी शासनमें आया। गोरखोंके शासनसे जनता बहुत दुःखी थी। अंगरेज़ी शासनमें निश्चिन्तता और व्यवस्थाके कुछ दर्शन जनताको मिले। सर्वप्रथम यहाँ भूमिका बन्दोबस्त शुरू हुआ। प्रथम बन्दोबस्त कैप्टेन बर्चने १८१५ में किया। सर्वप्रथम उसी समय नवागन्तुक ब्राह्मण राजपूतोंने अपने आश्रयदाता आदिवासियोंको धोखा दिया। उन्होंने अंगरेज़ शासकोंसे मिलकर बन्दोबस्तीमें भूमि और मकानका स्वामित्व अपने नाम लिखा लिया और आदिवासियोंको विदेशी तथा अधिकारशून्य बना दिया। एकके बाद दूसरे बन्दोबस्त होते रहे। धीरे-धीरे ब्राह्मण-राजपूतोंने आदिवासियोंके सारे अधिकार छीन लिए। शासकोंके साथ बन्दोबस्तके बाद जो यहाँके सयानोंने समझौता किया है, उसे वाजिबुल कहा जाता है। उसे देखनेसे मालूम होता है कि विदेशी शासकोंके साथ मिलकर यहाँके सयानोंने आदिवासियोंको सर्वथा पशुतुल्य माना है। उन्हें नई भूमि बनानेका अधिकार नहीं। वे ज़मींदारके बिके हुए दास माने गए। परिणाम यह हुआ कि जो कोल्टे और देवाड़ आदि साझीदार थे, वे ब्राह्मण-राजपूतोंके ग़ुलाम हो गए और सम्पत्तिके मालिक न रहकर खुद सम्पत्ति बन गए। यह एक षड्यन्त्र था, जिसका पता आदिवासियोंको नहीं था। आदिवासी पूर्ववत् सेवा करते रहे और आज भी कर रहे हैं। ये लोग पुराने रिवाज और समयपर दृढ़तासे क़ायम हैं। उन दिनों दिल और ज़बानकी सचाई-सफ़ाई चलती थी। तब काग़ज़की ज़रूरत नहीं थी। अब तो दिलकी नहीं, काग़ज़की सफ़ाई आवश्यक है, जब कि काग़ज़ आदिवासियोंके सर्वथा विरुद्ध है। काग़ज़को देखें, तो आदिवासी यहाँ रह ही नहीं सकते। उनका यहाँ कुछ नहीं है। वे लोग आकाशसे गिरे हैं और धरतीमाता उन्हें अपने पेटमें रखनेसे इन्कार करती है; क्योंकि धरतीपर ब्राह्मण-राजपूत अपना ही अधिकार बताते हैं। परिणाम यह है कि आदिवासियोंको उनके पुराने घरों और ज़मीनसे भी यह कहकर ज़मींदार ब्राह्मण-राजपूत बेदखल कर रहे हैं कि मकान और ज़मीन आदिवासियोंके नहीं हैं। इसका बड़ा प्रमाण यह बताया जाता है कि १८७२ के बन्दोबस्तमें ज़मीन ज़मींदारोंके ही नाम दर्ज है। वर्त्तमान कांग्रेसी सरकारने अन्तरिम आदेश (रेग्युलेशन) द्वारा तीन सालसे कब्जेमें आ रही भूमि

होनेपर सब एक साथ चौंक उठते ।

यह तय हुआ था कि आध घंटेके बाद मृणाल कमरेमें आयगी, और उसके पीछे-पीछे दो नौकर चाय और मिठाई लेकर प्रवेश करेंगे । दरवाज़ेके बाहर साड़ीकी मृदु खस-खस और चूड़ियोंकी झंकार सुननेके लिए सब उत्सुक थे । अन्तमें नीले पर्देके उस तरफ किसी व्यक्तिकी अवस्थितिका अनुभव उन्हें हुआ ।

मृणालने कमरेमें प्रवेश किया । प्रवेश किया कहना भूल होगी, उसका आविर्भाव हुआ । किसकी तरफ उसने सर्वप्रथम देखा, यह कोई नहीं समझ सका । किसीकी भी तरफ शायद उसने नहीं देखा, अथच ऐसा लगा कि वह सबको देख रही है । कमरेमें मृदु आवाज़के साथ उसने प्रवेश किया, स्वप्नकी तरह । नीले शेडकी रोशनीमें उसकी साड़ीके सही रंगका पता न चला, पर वह बहुत अच्छी लग रही थी । साड़ीकी चुन्नटें ठीक हैं ; कहीं भी रेखाओंका प्राचुर्य नहीं, सरल, स्पष्ट और समान्तराल । ब्लाउज़का 'कट' भी वैसा किसीने न देखा होगा । उसमें कहीं ज़रा-सी भी सलवट नहीं । आँचल मानो हवाके मृदु कम्पनसे बिखर जायगा, पर आश्चर्य कि पंखेकी हवासे स्थानच्युत नहीं हुआ । चौड़े कपालपर लाल बिन्दी दृष्टि आकर्षित करती थी । इस समय उसका रंग उज्ज्वल ही दिखाई दे रहा था । कानमें सोनेके दो बड़े-बड़े झुमके थे । नीरद तो एकदम अवाक् रह गया । मृणालको मानो आज पहचाना ही नहीं जाता था । उन लोगोंकी आँखोंके सामने यह जो अपूर्व युवती थी, वह मानो मृणाल नहीं, कोई और ही थी ।

हाथ जोड़कर मृणालने सबको नमस्कार किया । वे सब उठ खड़े हुए और प्रतिनमस्कार किया । उन लोगोंसे बैठनेके लिए उसने कहा—अद्भुत सुरीली आवाज़, जैसे बहुत दूरसे आ रही हो । वे सब बैठ गए । कुछ स्मरणीय क्षण बीत गए । मृणालने ही शुरुआत की—'यह मेरा सौभाग्य है कि आप सब लोग पधारे ।'

नीरद चौंका । उसने यह कभी सोचा भी न था कि मृणाल ऐसी मधुरतासे बातें कर सकती है और इतने निस्संकोच तथा अच्छे ढंगसे बातें करनेकी शैली जानती है । उनमेंसे जिसका नाम रामनाथ था और जो युवतियोंसे बातचीत करनेमें पटु समझा जाता था, बोला—'और हमारा सौभाग्य क्या कम है ?'

'यदि आप लोगोंका ही सौभाग्य है, तो इससे पहले ही आना उचित न था ?'

सबने नीरदकी ओर देखा । उसीने तो एक-न-एक बहाना बनाकर अब तक रोक रखा था । लेकिन मृणालने ही उसका उद्धार किया । उसने फौरन ही कहा—'पर जब सुयोग मिला है, तब समय नष्ट न हो, इसका भी ध्यान रखना ज़रूरी है । लीजिए, पहले कुछ जलपान कीजिए ।' खिड़कीके पास एक मेज़पर चमकती हुई प्लेटें रखी थीं । मृणालने एक-एक उठाकर प्रत्येकके हाथमें दे दी । छोटे स्टूल पर साफ़-सुथरे काँचके ग्लास रख दिए गए । खानेकी भिन्न-भिन्न वस्तुएँ मृणालने एक-एक कर सबको दीं । परोसनेके इस नये ढंगसे सब चमत्कृत हुए । 'अब आप लोग शुरू कीजिए ।'—मृणालने मधुर कण्ठसे अनुरोध किया ।

'लेकिन इसमें एक असुविधा है । जो अन्नपूर्णा हैं, उनके आहारकी क्या व्यवस्था है ?' चारों ओर हँसीका गुंजन प्रतिध्वनित हो उठा ।

'यह है'—कहकर एक प्लेटमें मृणालने थोड़ी-सी चीज़ें रख लीं ।

चायके साथ-साथ गप-शप शुरू हुई । अत्यन्त शान्त भावसे मृणाल प्रत्येकके साथ नाना विषयोंपर बातें करने लगी । हरएककी बातका वह उत्तर दे रही थी । किसीके भी किसी प्रश्नको उसने टालनेकी कोशिश नहीं की, ताकि कोई यह खयाल न करे कि वह किसीके साथ पक्षपात कर रही है । प्रश्न चाहे जितना दुरूह हो, आलोचना चाहे जितनी गम्भीर हो, मृणाल विद्वत्तापूर्वक उसका विश्लेषण करती गई । उसके उत्तरोंसे बुद्धिसत्ता झलकती थी, बातोंसे विचारशीलताका परिचय मिलता था ।

नीरदकी ओर किसीने दृष्टि भी नहीं डाली, मानो वह कमरेमें है ही नहीं । और अगर है भी, तो उसकी उपस्थिति की ज़रा भी आवश्यकता नहीं है, हालांकि बीच-बीचमें उसने आलोचनामें भाग लेनेकी असफल कोशिश ज़रूर की । मृणालके साथ क्षणिक साहचर्य और परिचयका मोह अविलम्ब ही समाप्त हो जायगा, इसका किसीको खयाल ही न था । जैसे इन लोगोंका मृणालसे बहुत पुराना तथा घनिष्ट परिचय और सम्बन्ध रहा हो, जो मित्रताकी परिणतिसे और भी गहरा हो रहा हो । मृणालकी बार-बार संयत हँसी, उसके मृदु लेकिन स्पष्ट कण्ठकी भाषा सारे कमरेको मायामय बना रही थी ।

लेकिन विदाका क्षण आ ही गया तथा विदा लेते-लेते भी एक घंटा और बीत गया। नीरदके सब दोस्तोंने कहा—'आज की संध्या उनके जीवनमें चिर-स्मरणीय रहेगी। ऐसा दिन फिर बार-बार लौटकर आए!'

सीढ़ीके पास विद्युत्के स्पष्ट प्रकाशमें मृणाल ऐसे हँसी कि गौरकर नीरदके हृदयमें न-जाने कैसा-कैसा होने लगा। पर आज जैसे वही बहुत दूर हट गया है!

रास्तेमें नीरदने रामनाथसे कहा—'ताज्जुब है! तुममें से किसीने भी गीत सुनानेके लिए मृणालसे नहीं कहा?'

'गीत?' रामनाथका स्वर भारी था—'जीवनमें बहुत-से गीत सुने हैं और सुनूँगा भी; पर आज शामका वक्त व्यर्थकी लफ़्फ़ाज़ी और हो-हल्लामें नष्ट नहीं हुआ, इसके लिए किसे धन्यवाद दूँ?'

नीरद चुप रह गया। रामनाथको सुनाई न पड़े, इस ढंगसे नीरदने दीनानाथसे कहा—'तुम तो चित्रकलाके प्रेमी हो, उसके बनाए हुए चित्र तुमने क्यों नहीं देखे?'

'जो चित्र आज हृदय-पटपर अंकित हो गया है,' दीनानाथने कहा—'उसके सामने सब चित्र फीके हैं।'

नीरदके मुँहसे अब आवाज़ न निकली।

रूसमें नैतिक अराजकताकी प्रतिक्रिया

श्री हरिदत्त वेदालंकार

क्रान्तिके बाद रूसमें जो नैतिक अराजकता फैली, उसकी चर्चा हम पिछले अंकमें कर चुके हैं। उससे रूसी नेताओंको यह अनुभव हुआ कि एकदम स्वच्छन्द प्रेमका आदर्श समाजके लिए स्पृहणीय नहीं है। लेनिनने सर्वप्रथम कठोर शब्दोंमें इस आदर्शकी भर्त्सना की। क्रान्तिकी पहली दशाब्दीमें कुछ नेताओंका यह विचार था कि प्रकृतिने मनुष्यको कुछ ऐसे स्वाभाविक प्रतिबन्ध प्रदान किए हैं, जिनसे मनुष्य काम-सम्बन्धी अति या नैतिक दुराचारसे बचा रहेगा। उनका यह भी विचार था कि क्रान्ति, अकाल और युद्धकी असाधारण परिस्थितियोंमें ही मनुष्य इस स्वतन्त्रताका दुरुपयोग कर रहा है, शान्ति-काल तथा साधारण स्थितिमें वह ऐसी ग़लती नहीं करेगा। किन्तु रूसमें जब शान्ति स्थापित हो गई, तो असाधारण परिस्थितियाँ न रहीं। उस समय भी अनाचारकी मात्रा कम नहीं हुई। रूसी अधिकारियोंने पहले इसके लिए नरम और बादमें कठोर प्रतिबन्ध लगाने शुरू किए। १९२६-३५ तकके प्रतिबन्ध मामूली थे; किन्तु १९३६ से इन प्रतिबन्धोंको उग्र बनाया जाने लगा।

क्रान्तिका पहला दशक (१९१७-२६) जोशका ज़माना था। इस समय यौन-सम्बन्धको वैयक्तिक मामला समझकर स्त्री-पुरुषोंको स्वच्छन्द प्रेम और कामचारकी खुली छूट दी गई; किन्तु दूसरे दशक (१९२७-१९३६) में इस सिद्धान्तमें स्पष्ट परिवर्त्तन आने लगा। यह माना जाने लगा कि यौन-सम्बन्ध केवल वैयक्तिक मामला नहीं, जिसमें खुली छूट दी जा सके। इसके कुछ सामाजिक परिणाम भी होते हैं, जिनसे कुछ नये उत्तरदायित्व और बाध्यताएँ उत्पन्न होती हैं। बच्चेके पालन तथा गर्भादिके कारण भरण-पोषण करनेमें असमर्थ स्त्रीके उचित संरक्षणकी व्यवस्था क़ानून द्वारा अवश्य की जानी चाहिए। इस ओर सबसे पहले ध्यान खींचनेवाला क्रान्तिका जन्मदाता लेनिन था। क्रान्तिके पहले वर्षोंका भैरवीचक्र लेनिनने कभी पसन्द नहीं किया। क्रान्तिके प्रारम्भमें अनेक रूसियोंका यह विचार था कि यौन-सम्बन्ध खान-पान-जैसा स्वाभाविक धर्म है, उसमें कोई विशेषता नहीं है। जैसे प्यास होनेपर हम पानीका गिलास पी लेते हैं, उसमें कोई अच्छाई या बुराई नहीं है, वैसे ही आवश्यकता होनेपर मनुष्य अपनी यौन-क्षुधाकी निवृत्ति कर सकता है। लेनिन इस सिद्धान्तका कट्टर विरोधी था। १९२१ में क्लारा ज़ेटकिनके साथ बात-चीत करते हुए उसने इस विषयमें अपने विचारोंको स्पष्ट रूपसे और विस्तारसे प्रकट किया था।

लेनिन द्वारा स्वच्छन्द प्रेमका विरोध

लेनिनने कहा—"मेरे विचारसे पानीके गिलासका सिद्धान्त मार्क्सवादके पूर्णतः प्रतिकूल है और साथ ही यह समाज-विरोधी भी है। यौन-जीवनमें केवल प्रकृतिका ही ध्यान नहीं रखा जाता है, बल्कि इसके साथ सांस्कृतिक विशेषताओंका भी विचार किया जाता है।...इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्यास अवश्य बुझाई जानी चाहिए। किन्तु क्या सामान्य व्यक्ति साधारण परिस्थितियोंमें गन्दे नालेमें जा लेटता है और सड़े

पोखरसे या उस गिलाससे पानी पीता है, जिसकी कोर बहुत व्यक्तियोंके ओठोंसे चिकनी हो गई है।" इसके बाद लेनिनने सामाजिक पहलूपर बल देते हुए कहा—"यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। निःसन्देह पानी पीना एक वैयक्तिक कार्य है। (किन्तु) प्रेममें दो जीवन मिलते हैं और एक नया तीसरा जीवन उत्पन्न होता है। इसीसे उसका सामाजिक महत्व है और यह समाजके प्रति (नये) कर्त्तव्य उत्पन्न करता है।

आगे चलकर लेनिनने इस बातका खण्डन किया कि स्वच्छन्द प्रेम कम्युनिस्ट-सिद्धान्त है—"एक कम्युनिस्टके रूपमें मुझे पानीके गिलासके सिद्धान्तसे रत्ती-भर सहानुभूति नहीं, यद्यपि उसे 'प्रेमकी सन्तुष्टि' का सुन्दर नाम दिया जाता है। किसी भी अवस्थामें प्रेमकी स्वतन्त्रता न तो नया विचार है और न कम्युनिस्ट-सिद्धान्त ही। आपको स्मरण होगा कि पिछली शतीके मध्यमें रोमाण्टिक साहित्यमें 'हृदयकी मुक्ति' नामसे इस सिद्धान्तका प्रचार किया गया था। बुर्जुआ लोगों के व्यवहारमें यह देहकी मुक्ति बन गई (इससे उन्हें यथेच्छ यौन-सम्बन्धकी स्वतन्त्रता मिल गई)। उस समय इसका प्रचार आजकलकी अपेक्षा अधिक बुद्धिपूर्ण था। उसके क्रियात्मक व्यवहारके सम्बन्धमें मैं कोई निर्णय नहीं कर सकता। मेरा यह अभिप्राय नहीं कि मैं अपनी आलोचनाओं द्वारा वैराग्य या तपस्यावादका प्रचार करूँ। बिल्कुल नहीं। कम्युनिज़्म वैराग्यको नहीं, किन्तु जीवनके आनन्द और शक्तिको लानेवाला है। जीवनका सन्तुष्ट प्रेम उसे लानेमें सहायक होगा। मेरी सम्मतिमें यौन-विषयोंमें वर्त्तमान व्यापक अतिरेक जीवनको प्रसन्नता और बल नहीं देता, प्रत्युत उनका अपहरण करता है। क्रान्तिके युगमें यह बुरा है और बहुत बुरा है।"

स्वच्छन्द प्रेम क्रान्ति-विरोधी है

"तरुणोंको विशेष रूपसे जीवनके आनन्द और शक्तिकी आवश्यकता है। स्वास्थ्यप्रद खेल, तैरना, दौड़ना, घूमना, प्रत्येक प्रकारका शारीरिक व्यायाम, बहुमुखी बौद्धिक कार्य, अध्ययन-पठन और अन्वेषण जहाँ तक संभव हो, (युवक-युवतियोंको) इकट्ठा मिलकर करना चाहिए। इससे तरुणवर्गको यौन-समस्याओंके सम्बन्धमें अनन्त सिद्धान्तों और विवादों एवं तथाकथित पूरी हद तक जीनेकी अपेक्षा अधिक लाभ होगा। स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन हमारा आदर्श होना चाहिए। आप युवक कामरेड क्ष को जानती हैं। वह कितना होनहार और बुद्धि-सम्पन्न है; किन्तु फिर भी मुझे भय है कि उससे कुछ अच्छाई न होगी। वह एकके बाद दूसरे प्रेम-प्रपंचमें फँसता जाता है। इससे राजनीतिक संघर्ष या क्रान्तिको कोई लाभ न होगा। मैं संघर्षमें उन स्त्रियोंकी विश्वसनीयता और दृढ़तापर भरोसा नहीं रख सकता, जो वैयक्तिक प्रणय-लीलाओंको राजनीतिके साथ मिला देती हैं। न ही मुझे उन पुरुषोंपर विश्वास है, जो हर लँहगेके पीछे भागते हैं और प्रत्येक तरुणीके पाशमें फँसते हैं। नहीं, हरगिज़ नहीं, क्रान्तिके साथ इसका मेल नहीं बैठ सकता।

"क्रान्तिकी माँग है कि शक्तियोंका केन्द्रीकरण और वृद्धि हो। वह मदन-महोत्सवोंकी परिस्थितियाँ बर्दाश्त नहीं कर सकती। यौन-जीवनमें शिथिलता बुर्जुआ-वृत्ति है, पतनका लक्षण है। प्रेममें आत्म-नियन्त्रण और आत्म-अनुशासन चाहिए, दासता नहीं।...मुझे युवकोंके भविष्यकी बड़ी चिन्ता है। यह क्रान्तिका अंग है, और यदि विजातीय द्रव्यकी जड़ोंकी तरह बुर्जुआ समाजसे आनेवाली (स्वच्छन्द प्रेमकी) हानिप्रद प्रवृत्तियाँ क्रान्ति-जगतमें प्रकट हो रही हैं, तो यह अधिक अच्छा है कि उनका जल्दी ही मुकाबला किया जाय।"*

यह बड़े दुःखकी बात है कि लेनिन इन प्रवृत्तियोंके विरुद्ध जेहाद करनेके लिए देर तक जीवित नहीं रहा; किन्तु जहाँ तक कम्युनिस्ट पार्टीका सम्बन्ध था, वह लेनिनके उपर्युक्त मतसे सहमत थी कि स्वच्छन्द कामोपभोग बुर्जुआ एवं समाज-विरोधी प्रवृत्ति है। यौन-सम्बन्धमें वैयक्तिक उच्छृंखलताके स्थानपर सामाजिक उत्तदायित्वोंको आर्थिक महत्व देना चाहिए। रियाज़नोफने लिखा था—"क्या विवाह दो टाँगके प्राणियोंके बीचमें वैयक्तिक सम्बन्ध है, समाजको उसमें हस्तक्षेपका कोई अधिकार नहीं? हमें युवा कम्युनिस्टोंको यह शिक्षा देनी चाहिए कि विवाह वैयक्तिक, किन्तु गहरा महत्व रखनेवाला सामाजिक कार्य है।" सोल्ज़ने कहा—"विवाहके दो पहलू हैं—आन्तरिक और सामाजिक। हम कामुक और असंयत जीवनके विरोधी हैं; क्योंकि इसका बच्चोंपर प्रभाव पड़ता है। हम प्रति तीसरे दिन अपनी पत्नी बदलनेवाले किसी व्यक्तिके मामलोंमें हस्तक्षेप न करते, यदि इससे उसके बच्चों और कामको हानि न पहुँचती। जब हम प्रेमकी चर्चा करते हैं, तो हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि यौन-सम्बन्ध केवल शारीरिक सम्बन्धको ही नहीं सूचित करते।"‡ सोल्ज़

---

* क्लारा ज़ेटकिन : 'रेमिनिसेन्सेज़ आफ् लेनिन', ४९-५१।

‡ 'सोवियट कम्युनिज़्म', पृ० ८४९।

कम्युनिस्ट पार्टीके प्रधान कार्यकर्त्ताओंमें से थे। १९२१ से १९३४ तक वे केन्द्रीय नियामक कमीशनके सदस्य तथा प्रधान न्यायालयके अध्यक्ष थे। उनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण और स्पष्ट शब्दोंमें सामाजिक उत्तरदायित्वका प्रतिपादन करनेवाले डा० सेमाश्को हैं। ये १९१८ से १९३० तक रूसके स्वास्थ्य-मन्त्री रहे। ये कहा करते थे—"रूसी युवको, जिससे चाहो, मिलो; लेकिन बच्चोंको न भूलो, नहीं तो कान पकड़कर अदालतमें घसीटे जाओगे।"

रूसी नेताओंका यह विश्वास था कि मनुष्यमें स्वभावतः कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं कि काम-विषयक मामलोंमें पूर्ण स्वतन्त्रता दिए जानेपर वह उसका दुरुपयोग नहीं करेगा, अपने स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए अपनेपर स्वयं विवेकपूर्ण संयम रखेगा। लेनिन यह समझता था कि मनुष्यकी स्वाभाविक सौन्दर्य-बुद्धि उसे दुराचारमें प्रवृत्त होनेसे रोकेगी। वह यह मानता था कि कोई सुसंस्कृत व्यक्ति जूठे गिलाससे पानी नहीं पीता। काम-विषयक उच्छृंखलता कम करनेका एक सराहनीय और अनुकरणीय रूसी उपाय यह भी था कि जनतामें यौन-अचेतनता पैदा की जाय। भारतमें किसी दवाईका पैकिंग लीजिए, किसी सचित्र पत्रिकाका मुखपृष्ठ देखिए, कोई तेलकी शीशी खरीदिए, सबपर स्त्रियोंके चित्र मिलेंगे। यूरोपमें अर्धनग्न और दिगम्बर युवतियोंकी मूर्त्तियाँ पग-पगपर दृष्टिगोचर होती हैं। वासनापूर्ण चित्रपटों द्वारा हमारी काम-चेतनाको सदैव जाग्रत रखनेकी चेष्टा होती है। किन्तु रूसने इस प्रकार राष्ट्रको कामुकताका पाठ पढ़ानेवाली सामग्रीपर कड़ा प्रतिबन्ध लगाया। रूसी चित्रोंको वर्षों तक देखनेवाले मारिस हिण्डस आदि रूसी पर्यटकोंका कथन है कि हालीवुड और मास्कोके चित्रोंमें आकाश-पातालका अन्तर है। पहले चित्रोंमें काम-प्रेरणा प्रधान है और दूसरेमें उसका सर्वथा अभाव है। रूसी चित्रालयोंमें कहीं भी अर्धनग्न युवतियोंकी प्रतिमाओंका प्रदर्शन नहीं होता। होटलों तथा उपाहारगृहमें वासनापूर्ण चित्र नहीं पाए जाते। कहा जाता है कि यदि किसी चित्रपटमें कोई दिग्दर्शक काम-प्रेरणाको महत्व देता है, तो दर्शक उसकी इतनी भद्द उड़ाते हैं कि दिग्दर्शक दुबारा वैसा चित्र प्रस्तुत करनेकी हिम्मत नहीं कर सकता।

रूसी नेताओंके उपर्युक्त विचारोंका यह प्रभाव हुआ कि वहाँकी कम्युनिस्ट पार्टी तथा कोमसोमोलों (युवा कम्युनिस्टों) में यौन-प्रमिश्रणा और उच्छृंखल कामोपभोग लेनिन द्वारा गिनाए गए कारणोंसे कम्युनिस्ट आचारके विपरीत समझा जाने लगा। यह इसलिए भी बुरा था कि इससे बीमारियाँ बढ़ती थीं, श्रमकी उत्पादकता कम होती थी। यह ठीक निर्णय करनेमें बाधा डालता था, बौद्धिक ज्ञानकी प्राप्ति और वैज्ञानिक अन्वेषणका विरोधी था। इससे प्रायः अनेक व्यक्तियोंको क्रूर दुर्व्यवहारका शिकार होना पड़ता था। कम्युनिस्ट पार्टीके सदस्योंके लिए वैवाहिक प्रतिबन्धोंका पालन आवश्यक समझा जाने लगा, यौन-मामलोंमें अत्यधिक अस्थिरता कम्युनिस्ट आचारशास्त्रके अनुसार अपराध माना जाने लगा। पार्टीके सदस्योंको ऐसा अपराध करनेपर न केवल डाँटा-फटकारा जाता था, किन्तु पार्टीसे पृथक् भी कर दिया जाता था।

कम्युनिस्ट पार्टीमें नैतिक उच्छृंखलताके विरुद्ध लोकमत जाग्रत करनेके बाद ट्रेड-यूनियनों द्वारा सारे देशमें ऐसा लोकमत पैदा करनेका यत्न किया गया। १९३५ में ट्रेड-यूनियनोंकी केन्द्रीय समितिमें सोल्ज़ने इन बातपर ज़ोर दिया था कि यूनियनोंको अपने सदस्योंके वैयक्तिक जीवन तथा अपने परिवारोंके साथ उनके सम्बन्धोंकी ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। केन्द्रीय समितिके मुखपत्र 'ट्रेड' के सम्पादकने कहा कि ट्रेड-यूनियनोंको अपने सदस्योंकी महत्ताका निर्णय उनके कार्यसे ही नहीं करना चाहिए; किन्तु यह भी देखना चाहिए कि घरोंमें उनका व्यवहार कैसा है।

लेनिनके पदचिह्नोंपर चलते हुए क्रान्तिके दूसरे दशकमें रूसने उपर्युक्त उपायों द्वारा कामोपभोगकी स्वच्छन्दतापर लोकमतका अंकुश पर्याप्त समझा, किसी प्रकारका क़ानूनी प्रतिबन्ध लगानेकी आवश्यकता नहीं अनुभव की। विवाहका क़ानून पूर्ववत् शिथिल रहा। इन दिनों तलाक़ पाना बहुत आसान था। रूसी नेताओंका विश्वास था कि मनुष्यकी सहजबुद्धि, सामाजिक उत्तरदायित्वकी भावना और प्रबल लोकमतका बाँध नैतिक उच्छृंखलताकी बाढ़को रोकनेमें समर्थ होगा। किन्तु बादमें उन्हें प्रतीत हुआ कि उस उद्दाम और वेगवती धाराके लिए यह बालूका ही बाँध है। अतएव उन्होंने विवाह-क़ानूनको कठोर बनाना शुरू किया। नई सांस्कृतिक दृष्टिसे उन्होंने विवाहकी पुनः प्रतिष्ठाके लिए जो-कुछ किया, उनकी चर्चा अगले अंकमें की जायगी।

अध्यापक पाल पेलिओ

डा० महादेव साहा

अध्यापक पाल पेलिओके नाम और कामसे हम भारतीयोंका परिचय नहींके बराबर ही है। इसका कारण यह है कि जिस विषयके अनुसन्धान, अध्ययन, आलोचनके पीछे उन्होंने अपने जीवनको उत्सर्ग किया था, उसका सम्बन्ध भारतसे नहीं, चीन, हिन्दचीन, मध्य-एशिया वगैरहकी प्राचीन भाषाओं और जातियोंके इतिहाससे है। मध्य-युगमें भारतीय बौद्धोंमें उद्भट चीनी विद्वान हो गए हैं। चीनी साहित्यको उनकी महान देन इतिहासकी वस्तु है। सत्तर-अस्सीकी परिणत उम्रके कितने ही भारतीय विद्वान हिमालयकी १४-१६-१८ हज़ार फीट ऊँची दुर्गम घाटियोंको पारकर चीन गए। वहाँ उन्होंने दर्शन, साहित्य, न्याय आदिकी सैकड़ों संस्कृत, पालि आदि पुस्तकोंका चीनी भाषामें अनुवाद और सम्पादन किया। इसमें अधिकांश बौद्ध साहित्य था। इनमें कितनी ही ऐसी पुस्तकें हैं, जिनका मूल लुप्त हो चुका है। आज चीनी भाषासे ही उनका पुनरुद्धार सम्भव है। एक अधिकारी विद्वानने वर्षोंके अथक परिश्रमसे उस साहित्यका इतिहास लिखा है; लेकिन उसकी कृतिका जितना समादर और प्रचार होना चाहिए था, उसका एक अंश भी नहीं हुआ।

आधुनिक कालमें चीनी भाषाके कई भारतीय विद्वान हुए हैं, जिनमें स्वर्गीय काशीप्रसाद जायसवाल, श्री विधुशेखर भट्टाचार्य और श्री प्रबोधचन्द्र बागचीके नाम बड़े आदरके साथ लिए जाने चाहिएँ। लेकिन चीनीमें भारतीय साहित्यको लेकर जितना काम हुआ है, उसका एक नगण्य अंश भी भारतीय भाषाओंमें चीनी साहित्यको लेकर नहीं हुआ। दुःखदायी होनेपर भी यह कठोर सत्य है। 'भ्रातरो मानवे सर्वा, स्वदेशो भुवनः त्रयम्'के आदर्शकी रट लगानेपर भी हमारी मानसिक सीमा बहुत ही संकुचित है; क्योंकि उपर्युक्त प्रकारके साहित्य-निर्माणके लिए जिन भाषा-ज्ञान और पाण्डित्यकी ज़रूरत है, वे हमारे मुल्कमें अभी मौजूद नहीं हैं। जिस वर्गकी आर्थिक सहायतासे यह काम हो सकता था, उसे 'भारतीय विद्या-भवनों', 'स्मृति-मन्दिरों', 'फिलासोफिकल इन्स्टीट्यूटों'से अभी बाहर सोचनेकी क्षमता तथा दृष्टि ही नहीं।

आज पाश्चात्य भाषा तथा साहित्यके विद्वानोंसे यह बात छिपी नहीं है कि शुरू-शुरूमें यूरोप तथा विभिन्न पाश्चात्य देशोंमें इनका अध्ययन और प्रचार 'स्वान्तः सुखाय'की दृष्टिसे ही नहीं हुआ था, बल्कि इसके पीछे शासन-कार्यकी सुविधाकी भावना ही प्रधान थी। उदाहरणके लिए हिन्दुस्तानको ही लीजिए। सर विलियम जोन्स, कोलब्रुक, विल्सन, मनिअर विलियम्स आदिने इसी उद्देश्यसे भारतीय साहित्यके बारेमें अपना काम शुरू किया था१। ज़ारशाही-कालीन रूसने मध्य-एशिया तथा चीनके बारेमें इसी उद्देश्यसे काम शुरू किया था२। हेस्टिंग्ज़की प्रेरणासे भगवद्गीताके प्रथम अनुवादक विल्सनके सुयोग्य शिष्य तथा प्रथम संस्कृतज्ञ जर्मन साहित्यिक श्लेगल और आगे चलकर बैरन बुनसेन तथा मैक्समूलर रोमांटिक आन्दोलनसे प्रभावित होकर ही इस क्षेत्रमें उतरे३। उपर्युक्त कारणके अतिरिक्त फ्रांसीसियोंके प्राच्य विद्याओंके अध्ययनकी ओर आकर्षित होनेके कारणोंमें एक बड़ा कारण यह था कि फ्रांसीसी क्रान्तिने प्राचीन कूपमंडूक सामन्ती व्यवस्थाको खत्म करके एक नई व्यवस्था—बुर्जुआ जनतान्त्रिक व्यवस्था—क़ायम की। ज्ञान-विज्ञानके क्षेत्रमें इस क्रान्तिकी देन विश्वव्यापी है। इस क्रान्तिके पहले ही रूसो, वाल्तेयर, दिदेरो आदिने मानसिक जगत्में क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी। शासन-व्यवस्थाको नए सिरेसे क़ायम करनेके लिए जिस क्रान्तिकी ज़रूरत पड़ती है, वह पहले मानसिक जगत्में ही पैदा होती है। फ्रांसीसी पंडितोंने अठारहवीं सदीके मध्य भागमें ही प्राच्य देशोंकी भाषा, साहित्य, इतिहास आदिका अध्ययन शुरू किया। फ्रांसीसी पंडित आंकतिल् दुपेरोंने ईरानी धर्मशास्त्र 'आवेस्ता'को यूरोपीय पंडित-मण्डलीके सामने उपस्थित किया और उसकी समालोचनाका मूल सूत्र भी उन्हें बतला

---

1. W. Jones : Collected Works ; Mirsky : The Intelligentia in Great Britain ; A. Chatterjee and Aubery : British contribution to Indian Studies, etc.
२. महादेव साहा : 'विश्ववाणी' (१९४५)।
3. Huxley, Haddon and Carr-Saunders : We Europeans.

दिया । द गिंगने प्राचीन चीनी शास्त्रोंका अनुवाद करके चीन और मध्य-एशियाके प्राचीन इतिहासका खाका तैयार किया । शँपोलिओंने मिस्रकी चित्रलिपिका पाठोद्धार करके प्राचीन जगत्के इतिहासको उद्‌भासित किया ।

पाल पेलिओका कार्य

पाल पेलिओका जन्म २८ मई, १८७८ में पेरिसमें हुआ। विश्वविद्यालयकी पढ़ाई समाप्त करनेके बाद औपनिवेशिक नौकरीके क्षेत्रमें प्रवेश करनेके लिए उन्होंने औपनिवेशिक विद्यालयमें संस्कृत और चीनीका अध्ययन किया । १८९९ में वे हिन्दचीनके पुरातत्त्व-विभागमें नौकर होकर चले गए। १९००-२ के बीच उन्होंने चीनकी यात्राएँ कीं । बक्सर-विद्रोहके समय जब चीनका फ्रांसीसी दूतावास घिर गया था, तो पेलिओके भाषा-ज्ञानके कारण ही दूतावासके लोगोंकी जान बची । इन्हीं यात्राओंमें उन्होंने 'विद्यालय' के लिए महान चीनी पुस्तकालयकी नींव डालनेके लिए काफी चीनी पुस्तकें इकट्ठी कीं । १९०१ में औपनिवेशिक नौकरी छोड़कर वे प्राच्य विद्यापीठमें चीनीके अध्यापक बने और अगले पाँच साल अध्ययन और अध्यापनमें बिताए। इसी कालमें उन्होंने चीनीके अलावा जापानी, मंगोल, तुर्की, तिब्बती आदि भाषाओं तथा साहित्यका गम्भीर अध्ययन किया । इस समयके लिखे उनके ग्रन्थ तथा निबन्ध उनके बहुमुखी पाण्डित्यके परिचायक हैं ।

उन्नीसवीं सदीके अन्तिम भागमें यूरोपमें खबरें आने लगीं कि मध्य-एशियाके कितने ही स्थानोंमें प्राचीन सभ्यता और साहित्यके चिह्न मिल रहे हैं । पर्वत-गुहाओं तथा तकला मकानकी मरुभूमिमें कितने ही बौद्ध मठ, साहित्य आदि छिपे पड़े हैं । रूसी, स्वीडिश, हुंगेरीय, जर्मन तथा अंगरेज़ पंडित अपने देशवासियों या सरकारकी मददसे कुछ ही वर्षोंमें विभिन्न प्रकारकी बहुमूल्य सामग्री लेकर लौटे । पेलिओ भी मध्य-एशियाके पुरातत्त्वकी ओर आकर्षित हुए । उनके विशेष प्रयत्नसे फ्रांसीसी सरकार तथा गण्यमान्य व्यक्तियोंका ध्यान इधर गया । १९०६ में पेरिसमें फ्रांसीसी एशियाई समिति बनी । इस समिति तथा हिन्दचीनकी सरकारकी सहायतासे उनका मध्य-एशिया-अभियान सम्भव हुआ ।

१५ जून, १९०६ को पेलिओ पेरिससे मास्कोके लिए रवाना हुए । वहाँसे वे ताशकन्द पहुँचे । तुर्की आचार-व्यवहारसे पूरी तरह परिचित तथा जलवायुके अभ्यस्त होनेके लिए उन्होंने अपने साथियोंके साथ वहाँ एक महीना बिताया। वहाँसे वे घोड़ोंकी पीठपर सामान लादकर रूसी तुर्किस्तानसे चीनी तुर्किस्तानके कासगर शहरकी ओर रवाना हुए और क़रीब तीन महीनेकी यात्राके बाद कासगर पहुँचे । यहाँसे दक्खिनकी ओर जाना उन्होंने बेकार समझा ; क्योंकि उधर खोटान आदिमें मध्य-एशियाके सम्बन्धमें सबसे बड़े अधिकारी विद्वान और अन्वेषक आरेल स्टाइन काम कर रहे थे (१९०१-३, १९०३-७ १९१३-१६) । पेलिओने उत्तरकी ओर जाना ही तय किया । कासगरके आसपास एक महीने तक खोज करके उन्होंने बहुत-सी सामग्री इकट्ठी की । अब उन्होंने कुचाकी ओर जाना चाहा । वहाँ वे काफी प्राचीन सामग्री पानेकी आशा करते थे । कासगर और कुचाके बीचवाले मारालवाशिके निकट तुमशुक गाँवमें बहुत-से प्राचीन ध्वस्त स्तूप थे। पेलिओके पूर्ववर्त्ती अनुसन्धानकर्त्ताओंने उन्हें मुस्लिम-युगका समझकर छोड़ दिया था । पेलिओने उन्हें खोदकर जो सामग्री प्राप्त की, वह ईसाकी पहली और दूसरी सदीकी थी। यह कलाके निदर्शनकी हिन्दू-यूनानी अंकन-पद्धति थी । यहाँकी खुदाई खत्म करके पेलिओ कुचाकी ओर रवाना हुए और २ जनवरी, १९०७ को वहाँ पहुँचे । वहाँ उन्होंने आठ महीने बिताए। प्राचीन कालमें कुचा एक समृद्धिशाली राज्यकी राजधानी थी, इसीलिए इसके आसपास प्राचीन क़िले, बौद्ध मन्दिर, स्तूप वगैरहके ध्वंशावशेष मौजूद थे । इनमें सबसे प्राचीन और दर्शनीय था मिंग-उइ । इन तुर्की शब्दोंका अर्थ है 'हज़ार मन्दिर' । कुचाके उत्तर थियेन-शान पहाड़के किनारे पत्थर काटकर एक ही साथ एक हज़ार बौद्ध गुहा-मन्दिर बनाए गए थे । इन मन्दिरोंके प्राचीन चित्र, मूर्त्ति आदि कलाके नमूने तथा प्राचीन पुस्तकोंके खण्डितांशको जमा करने और आगेके रास्तेके बारेमें जानकारी हासिल करनेमें पेलिओको काफी समय लगा ।

पेलिओ सितम्बर, १९०७ में कुचासे प्रस्थानकर अक्टूबरमें उरुमची पहुँचे । उरुमची चीनी तुर्किस्तानकी राजधानी और व्यापारकी बड़ी मंडी है । यहाँ ऊँट आदिका इन्तजाम करनेमें उन्हें दो-तीन महीने लग गए । यहाँसे दिसम्बरमें रवाना होकर फरवरीमें वे तुन-होयांग पहुँचे । यह स्थान मध्य-एशियाके कितने ही रास्तोंका सन्धिस्थल है। प्राचीन कालमें तुन-होयांग बहुत ही समृद्धिशाली और महत्त्वपूर्ण स्थान था । ईसाकी ५वीं-६ठी सदीमें पहाड़ काटकर यहाँ हज़ार बौद्ध मन्दिर बनाए गए थे । ईसाकी

११वीं सदीमें अरबी हमलोंके पूर्व ये मन्दिर परित्यक्त हुए थे। पोथियों आदिको हमलावरोंसे बचानेके लिए एक तहखानेमें रखकर उसका मुँह बन्द कर दिया गया था। पेलिओने वहाँ पहुँचकर इसका पता लगाया और उसमें रखी पोथियों आदिकी जाँच आरम्भ की। उन्होंने लगभग तीन महीनोंमें १५,००० पोथियाँ देखीं। ये सभी ग्यारहवीं सदीके पहलेकी हैं और संस्कृत, तिब्बती, तुर्की, चीनी आदि भाषाओंमें लिखी हुई हैं। इनमें से अधिकांश बौद्ध साहित्य, मध्य-एशिया तथा चीनके इतिहास, भौगोलिक विवरण, चीनके कनफ्यूसियस तथा ताओके धर्मशास्त्रपर लिखी हुई हैं। उनके इस आविष्कार से पूर्व और पश्चिममें एक सनसनी-सी फैल गई। इन पोथियों और गुहाओंके भास्कर्य, तस्वीरें आदि जमा करके पेलिओ मई, १९०८ में तुन-होयांगसे चलकर अक्टूबरमें पेकिंग पहुँचे।

पेलिओने इस यात्रामें करीब ढाई साल मध्य-एशियामें व्यतीत किए। ताशकन्दसे पेकिंग तक दो हज़ार मीलकी यात्रा उन्हें घोड़ेपर करनी पड़ी। इस रास्तेकी तकलीफों और कठिनाइयोंकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। रास्ता कतई सुगम नहीं है। यहाँ लोग वर्षाका नाम तक नहीं जानते हैं। यहा जाड़ेमें तापमान ३५ डिग्री हो जाता है। फिर गर्मीका क्या कहना! ताकलमकानके मरु-समुद्रका मन्थन करके पेलिओने पुस्तकें, चित्रपट तथा मध्य-एशियाई प्राचीन सभ्यताके जो निदर्शन पेरिसके राष्ट्रीय पुस्तकागरमें इकट्ठा कर दिया, उसकी तुलना दूसरी जगह नहीं मिलती। उन्होंने 'बिबलियोथिक नेशनेल' के लिए ३० हज़ार छपी चीनी पुस्तकें और ४५ हज़ार चीनी, तिब्बती, पूर्वी ईरानी, सुग्द, यूगुर और तुखवारी पाण्डुलिपियाँ कुचा और 'हज़ार मन्दिर' में इकट्ठी कीं। हज़ार मन्दिरकी खोजके बाद १९२१ में वे Academie des Inscriptions et Belles Letters के सदस्य बनाए गए और १९३६ में Societe Asiatique के सभापति। पेलिओकी रचनाएँ पुस्तकाकारमें नहींके बराबर हैं। वे बीसियों पत्रिकाओंमें बिखरी पड़ी हैं, जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं—Bulletin de L'Ecole Francaise d'Extreme Orient; Journal Asiatique; Toung-Pao. इनमें आलोचनाएँ और ग्रन्थ-सूचियोंका परिमाण काफी है। पेलिओ चीनी ग्रन्थोंका सम्यक ज्ञान प्राप्त करनेवाले पहले यूरोपीय विद्वान थे। चीनी तथा उससे सम्बन्धित विद्याओंका ऐसा कोई विभाग नहीं है, जिसे पेलिओके कार्यसे लाभ न पहुँचा हो।

पेलिओकी विद्वत्ताका प्रकाश

मध्य-एशियासे लौटते ही पेलिओका चारों ओर सम्मान होने लगा। १९११ में कालेज द' फ्रांसमें उनके लिए मध्य-एशियाकी भाषाएँ, इतिहास तथा पुरातत्त्वके बारेमें एक नए अध्यापक-पदकी सृष्टि की गई। फ्रांसीसी प्राच्य विद्या-विशारदोंमें उनका स्थान सुप्रतिष्ठित हो गया। सहकर्मियोंके साथ उन्होंने अपनी लाई हुई विशाल सामग्रीका अध्ययन शुरू किया। पेलिओने अनेक निवन्ध लिखे हैं। अपने निबन्धोंमें उन्होंने भाषातत्त्व, चीनी साहित्य, धर्म और दर्शनका इतिहास, हिन्द-चीनका प्राचीन इतिहास, मध्य-एशियाई सभ्यता और धर्मका इतिहास, प्राच्य देशोंकी प्राचीन कला आदिपर काफी प्रकाश डाला है।

भाषातत्त्वके बारेमें उनकी देन बहुमुखी है। अपने बहुत से निबन्धोंमें उन्होंने चीनी भाषाके प्राचीन रूपका उद्धार करनेकी कोशिश की है। पिछले डेढ़ हज़ार वर्षोंमें चीनी भाषाका स्वरूप परिवर्त्तित हुआ है। इसीलिए चीनी अक्षरोंके वर्त्तमान उच्चरणोंको लेनेसे प्राचीन चीनी इतिहासमें देशी-विदेशी जिन नामोंका उल्लेख आता है, वे समझमें नहीं आते। इसीसे पेलिओको चीनी अक्षरोंके प्राचीन उच्चारणके उद्धारकी ओर ध्यान देना पड़ा। उनके निबन्धोंसे लोगोंको पहले-पहल यह मालूम हुआ कि आजकल जिस चीनी अक्षरका उच्चारण 'फो' है, डेढ़ हज़ार वर्ष पहले उसका उच्चारण था 'बुत्' या 'बुद्' और इसीलिए वह अक्षर 'बुद्ध' शब्दको रूपान्तरित करनेके काममें प्रयुक्त हुआ था। इस प्रणालीसे पेलिओने कितने ही अक्षरोंके प्राचीन उच्चारणका पता लगाया। इसके साथ ही चीनी भाषामें रूपान्तरित वैदेशिक शब्दोंका भी पता चल गया, जैसे—शो-लि-इउ (प्राचीन शिल्प); लियेइ-इयूत (शारिबुत, संस्कृत शारिपुत्र); पान-चान् (प्राचीन पन्-चम्, संस्कृत पंचम); तियेन-ना-उ (प्राचीन दन-ना-यूब, पहलवी देनावर) इत्यादि। पेलिओके दिखाए रास्तेपर काम करके मासपेरो और कार्लग्रेनने चीनी भाषाके प्राचीन स्वरूपका जो अनुसन्धान शुरू किया, उसके फलस्वरूप आजसे डेढ़ हज़ार वर्ष पहलेकी चीनी भाषाके सम्पूर्ण स्वरूपका पता चल गया।

प्राचीन चीनी भाषाका स्वरूप जान लेनेके कारण ही पेलिओ मध्य-एशियाकी अनेक भाषाओंके प्राचीन इतिहासका

विस्तृत विवेचन कर सके, जो पहले सम्भव नहीं हो सका था। उन्होंने ईसाकी १३वीं-१४वीं सदीकी मंगोल तथा तुर्की भाषाओंके स्वरूपका विवेचन करते हुए जो महत्त्वपूर्ण निबन्ध लिखा था। उसमें उन्होंने यह भलीभाँति सिद्ध कर दिया था कि वर्त्तमान मंगोल भाषाके 'आरबन', 'अरन', 'उकर' आदि शब्दोंका प्राचीन कालमें 'हरबन', 'हरन,' 'हुकर' की तरह उच्चारण होता था। प्राचीन उच्चारणके उद्धारसे पेलिओने यह भी सिद्ध कर दिया कि प्राचीन तुर्की, तुंगुज, मंगोल आदि भाषाएँ एक ही भाषा-गोष्ठीसे निकली हैं।

मध्य-एशियासे लाई हुई कुचीय भाषाकी पुस्तकोंका पाठोद्धार अध्यापक सिलवाँ लेवीने (Etude des documents tokhiens de la mission pelliot) और सुगदीय भाषाकी पुस्तकोंका पाठोद्धार गोथिओ (De la Alphabet Sogdien) ने किया। पहले महायुद्धमें गोथिओ की मृत्युके बाद पेलिओको ही उनका काम समाप्त करना पड़ा। इसके अलावा तुर्की, यूगुर, तिब्बती और पूर्वी ईरानी आदि भाषाओंमें लिखी पोथियोंका पाठोद्धार और विवेचन पेलिओने किया। इसीसे परवर्त्ती विद्वानोंको कितनी ही अज्ञात बातोंका पता चला।

मध्य-एशियाके प्राचीन इतिहासके बारेमें पेलिओके निबन्धोंमें विशाल सामग्री जमा की गई है। 'La vie religieuse en Asie Centrale' और 'Un traité Manichéen retrouvé en Chine, (1911-13).' इन दोनों निबन्धोंमें उन्होंने मध्य-एसियामें बौद्ध और मानी धर्मके विस्तारका विवेचन किया। उनके पहले निबन्धसे पता चलता है कि प्राचीन सुग्दीय जातिने मध्य-एशियाके नाना स्थानोंमें अपने उपनिवेश स्थापित किए थे और विभिन्न स्थानोंमें बौद्ध धर्मका प्रचार भी किया था। मध्य-एशियाकी विभिन्न जातियोंके धर्म-कर्ममें इस जातिका प्रभाव बहुत दिनों तक वर्त्तमान था। दूसरा निबन्ध पेलिओके चीनी भाषाके गुरु शावानकी सहायतासे लिखा गया। 'मानी' धर्म बहुत पहले लुप्त हो चुका है। इस धर्मका लिखित विवरण चीनी साहित्य तथा यूनानी पादरियोंकी पुस्तकोंमें मिलता है। चीनी साहित्यमें मध्य-एशिया तथा सुदूर-पूर्वमें ईसाइयोंके आविर्भावको लेकर उन्होंने 'Chretiens d' Asie Centrale et d' Extreme-orient, 1914', लिखा। बुद्धके समकालीन मानवतावादी महान चीनी दार्शनिक मोती (Mo-ti or Motze) पर उन्होंने एक निबन्ध लिखा--'Meou-tseu, 1120'. उन्होंने मंगोलपर 'Les Mongols et la papante, 1922-31' और १५वीं शताब्दीमें चीनियोंकी सामुद्रिक यात्राओंपर 'Les grandes Voyages marines Chinois au debut du xve Siecle, 1933-66' लिखी। चीन-फ्रांसके राजनीतिक सम्बन्धोंकी उत्पत्तिपर 'Origine des relationes politiques de la France avec la China, 1930' लिखी। पेलिओकी 'मंगोल सीक्रेट हिस्ट्री' आज भी अप्रकाशित है। प्रकाशित होनेके बाद वह हालवथकी उन्नीसवीं सदीमें लिखी 'हिस्ट्री आफ मंगोल्स' (५ भाग) के बाद अनूठी चीज़ होगी। इसके अलावा उन्होंने मध्य-युगके इतालवी यात्री मार्कोपोलोके ग्रन्थ 'डेस्क्रिशन आफ़ दि वर्ल्ड'का सम्पादन किया तथा उनके ग्रन्थमें आनेवाले पूर्वी नामों तथा शब्दोंपर टिप्पणियाँ भी लिखीं, जो विलायतमें अध्यापक माउलके सम्पादकत्वमें प्रकाशित होनेवाली ग्रन्थमालामें प्रकाशित हुई हैं।

प्राचीन चीनी साहित्यका विवेचन करते हुए पेलिओने चीन-भारत-सम्बन्ध-इतिहासका अनुसन्धान किया। इस विषयमें उन्होंने तीन निबन्ध लिखे—Le Fou-nan 1903; Mémoires Sur les coutumes de Combodge और Deux itinéraires de Chine en Inde à la fin du VIIIe Siecle, 1904. इनमें उन्होंने प्राचीन चीनी साहित्यसे जो विशाल सामग्री एकत्रित की, उसमें हमें आसाम, बर्मा, शान-राज्य, दक्षिण-चीन, स्याम, कम्बोज, चम्पा, यवद्वीप तथा इस अंचलके अन्याय द्वीपोंका प्राचीन इतिहास, प्राचीन रास्तोंका विवरण, भारतवर्ष तथा चीनका इन देशोंसे सम्बन्ध और इन देशोंमें प्राचीन भारतीय उपनिवेशोंका धारावाहिक इतिहास मिलता है।

कलाके इतिहासमें भी पेलिओकी देन महान है। मध्य-एशियाके विभिन्न स्थानोंसे प्राचीनकालके भास्कर्य तथा चित्रोंका जो उपादान उन्होंने जमा किया। ईसाकी पहली सदीसे नवीं तक जो भारतीय कलाकार चीन गए, उनकी कृतियोंके इतिहासकी सामग्री पेलिओके 'Artistes des six dynasties et des T'ang' में मिलती है। फ्रांसीसी विद्वान हाकिन द्वारा सम्पादित 'Studies in Chinese Art and some Indian Influences' में पेलिओने इसी विषयपर एक निबन्ध लिखा है।

साहित्य और संघर्ष

लगभग दस-बारह वर्ष पूर्वकी बात है। 'विशाल भारत'की एक पुरानी फाइलमें सम्पादकाचार्य रुद्रदत्तजीके सम्बन्धमें एक लेख पढ़ा था। अपने अन्तिम कालमें हिन्दीके इस महान् प्रवर्तकको दोनों जून पेट भरनेके लिए सूखा आटा भी कितनी कठिनाईसे जुट पाया था। इसका कारुणिक वर्णन उस लेखमें पढ़ते-पढ़ते मेरी आँखें भीग गई थीं। मैंने उस दिन सोचा था कि हिन्दी-भाषा-भाषी जनगणमें ज्यों-ज्यों चेतना बढ़ती जायगी, त्यों-त्यों ऐसी दुर्घटनाओंका होना भी असम्भव होता जायगा। गम्भीर व्यथाके उन क्षणोंमें इस कल्पनाने मेरे मनको पर्याप्त समाधान दिया था।

किन्तु सन् ४५-४६ में मेरी उस कल्पनाको एक भयंकर आघात लगा। कहीं पढ़ा कि ग्वालियरमें श्री विनोदशंकर पाठक नामक हिन्दीके उदीयमान साहित्यकार रुग्णावस्थामें पर्याप्त औषधोपचार न मिलनेके कारण एक-एक बूँद दूधके लिए तरसते हुए कालके ग्रास बन गए! सन् ४५-४६ में हिन्दी-भाषा-भाषी जनगणमें चेतना नहीं थी, ऐसा मैं किसी प्रकार भी अपने मनको न मनवा सका। फिर भी उस अत्यधिक वेदनाशील घटनाको अपने मनसे पोंछ डालनेके लिए कोई-न-कोई समाधान तो खोजना ही था। और तब मैंने सोचा कि जब अपना देश स्वतन्त्र हो जायगा और हमारे हिन्दी-आन्दोलनके नेताओंको स्वाधीनता-संग्रामसे अवकाश मिलेगा, तब हम देखेंगे कि इस प्रकारकी दुर्घटनाएँ कैसे होती हैं।

किन्तु ये दोनों समाधान निरावलम्ब और मूर्खतापूर्ण थे, 'शील'जीकी आत्महत्याकी दुर्घटना मानो यही जतलानेके लिए हुई है। आज हिन्दी-भाषा-भाषी जनगणको चेतना उन्माद की सीमा तक आ पहुँची है। हिन्दीके विरोधका तो प्रश्न ही नहीं, हिन्दीकी नितान्त शुभचिन्तनासे प्रेरित होकर भी यदि कोई व्यक्ति हिन्दीकी किसी त्रुटिकी ओर संकेत करना चाहे, तो पहले उसे अपने सिरकी हिफ़ाजतका ध्यान आता है। देश भी आज स्वतन्त्र हो चुका है और हिन्दी-आन्दोलनके नेता उच्च-से-उच्च सरकारी पदोंपर भी आसीन हैं। फिर भी 'शील'जी-जैसे प्रतिभा-सम्पन्न कविको कहींसे जीवित रहने-भरके लिए सहारा न मिल सका। आर्थिक कष्टोंसे मुक्ति पानेके लिए उनको आत्महत्याका ही आश्रय लेना पड़ा। 'शील'जीने जिस दिन आत्महत्या की, संभवतः उस दिन सैकड़ों कालम हिन्दीकी स्तुतिमें रँगे गए होंगे, देश-भरमें सौ-पचास उत्सव भी हिन्दीके नामपर हो रहे होंगे, जिनके पंडालोंकी सजावटपर ही सहस्रों रुपए व्यय हो रहे होंगे, दस-बीस प्रेस-कान्फ्रेन्सोंमें हिन्दीकी महत्तापर हमारे पूजनीय नेता वक्तव्य भी दे रहे होंगे। पर इनमें से कहीं भी किसी भी प्रकार इस समस्याकी चर्चा नहीं होगी, जिसका परिणाम इस प्रकारकी दुर्घटनाएँ होती हैं।

यह स्थिति हमें चेतावनी देती है कि इन सजी-धजी नाम पाई हुई दुकानोंके भरोसे न रहकर हिन्दीके श्रमजीवी साहित्यकारको आज पहली बात तो यह ध्यानमें रखनी है कि देशके अन्य श्रमजीवी वर्गोंसे साहित्यकारकी समस्या अलग नहीं है--अर्थात् जब तक देशसे पूँजीवादका जड़से उन्मूलन नहीं हो जाता और देशके अन्य श्रमजीवियोंका शोषण समाप्त नहीं होता, तब तक श्रमजीवी साहित्यकार भी आर्थिक संकटोंमें घिरा ही रहेगा। कुछ नामधारी संस्थाएँ और छोटे-मोटे सगठन हमारी कठिनाइयोंको सामूहिक रूपसे कभी भी हल नहीं कर सकेंगे। हमें तो उसी दिन मुक्ति मिलेगी, जिस दिन समग्र श्रमजीवी वर्ग स्वतन्त्रताके वातावरणमें सुख और सन्तोषकी साँस लेगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस पूँजीवादका उन्मूल हो कैसे? और इस उन्मूलनके संघर्षमें क्या साहित्यकारको स्वयं भी भाग लेनेकी आवश्यकता है? इसका उत्तर यही है कि पूँजीवादका उन्मूलन ज़बरदस्त संघर्षके बिना कदापि नहीं होगा। यह संघर्ष हमारे देशमें प्रारम्भ हो चुका है; किन्तु साहित्यिक समाजने अभी तक इसमें क्रियात्मक भाग नहीं लिया है। तो इस प्रकार दूरसे हाथ सेंकते रहनेसे हमारी मुक्तिका दिन निकट नहीं आयगा। हालमें ही भिक्षु आनन्दजीने अपने एक लेखमें लिखा था कि आजके युगमें वह साहित्य

साहित्य नहीं है, जो किसीके लिए ढाल-तलवार न बन सके। तो हमें निश्चय कर लेना है कि हमारी लेखनी किसकी ढाल-तलवार बनेगी—मज़दूरकी या पूँजीपतिकी, शोषितकी या शोषककी ? यह भी निश्चित है कि हम सबसे अलग रहकर शोषणकी इस दीवारसे यदि सिर टकराएँगे, तो केवल अपना सिर ही फोड़ लेंगे, पर उस दीवारपर एक निशान तक नहीं बना सकेंगे। इसके लिए तो हमको किसी-न-किसी प्रगतिशील शोषण-विरोधी राजनीतिक संगठनमें ही शामिल होना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त आज कोई चारा नहीं है। यदि स्व० 'शील' जीने अपनी आर्थिक कठिनाइयोंका मूल कारण पहचाना होता और अपनेको किसी श्रमिक आन्दोलनमें डाल दिया होता, तो उनकी आत्माहुति इतनी करुण और इतनी दयनीय न होकर एक गौरवशील बलिदानके रूपमें आज शत-शत व्यक्तियोंके लिए प्रेरणाशील स्मृति बन गई होती। आज स्थिति लगभग वही है, जो सन् ४२-'४३ के बंगालके अकाल-पीड़ितोंकी थी। कहा जाता है कि लगभग ३५ लाख मनुष्य इस अकालमें एड़ियाँ रगड़-रगड़कर मर गए। हमारे देशके किसी भी भागमें कभी भी उस भयानक घटनाकी पुनरावृत्ति हो सकती है। किन्तु यदि ३५ लाख मनुष्योंकी वह विशाल मानववाहिनी चुपचाप निरीह भावसे मर जानेकी अपेक्षा विद्रोहिणी बनी होती, तो देशमें उस प्रकारकी घटनाएँ हो जाना लगभग असम्भव हो जाता।

एक और बात बार-बार सामने आती है। वह यह कि श्रमजीवी साहित्यकारोंमें पारस्परिक सहयोग नहीं है। उनमें अपने किसी बन्धुके प्रति कुछ भी त्याग करनेकी या अपनी रोटीमें से उसे थोड़ा-सा भी भाग देनेकी भावना नहीं है। बात सही है और लज्जास्पद भी है। किन्तु यह भावना भी तभी आ सकती है, जब हम यह अनुभव करें कि हमारे सम्मुख कोई विशेष लक्ष्य या उद्देश्य है, जिसकी प्राप्तिके लिए हम सब साथ-साथ आगे बढ़ रहे हैं। श्रमजीवी साहित्यकारोंके एक छोटे-से समूहमें यदि आज यह भावना दिखाई भी देती है, तो उसका कारण यही है कि उन सबके सम्मुख एक विशेष मिशन है। किसी एक सिद्धान्त या ध्येयके लिए कष्ट सहन करनेवाले या संघर्ष करनेवाले इस प्रकारकी भावनासे अछूते रह ही नहीं सकते। जब तक हमारे सम्मुख इस प्रकारका कोई ध्येय नहीं होगा, तब तक किसी व्यक्ति-विशेषमें हम थोड़ी-सी उदारता या परोपकारी मनोवृत्तिके दर्शन भले ही कर लें; किन्तु समूह-भरमें यह मनोवृत्ति कभी उत्पन्न नहीं हो सकेगी। इसके विपरीत उनमें परस्पर प्रतिस्पर्धा और स्वयं कीमती सिगरेट पी सकनेके लिए दूसरेके पेटकी रोटी भी छीन लेनेकी ही मनोवृत्ति उत्पन्न होती रहेगी। तो स्व० 'शील'जीकी आत्महत्या हमारे सन्मुख एक प्रश्न-चिह्नके रूपमें उपस्थित है, जिसका उत्तर हमें खोजना ही है। और यदि 'शील'जीकी ही भाँति हमें अपना अन्त नहीं करना है, तो उस उत्तरपर अमल भी करना है। स्व० 'शील'जी चले गए। उन्होंने अपनी यात्रा एक साथ समाप्त कर डाली, और मुझे लगता है कि आज हममें से अनेक बरबस उनके ही पथका धीरे-धीरे अनुसरण कर रहे हैं!—रतनलाल बन्सल, फीरोज़ाबाद।

निराला भी मरेगा!

मरते सब हैं; पर यदि एककी भी मृत्यु हमें दर्द दे गई, तो उसकी मृत्यु धरतीके श्यामल आँचलपर एक प्रश्न बनकर रह जाती है, जिसका समाधान युग-युगकी गत-आगत पीढ़ियोंको करना ही होगा। हमारे देशमें सदियों पूर्व गौतमकी मृत्यु हुई थी। तीर्थंकर महावीरने शरीर छोड़ा था। यहाँ तक कि राम और कृष्णने भी मृत्युका साक्षात्कार किया था। पर क्या वास्तवमें वे मर गए? और कल गांधी? परसों मार्क्स? हाड़-मांसकी ये प्रतिमाएँ मिटकर भी विश्वमें अपना सौरभ-संगीत उँड़ेलती हैं। धरती नभसे कहीं दूर है और स्वर्गसे समीप। प्रश्नकी भयावह रेखा तो वहाँ खड़ी है, जहाँ जीवनने रोया है, मृत्युने रुलाया है! जीवनकी लम्बी दौड़में जहाँ किसीने अपना परिचय न दिया, किन्तु चितापर धू-धू लहरती लकड़ियोंको वेदका मन्त्र मिला। जहाँ जीवनने सदैव उपेक्षा पाई, मरणने स्नेहका सत्कार किया। एडमण्ड स्पेंसरने सारी जिन्दगीमें उपेक्षाके स्वर सुने, घृणाकी ताल। अन्तमें एक दर्जन ग्रन्थ लिखकर १६ जनवरी, १५९९ ई० की सन्ध्याको उसने अपने जीवनका स्वर तोड़ दिया। रात-भर लाशको किसीने नहीं देखा। फिर अन्तिम संस्कारके लिए चन्देकी योजना हुई, पर किसीने एक कौड़ी तक न दी! स्मारकके पैसोंको किसीने चुरा लिया! पर इक्कीस वर्ष बाद जब उसकी आत्मा कविताओंके निर्जीव शब्दसे जग-जीवनकी आत्माका स्वर बनी, तो किसीने पत्थरका एक स्मारक बना दिया और लिख दिया—'यहाँ मसीहा ईसाका दूसरा रूप गड़ा है, जिसकी दिव्य आत्माका परिचय उसकी रचनाएँ हैं।'—अवधेशकुमार, आज़ाद-भवन, रामपुर, गया।

वीर-पूजा : मानव-रत्न

स्नेह, सेवा और संघर्ष : लेखकद्वय—श्री जगदीशप्रसाद व्यास और श्री रामेश्वरप्रसाद गुरु; प्रकाशक—सुषमा साहित्य मन्दिर, जबलपुर ; पृष्ठ १४८ ; मूल्य १॥)

आलोच्य पुस्तक स्नेह, सेवा और संघर्षकी प्रतीक सुभद्राजीके जीवनके विभिन्न पहलुओंकी साधारण समीक्षा है, जो उनकी निधन-तिथिपर प्रकाशित की गई है। इसमें दिए गए जीवन-परिचय और स्फुट संस्मरणोंसे उनके जीवनपर खासा अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस रूपमें सुभद्राजीको याद करने और करानेके लिए लेखक एवं प्रकाशक बधाईके पात्र हैं।

मानव-रत्न : लेखिका—श्रीमती सत्यवती मल्लिक; प्रकाशक—रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स, देहली ; पृष्ठ २०८; मू० २॥)

विदुषी लेखिकाने जिन मानव-रत्नोंके गुणों एवं आदर्शोंके प्रति अपने-आपको आकर्षित पाया, जिनसे प्रेरणा ली, उनके जीवन-रेखाचित्रोंका संग्रह ही प्रस्तुत पुस्तकमें है। गांधीजी, नेहरूजी, ऐण्ड्रूज़ और अपनी माताजीके परिचयोंके सिवा उन्होंने सरोजनलिनी दत्त, मैडम माण्टीसोरी, मिस रीड, मैडम क्यूरी, लक्ष्मीबाई तथा लाला लाजपतराय, मालवीयजी, नेताजी और अब्राहम लिंकनके जीवन-चित्र दिए हैं, जो पढ़नेके बाद पाठकके मनपर गहरा असर छोड़ जाते हैं।

दशकन्धर : लेखक—श्री शान्तिस्वरूप गौड़ ; प्रकाशक—विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ; पृष्ठ २१२ ; मूल्य ३)

राम-भक्तिका प्रचार इतना व्यापक हुआ है कि अधिकांश लोग रावणके गुणोंके बारेमें एकदम अनभिज्ञ हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें लेखकने वाल्मीकिके दशग्रीवके आधारपर अपने शब्दोंमें उसका परिचय दिया है। इससे पाठकोंको रावणका यथार्थ परिचय मिलेगा। परिचय ऐतिहासिक तथ्योंके आधारपर सहानुभूतिपूर्वक लिखा गया है। कहीं अत्युक्ति-सी नहीं लगती।

समस्यामूलक नाटक

समस्याका अन्त : लेखक—श्री उदयशंकर भट्ट; प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ; पृष्ठ १७२ ; मूल्य ३)

मंच, रेडियो और पाठ्य-ग्रन्थोंके रूपमें अनेक नाटक लिखकर भट्टजीने अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। प्रस्तुत पुस्तकमें उनके नौ एकांकियोंका संग्रह है, जो प्रायः सभी समस्यामूलक और यथार्थवादी दृष्टिकोणसे लिखे गए हैं। समस्याका समाधान भी साथ ही है, जिससे नाटकोंकी उपादेयता बढ़ जाती है। 'गिरती दीवारें', 'बीमारका इलाज', 'आत्मदान', 'जीवन' और 'मन्दिरके द्वारपर' नाटक विशेष सफल हुए हैं। 'दो अतिथि' व्यंग्यात्मक प्रहसनके रूपमें विशेष सफल रहा है। कुछ नाटक, जो रेडियोसे प्रसारित हुए हैं, ध्वनि-प्रधान हैं। प्रायः सभी नाटकोंका दृष्टिकोण सृजनात्मक एवं प्रगतिशील है।

टूटती शृंखलाएँ : युगनाद

टूटती शृंखलाएँ : लेखक—श्री महेन्द्र भटनागर ; प्रकाशक—कारवाँ प्रकाशन, ६३, बड़ा सराफ़ा, इन्दौर ; मूल्य १॥)

नवोदित प्रगतिशील कवियोंमें श्री महेन्द्र भटनागरका प्रमुख स्थान है। प्रस्तुत संग्रहमें उनकी समय-समयपर पत्रोंमें प्रकाशित हुई ६० रचनाएँ हैं, जिनमें सदियों बाद हिलनेवाले सामन्ती लौह महलोंका थरथर कम्पन और जनबलके भूकम्पी क्रुद्ध धक्कोंकी छाप स्पष्ट है। कविताएँ यथार्थमें न सिर्फ़ टूटती हुई शृंखलाओंका ही, बल्कि आगत युगके स्वस्थ-सबल स्वरको भी भलीभाँति प्रतिध्वनित करती हैं।

तू युवक है ! : लेखक—श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ; प्रकाशक-राजेन्द्र प्रकाशन मन्दिर, लोहामण्डी, आगरा ; मूल्य २)

जैसा कि पुस्तकके नामसे प्रकट है, 'ये कविताएँ एक ऐसे संघर्षशील युवकके हृदयके उद्गार हैं, जो निरन्तर जीवन-संग्राममें जूझता रहा है।' कदाचित् इसीलिए इनमें निराशा और पस्तहिम्मती नहीं, आशा, विश्वास और उत्साहका स्वर है। कविताकी दृष्टिसे साधारण होते हुए भी रचनाएँ खासी अच्छी हैं।

—'ज्ञ'

धारा : लेखक—श्री कुमार शर्मा ; प्रकाशक—मेसर्स बैजनाथ एण्ड कम्पनी, गिरीडीह (बिहार) ; पृष्ठ १०१ ; मूल्य २)

कविताएँ अच्छी हैं ; पर उन्हें पढ़कर कुछ पल्ले नहीं पड़ता। कवि युगकी बात कहनेका उपक्रम करता है ; पर कालव्यतिक्रमसे उसका पिण्ड नहीं छूट पाता।

युगनाद : लेखक—श्री तेजनारायण लाल ; प्रकाशक—तारामण्डल, पटना ; पृष्ठ ८४ ; मूल्य १॥)

कविकी कलापर श्री सुमित्रानन्दन पन्त और श्रीमती महादेवी वर्माकी कलाका प्रभाव है। कवि दुखियों और दीनोंके प्रति करुणा पैदा करता है, न कि उनके भावोंकी अभिव्यक्ति करता है। भाव और छन्द अच्छे हैं ; पर 'युगनाद' नाम ग़लत लगता-सा है।

अभिव्यक्ति : लेखिका—श्रीमती प्रेमकुमारी गुप्ता ; प्रकाशक—इण्डियन प्रेस लि०, इलाहाबाद ; पृष्ठ ७२ ; मूल्य २॥)

कवियित्रीका कवि महादेवी वर्माके कविकी जातिका है। भावोंमें व्यक्ति-केन्द्रिकता है, और उस व्यक्तिका मानस मध्यम-वर्गीय है। काव्यगत भावोंमें सचाई है ; पर प्राक्-प्रवचन ग़लत है। शब्दोंमें तोड़-मरोड़ तो है ही और प्रयोग भी चिन्तनीय हैं ; पर कविताओंमें प्रवाह और जीवन है।

माला : लेखक व प्रकाशक—डा० निर्भय ठाकर ; नाथ-निवास, ७, खेतवाड़ी, बम्बई ७।

गुजराती-भाषा-भाषी और पेशेसे डाक्टर श्री ठाकरकी ये रचनाएँ कवितासे अधिक उनके हृदयसे निकली आनन्द-अभिव्यक्तिका ही स्रोत हैं। प्राचीन सन्तोंकी तरह ये गीत भाषा और व्याकरणके पाण्डित्यसे मुक्त हैं। गीत खासे अच्छे हैं।

रिमझिम : लेखक—श्री भरत व्यास ; प्रकाशक—राजस्थान कला-मन्दिर, बहादुर हाउस, घोड़बन्दर रोड, मलाड, बम्बई।

भावोंकी अभिव्यक्तिमें उक्तियोंकी नवीनता और ताजगी है। छन्दों और शब्दोंके अटपटेपनको सहज गतिने सँवार दिया है। कविताएँ अच्छी हैं।

वीरसतसई : लेखक—महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण ; सम्पादक—सर्वश्री कन्हैयालाल सहल, पतराम गौड़ और ईश्वरदान आशिया ; प्रकाशक—बंगाल-हिन्दी-मण्डल, ८, रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता।

प्रस्तुत पुस्तकमें राजस्थानीके प्रसिद्ध कवि सूर्यमल्लजीकी सतसईके दोहे सटीक संग्रहीत हैं। इनमें राजपूती शौर्यका जो चमत्कारपूर्ण वर्णन है, उसे विद्वान सम्पादकोंने राजस्थानी भाषा न जाननेवालोंके लिए भी सुलभ कर दिया है। ऐसे बहुमूल्य ग्रन्थके प्रकाशनके लिए सम्पादक और प्रकाशक बधाईके पात्र हैं।

किसान-सतसई : लेखक—श्री जगनसिंह सेंगर ; प्रकाशक—हिन्दुस्तानी बुकडिपो, बारहसैनी बाज़ार, अलीगढ़ ; मूल्य १।)

दोहोंमें किसानोंके कुछ अच्छे चित्र हैं, परन्तु अधिकांशमें मर्मस्पर्शिता नहीं है। दोहोंके अन्दर किया गया किसानोंकी अवस्थाका वर्णन अवश्य सुन्दर है। विषय नवीन है, पर उसके निर्वाहमें कमज़ोरी रह गई है। —वि०

भूल-सुधार—पिछले अंकमें प्रकाशित 'मोटापा कम करनेके उपाय'-पुस्तकका मूल्य १) की जगह ३) छप गया है। पाठक सुधार लेनेकी कृपा करें। —सं०

हमारे सहयोगी

उर्दू और अंगरेज़ीके प्रसिद्ध पत्रकार ख्वाजा अहमद अब्बासके सम्पादकत्वमें **'सरगम'** (सरगम पब्लिशर्स, अडवानी चैंबर्स, सर फीरोज़शाह मेहता रोड, बम्बई-१) नामसे एक अच्छा हिन्दी मासिक पिछले तीन महीनोंसे प्रकाशित हो रहा है। हिन्दी-पाठकोंको इसमें हिन्दीके सिवा उर्दू और अंगरेज़ीके भी अच्छे-अच्छे लेखकोंकी रचनाएँ पढ़नेको मिलेंगी। पत्रका दृष्टिकोण नयापन और ताज़गी लिए हुए हैं। सही मानीमें वह प्रगतिशील है, जैसा कि उसके अब तकके प्रकाशित अंकोंकी सामग्रीसे ज़ाहिर हैं। सिनेमाके चित्र और चर्चा कुछ कम रहें तो पत्रकी गम्भीरता ज़रा दबे नहीं। दूसरा सुन्दर मासिक **'कल्पना'** (८३१, बेगम बाज़ार, हैदराबाद दक्खिन) है। काग़ज़, छपाई, लेखोंके चयन आदिमें यह काफ़ी ऊँचे दर्जेका है। इसके सम्पादकोंका 'एकमात्र ध्येय हिन्दीके स्तरको उन्नत करना है।' सम्पादक-मंडल 'केवल उत्कृष्ट कोटिकी तथा स्थायी महत्त्वकी रचनाओंको ही पत्रिकामें स्थान देगा।' प्रथम अंककी रचनाएँ बहुत-कुछ इसीके अनुरूप हुई हैं, जिसके लिए सम्पादक-मंडल बधाईका पात्र है। श्री रामरतन सिकचीके सम्पादकत्वमें **'युगजीवन'** (नवनिर्माण प्रकाशन, अमरावती) नामसे एक सुरुचिपूर्ण द्विमासिक पुस्तक-पत्र गत अगस्तसे प्रकाशित हो रहा है। उसके दो अंक हमारे सामने हैं। दोनोंमें प्रकाशित सामग्री सही मानीमें उसे विचार-पत्र बनानेवाली है। भारतीय संस्कृति-संसद, कोटाके त्रैमासिक मुखपत्र **'विकास'** ने अपना अध्ययन और अनुभूति-अंक प्रकाशित किया है, जिसमें अनेक विद्वत्तापूर्ण लेख हैं। कालिदासका काल-

बापू विचार

भगाई हुई औरतें

हमारी काफी औरतें पाकिस्तानमें पड़ी हैं। लोग उन्हें बिगाड़ते हैं। वे बेचारी ऐसी बनी हैं कि उसके लिए शरमिन्दा होती हैं! मेरी समझमें उन्हें शरमिन्दा होनेका कोई कारण नहीं। किसी औरतको मुसलमान ज़बरदस्ती पकड़ लें और समाज उसे निकम्मी मानने लगे और भाई, माँ, बाप, पति, सब छोड़ दें, तो यह घोर निर्दयता है। मैं मानता हूँ कि जिस औरतमें सीताका तेज रहे, उसे कोई छू नहीं सकता। मगर आज सीता कहाँसे लावें? और सब औरतें तो सीता बन नहीं सकतीं। जिसे ज़बरदस्ती पकड़ा गया, जिसपर अत्याचार हुआ, उससे हम घृणा करें क्या? वह थोड़े ही व्यभिचारिणी है? मेरी लड़की या बीवीको भी पकड़ा जा सकता है, उसपर बलात्कार हो सकता है; लेकिन मैं कभी उससे घृणा नहीं करूँगा। ऐसी कई औरतें मेरे पास नोआखालीमें आ गई थीं। मुसलमान औरतें भी आई हैं। हम सब बदमाश बन गए हैं। मैंने उन्हें दिलासा दिया। शरमिन्दा तो बलात्कार करनेवालेको होना है; उन बेचारी बहनोंको नहीं। (२६-११-'४७)

भगाई हुई लड़कियाँ

हमारी बहुत-सी लड़कियाँ पाकिस्तानवाले उड़ा ले गए हैं। उन्हें वापस लाना है, मगर पैसे देकर नहीं। दूसरी लड़कियोंको हमें अपनी माँ-बहन समझना चाहिए। मगर मैंने सुना है कि पूर्व-पंजाबमें मुसलमान-लड़कियोंको बेहाल करते हैं। मैं आशा रखता हूँ कि इसमें कुछ अतिशयोक्ति होगी। इन्सान इतना गिर कैसे सकता है? अगर कलसे सिक्खोंने नया पन्ना खोला है, तो इस क़िस्मकी चीज़ें बन्द होनी चाहिएँ। यहाँ हम बुराई नहीं करते, तो इससे क्या हुआ। मेरा भाई गुनाह करे, तो मैं गुनाहगार हूँ, ऐसा मैं महसूस करता हूँ। समुद्रके बिन्दु अलग नहीं किए जा सकते। वे साथ रहते हैं, तो बड़े-बड़े जहाज़ अपनी छातीपर उठा लेते हैं; अलग रहते हैं, तो सूख जाते हैं।

कण्ट्रोल

अब कण्ट्रोलकी बात लूँ। चीनीपर से कण्ट्रोल उठ गया है। मेरी उम्मीद है कि कपड़े और खुराकपर से भी उठ जायगा। तब हमारा धर्म क्या होगा? चीनीके बड़े-बड़े कारखाने हैं। चीनीपर से कण्ट्रोल उठनेका यह अर्थ नहीं होना चाहिए कि इन कारखानोंके मालिक जितने पैसे लोगोंसे छीन सकते हैं, छीन लें। हिन्दुस्तानके अधिकतर लोग गुड़ खाते हैं। गुड़ देहातोंमें बनता है। खानेमें स्वादिष्ट होता है; मगर चायमें लोग गुड़ नहीं डालते। अगर चीनीके दाम खूब बढ़ जायँ, तो आप लोग चीनी नहीं खा सकेंगे। चीनीके कारखाने चन्द लखपतियोंके हाथमें हैं। उन्हें निश्चय करना चाहिए कि आज़ाद हिन्दुस्तानमें तो वे शुद्ध कौड़ी ही कमायँगे। व्यापारमें जितनी सड़ाँद है, उसे दूर करेंगे।

निर्णय, डिंगल-व्याकरण, अलभ्य शकुनावली, हाड़ोतीका लोकनृत्य आदि लेख विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। भावना-क्षितिज (रामनगर), लखनऊसे 'अरुणोदय'-नामसे एक छोटा, किन्तु अच्छा मासिक निकलना शुरू हुआ है। इसके अब तकके प्रकाशित पांच अंकोंकी सामग्री काफी अच्छी है। नए लेखकोंको भी इसमें पर्याप्त स्थान मिला है। हिन्दी-उर्दूके प्रसिद्ध कवि श्री राजनारायण चतुर्वेदी 'आज़ाद'के सम्पादकत्वमें 'दुनिया' (४०२, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता) नामसे सरल-सुबोध भाषामें मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक साहित्य देनेवाले एक मासिकका जन्म हुआ है। पहले अंकमें प्रकाशित लेख, कहानियाँ एवं कविताएँ (खासतौरसे उर्दूकी) खासी अच्छी हैं। हम अपने इन सब सहयोगियोंका स्वागत करते हुए उनकी उत्तरोत्तर उन्नति एवं दीर्घ जीवनकी कामना करते हैं।

मानो कि चीनीका दाम एकदम बढ़ जाता है। तो उसका अर्थ यह होगा कि कल जो व्यापारी १० प्रतिशत नफ़ा लेता था, वह आज ५० प्रतिशत लेने लगा है। मेरी समझमें तो ५ प्रतिशतसे ज़्यादा नफ़ा लेना न चाहिए। कण्ट्रोल उठनेसे चीनीके दाम बढ़नेका डर सिद्ध न हो, तो दूसरे अंकुश अपने-आप निकल जायँगे। गन्ना किसान बोता है। उसे तो पूरा दाम मिलना ही चाहिए। इस कारणसे चीनीके दाम बहुत ज़्यादा नहीं बढ़ सकते। व्यापारी अपना हिसाब साफ रखें। वह साफ बता दें कि इतना किसानकी जेबमें गया। उसकी जेबमें ५ प्रतिशतसे अधिक नहीं गया। चीनीके कारखानोंके मालिकोंके बाद छोटे व्यापारी रहते हैं। वे अगर बेहद दाम बढ़ा दें, तो भी जनता मर जाती है।

बुराईके लिए पैसा न दिया जाय

हमारी बहुत-सी सिक्ख और हिन्दू लड़कियोंको पाकिस्तानमें भगाकर ले गए हैं। उन्हें वापस लानेकी कोशिश हो रही है। जिन्हें जबरन बिगाड़ा गया है, मेरी नजरमें न उनका धर्म बिगड़ा है, न कर्म। धर्मपलटा तो जबरन हो ही नहीं सकता। मुझसे कहा गया है कि अगर एक-एक हज़ार रुपया एक-एक लड़कीके लिए दिया जाय, तो उन्हें निकालना ज़्यादा आसान होगा। मैं तो ऐसा कभी नहीं कर सकता। अपनी लड़कीके लिए मैं कभी इस तरह पैसा नहीं दूँगा। पैसा माँगनेवालोंसे मैं कहूँगा—तू भले मेरी लड़कीको मार डाल। उसकी रक्षा भगवानको करनी है, तो करेगा। मगर मैं तेरी दगाबाज़ीके लिए तुझे पैसा नहीं दूँगा। लड़कियोंको लानेके लिए किराया वगैराका जो खर्च हो, वह तो हम करें; मगर गुण्डोंको कभी पैसे न दें। हमारे यहाँ भी मुसलमान लड़कियाँ रखी हुई हैं। क्या हम यह कह सकते हैं कि इतने पैसे दो, तब लड़कियाँ मिलेंगी? दोनों तरफकी सरकारोंका धर्म है कि लड़कियोंको ढूँढ़ निकालें और उन्हें लौटा दें। जो हुकूमत ऐसा नहीं करती, उसे डूब मरना चाहिए। जो गुण्डे पैसा माँगते हैं, उन्हें सरकारको सजा देनी चाहिए और उनके पापके लिए माफी माँगनी चाहिए। लड़कियोंको रखनेवाले उन्हें लौटाकर सच्चे दिलसे तौबा करें, तभी वे शुद्ध हो सकते हैं।

शौककी चीज़ोंपर टैक्स लगाया जाय

एक भाई तीसरे दरजेका किराया बढ़ानेकी शिकायत करते हैं। वह लिखते हैं कि अगर हुकूमतको ज़्यादा पैसेकी ज़रूरत हो, तो ऐसी चीज़ोंपर टैक्स बढ़ाना चाहिए, जिनकी जीवन-निर्वाहके लिए ज़रूरत नहीं है; जैसे कि तम्बा वगैरा। आज हमारे हाथमें करोड़ों रुपए आ गए हैं। इसलि हम करोड़ों खर्च कर डालें, यह ठीक नहीं। हमें ए एक कौड़ी फूँक-फूँककर खर्च करनी चाहिए और देखना चाहि कि यह पैसा हिन्दुस्तानकी झोंपड़ीमें जाता है या नहीं? पंचायत-राजमें हम लोगोंसे जो लेते हैं, उससे १० गुना वापस मिलना चाहिए। देहातोंकी सफाई, सेहत, सड़कें बना वगैरापर पैसा खर्च होना है। देहाती जब समझ लेंगे उनका पैसा उन्हींपर खर्च हो रहा है, तो वे खुशीसे टैक्स दें

शेरे-काश्मीर

शेरे-काश्मीर शेख अब्दुल्लाने सबसे आला दरजेका का यह किया है कि काश्मीरमें जो मुट्ठी-भर सिक्ख और हि पड़े हैं, उन्हें वे अपने साथ रखकर काम करते हैं। लोगोंको जो चीज़ अच्छी न लगे, सो वे नहीं करते। काश्मीरके प्रधान-मन्त्री हैं। मैंने उन्हें मजाकमें पूछा कि आप क्या हैं? वे कहने लगे कि मैं खुद नहीं जानता। जम्मू भी चले गए थे। वहाँपर शर्मनाक काम हुआ है, मगर शेख साहबने उसपर भी अपना दिमाग़ नहीं खोया। यही एक तरीका है, जिससे हिन्दू, सिक्ख और मुसलमान साथ रह सकें और एक दूसरेका एतबार कर सकें। सामने कई कठिनाइयाँ हैं। काश्मीर पहाड़ी मुल्क है। सर्दि वहाँ बर्फ पड़ती है। आना-जाना आरामसे नहीं हो सकता। वहाँका रास्ता वैसे भी कठिन है। पाकिस्तानकी तरफसे कई अच्छे-अच्छे रास्ते हैं, पर उधर तो लड़ाई चल है—पाकिस्तानके साथ कहो या 'रेडर्स' के साथ कहो। रास्ता यूनियनके साथ एक ही है। वह पूर्व-पंजाबमें पड़ता है। काश्मीरी लोग उद्यमी हैं। वहाँसे हिन्दुस्तानमें फल आते हैं, ऊनी कपड़े आते हैं। मगर आज तो हम ऐसे बिगड़े हैं कि पूर्व-पंजाबमें कोई मुसलमान सुरक्षित नहीं। काश्मीरी मुसलमान उस रास्तेसे कैसे आएँ? कैसे तिजारत हो? किसीने शेख साहबसे कहा, आपके मुसलमान भी पूर्व-पंजाबमें नहीं जा सकते। हमने काफी खराबी कर ली है। हम उसे भूल जायँ। क्या हम हमेशा बुरे रहेंगे? हुकूमतको यह देखना है कि किस तरह रास्ता साफ हो सकता है, ता काश्मीरके फल, शाल-दुशाले वगैरा हिन्दुस्तानमें आ स काश्मीर यूनियनमें शामिल तो हुआ है; पर रास्ता साफ न हो, तो कहाँ तक रहेगा?

(२७-११-'४

हंगेरीमें नया दौर

युद्धोत्तर हंगेरीमें कम्युनिस्ट शासनकी स्थापनाके बाद ...त और न्यायके नामपर राजनीतिक हत्याओंका एक नया ... शुरू हुआ है। उसके पहले प्रधान-मन्त्री ज्योर्जी ...के मास्को पहुँचकर गत अप्रैल मासमें रहस्यपूर्ण ढंगसे ...ने और प्रसिद्ध लोकनेता निकोला पेतकोफ़की क़ानूनी ... की जानेके बाद पिछले दिनों वहाँके प्रसिद्ध कम्युनिस्ट ... और उपप्रधान-मन्त्री कामरेड त्रेशेक कोस्तफ़को भी ... दे दी गई। मास्कोके अन्य अमानुषिक बर्बर मुक़दमोंका ...नय इसमें भी दोहराया गया। सिर्फ़ दो वर्ष पहले कामरेड ...की ५०वीं वर्षगाँठ मनानेको हुई सार्वजनिक सभामें ... कम्युनिस्ट साथियोंने कहा था—"कामरेड कोस्तफ़, ...की सफलताएँ महान हैं। आपके नेतृत्व और वीरतापूर्ण ...से प्रेरणा पाकर हज़ारों कम्युनिस्ट पार्टीके प्रति असन्दिग्ध- ... वफ़ादार बने हैं।" इन्हीं कोस्तफ़को मास्कोके एजेण्ट फुल्को ...के प्रधान बनते ही उसके अर्थ-सदस्य श्वान स्तेफानफ़ने ...२२ से ब्रिटेनका खुफ़िया' कहा तथा मास्कोके 'प्रावदा' ने ... आंग्ल-अमरीकन खुफिया'! फिर क्या था, सरकारी ... उनके खिलाफ़ जहरीले प्रचारका परनाल खोल दिया। ... हंगेरीकी अर्थनीतिको स्वतन्त्र रूपसे विकसित करनेकी ... 'टीटोवाद'की नक़ल बताकर 'राजद्रोह', 'रूस-विरोधी' ... विदेशोंकी खुफियागीरी' करनेके जुर्ममें उन्हें पकड़ लिया ... इक़बाली बयानकी रिहर्सलके लिए उन्हें मास्को ले जाया ... और वहाँ ३२००० शब्दोंमें वह तैयारकर दे भी दिया गया। ...ब सोफियाके फौजी क्लबके एक कमरेमें बैठी अदालतने ... मंजूर या नामंजूर करनेकी बात पूछी, तो उन्होंने ... साथ इन्कार किया और कहा कि 'यह सब सच नहीं ... सब लोग दंग रह गए कि १९३८ में मास्कोके ऐसे ही ... मुक़दमोंमें निकोलाई केस्तिस्की द्वारा दोष अस्वीकार करनेके इस काण्डकी पुनरावृत्ति कैसे हो गई! पर अधिकारी माननेवाले थोड़े ही थे। कुछ दिन बाद अदालतके सामने कामरेड त्रेशेक कोस्तफ़को पेश किया गया और उनके द्वारा अपराधोंका इक़बाल करवाकर उन्हें फाँसी दे दी गई! उनके द्वारा प्राणदण्डके बदले आजीवन कारावासकी भिक्षा भी मँगवाई गई, जिसे अधिकारियोंने अस्वीकृत कर दिया! ('टाइम')

नया विश्व-श्रम-संगठन

४८ देशोंके ५,००,००,००० ट्रेड-यूनियनवालोंने एक नवीन असाम्यवादी ट्रेड-यूनियन अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बनाया है। इसका विचार ऐसे लोगोंकी सद्भावनाका परिमाण है, जो स्वतन्त्र हैं और आदर्श तथा सिद्धान्तके संघर्षोंसे दूर। अपने विचार-विनिमयमें इन्हें अधिनायकतन्त्रके प्रचारकों द्वारा विरोध और उनकी ओरसे विघ्न-बाधाओंका भय नहीं है। उन असाध्य राजनीतिक झगड़ोंकी सम्भावना पहले ही से दूर कर दी गई है, जिनके कारण ट्रेड-यूनियन विश्वसंघ बेकार हो गया था। किसी तानाशाही देशके ट्रेड यूनियन-संघ इस सम्मेलनमें सम्मिलित नहीं किए गए। इस संगठनके विधानमें कहा गया है कि स्वतन्त्र विश्व-श्रम-संगठनका उद्देश्य संसारके स्वतन्त्र और जनतन्त्रात्मक देशोंके संगठित श्रमिकोंको आपसमें मिलाना है। विधानमें स्थान-स्थानपर यह दुहराया गया है कि सोचने, कहने और मिलने-मिलानेकी स्वतन्त्रतासे ही कामकाजियोंकी आर्थिक स्वतन्त्रता सम्भव है। व्यक्तिके जिन अधिकारोंपर विशेष ज़ोर दिया गया है, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं: सामाजिक न्याय; काम करना और काम चुनना; नियुक्तिकी सुरक्षा; ऐसे ट्रेड-यूनियनोंकी स्थापना, जो स्वतन्त्र हों; अपने सदस्योंसे शक्ति प्राप्त करें और वैधानिक विधिसे अपने देशका शासन परिवर्त्तित कर सकें। स्वतन्त्रताके विरोधियोंको चुनौती और चेतावनी देते हुए यह कहा गया है कि नया स्वतन्त्र विश्व-श्रम-संगठन जनतन्त्रका समर्थन करेगा

और अधिनायकतन्त्रकी ज़बरदस्तियोंका ज़ोरदार सामना भी। नए संगठनके लक्ष्य संक्षेपमें इस प्रकार हैं: एक ऐसे शक्तिशाली और कार्य-योग्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठनकी स्थापना, जिसके सदस्य स्वतन्त्र और जनतन्त्रात्मक ट्रेड-यूनियनें हों, जो बाहरी दबावसे बरी हों और संसार-भरके कामकाजियोंके हित बढ़ाने और उनकी वृत्तिकी प्रतिष्ठा-वृद्धिपर कृतसंकल्प हों। ट्रेड-यूनियन-संगठनके अधिकारोंकी पूर्ण मान्यता और उनका उपयोग; ट्रेड यूनियन संगठनकी स्थापना, उसकी देखभाल और उसकी अभिवृद्धिमें यथासम्भव सहायता—विशेषतः सामाजिक और आर्थिक दृष्टियोंसे पिछड़े हुए देशोंमें; पूर्ण नियुक्तिकी अवस्था उत्पन्न करने और सारे संसारके कामकाजियोंकी कार्य-अवस्था-सुधारने तथा जीवन-स्तर ऊँचा करनेमें सहायता; सबकी सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक उन्नतिमें प्रोत्साहन देना—विशेषतया अविकसित और पराधीन देशोंमें; अधिक आर्थिक सहयोग, पहलेसे बड़ी आर्थिक इकाइयोंकी स्थापना तथा वस्तुओंके मुक्त आदान-प्रदानका समर्थन; बेगार अथवा बलात्श्रम-प्रथाका सर्वत्र उन्मूलन; मुक्त सरकारी और असरकारी एजेंसियोंके साथ ट्रेड-यूनियन-व्यवस्थाका सहयोग; एक विश्वव्यापी सामूहिक सुरक्षाकी स्थापना और इस बीचमें जनतन्त्रके रक्षार्थ क्षेत्रीय समझौतोंका समर्थन। इसकी सदस्यताकी शर्तें भी जनतन्त्रके सिद्धान्तोंपर आधारित हैं। सम्मिलित ट्रेड-यूनियनोंकी स्वतन्त्रताका आश्वासन दिया गया है और कहा गया है कि कोई बाहरी राजनीतिक केन्द्र अपनी आज्ञा इनपर नहीं लाद सकेगा। वर्ल्ड लेबर-कांग्रेस नए विश्व-संगठनकी सर्वोच्च सत्ता है और इसके अधिवेशन हर दो वर्षोंमें एक बार हुआ करेंगे। प्रतिनिधित्वका प्रबन्ध इस ढंगसे किया गया है कि कोई ट्रेड-यूनियन-केन्द्र उसपर अपना अनुचित अधिकार नहीं जमा सकता। छोटी इकाइयोंको अनुपातसे अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा। उदाहरणार्थ, एक लाख सदस्य तक एक प्रतिनिधि, एक लाखसे ढाई लाख तक दो प्रतिनिधि, ढाई लाखसे पाँच लाख तक चार, पाँचसे बीस तक लाख तक ६, बीससे पचास लाख तक आठ और पचीस लाखसे ऊपर दस। साधारणतया प्रयत्न यही किया जायगा कि निर्णय सहमतिसे हों, कोरे बहुमतसे नहीं। (ब्रिटिश सूचना-सर्विस)

जनहित-कार्योंमें अणु-शक्तिका उपयोग

अमरीकामें मानव-हित कार्योंके लिए अणु-शक्तिका उपयोग करनेपर अधिकाधिक ज़ोर दिया जा रहा है। ७८० लाख डालर, और अगर सम्भव हुआ तो ९३० लाख डालरसे भी अधिक, खर्च करके एक विशाल रिएक्टरका निर्माण किया जा रहा है। इस विशाल रिएक्टरसे खंडनशील पदार्थोंका उत्पादन, विद्युत्-शक्ति-उत्पादन और समुद्री और हवाई-जहाज़ों के चलानेका कार्य हो सकेगा। रिएक्टर एक प्रकारका यन्त्र है, जिसके द्वारा अणु-शक्तिका उत्पादन तथा अणु-बमोंके लिए आवश्यक पदार्थोंका उत्पादन किया जाता है। इस नवीन विधिसे अपरिमित अणु शक्तिको नियन्त्रित करके उपयोगमें लाया जा सकता है। यह प्रक्रिया वर्त्तमान अणु-बम बनानेकी विधिसे सर्वथा विपरीत होगी। इस यन्त्रके विकासके लिए ओकरिज-स्थित राष्ट्रीय अनुसन्धानशालामें विशेष शिक्षा देनेके लिए एक नवीन स्कूल खोला जायगा, जिससे यहाँ शिक्षा पाए हुए व्यक्ति सरकार, वैज्ञानिकों और इंजीनियरोंको सहायता दे सकें। अखंडनीय धातुसे खंडन-योग्य पदार्थ उत्पन्न करनेके लिए यह नवीन विधि काममें लाई जायगी। जैसे जलते कोयलेसे नया कोयला भी पहले कोयलेकी भाँति जलने लगता है, ठीक वैसे ही यह यन्त्र भी कार्य करेगा। अगर इसमें सफलता हो गई, तो खंडनशील पदार्थोंकी कमी नहीं रहेगी।

कमीशनने सार्वजनिक रूपसे अणु-शक्तिके विकास, अनुसन्धान तथा उपयोग-सम्बन्धी ५७ रिपोर्टें प्रकाशित की हैं। चिकित्सा, रसायनशास्त्र तथा इंजीनियरिंगके क्षेत्रोंमें नवीन आविष्कारोंका प्रयोग करके जो उन्नति हुई है, उसका उल्लेख विशेष रूपसे किया गया है। अणु-शक्ति-सम्बन्धी अनुसन्धान-कार्यका विशेष विकास उद्योगमें फ्लोरीन तथा फ्लोरीन-रसायनशास्त्रमें हुआ है। ड्यूपों-कार्पोरेशनने विद्युद्विश्लेषिक (इलेक्ट्रोलिटिक) विधिसे फ्लोरीनका विकास किया है। फ्लोरीन और इसके मिश्रण रसायनशास्त्रमें महत्त्वपूर्ण गुण रखते हैं। उक्त विधिसे प्रतिपौण्ड फ्लोरीनके निर्माणमें १ डालरकी बचत हुई है। कैलिफोर्निया-यूनिवर्सिटीने च्यवन (टपकना) मालूम करनेकी एक नवीन विधिका पता लगाया है। इसको 'हैलाइड टर्च'-पद्धतिका नाम दिया गया है। आविष्कार करनेवालोंका कथन है कि यह नवीन विधि च्यवन का पता लगानेके लिए श्रेष्ठतर सिद्ध होगी। चिकित्सा-क्षेत्रमें भी अणु-शक्तिने उन्नति की है। इस सम्बन्धमें न्यू मैक्सिकोके लास एलामासके एक वैज्ञानिकने संकेत किया है कि निरन्तर अल्प-मात्रामें 'गामा-विकीरण' के प्रयोगसे श्वेत-रक्त-कोशोंकी संख्यामें प्रभावशाली कमी हुई है। (यू० एस० आई० एस०)

एक नए राष्ट्रका जन्म

गत २७ दिसम्बरको हेगमें हुए समझौतेके अनुसार डच साम्राज्यवादियोंने हिन्देशियाके प्रजातंत्रवादियोंको सत्ता हस्तान्तरित कर दी। अब न्यूगिनीको छोड़कर सात खुद मुख्तार नगरों, नौ स्वशासित प्रान्तों और कुछ तफ़सीली क्षेत्रोंको मिलाकर 'हिन्देशिया संयुक्त राज्य' नामके प्रजातंत्री संघ-राष्ट्रपर हिन्देशियन झंडा फहरायगा। फिलहाल छः महीनेसे लेकर एक वर्ष तक अन्तरिम काल रहेगा, जिसमें ८०००० डच सिपाही, नाविक और उड़ाके धीरे-धीरे हिन्देशियासे हट जायँगे। भारतके बाद यह गोरे साम्राज्यवादके एक दूसरे क्षेत्रका उन्मूलन है, जो 'पूर्ण' न होनेपर भी काफ़ी सन्तोष और आशाप्रद है। हमें अपने इस पड़ोसी प्रजातंत्रकी स्थापनापर खुशी इसलिए नहीं कि यह हमारी ही सभ्यता-संस्कृतिके एक केन्द्रकी मुक्ति है, बल्कि इसलिए भी कि इस मुक्तिमें हमारा भी हाथ रहा है। जनवरी १९४७ में दिल्लीमें हुई एशियन कान्फ्रेंसमें भारतके प्रधान-मन्त्रीने हिन्देशियन प्रजातंत्रको राष्ट्रीय स्वीकृति-सम्मान दिया और डचोंके 'पुलिस-कार्य' की तीव्र निन्दा की। यही नहीं, जब उन्मत्त डच साम्राज्यवादियोंने नवजात प्रजातंत्रको नष्ट-भ्रष्ट करना आरंभ किया, तो भारतने उसके यानोंको अपनी सीमामें आने-जानेसे रोक दिया और अपने मनोनीत राजदूतका हालैण्ड जाना भी स्थगित कर दिया। इसके बाद जब प्रमादी डचोंके होश ठिकाने आए और उन्होंने प्रजातंत्रवादियोंसे (जिन्हें पहले वे अनधिकारी और लुटेरे कहते थे) समझौतेकी बातचीत करना स्वीकार किया, तो हालैण्ड-स्थित भारतीय राजदूतने इस चर्चाको असमय ही भंग होनेसे बचाकर समझौता संभव बनानेमें महत्त्वपूर्ण भाग लिया। हिन्देशिया आजसे नहीं, हज़ारों वर्षोंसे भारतकी भुजा रहा है। उसकी आज़ादी और समृद्धिका भारतकी आज़ादी और समृद्धिसे गहरा सम्बन्ध है। जिस साहस और दृढ़तासे हिन्देशियनोंने जापानी दस्युओंका मुक़ाबला किया, जिस आत्मत्यागी संघर्षसे डचोंको झुकाया, हमें आशा और विश्वास है कि भारतके सहयोग-साहाय्यसे वही हिन्देशिया को फिर 'स्वर्ण-द्वीप' बनानेमें सफल होगा। हम हृदयसे अपने इस पड़ोसी राष्ट्रका स्वागत और अभ्यर्थना करते हैं।

डचोंकी हृदयहीनता

इस खुशीके मौकेपर नाखुशगवार बातें कहना ज़रा बेतुका-सा लगता है; पर हिन्देशियाके प्रति डचोंने (जो अपने-आपको 'सभ्य' और 'जनतंत्रवादी' कहनेका हौसला रखते हैं) जिस क्रूरता, अदूरदर्शिता और हृदयहीनताका परिचय दिया है, उससे न सिर्फ़ हिन्देशियनोंके, बल्कि समस्त एशिया-वासियोंके मनमें उनके प्रति घृणा और कटुता ही पैदा हुई है। हेग-समझौतेके पहले और उसकी चर्चाके दौरानमें उन्होंने न्याय, इन्सानियत और सुबुद्धिकी अपेक्षा उन संगीनों पर ही ज़्यादा भरोसा रखा, जो जर्मनोंकी एड़ियोंसे कुचली जाकर भोंथरी हो चुकी हैं। समझौता हो जानेपर भी डच-पार्लमेंटने बड़ी अनिच्छासे उसे पास किया और जनतंत्रका दम भरनेवाले उसके हिमायतियोंने स्पष्ट कहा कि 'अत्यधिक विदेशी दबाव' के कारण वे ऐसा कर रहे हैं! कुछ प्रतिगामी साम्राज्य-वादियोंने उसे 'डचोंके लिए ज़िल्लतका काम' तक बताया! इस प्रकार समझौतेके लिए जो श्रेय डचोंको मिलता, उसकी पात्रता भी उन्होंने नहीं दिखाई। चूँकि अंगरेज़ी, फ्रांसीसी, डच, पुर्त्तगीज़ आदि सभी एशियाकी लूटमें 'चोर-चोर मौसेरे भाई' थे, अतः सबने एक-दूसरेका अनुमोदन ही किया; पर डचोंकी औपनिवेशिक नीति क्रूरता और हृदयहीनतामें सबसे बढ़-चढ़कर थी। औपनिवेशिक शोषण और पीड़नमें अंगरेज़ तो उनके सामने बच्चे-से हैं। अपनी उसी स्वाभाविक क्रूरता और हृदयहीनताका परिचय डचोंने अन्तिम क्षण तक दिया, जब कि अपने गोरेपनपर पुती हुई ३५० वर्षोंकी कालिखको धोनेका एक सुअवसर उनके सामने था। यह किसीके लिए भी सुख और सन्तोषकी बात नहीं हो सकती कि दो महायुद्धोंमें पराजित होकर जर्मनोंकी एड़ीसे रौंदे जाने और एशियामें जन-क्रान्तिकी लहरके इतने उग्र हो उठनेपर भी प्रतिगामी डचोंने इतिहाससे कोई सबक हासिल नहीं किया। इस स्थितिमें कौन विश्वास-पूर्वक कह सकता है कि हेग-समझौतेपर भी वे ईमानदारी

और सहयोगकी भावनाके साथ अमल करेंगे ?

शान्ति और आध्यात्मिक मूल्य

पिछले दिनों शान्तिनिकेतन और वर्धामें शान्तिवादियोंके दो महत्त्वपूर्ण सम्मेलन हुए। इसमें प्रसिद्ध अंगरेज़ लेखिका वेरा ब्रिटन, रेजिनल्ड रिनाल्ड्स, हावर्ड-विश्वविद्यालयके नीग्रो अध्यापक, फिनलैण्डके भूतपूर्व युद्ध-मन्त्री, फ्रांसके भूतपूर्व सैनिक अफसर और इराकके एक भूतपूर्व मन्त्रीने भाग लिया। इनके भाषणोंमें जो हार्दिकता और ईमानदारी थी, उनकी ओर दो महायुद्धोंके भीषण विनाश और परमाणु-शक्तिकी प्रतिद्वन्द्विताको लेकर उपस्थित तीसरे महायुद्धकी आशंकासे त्रस्त लोगोंका ध्यान आकृष्ट होना स्वाभाविक ही था। पर आज जिस दुनियाका शान्ति-रक्षाका एकमात्र भरोसा सैनिक और वैज्ञानिक युद्ध-बल है, व्यक्ति-मात्रका दृष्टिकोण वस्तुवादी है; उसमें शान्तिके लिए निःशस्त्रीकरण और आध्यात्मिक मूल्योंकी स्थापनाकी अपील अरण्य-रोदन-सा लगती है। जो भारत स्वयं सेना बढ़ा रहा है और कश्मीरमें लड़ रहा है, वह निःशस्त्रीकरणके लिए दूसरोंसे किस मुँहसे कह सकता है? जिस देशने शान्तिदूत गांधीकी ही नहीं, उसके आदर्शों एवं सिद्धान्तोंकी भी हत्या कर डाली है, वह दूसरोंसे आध्यात्मिक मूल्योंको अपनानेकी बात किस आधारपर कह सकता है? इसका अर्थ यह नहीं कि हम शान्तिके पक्षमें नहीं, बल्कि हम उसके अभिनय और छूँछे ढोल बजानेके पक्षमें नहीं। सच्ची शान्ति तो तभी संभव है, जब कि अशान्तिके कारणोंका मूलोच्छेद हो। ये कारण हैं—सत्ता और सम्पत्तिका केन्द्रीकरण; उत्पादन और वितरणके साधनोंपर व्यक्तिगत अधिकार; राष्ट्र और समाजके नामपर व्यक्तिकी बलि; असमानता और लोभ; अनीति और अन्याय; वर्ण-द्वेष और जाति-भेद आदि। गांधीजीने कहकर नहीं, वरन शान्ति और अहिंसक संघर्ष द्वारा इनके उन्मूलनका मार्ग दिखा दिया है। पर प्रश्न तो है उसपर अमल करनेका। आज कितने व्यक्ति, कितने देश, उसपर चलनेको तैयार हैं? अन्य देशोंकी बात हम नहीं कहते; पर भारत भी शायद अभी उस मार्गपर नहीं चल रहा, न चलना चाहता है। तब फिर गांधीजीकी कुटियासे, उनका नाम लेकर, शान्तिके नामपर कुछ कहना कोरी विडम्बना नहीं तो और क्या है?

खुदीराम बोसका स्मारक

पिछले दिनों मुज़फ्फरपुरमें बिहारके प्रधान-मन्त्रीने प्रसिद्ध क्रान्तिकारी खुदीराम बोसके स्मारकका उद्घाटन किया। नेहरूजी द्वारा यह 'पुण्यकार्य' सम्पादन करनेसे इन्कार कर देनेपर कई तरहकी टीका-टिप्पणी हुई थी। अब अहिंसावादी कांग्रेसके एक ज़िम्मेदार पदाधिकारी द्वारा वही कार्य सम्पादित हुआ, इसमें कुछ विरोधाभास-सा लगता है। पर एक आदर्श और सिद्धान्तकी रक्षाके लिए नेहरूजीने जिस कार्यका श्रेय स्वीकार न कर लोगोंकी नाराज़गी बर्दाश्त की, उसपर शायद कम ही लोगोंने गौर किया होगा। कहते हैं कि अलीपुरके एक मजिस्ट्रेट किंग्ज़फोर्डने एक बार अदालतमें 'वन्देमातरम्'का नारा लगानेपर एक लड़केको बेंतकी सज़ा दी थी। क्रान्तिकारियोंने इसपर उसकी हत्या करनेका निर्णय किया। जब तक वह कलकत्तेमें रहा, यह सम्भव न हुआ। फिर जब उसका तबादला मुज़फ्फरपुर हो गया, तो १६ वर्षीय खुदीराम बोस और एक अन्य नवयुवकको यह भार सौंपा गया। इन लोगोंने किंग्ज़फोर्डकी मोटर पहचान ली। एक दिन रातको जब यूरोपियन क्लबसे यह मोटर बाहर निकली, तो खुदीराम और उसके साथीने मोटरपर बम फेंके। पर संयोगवश किंग्ज़फोर्ड उसमें न था। उसमें थी एक अंगरेज़ बैरिस्टरकी स्त्री और उसका बच्चा। फलतः वे ही मारे गए। बादमें खुदीराम पकड़ा गया और हत्याके अपराधमें उसे फाँसी दी गई। यदि इसमें किंग्ज़फोर्ड भी मारा जाता, तब भी इस कृत्यके कर्त्ताका स्मारक क्या समझकर खड़ा करना चाहिए, हमारे लिए समझना मुश्किल है। यदि देशका बहुमत इस तरहके कृत्योंका समर्थक होता, तो शायद हर हिन्दुस्तानी देशके नामपर हत्यारा बनता और गांधीजीके बजाय देशको आज़ाद करानेका श्रेय ऐसे 'क्रान्तिकारियों'को ही मिलता। पर गांधीजीने हमें मारकर नहीं, मरकर लड़नेका रास्ता दिखाया। इससे उन्होंने देशको बहुत बड़े अनावश्यक और अमानुषिक रक्तपातसे बचाया। यही कारण है कि अंगरेज़ोंकी हत्या करनेवाले अगणित लोगोंको जब हम भूल-सा गए हैं, उनकी स्मृति-रक्षाका जब हमें ख्याल भी नहीं आता, जेलमें अनशनकर प्राण देनेवाले जतीन्द्रनाथ दासका स्मारक खुदीरामसे बहुत पहले ही बन चुका है और उसका स्मरण हमें उत्साह और प्रेरणा देता है, देता रहेगा।

क्रान्तिके नामपर लूट-मार

यही कारण है कि आज देशके विभिन्न भागोंमें पेशेवर चोरों, लुटेरों, डाकुओं और हत्यारोंके सहयोगसे अपने-आपको कम्युनिस्ट कहनेवाले जो समाज और क्रान्ति-विरोधी उच्छृंखल लोग अपने ही पाँवोंपर कुल्हाड़ी मार रहे हैं, जनता उसमें कोई

औचित्य नहीं पाती। कलकत्ते-जैसे घनी आबादीके शहर और बंगालके गाँवोंमें बमों, तेज़ाब-भरे बल्बों, पत्थरों, लाठियों, बन्दूक़ोंसे पुलिस, व्यक्ति-विशेष और आने-जानेवाले राहगीरोंपर आक्रमण करना कठिन नहीं; पर यह कैसी क्रान्ति है और क्या होगा इसका परिणाम? जब हम देखते हैं कि ऐसा करके ये तथाकथित कम्युनिस्ट पेशेवर उपद्रवियोंको नागरिक जीवनको विच्छिन्न करनेका सुअवसर देते हैं, तो इनकी इस आत्मघाती नीतिपर और भी दुःख होता है। किसी ग़रीब पुलिसवाले, फैक्टरीके कर्मचारी या मज़दूर कार्यकर्त्ताकी हत्या करनेसे ही क्या यह शासन डिग जायगा? भारतका नया विधान कैसा भी प्रतिगामी क्यों न हो और भारतके वर्त्तमान शासक कितने ही निकम्मे क्यों न हों, यदि वास्तवमें जनता उनसे असन्तुष्ट है और कम्युनिस्टोंके साथ है, तो वे बम, तेज़ाब, पत्थर तथा बन्दूकोंके बदले चुनावकी पर्चियोंसे ही इस शासनको उखाड़ फेंक सकते हैं। पर इसमें उनका विश्वास नहीं। उनके मतसे तो हिंसात्मक उपायों और शस्त्र-बलसे सत्ता हथियाना ही 'क्रान्ति' है। इसे यदि देशका बहुमत स्वीकार कर लेता है, तब तो कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं; अन्यथा हर समझदार नागरिकका कर्त्तव्य है कि वह इस गुण्डेपनको रोकनेकी भरसक चेष्टा करे। आजके शासनसे सन्तुष्ट हम भी नहीं, उसकी नीतिके सर्वांशके समर्थक भी हम नहीं; पर साथ ही हमारा यह भी दृढ़ विश्वास है कि उसके स्थानपर ये हिंसक और खूनी महत्वाकांक्षी आकर पलक मारते ही देशको स्वर्ग नहीं बना देंगे। इसके विपरीत अधिक सम्भावना इसी बातकी कि है इनका इस प्रकार सत्तारूढ़ होना सदाके लिए भारतसे जनतन्त्रकी आशाको समाप्त कर देगा और अंगरेज़ोंकी साम्राज्यवादी नाग-फाँससे निकला यह देश रूसकी पुलिस-स्टेटके फ़ौलादी शिकंजेमें जकड़ जायगा।

शासनकी दुर्बलता

यदि दुर्भाग्यवश कभी इस देशको रूसका एक सूबा बननेका दुर्दिन देखना पड़ा, तो उसका श्रेय हमारे मौजूदा शासकों और देशद्रोही धनिकोंको होगा। ये तो ऐसे कानोंमें तेल डाले बैठे हैं, मानो प्रतिदिन बढ़ता हुआ जन-साधारणका असन्तोष, अभावजन्य हाहाकार इन तक पहुँचता ही नहीं। नाम जैसे हर साँसमें गांधीजीका और काम करेंगे ब्रिटिश नौकरशाहीके ही रंग-ढंगका। भूखा-नंगा आदमी शासनकी कठिनाइयोंकी बात कब तक सुनेगा? उसके धैर्य और सहनशीलताकी भी तो कोई सीमा है? जब वह देखता है कि सरकार मुनाफ़ाखोरों द्वारा पैदा की जानेवाली लगभग हर चीज़की कृत्रिम कमीको पूरा करनेके लिए योजनाएँ बनानेमें ही महीनों लगा देती है, तो उसे निराशा होती है। यही निराशा उसे कभी चोरी और चोरबाज़ारीके दरपर ले जाती है और कभी समाजवाद-साम्यवादके आकर्षक साइनबोर्ड लगाकर उसके सब अभाव-असन्तोषकी अचूक दवा करनेवाले राजनीतिक महत्त्वाकांक्षियों के खेमेमें, जो अपने स्वार्थके लिए उसे ठगते हैं। एक चीनी हीके काण्डको लीजिए। इतनी बड़ी धाँधली, करोड़ों आदमियोंके कष्ट और लूटके एक भी अपराधीको दण्ड मिला? हम कृपलानीजीके इस कथनसे सहमत हैं कि 'हमारा शासन न तो सुयोग्य है, न होशियार ही'। उन्हींके शब्दोंमें 'हमारे देशके पूँजीवादी सरकारका चलना असम्भव कर देनेपर तुले हुए हैं। राष्ट्रसे उन्हें जो भी संरक्षण मिले, अपनी अदूर-दर्शितापूर्ण नीति और देशद्रोही आचरणके द्वारा वे देशके हितोंको नुक़सान पहुँचा रहे हैं।' यदि शासनने इनकी लूट और शोषणसे जन-साधारणको नहीं बचाया, तो उसका अधिक दिन टिकना तो असंभव है ही, साथ ही इस देशका भी खुदा ही हाफ़िज़ है! क्या समय रहते हमारे देशके पूँजीपतियों और शासकोंकी आँखें खुलेंगी?

भारत-पाकिस्तान-सम्बन्ध

वैसे तो भारत-पाकिस्तानके सम्बन्ध दोनोंके उपनिवेश घोषित किए जानेके बादसे ही विशेष अच्छे नहीं रह रहे हैं; पर इधर पाकिस्तान द्वारा मुद्रा-अवमूल्यन न किए जानेके कारण दोनों ओरसे नए-नए संकट पैदा होने लगे हैं। यद्यपि भारत-सरकारने कहा है कि पाकिस्तान माल आना-जाना बन्द नहीं है, तथापि कलकत्तेसे न माल वहाँ जा रहा है और न वहाँसे यहाँ ही आ रहा है। भारत-पाकिस्तान-व्यापारिक समझौतेपर दयानतदारीसे अमल तो जैसे हुआ ही नहीं। इधर पाकिस्तानने अवमूल्यनके पहले भारत द्वारा खरीदी गई कच्चे जूटकी ५००००० गाँठोंको, जो भारत लाए जानेको नावोंपर लादी जा चुकी थीं, भारत आनेसे रोक दिया है। इसके बदलेमें भारत-सरकारने भी उसे दिया जानेवाला कोयला रोक दिया है। भारतसे इसका बदला लेनेके लिए पाकिस्तानने दक्षिण-अफ्रीकासे व्यापार-सम्बन्ध स्थापित करने तथा पूर्वी पंजाबका कराची और लाहौर होकर जानेवाला पेट्रोल बन्द करनेकी धमकी दी है। पाकिस्तान होकर भारतके पूर्वी भागसे मालका यातायात

भी रोक दिया गया है। पाकिस्तानकी शिकायत है कि भारतीय बैंक उसके नागरिकों द्वारा जमा कराया हुआ रुपया नहीं दे रहे हैं। फलतः उसने अवमूल्यनसे पहले भारतसे भेजे गए मनीआर्डरोंका भुगतान करनेसे इन्कार कर दिया है। सिन्धु और पूर्वी पाकिस्तानसे हिन्दुओंके साथ फिर अनुचित और अनावश्यक कड़ाई की जानेके संवाद आ रहे हैं। राजशाहीमें पिछले दिनों जब तीन हिन्दुओंने ज़िला-बोर्डके चुनावमें खड़े होनेके लिए अपने नामज़दगी-पत्र दाखिल करने चाहे, तो यह कहकर उन्हें नामंज़ूर कर दिया गया कि उन्हें पाकिस्तानका वफ़ादार नागरिक नहीं माना जा सकता! आसाम और पूर्वी पाकिस्तानकी सीमापर तो लूट, मार, मन्दिरों, घरों व मूर्त्तियोंका विनाश, महिलाओंकी बेइज़्ज़ती आदिके समाचार आए हैं। पाकिस्तान-पार्लमेण्टमें प्रधान-मन्त्रीने इसकी अदालती जाँचकी माँगको ठुकरा दिया। इन सबके लिए हम किसी भी एक पक्षको दोषी या निर्दोष नहीं ठहरा सकते। पर दोनों ही के लिए यह स्थिति शोभन नहीं। ऐसा लगता है कि दोनोंने ही १९४६-४७ की घटनाओंसे कोई सबक़ नहीं सीखा और न अपने रुखोंमें राजनीतिक दूरदर्शिताका ही परिचय दिया। भारतीय अधिकारी और व्यापारी मानो अवमूल्यन न करनेके अपराधमें पाकिस्तानकी अर्थनीतिक रीढ़ ही तोड़ देनेपर तुले हुए हैं। वे यह भूल गए हैं कि पाकिस्तान एक स्वतन्त्र देश है और अपने भले-बुरेका अन्तिम निर्णय करनेका अधिकार उसीको है। पाकिस्तान भी अपने-आपको विभाजन-पूर्वकी हिन्दू-विरोधी मनोवृत्तिसे मुक्त नहीं कर पाया है। वह भौगोलिक स्थितिको भूलकर आज भारतकी अपेक्षा दूरके देशोंकी मैत्रीका उम्मीदवार है। पर दोनों ही देशोंको यह भूल न जाना चाहिए कि मुट्ठी-भर अहम्मन्य व्यक्तियोंकी संकीर्णता भारत और पाकिस्तानकी जनताके सहज-स्वाभाविक सम्बन्धों और हितोंके बीचमें ज़्यादा दिन तक दीवार बनकर खड़ी नहीं रह सकती। अतएव दोनोंका हित इसीमें है कि यथार्थवादी दृष्टिकोण तथा राजनीतिक दूरदर्शितासे काम ले इस निरर्थक और हानिकारक ज़िचको दूर करें।

अपहृत महिलाओंकी वापसी

भारत और पाकिस्तानके तनाज़ेने उन अभागिनोंके भाग्यपर भी गहरा असर किया है, जिन्होंने मुसीबतोंके पहाड़ झेलनेके बाद उस नरकसे बाहर आनेकी आशा बाँध रखी थी। गत १७ दिसम्बरको भारतीय पार्लमेण्टमें 'अपहृत व्यक्तियों'की परिभाषामें ऐसी अभागिनोंके १ मार्च, १९४७ के बाद हुए बच्चोंको भी गिननेका संशोधन पेश करते हुए श्री गोपालस्वामी आयंगरने कहा—"पाकिस्तान-सरकारके रुखसे ऐसा जान पड़ता है कि वह अपहृत महिलाओंको लौटानेके पक्षमें नहीं है। अब तक वे स्त्रियाँ भी वापस नहीं की गई हैं, जो पाकिस्तानके सरकारी और पुलिस-अफसरोंके पास हैं!" श्री आयंगरके कथनानुसार भारतसे १२००० अपहृत मुस्लिम महिलाओंका उद्धार किया गया है, जब कि पाकिस्तानसे सिर्फ़ ६००० ग़ैर-मुस्लिम महिलाएँ ही लौटी हैं। इसका कारण बताते हुए आपने कहा है—"इस कार्यमें भारतके सभी श्रेणियोंके लोगोंसे जो हार्दिक सहयोग और सहायता मिली, उतनी पाकिस्तानकी जनतासे नहीं। इसीलिए वहाँ हमारे यहाँकी अपेक्षा कम अपहृत महिलाओंका उद्धार हो सका।... पिछले कुछ दिनोंसे—ख़ास तौरसे पश्चिमी पंजाबमें—लोगोंका रुख बदल रहा है। पर चूँकि वहाँ कई संस्थाएँ इस कार्यमें लगी हैं, अतः हमें आशा करनी चाहिए कि भविष्यमें अधिक अपहृत महिलाओंका उद्धार हो सकेगा।" यदि यही शर्मनाक स्थिति आज है, तो जो-कुछ हुआ, उसपर यह जलेपर नमक ही कहा जायगा। इस तरहकी अमानुषिक ज़हनियतसे किसी भी जातिको कोई लाभ नहीं होगा, बल्कि उसका नैतिक और सामाजिक पतन ही होगा। क्या पाकिस्तानमें ऐसे समझदार लोगोंकी कमी है, जो मज़हबके नामपर हुए इस अमानुषिक पागलपनका शीघ्रातिशीघ्र अन्तकर भलमनसाहतका परिचय दें!

हिन्दू-कोड-बिलपर विचार

गत १९ दिसम्बरको भारतीय पार्लमेण्टने भारी बहुमतसे सिलेक्ट कमेटी द्वारा प्रस्तुत हिन्दू-कोड-बिलपर विचार करनेका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। पार्लमेण्टके भीतर होनेवाली गरम बहसों, डा० अम्बेदकरके भाषणोंमें डाले जानेवाले विघ्नों और बाहर हुए उपद्रवसे तो ऐसा लगता था, मानो इस प्रस्तावका भीतर और बाहर ज़बर्दस्त विरोध है। पर पार्लमेण्टमें मत-गणना होनेपर केवल ११ मत ही इसके विरोधमें आए। और इसके सबसे बड़े विरोधी श्री नज़ीरुद्दीन अहमदके इसे फिर सिलेक्ट-कमेटीके सुपुर्द करनेके संशोधनके पक्षमें तो केवल ५ ही! इसपर हुई बहसमें ३३ सदस्योंने भाग लिया, जिनमें से २३ इसके समर्थनमें बोले और ३ निष्पक्ष रहे। जो सात सदस्य इसके विरोधमें बोले, उनमें से भी किसीने बिलके ५ भागोंका कोई विरोध नहीं किया। इन सबसे स्पष्ट है कि

बिलका कितना विरोध है ? प्रधान-मन्त्री द्वारा विरोधियोंके दृष्टिकोणपर सहानुभूतिपूर्वक विचार करनेके आश्वासनका स्वागत एवं समर्थन करते हुए डा० अम्बेदकरने कहा कि 'अधिक विरोध तलाक और सम्पत्तिमें लड़कीको भी हिस्सा मिलनेकी सुविधाका ही हुआ है। पर चूँकि बड़ोदा, बम्बई, मैसूर, कोचीन-ट्रावनकोर आदिमें पृथक-पृथक हिन्दू-क़ानून प्रचलित हैं, उन सबको एक सार्वदेशिक रूप देना आवश्यक है। इस समस्याको स्थगित नहीं किया जा सकता।' यह तो हुआ क़ानूनी दृष्टिबिन्दु, पर इससे भी बड़ा और व्यापक दृष्टिबिन्दु है नारी-जातिकी सामाजिक एवं अर्थनीतिक समानताके सिद्धान्त की स्थापनाका, जिसकी ओर प्रधान-मन्त्रीने स्पष्ट संकेत किया है। उन्होंने कहा है कि 'हमें उस दिशामें अगुवा बनना है; पर आगे बढ़नेमें हम दूसरोंको भी सदा साथ रखेंगे।' पर दुर्भाग्यवश हमारे देशमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं, जो स्वयं तो आगे बढ़नेकी ज़रूरत ही नहीं समझते; पर साथ ही दूसरोंको भी आगे नहीं बढ़ने देना चाहते। धर्मके नामपर, नारीकी पूजाके नामपर, संयुक्त कुटुम्बके प्रेम और एकताके नामपर, सदियोंसे उसपर जो ज़ुल्म-ज़्यादतियाँ हो रही हैं, अर्थनीतिक दृष्टिसे उसकी जो एक ग़ुलामसे भी बदतर हालत है, उसकी अनीतिको समझनेका विवेक भी जैसे ये खो बैठे हैं। इन्हें डर है कि उसे विवाह और विवाह-विच्छेदकी स्वतन्त्रता तथा पिताको सम्पत्तिमें हिस्सा मिलते ही हिन्दू-धर्म और संस्कृतिका शीशमहल छिन्न-भिन्न हो जायगा! वाह रे धर्म और वाह री न्यायबुद्धि! पर नई पीढ़ीके युवक-युवतियोंको इन विवेकहीन विरोधियोंके विरोधकी परवाह न कर व्यक्ति-मात्रकी समानता-स्वतन्त्रताके सिद्धान्तकी स्थापनाके लिए प्राणपणसे चेष्टा करनी चाहिए।

नारीकी सम्पत्तिकी सुरक्षा

जहाँ आर्य-सभ्यतापर गर्व करनेवाले, पूजनेका दावा करके भी नारीको पाँवकी जूती समझनेवाले, धर्म और संस्कृतिका नाम लेकर पाप और कुसंस्कारोंमें आकण्ठ डूबे भारतीय प्रतिगामी नारीको सम्पत्तिमें हिस्सा देनेके नाम तकसे बौखला उठते हैं, वहाँ यूरोपके अनेक देशोंमें—जिन्होंने कभी नारीको पूजने या विश्वका गुरु होनेका प्रमादपूर्ण दावा नहीं किया—नारीको सम्पत्तिपर अबाध अधिकार है और उसे सुरक्षित रखनेके लिए क़ानून बनाए जा रहे हैं। गत ७ नवम्बरको ब्रिटिश पार्लमेण्टने लेडी माउण्टबैटनको मिली १४००००० पौण्डकी सम्पत्तिका वे जैसे चाहें उपयोग करें, इस आशयके बिलका दूसरा वाचन पास किया है। ब्रिटेनके एटर्नी-जनरल सर हार्टले शाक्रोसके कथनानुसार इस बिलके पास होनेसे ब्रिटेनकी महिलाओंको मिली सम्पत्तिके उपयोगके सम्बन्धमें उन्हें अबाध अधिकार मिल जायगा। इसका उद्देश्य पति तकके द्वारा उनकी सम्पत्तिके संभावित दुरुपयोगको रोकना है।

सांस्कृतिक हिन्दू-राष्ट्र!

इस बार हिन्दू-महा (?) सभाका अधिवेशन दिसम्बरके अन्तिम सप्ताहमें कलकत्तेमें हुआ। अधिवेशनका उद्घाटन करते हुए 'वीर' सावरकरजीने फ़रमाया कि चूँकि देशकी ९० प्रतिशत जनता हिन्दू है, मंत्री हिन्दू हैं, वाइसराय-भवनपर हिन्दू-झंडा फहराता है, भारत 'हिन्दू-राष्ट्र' है! 'ग़ैर-साम्प्रदायिक शासन' को महासभाका ध्येय बताते हुए आपने उसका मिशन 'हिन्दुत्व और उसके सम्मानकी रक्षा और अखण्ड भारतकी स्थापना' बताया। हिन्दुओंकी एक शताब्दीकी क़ुरबानियोंके कारण देशके आज़ाद होनेकी दुहाई देकर आपने बताया कि कैसे (हिन्दुओंने!) १९४७ में अंगरेज़ोंको निकाल बाहर किया गया! महासभाके कार्यक्रमकी चर्चा करते हुए आपने बताया कि उसका पहला कार्य था देशको आज़ाद करना, सो हो ही गया (जैसे देश महासभाके प्रयत्नसे ही आज़ाद हुआ हो!)। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है शुद्धि और तीसरी अछूतोद्धार। कांग्रेसपर मुसलमानोंके सामने झुकनेका आरोप लगाते हुए तथा अभी भी चुनावमें मुसलमानोंके वोट पानेके लिए उन्हें खुश करनेमें लगे होनेका संकेतकर आपने कहा है कि हिन्दुओंके हितोंकी रक्षा वह नहीं, महासभा ही कर सकती है! अधिवेशनके सभापति डा० खरेका भाषण वीरजीकी शेखी-भरी शेखचिल्लीकी-सी बातोंसे ज़रा कम असंगत था। आपने महासभाके कारण-वश थोड़े समयके लिए सक्रिय राजनीतिसे दूर रहने (जिसका कारण बतानेका आपने कष्ट नहीं किया) के बाद अब 'सांस्कृतिक हिन्दू-राष्ट्र' की स्थापनाके उद्देश्यसे फिर सक्रिय राजनीतिमें प्रवेश करनेकी घोषणा की। महासभा साम्प्रदायिक संस्था नहीं है, यह दावा करते हुए आपने फरमाया कि यद्यपि पाकिस्तानका बनना महासभा न रोक सकी, तथापि उसीके दबावसे कांग्रेसने पृथक निर्वाचन हटाया और हिन्दीको राष्ट्रभाषा माना! 'वीर' सावरकरजीके सुर-में-सुर मिलाकर आपने भी फ़रमाया है कि पाकिस्तानकी स्थापनाको एक निश्चित तथ्य नहीं माना जा सकता। इन शब्दोंमें मानो

हिन्दू फैसिज़्म प्रतिध्वनित हो रहा है। जिस तरह हिटलरने जर्मनोंकी घरेलू दुरवस्थापर पर्दा डालनेके लिए जर्मन उपनिवेशों की माँगका भूत खड़ाकर जर्मनोंको युद्धोन्मत्त बनाया, उसी प्रकार हिन्दुत्वकी ओटमें महासभाई लीडर भी हिन्दुओंको पाकिस्तानको मिटा देनेकी बात कहकर पागल बनाना चाहते हैं। पर शायद अब इस बासी कढ़ीमें उबाल नहीं आने का!

फिर भी गांधीजीकी हत्या और देशमें हुए भीषण खून-खराबेके बाद—जिनकी ज़िम्मेदारीसे महासभा बच नहीं सकती—उपर्युक्त ढंगके उद्गार यह साबित करते हैं कि साम्प्रदायिक पागलपनका ज़हर देशमें कितना गहरा पैठ चुका है। इसकी या इसे फैलानेवालोंकी उपेक्षा ही इसका इलाज नहीं है। उपेक्षा करके हम मुस्लिम-लीगको भी उस साम्प्रदायिक ज़हरको फैलानेसे नहीं रोक सके, जिसका परिणाम हुआ लूट, हत्या, बलात्कार और पाकिस्तानकी स्थापना। अगर इसका कुछ भी सबक है, तो वह यही कि साम्प्रदायिकता एक मारक ज़हर है, जिसके साएमें किसी प्रकारका जनतंत्र कभी पनप नहीं कर सकता। महासभाकी 'राजनीति' प्रचलित अर्थोंमें राजनीति न होकर यही बर्बर, फेसिस्ट, खूनी, जहरीली दुर्नीति है। जिसे वह हिन्दू-राष्ट्र और हिन्दू-संस्कृति कहती है, उससे उसका एकमात्र आशय है शिवाजीकी हिन्दू-पद-पादशाही अथवा मुस्लिम-द्रोह (जैसे जर्मन फैसिस्टोंके 'राष्ट्रीय समाजवाद'का आधार था यहूदी-द्रोह)। इस संकीर्ण और झूठे प्रचारमें न कहीं हिन्दूपन है, न सांस्कृतिकता। हर समझदार भारतीयका यह फर्ज़ है कि वह इस झूठे और हानिकर प्रचारका विरोध करे। भारतके इतिहासकी सामान्य जानकारी भी जिन्हें है, उन्हें यह बतानेकी ज़रूरत नहीं कि यह देश कभी भी अकेले हिन्दुओंका नहीं रहा। आज जिसे दुर्बुद्धि हिन्दू-नेता (!) अज्ञानवश हिन्दू-संस्कृति कहते हैं, वह कदापि हिन्दू-संस्कृति नहीं है। आर्योंके आक्रमण (जिसे हम 'आगमन' कहनेके आदी हो गए हैं!) के बादसे न-जाने कितनी जातियों, मतों और सभ्यता-संस्कृतियोंका समन्वय यहाँ हुआ है। आर्य (ब्राह्मण), यूनानी, बौद्ध, जैन, वैष्णव, शैव, इस्लाम, ईसाइयत—सभी मत यहाँ अपने-अपने समयमें पनपे और फैले हैं तथा हिन्दू, शक, हूण, सीथियन, यूनानी, मंगोल जातियों, वर्णों और रक्तोंका सम्मिश्रण यहाँ हुआ है। आजकी हिन्दी या संस्कृत तक अरबी, फारसी, ग्रीक, पुर्त्तगीज़, फ्रांसीसी और अंगरेज़ी आदिसे समृद्ध हुई हैं। हमारी पोशाक, चित्र, संगीत और स्थापत्य-कलाओंने ग्रीक, मुग़ल, फ्रांसीसी और अंगरेज़ी कलाओंसे बहुत-कुछ ग्रहण किया है। इनमें विशुद्ध हिन्दुत्व खोजना या इन्हें सिर्फ़ 'हिन्दू' सांस्कृतिके नामसे पुकारना पागलोंके सिवा किसका काम हो सकता है? यदि वास्तवमें महासभाका हिन्दू-हितका खयाल है, तो वह उसे जात-पांत, बाल और बहुविवाह, पर्दा, दहेज, वेश्यावृत्ति, देवदासियां, विवाह और मृतक-भोज आदिकी बुराइयोंसे मुक्तकर पहले संस्कृत और संगठित करे। अखण्ड भारत और हिन्दू-राष्ट्रके सब्जबाग दिखाकर उसकी नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक अधोगतिपर पर्दा डालनेकी कोशिश करना भारी आत्म-प्रवंचनाके सिवा कुछ नहीं है।

सम्मेलनके सभापतिका भाषण

अखिल-भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका सैंतीसवां अधिवेशन इस बार दिसम्बरके अन्तिम सप्ताहमें हैदराबाद-दक्षिणमें हुआ। आयोजकोंने क्या समझकर हैदराबाद और सभापतित्वके लिए पं० चन्द्रबलीजी पांडेको चुना, यह कहना कठिन है। पर यदि इस चुनावके पीछे परोक्ष रूपसे भी यह भावना रही हो कि उर्दूके गढ़ (और ध्वस्त मुस्लिम-सामन्ती शासनके क्रीड़ाक्षेत्र) हैदराबादमें जाकर हिन्दीकी दुन्दभी बजाई जाय (और वह भी हिन्दी-हिन्दू-हिन्दुस्तानके स-र-ग-ममें), तो निश्चय ही इसपर किसी भी विचारशील हिन्दी-भाषा-भाषी को खुशी या गर्व नहीं होना चाहिए। अब हिन्दी सिर्फ़ हिन्दुओं अथवा हिन्दी-भाषा-भाषियोंकी ही नहीं, उस ग़ैर-साम्प्रदायिक राष्ट्रकी भाषा है, जिसमें सिख, मुसलमान, ईसाई, गोरे, पहाड़ी और आदिवासी आदि रहते हैं और जिनकी अपनी-अपनी बोलियां एवं समुन्नत भाषाएँ हैं। हमें आज इन सबके सहयोग-सद्भावसे ही भावी राष्ट्रभाषाका निर्माण एवं उसके विविध अंगोंकी पुष्टि-पूर्ति करनी है। पर हमें सखेद स्वीकार करना पड़ता है कि सम्मेलनके विद्वान सभापतिका भाषण पढ़कर हमें निराशा ही हुई। ७२ पृष्ठोंके अपने भाषणमें जितना ज़ोर उन्होंने हिन्दू-संस्कृति, अंकों, अक्षरों और नागरी नाम तथा उर्दू-हिन्दुस्तानीके खिलाफ़ हिन्दीकी वकालत करनेमें दिया है, उसका एक सहस्रांश भी हिन्दीकी दरिद्रता, कमियों एवं भावी दायित्वपर नहीं। हमें तो आश्चर्य है कि संविधान-परिषद द्वारा हिन्दीके राष्ट्रभाषा घोषित कर दिए जानेके बाद भी सभापतिजीको 'हिन्दी हिन्दकी राष्ट्रभाषा है और हिन्दुस्तानी उर्दू ही' इसके लिए 'पुष्ट प्रमाण' देने तथा 'नागरीका ऐतिहासिक महत्त्व और श्रेष्ठता' समझाने

का कष्ट क्यों करना पड़ा? ७२ पृष्ठोंमें से ७० पृष्ठोंमें 'हिन्दीकी क्षमताको सबके सामने ला खड़ी करने' के बाद सभापतिजीने 'हिन्दीकी दरिद्रता' को स्वीकार किया है! पर उसे दूर करनेके उपाय या मार्ग बतानेके बजाय आप 'कुछ-न-कुछ वह है अवश्य' कहकर 'देवीकी आराधना' और 'व्रत'में मोहाभिभूत हो केवल इतना ही कर सके हैं कि 'कोश और व्याकरणका अभाव पूरा हो'! आपके खयालसे इतनेसे ही बड़े-से-बड़ा विद्याभिमानी भी हमारी किसी भी विषयकी पुस्तकको पढ़कर ललककर बोल उठेगा—'हा! यह अपनी भाषामें न हुई!' (पर ऐसा हो कैसे?)

हिन्दी और हिन्दीवालोंका दायित्व

पर हमें यह देखकर खुशी और सन्तोष हुआ कि सभापतिजीने अपने भाषणमें जो नहीं कहा, उसकी बहुत-कुछ पूर्ति उसके उद्घाटनकर्त्ता मध्य-प्रान्तके प्रधान-मन्त्री पं० रविशंकर शुक्लने कर दी। तुलसी और सूर, कबीर और नानक, दयानन्द और गांधी तथा जनता और भारतकी इस वाणीमें भारतीयताकी आत्माका दर्शन करनेवाले शुक्लजी एक सक्रिय कार्यकर्त्ता एवं दूरदर्शी राजनेता भी हैं, इसीलिए उन्होंने यह भी कहा—

"...संविधान-सभा द्वारा राष्ट्रभाषाके सिंहासनपर पदारूढ़ कर दिए जानेके बाद हिन्दी अब केवल हिन्दी-भाषियोंकी ही भाषा नहीं रही; अब यह समूचे देशकी सम्पत्ति बन चुकी है।....हिन्दीके मस्तकपर राजमुकुट पहनानेका जो निश्चय किया गया है, उसका क्या अर्थ है, इससे कौन-कौन-सा नया उत्तरदायित्व आ पड़ा है और उनका निर्वाह किस तरह हो, यही, मैं समझता हूँ, इस अधिवेशनके सम्मुख आजका मुख्य कार्य होगा।.... अब हिन्दी चाहे भी तो अपने संकुचित दायरेमें नहीं रह सकती। उसे एक कुटुम्बके नायककी तरह औरोंकी इच्छा-अनिच्छा, आवश्यकताओं, कठिनाइयोंका पहले ध्यान रखना पड़ेगी।...हिन्दीका यह ठोस कार्यका युग है।...उसे बाज़ार और शालाओंसे लेकर धारा-सभा, प्रयोगशालाओं और न्यायालयों तक पहुँचा दें। माँ भारतीका भंडार इस तरह लबालब भर दें कि वह सर्वोच्च शिक्षा, अनुसन्धान, शासन, कला, ज्ञान-विज्ञान, क़ानून इत्यादि सम्पूर्ण राष्ट्रीय और सामाजिक जीवनकी विविध और जटिलतम आवश्यकताओंकी पूर्ति कर सके। मुझे आशा और विश्वास है कि सम्मेलन हिन्दीकी सारी बिखरी शक्तियाँ बटोरकर उन्हें इस दिशामें अनुप्रेरितकर उनका सफल मार्ग-संचालन करेगा।...यह सर्वमान्य है कि शासन, कला, उद्योग, वाणिज्य और विज्ञानके क्षेत्रोंमें भारतवर्षकी एक ही शब्दावली होनी चाहिए।...आज परिस्थिति यह है कि विभिन्न हिन्दी-प्रान्तोंमें अलग-अलग पारिभाषिक शब्दकोष और पाठ्य-पुस्तकोंपर शक्ति और धन व्यय हो रहा है। इसी तरह विश्वविद्यालयोंमें मातृभाषा-माध्यम आ जानेसे लगभग प्रत्येक प्रान्तमें उच्चशिक्षाके विषयों पर पारिभाषिक और पर्यायवादी शब्द गढ़े जा रहे हैं।... अतः आवश्यक हो गया है कि एक ही दिशाके अनेक प्रयत्नोंका एकीकरण किया जावे और एक प्रामाणिक अखिल भारतीय पारिभाषिक शब्दकोषकी रचनाकी नींव डाली जावे।...हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि भावी हिन्दीके निर्माणमें हम अब अन्य भाषा-भाषी बन्धुओंका प्रभाव न रोक सकेंगे।"

क्या हम सब गंभीरतापूर्वक उपर्युक्त बातोंपर विचारकर उनपर अमल करनेकी कोई योजना बनायँगे? पर यह देखकर हमें दुःख होता है कि हिन्दीके हिमायती आज ठोस काम करनेके बजाय गाल बजानेमें ही अधिक संलग्न हैं। हिन्दीकी राजनीति उनके दिमागोंपर इस बुरी तरह हावी हो गई है कि उसकी भावी ज़िम्मेदारियोंके बारेमें कुछ करना तो दूर रहा, वे सोच भी नहीं सकते। सच पूछा जाय, तो हिन्दी और उर्दूमें अथवा हिन्दी और हिन्दुस्तानीमें उतना फर्क हर्गिज़ नहीं है, जितना कि आज दोनों ओरके अखाड़ियोंने ला दिया है। आज दोनों ओरसे व्यक्ति व्यक्तिमें, संस्था संस्थामें गांधीजी और जनताकी दुहाई देकर टक्कर लेनेकी भावना अधिक है, ठोस काम करनेकी बहुत कम—या बिलकुल ही नहीं। इसमें उन राजनेताओं और सरकारका भी कम दोष नहीं, जो बारी-बारीसे ऐसे लोगों एवं संस्थाओंकी पीठ ठोंक या सरकारी सहायताके टुकड़े फेंककर इस हानिकर प्रवृत्तिको जीवित रखते एवं अनुचित प्रोत्साहन देते हैं। आज हर समझदार नागरिकका फ़र्ज़ है कि वह हिन्दीको हिन्दू-संस्कृतिके झूठे दावेदारोंके ज़हरसे बचाय, व्याकरण और शब्दकोषके नामपर उसे क्लिष्ट एवं संकीर्ण न होने दे और साथ ही उसे उन राजनीतिक अखाड़ियोंके चंगुलमें भी न फँसने दे, जो स्वयं ज़िन्दा रहनेके लिए उसकी हत्या करनेपर तुले हुए हैं।

संयुक्त कर्णाटककी माँग

जिन परिस्थितियोंके कारण पश्चिम-बंगाल द्वारा बिहारके मानभूम, पुरुलिया आदिके बँगला-भाषा-भाषी भागों और सिखों द्वारा 'सिक्खिस्तान'की माँगको असामयिक और हानिकर बताकर भी जब कांग्रेसने उन्हींके कारण स्वतन्त्र

आन्ध्र-प्रान्तके निर्माणकी घोषणा की, तो अन्यन्य प्रान्तीयतावादियोंमें उसकी प्रतिक्रिया स्वाभाविक ही थी। फलतः कर्णाटक-प्रान्तीय कांग्रेसने संयुक्त कर्णाटककी माँग की और उसके बम्बई के मंत्री पाटिल, केन्द्रके मंत्री दिवाकर और केन्द्रीय तथा प्रान्तीय धारा-सभाओंके लगभग १८ सदस्योंने अपने पदोंसे त्यागपत्र दे दिए। इनकी माँग है कि मैसूर, कुर्ग तथा बम्बई और मद्रासके कन्नड़-भाषा-भाषी भागोंको लेकर संयुक्त कर्णाटक प्रान्तकी रचना की जाय। कांग्रेस-कार्यसमितिने कन्नड़-भाषा-भाषियोंकी भावनाओंका औचित्य स्वीकार करते हुए भी मैसूरके भविष्यकी वैधानिक कठिनाईके कारण अभी इस माँगको अनुचित एवं कांग्रेसमें फूट डालनेवाली बतलाया है। एक सीमा तक इस कथनमें तथ्य अवश्य है; पर साथमें यह भी मानना पड़ेगा कि भाषाके आधारपर प्रान्तोंके निर्माणको स्थगितकर कांग्रेस काफ़ी गलतफहमीका शिकार हो रही है। यदि आज ऐसा करना देशके लिए हितकर नहीं, तो आन्ध्रका निर्माण और सिरोहीका अंग-भंग करनेमें इतनी जल्दबाज़ी क्यों की गई? एक जगह कुछ और दूसरी जगह कुछ नीति बरतकर कांग्रेस स्वतः अपना और देशका अहित कर रही है। अच्छा तो यही हो कि इस सम्बन्धमें एक सर्वदेशीय नीति स्थिरकर उसीपर अमल किया जाय।

भीख माँगना ग़ैरक़ानूनी

घोषितकर बम्बई-सरकारने एक साहसपूर्ण क़दम उठाया है। सन्तोषका विषय है कि भीख माँगनेवालोंकी परिभाषामें उन साधु-संन्यासियोंको भी गिना गया है, जो एक प्रकारके सम्पन्न और सुविधाप्राप्त भिखारी हैं। पर ऐसा क़ानून पास करनेसे सरकारकी ज़िम्मेदारी भी बढ़ जाती है। क़ानून पास कर देनेसे ही तो भीख माँगना मिट नहीं जायगा। सरकारको उन परिस्थितियों—बेकारी और ग़रीबी—का इलाज भी करना होगा, जो आदमीको भिखारी बननेको मजबूर करती हैं। धर्मके नामपर चलनेवाली भीखको कठोरतापूर्वक बन्द करना होगा। साथ ही जो बच्चे, वयस्क, बूढ़े और अपाहिज भीख माँगते हैं, उनके आवास, जीविका तथा सहायताकी समुचित व्यवस्था करनी होगी। मैक्सिको-जैसे देशने इस मामलेमें अद्भुत सफलता पाई है। क्या हमारी केन्द्रीय सरकार भी इस ओर ध्यान दे उसी ढंगकी कार्यवाही करेगी?

धर्मादा-सम्पत्तिका नियन्त्रण

जिस तरह ग़रीब देशवासियोंका पेट काटकर लूटे गए धनपर आज अनेक पूँजीपति साँप बनकर बैठे हैं, उसी तरह सम्पन्न भिखारी भी मन्दिरों और मठोंकी धर्मादा-सम्पत्तिको हथियाकर गुलछर्रे उड़ा रहे हैं। 'धर्म' का नाम नत्थी होनेसे करोड़ों और शायद अरबोंकी इस सम्पत्तिका किसी भी शासनने ठीक-ठीक लेखा-जोखा तक भी नहीं किया। अधिकांशतया इस धनका कुछ परोपजीवियोंकी चर्बी बढ़ाने और धर्मान्धताके नामपर होनेवाली ठगी और दुराचारके अड्डोंको जीवित रखनेमें ही अपव्यय होता है। जब-तब इसके 'अधिकार'को लेकर खून, फौजदारी और मुक़द्दमेबाजी भी होती रहती है। आज जब देशमें भुखमरी, ग़रीबी और बेकारीका इतना बोलबाला है, क्या कोई भी समझदार शासन इतनी बड़ी सम्पत्तिका दुरुपयोग और धर्मके नामपर होनेवाले अधर्मका यह ढोंग जारी रहने दे सकता है? १९३७ में जब पहली बार कांग्रेसने शासन-सत्तामें हाथ बँटाया, तो इसके नियन्त्रणकी चर्चा चली थी; पर हुआ कुछ नहीं। अब जब कि शासन-सत्ता पूर्णतया कांग्रेसके हाथमें है, और जन-हितका प्रश्न भी अपने नग्न रूपमें उसके सामने उपस्थित है, इसके कठोर नियन्त्रण और सदुपयोगके लिए कांग्रेसी सरकारोंको अविलम्ब ध्यान देना चाहिए।

सर हरिसिंह गौड़

गत २५ दिसम्बरको हृदयकी गति बन्द हो जानेके कारण सागरमें सर हरिसिंह गौड़का देहान्त हो गया। इस समय आप ७७ वर्षके थे। नागपुर-हाईकोर्टके एक प्रसिद्ध बैरिस्टरके सिवा आप एक दूरदर्शी शिक्षाशास्त्री, समाज-सुधारक और कट्टर राष्ट्रवादी भी थे। १९१८ से २२ तक आप नागपुर म्युनिस्पैलिटीके अध्यक्ष रहे; १९२४ में दिल्ली-विश्वविद्यालयके सर्वप्रथम वाइस-चांसलर और मानद डी० लिट्० बने। क़ानून और विधानके साथ बौद्ध मतका भी आपने गहरा अध्ययन किया था। आपके लिखे हुए अनेक प्रामाणिक ग्रन्थ भारत ही नहीं, विदेशोंमें भी आदरसे देखे जाते हैं। १९२१ से ३४ तक आप केन्द्रीय असेम्बलीके सदस्य भी रहे। १९४६ में आपने अपनी जन्मभूमि सागरमें विश्वविद्यालयके लिए अपना सर्वस्व (लगभग २० लाख रुपए) दे दिया। आप ही उस विश्वविद्यालयके पहले वाइस-चांसलर थे। समाज-सुधारके क्षेत्रमें भी आप नारी-स्वातन्त्र्य एवं उसके समानाधिकार और हिन्दू-कोडके सुधारके अग्रणी समर्थक थे। आपके निधनसे देश और विशेष रूपसे मध्य-प्रांतको काफ़ी हानि हुई है।

श्री भँवरमल सिंघी द्वारा दी एलाएन्स प्रेस, कलकत्तामें मुद्रित और 'नया-समाज'-कार्यालय, ३३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्तासे प्रकाशित

जुलाई
१९५५
नया
समाज

दीपावली

के पुनीत अवसरपर

'नया समाज'

की

नई भेंट

कहानी-अंक

'नया समाज'के विशेषांकोंका हिन्दी-संसारमें अब तक इसलिए धाक नहीं रही है कि वे बड़े भारी भरकम और तड़क-भड़कवाले होते हैं; बल्कि इसलिए कि वे सुरुचिपूर्ण, उद्देश्यपूर्ण और शिक्षापूर्ण होते हैं। इसके नवनिर्माण-अंक, संस्कृति-अंक स्वास्थ्य-अंक, जनतंत्र-अंक, परिवार-नियोजन-अंक साहित्यांक आदिको जनताने इतना पसंद किया कि आजतक भी उनकी माँग बराबर बनी हुई है। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि इसका अगला विशेषांक :

कहानी अंक

इसी परम्पराकी रक्षा करनेवाला होगा। इसमें देश-विदेशकी चुनी हुई सुरुचिपूर्ण और उद्देश-परक कहानियाँ रहेंगी, जैसी आजकलके पत्र-पत्रिकाओंमें प्रायः कम ही सुलभ होती हैं।

आप यदि ग्राहक नहीं बने हैं, तो आज ही ८) भेजकर ग्राहक बन जायँ अपनी प्रति पहलेसे सुरक्षित करवा लें।

व्यवस्थापक, 'नया समाज', ३३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता - १

संचालक
नया समाज-ट्रस्ट

नया समाज

(स्वतन्त्र विचारोंका सचित्र हिन्दी-मासिक)

सम्पादक
मोहनसिंह सेंगर

विषय-सूची : जुलाई, १९५५

वार्षिक ८)] 'नया समाज'-कार्यालय, ३३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१ [एक प्रतिका ।।।)
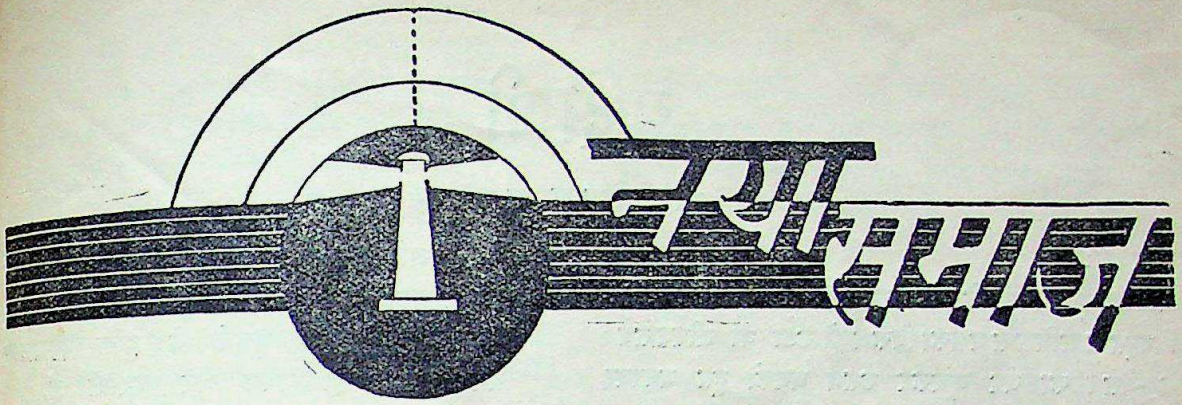
वर्ष ८ : खंड १] कलकत्ता : जुलाई, १९५५ [अंक १ : पूर्णांक ८५

मेघ-दुन्दुभि

श्री रामइक़बालसिंह 'राकेश'

नीलांजनके समान कृष्ण अजिन धारणकर,
दिग्‌दिगंत, अंतरिक्ष, अम्बरको संवृत कर ;
इस गिरिसे उस गिरिपर रुक-रुककर, आगे बढ़,
उमड़ चले काम-रूप श्याम मेघ दल-के-दल।

तड़ित-रूप कंचनके कोड़े-से पिङ्गकांत,
बार-बार हो-होकर ताड़ित, कंपित, अशांत ;
किया मेघके सुरमें अम्बरने आर्त्तनाद,
सागर, वन, शैल-शृंङ्ग-कांप उठे थर-थर-थर ।

झूम उठे नयन-हरन लता-गुल्म-झाड़ हरे,
तरुकी पर्णाञ्जुलियोंमें प्रसून-हार भरे ;
भूमण्डल-रूप कमल खिले गंधसार-भरे,
क्षण-क्षणमें रस-फुहार, कण-कणमें प्यार भरे।

शीतल कर्पूर-पत्र-सदृश पवन मन-भावन,
संध्या-चंदन-रंजित उत्फुल्लित गगनाङ्गन ;
मेघ-कुंभसे सिंचित निष्कलंक वसुधानन,
ऐसे क्षण दुन्दुभि बन घहरो मम जीवन-घन।

कल्लोलाकुल प्रपात, हिल्लोलित वन-कानन,
इन्द्रगोपसे चित्रित ताम्रारुण भू-प्राङ्गण ;
पहन नील सिंधु वसन आया रसमय सावन,
गाओ मम मन-विहंग मधुर गान उन्मादन।

सारंगी, बेला, सरोद, वीणा, वंशी, घन,
किन्नरी, विपञ्ची, मधुस्यन्दीके स्वर-मादन ;
भर न सके मेरे मन-अम्बरमें लय-कंपन,
मंद्रित होने दो अब घन-भेरीको घन-घन।

यज्ञ-कुंड भुवन, अग्नि मेघ, पवन ईंधन है,
विद्युत् अंगार-ज्वाल, विस्फुलिंग गर्जन है ;
मंत्रपूत हवन-द्रव्य अमृत वारि-वर्षण है,
आहुति देते जिसमें मेरे स्वर-व्यंजन हैं।

आज, जबकि मंगलमय भुवन-पंथ पंक-लग्न,
आज, जबकि जीवनका कनक-पद्म धूलि-मग्न ;
आज, जबकि मानवताका सुमेरु-शृंग भग्न,
प्राणोंमें उमड़ो, घन, घुमड़ो तुम मंदिर मन्द्र।

जन-युगका मन:क्षितिज तपन-तप्त मरु-समान,
धधक रहा वैश्वानर जिसमें बनकर मसान ;
चलते निशिदिन जिसमें चक्रवात घूणमान,
संजीवन छिड़को, हो जड़ चरिष्णु प्राणवान।

मेरे स्वर, युग-प्रमाण, नवनूतन युग-दर्शन,
सरल सुगम, परम अगम, अम्बर-गुण, गूढ़ गहन ;
हरण करो ग्रहण-ग्रस्त जन-गणका दुख-दूषण,
बरसाओ नेह-नीर, सिक्त करो अन्तर्मन।

गमक उठो कुडुम-कुडुम घनमें मम दुंदुभि-स्वन,
भुवन-मेखलामें भर छंद, वर्ण, मधुर ध्वनन ;
गरलदंत पाशवताका पन्नग हो नतफन,
पान करें स्वर्गपेय च्यवन-रूप नर-वामन।

शब्द-अस्थि-पंजरमें प्राण-मेरुदंड जुड़े,
सरल भाव-व्यंजनसे भग्न लोक-कंठ भरे ;
जीवन-रण-स्यन्दन ऋत-पथपर संचरण करे,
अंतश्चेतन मानस संशय-तम क्षमण करे।

यक्षिणी

श्री सिद्धनाथ कुमार

पुरुष-स्वर :

आषाढ़स्य प्रथमदिवसे था मेघोंसे घिर गया गगन जब,
विरहतप्त अभिशप्त यक्षका विकल हो उठा था जीवन तब।
जड़-चेतन का भेद भूलकर उसने घनको दूत बनाया,
अपने उरकी व्यथा-कथा को मेघदूतसे शीघ्र सुनाया।

स्त्री-स्वर :

किंतु किया क्या यक्ष-प्रियाने, कालिदासने नहीं बताया,
विरह-विदग्धाने था कैसे अपने मनको धीर बंधाया?
क्या न देखकर मेघ गगनमें उमड़ा था उसका भी अंतर?
क्या न हंसको या कि पवनको भेजा अपना दूत बनाकर?

पुरुष-स्वर :

भला भेजती कहाँ, उसे था ज्ञात नहीं है यक्ष कहाँ पर!
विवश विरहिणी का अंतर रह गया आह, होगा घुट-घुटकर।
उमड़-उमड़कर अलकामें जब छाए होंगे पागल बादल,
गूंज उठी होगी तब अलका होकर मस्त-मगन औ' विह्वल।

(समवेत गीत)

बादरा घिरे हैं, आओ गाएँ झूम-झूमके!
बादरा घिरे हैं मेघसे फुहार चू रही,
प्यारकी फुहार आज जग-उरको छू रही,
बादरा मगन हैं आज सबको चूम-चूमके!
बादरा घिरे हैं आज कुंज-कुंज गा रहा,
बादरा घिरे हैं हर्ष सबपै आज छा रहा;
हम भी गाएँ-झूमें कुंज-कुंज घूम-घूमके!

पुरुष-स्वर :

अलकामें उल्लास-हासका लहराता होगा मधु-सागर,
यक्ष और यक्षिणियाँ तिरती होंगी उसकी लहर-लहरपर!
मिलन-पर्व आनंद-मग्न हो सबने वहाँ मनाया होगा,
किन्तु शापिता यक्ष-प्रियाका उर सहसा भर आया होगा।

स्त्री-स्वर :

आह यक्षकी प्रिये, अभागिन तुझ-सी और न कोई होगी,
अलकाकी वैभव-नगरीमें विरह-व्यथा तूने ही भोगी।
सुखी जनोंके बीच वहाँपर तू थी केवल मंदभागिनी,
हास-हर्षके कोलाहलमें विकल अकेली करुण रागिनी!

यक्षिणी (गीत) : मेघ आए, तुम नहीं आए!
प्रथम दिन आषाढ़का, नभमें घिरे बादल,
हो रहा है विकल अंतर और भी व्याकुल;
भरे थे जो नयन, पलमें और भर आए!
बने हैं अभिशप्त हम-तुम, कब मिलेंगे फिर?
कब न जाने हृदयके सरसिज खिलेंगे फिर?
एक पलकी भूलने ये दुःख दिखलाए!
घन बरसते हैं, नयन मेरे बरसते हैं,
प्रिय, तुम्हारे दरसको प्रतिपल तरसते हैं,
तुम न आए, किंतु सुधि-क्षण नयनमें छाए!

पुरुष-स्वर :

यक्ष-प्रियाकी पलकोंमें घिर-घिरकर आए होंगे स्मृति-घन
जाग उठे होंगे कितने ही भूले-बिसरे मादक मधुक्षण।
कितनी बार मेघ उमड़े थे यक्ष-भवनके उच्च शिखरपर,
कितनी बार खिले थे पुलकित यक्ष-यक्षिणीके मृदु अंतर!

स्त्री-स्वर :

विरह-घड़ीमें वहीं मधु-दिवस चमक-दमक पलकोंमें आए,
यक्ष-प्रियाकी दग्ध-ज्वलित जीवन-धरतीपर रस बरसाए।
पिछले वर्ष संग प्रियतम के गाए थे उसने जो गायन,
उनकी ही गूँजोंमें विस्मृत हुए यक्षिणीके श्लथ तन-मन!

यक्ष-यक्षिणी (गीत) :

बरसती है आज रसकी धार, हम-तुम भी नहाएँ!
प्यार अम्बरका धरापर है बरसता,
धराका उर प्यार पाकर है सरसता,
धरा-अम्बर हैं मनाते प्यार का त्योहार, हम-तुम भी, मनाएँ!
गगन - कुंजोंमें थिरकती मेघमाला,
नाचती बिजली कि जैसे एक बाला,
व्योममें है रच रहा नव रासका व्यापार, हम-तुम भी रचाएँ!

पुरुष-स्वर :

सुधिके क्षण मधुमय जीवनके आज बन गए हैं कुछ सपने,
उनकी स्मृतियोंसे है क्षण-क्षण लगा विरहिणीका उर तपने।
जीवनमें जो आग लगी है, वर्षा उसको बुझा न पाती,
रसकी फुहियाँ, सुधिकी घड़ियाँ और उसे उत्तप्त बनातीं।

स्त्री-स्वर :

क्षण-क्षण लगता है युग-युग-सा, शेष कटे कैसे चौमासा?
यक्ष-प्रिया कुछ समझ न पाती, दग्ध हो रही उसकी आशा,
वैभवकी विशाल नगरीमें कोई उसे न धीर बँधाता,
वह रोती है, पर कुबेरकी नगरीका जन-जन है गाता।

(समवेत गीत) : रास रचाएँ, रास रचाएँ!
हम अलकाके वासी आएँ, हिल-मिल रास रचाएँ!
फूलोंकी नगरी मनभावन अलकापुरी हमारी,

हास-विलास रास रँगराती सब लोकोंसे न्यारी ;
अपने गीतोंकी मधु-ध्वनिसे इसको आज गुजाएँ !
धनपतिकी नगरी सुखदायिनी सब ऋतुओंकी रानी,
राग-रंजिता सुमन-शोभिता करती है मनमानी,
यौवन-रस-मदमाते हम सब आएँ, झूमें-गाएँ !

स्त्री-स्वर :
कुंज-कुंजमें, भवन-भवनमें अलका रास रचाती गाती,
देख-देखकर जिसे विरहिणी यक्ष-प्रियाकी दहती छाती।
पल-भरको भी यक्ष वहाँ आता, सपनेमें उसे बुलाती,
किंतु स्वप्न भी देख न पाती, व्याकुल आँखें भर-भर आतीं।

पुरुष-स्वर :
कभी तूलिका ले हाथोंमें प्रियतमके नव चित्र बनाती,
किन्तु न बन पाती आकृति भी, अश्रु-बिंदुसे लिप-पुत जाती।
कभी बीनके तार छेड़ती, आहत अंतरको सहलाती,
कभी स्वरोंमें फूट निकलती, जब अपनेको रोक न पाती।

यक्षिणी (गीत) : मेघ बोलो कौन-सा संदेश लाए ?
प्राण-प्रियके पास से क्या आ रहे हो ?
कौन - सा सन्देश बोलो, ला रहे हो ?
कहाँ है प्रिय, क्या कहा उसने, बताओ,
सुन जिसे मन आज कुछ धीरज बँधाए !
मौन क्यों हो, क्या न मुझसे कुछ कहोगे ?
दग्ध उर-हित स्नेहके रसमें बहोगे ?
चातकी मैं चाहती हूँ स्वातिकी दो बूंद केवल,
क्या न प्रियके पाससे तुम उसे लाए ?

पुरुष-स्वर :
रही पूछती यक्ष-प्रिया निज रुद्ध कंठ औ' द्रवित नयनसे,
उमड़-घुमड़कर मेघ झाँकता रहा सदा ही वातायनसे।
किंतु विरहिणीको उसने क्या दिया सँदेसा, नहीं ज्ञात है,
और यक्षिणीने भी समझा उसे या नहीं, नहीं ज्ञात है।

स्त्री-स्वर :
किन्तु हमें है ज्ञात कि बादल गए, यक्षिणी रही बरसती,
रही बरसती, रही बरसती, स्नेह-बूँदके लिए तरसती !
बीत गए युग, किंतु अभी तक पड़ी हुई है वह हतभागिन,
मिलन-घड़ीकी आस लगाए बैठी है विरहिणी अभागिन !

पुरुष-स्वर :
आषाढ़स्य प्रथमदिवसे अब भी बादल घिर-घिर आते हैं,
दूर किसी अज्ञात रामगिरिसे संदेसा ले आते हैं ;
विह्वल होती यक्ष-प्रिया है, भींग-भींग जाता है अंचल,
बिखर-बिखर जाती दिशि-दिशिमें करुणरागिनी आकुल चंचल

यक्षिणी (गीत) : क्या बरसती ही रहूँगी मैं ?
मेघ आते, बरस जाते,
बरसकर फिर बिखर जाते,
मैं विरहिणी युग-युगोंकी, क्या बरसती ही रहूँगी मैं ?
बरसते घन, धरा गाती,
तपन मिटती, तृप्ति पाती,
मैं अभागिन चिर-पिपासित, क्या तरसती ही रहूँगी मैं ?

पावस-स्वागत

पं० गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'

स्वागत हे पावस, रस लाये !
प्राण चले थे जग-रोगीके, तुमने आज बचाये !
काले जलधर सजल आ रहे,
दल-के-दल सब ओर छा रहे ;
अम्बरमें बक-ध्वजा दिखाकर,
धरतीपर अधिकार ला रहे ;
नीरसता अब रह न सकेगी,
यही गरजते गान गा रहे।
मोर-नृत्य दादुर-वाणीको एक साथ उकसाये !
कितने ही पथिकोंकी नारी,
रहीं विरहिणी ही बेचारी ;
उनके कान्त किसी काननमें
कहीं फँसे, निशि भी अँधियारी ;
बड़ी दया की तुमने रह-रह
जो बिजली की ज्योति प्रसारी ;
अबला उरमें प्रेम और भय एक साथ उपजाये !
रहने दो, रहने दो पावस,
उचित नहीं दिन-रात अमावस ;
सूरज-चांद सभीको मारा,
अन्धकारका यह कैसा रस ?
छोटा - सा जुगनू मेटेगा,
कैसे तम ? उसका कितना बस ?
कितना ही संगठन करे वह शक्ति असीम बढ़ाये !
ताल-तलैयाँ उमड़ चली हैं,
नदियाँ आपेमें न रही हैं,
सागर-पथमें जल इतना है,
सागर देखो जहाँ, वहीं है,
भाँति - भाँतिके कूजनकारी,
जल-विहंगोंकी केलि बढ़ी है ।
लहराते हैं शस्य धानके पवनालिङ्गन पाये !
कमल, मल्लिका, कुंद कुसुमवर,
तिलक, मालती, चम्पक सुन्दर ;
भाँति - भाँति सुमनावलि शोभित,
गिरिने पाया मुकुट मनोहर ;
धन्यवाद वह देता तुमको
पिक-चातक में भर अपना स्वर,
ऊंचा सिर यों ही कर उसका नभ-सम्बन्ध बढ़ाये !
धूलि धँसी पानीके भीतर,
चक्रवाक छिप जाए कहींपर ;
राग धराका उभर पड़ा है,
बीरबहूटी का स्वरूप धर ;
उससे नभ मिलता है मानो
बादलके कन्धोंपर आकर हास-विलास बढ़ाये !
स्वागत हे पावस, रस लाये !

क़ानून और सत्ता

प्रिन्स क्रोपाटकिन

"जब जनता अज्ञानके अंधकारमें होती है और आदमियों के दिमाग़ उलझे हुए होते हैं, तो क़ानूनोंकी संख्या बढ़ा दी जाती है और प्रत्येक कार्य शासन-व्यवस्थाके सुपुर्द कर दिया जाता है! चूँकि हर क़ानून एक नई भ्रांति होती है, जनता क़ानूनसे उस चीज़की आशा करती है, जो ख़ुद उसके द्वारा, उसकी अपनी शिक्षा और जीवनसे ही उद्‌भूत हो सकती है।"

ये वाक्य किसी क्रान्तिकारीके नहीं हैं—सुधारकके भी नहीं, ये शब्द हैं डैलोय नामक एक क़ानूनदाँके, जिसने फ्रांसीसी क़ानूनोंको बनाया है। ये विचार उस आदमीके हैं, जो ख़ुद क़ानूनोंका निर्माता और प्रशंसक था। फिर भी ये शब्द हमारे समाजकी अनियमित दशाका सच्चा चित्र खींचते हैं।

वर्तमान समाजमें जनता इस आशामें रहती है कि उसके कष्टोंका निवारण एक नए क़ानूनके बनते ही हो जायगा। किसी अहितकर और कष्टदायक चीज़को स्वयं बदल डालने के बजाय, जनता उसमें परिवर्त्तन करनेके लिए क़ानूनकी माँग पेश करती है। यदि दो गाँवोंके बीच सड़क अच्छी हालतमें नहीं है, तो किसान कहता है—'देहाती सड़कोंको ठीक करनेके लिए एक क़ानून बनना चाहिए।' अगर एक जमादार अपने अधीनस्थ मज़दूरोंकी ग़ुलामीकी मनोवृत्ति अथवा निर्जीव अवस्थाका बेजा फ़ायदा उठाकर उनमेंसे किसी एककी बेइज्ज़ती कर देता है, तो अपमानित व्यक्ति कहता है—'जमादारोंको अधिक शिष्ट बनानेके लिए एक क़ानून होना चाहिए।' यदि कृषि अथवा व्यवसायमें मन्दी है, तो किसान और व्यापारी कहते हैं—'हमें एक संरक्षण क़ानूनकी आवश्यकता है।' बड़े-बड़े व्यापारियों से लेकर एक छोटे जुलाहे तक, ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं, जिसको उसके बड़े अथवा छोटे रोज़गारकी रक्षाके लिए क़ानूनकी ज़रूरत न हो। अगर मिल-मालिक मज़दूरीकी दर घटा देता है, अथवा कामके घंटे बढ़ा देता है, तो राजनीतिक नेता इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि इस प्रकारके सब अन्यायोंको रोकनेके लिए एक क़ानून बनना चाहिए। संक्षेपमें प्रत्येक चीज़को ठीक करनेके लिए बस एक क़ानून चाहिए! एक क़ानून फ़ैशनोंके लिए चाहिए, पागल कुत्तोंको मारनेके लिए भी एक क़ानूनकी दरकार है, मनुष्यको नैतिकता सिखलानेके लिए एक क़ानून हो और एक उन सब बुराइयों को दूर करनेके लिए भी, जिनका कारण स्वयं मनुष्यकी कायरता और काहिली है।

इस मनोवृत्तिके कारण क्या हैं? हमारी शिक्षा, जो बचपनसे ही हमारी क्रांतिकी भावनाको कुचलती रहती है और सदा सत्ताके आगे झुकना सिखाती है। और हमारा यह समाज भी इसके लिए कम ज़िम्मेदार नहीं। जन्मसे लेकर मृत्यु तक—हमारी शिक्षा, विकास, प्रेम-संबंध, मैत्री—सभी सामाजिक सम्बन्ध किसी-न-किसी क़ानूनसे नियमित होते हैं। फल यह हुआ है कि हम लोग गुमराह हो गए हैं और अगर यही स्थिति क़ायम रही, तो हम अपनी सब प्रेरक-शक्तियाँ—यहाँ तक कि अपना विवेक भी खो देंगे। आज तो हमारा समाज यह भी नहीं सोच पाता कि बिना क़ानूनके शासनके प्रजातंत्रीय सरकार और चंद शासकोंके बग़ैर वह जीवित भी रह सकेगा या नहीं। अगर समाज दासताके कारागारसे मुक्त भी हो गया, तो उसका सबसे पहला कार्य हुआ 'कारागारका पुनर्निर्माण।' फ्रांसीसी राज्यक्रान्तिके बाद 'स्वाधीनताका प्रथम वर्ष' एक दिनसे अधिक नहीं चल सका, क्योंकि उसकी घोषणा करनेके दूसरे दिन ही जनताने अपनेको क़ानून और सत्ताके अधीन सौंप दिया।

सचमुच हज़ारों वर्षोंसे हमारे शासकोंने केवल एक ही बात हमारे कानोंमें दुहराई है—क़ानूनका आदर करो, सत्ताकी आज्ञा मानो। इसी वातावरणमें माता-पिता अपने बच्चोंको पालते हैं। स्कूल भी इन्हीं विचारोंको पल्लवित करते हैं। कृत्रिम विज्ञानके विच्छिन्न भागोंको बच्चोंके सामने इस चालाकीसे रखा जाता है कि मानव-जीवन के लिए क़ानूनकी आवश्यकता प्रकट हो। 'क़ानूनकी आज्ञा मानना' धर्म बना दिया जाता है। नैतिकता और अध्यापकोंकी आज्ञाओंको अभिन्न कहकर उन्हें दैवी क़रार दिया जाता है। स्कूलमें वह विद्यार्थी अच्छा माना जाता है, जो क़ानूनके अनुसार चलता है और क़ानूनके ख़िलाफ़ बग़ावत करनेवालोंका विरोध करता है।

इसके बाद जब ये बालक सामाजिक जीवनमें प्रवेश करते हैं, तो समाज और साहित्य प्रत्येक क्षण उन्हीं धारणाओं को दृढ़ करते रहते हैं—ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार पानीका निरन्तर प्रवाह पत्थरमें गड्ढा कर देता है। इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्रकी पुस्तकें इसी क़ानूनके प्रति तो श्रद्धा से भरी पड़ी हैं। और तो और भौतिकशास्त्रमें भी—जो दृष्टिगोचर वस्तुओंपर आधारित ज्ञान है—अर्थशास्त्रके कृत्रिम सिद्धान्तोंका प्रवेशकर उसे इस कार्यमें सहायक बना

दिया गया है। इस प्रकार क़ानूनके प्रति श्रद्धा बनाए रखनेके लिए समाजने हमारे विवेकको ही भूल-भुलैयाँमें डाल दिया है। और अख़बार भी यही काम करते हैं। उनमें कोई भी लेख ऐसा नहीं होता, जो क़ानूनके लिए आदरकी शिक्षा न देता हो, फिर चाहे अगले कालममें हीं क़ानूनकी निष्क्रियताके प्रमाण दीख पड़ें और यह स्पष्ट हो जाय कि शासक क़ानूनको किस प्रकार दलदलमें घसीटते हैं। इस सबका नतीजा यह हुआ है कि क़ानूनकी गुलामी एक गुण हो गया है। मुझे तो शक़ है कि शायद ही कोई ऐसा क्रान्तिकारी रहा होगा, जिसने अपने प्रारम्भिक जीवनमें क़ानूनोंकी 'रक्षा'की बात न की हो, और उसी साँसमें 'क़ानून' के दोषोंके विरुद्ध आवाज़ न उठाई हो। इस तथ्यको वे भूल जाते हैं कि ये दोष तो क़ानूनके अवश्यम्भावी परिणाम हैं।

कला भी विज्ञानके साथ स्वर-में-स्वर मिलाती है। मूर्तिकार, चित्रकार अथवा संगीतज्ञ अपनी क़लम अथवा छेनीसे क़ानूनकी रक्षा करते हैं और क़ानूनके विरोधमें सिर उठानेवालोंको दबानेके लिए सदा तत्पर और उत्सुक रहते हैं! क़ानूनकी देवीके लिए मंदिर बनाए जाते हैं। तथाकथित क्रान्तिकारी उस देवीके पुजारियोंपर हाथ उठाने से डरते हैं। और क्रान्ति किसी प्राचीन व्यवस्थाको ढहाती है, तो ये क्रान्तिकारी लोग एक नए क़ानून द्वारा ही उस क्रियाको पवित्र करते हैं।

रोज़मर्राके व्यवहारको संचालित करनेके लिए नियमोंका यह अस्त-व्यस्त ढेर—जिसे हम क़ानून कहते हैं—हमें गुलामी, सामन्तशाही और राजशाहीसे विरासतमें मिला है। अब तो इसने उन पत्थरोंके दैत्योंका रूप ले लिया है, जिनके सामने मनुष्यकी बलि दी जाती थी और जिनको असभ्य आदमी इस डरसे स्पर्श भी नहीं करते थे कि कहीं उनके ऊपर वज्रपात न हो जाय!

क़ानूनकी यह नई उपासना मध्यवर्गके हाथमें सत्ता आनेके बाद, यानी फ्रांसकी राज्यक्रान्तिके बाद विशेष सफलतापूर्वक स्थापित हुई है। प्राचीन व्यवस्थामें आदमी क़ानूनकी कम चर्चा करता था। हाँ मौण्टे, वौल्टेस्क्यूर, रूसो अवश्य बादशाही स्वेच्छाके विरोधमें क़ानूनका नाम लेते थे। उन दिनों राजाकी अथवा उसके दासोंकी आज्ञा मानना आवश्यक था—अन्यथा सज़ा अथवा फाँसी थी। लेकिन क्रान्तिके दौरानमें और उसके बाद जब वकीलोंके हाथमें शक्ति आई, तो उन्होंने क़ानूनकी पवित्रता स्थापित करनेका भरसक प्रयत्न किया, क्योंकि इसीके ऊपर उनकी उन्नति निर्भर थी। मध्यवर्गने आम जनताके विद्रोहको रोकनेके लिए क़ानूनका ही सहारा लिया। जनताके क्रोध और क्षोभसे बचनेके लिए धार्मिक पुजारियोंने तुरन्त ही इस क़ानूनको पवित्र भी घोषित कर दिया! और अन्तमें भोली-भाली जनता ने भी वर्तमान व्यवस्थाको पहलेकी हालतसे बेहतर समझकर स्वीकार कर लिया।

सम्पूर्ण स्थितिको भली भाँति हृदयंगम करनेके लिए हमें कल्पना द्वारा १८वीं शताब्दीमें पहुँचना होगा। फ्रांसकी राज्यक्रान्तिसे पूर्वकी स्थिति तो सर्वविदित है। सामन्तों द्वारा निरीह जनतापर अनगिनती जुल्म ढहाए जाते थे। उस भयावह स्थितिमें वास्तवमें किसानको इन शब्दोंसे बड़ी राहत मिली होगी—'क़ानूनके सामने सब बराबर हैं। प्रत्येक वर्गके व्यक्तिको क़ानूनकी समान रूपसे आज्ञा माननी चाहिए।' ग़रीबोंके साथ जानवरोंसे भी बदतर व्यवहार किया जाता था। 'अधिकार' शब्दसे वे अनभिज्ञ थे। अपने मालिकके अत्यन्त घृणास्पद और वाहियात कारनामोंके विरोधमें उन्हें कभी न्याय नसीब नहीं हुआ था। बस एक ही उपाय उनके पास था कि वे उसे मार डालें और स्वयं फाँसी पर चढ़ जायँ। अब जनताने देखा कि इस नई घोषणा द्वारा—चाहे सिद्धान्तमें ही सही—उसके और मालिकोंके अधिकार समान हैं। चाहे यह क़ानून कुछ भी हो, इसके द्वारा आशा बँधी थी कि मालिक और किसानके ऊपर इसका प्रभाव समान रूपसे पड़ेगा, न्यायाधीशके सामने ग़रीब और अमीर क़ानूनके अनुसार बराबर होंगे। आज हम जानते हैं कि यह आशा कितनी थोथी थी। लेकिन उस ज़मानेमें तो यह क़दम उन्नतिकी ओर था। इस प्रकार न्यायकी अर्चना की गई—उसी तरह, जिस प्रकार कपट द्वारा सत्य की आराधना की जाय। यही कारण है कि जब भयभीत मध्यवर्गके रक्षकों—रौबिसपियरों और डान्टनों—ने रूसो और वाल्टेयर प्रभृति लेखकोंकी रचनाओंका आश्रय लेकर घोषणा की कि 'क़ानूनका आदर करो, प्रत्येकके लिए क़ानून समान हैं' तो जनताने इस समझौतेको स्वीकार कर लिया। जनताका क्रान्तिकारी जोश अपने प्रचण्ड दुश्मनोंसे लड़ते-लड़ते लगभग शान्त हो गया था। इसलिए उसने क़ानूनके जुएके आगे अपनी गर्दन झुका दी, ताकि वह सामन्तोंकी तानाशाहीसे तो बच सके।

मध्यवर्ग इस सिद्धान्तका विस्तार करता गया और इससे बेजा फ़ायदा उठाता रहा है। 'प्रान्तीय सरकार' और 'क़ानूनका आदर' बस इन दो शब्दोंमें ही मध्यवर्गके युग यानी १९वीं शताब्दीका सम्पूर्ण दर्शन समाया है। मध्यवर्गने इन्हीं सिद्धान्तोंका विद्यालयोंके द्वारा प्रचार किया। अपने कला और विज्ञानको भी इसी कार्यमें लगाया है। संक्षेपमें अपने विश्वासोंका प्रचार करनेके लिये कोई साधन

अछूता नहीं छोड़ा। और यह सब इस वर्गने इतनी सफलता-पूर्वक किया है कि आज गुलाम और पराधीन व्यक्ति अपने मालिकोंसे विनम्र प्रार्थना करते हैं कि वे कृपया क़ानूनोंको संशोधितकर उनकी रक्षा करें—उन्हीं क़ानूनोंको, जिन्हें इन स्वार्थी मालिकोंने स्वयं बनाया था।

लेकिन अब ज़माना बदल रहा है—जनता कुछ समझने लगी है। हर जगह विद्रोहके लक्षण प्रकट हो रहे हैं। जनता क़ानूनकी आज्ञा माननेके पहले सवाल करती है कि क़ानून बना कैसे? उसकी उपयोगिता क्या है? और इसके माननेकी ज़रूरत क्या है? आज तो समाजके पवित्रतम आधारोंकी आलोचना हो रही है और उनमें सबसे पहली चोट इस क़ानूनके ऊपर ही है।

कोई विवेकशील व्यक्ति यदि क़ानूनके उद्गमकी खोज करे, तो उसे यह मालूम होगा कि असभ्य लोगोंके डरोंसे उद्भूत देवता और उसके अलौकिक होनेकी गारंटी करने-वाले कुछ धूर्त्त, स्वार्थी और चालाक पुजारी ही क़ानूनकी जड़पर हैं। या फिर रक्तपात, तलवार और आग द्वारा विजयसे क़ानूनका प्रारम्भ हुआ। यदि क़ानूनका ज़रा गहरा अध्ययन किया जाय, तो मालूम होगा कि वह मानव-समाजकी भाँति विकासशील नहीं, वरन् स्थिर है—मानव समाजके विभिन्न परिवर्त्तनोंके साथ संशोधित और परि-वर्त्तित होना क़ानूनके लिए असंभव है। अब ज़रा क़ानून की व्यवस्थाके विकासका अध्ययन करें। बाइजेन्टाइन-जैसोंके अत्याचार, धार्मिक गुरुओं द्वारा दी गई यातनाएँ, मध्ययुगके अमानुषिक अत्याचार, जल्लादों द्वारा जीवित मांसका उतारना, लोहेकी जंज़ीरें, हथकड़ी, जेलकी मनहूस कोठरियाँ, दुःख, शाप और आँसू—इन सबने मिलकर क़ानून की व्यवस्थाका पोषण किया है। आज भी पहलेकी भाँति ही क़ानून हथकड़ी, बन्दूक और जेलके बलपर चल रहा है।

और क़ानूनके प्रभावको भी देख लीजिए। एक ओर है क़ैदी—जिसे जानवर बना दिया गया है, उसकी सारी मनुष्यता और नैतिकता छीनकर उसे पिंजरेका जन्तु बना दिया गया है—और दूसरी तरफ़ है न्यायाधीश, जो मनुष्यके सम्पूर्ण स्वाभाविक गुणोंको छोड़कर क़ानूनकी मसनूई दुनियामें विचरण कर रहा है। इसे जेल और फाँसी की सजा देनेमें ही आनन्द आ रहा है, अपने निर्मम पागलपन में वह एक क्षणके लिए नहीं सोच पाता कि जिनको वह सज़ाएँ दे रहा है, उनकी नज़रोंमें स्वयं उसका कैसा गहरा पतन हो गया है।

क़ानून बनानेवालोंका एक बड़ा समुदाय पैदा हो गया है। वे क़ानून बनाते ही चले जाते हैं। एक क्षणके लिए भी वे नहीं सोचते कि आखिर ये क़ानून हैं किसलिए? स्वच्छताके नियमोंसे नितान्त अनभिज्ञ होते हुए भी वे आज शहरोंकी सफ़ाईके ऊपर क़ानून बनाते हैं, कल फौजके लिए अस्त्र-शस्त्रोंका क़ानून बनाते हैं—जब वे स्वयं इतना भी नहीं जानते कि बन्दूक क्या बला है। वे लोग जो स्वयं कभी एक दिनके लिए भी अध्यापक नहीं रहे, शिक्षा और अध्यापनके विषयमें क़ानूनोंकी रचना करते हैं। इस प्रकार हर चीज़के लिए क़ानून बनते चले जाते हैं। बस निर्माताओं का सिर्फ़ एक बातकी ओर निरन्तर ध्यान बना रहता है: ग़रीबोंके लिए जेल और फाँसीकी व्यवस्था। और वास्तव में जिन लोगोंको ये सज़ाएँ दी जाती हैं, वे इन क़ानून बनाने-वालोंसे हज़ार दर्जे कम अनैतिक होते हैं।

और क़ानूनके परिणामोंकी अन्तिम कड़ियाँ हैं जेलर, जो अपने सब मानवीय भावोंको दिन-प्रतिदिन छोड़ता जा रहा है; जासूस, जिसे शिकारी कुत्ता बना दिया गया है, और खुफ़िया-पुलिसका आदमी, जो स्वयंसे ही घृणा करने लगा है। चुगलीको गुण मान लिया गया है और भ्रष्टाचार व्यवस्थित कर दिया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य-समाजकी सम्पूर्ण बुराइयों और कमज़ोरियोंको संवर्धन और प्रोत्साहन दिया गया है, जिससे क़ानूनकी विजय हो सके। हमें क़ानूनके ये परिणाम स्पष्ट दीख रहे हैं और इसीलिए बजाय पुराने सिद्धान्तके निरर्थक दुहरानेके कि 'क़ानूनका आदर करो' हम घोषणा करते हैं—'क़ानून और उसके सरंजामसे घृणा करो!' 'क़ानून की आज्ञा मानो'—इस कायरतापूर्ण वाक्यके स्थानपर हमारी आवाज़ है—'सब क़ानूनोंके खिलाफ़ विद्रोह कर दो!'

आप केवल एक बार मानव-समाजके ऊपर क़ानूनके उपकारों और उसके नामपर किए गए दुष्कृत्यों और अनाचारोंका तुलनात्मक अध्ययन कर लीजिए और फिर आपको निर्णय करनेमें देर न लगेगी कि सत्य क्या है। यदि हम इतिहास देखें, तो मालूम पड़ेगा कि क़ानून नैसर्गिक नहीं, वरन् आधुनिक युगकी देन है। अनेक युगों तक बिना किसी लिखित क़ानूनके मनुष्य-समाजका कार्य सुगमतापूर्वक चलता रहा। उन दिनों मन्दिरोंके ऊपर खुदे हुए अक्षर भी नहीं थे। मानव-समाजके बीच आपसी सम्बन्धोंका नियमन केवल रीति-रिवाजों द्वारा होता था। और ये रीति-रिवाज निरन्तर व्यवहारमें आनेके कारण पवित्र हो गए थे। प्रत्येक व्यक्ति बचपनमें ही इन्हें सीख लेता था—उसी भाँति, जिस तरह वह शिकार, खेती अथवा गो-पालन द्वारा अपने भोजनको प्राप्त करना सीखता था। सम्पूर्ण मानव-समाज इस पुरातन युगमें से गुज़रा है।

और आज भी मानव-समाजके एक बड़े भागके पास कोई लिखित क़ानून नहीं है। इनमें प्रयेकके पास अपनी स्वयं के लोकसिद्ध रीति-रिवाज हैं, उसके कुछ सामाजिक व्यवहार हैं, जो उस जातिके आदमियोंके बीच ठीक सम्बन्ध बनाए रखनेके लिए काफ़ी हैं। हमारे सभ्य राष्ट्रोंमें भी, अगर हम बड़े शहरोंसे हटकर गाँवोंमें जायँ, तो देखेंगे कि वहाँके निवासियोंके आपसी सम्बन्ध पुरानी और लोकसिद्ध रीतियोंके आधारपर ही चलते हैं। व्यवस्थापिका सभाओं द्वारा निर्मित क़ानून वहाँ फिज़ूल हैं। रूस, इटली, स्पेन के किसानोंको—फ्रांस और इङ्गलैण्डके भी अधिकांश किसानोंको—लिखित क़ानूनकी कोई कल्पना नहीं। यह क़ानून तो उनके जीवनमें निरर्थक ही आ टपकता है। उनके आपसी संबंध—और कभी-कभी तो ये बड़े जटिल होते हैं—सदा पुरानी रीतियोंके अनुसार ही चलते हैं। और हम देख चुके हैं कि प्राचीन युगमें तो सम्पूर्ण मानव-समाज का इसी भाँति संचालन होता था।

प्राचीन कालके समाजके रस्म-रिवाजोंका यदि हम अध्ययन करें, तो हमें दो भिन्न-भिन्न प्रकारकी व्यवस्थाएँ दीखती हैं। चूँकि मनुष्य स्वभावतः सामाजिक प्राणी है, इसलिए उसमें कुछ ऐसी आदतों और भावनाओंका विकास हो जाता है, जो समाजको जीवित रखने और जातिके संवर्धनके लिए आवश्यक व लाभदायक हैं। यदि मनुष्यमें सामाजिक भावनाओंका अभाव होता, तो सम्मिलित जीवन ही असंभव था। ये सामाजिक भावनाएँ क़ानूनों द्वारा नहीं आईं—ये तो क़ानूनोंके जन्मके पहलेकी हैं। और न ये धर्मके कारण हैं—धर्मोंके पूर्व भी ये विद्यमान थीं। ये सामाजिक भावनाएँ तो प्राणि-मात्रमें मौजूद हैं। ये स्वयं विकसित होती हैं—उसी भाँति, जिस तरह जानवरोंमें सहज ज्ञान आ जाता है। वास्तवमें ये सामाजिक भावनाएँ तो विकास के सिद्धांतके अनुसार उद्भूत हैं, ताकि समाज अपने जीवन-संघर्षमें एक बना रह सके। असभ्य जातियाँ अपना अन्त एक-दूसरेको खाकर नहीं कर लेतीं। वे जानती हैं कि अन्ततः यह कहीं अधिक लाभदायक होगा कि वे खेती करें, बजाय इसके कि वे सालमें एक दफ़ा अपने किसी वृद्ध सम्बन्धी को खा लें। अनेक यात्रियोंने बिल्कुल स्वतंत्र जातियोंके संगठनका वर्णन किया है—उनमें न कोई सरदार है और न क़ानून। उन्होंने लिखा है कि इन जातियोंके आदमियों ने आपसी झगड़ोंमें एक-दूसरेको मार डालना छोड़ दिया है। इसका एक कारण है। वह यह कि सामूहिक जीवनके अवश्यम्भावी परिणाम-स्वरूप उनमें भ्रातृत्व और एकताकी भावनाएँ विकसित हो गई हैं और अब वे अपने झगड़ोंके सुलझानेके लिए एक तीसरे व्यक्तिकी सहायता लेना अधिक अच्छा समझते हैं। आतिथ्य-भावना, मनुष्य-जीवनके प्रति श्रद्धा, प्रत्युपकार करनेकी इच्छा, कमज़ोरके प्रति दया, साहस—यहाँ तक कि दूसरोंके लिए स्वयं अपनेको बलिदान करनेकी भावना (जिसका प्रारम्भ अपने बच्चों और मित्रों से होकर अन्तमें सम्पूर्ण समाजके लिए हो जाता है), ये सब गुण मनुष्यमें अन्य सामाजिक प्राणियोंकी भाँति क़ानूनोंसे पहले और बिना किसी धर्मके विकसित होते हैं। इस तरहकी भावनाएँ और रीतियाँ सामाजिक जीवनकी अवश्यम्भावी परिणाम हैं। ये मनुष्यमें नैसर्गिक नहीं—जैसा कि पुरोहित और आध्यात्मिक लोग बतलाते हैं—बल्कि सामूहिक जीवनके परिणाम-स्वरूप हैं।

सामाजिक जीवन और जातिकी रक्षाके लिए अनिवार्य इन रीतियोंके साथ-ही-साथ कुछ दूसरी तरहकी इच्छाएँ, आदतें और रीतियाँ भी विकसित हो जाती हैं। दूसरोंके ऊपर हुकूमत करने और अपनी इच्छा थोपनेकी कामना, निकटवर्ती जातिकी मेहनतकी उपजको लूटनेकी लिप्सा, अपने लिए भोग-विलासकी सामग्री इकट्ठी करनेका मोह—ये सब स्वार्थी इच्छाएँ—एक दूसरी प्रकारकी आदतों और रीतियोंको जन्म देती हैं। पुरोहित और धूर्त्त पंडित, जो जनताके मिथ्या विश्वासोंसे फ़ायदा उठाते हैं तथा जो स्वयं शैतानके भयसे मुक्त रहकर उसे दूसरोंमें विकसित करते हैं, और सिपाही, जो पड़ोसियोंके ऊपर हमले और लूट-मार कराते हैं, ताकि वे स्वयं युद्धसे धन और दास लेकर लौट सकें—इन दो वर्गोंने मिलकर समाजके ऊपर ऐसी रीतियाँ थोप दी हैं, जो इनके स्वयंके लिए तो लाभदायक हैं, लेकिन जनताको गुलामीकी जंज़ीरोंसे कस देती हैं। जन-साधारणके भय, आलस्य और अकर्मण्यतासे फायदा उठाकर पुरोहितों और सिपाहियोंने ऐसी असामाजिक रीतियोंको समाजमें पूर्णतः स्थापित कर दिया है और इस प्रकार अपनी सत्ताको स्थायी बना लिया है। इस कार्यमें इन पुरोहितों और सिपाहियोंने परम्पराके प्रति जनताकी श्रद्धासे पूरा लाभ उठाया है। बच्चों और असभ्य जातियोंमें यह प्रवृत्ति हद दर्जे तक पाई जाती है। जानवरों में भी यह मौजूद है। जहाँ मनुष्यमें थोड़ा भी अन्ध-विश्वास आया, वह स्थापित व्यवस्थामें नई चीज़ोंके प्रवेशसे डरने लगता है। और जो-कुछ भी परम्परागत है, उसको पवित्र मानकर वह उसकी पूजा करने लगता है। युवक जब कभी मौजूदा व्यवस्थामें परिवर्तनकी इच्छा प्रकट करते हैं, तो वृद्ध लोग उनसे यही कहते हैं—"हमारे पूर्वज ऐसा ही करते चले आए हैं, उन्होंने तुम्हें पाला-पोसा, वे खूब सफल

रहे, इसलिए अब तुम भी वैसा ही करो।" किसी भी अज्ञात और अपरिचित चीज़से उन्हें डर लगता है और वे अपने भूतकालसे ही चिपके रहना चाहते हैं—फिर चाहे उस भूतकालके मानी ग़रीबी, गुलामी और अत्याचार ही क्यों न हों।

यह भी कहा जा सकता है कि जितनी हीन और गिरी अवस्थामें मनुष्य होता है, उतना ही अधिक वह प्रत्येक प्रकारके परिवर्त्तनसे डरता है। उसे शंका रहती है कि कहीं उसकी हालत और भी बदतर न हो जाय। इसके पूर्व कि मनुष्य पुरानी व्यवस्थाको भी ख़तरेमें डालनेका साहस कर सके और श्रेष्ठतर व्यवस्थाकी इच्छा कर सके, यह आवश्यक है कि उसके निराश वातावरणमें आशाकी एक किरण प्रवेश करे। जबतक उसमें आशाका संचार नहीं होता और जबतक वह उन लोगोंकी गुलामीसे मुक्त नहीं होता, जो उसके अन्धविश्वास और भयसे फ़ायदा उठा रहे हैं, वह अपनी पहली हालतमें ही रहना अधिक पसन्द करता है। अगर कुछ युवक परिवर्तनकी आकांक्षा करते हैं, तो उनके वृद्ध लोग युवकोंका विरोध करते हैं। कुछ असभ्य जातियाँ तो जीवन त्याग देंगी, लेकिन अपनी पुरानी रीतियोंको छोड़ेंगी नहीं; क्योंकि अपनी बाल्यावस्था से ही वे सुनती आ रही हैं कि स्थापित व्यवस्थामें किंचित् परिवर्तनके कारण भी उनके ऊपर अपार दुःख पड़ेंगे और उनकी सम्पूर्ण जाति नष्ट हो जायगी ! आज भी अनेक राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री और तथाकथित क्रान्तिकारी इन्हीं संस्कारोंके प्रभावमें काम करते हैं और नष्टप्राय अतीतसे चिपके रहना चाहते हैं। बहुतेरे प्राचीन व्यवस्थामें ही आदर्शोंकी खोज करते हैं और अनेक क्रान्तिकारी केवल पिछली क्रान्तियोंका अध्ययन कर उनकी नक़ल करनेके प्रयत्नमें ही अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री समझते हैं।

परम्पराकी भावनाका जन्म अन्धविश्वास, अकर्मण्यता और कायरतासे होता है। यही भावना अत्याचारोंका आधार-स्तम्भ रही है। पुरोहितों और सिपाहियोंने इस भावनाका खूब फायदा उठाया। उन्होंने उन्हीं रीतियों को बढ़ावा दिया, जो ख़ुदके लिए लाभदायक थीं और फिर उनको सम्पूर्ण जातिके ऊपर थोप दिया। इसी भावनाका फायदा उठाकर नेताओंने ग़रीबोंकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता भी छीन ली। लेकिन जब तक मनुष्योंके बीच असमानताएँ केवल कार्य-विधिपर निर्भर थीं और वे शक्ति तथा धन के केन्द्रीकरणके कारण कठोर और स्थायी नहीं हुई थीं, क़ानून तथा उसके भयावह सरंजाम—यानी न्यायाधीश और जेलों—की कोई आवश्यकता न थी। लेकिन जैसे ही समाज दो परस्पर-विरोधी वर्गोंमें विभाजित हो गया, जिसमें एक आधिपत्य जमानेकी और दूसरा उससे बचनेकी कोशिश करने लगा, विग्रहका सूत्रपात हुआ। अब विजेताको युद्धमें प्राप्त लूटको स्थायी बनाने की चिन्ता हुई और तदर्थ उसने लूटकी सम्पत्तिको झगड़े से परे करनेके लिए उसे पवित्र और आदरणीय बनानेका प्रयत्न किया। पुरोहितने इसमें योग दिया और उसने लूटको जायज़ और पवित्र घोषित कर दिया। सर्वप्रथम इस प्रकार क़ानूनका उदय हुआ। इस क़ानूनका प्रधान उद्देश्य था ऐसी रीतियोंको स्थायी क़रार देना, जो सत्ता-धारियोंके फ़ायदेकी थीं। सैन्य बल द्वारा इस क़ानूनकी आज्ञा-पालन कराई गई। इस क़ानूनने सिपाहीकी शक्ति को और भी मज़बूत बना दिया। अब उसके पास केवल पाशविक बल ही नहीं था, वह क़ानूनका रक्षक भी हो गया।

शेष अगले अंकमें] [अनु०—बनारसीदास चतुर्वेदी

उजली-उजली राह हमारी !

श्री 'दिवाकर'

उजली-उजली राह हमारी, क्योंकि हमारा उजला मन है !
नयनोंमें भविष्यके सपने, कोई कहता तन दो तपने,
तब तक जबतक अन्धकार भी नाम ज्योतिका लगे न जपने,
शिथिल न होंगे चरण पथिकके, नये भोरका आमंत्रण है।
उजली-उजली राह हमारी, क्योंकि हमारा उजला मन है !
मेरे आँसू जगके आँसू, मेरी हँसी हँसी जन-जनकी,
सुरभि-सनी श्वासोंमें मेरे मोहक भिट्टी है मधुवनकी,
प्राणोंके पंछीको प्रतिपल बल देता तनका बन्धन है !
उजली-उजली राह हमारी, क्योंकि हमारा उजला मन है !
सर्जनके अधरोंकी लाली चाट सका कब ध्वंस-समीरण,
समय-सिंधुकी लहर-लहरमें परिलक्षित भावी परिवर्तन,
बाधाओंके दुर्ग लाँघता जाता सरल तरल जीवन है !
उजली-उजली राह हमारी, क्योंकि हमारा उजला मन है !

एक वैज्ञानिक अध्ययन

भारतीय समाज

श्री बालकृष्ण, एम० ए०

भारतीय समाजके वैज्ञानिक अध्ययनके लिए यह आवश्यक है कि उसके ऐतिहासिक स्वरूप, उसके हृदयमें हरकत करनेवाले आदर्शों और उसपर घात-प्रतिघात करनेवाली बाह्य भौगोलिक परिस्थितियोंकी बारीकीसे व्याख्या की जाय; क्योंकि ऐसा करनेपर ही यह पता चल सकेगा कि किसी ऐतिहासिक युगमें उसमें विदेशी आक्रान्ताओंके आघातोंको सफलतापूर्वक सहन और विफल करनेकी कितनी शक्ति थी।

भारतीय समाजका स्वरूप-निर्माण अत्यन्त प्राचीन कालमें हुआ था। यद्यपि उसमें समय-समयपर यत्र-तत्र कुछ परिवर्त्तन अवश्य हुए, तथापि अभी कुछ दिनों पूर्व तक उसका आधारभूत ढाँचा लगभग अपने मूल रूपमें ही बना हुआ था। संभवतः यह कहना अनुचित न होगा कि संसार-भरके सब सभ्य देशोंमें भारत ही ऐसा देश है, जहाँके समाजका आधारभूत ढाँचा इतनी शताब्दियों तक अपने मूल रूपमें बना रहा। भारतीय समाजकी खास बात यह है कि वह एकतन्त्री न होकर बहुतन्त्री है। एकतन्त्री वह समाज होता है, जिसमें केवल एक सर्वप्रभुता-सम्पन्न संस्था होती है और सब व्यक्ति उस संस्थाके पूर्णतः अधीन होते हैं और इन सब व्यक्तियोंके सब पारस्परिक सम्बन्धोंकी रूप-रेखाका निश्चय और उनके कार्यक्षेत्रके नियंत्रण करनेका अधिकार केवल उसी सर्वप्रधान संस्थाको होता है। अन्य जितनी संस्थाएँ होती हैं, वे सब उस प्रधान संस्थाके आधारपर ही ठहरी होती हैं और उसीकी अनुभूतिसे वे अस्तित्वशील रहती हैं। इसके सर्वथा विपरीत बहुतन्त्री वह समाज होता है, जिसमें व्यक्ति अनेक समानान्तर संस्थाओंके सदस्य होते हैं और इनमें प्रत्येक संस्था अपने क्षेत्रमें अपने सदस्योंके जीवनका नियन्त्रण करनेका पूर्ण अधिकार रखती है और प्रत्येक संस्थाके प्रति ही व्यक्तियोंकी सम्बद्ध क्षेत्रमें पूर्ण निष्ठा होती है। ऐसे समाजमें कोई संस्था सर्वप्रभुता-सम्पन्न नहीं होती और न किसी संस्थाको यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह किसी समुदायके सब व्यक्तियोंके जीवनके हर पहलूका नियन्त्रण करे।

राज्य और समाज

इन दोनों प्रकारके समाजोंका भेद यूरोपके आधुनिक और मध्यकालीन समाजके चित्रणसे स्पष्ट हो जायगा। आजकल इंग्लैण्ड और यूरोपके अन्य देशोंमें एकतन्त्री समाज पाया जाता है। इंग्लैण्डमें सर्वप्रधान संस्था 'राज्य' है। राज्यको यह अधिकार प्राप्त है कि वह इंग्लैण्डमें रहनेवाले सब व्यक्तियोंके जीवनके हर पहलूका नियन्त्रण कर सके। वहाँ राज्यकी शक्ति सर्वोपरि और असीम है। न तो वहाँ ऐसा कोई व्यक्ति है और न कोई ऐसी संस्था, जो राज्यके आदेशों और विधानोंकी अवज्ञा करनेका अधिकार रखता हो। सब व्यक्ति और सब संस्थाएँ राज्यके मातहत हैं और इतनी सीमा तक राज्यके अधीन हैं कि उनका अस्तित्व और अनस्तित्व भी राज्यके इशारेपर निर्भर करता है। इंग्लैण्डकी संसद्के बारेमें यह कहावत है कि नरको मादा और मादाको नर बनानेके अतिरिक्त वह सब-कुछ कर सकती है। अतः यह कहा जा सकता है कि इंग्लैण्डमें नियंत्रण-शक्तिका केवल एक स्रोत और एक ही केन्द्र है। अन्य संस्थाओंकी जो भी शक्ति है, वह उन्हें राज्यके सहारे और राज्यकी अनुमतिसे ही प्राप्त है और उस शक्तिके प्रयोगके बारेमें वे राज्यके एजेन्टके रूपमें ही कार्य कर सकती हैं; अन्य रूपमें नहीं, जहाँ एकतन्त्री समाजको अपने पूर्ण रूपमें पाया जाता है, वहाँ तो जीवनके हर क्षेत्रका नियन्त्रण स्वयं राज्य ही करता है; वहाँ तो राज्यके इंगितके बिना जीवनकी कोई हलचल हो ही नहीं सकती।

किन्तु यूरोपमें एसे एकतन्त्री समाजका अस्तित्व सर्वदा नहीं था। उसका जन्म तो सोलहवीं शताब्दीके पश्चात् ही हुआ और उसका पूरा विकास तब हुआ, जब कि रेल-जैसे संचार-साधन मानवके हाथमें आ गए। मध्यकालीन यूरोपमें तो नर-नारियोंके जीवनका नियंत्रण कम-से-कम दो समान शक्तिवाली संस्थाओं द्वारा होता था। इनमें से एक संस्था तो थी रोमन कैथोलिक चर्च और दूसरी थी सामन्तशाही। नर-नारियोंके लिए यह आवश्यक न था कि वे हर बातमें सामन्तोंकी आज्ञाका पालन करें और उनके लिए यह भी आवश्यक न था कि वे हर बातमें चर्चके आदेशोंका अनुसरण करें। जीवनके अनेक महत्वपूर्ण व्यापारोंमें तो वे चर्चके अनुशासनाधीन थे और कुछ व्यापारोंके बारेमें वे सामन्तोंकी आज्ञा माननेके लिए बाध्य थे। अतः उन दिनों समाजमें शक्तिका केन्द्र केवल एक न था, वरन् एक ही समाजमें शक्तिके अनेक केन्द्र और स्रोत थे। रोमन

कैथोलिक चर्च धार्मिक क्षेत्रमें अपने विधान बनाता था। और उसके प्रत्येक सदस्य और अनुयायीका यह अपरिहार्य कर्तव्य होता था कि वह उन विधानोंका अक्षरशः पालन करे। यदि कोई व्यक्ति उनका पालन न करता था, तो रोमन कैथोलिक चर्च उस व्यक्तिको प्राणदण्डसे लेकर किसी भी प्रकारका दण्ड दिलवा सकता था और दिलवाता था। इसी प्रकार सामन्त लोग भी अपने विशिष्ट क्षेत्रोंमें अपने आदेश निकालते थे, अपना विधान बनाते थे और उनके अधीनस्थ लोगोंका यह कर्त्तव्य होता था कि वे उनका पूर्णतः पालन करें। इन आदेशों और विधानोंकी अवज्ञा होनेपर दोषी व्यक्तिको ये सामन्त अपने न्यायालयोंमें हर प्रकारका दण्ड दे सकते थे और देते थे।

यह ठीक है कि जब अनेक मानव किसी प्रदेश-विशेष में एक साथ रहते हैं, एक साथ अपने सब आर्थिक और अन्य सामाजिक व्यापार करते हैं, तब इस बातकी आवश्यकता होती है कि उनके विभिन्न व्यापारों और कार्योंका किसी-न-किसी रीतिसे समन्वय होता रहे; क्योंकि ऐसा न होनेपर वे एक-दूसरेके ध्येय-साधनमें सहायक होनेके बदले बाधक सिद्ध हो सकते हैं। अतः बहुतन्त्री समाजमें भी विभिन्न संस्थाओंके विभिन्न कार्योंके समन्वयका कोई-न-कोई माध्यम होता ही है। उसी प्रकार यह भी अपरिहार्य है कि मानव अपनी विभिन्न आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए विभिन्न मनुष्योंसे विभिन्न प्रकारके सम्बन्ध स्थापित करे और उनसे भिन्न-भिन्न रीतिसे सहयोग करे। अतः एकतन्त्री समाजमें भी विभिन्न प्रकारकी संस्थाएँ होती हैं और वे अपने-अपने क्षेत्रमें मानवोंके जीवनका किसी-न-किसी रूपमें नियन्त्रण करती रहती हैं। अतः प्रत्येक समाज किसी-न-किसी सीमा तक एकतन्त्री भी होता है और बहुतन्त्री भी। किन्तु इस बातके बावजूद यह सोचना कि एकतंत्री और बहुतंत्री समाजोंमें कोई आधारभूत भेद नहीं होता, ठीक न होगा। इन दोनोंमें आधारभूत भेद शक्तिके सम्बन्धमें होता है। एकतन्त्री समाजमें पूरी सामूहिक शक्ति एक संस्थामें सिद्धान्ततः तो अवश्य ही और बहुधा व्यवहारतः भी संकेन्द्रित होती है। जिस संस्थामें यह शक्ति संकेन्द्रित होती है, वह जीवनके हर पहलूके सम्बन्धमें अपने आदेश निकालती है और उन्हें डंडे के जोरसे मनवाती है। किन्तु बहुतंत्री समाजमें शक्तिका ऐसा संकेन्द्रण न तो सिद्धान्ततः होता है और न व्यवहारतः।

जाति और ग्राम-व्यवस्था

भारतके ऐतिहासिक समाजपर दृष्टिपात करनेसे यह भली-भाँति स्पष्ट हो जायगा कि उसमें किसी युगमें भी शक्तिका पूर्ण संकेन्द्रण नहीं हुआ था, वरन् उसमें तो शक्ति अनेक भागों और उपभागोंमें बँटी हुई थी। भारतीय समाज का आधारभूत ढाँचा सर्वदासे जाति और ग्राम-व्यवस्थापर आश्रित रहा है। यद्यपि आज जाति और ग्राम-व्यवस्था दोनों ही बहुत-कुछ जर्जरित हो चुकी हैं, किंतु आज भी वे सर्वथा प्राणहीन नहीं हो गई हैं। भारतके नर-नारीका जन्मसे लेकर मृत्यु तक सम्पूर्ण जीवन इन्हीं दो प्रकारकी संस्थाओंके घेरेमें चलता था और बहुत-कुछ आज भी चलता है। जीवनके नियंत्रणकी शक्ति इन्हीं दो प्रकारकी संस्थाओं में बँटी हुई थी। इस सम्बन्धमें समाजशास्त्रियों और ऐतिहासिकोंमें मतभेद है कि जातिका प्रादुर्भाव कैसे हुआ? कुछ लोगोंका विचार है कि इसका प्रादुर्भाव रंग-भेदके कारण हुआ। आर्य लोग स्वयं श्वेतवर्णके होते थे और उनकी आँखें, ओष्ठ और मुखाकृति अनार्योंसे भिन्न होती थी। अतः उन्होंने अनार्योंसे अपनेको पृथक रखनेके लिए वर्ण-भेदकी प्रथा प्रारम्भ की। एक ही वर्णवालोंमें विवाह और अन्य सामाजिक सम्बन्धोंको सीमित कर दिया। किन्तु इस मतके आधारपर भारतकी अनेकानेक जातियोंके अस्तित्व की व्याख्या नहीं हो सकती। अन्य लोगोंका विचार है कि जाति-व्यवस्थाका विकास वृत्तिक एकता और वृत्तिक चेतनाके कारण हुआ। जो लोग लोहा बनानेका कार्य करते थे, उन सबके लिए यह स्वाभाविक था कि वे एक-दूसरेसे सहयोग करें और साहचर्य रखें। इस प्रकार एक वृत्तिवालोंमें परस्पर अधिकाधिक घनिष्ठता हुई और वे अन्य वृत्तिवालोंसे अपनेको पृथक माननने और समझने लगे। कुछ लोग मत-मतान्तरके आधारपर जाति-व्यवस्था का जन्म मानते हैं। ।

चाहे जिस कारणसे भी जाति-व्यवस्थाका जन्म हुआ हो, पर यह बात तो ध्रुव सत्य है कि भारतीय इतिहासके प्रारम्भिक कालसे ही यहाँके नर-नारी जातियोंमें विभक्त हैं और इन जातियोंकी यह विशेषता रही है कि ये अपने सदस्योंके जीवनके कुछ पहलुओंको स्वयं नियन्त्रित करती हैं। जीवनके इन पहलुओंके यथावत् संचालनके लिए प्रत्येक जातिके अपने नियम होते थे और प्रत्येक जाति इन नियमोंका पालन स्वयं अपनी शक्ति द्वारा कराती थी। यह ठीक है कि जाति अपने किसी सदस्यको किसी प्रकार का शारीरिक दण्ड न देती थी और न दे सकती थी। किन्तु फिर भी किसी जाति-भाईका यह साहस न था कि वह जातिके किसी आदेश या किसी नियमका उल्लंघन करे। सच तो यह है कि व्यक्तिके लिए यह सम्भव था कि वह अपने राजाकी आज्ञाकी अवहेलना करे, अपने आचार्यके उपदेशको अनसुना करे; किन्तु किसी व्यक्तिके लिए यह सम्भव न था कि वह अपनी जातिके आदेशों या नियमोंकी अवज्ञा करे।

जातिका यह दबदबा इसलिए था कि वह दोषीको जातिसे बहिष्कृत कर सकती थी। इस बहिष्कारका अर्थ यह होता था कि बहिष्कृत और उसकी सन्तानका समाजसे कोई वास्ता न रहता था। वह न तो अपनी सन्तानका कहीं विवाह कर सकता था, न अपने-जैसे ही कार्य करनेवाले भाइयोंके साथ उठ-बैठ सकता था; न वह अपनी वृत्तिवालोंसे किसी प्रकारका आदर-सम्मान पा सकता था और न उनसे किसी प्रकारका कोई लेन-देन कर सकता था। दूसरे शब्दोंमें जातीय बहिष्कारका अर्थ समाजके क्षेत्रसे पूरा निर्वासन था और ऐसा व्यक्ति सर्वथा एकाकी पड़ जाता था। अनेक लोग शारीरिक मृत्युको हँसते हुए गले लगा लेते हैं, किन्तु सामाजिक मृत्युको गले लगानेवाले व्यक्ति संसारमें कदाचित् ही मिलते हैं। जातिकी अवहेलना करके जानते-बूझते सामाजिक मृत्युका आवाहन कोई व्यक्ति न करना चाहता था। जातिका यह प्रभुत्व अपने सदस्योंपर ही होता था। यह बात न थी कि कोई उच्च जाति अपनेसे निम्न जातिवालों पर कोई प्रभाव रखती हो।

इस बातको निश्चित करनेके लिए कि जातिका प्रत्येक सदस्य जातिकी परम्पराओं और जातिके नियमोंके अनुकूल सर्वदा अपना आचरण रखे, जातिका अपना स्वतन्त्र संगठन होता था। प्रत्येक जातिकी अपनी पंचायत थी, जिसमें जातिका प्रत्येक सदस्य भाग ले सकता था और भाग लेता था। साथ ही जातिके कुछ अग्रणी लोगोंको जाति का सरपंच चुना जाता था और साधारणतः ये सरपंच तय करते थे कि किसी विशेष मामलेके सम्बन्धमें जातिका क्या नियम या क्या परम्परा है। पंचायतका निर्णय सबके लिए शिरोधार्य होता था और कोई जाति-भाई उसकी अवहेलना नहीं कर सकता था। सरपंचोंको यह अधिकार और शक्ति प्राप्त होती थी कि वे उसके लिए दण्डका निर्णय करें, जिसने किसी जातीय नियम या परम्पराकी अवहेलना की है। जातीय पंचायतकी यह शक्ति थी कि वह ऐसे किसी दोषी व्यक्तिको नियत दण्ड भुगतनेपर जातिके सब अधिकार पुनः दे दे। जातिकी पंचायतके सदस्य केवल जातिके ही लोग हो सकते थे। एक जातिकी पंचायतमें अन्य जाति का कोई व्यक्ति सदस्य न हो सकता था। उदाहरणार्थ चाहे कोई ब्राह्मण ब्रह्माके समान ही ज्ञानी और पंडित क्यों न हो, वह भंगियोंकी पंचायतका सदस्य नहीं हो सकता था। इसी प्रकार चाहे कोई क्षत्रिय विक्रमादित्यके समान प्रतापी और न्यायी क्यों न हो, वह किसी अन्य जातिकी पंचायतका सदस्य नहीं हो सकता था। यह कहना अनुचित और असत्य न होगा कि प्रत्येक जाति एक स्वायत्त और स्वसंचालित संस्था थी और अपने क्षेत्रमें अपनी स्वतन्त्र शक्ति रखती थी। अतः यह कहना असत्य है कि भारतमें ब्राह्मणोंका बोलबाला था। इसके विपरीत यहाँ किसी एक जातिका बोलबाला न था, वरन् प्रत्येक जातिका अपने निजी क्षेत्रमें बोलबाला था। यह निजी क्षेत्र विवाह, सामाजिक सम्पर्क, वृत्ति और वृत्तिकी शिक्षा तक ही सीमित था।

सामाजिक सम्बन्ध और वृत्ति

प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी जातिका जन्मजात सदस्य होता था और वह अपनी सन्तानका विवाह अपनी जातिके अन्दर ही कर सकता था और करता था। यह ठीक है कि यदा-कदा एक जातिका कोई व्यक्ति दूसरी जातिमें भी विवाह कर लेता था, किन्तु साधारणतः यह बात न होती थी। विवाहके इस बन्धनके सम्बन्धमें यह कहना अनुचित न होगा कि जातिके अन्दर ही विवाह करनेकी भावना इस कारण न थी कि तथाकथित उच्च जातिवाले अन्य जातियों को अपनेसे नीचा समझते थे। यह बात ठीक है कि जातियों में ऊँच-नीचकी भावना थी, किन्तु जहाँ तक जातिके अन्दर विवाह करनेका प्रश्न था, यह प्रतीत नहीं होता कि वह ऊँच-नीचकी भावनाके कारण पैदा हुआ था। यदि ऐसा होता, तो तथाकथित निम्न जातिवाले अपने पुत्र-पुत्रियोंका विवाह उच्च जातियोंमें करनेमें अपना अपमान समझते। पर बात ऐसी नहीं है। यदि कोई ब्राह्मण किसी भंगीसे यह प्रस्ताव करे कि मैं तुम्हारी कन्यासे विवाह करना चाहता हूँ, तो वह भंगी इस प्रस्तावको अपना भारी अपमान समझेगा और इसके लिए ब्राह्मणका सिर तक फोड़नेके लिए तैयार हो जायगा। जातिमें ही विवाह करनेकी परम्परा किसी भी कारणसे क्यों न प्रारम्भ हुई हो, एक बार शुरू हो जानेपर वह जातीय स्वतन्त्रतासे इस प्रकार जकड़ गई कि जातिके लोग उसकी अवहेलनाको जातीय स्वतन्त्रता और जातीय गौरवपर आघात मानने लगे और इसलिए उनका यह प्रयास हो गया कि विवाहके बारेमें जातिका पूरा नियन्त्रण रहे। यह इसलिए भी आवश्यक था कि विवाहित दम्पति अपने पारस्परिक कर्त्तव्योंका यथावत् पालन करते रहें। इन कर्त्तव्योंको यथावत् पालन करानेका और कोई साधन उन दिनों न था। ऐसी कोई शक्ति न थी, जो दाम्पत्तिक कर्तव्योंकी अवहेलना करनेवाले पति या पत्नीको दंड दे सके। यह कार्य जातीय पंचायत ही करती थी और वही कर भी सकती थी। अतः यह आवश्यक था कि विवाह भी जातिके अन्दर ही हो।

विवाहके अतिरिक्त जातीय पंचायत जाति-भाइयोंके पारस्परिक सामाजिक सम्पर्कका भी नियंत्रण करती थी।

जातिके लोग आपसमें मिलते-जुलते थे, आपसमें खान-पान और अन्य प्रकारके सहयोग रखते थे। किसीके घरमें विवाह होता, तो वह विवाह-सम्बन्धी अनेक कार्योंके सम्पादन में सहायताके लिए अपने जाति-भाइयोंको न्यौता देता था और ऐसा न्यौता पाए प्रत्येक जाति-भाईका यह जातीय कर्त्तव्य होता था कि वह माँगा हुआ सहयोग पूरी मात्रामें प्रदान करे। किसीके यहाँ कोई मृत्यु हो जाती, तो जाति-भाई शवको उठाकर श्मशान तक ले जाते और उसके दाह-संस्कारमें सहायता करते। इस प्रकार अनेक प्रकारके कार्योंमें जाति-भाइयोंका सहयोग किसी प्रकारका पारि-श्रमिक दिए बिना ही प्राप्त हो जाता था और किसी व्यक्तिको यह न लगता था कि वह अपार जन-सागरमें भी एकाकी बूंदके समान है। वृत्तिके सम्बन्धमें भी जातिका पूरा-पूरा नियन्त्रण था। यदि एक जातिवाला दूसरी जातिकी वृत्तिको करना चाहता, तो न तो उसकी अपनी जातिवाले और न दूसरी जातिवाले ही उसे ऐसा करनेकी अनुमति देते थे। जातिके एक भाईके पुराने यजमानका कोई कार्य जातिका दूसरा कोई व्यक्ति नहीं कर सकता था। आज कलके कर्मचारी-संघोंके समान ही जाति भी इस बातका आग्रह रखती थी कि उस जातिका परम्परागत कार्य केवल उस जातिके सदस्य ही कर सकते हैं, अन्य जातिवाले नहीं। और उस जातिमें से कोई कौन काम करे, यह भी जातिकी आन्तरिक परम्पराओंके सहारे ही तय होता था। वृत्तिके क्षेत्रमें जातिकी यह शक्ति तभी बनी रह सकती थी, जबकि प्रत्येक जातिकी अपनी-अपनी वृत्ति सर्वदाके लिए नियत हो। यही बात थी भी। प्रत्येक जातिका यह नियम था कि जो भी व्यक्ति उस जातिमें पैदा हो, वह उसी जातिकी वृत्ति को अपनाए।

बस्तियोंका जीवन

जीवनके इतने महत्वपूर्ण पहलुओंमें भारतीय किसी एक ही संस्थाके सदस्य न थे, एक ही सूत्रमें बँधे न थे। वे अनेक जातियोंमें बँटे हुए थे और इस प्रकार उनके जीवनके ये पहलू जाति-रूपी अनेक संगठनों द्वारा नियंत्रित और संचालित थे। इस प्रकार जीवनके इन क्षेत्रोंमें सामाजिक नियंत्रणकी शक्ति एक संस्थामें केन्द्रित न होकर अनेक केन्द्रों और अनेक तन्त्रोंमें बँटी हुई थी। सामाजिक नियन्त्रणकी शक्ति न केवल जातियों वरन् बस्तियोंमें भी बँटी हुई थी। अन्य देशोंमें रहनेवाले नर-नारियोंके समान ही भारतमें रहनेवाले नर-नारी भी इतिहासके आदि-कालसे ही अनेक छोटी-बड़ी बस्तियोंमें रहते रहे हैं। इन बस्तियों में भारी संख्या आज भी ग्रामोंकी ही है और यह पहले भी रही है। जहाँ तक विवाह, वृत्ति इत्यादिका सवाल था, इन बस्तियोंमें रहनेवालोंके जीवनका नियन्त्रण जातीय पंचायतों द्वारा होता था। किन्तु एक स्थानपर साथ रहनेसे कुछ अन्य समस्याएँ भी पैदा होती हैं, जिनका हल उस बस्ती में रहनेवालोंको ही करना पड़ता है। उदाहरणार्थ बस्तीकी गली-बीथियोंकी सफ़ाई, बस्तीमें यथास्थान बाज़ार इत्यादि का लगना और इसी प्रकारकी अन्य प्रादेशिक समस्याएँ साथ रहनेसे पैदा होती हैं। ग्रामोंमें ऐसी समस्याओंका हल ग्रामवासी अपनी पंचायत द्वारा किया करते थे। ग्राम की पंचायत अपनी प्रशासनिक आवश्यकताओंकी पूर्त्तिके लिए आवश्यक धन कर लगाकर या अन्य रीतिमें ग्रामवासियों से उगाह लिया करती थी। इन कार्योंके सम्पादनके लिए ग्राम-पंचायत अपने वैतनिक कर्मचारी नियुक्त करती थी, जीवनकी इन बातोंके नियन्त्रणके लिए आवश्यक नियम भी बनाती थी और उन नियमोंकी अवहेलना करनेवालोंको आवश्यक दण्ड दे सकती थी और देती भी थी। अपने इन सब कार्योंके संपादनमें ग्रामपंचायत पूर्णतः स्वतंत्र होती थी। यह भी आवश्यक न था कि एक ग्रामके रीति-रिवाज दूसरे ग्राममें भी पाए जायँ। प्रत्येक ग्रामका अपना स्वायत्त संगठन, अपनी निजी परम्पराएँ और निजी नियम होते थे। यह ठीक है कि एक ही प्रकारकी समस्याएँ होनेके कारण इन ग्रामोंके नियमों और परम्पराओंमें कुछ-कुछ सामंजस्य होता था; किन्तु वैसा होनेपर भी एक ग्रामकी परम्पराएँ और नियम उस ग्राम तक ही सीमित रहते थे और इनका पालन करानेकी शक्ति भी सम्बद्ध ग्रामकी पंचायतमें ही निहित होती थी।

अधिकतर ग्रामवासियोंकी चेतना ग्रामके दायरेमें ही बन्द रहती थी। जब ग्रामवासीके जीवनका कोई सूत्र ग्रामके बाहर किसी संस्थासे बँधा न था, जब बाहरी दुनिया उसके दैनिक जीवनके आँचलको छूती-भर ही थी; तब यह कैसे सम्भव हो सकता था कि ग्रामवासीके मनमें ग्राम की बाहरकी दुनियाका भी कोई स्थान हो। ग्राममें ही वह पैदा होता था, ग्राममें ही उसका बाल्य-काल व्यतीत होता था, ग्राममें ही वह अपना यौवन व्यतीत करता था और ग्राममें ही वह मरता था। अनेक शताब्दियों तक भारतकी आर्थिक स्थिति ऐसी थी कि अधिकांश व्यक्तियों को अपने ग्रामको छोड़कर किसी अन्य बस्तीमें अपनी आजी-विका जुटानेकी आवश्यकता न पड़ती थी। साथ ही ग्राम आर्थिक आवश्यकताओंकी पूर्त्तिकी दृष्टिसे भी स्वयंपूर्ण होता था। स्वभावतः अन्य बस्तियोंसे ग्रामके सम्बन्ध बहुत ही क्षीण होते थे। अतः भारतीय ग्रामोंका

जीवन ग्रामोंकी सीमाओंके अन्दर ही चलता था और ग्राम-संस्थाओंके द्वारा ही संचालित होता था। दूसरे शब्दोंमें प्रत्येक ग्राम एक प्रभुता-सम्पन्न छोटा जनतंत्र था।

नगरोंके प्रदेशाश्रित जीवनका संचालन कुछ सीमा तक तो नगरकी स्वायत्त-संस्थाएँ करती थीं और कुछ सीमा तक राजतंत्र करता था। अतः यह स्पष्ट है कि बस्तियोंकी दृष्टिसे भी सामाजिक नियंत्रण-शक्ति अनेक स्वतंत्र खण्डों में बँटी हुई थी। इन विभिन्न संस्थाओंके अतिरिक्त राजतंत्रमें भी शक्ति निहित थी। किन्तु राजतंत्रका कार्य-क्षेत्र अत्यन्त संकुचित था और जन-जीवनसे उसका सम्पर्क अत्यन्त दूर था। विवाह, वृत्ति और सामाजिक आचार-विचार तथा सम्पर्कके क्षेत्रमें राज्यका कोई कर्त्तव्य न था। ग्राम्य-बस्तियोंके आन्तरिक जीवनसे भी राज्य कोई विशिष्ट वास्ता न रखता था और न इन बस्तियोंमें राज्यके कोई पदाधिकारी ही रहते थे। यदि कभी एक ग्रामका दूसरे ग्रामसे सीमा-क्षेत्रके सम्बन्धमें कोई विभेद होता था, तो उस विभेदको राज्य अवश्य निपटाता था। नहीं तो राज्यका ग्रामसे केवल यही सम्बन्ध था कि ग्राम राजाको राजस्व दे। यह कहना अनुचित न होगा कि व्यवहारतः ग्रामके बाहरी छोरपर ही राजतंत्रका कार्यक्षेत्र समाप्त हो जाता था। दूसरे शब्दोंमें राजतंत्र ग्रामोंमें व्याप्त न था। वह उनका स्पर्श-मात्र ही करता था।

राजतंत्रकी शक्ति और सीमा

नागरिक जीवनमें राज्यका कार्यक्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक व्यापक था। नगरोंमें शान्ति-व्यवस्था बनाए रखनेका कर्त्तव्य राज्य-कर्मचारियोंका होता था। वे इस बातकी देख-भाल रखते थे कि नगरके अन्दर किसी प्रकारका अपराध न हो और हो जानेपर वे अपराधीको पकड़ने और दण्डित करानेका प्रयास करते थे। हाट-बाटकी व्यवस्थामें भी राजतंत्र किसी सीमा तक हस्तक्षेप करता था। नगर-वासियोंके पारस्परिक विवादोंका निर्णय भी राजतंत्र करता था। नगरमें राज-सभा संस्कृतिका प्रसार-केन्द्र थी, क्योंकि राजसभामें पहनी जानेवाली वेशभूषा और किए जानेवाले साज-शृंगारको नगरकी जनता अपने लिए अनु-करणीय मानती थी। ग्रामोंके समान ही राजतंत्र नगरों में कर उगाहता था। कुछ राजा लोग अपने कोशसे विद्वान पंडितों, साहित्यिकों और अन्य प्रकारके ख्यातिनामा व्यक्तियोंको दान देते थे और शिक्षा-प्रसारमें लगी संस्थाओं को भी धन देते थे। किन्तु अधिकतर राजा लोग यह सब बातें जनताके प्रति अपना कर्त्तव्य मानकर नहीं करते थे, वरन् यह सोचकर करते थे कि ऐसा करनेसे उनका अपना यश बढ़ेगा और उनके लिए मुक्ति-द्वार खुल जायगा।

राजतंत्रका यह कर्त्तव्य तो था ही कि बाहरी राजाओं के आक्रमणोंसे अपने अधीन प्रदेशोंकी रक्षा करे। इसके लिए राजा लोग अपने पास अनेक सैनिक नौकर रखते थे और इसी प्रकार राजाओंके सामन्तगण भी अपने पास अनेक सैनिक इस प्रयोजनके लिए रखते थे। किन्तु अपने इन कर्त्तव्योंके बावजूद राज्य अपने राज्यान्तर्गत वासियोंके जीवनके नियंत्रणके लिए किसी प्रकारके नियम न तो बनाते थे और न नियम बनानेकी शक्ति ही रखते थे। राज-कर्मचारियोंके कार्य करनेकी पद्धतिको राजतंत्र अवश्य नियमित करता था और उसके लिए आवश्यक नियम और शासन निकालता था। किन्तु जहाँ तक प्रजाके निजी सम्बन्धोंका प्रश्न था, उनके लिए राज्यकी ओरसे किसी प्रकारकी विधियाँ या नियम बनानेकी राज्यकी शक्ति न थी। ये नियम या तो रूढ़िजन्य होते थे या फिर जातीय संघ स्वयं इन्हें अपने लिए बनाते थे। राज्य तो इन नियमोंको केवल कार्यान्वित करनेमें ही सहायक होता था। उदाहरणार्थ यदि इन नियमोंके उल्लंघनसे किसी व्यक्तिको साम्पत्तिक या शारीरिक हानि होती थी और वह उसकी भरपाईके लिए दोषी व्यक्तिको उत्तरदायी ठहराता था, तब यदि दोषी व्यक्ति वैसी भरपाई करनेके लिए प्रस्तुत नहीं होता था, तो क्षत व्यक्ति राजतंत्रमें जाकर न्यायकी पुकार करता था। दण्ड-विधिका निर्माणभी राजतंत्र नहीं करता था। इस सम्बन्धमें कुछ रूढ़िगत विधियाँ प्रचलित थीं और उन्हींके आधारपर राज्य अपराधोंका निश्चय करता था और अपराधियोंको दण्ड देता था। अतः यह कहना अनुचित न होगा कि किन्हीं सीमित मामलोंमें ही राज्यको न्याय-पालिका शक्ति प्राप्त थी। ऊपर बताए हुए राज्यके कार्योंका संपादन करनेके लिए उसके पास कार्यपालिका शक्ति ही होती थी।

किन्तु राज्यकी यह शक्ति न थी कि वह किसी जातीय संगठन या किसी ग्राम्य संगठनमें कोई आमूल परिवर्तन कर दे या किसी जातीय संगठनको निषिद्ध ठहरा दे। राज्यके पास जो भी शक्ति थी, उसका विधिवत् प्रयोग वह केवल अपने सीमित कर्त्तव्योंके पालनके लिए ही करता था। यह ठीक है कि कभी-कभी ऐसे राजा भी हुए हैं, जिन्होंने राजशक्तिकी इस मर्यादाका उल्लंघनकर उसका जनताके निजी जीवनमें हस्तक्षेप करनेके लिए प्रयोग किया। किंतु जब भी किसी राजाने ऐसा किया, तभी उसके विरुद्ध जनता में असन्तोष पैदा हुआ और उसकी राज्यकी जड़ें हिल अथवा उखड़ गईं। यह बात ठीक है कि जनताने ऐसे राजाओं अनाचार और अत्याचारको कभी-कभी सह भी लिया और उनके विरुद्ध विपल्व न किया। किन्तु भारतीय इतिहासमें ऐसे राजाओंके नाम उँगलियोंपर गिने जा सकते हैं और उनका अनाचार अधिक दिनों तक टिका न रहा। इसलिए भारतीय राजतंत्रकी व्याख्यामें इनकी हरकतोंपर दृष्टिपात करना आवश्यक नहीं है। (शेष अगले अंकमें)

बीकानेरकी मध्यकालीन संस्कृति

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

श्री अगरचन्द नाहटा राजस्थानके अतिश्रेष्ठ कर्मठ साहित्यिक हैं। एक प्रतिष्ठित व्यापारी-परिवारमें उनका जन्म हुआ, स्कूल-कालेजी शिक्षासे भी प्रायः बचे रहे; किन्तु अपनी सहज प्रतिभाके बलपर उन्होंने साहित्यके वास्तविक क्षेत्रमें प्रवेश किया। कुशाग्र बुद्धि एवं श्रम दोनोंकी भरपूर पूँजीसे उन्होंने प्राचीन ग्रन्थोंके उद्धार और इतिहासके अध्ययनमें जो अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की, वह आश्चर्यजनक है। पिछली सहस्राब्दीमें जो अभूतपूर्व सफलता प्राप्त जिस भव्य और बहुमुखी जैन धार्मिक संस्कृतिका राजस्थान और पश्चिमी भारतमें विकास हुआ, उसके अनेक सूत्र नाहटाजी के व्यक्तित्वमें मानो बीज-रूपसे समाविष्ट हो गए हैं। उन्हीं के फल-स्वरूप प्राचीन ग्रन्थ-भण्डार, संघ, आचार्य, मन्दिर श्रावकोंके गोत्र आदि अनेक विषयोंके इतिहासमें नाहटाजीकी सहज रुचि है और उस विविध सामग्रीके संकलन, अध्ययन और व्याख्यामें लगे हुए वे अपने समयका सदुपयोग कर रहे हैं। इन विषयोंके लगभग एक सहस्त्र संख्यक लेख और कितने ही ग्रन्थ (जिनकी सूची नाहटजीने प्रकाशित करा दी है) वे हिन्दीके पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित करा चुके हैं। अभी भी मध्यान्हके सूर्यकी भाँति उनके प्रखर ज्ञानकी रश्मियाँ बराबर फैल रही हैं। जहाँ पहले कुछ नहीं था, वहाँ अपने परिश्रमसे कण-कण जोड़कर अर्थका सुमेरु संगृहीत कर लेना यही तो कुशल व्यापारिक बुद्धिका लक्षण है। इसका प्रमाण श्री अभय जैन पुस्तकालय है। उसमें नाहटाजीने पिछले तीस वर्षोंसे निरन्तर प्रयत्न करते हुए लगभग पन्द्रह सहस्त्र हस्तलिखित प्रतियाँ एकत्र की हैं एवं ५०० के लगभग गुटकाकार प्रतियोंका संग्रह किया है। यह सामग्री राजस्थान एवं देशके साहित्यिक एवं सांस्कृतिक इतिहासके लिए अतीव मौलिक और उपयोगी है।

बीकानेर-जैन-लेख संग्रह

जिस प्रकार नदी-प्रवाहमें से बालुका धोकर एक-एक कणके रूपमें पौपीलिक सुवर्ण प्राप्त किया जाता है, उसी प्रकारका प्रयत्न 'बीकानेर-जैन-लेख-संग्रह' नामक ग्रन्थमें नाहटाजीने किया है। राजस्थानमें फैली हुई देव-प्रतिमाओं के लगभग तीन सहस्त्र लेख एकत्र करके विद्वान् लेखकने भारतीय इतिहासके स्वर्ण-कणोंका सुन्दर चयन किया हैं। यह देखकर आश्चर्य होता है कि मध्यकालीन परम्परामें विकसित भारतीय नगरोंमें उस संस्कृतिका कितना अधिक उत्तराधिकार अभी तक सुरक्षित बच गया है। उस सामग्री का उचित संग्रह और अध्ययन करनेवाले पारखी कार्यकर्त्ताओंकी आवश्यकता है। अकेले बीकानेरके ज्ञान-भंडारोंमें लगभग पचास सहस्र हस्तलिखित प्रतियों के संग्रह तैयार हैं। यह साहित्य राष्ट्रकी सम्पत्ति है। इसकी नियमित सूची और प्रकाशनकी व्यवस्था करना समाज और शासनका कर्त्तव्य है। बीकानेरके समान ही जोधपुर, जैसलमेर, जयपुर, उदयपुर, कोटा, बूँदी आदि बड़े नगरोंकी सांस्कृतिक छानबीनकी जाय, तो उन स्थानों से भी इसी प्रकारकी सामग्री मिलनेकी सम्भावना है।

नाहटाजी द्वारा प्रस्तुत संग्रहके लेखोंसे जो ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सामग्री प्राप्त होती है, उसका अत्यन्त प्रामाणिक और विस्तृत विवेचन विद्वान् लेखकने अपनी भूमिकामें किया है। उत्तरी राजस्थान और उससे मिला हुआ जांगल-प्रदेश प्राचीन कालमें साल्व-जनपदके अन्तर्गत था। सरस्वती नदी वहाँ उस समय तक प्रवाहित थी। पुरातत्व-विभाग द्वारा नदीके तटोंपर दूर तक फैले हुए प्राचीन टीलोंके अवशेष पाए गए हैं। किन्तु बीकानेरके मध्यकालीन इतिहासका प्रथम सूत्र संवत् १५४५ से आरंभ होता है, जब बीकाजीने जोधपुरसे आकर बीकानेरकी नींव डाली। कई लेखोंमें बीकानेरको 'विक्रमपुर' कहा गया है, जो उसके अपभ्रंशका संस्कृत रूप है। बीकानेर का राजवंश आरम्भसे ही कला और साहित्यको प्रोत्साहन देनेवाला हुआ। फिर भी बीकानेरके सांस्कृतिक जीवन की सबसे अधिक उन्नति मन्त्रीश्वर कर्मचन्द्रने की। नगर की स्थापनाके साथ ही वहाँ वैभवशाली मन्दिरोंका निर्माण आरंभ हो गया। सर्वप्रथम आदिनाथके चतुर्विंशति जिनालयकी प्रतिष्ठा संवत् १५६१ में हुई। यह बड़ा देवालय इस समय चिन्तामणि-मन्दिरके नामसे प्रसिद्ध है। यह विचित्र है कि इस मन्दिरमें स्थापनाके लिए जो मूल नायक की प्रतिमा चुनी गई, वह लगभग १७५ वर्ष पूर्व संवत् १३८० में मन्डोवरमें स्थापित हो चुकी थी। इस मन्दिरकी दूसरी विशेषता यहाँका भूमिगृह है, जिसमें एक सहस्रसे ऊपर धातु-मूर्त्तियाँ अभी तक सुरक्षित हैं। ये मूर्त्तियाँ सिरोही देवालयोंकी लूटमें अकबरके किसी सेनानायकने प्राप्त करके बादशाहके पास आगरे भेज दी थीं। वहाँसे मन्त्रीश्वर कर्मचन्द्रने बीकानेर-नरेश द्वारा १६३९ में अकबरसे इन्हें

प्राप्त किया और इस मन्दिरमें सुरक्षित रख दिया। नाहटाजीने सं० २००० में इनके लेखोंकी प्रतिलिपि बनवाई थी, जो इस संग्रहमें पहली बार प्रकाशित की गई है (लेख संख्या ५६,११५४)। इनमें सबसे पुराना लेख संवत् १०२० का है और उसके बाद प्रायः प्रत्येक दशाब्दीके लेखोंका लगातार सिलसिला पाया जाता है। भारतीय धातु-मूर्तियोंके इतिहासमें इस प्रकारकी क्रमबद्ध प्रामाणिक सामग्री दुर्लभ है। इन मूर्तियोंकी सहायतासे लगभग पाँच शतीकी कला-शैलीका साक्षात् परिचय प्राप्त किया जा सकता है। इस दृष्टिसे इनका पृथक् अध्ययन और सचित्र प्रकाशन आवश्यक है।

बड़े देवालयोंका निर्माण

विक्रमकी सोलहवीं शतीमें चार बड़े मन्दिर बीकानेर में बने और फिर सत्रहवीं शतीमें चार और बने। इस प्रकार संवत् १५६१ से १६७० तक के सौ वर्षोंके बीचमें आठ बड़े-बड़े देवालयोंका निर्माण भक्त श्रेष्ठियों द्वारा नगरमें किया गया। उस समय तक देशमें मंदिरोंका वास्तु-शिल्प जीवित अवस्थामें था। जगती, मंडोवर और शिखरके सूक्ष्म भेद और उपभेद शिल्पियोंको भलीभाँति ज्ञात थे। जनता भी उनसे परिचित रहती थी और उनके वास्तुका रस लेनेकी क्षमता रखती थी। आज तो जैसे मंदिरोंका अस्तित्व हमारी आँखोंसे एकदम ओझल हो गया है। उनके वास्तुकी जानकारी जैसे हमने बिल्कुल भुला दी है। भद्र, अनुग्र, प्रतिरथ, प्रतिकर्ण, कोण आदिमें से प्रत्येककी स्थिति, विस्तार, निर्गम और उत्सेध या उदयके किसी समय निश्चित नियम थे। भद्रार्ध और कोणके बीचमें प्रासादका स्वरूप और भी अधिक पल्लवित करनेके लिए कोणिकाओंके निर्गम बनाए जाते थे, जिन्हें पल्लविका या नन्दिका कहते थे। इन कई भागोंमें उठानके अनुसार ही ऊपर चलकर शिखरमें रथिका और शृंग बनाते थे तथा प्रतिकर्ण और कोणके शिखर-भागोंको सजानेके लिए कितने ही प्रकारके अण्डक, तिलक और कूट बनाए जाते थे। अण्डकोंकी संख्या ५ से लेकर ४-४ के क्रमसे बढ़ती हुई १०१ तक पहुँचती थी। इन पाँच अण्डकवाला प्रासाद 'केसरी' और अन्तिम १०१ अण्डकोंका प्रासाद देवालयोंका राजा 'मेरु' कहलाता था। एक सहस्र अण्डकोंसे सुशोभित शिखरवाले प्रासाद भी बनाए जाते थे। इस प्रकार १५० से अधिक प्रासादोंके नाम और लक्षण शिल्प-ग्रन्थोंमें प्राप्त होते हैं। ऐसे प्रासाद शिल्पियोंकी कल्पना नहीं, जीवनके वास्तविक तथ्यका अंग थे। अतएव यह देखकर प्रसन्नता होती है कि भांडाशाह द्वारा निर्मित सुमतिनाथके मन्दिरको संवत् १५७१ विक्रमीके लेखमें 'त्रैलोक्य दीपक प्रासाद' कहा गया है, जिसका निर्माण सूत्रधार गोदाने इस प्रकार किया था--(१) संवत १५७१ वर्षे आसो, (२) सुदि २ रवौ राजाधिराज, (३) श्री लूणकरण विजय राज्ये, (४) साह भांडा प्रासाद नाम त्रैलोक्यदीपक करावित सूत्र० और (५) गोदाकारित। 'शिल्परत्नाकर' में 'त्रैलोक्यतिलक', 'त्रैलोक्यभूषण' और 'त्रैलोक्यविजय' तीन प्रकारके विभिन्न प्रासादोंके नाम और लक्षण दिए हुए हैं। इनमें से 'त्रैलोक्यतिलक प्रासाद' में शिखरके चारों ओर ४२५ अंडक और उन अंडकोंके साथ २४ तिलक बनाए जाते थे। वास्तुशास्त्रकी दृष्टिसे यह बात छानबीन करने योग्य है कि सूत्रधार गोदाके त्रैलोक्य-दीपक प्रासादके वर्तमान लक्षण शिल्पग्रन्थों के किस त्रैलोक्य प्रासादके साथ ठीक-ठीक घटते हैं। भाँडासरजीके मंदिरकी जगतीमें बनी हुई वाद्ययंत्रधारिणी पुत्तलिकाएँ भी विभिन्न नाट्य मुद्राओंमें अति सुन्दर कही जाती हैं।

प्रासादोंकी वास्तु-कला

बीकानेर अपने सहयोगी नगरोंमें 'आठ चैत्ये बीकानेर' इस विरुदसे प्रसिद्ध हुआ, मानो नगरके अधिष्ठाता देवताके लिए इस प्रकारकी कीर्त्ति संपादित करके बीकानेरके श्रीमन्त श्रेष्ठियोंने नगर देवताके प्रति अपने कर्त्तव्यका उचित पालन किया था, जिनका केवल नाम नाहटाजीके ग्रंथमें दिया गया है। जिस दिन हम अपने नगरोंके प्रति पर्याप्त रूपमें जागरूक होंगे और उनके सांस्कृतिक उत्तराधिकारीके महत्वको पहचानेंगे, उस दिन इन देव-प्रासादोंके सचित्र वर्णन, वास्तु-शैली और कोरणीके सूक्ष्म अध्ययनसे संयुक्त परिचय ग्रन्थों का निर्माण किया जायगा। पर उस दिनके लिए अभी प्रतीक्षा करनी होगी। प्रासाद-निर्माताओंका स्वर्ण-युग समाप्त हो गया एवं वास्तु और शिल्पके सच्चे अनुरागी और पारखी उनके उत्तराधिकारियोंने अभी तक जन्म नहीं लिया है। पाश्चात्य शिक्षाकी लपटोंने जिनके सांस्कृतिक मानसको झुलसा डाला है, ऐसे विद्रूप प्राणी हम इस समय बच रहे हैं। कलाके अमृत-जलसे प्रोक्षित होकर हमारे सांस्कृतिक जीवनका नवावतार जिस दिन सत्य सिद्ध होगा, उसी दिन इन प्राचीन देव-प्रासादोंके मध्यमें हमें संतुलित स्थिति प्राप्त हो सकेगी।

नाहटाजीने बीकानेर नगरके १३ अन्य मंदिर एवं राज्यके विभिन्न स्थानोंमें निर्मित लगभग ५० अन्य जैन-मन्दिरोंका भी उल्लेख किया है। उनके वास्तु-शिल्पका विस्तृत अध्ययन भी इसी प्रकार अपेक्षित है। इनमें से सुजानगढ़में बना हुआ जगवल्लभ पार्श्वनाथका 'देव सागर-प्रासाद' उल्लेखनीय है, जिसकी प्रतिष्ठा अभी पचास वर्ष

पूर्व सं० १९७१में हुई थी और जिसका निर्माण साढ़े चार लाख रुपएकी लागतसे हुआ था। भाँडासरके 'त्रैलोक्य दीपक प्रासाद'की भाँति यह प्रासाद भी वास्तुका सविशेष उदाहरण है।

जैन उपाश्रय और ग्रन्थ

मन्दिरोंकी तरह जैन उपाश्रय भी सांस्कृतिक जीवनके केन्द्र थे। इनमें तपस्वी और ज्ञान-साधक यति एवं आचार्य निवास किया करते थे। आज तो इस संस्थाका मेरुदंड झुक गया है। बीकानेरका बड़ा उपाश्रय, जहाँ बड़े भट्टारकोंकी गद्दी थी, विशेष ध्यान देने योग्य है, क्योंकि वर्त्तमान में इसके अन्तर्गत 'वृहत् ज्ञान-भंडार' नामक ग्रन्थोंका संग्रह है। हितवल्लभ नामक एक यतिने अपनी प्रेरणासे नौ यतियोंके ग्रन्थोंका संवत् १९५८में यहाँ संग्रह एकत्र कर दिया था। इस संग्रहमें १९,००० ग्रन्थ हैं, जिनका विशेष विवरणयुक्त सूचीपत्र नाहटाजीने स्वयं तैयार किया था। अवश्य ही वह ग्रन्थ-सूची मुद्रित होने योग्य है। इसी प्रसंगमें बीकानेरकी 'अनूप संस्कृत लाइब्रेरी' की ओर भी ध्यान जाता है, जो संघ-प्रवेशसे पूर्व बीकानेरका राजकीय पुस्तकालय था, किन्तु अब महाराजश्रीके निजी स्वत्वमें है। इसके संग्रहमें १२,००० ग्रंथ एवं ५००के लगभग गुटके हैं तथा अनेक महत्वपूर्ण चित्र भी हैं। (स्वनामधन्य बीकाजीके वर्त्तमान उत्तराधिकारीसे हम इतना ही निवेदन करना चाहेंगे कि उनके पूर्वजोंकी यह ग्रन्थराशि भारतीय संस्कृतिका अभिन्न अङ्ग है। सम्पूर्ण राष्ट्रको—और विशेषतः राजस्थानी प्रजाको—इस निधिमें रुचि है। यह उनके पूर्वजोंका साहित्य और कला-भाण्डार है, अतएव उदार दृष्टिकोणसे जनताके लिए इसकी सुरक्षाका प्रबन्ध महाराजश्रीको करना उचित है। इस सम्बन्धमें भारतीय शासनसे भी निवेदन है कि वह वर्त्तमान उपेक्षा-वृत्तिको छोड़कर इस ग्रंथ-संग्रहकी रक्षाके लिए पर्याप्त धनकी व्यवस्था करे, जिससे आगेके लिए ग्रंथोंका प्रकाशन हो सके और योग्य पुस्तकपालकी देख-रेखमें ग्रन्थोंकी रक्षा भी हो सके।) नाहटाजीने जैन ज्ञान-भण्डारोंका परिचय देते हुए भूमिका रूपमें श्वेताम्बर और दिगम्बर ज्ञान-भण्डारोंकी उपयोगी सूची दी है। साथ ही बीकानेरके इन संग्रहोंमें जो दुर्लभ या विशिष्ट ग्रन्थ हैं, उनकी सूची भी दी है। हमारा ध्यान विशेष रूपसे संवत् १५७१ और संवत् १९७८के बीचमें निर्मित हिन्दीके अनेक रास और चौपाई-ग्रन्थोंकी ओर जाता है, जिनकी संख्या ५० के लगभग है। हिन्दी-साहित्य की यह सब अप्रकाशित सामग्री है। संवत् १६०२की 'मृगावती चौपाई' और 'सीता चौपाई' ध्यान देने योग्य हैं।

धार्मिक और सांस्कृतिक ग्रंथ

नाहटाजीने अपने सुन्दर ग्रंथमें ऐतिहासिक ज्ञानके संवर्धनके साथ-साथ अत्यन्त सुरभित सांस्कृतिक वातावरण उत्पन्न किया है, जिसके आमोदसे सहृदय पाठकका मन कुछ कालके लिए प्रसन्नतासे भर जाता है। सचित्र विज्ञप्ति-पत्रोंका उल्लेख करते हुए १८९८के एक विशिष्ट विज्ञप्ति-पत्रका परिचय दिया गया है, जो बीकानेरके जैन-संघकी ओरसे अजीमगंज (बंगालमें) विराजित जैनाचार्यकी सेवामें भेजनेके लिए लिखा गया था। इसकी लम्बाई ९७ फुट है, जिसमें से ५५ फुटमें बीकानेरके मुख्य बाज़ार और दर्शनीय स्थानोंका वास्तविक चित्रण है। लेखकने इन सब स्थानोंकी पहचान दी है। इसी प्रकार लेखकने पल्लूसे प्राप्त सरस्वती देवीकी प्राचीन प्रतिमाका भी बहुत समृद्ध काव्यमय वर्णन किया है। सरस्वतीकी यह प्रतिमा राजस्थानी शिल्प-कलाकी मुकुटमणि है। यह इस समय दिल्लीके राष्ट्रीय संग्रहालयमें सुरक्षित है। इस मूर्त्तिमें जिन आभूषणोंका अंकन है, उनका ठीक-ठीक वर्णन सोमेश्वरकृत 'मानसोल्लास'में आया है। सरस्वतीके हाथों की अँगुलियोंके नाखून नुकीले और बढ़े हुए हैं, जो उस समय सुन्दरताका चिन्ह समझा जाता था। 'मानसोल्लास' में इस लक्षणको 'केतकी नख' कहा गया है (३। ११९२)।

नाहटाजीकी पुस्तकमें जिस धार्मिक और साहित्यिक संस्कृतिका उल्लेख हुआ है, उसके निर्माणकर्त्ताओंमें ओसवाल-जातिका प्रमुख हाथ था। उन्होंने ही अपने हृदयकी श्रद्धा और द्रव्य-राशिसे इस संस्कृतिका समृद्ध रूप संपादित किया। यह जाति राजस्थानकी बहुत ही धर्म-परायण और मितव्ययी जाति थी। पर सांस्कृतिक और सार्वजनिक कार्योंमें वह अपने धनका सदुपयोग मुक्तहस्त होकर करती थी। बीकानेरमें ओसवालोंके किसी समय ७८ गोत्र थे, जिनमें ३००० परिवारोंकी गणना थी। कहा जाता है कि मन्त्रीश्वर कर्मचन्द्रने प्रत्येक जाति और गोत्रके घरोंको एक जगह बसाकर उनकी एक-एक 'गुवाड़' प्रसिद्ध कर दी। गुवाड़का अर्थ मुहल्ला है। यह शब्द संस्कृत 'गोवाट'से बना है, जिसका अर्थ था गायोंका बाड़ा। इस शब्दसे संकेत मिलता है कि प्रत्येक मुहल्लेकी गायें एक-एक बाड़ेमें रहती थीं। प्रातःकाल वे गायें उस बाड़ेसे जंगलमें चरने के लिए चली जातीं और फिर सायंकाल लौटकर वहीं आ जाती थीं। गायोंके स्वामी दुहने और खिलानेके लिए उन्हें अपने घरपर लाते थे। पुराने समयमें गायोंकी संख्या अधिक होती थी और प्रायः उन्हें इसी प्रकारसे बाड़ेमें छुट्टा रखते थे। गोवाट–गुवाड़–शब्दकी प्राचीनताके विषयमें

प्रमाण ढूंढ़नेकी आवश्यकता है, किन्तु इस प्रथाके मूलमें वैदिक गोत्र-जैसी व्यवस्थाका संकेत मिलता है। गोत्रकी निरुक्तिके विषयमें भी ऐसा मत है कि समान परिवारोंकी गायोंको एक स्थानपर रखने या बाँधनेकी प्रथासे इस शब्दका जन्म हुआ। बीकानेरमें ओसवाल समाजकी २७ गुवाड़े थीं।

कुलोंकी व्यवस्था

यह जानकर कुतूहल होता है कि नगरमें प्रत्येक जाति अपने-अपने घरोंकी संख्याका पूरा लेखा-जोखा रखती थी। संवत् १९०५के एक वस्तीपत्रकमें घरोंकी संख्या २७०० लिखी है। अपने यहाँकी समाज-व्यवस्थामें इस प्रकारके परिवारोंकी गणना रखना जातिके सार्वजनिक संगठनके लिए आवश्यक था। प्रत्येक परिवारका प्रतिनिधि वृद्ध या स्थविर कहलाता था। उसे ही आजकल 'बड़ा-बूढ़ा' कहते हैं। बिरादरीकी पंचायत या जाति-सभामें अथवा विवाह आदि अवसरोंपर वही कुलवृद्ध या 'बड़ा-बूढ़ा' उस परिवारका प्रतिनिधि बनकर बैठता था। इस प्रकार कुल या परिवार जातिकी न्यूनतम इकाई थी। कुलोंके समूह से जाति बनती थी। जातिका सामाजिक या राजनीतिक संगठन नितान्त प्रजातन्त्रीय प्रणालीपर आश्रित था। इसे प्राचीन परिभाषामें 'संघ-प्रणाली' कहा जाता था। पाणिनीने अष्टाध्यायीमें कुलोंकी इस व्यवस्था और उनके कुलवृद्धोंके नामकरणकी पद्धतिका विशद उल्लेख किया है। व्यक्तिके लिए यह बात महत्वपूर्ण थी कि परिवारके पुरुष-सदस्योंमें गोत्र वृद्ध या 'बड़ा-बूढ़ा' यह उपाधि किस व्यक्ति-विशेषके साथ लागू होती थी, क्योंकि वही उस कुलका प्रतिनिधि समझा जाता था। प्रति परिवारसे एक प्रतिनिधि जातिकी पंचायतमें सम्मिलित होता था। जातिके इस संघमें प्रत्येक कुलवृद्धका पद बराबर था, केवल कार्य-निर्वाह के लिए कोई विशिष्ट व्यक्ति सभापति या श्रेष्ठ चुन लिया जाता था। बौद्ध ग्रंथोंसे ज्ञात होता है कि वैशालीके लिच्छिवि क्षत्रियोंकी जातिमें ७७०७ कुल या परिवार थे। चूंकि वे राजनीतिक आधारसे सम्पन्न थे, इस वास्ते उनमें प्रत्येककी उपाधि 'राजा' थी। वैश्योंकी या अन्य जातियों की बिरादरीके संगठनमें 'राजा'की उपाधिकी आवश्यकता न थी, किन्तु और सब बातोंमें पंचायत या जातीय सभाका ढाँचा शुद्ध संघ-प्रणालीसे संचालित होता था। इस प्रकार के जातीय संगठनमें प्रत्येक जाति आन्तरिक स्वराज्यका अनुभव करती थी और अपने निजी मामलोंके निपटानेमें पूर्ण स्वतंत्र थी। इस प्रकारके स्वायत्त संगठन समाजके अनेक स्तरोंपर प्रत्येक जातिमें विद्यमान थे और जहाँ वे टूट नहीं गए हैं, वहाँ अभी तक किसी-न-किसी रूपमें जीवित हैं। इस प्रकारकी व्यवस्थामें परिवारोंकी गिनती लोगोंको कंठस्थ रहती थी। घर-घरसे एक व्यक्तिको निमंत्रित करनेकी प्रथाके लिए मेरठकी बोलीमें 'घरपते' शब्द अभी तक जीवित है। नाहटाजीके उल्लेखसे ज्ञात होता है कि लाहणपत्रके रूपमें भी बिरादरीके घरोंकी संख्या रखी जाती थी, किन्तु लाहणपत्रका यथार्थ अभिप्राय हमें स्पष्ट नहीं हुआ।

पण्डित और आतमध्यानी

ग्रंथमें संगृहीत लेखोंको पढ़ते हुए पाठकका ध्यान जैन-संघकी ओर भी अवश्य जाता है। विशेषतः खरतरगच्छ के साधुओंका अत्यन्त विस्तृत संगठन था। बीकानेरके राजाओंसे वे समानताका पद और सम्मान पाते थे। उनके साधु अत्यन्त विद्वान् और साहित्यमें निष्ठा रखनेवाले थे। इसी कारण उस समय यह उक्ति प्रसिद्ध हो गई थी— 'आतमध्यानी आगरै पण्डित बीकानेर'। इसमें बीकानेर के विद्वान् यतियोंका उल्लेख तो ठीक ही है, साथ ही आगरे के 'अध्यातमी' सम्प्रदायका उल्लेख भी ध्यान देने योग्य है। यह आगरेके ज्ञानियोंकी मण्डली थी, जिसे 'शैली' कहते थे। 'अध्यातमी' बनारसीदास इसीके प्रमुख सदस्य थे। ज्ञात होता है कि अकबरकी दीनइलाही-प्रवृत्ति भी इसी प्रकारकी आध्यात्मिक खोजका परिणाम थी। बनारसमें भी अध्यात्मियोंकी दूसरी शैली या मण्डली थी। किसी समय राजा टोडरमलके पुत्र गोवर्धनदास उसके मुखिया थे। बनारस में आज भी यह उक्ति बच गई है—'सबके गुरु गोवर्धन-दास'। अवश्य ही अकबर और जहाँगीरके कालमें आगरा और बीकानेर राजधानियोंके नागरिकोंमें निजी विशेषताओं के आधारपर कुछ होड़ रहती होगी। भारतके मध्य-कालीन नगर संख्यामें अनेक हैं। प्रायः प्रत्येक प्रदेशमें अभी तक उनकी परम्परा बची है। सांस्कृतिक दृष्टिसे उनकी छानबीन, उनकी संस्थाओंको समझनेका प्रयत्न और उनके इतिहासकी बिखरी हुई कड़ियोंको जोड़कर उनका सचित्र वर्णन करनेके आयोजन होने चाहिएँ। वह नगर बड़भागी है, जहाँके नागरिकोंके मनमें इस प्रकारकी सांस्कृतिक आराधनाका संकल्प उत्पन्न हो।

अपभ्रंशका प्रभाव

नाहटाजीके संग्रहमें तीन सहस्रके लगभग लेखोंमें से अधिकांश ११वींसे १६वीं शतीके बीचके हैं, जबकि अपभ्रंश भाषाकी परम्पराका साहित्य और जीवनपर अधिक प्रभाव था। इसका प्रमाण इन लेखोंमें आए हुए व्यक्तिवाची नामोंमें पाया जाता है। जैन आचार्योंके नाम प्रायः सब संस्कृतमें हैं, किन्तु गृहस्थ स्त्री-पुरुषोंके नाम, जिन्होंने जिनालय और मूर्त्तियोंकी प्रतिष्ठापित कराया, अपभ्रंशमें हैं।

ऐसे नामोंकी संख्या इन सब लेखोंमें लगभग दस सहस्र होगी। यह अपभ्रंश भाषाके अध्ययनकी मूल्यवान् सामग्री है। इन नामोंकी आकारादि क्रमसे सूची बनाकर भाषाशास्त्र की दृष्टिसे इनकी छानबीन होनी आवश्यक है। उदाहरणके लिए 'साहुपासड़ भार्या पाल्हण दे'—इसमें 'पासड़' अपभ्रंश रूप है, जिसका मूल नाम पार्श्वदेव होना चाहिए। उसके उत्तर-पद 'देव'का लोप करके 'ड़' प्रत्यय जोड़ दिया गया और पार्श्वके स्थानपर 'पास' आदेश हुआ। 'पाल्हण दे' संस्कृत पालनदेवीका रूप है। इसी प्रकार 'जेसा' संस्कृत 'यशदत्त'का संक्षिप्त अपभ्रंश-रूप था। नामोंको संक्षिप्त करनेकी प्रवृत्ति अत्यन्त प्राचीन थी। पाणिनी ने भी विस्तारसे इसका उल्लेख किया है और उन नियमोंका विश्लेषण किया है, जिनके अनुसार नामोंको छोटा किया जाता था। इनमें नामके उत्तर-पदका लोप सबसे मुख्य बात थी। लुप्त पदको सूचित करनेके लिए एक प्रत्यय जोड़ा जाता था—जैसे 'देवदत्त'को छोटा करनेके लिए 'दत्त'का लोप करके 'क' प्रत्यय द्वारा 'देवक' रूप बनता था। इस प्रकारके नामोंको 'अनुकम्पा नाम' (दुलारका नाम) कहा जाता था। नामोंको छोटा करनेकी प्रथा पाणिनि के पीछे भी बराबर जारी रही, जैसा कि भरहुत और साँची में आए हुए नामोंसे ज्ञात होता है।

गुप्त-कालमें नामोंके संस्कृत रूपकी प्रधानता हुई। उस समयकी मिट्टीकी जो मुहरें मिली हैं, उनपर अधिकांश नाम शुद्ध संस्कृतमें और अविकल रूपमें मिलते हैं—जैसे सत्यविष्णु, चन्द्रमित्र, धृतिशर्मा आदि। गुप्त-कालके बाद जब अपभ्रंश भाषाका प्रभाव बढ़ा, तब लगभग ८वीं शतीसे नामोंके स्वरूपने फिर पलटा खाया। जैसे राष्ट्रकूट नरेश गोविन्दका नाम 'गोइज्ज' मिलता है। १०वीं शती के बाद तो प्रायः नामोंका अपभ्रंश रूप ही देखा जाता है, जैसे नागभट्ट, वाग्भट्ट और त्यागभट्ट आदि सुन्दर नामोंके लिए नाहड़, बाहड़ और चाहड़ अपभ्रंश रूप शिलालेखोंमें मिलते हैं। इस प्रकारके मध्यकालीन नामोंकी मूल्यवान सामग्रीके चार स्रोत हैं—शिलालेख, मूर्त्ति-प्रतिष्ठा-लेख, पुस्तक-प्रशस्तियाँ और साहित्य। चारों ही प्रकारकी पर्याप्त सामग्री प्रकाशित हो चुकी है। मुनि पुण्यविजयजी द्वारा प्रकाशित 'जैन पुस्तक-प्रशस्ति-संग्रह'में और श्री विनयसागरजी द्वारा प्रकाशित 'प्रतिष्ठा-लेख-संग्रह' में अपभ्रंशकालीन नामोंकी वृहद् सूचियाँ दी हुई हैं। बीकानेरके प्रतिष्ठा-लेखोंमें आए हुए नाम भी उसी श्रृंखला की बहुमूल्य कड़ी प्रस्तुत करते हैं। इनकी क्रमबद्ध सूची बननी चाहिए। इन नामोंसे यह भी ज्ञात होता है कि स्त्रियोंका कुमारी-अवस्थामें पितृनाम भिन्न होता था, किन्तु पतिके घरमें आनेपर पतिके नामके अनुसार स्त्रीके नाममें परिवर्त्तन कर लिया जाता था, जैसे साहुतेजाके नामके साथ 'भार्या तेजल दे', अथवा साहु चापाके साथ 'भार्या चापल दे'। फिर भी इस प्रथाका अनिवार्य आग्रह न था और इसमें व्यक्तिगत रुचिके लिए काफ़ी छूट थी।

धर्म और लोक-प्रथाएँ

इन नामोंके अध्ययनसे न केवल भाषा-सम्बन्धी विशेषताएँ ही ज्ञात हो सकेंगी, वरन धार्मिक और लोक-प्रथाओंपर भी प्रकाश पड़ सकता है। जैसे 'साहु दूला पुत्र छीतर' नाममें 'दूला' दुर्लभराजका दुल्लह अपभ्रंश-रूप और पुनः देश्य भाषामें उच्चारणका रूप था। 'छीतर' नामसे ज्ञात होता है कि उसकी माताके पुत्र जीवित न रहते थे। देशी भाषामें छीतर टूटी हुई टोकरीको कहते थे। जब पुत्रका जन्म हुआ, तो माताने उसे छतरीमें रखकर खींच कर घूरेपर डाल दिया, जहाँ उसे घरकी मेहतरानीने उठा लिया। इस प्रकार मानो पुत्रको मृत्युके लिए अर्पित कर दिया गया। मृत्युका जो भाग बच्चेमें था, उसकी पूर्त्ति कर दी गई। फिर उस बच्चेको माता-पिता निष्क्रय देकर मोल ले लेते थे, मानो बच्चा मृत्युदेवके घरसे लौटकर नया जीवन आरम्भ करता था! इस प्रकारके बच्चोंको छीतर नाम दिया जाता था। अपभ्रंशमें सोल्लू या 'सुल्ला' नाम भी इसी प्रकारका था। तुल् धातु फेंकनेके अर्थमें प्रयुक्त होती थी। हिन्दी 'फिक्क', 'खचेंग्' आदि नाम उसी परम्परा या उसी लोक-विश्वासके सूचक हैं।

मध्यकालीन अपभ्रंश नामोंपर स्वतंत्र अनुसंधानकी अत्यन्त आवश्यकता है। उसके लिए नाहटाजीने इन लेखोंमें मूल्यवान् सामग्री संगृहित कर दी है। यह भी ज्ञातव्य है कि पुरुष नामोंके साथ श्रेष्ठी, साहु आदि व्यावहारिक सम्मानसूचक पदोंका विशेष अर्थ था। अब वे समस्याएँ धुँधली पड़ गई हैं, अतएव उन पदोंके अर्थ भी स्पष्ट नहीं रहे। प्राचीन परम्पराके अनुसार सोने-चाँदी के बाजारमें जो सर्राफ़ेके सदस्य होते थे, वे ही 'श्रेष्ठी' कहलाते थे। प्रत्येक नगरकी सोनहटी या सर्राफ़ेमें उनकी संख्या नियत होती थी और विधिपूर्वक चुनावके बाद ही वे लोग सर्राफ़ेके सदस्य बनाए जाते थे। इन्हींको उत्तर-भारतमें 'महाजन' कहने लगे। एक लेखमें श्रेष्ठी आनाके पुत्र नायक को 'व्यवहारिक' लिखा गया है (लेख ३१८)। इसकी संगति यही है कि पिताके बाद पुत्रको श्रेष्ठि-पद प्राप्त नहीं हुआ और वह केवल व्यवहारिक अर्थात् रुपएके लेन-देन का काम ही करता रहा। इन लेखोंकी सामग्री कई मध्यकालीन संस्थाओंको हमें नई आँखसे देखनेमें सहायता देती है।

रेत और सीमेंट

श्रीमती विमला लूथरा

पात्र

केशवलाल : ठीकेदार
शारदा : उसकी पत्नी
श्री पी० दास : एक्ज़ेक्टिव इंजीनियर
करुणा दास : उसकी पत्नी
सिन्हा : डिप्टी कलेक्टर
बेरा, पुलिसका अफ़सर आदि।

[समय——संध्याके सात बजे। स्थान——ठीकेदारका घर। कमरा बहुत-सी बढ़िया चीज़ोंसे अटा पड़ा है, क्योंकि ठीकेदार साहबने पिछली लड़ाईमें खूब रुपया बनाया था। किन्तु इन क़ीमती चीज़ोंकी ढंगसे व्यवस्था नहीं की गई है। कुछ चीज़ें ऐसी भी हैं, जिनसे ठीकेदारकी कलात्मक वृत्तियोंके अभावका पता चलता है, जैसे दीवारपर टँगे फ़िल्मी सितारोंके चित्र वा रंगदार तस्वीरोंवाले कैलेंडर इत्यादि। शारदा सोफ़ेपर बैठी सिलाईयाँ बुन रही है। रह-रहकर खिड़कीके बाहर सड़ककी ओर देख लेती है। कुछ देर बाद एक मोटरका हार्न सुनाई देता है। शारदाके हाव-भावसे मालूम हो जाता है कि यह वही मोटर है, जिसकी वह प्रतीक्षा कर रही थी। बरामदेके सामने मोटर रुकती है और केशवलाल अन्दर आता है।]

शारदा : बहुत देर लगा दी आज आपने ?

केशवलाल : अब दो-चार दिन तो देर ही लगेगी। जब तक इस पुलका उद्घाटन नहीं हो जाता, सिरपर बोझ-सा लगता है। मैं चाहता हूँ कि यह काम जल्दीसे समाप्त हो, ताकि मैं निश्चिंत होकर उधर रेलकी लाइनकी ओर ध्यान दूँ। पचास मील लंबी लाइन बनानेका ठीका ले लिया है, वह कोई एक दिनमें थोड़े ही हो जायगा।

शारदा : (मुस्कराकर) मैं भी तो यही चाहती हूँ कि पुलका उद्घाटन निर्विघ्न हो जाय, क्योंकि मुझे भी तो अपनी चीज़ें खरीदनी हैं। याद है न अपना वादा ? अब तो समय आ रहा है।

केशवलाल : हाँ, हाँ, याद है। क्या तुम उस वादेको भूलने दोगी ? कहो, क्या लेना है ?

शारदा : हीरेके टॉप्स और अँगूठी और उनके बीच में एक-एक ऐमरल्ड......

केशवलाल : यह काम पास हो जाय, पैसे वसूल करलें, तो जो मनमें आय, ले लेना। आशा तो है कि दास साहबकी कृपासे कुछ दाल-दलिया हो ही जायगा। सच कहता हूँ कि इंजीनियर तो कई देखे, किन्तु हम ठीकेदारोंके कामका आदमी तो बस यही एक है।

शारदा : क्यों न हो, क्या हमने उसके लिए कुछ कम किया है ? और कौन ठीकेदार होगा, जो इस तरह दिल खोलकर खिलाता-पिलाता हो ! जो माँगा, झट-से ले दिया ; जो नहीं माँगा, वह भी दिया। अच्छा, यह तो आपने बताया ही नहीं कि आ रहे हैं न वे लोग ?

केशवलाल : हाँ, वहींसे तो आ रहा हूँ। दासको भी तो बहुत काम करना है। पुलके उद्घाटनके लिए मिनिस्टर साहब आ रहे हैं। बड़ा शानदार जल्सा होगा। उसके लिए सारी व्यवस्था करनी है। दासने कहा है कि खानेके लिए तो वे लोग नहीं ठहरेंगे, क्योंकि उन्हें एक-दो जगह और भी जाना है ; वैसे ही शामको थोड़ी देरके लिए आवेंगे।

शारदा : मैंने तो कबाबके लिए क़ीमा वगैरह मँगा कर रखा था।

केशवलाल : अच्छा ही है, थोड़ी ह्विस्की पिला देंगे और कबाब खिला देंगे ! जानती तो हो, तुम्हारे घरके बने कबाब उन्हें कितने पसन्द हैं !

शारदा : तो बैरेको बुलाकर ज़रा समझा दूँ। नया आदमी है।

केशवलाल : कैसा काम कर रहा है ?

शारदा : आदमी तो चुस्त है, काम भी समझता है ; लेकिन मुझे इसकी चतुराईसे कुछ शक-

सा होने लगता है। कहीं किसी दिन हाथ ही न लगा जाय !

केशवलाल : दो-चार दिन और देख लो, नहीं तो किसी दूसरेका प्रबन्ध कर लेंगे।

शारदा : सो तो करना ही होगा।

केशवलाल : देखो शारदा, एक काम करना। एक-आध ड्रिंकके बाद तुम फ्लश खेलनेका प्रस्ताव करना। वे तो कहेंगे कि समय बहुत थोड़ा है इत्यादि, पर तुम अनुरोध करना कि (आँख मारकर) मैं आज दो-चार सौ रुपया हारना चाहती हूँ !

शारदा : क्यों ; आज फिर ?

केशवलाल : हाँ, बस यह अंतिम बार है। फिर इसकी आवश्यकता न होगी।

शारदा : अच्छा !

केशवलाल : यदि वे आज खेलनेके लिए राज़ी न हुए, तो तुम मिसेज़ दासको कल सबेरेके लिए पक्का कर लेना। जब आय, तो ब्रिज खेलना और कोई ढाई-तीन सौ तक हार जाना, ज्यादा नहीं। बाकी फिर सरकार से पूरे पैसे वसूल कर लेनेके बाद देखा जायगा।

शारदा : (कुछ अप्रसन्न-सी होकर) जैसा कहो ; वैसे तो मैंने आज ही वायलका थान भी भेजा है उनके यहाँ।

केशवलाल : किसके हाथ ?

शारदा : इसी बैरेके हाथ भेजा था।

केशवलाल : अभी इस बैरेको ऐसा काम मत सौंपो। नया आदमी है, न-जाने कहाँ-कहाँ क्या-क्या कहता फिरे !

शारदा : अरे हाँ, इस बातका तो मुझे ध्यान ही नहीं आया। सौरी। अच्छा उसे कबाबके लिए तो कह दूँ। (आवाज़ देती है) बैरा !

बैरा : (दूरसे) आया जी।

(बैरेका प्रवेश)

शारदा : देखो, दो-चार लोग हमसे मिलने आ रहे हैं। तुम छः बोतल सोडा और बर्फ़ ले आओ जल्दीसे। (केशवलालसे) क्यों, छः काफ़ी होंगी न ?

केशवलाल : हाँ।

शारदा : जो क़ीमा पिसा पड़ा है, उसके कबाब तलने हैं। चार-छः पापड़ भी भून लेना। जब कहूँगी, तो ये चीज़ें ले आना।

बैरा : जी हुज़ूर। (जाता है)

शारदा : देखो, कैसे शिष्टतापूर्वक बात करता है। देखनेमें भी साफ़-सुथरा है।

(बाहर मोटर रुकनेकी आवाज़ आती है)

केशवलाल : वे आ गए शायद। (उठकर बाहर बरामदेकी ओर जाता है और दास तथा श्रीमती दासको लेकर आता है।)

शारदा : नमस्कार।

श्रीमती दास : नमस्कार बहन शारदा। भई वायलके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। मुझे बेहद पसन्द है। कितनी पतली और हल्की है।

शारदा : अच्छा हुआ आपको पसन्द आ गई।

करुणा : उसके पैसे तो बताइए, कितने हैं ? (अपना हैंडबैग खोलती है)

शारदा : (उसका हाथ पकड़कर)––आप बैठिए तो, पैसे कहीं भागे थोड़े ही जाते हैं !

करुणा : नहीं, यह बात ठीक नहीं। आपने पहले भी एक-आध बार मुझे यूँ ही बातों-बातोंमें टरका दिया था।

शारदा : आप तो लज्जित कर रही हैं मुझे। क्या मैं आपसे ज़रा-सी चीज़के लिए पैसे लेती अच्छी दीखती हूँ ? क्या मेरा इतना भी अधिकार नहीं कि बच्चोंके फ्रॉकोंके लिए थोड़ी-सी वायल भी भेज सकूँ ?

करुणा : आप बहुत तकलीफ़ करती हैं।

शारदा : इसमें तकलीफ़ कैसी ? अच्छा, आप यह बताइए कि आप पिएँगी क्या ? क्यों दास साहब, आप ?

केशवलाल : (हँसकर)––हम लोगोंको तो पूछनेकी जरूरत नहीं, मिसेज़ दाससे पूछिए।

करुणा : मेरा भी आपको पता ही है––वही ताज़ा नीबू सोडेके साथ।

शारदा : (बैरेसे)––पहले सोडा, बर्फ़ और ह्विस्की दे जाओ। फिर दो गिलास सोडा और उसमें ताज़ा नीबू मिलाकर लाओ। (करुणासे) थोड़ी-सी चीनी तो डाल दे न ?

करुणा : हाँ, मगर बिल्कुल थोड़ी-सी।

शारदा : (बैरेसे)––जाओ, तुम यह ले आओ। और हरीसे कहना ज़रा गरम-गरम कबाब बनाय।

करुणा : नहीं, कबाब रहने दीजिए। हमें खाना खाने बाहर जाना है।

शारदा : एक-आध टुकड़ा ही सही। क्यों दास साहब ?

दास : इस घरमें बने कबाबके लिए तो मैं कभी भी ना नहीं कर सकता। (केशवलालसे) मिनिस्टरके आनेकी तारीख तो पक्की हो गई है। सत्ताइसको सुबह आएँगे और अगले दिन शामको लौट जाएँगे। सिन्हाका भी तार आया है। अब तो प्रोग्राम बनाना-भर बाकी है।

करुणा : शुक्र है भगवानका कि यह काम समाप्त हो रहा है। काम था कि एक मुसीबत थी! ज्यों सवेरेसे शुरू होता था, तो बस सारा दिन काम, काम, काम! न इन्हें अपनी सुध थी, न घरकी। मेरे तो नाकमें दम कर रखा था।

केशवलाल : सच कहतीं हैं आप, इतना काम किया है दास साहबने कि क्या कोई इंजीनियर करेगा!

दास : भाई, तुम्हारे सहयोगसे ही तो सब-कुछ हो सका है।

केशवलाल : यह तो आपकी कृपा है। हमें तो केवल काम करना था, सारी जिम्मेदारी तो आपकी ही थी। जिस चतुराईसे आपने इसे निभाया है, सब जानते हैं। इसीलिए तो काम नियत समय से तीन महीने पहले ही समाप्त हो गया!

(बैरा चाँदीकी ट्रेमें पीनेकी चीजें लेकर आता है। करुणा और शारदा अपना-अपना गिलास उठा लेती हैं।)

दास : (ह्विस्कीकी बोतल देखकर)—स्काच-क्रीम! अरे दोस्त, यह कहाँसे मार लाए? (गिलासमें डालते हुए) इसे तो आजकल देखना ही दुर्लभ हो गया है!

केशवलाल : (अपना गिलास भरकर)—आपके लिए तो चीज़ अच्छी ही चाहिए।

दास : आपका तो रसूख इतना है कि न-जाने कहाँ-कहाँसे कौन-कौन-सी चीज़ ले आते हैं!

केशवलाल : आपकी कृपासे इस नाचीज़के काम हो ही जाते हैं। कहिए, आपको भी मँगवा दें?

दास : नेकी और पूछ-पूछ?

केशवलाल : जितनी चाहें! अगले हफ्ते तक आ जाय, तो ठीक है न? एक बोतल चाहिए, तो अभी है मेरे पास।

दास : किन्तु लूँगा एक शर्त्तपर—पैसे अभी ले लें। मैं जानता हूँ कि पैसेके मामलेमें तुम बहुत लापरवाह हो। मेरी मोटर के लिए जो टायर मँगवाकर दिए थे, उसके पैसे भी अभी तक नहीं बताए।

केशवलाल : पैसेकी बात करके लज्जित न किया करें मुझे। जहाँ पैसेका सवाल आया, वहाँ मित्रता नहीं रहती। आपके-हमारे सम्बन्ध ऐसे नहीं, जहाँ पाई-पाईका हिसाब करना ऐसा आवश्यक हो।

शारदा : (बैरेसे, जो अभीतक वहीं खड़ा है)—देखो, तुम ये चीजें मेज़पर रख दो और कुछ खानेको ले आओ।

बैरा : बहुत अच्छा हुज़ूर। (जाता है)

करुणा : सच कहती हूँ, खानेके लिए कुछ न मँगाओ। ज़रा भी भूख नहीं है।

शारदा : मुझे तो आशा थी कि आप खाना हमारे साथ ही खायँगी।

करुणा : क्या करें, लाचारी है।

शारदा : तो आइए, एक-दो हाथ ताशके ही हो जाएँ।

करुणा : फिर किसी दिन सही, अभी ज़रा जल्दी जाना है।

शारदा : जा लेना, अभी तो आई हैं आप। (घड़ी देखकर) अभी खानेको भी तो बहुत देर है।

केशवलाल : और जब तक आप लोग पहुँचेंगे नहीं, कोई खाना खायगा नहीं!

करुणा : अच्छा, जैसी आपकी इच्छा। लेकिन होंगे दो-चार हाथ ही, क्योंकि हमें जल्दी ही जाना होगा।

शारदा : (केशवसे)—ज़रा आलमारीसे ताश और काउंटर तो निकालिए।

दास : कैसा चस्का है इन स्त्रियोंको भी ताशका!

शारदा : आप भी तो आइए न। दिन-भर काम करके थक गए होंगे। इससे मन कुछ बहल जायगा।

(केशवलाल आलमारी खोलकर ताश निकालता है।

सब लोग मेज़के आसपास बैठ जाते हैं। केशवलाल सबको एक-एक सौ रुपएके काउंटर गिनकर दे देता है।)

दास: पूल कितना? कोई सीमा बाँधो।

केशवलाल: आप तो जानते हैं, इस घरमें किसी चीज़की कोई सीमा नहीं है। जब खेलना ही दस-पन्द्रह मिनट है, तो सीमा कैसी?

(कुछ देर ह्विस्कीके साथ इसी प्रकारकी बातचीत चलती रहती है। फिर ताशके पत्ते बाँटे जाते हैं। बैरा खानेका सामान ले आता है और मेज़के आसपास घूमकर सबको दिखाता है। इसी बहाने वह सबके पत्ते भी देख लेता है और ताशकी बाज़ी किस तरह चल रही है यह भी भाँप जाता है।)

करुणा: (पहली बाज़ी समाप्त होनेपर शारदासे) मैं आपकी जगह होती, तो इस हाथपर इतना न लगाती। आख़िर मामूली सत्तियोंका जोड़ा ही तो है।

केशवलाल: मैंने इसे कई बार समझाया है, पर जब यह खेलने बैठती है, तो ऐसे आवेशमें आ जाती है कि अपनी सुध-बुध ही भूल जाती है। बैरा, देखो बर्फ़ और लाओ।

(बैरा जाता है। नई बाज़ी शुरू होती है। सब लोग दाँव लगाते हैं और चाल बढ़ती चली जाती है।)

करुणा: मेरे आठ आए।

शारदा: मेरे सोलह।

(बैरा चुपकेसे आता है और उत्सुकतासे बाज़ीका रुख देखता है।)

केशवलाल: मेरे बत्तीस।

दास: यह लो, बत्तीस यह रहे।

करुणा: आप लोग तो बढ़ते ही चले जा रहे हैं; मैं तो पास। (पत्ते फेंक देती है)

शारदा: मैं भी पास। (पत्ते रख देती है)

केशवलाल: यह हाथ मुझे या तो राजा बनायगा या रंक! यह लीजिए दास साहब, मेरे चौंसठ।

दास: (मुस्कराता हुआ)—तो चौंसठ मेरे भी लो। (बैरा बर्फ़ आगे बढ़ाता है)

केशवलाल: (बरेसे)—ठहरो जी, यहाँ घमासानका रण पड़ रहा है। दास साहब, यह रहे चौंसठ और.....

दास: (अपने गिलासमें ह्विस्की तथा बर्फ़ डालते हुए)—यही बात है, तो लो भई एक और चौंसठ और शो करो तो...

(केशव पत्ते दिखाता है। पत्ते बिल्कुल मामूली हैं, इतनी बड़ी चाल खेलनेके योग्य नहीं।)

दास: (अपने पैसे बटोरते हुए)—अच्छा! इतना ब्लफ़ (झूठ) खेलते हो तुम! मैं तो डरकर पत्ते फेंकने जा रहा था।

केशवलाल: बैरा, अब लाओ ह्विस्की इधर। ज़रा ग़म-ग़लत करें। कितने बने दास साहब? बहुत बड़ा हाथ मारा आपने तो!

दास: (गिनकर) दो सौ अस्सी रुपए।

केशवलाल: हे भगवान!

दास: सब लोग अपने-अपने काउंटर गिनो तो। क्यों ठीक है न हिसाब?

केशवलाल: जी हाँ, और ३६ मिसेज़ दासके देने हैं। मिलाकर ३१६ हुए।

करुणा: (कलाईपर बँधी घड़ी देखकर)—है तो बहुत धृष्टता, परंतु अब हमें चलना चाहिए।

केशवलाल: चले जाइएगा। और नहीं खेलना चाहते, तो ताश बन्द कर देते हैं। दास साहब, एक ह्विस्की तो और पीजिए। बैरा, साहबको ह्विस्की दिखाओ। (फिर जेबमें से रुपए निकालकर दासके हाथमें देते हुए) यह लीजिए तीन नोट—सौ-सौके हैं और दो दस-दसके। ताशका कर्ज़ा तो मेज़पर ही चुका देना चाहिए।

दास: (अपना बटुआ निकालकर चार एक-एक रुपएवाले नोट देता है)—मिस्टर केशवलाल, आज तो आप खूब हारे!

केशवलाल: अगली बार क़सर निकाल लूँगा!

शारदा: यह सदा हारते ही हैं, जीतें कब हैं?

करुणा: यह तो आपके प्रेमकी कृपा है। क्यों ठीक है न!

(सब हँसते हैं। सहसा किसी मोटरके आनेकी आवाज़ आती है और सबके कान खड़े हो जाते हैं।)

शारदा: कौन होगा, इस समय?

करुणा: आपके और मेहमान आ रहे हैं। हमें अब आज्ञा दीजिए। देर हो रही है। (दाससे) क्यों, चलें?

दास: चलो, चलते हैं।

(सिन्हा साहब आते हैं।)

केशवलाल: बड़ी लम्बी उम्र है आपकी! अभी-अभी हम सब आपही को याद कर रहे थे।

सिन्हा : क्षमा कीजिएगा, मैं यूँ ही बिना खबर किए चला आया। आपके घरके सामनेसे जा रहा था, जब दास साहबकी गाड़ीपर नज़र पड़ी, तो सोचा ज़रा इनसे भी मिल लूँ। (दाससे) उद्घाटनके लिए मिनिस्टर साहब आ रहे हैं, यह तो आपको पता होगा ही।

दास : जी हाँ।

सिन्हा : अब प्रोग्राम क्या बनाना है?

केशवलाल : (सिन्हाके कन्धेपर हाथ रखकर)—ज़रा बैठिए तो। थोड़ी-सी ह्विस्की?

सिन्हा : धन्यवाद; इस समय नहीं। मुझे बहुत जल्दी कलेक्टर साहबके पास जाना है। उनसे प्रोग्राम तय करके आप लोगों से बातचीत करूँगा। मिनिस्टर साहब के लिए एक पार्टी तो सरकारी होगी ही, एक पब्लिककी तरफ़से भी हो जाय, तो बहुत अच्छा हो!

केशवलाल : आप यह सब मेरी ओर देखकर क्यों कह रहे हैं?

सिन्हा : (कृत्रिम मुस्कराहटसे)—इसलिए कि यहाँकी पब्लिकमें तो सबसे माननीय आप ही हैं!

केशवलाल : ना भैया, मेरे पास इतने पैसे नहीं हैं!

सिन्हा : आप जानते हैं कि सरकारी रुपएसे तो ऐसी पार्टियाँ हो नहीं सकतीं। जब ये बड़े लोग आ टपकते हैं, तो आप सबको ही तकलीफ़ देनी पड़ती है। और करें भी क्या? जब तक दो-चार ठाठदार पार्टियाँ न हों, तो मिनिस्टर लोग खुश भी तो नहीं होते!

केशवलाल : सच्ची बात तो यह है भाई साहब कि जब आपके मिनिस्टर पिछली बार आए थे, तो मेरा एक हज़ार रुपया खुल गया था! अब तो मेरे पास इतने पैसे हैं नहीं!

सिन्हा : क्या कहते हैं मिस्टर केशवलाल? पुलका उद्घाटन हुआ नहीं कि आप मालामाल हो जायँगे!

केशवलाल : जब होंगे, तो देखा जायगा। अभी तो बड़ी मुश्किल है।

सिन्हा : आपके लिए क्या मुश्किल है?

केशवलाल : आप दास साहबसे कहिए। यदि उनका सहयोग हो, तो बहुत-सी मुश्किल आसान हो सकती है।

दास : तुम कल सुबह किसी समय दफ्तर आओ, तो देखेंगे। कोई छोटा-मोटा ऐस्टीमेट बनाकर दे दो। पुलके खातेमें डाल देना, प्रबन्ध हो जायगा।

सिन्हा : बहुत अच्छा। तो मैं चलूँ। (दास से) आपसे ब्योरेवार बातचीत तो कल ही होगी। (जाता है)

केशवलाल : यह लो, मिनिस्टर साहबके आनेकी हमको तो चपत लग गई!

दास : आपको चपत कैसी? चपत तो लगनेवालोंको लगेगी।

(टेलीफोनकी घंटी बजती है। केशवलाल उठकर सुनता है।)

केशवलाल : कौन? मिस्टर दास? अच्छा! आप थामे रखिए। (दासको इशारा करता है)

दास : (टेलीफोन पकड़कर)—मैं दास बोल रहा हूँ। क्या?.....कब?.....कहाँसे?.... दो खंभे!.... दो खंभे?...कैसे हुआ?... अच्छा! तो काम रोक दो...मैं अभी आ रहा हूँ....

(टेलीफोन पटककर रखता है और वहीं पास पड़ी कुर्सीपर बैठ जाता है। उसके मुखपर घबराहट है।)

केशव, शारदा, करुणा (तीनों एक साथ)—क्या हुआ?

दास : (चिन्तित स्वरमें)—पुलके दो खंभोंमें दरार पड़ गई है। इस बातको ज़रा बैठकर ध्यानसे सोचना पड़ेगा। (पत्नी से) तुम चलो, मैं ज़रा देरसे आऊँगा।

करुणा : क्या इसी समय पुलपर जाना पड़ेगा?

दास : हाँ। तुम वहाँ पहुँचकर मोटर यहीं भेज देना।

करुणा : कितनी देर लगेगी?

दास : कोई आधा घंटा, शायद कुछ अधिक भी लग जाय।

(करुणा जाती है। शारदा उसे मोटर तक पहुँचाने जाती है।)

केशवलाल : खंभोंमें दरार कैसे पड़ गई! क्या स्थिति कुछ गंभीर है?

दास : तुम पूछते हो गंभीर? वहाँ तो सत्यानाश हो गया है! दो खंभे बिल्कुल दब

गए हैं. दस मजदूरोंको चोट आई है, जिनमें से दोकी दशा शोचनीय है। अगर इनमें से एकको भी कुछ हो गया, तो हमारा सर्वनाश हो जायगा।

केशवलाल : यह तो बहुत बुरा हुआ। इसका उपाय क्या होगा।

दास : (आवेशमें)—अब उपाय पूछते हो? मैंने तुमसे कहा नहीं था कि सीमेंटका मिश्रण ठीक रखो। तुम्हें तो लालच खाए जा रहा था। चाहते थे सारी उम्रकी कमाई इस एक पुलमें से ही निकले! और वह भी अपने ही लिए नहीं, अपनी सात पुश्तोंके लिए भी! माना कि कई जगहें ऐसी होती हैं, जहाँ सीमेंट थोड़े अनुपातमें लगानेसे भी काम चल जाता है। परन्तु वह जगह खंभे नहीं। खंभोंका का तो सीमेंटपर ही दारोमदार है। और अगर खंभे ही पक्के न हुए, पुल खड़ा कैसे रह सकता है?

केशवलाल : अब यह दुर्घटना हो गई, तो आप भी ऊपर चढ़े आ रहे हैं! वैसे मैंने तो जो-कुछ किया, सब आपकी सलाह और सहयोगसे ही।

दास : जब नींव खुदवा रहे थे, तो तुम्हींने तो कहा था कि पचीस फुट गहराईकी बजाय १७ फुट कर दो, कौन देखता है? मिट्टी हीमें तो दब जायगी।

केशवलाल : (तमतमाते हुए)—स्वयं तुम्हींने तो सब-कुछ पास किया है। अब सारा दोष मेरे सिरपर मत थोपो। मैं तो जब कमाऊँगा, तब कमाऊँगा; अभी तक तो तुम्हारा ही घर भरता रहा हूँ। तुम्हारी माँगें ही पूरी नहीं होतीं। कभी पेट्रोल, कभी टायर, कभी वायलका थान और अब ह्विस्की....

दास : (दाँत पीसकर)—हूँ, यह बात है!

केशवलाल : जब तुम अपने बाल-बच्चोंको कश्मीर भेज रहे थे, तो मुझे उनके आने-जानेके खर्च तथा वहाँ हाउस-बोटमें रहनेकी व्यवस्था करनेको कहा था या नहीं?

दास : झूठ मत बोलो। मैंने कहा था तुम्हें यह सब करनेको?

केशवलाल : झूठ! तुम इसे झूठ कहते हो? मेरे पास रसीदें रखी हैं सब! कहो, तो अभी दिखा दूँ। तुम्हारी मोटरके टायर किसने खरीदे थे? क्या यह भी झूठ है? जहाँ तक कहनेका सवाल है, मुझसे तुमने कहा या तुम्हारी पत्नीने, इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। आजकल तो यह तरीका ही बन गया है कि अफ्सर लोग स्वयं कुछ नहीं कहते, उनकी स्त्रियाँ ही ढंगसे अपनी ज़रूरतें बता देती हैं।

दास : (गुस्सेसे तमतमाते हुए)—इस तरह अफ़सरोंसे टक्कर लेकर आज तक तो किसी ने कुछ लाभ उठाया नहीं। अगर तुम सोचते हो कि इस तरह बढ़-चढ़कर बातें करनेसे तुम बच निकलोगे, तो तुम्हारी यह ग़लतफहमी भी जल्दी ही दूर हो जायगी। जब इंजीनियर और ठीकेदारमें झगड़ा हो, तो जीतेगा तो इंजीनियर ही! तीन अफ्सर मेरे नीचे काम करते हैं और तीन ऊपर। उन सबके हस्ताक्षर हैं सब काग़ज़ोंपर। मेरा अकेलेका कोई क्या बिगाड़ लेगा? किन्तु तुम्हारा छुटकारा तो किसी सूरतमें नहीं होगा।

केशवलाल : मैं इन धमकियोंसे डरनेवाला नहीं हूँ।

दास : (व्यंगसे)—हूँ। यह बात है! तो मेरा क्या बिगाड़ लोगे? करके देख लो, जो मनमें आए!

केशवलाल : बाबा, इस तरह लड़ने-झगड़नेसे तो कोई लाभ नहीं। दोनोंमें फूट पड़ गई, तो दोनोंको ही नुक़सान होगा। ऐसी डरने की भी क्या बात है? कोई-न-कोई तरीका निकाल ही लेंगे, जिससे साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे।

दास : (शांत भावसे)—बात तो तुम ठीक कहते हो। ज़रा अपने किसी आदमीको टेलीफ़ोन करके पता तो करो कि आखिर हुआ क्या है?

(केशवलाल टेलीफ़ोनका नम्बर घुमाता है। इतनेमें एक पुलिसका अफ़सर अंदर आता है। उसके पीछे-पीछे बैरा है।) केशवलाल घबरा जाता है और टेलीफ़ोन रख देता है।)

पुलिस-अफ्सर : बिना आज्ञाके अंदर चले आनेकी क्षमा

चाहता हूँ। परन्तु कर्त्तव्य कर्त्तव्य ही है; उसकी अवज्ञा तो नहीं कर सकता, चाहे आपको कष्ट ही देना पड़े। मुझे आदेश मिला है कि आप दोनोंको गिरफ्तार कर लिया जाय।

केशवलाल, दास : गिरफ्तार? गिरफ्तार? किस लिए

पुलिस-अफ्सर : आप जानते ही हैं किस लिए।

दास : नहीं तो।

पुलिस-अफ्सर : जो बातें आप दोनों अभी कर रहे थे, मैंने खिड़कीकी आड़में से सब सुन ली हैं। अब हमें इस बातका प्रमाण मिल गया है कि आप घूस ले-देकर क्या-क्या उपद्रव रचते रहे हैं। सरकारकी कितनी हानि हुई है आपके हाथों?

(दास और केशवलाल अचंभित-से उसकी ओर देखते रह जाते हैं)

केशवलाल : (कुछ साहस बटोरकर)—इन बातोंमें हम नहीं आते। आख़िर हम बच्चे तो हैं नहीं। इस तरह सुनी-सुनाई बातोंपर भी कभी कोई पकड़ा जाता है? तुम्हारे पास सबूत क्या है?

पुलिस-अफ्सर : सबूत बहुत है। एक तो यह सामने खड़ा है—बैरा। यह तो हमारा अपना आदमी है। पिछले छः-सात दिनोंमें इसने सब-कुछ देख-भाल लिया है। कचहरीमें गवाहीके लिए इसे ही पेश किया जायगा।

केशवलाल : क्या गवाही देगा यह?

पुलिस-अफ्सर : यह तो जजके सामने देखा जायगा। अभी तो आप कृपा करके मेरे साथ चलिए। आप पढ़े-लिखे आदमी हैं। आपको इसकी (हथकड़ी दिखाकर) तो ज़रूरत नहीं। चलिए मेरे साथ, बाहर मोटर खड़ी है।

केशवलाल : ऐसी बात है, तो हम भी देख लेंगे।

दास : मुझे तुम गिरफ्तार नहीं कर सकते, क्योंकि मैं सरकारी अफ्सर हूँ और मैं अपना काम कर रहा हूँ। मेरा पहला कर्त्तव्य है कि पुलके खंभोंमें जो दरारें आई हैं, जाकर उनका निरीक्षण करूँ। मैं कहीं भागा तो नहीं जा रहा हूँ।

पुलिस-अफ्सर : पुलकी चिंता न कीजिए। उसकी मरम्मतकी आवश्यकता नहीं है। वह टेलीफ़ोन तो झूठा था, सरासर। एक मज़ाक था—यह देखनेके लिए कि आपपर क्या असर होता है उसका!

केशवलाल : (बनावटी हँसी हँसते हुए)—वाह, भई वाह! कमाल किया आपने तो सुपरिटेंडेंट साहब! अरे दोस्त, हमें तो पहलेसे ही मालूम था कि आप मज़ाक कर रहे हैं। तो क्या आप समझते हैं कि हम सच मान गए थे?

पुलिस-अफ्सर : जैसे भी हो, आप चलिए मेरे साथ।

केशवलाल : सुपरिटेंडेंट साहब, आप दुनियादार हैं, सब समझते हैं। माना कि हम फ़रिश्ते नहीं, पर आप भी तो कोई ऐसे कट्टर धर्मात्मा नहीं। आओ बैठो, थोड़ी ह्विस्की पियो, साथ-साथ बातें भी होंगी। बताओ क्या चाहिए आपको? (बटुआ निकालता है)

पुलिस-अफ्सर : नहीं साहब, इन बातोंको छोड़िए। मामला बहुत दूर तक पहुँच चुका है। अब न मेरे बसकी बात है, न आपके....

दास : लेकिन मैं तो ड्यूटीपर जा रहा हूँ।

पुलिस-अफ्सर : (हथकड़ी निकालकर)—आप चलेंगे या मुझे इसके लिए मजबूर करेंगे?

(दास और केशवलाल उठकर उसके साथ-साथ बाहर की ओर जाते हैं)

बैरा : (केशवलालसे)—हुज़ूर, मेरी दस दिनकी तनख्वाह तो देते जाइए!

(केशवलाल उसको मुक्का दिखाता हुआ बाहर जाता है। उनके चले जानेके बाद बैरा अपने-आपको सारी स्थितिका मालिक समझता है। ह्विस्कीकी बोतल उठाकर लाता है। कुछ निकालकर मज़ेमें पीता है। पर्दा गिरता है।)

चीनके पुस्तकालय

डा० जगदीशचन्द्र जैन

चीनमें जनवादी सरकारकी स्थापना होनेके बाद भूमि-सुधार, औद्योगिक निर्माण और साक्षरता-प्रचारके कारण चीनी जनताकी पठन-पाठनकी रुचि बहुत बढ़ गई है। सरकारी कर्मचारी, जन-मुक्ति-सेनाके सिपाही, मज़दूर, किसान, दुकानदार, क्लर्क, नौकर-चाकर, स्त्री-पुरुष कोई भी ऐसा नहीं, जो प्रतिदिन अपना कुछ समय पढ़ने-लिखने में न बिताता हो। छुट्टीके दिन पीकिंगकी सबसे बड़ी पुस्तकोंकी दुकानों—शिन् ह्वा शू त्येन् और क्वो चि शू त्येन्—पर चले जाइए, कंधे-से-कंधा भिड़ाकर ही अन्दर प्रवेश पा सकेंगे। यदि समयसे न पहुँच पाए, तो बहुत संभव है, आप अपनी पत्रिका या पुस्तककी प्रतिसे भी वंचित रह जायँ। इन दुकानोंपर कितने ही बालक-बालिकाएँ आपको अलमारियोंमें से पुस्तक निकालकर पढ़ते हुए या उनके चित्रोंको उलटते हुए दिखाई देंगे।

राष्ट्रीय पीकिंग-पुस्तकालय

पुस्तकोंका प्रकाशन

चीनमें पहले पुस्तकोंके प्रकाशनका बुरा हाल था। किसी पुस्तककी अधिक-से-अधिक २००० प्रतियाँ छापी जाती थीं। प्रायः ऐसे ही लेखकोंकी रचनाएँ प्रकाशित होती थीं, जो प्रकाशनके व्ययका भार उठा सकें। हमारे देशकी भाँति वहाँ भी प्रकाशक लेखकोंको बहुत परेशान किया करते थे। किन्तु अब परिस्थिति बदल गई है। १९५१ में पुस्तकोंकी कम-से-कम १०,००० औसतन प्रतियाँ छापी गईं। 'विवाह-क़ानून'की एक वर्षमें १ करोड़ १५ लाख प्रतियाँ खप गईं! 'चीनी कम्युनिस्ट-पार्टीके तीस वर्ष' की २८ लाख प्रतियाँ बिकीं। माव्-त्से तुंङ्की रचनाओंके पहले और दूसरे भागकी ३० लाख २० हज़ार कापियाँ छपीं, फिर भी काफ़ी न हुईं।

साक्षरता-प्रचार

जन-मुक्ति-सेनाके चीनी-भाषाके शिक्षक छी च्येन् ह्वाने चीनके अशिक्षित मज़दूरों, किसानों और सैनिकोंको अल्प समयमें चीनी सिखानेकी जिस नई पद्धतिका आविष्कार किया है, उससे साक्षरता-प्रचारमें बहुत सहायता मिली है। इस पद्धति को चीनी-सरकारने मान्य कर लिया है और इसके अनुसार पाठ्य-पुस्तकें और कोष वगैरह तैयार हो चुके हैं। १९५२के आखिरी भागमें शीत-ऋतुके स्कूलों और प्रौढ़ोंकी साक्षरता-कक्षाओंमें २७ करोड़ ३ लाख २० हज़ार पाठ्य-पुस्तकोंकी आवश्यकता पड़ी, इससे चीनके साक्षरता-प्रचारका अन्दाज़ा लगाया जा सकता है।

पुस्तकालयोंकी माँग

साक्षरता-प्रचारके कारण चीनमें राष्ट्रीय, वैज्ञानिक ढंगके और सर्वसाधारणोपयोगी पुस्तकालयोंकी माँग बढ़ गई है। सरकारके संस्कृति-विभागके मंत्रिमंडलके नीचे बड़े-बड़े शहरोंसे लेकर छोटे-छोटे गाँवोंमें तथा शिक्षा-विभागके मंत्रिमंडलके नीचे स्कूल-कालेजोंमें पुस्तकालय चल रहे हैं। आजकल चीनमें छः बड़े पुस्तकालय हैं—केन्द्रीय सरकार के नीचे चलनेवाला पीकिंगका राष्ट्रीय पीकिंग-पुस्तकालय, पूर्व-चीनका नान्किंग-पुस्तकालय, दक्षिण-पश्चिमका चुंग-

किंग-पुस्तकालय, उत्तर-पश्चिमका लान् चौ-पुस्तकालय, उत्तर-पूर्वका षन्यांग (मुकदन)-पुस्तकालय और मध्य-दक्षिणका वू-छांग-पुस्तकालय।

राष्ट्रीय पीकिंग-पुस्तकालय

राष्ट्रीय पीकिंग-पुस्तकालय चीनका सबसे बड़ा पुस्तकालय है। मिंग (१३६८-१६४४) और छिंग (१६४४-१९११) राजवंशोंके कालमें यह राजघरानोंका पुस्तकालय रहा है। १९११में छिंग-राजवंशके पतनके बाद १९१२ में इसे अन्य लोगोंके लिए खोल दिया गया; लेकिन फिर भी गिने-चुने लोग ही इसका लाभ उठा सकते थे। यह पुस्तकालय पै-हाय् (उत्तरीय जलाशय) के पश्चिमी किनारे पर है और नाना प्रकारके वृक्ष तथा लता-कुंज आदिसे सुशोभित है। पुस्तकालयकी इमारतके शोभायमान लाल दरवाज़ोंसे अन्दर प्रवेश करनेपर दोनों ओर चीनी शिल्पकलाके द्योतक दो खंभे दिखाई देते हैं।

पुस्तकालयमें चीनी और विदेशी भाषाओंमें सब मिलाकर २५ लाख पुस्तकोंका संग्रह है, जिनमें बौद्ध-सूत्रोंके ४,३०० भाग हैं, जो सुंग-राजवंशोंके काल (सन् ११४९-११७३) में लकड़ीके ब्लाक द्वारा छापे गए थे। सन् १९४२ में इन्हें आठवीं मार्ग-सेनाने भागते हुए जापानी सैनिकोंसे प्राप्त किया था। आजकल यह पुस्तकालय सरकारी कर्मचारी, अध्यापक, विद्यार्थी, मज़दूर, किसान और बालक-बालिकाओं सबके लिए खोल दिया गया है। नई पुस्तकें खरीदने, दुर्लभ पुस्तकोंका संग्रह करने, पुस्तकोंका वर्गीकरण करने आदिके लिए यहाँ अलग-अलग विभाग हैं। इसके सिवा सर्वसाधारणके राजनीतिक और सांस्कृतिक स्तरको उन्नत बनानेकी दृष्टिसे यहाँ प्रदर्शनी, भाषण आदिका आयोजन किया जाता है।

पीकिंगके अन्य पुस्तकालय

पीकिंगमें और भी कई पुस्तकालय हैं, जिनमें छिंग ह्वा-विश्वविद्यालय और पीकिंग-विश्वविद्यालयके पुस्तकालय काफ़ी समृद्ध हैं। इन पुस्तकालयोंमें पुरातत्व, इतिहास, कला और टेकनीकल विषयोंपर उत्तम पुस्तकोंका संग्रह है। पीकिंग-विश्वविद्यालयके पौर्वात्य भाषा और साहित्य-विभाग में हिन्दी, संस्कृत आदिकी बहुत-सी पुस्तकें हैं। पुराने पीकिंग-विश्वविद्यालयके प्रमुख पुस्तकाध्यक्ष चीनी कम्युनिस्ट-पार्टीके अन्यतम संस्थापक शहीद लि ता चाव् और सहायक पुस्तकाध्यक्ष माव्-त्से तुंग रहे हैं। यहाँ माव्-त्से तुंगके काम करनेका कमरा सुरक्षित है, जहाँ माव्के हाथके लिखे हुए पत्र आदि प्रदर्शित किए गए हैं।

मज़दूरोंके पुस्तकालय

नये चीनमें मज़दूरों और किसानोंको शिक्षित बनाने और उनके सांस्कृतिक जीवनको उन्नत करनेके लिए विशेष प्रयत्न किया जाता है। इसके लिए अनेक स्कूल, सांस्कृतिक भवन, क्लब तथा पुस्तकालय खोले गए हैं। सन् १९५२ के अन्त तक कारखानों और खदानोंमें काम करनेवाले ३० लाखसे अधिक मज़दूर अतिरिक्त समयमें चलनेवाले साक्षरता-प्रचारके स्कूलोंमें अध्ययन करते थे। पीकिंग के जनता-विश्वविद्यालयमें मज़दूरोंके शिक्षा-ग्रहण-कालमें भी उनका वेतन बराबर मिलता रहता है। अखिल-चीन श्रमिक-संघकी ओरसे जगह-जगह उनके लिए पुस्तकालय खोले गए हैं। जहाँ वे अपने विषयका ज्ञान संपादनकर देशका उत्पादन बढ़ानेमें मदद करते हैं। सार्वजनिक पुस्तकालयोंमें भी उनका विभाग अलग रहता है।

देहातोंमें पुस्तकालय

चीनके देहातोंमें भी शिक्षाका प्रचार ज़ोरोंसे बढ़ रहा है। १९५१में ही देहातोंके १ करोड़ किसान अतिरिक्त समयमें चलनेवाले स्कूलोंमें पढ़ने जाने लगे थे। आजकल प्रत्येक गाँवमें सांस्कृतिक भवन खोले जा रहे हैं, जहाँ दीवार, पत्र, प्रदर्शनी, सिनेमा, जादूकी लालटेन, भाषण इत्यादिके द्वारा जन-साधारणके सांस्कृतिक-स्तरको बढ़ानेकी चेष्टा की जाती है। यहाँके पुस्तकालयोंमें कृषि-सम्बन्धी पुस्तकें तथा चित्र और समाचारपत्र आदि नियमित रूपसे पहुँचते रहते हैं।

शिशु-पुस्तकालय

मज़दूरों और किसानोंके पुस्तकालयोंकी भाँति चीनमें शिशुओंके पुस्तकालयोंकी संख्या भी बढ़ रही है। बड़े-बड़े पुस्तकालयोंमें शिशु-विभागकी अलग व्यवस्था रहती है। राष्ट्रीय पीकिंग-पुस्तकालयमें शिशुओंका विभाग अलग है। शंघाईमें तो शिशुओंके लिए एक बड़ा पुस्तकालय बनाया गया है। इन पुस्तकालयोंमें शिशुओंके मनोरंजनके लिए अनेक प्रकारकी सामग्री रहती है तथा विविध पत्र-पत्रिकाओं और चित्र आदि द्वारा उनके ज्ञानको विकसित करनेका प्रयत्न किया जाता है।

पुस्तकालयोंका महत्त्व

चीनके बहुत-से पुस्तकालयोंमें संशोधन-विभाग रहता है, जहाँ पुरातत्व, इतिहास, संस्कृति आदि विषयोंमें खोज-बीन की जाती है, आर्थिक निर्माण-सम्बन्धी आँकड़े एकत्रित किए जाते हैं, पाठकोंके अध्ययन और लेखन आदिके लिए आवश्यक सामग्री इकट्ठी की जाती है तथा समय-समय पर प्रदर्शनी और भाषण आदिका आयोजन किया जाता

है। यहाँ साहित्य और कला-संबंधी चर्चाएँ होती हैं, जिनमें लेखकोंको पाठकोंके निकट-परिचयमें लाया जाता है, जिससे अपने पाठकोंकी आलोचनासे लाभ उठाकर वे उनके उपयोगी साहित्यका निर्माण कर सकें। नये चीनके लेखक अपनी रचनाओंको तब तक प्रकाशित करना उचित नहीं समझते, जबतक कि उन्हें इस बातका भरोसा न हो जाय कि उनकी रचना लोकोपयोगी होगी। इन्हीं सब कारणोंसे चीनकी जनतामें अध्ययनकी चाट दिनोंदिन बढ़ती जाती है। चलते-फिरते पुस्तकालय तथा गली-कूचोंमें लगे हुए दीवार-पत्र इसके प्रमाण हैं।

जनोपयोगी साहित्यकी आवश्यकता

साहित्यका निर्माण हमारे देशमें भी पहलेकी अपेक्षा अधिक मात्रामें हो रहा है, लेकिन इस समय व्यवस्थित और नियोजित रूपसे साहित्य-निर्माणकी आवश्यकता है। जन-साधारणके जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रेरणादायक जनोपयोगी साहित्यकी हमारी भाषाओंमें बहुत कमी है। भारतके लाखों-करोड़ों मजदूरों, किसानों और स्त्रियोंके उपयुक्त साहित्य हमारे पास कहाँ है, जो उनके राजनीतिक और सांस्कृतिक ज्ञानमें वृद्धि कर सके? हमारे कितने ही प्रगतिशील होनहार लेखक अवसरके अभावमें अपनी रचनाओं को प्रकाशित नहीं कर सकते और प्रकाशक प्रायः अपने लाभको ध्यानमें रखते हुए ही पुस्तकें प्रकाशित करते हैं। फिर आर्थिक मंदीके इस ज़मानेमें जन-साधारणकी क्रय-शक्ति कम हो जानेके कारण पुस्तकोंकी बिक्रीको बहुत धक्का लगा है। ऐसी स्थितिमें साहित्य-निर्माणका कार्य तभी आगे बढ़ सकता है, जबकि हमारी सरकार योग्य लेखकों को जन-साधारणके उपयोगी पुस्तकें लिखनेके लिए प्रोत्साहित कर उन्हें सस्ते दामोंमें बेचनेका प्रबन्ध करे। देहातों के पुस्तकालयों द्वारा इस साहित्यको गाँवोंमें रहनेवाली जनता तक पहुँचाया जा सकेगा।

जौनसार-बावरमें एक दिन

श्री पदमचन्द्र सिंघी, एम० ए०

इस बार जब पिछड़े वर्ग-कमीशनके अध्यक्ष काका साहब कालेलकरको कालसी (देहरादून)-स्थित अशोक-आश्रमके संचालक श्री धर्मदेवजी शास्त्रीका अत्मीयतापूर्ण और आग्रह-भरा आमंत्रण मिला और काका साहबने शास्त्री-जी द्वारा बापूकी निधन-तिथिपर आयोजित गांधी-मेलेका उद्घाटन करना स्वीकार किया, तो मेरी भी जौनसार-बावर के इस रमणीक प्रदेशमें जानेकी भावना प्रबल हो उठी। सौभाग्यसे काका साहबने मुझे अपने साथ लेना भी स्वीकार किया और हम लोग २९ जनवरीकी रातको मन्सूरी-एक्सप्रेस द्वारा देहरादूनके लिए रवाना हो गए। दूसरे दिन सवेरे ७ बजे जब हम स्टेशनपर पहुँचे, तो श्री धर्मदेवजी व उनके साथी काका साहबके स्वागतार्थ पहलेसे ही मौजूद थे।

अशोक-आश्रम और शास्त्रीजी

देहरादूनसे कालसी तकका मार्ग, जो करीब ३० मील है, हमने कार द्वारा पार किया। देहरादून तो आधुनिक ढंगका शहर है और ख़ास तौरसे पिछले महायुद्धके बाद तो इसकी आबादी ४० हज़ारसे बढ़कर क़रीब १ लाख २५ हज़ार हो गई है। फॉरेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट व नेशनल डिफेन्स एकेडमीके कारण इस शहरका महत्व पिछले कुछ वर्षोंमें ख़ूब बढ़ गया है। देहरादूनसे कालसी तकका मार्ग काफ़ी सुन्दर है, पर कालसी तो एकदम प्रकृतिकी गोद में ही है। एक ओर शिवालिक पहाड़ है और दूसरी ओर विशाल हिमालय, जिनके बीच लम्बी घाटीमें देहरादून व कालसी बसे हैं। इस घाटीका एक भाग हिमाचल-प्रदेशमें भी चला गया है, जिसे दूनदा क्वार कहते हैं। यहाँ देहरादून-ज़िलेको सिरमौर-ज़िलेसे यमुना नदी पृथक करती है। ऋषिकेशके पास गंगा तथा कालसीके पास यमुना और तमसा—यह तीन नदियाँ एक प्रकारसे देहरादून-ज़िले की प्राण हैं। कालसीके पास यमुनामें एक ओर अमला और दूसरी ओर तमसा नदियाँ मिलती हैं और अमला-यमुना संगमके पास ही अहिंसाके प्रचारक महान् सम्राट अशोक द्वारा बनवाया हुआ २४ शताब्दी पूर्वका प्रसिद्ध शिलालेख है, जो आज भी हिंसाके बाद पश्चातापकी अग्निमें दग्ध उस महान सम्राट्की अकथनीय वेदनाका परिचय दे रहा है। इसी शिलापर एक जगह एक हाथीकी आकृति रेखा द्वारा व्यक्त की गई है और उसके नीचे 'गजतम' लिखा है। बौद्ध परिभाषामें बुद्ध भगवानको 'गजतम' कहते हैं, क्योंकि बुद्ध भगवानकी माताको एक दफ़ा स्वप्नमें दर्शन हुए कि एक हाथी आसमानसे आकर उनके अन्दर घुस गया है।

इसी शिलालेखके सामने यमुना-पार श्री धर्मदेवजी शास्त्री

द्वारा स्थापित छोटा-सा अशोक-आश्रम है, जो बार-बार महान अशोकका स्मरण कराता है और जहाँ आजसे १४ वर्ष पूर्व (१० जुलाई, १९४२ को) गांधीजीकी आज्ञासे शास्त्रीजी ने दीन-हीन व पिछड़े हुए लोगोंके बीच जागृतिका शंख फूँकने का दृढ़ संकल्प किया था। तबसे आज तक आश्रमका कार्यक्षेत्र बराबर बढ़ता रहा और आज वह टेहरी-गढ़वाल में रवाई तथा हिमाचल-प्रदेशके किन्नर-प्रदेश, पांगी, लाहौल और गदिया-जैसे पिछड़े क्षेत्रोंमें भी अपना कार्य यथेष्ट रूप से चला रहा है। इन क्षेत्रोंके निवासी आदिम अवस्थामें हैं सामाजिक तथा आर्थिक कठिनाइयोंके फल-स्वरूप दुःसह यातनाएँ सहते हुए जीवन-यापन करते हैं। अशिक्षा व अज्ञानके अन्धकारमें भटके हुए इन लोगोंके बीच मूक सेवा करनेवाले शास्त्रीजी और उनके कर्मठ निष्ठावान सहयोगी कार्यकर्त्ताओंकी मुक्त कंठसे प्रशंसा करनी पड़ती है।

बातों ही बातोंमें मुझे शास्त्रीजीसे पता चला कि किस प्रकार अँगरेजी व देशी राजाओंकी हुकूमतके दिनोंमें यहाँ कोई भी सेवा-कार्य व राष्ट्रीय कार्य करना मौतसे खेलना था और उन्हें एक बार तो पत्नी-सहित एक सप्ताह तक एकदम भूखे भी रहना पड़ा था। आज भी शास्त्रीजीका अशोक-आश्रम इतना छोटा है कि उसे देखकर ऐसा लगता है मानो उसकी अभी हाल हीमें स्थापना की गई हो। पर इस सादगीका कारण शास्त्रीजीने यह बताया—"मेरा विश्वास है कि इस आश्रमको मैं केन्द्रीकरणका गढ़ न बनाऊँ। इसीलिए मैं आश्रमके सब कार्यकर्त्ताओं को यहाँ नहीं रखता। हर क्षेत्रमें एक-एक या दो-दो कार्यकर्त्ता हैं और वे ही उस क्षेत्रके सर्वेसर्वा हैं। इस प्रकार कार्यकर्ताओंका विकास होता है, उनको आत्मविश्वास मिलता है तथा काम अधिक हो पाता है। हाँ, हर महीने-दो महीनेमें हम सब लोग साथ-साथ मिलते हैं और अपनी व्यावहारिक कठिनाइयोंको दूर करनेकी कोशिश करते हैं।" सचमुच कार्यके संगठन की दृष्टिसे शास्त्रीजीकी विकेन्द्रीकरणकी यह नीति इतनी सफल हुई है कि आज हिमाचल व उत्तर-प्रदेशके इन पिछड़े भागोंमें अनेक योग्य, परिश्रमी व ईमानदार कार्यकर्ता दिखलाई पड़ते हैं। इस सबका श्रेय शास्त्रीजीको है, जिनको काका साहब १८ वर्षोंसे जानते हैं और जिनके कामको देखकर ही उन्होंने ३० जनवरीको गांधी-मेलेका उद्घाटन करते समय कहा—"इन्होंने पिछड़े लोगोंमें शिक्षा व ज्ञानका जो प्रचार किया है तथा जो पवित्र वातावरण पैदा किया है, वह कोई कम बात नहीं। वह महान है। इनका नाम उन्हीं प्राचीन ऋषियोंकी तरह लिया जा सकता है। शास्त्रीजीने जिस दिनसे ब्राह्मणोंको वेद पढ़ाना छोड़कर इन पिछड़े हुए लोगोंको पढ़ाना शुरू किया है, तब से वे 'शास्त्री' न रहकर 'ऋषि' ही हो गए हैं।" वास्तवमें अशोक-आश्रम आज हिमाचल व उत्तर-प्रदेशके अनेक सेवा-परायण नौजवानों के लिए प्रेरणाका स्थान बन रहा है। आश्रमकी ओरसे आज अनेक स्थानोंपर शिक्षा-प्रसार, समाज-सुधार, स्वास्थ्य-सुधार, गृह-उद्योग, कृषि और गो-सेवा, भूमिदान, अस्पृश्यता-निवारण आदिका काम बड़े जोर-शोरसे चल रहा है। अशोक-आश्रम व उसके संचालक शास्त्रीजी पूज्य बापूका सन्देश फैलानेके लिए जो श्रम व त्याग कर रहे हैं, वह प्रशंसनीय व श्रद्धासे सिर झुकाने लायक हैं।

जौनसार, लखौंडी और बावर

जौनसार-बावर भारतके एक छोरपर एकान्तमें बसा है और इसलिए देशके अन्य भागोंसे इसका बहुत कम सम्बन्ध रह पाया है। सारा प्रदेश हिमालयकी गोदमें पहाड़ियों व खाईयोंसे युक्त है। इसके दो भाग जौनसार तथा बावर हैं, जैसा कि इसके नामसे ही प्रकट है। पर प्राकृतिक दृष्टिसे इसे जौनसार, लखौंडी व बावर तीन भागोंमें बाँट सकते हैं, जो क्रमशः १८,५ व १० मील लम्बे हैं। सारा प्रदेश देवदारके घने जंगलोंसे ढँका है, जो इस प्रदेशकी खास सम्पत्ति है। देवदारके अतिरिक्त बान, मौरू, रई, खरतु, चीड़ आदि वृक्षोंके जंगल भी हैं। इन जंगलोंमें वृक्षोंके सिवा बड़ी अच्छी-अच्छी जड़ी-बूटियाँ भी पाई जाती हैं। वास्तवमें यदि इन जंगलोंकी सम्पत्तिको भली प्रकार प्रयोग में लाया जाय, तो यह देशकी और इस प्रदेशकी समृद्धिमें काफ़ी सहयोग दे सकती है। सुना है कि एक वर्ष पूर्व प्रान्तीय सरकारने एक प्राईवेट फारेस्ट एक्ट चालू किया है,
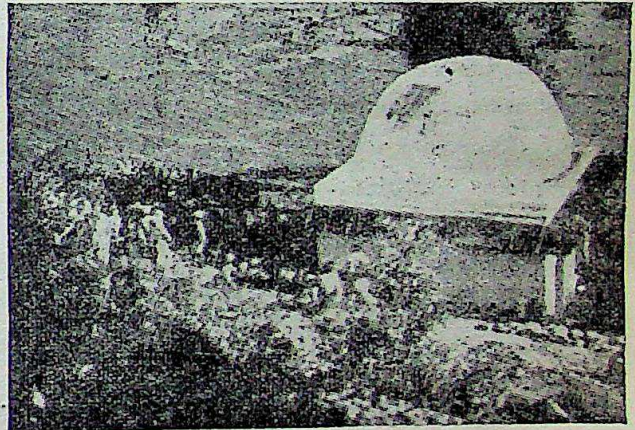
अशोकके शिलालेखपर बना हुआ गुम्बज

जिससे जनतामें रोष बढ़ा है, क्योंकि उसे खेती तथा मकान आदि आवश्यकताओंके लिए भी लकड़ी नहीं मिल पाती है।

जंगलोंकी इस सम्पत्तिके अतिरिक्त हिमालयके इन पहाड़ोंके अन्तर भी ढेर-की-ढेर सम्पत्ति छिपाए हुए हैं। अभी तक जौनसार-बावरमें लोहा, अभ्रक, खड़िया-मिट्टी, चूना व ताँबा आदि धातुएँ भी मिलनेकी पूरी संभावना है। इस कार्यको अगर शुरू किया गया, तो इस इलाकेकी बेकारी की भयंकर समस्या भी काफ़ी अंशोंमें हल हो सकेगी। वैसे जौनसार-बावरके ९५ प्रतिशत लोगोंका मुख्य व्यवसाय खेती है। पहाड़ी स्थान होनेके कारण स्त्री व पुरुष दोनों को भयंकर परिश्रम करना पड़ता है। पहाड़के ढालोंपर सीढ़ीनुमा खेत बनाकर ये लोग फसल उगाते हैं। इस

यमुनामें आचमन करते हुए काका साहब और दलके अन्य लोग

प्रदेशका धान (चावल) सारे भारतमें 'बासमती'के नामसे प्रख्यात है और सर्वश्रेष्ठ क़िस्मका माना जाता है। ग़रीबी के कारण यहाँके मूल निवासी इसका उपयोग नहीं कर पाते। वे इसे बाहर बिकनेके लिए भेजते हैं और स्वयं सस्ता चावल या गेहूँ-जौ आदि खाकर गुज़ारा करते हैं। गर्मीमें गेहूँ, जौ, मसूर, प्याज तथा सर्दीमें धान, झँगोरा, मँडवा, चेणी, मक्का, गागली, अदरक तथा आलू आदि मुख्य रूपसे पैदा किए जाते हैं। इनमें से जौ, झँगोरा, मँडवा, चेणी आदिकी शराब भी बना ली जाती है। पर्वतीय प्रदेश होनेके कारण यहाँके ग़रीब निवासियोंको पानी लानेमें काफ़ी क़ीमत चुकानी पड़ती है। कहीं-कहीं तो पीनेके लिए भी पानी काफ़ी दूर से लाना पड़ता है। एक प्रकारसे पर्वतीय प्रदेशोंमें सभी जगह यह कठिनाई है और इसलिए सरकारका फ़र्ज़ है कि वह इस कठिनाईको दूर करनेका शीघ्रसे शीघ्र प्रयत्न करे।

साधन-सुविधाओंका अभाव

खेतीके अतिरिक्त यहाँके लोगोंकी दूसरी सम्पत्ति जानवर हैं। गाय, भैंस, बकरियाँ व भेड़ें खूब पाली जाती हैं। पर उनकी रक्षा आदिके लिए कोई उपयुक्त साधन नहीं हैं। बीमार होनेपर या पहाड़ आदिसे गिर जानेपर उनकी दवा बस मौत ही होती है। वास्तवमें जरूरी यह है कि हर गाँवमें जानवरोंके लिए एक सम्मिलित पशुशाला हो तथा उनके लिए कुछ अस्पताल आदि खोले जायँ।

जंगलों, खनिज धातुओं, खेती तथा पानी आदिकी कठिनाइयोंके अतिरिक्त जौनसार-बावरके इस प्रदेशके पिछड़ेपनका एक और मूल कारण यातायातकी असुविधा भी है। हिमाचल प्रदेशकी भाँति यहाँ भी आने-जानेके लिए सड़कोंका नितान्त अभाव है। सारे प्रदेशमें केवल एक ही मोटर-सड़क है, जो जौनसार-बावरको दूनसे तथा देशके अन्य भागोंसे मिलाती है। यह सड़क चकरौतासे कालसीके दक्षिण-पश्चिममें यमुना-पुल द्वारा इस भागको नीचेसे मिलाती है। यह पुलका एकमात्र बाहरसे सम्बन्ध जोड़नेका साधन समझा जा सकता है। अन्य जो थोड़ी सड़कें हैं, वे केवल खच्चर या घोड़ोंके चलने लायक हैं। आने-जानेके साधनोंकी इस अखरनेवाली कमीके कारण व्यापार की वृद्धि भी नहीं हो पाती। कई चीज़ें तो यहाँके लोग इसलिए ही पैदा नहीं करते कि उनको शहरोंमें भेजने या कुछ दिन रखनेमें काफ़ी ख़र्च पड़ जाता है। यथार्थमें तो आवागमनके साधन ठीक होनेपर ही प्रदेशका आर्थिक विकास होगा।

ग़रीबी, अज्ञान और कुरीतियाँ

जौनसार-बावरका यह प्रदेश वास्तवमें आज आर्थिक, सामाजिक व शिक्षाकी दृष्टिसे भयंकर रूपसे पिछड़ा हुआ है। आर्थिक ग़रीबी व अज्ञानके कारण आज भी इस प्रदेश में बहुपति-प्रथा, बहुपत्नी-प्रथा व बाल-विवाह जैसी सामाजिक बुराइयाँ घर किए हुए हैं। देवी और माता कहलानेवाली नारीका इस प्रदेशमें जो अपमान होता है, वह बड़ा ही शर्मनाक है। ग़रीबीने इस प्रदेशकी स्त्रियोंको देशके बड़े-बड़े शहरोंमें वेश्या-वृत्ति करने तकके लिए बाध्य किया है। विगत २५ वर्षोंसे टिहरी-गढ़वालके रवाई-प्रदेशकी सैकड़ों लड़कियाँ पेशा करने दिल्ली, कानपुर, देहरादून आदि शहरोंमें जाती हैं और यौन-रोगोंको लेकर वापस लौटती हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज रवाई, जौनपुर व जौनसार-बावर आदि प्रदेशोंमें गर्मी-सुज़ाक-जैसे भयंकर रोग मौतकी तरह फैले हुए हैं। सुना है कुछ साहूकार भी आदिवासियोंको सूदपर रुपया देकर औरतें बाहर ले जानेके लिए प्रोत्साहित करते हैं। जौनसारमें आज भी

छूट और उसके नामपर पत्नी-विक्रय, गढ़वालमें कन्या-विक्रय आदि सामाजिक अन्यायपूर्ण कुरीतियाँ खूब प्रचलित हैं। इन बुराइयोंका सबसे ज्यादा और बुरा असर स्त्री-जातिपर पड़ा है। बहुपति-प्रथाके अनुसार दो या इससे अधिक भाई एक ही स्त्री या उससे अधिक स्त्रियोंसे सम्मिलत रूपसे शादी करते हैं। इसमें पुरुषोंकी संख्या अधिक होती है। इस प्रकारकी दो-तीन भाइयोंकी दो-तीन स्त्रियोंसे सम्मिलित रूपमें शादी करनेकी प्रथाको हम शुद्ध प्रकारकी बहुपति-प्रथा तो नहीं कर सकते। वास्तवमें एक पत्नी-प्रथा, एक पति-प्रथा बहुपति-प्रथा और बहुपत्नी-प्रथा आदिमें से अपने-अपने सुभीतेके अनुसार हर परिवार और हर पीढ़ी एक या दूसरी प्रथाको अपनाता है। बहुपति-प्रथा व बहुपत्नी-प्रथा दोनोंके प्रचलनके कारण आर्थिक ही हैं। यद्यपि कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि पहाड़ोंके लोग अपने-आपको पांडवोंके वंशका मानते हैं और इसलिए वे उन्हींकी तरह बहुपति-प्रथामें विश्वास करते हैं। जो भी हो, इतना सही है कि धीरे-धीरे शिक्षा-प्रसारके कारण ये बुराइयाँ दूर हो रही ह और एक पति-प्रथाकी वृद्धि हो रही है। काका साहबने गाँधी-मेलेके उद्घाटनके अवसरपर जौनसार-बावरकी जनताका ध्यान इस ओर खींचते हुए ठीक ही कहा—"अस्पृश्यता अधर्म है, पाप है। उसे अब तक चलाया, अब नष्ट करना होगा। दूसरा पाप है—हमने स्त्री-जातिका अपमान किया है। जिनसे हमने जन्म लिया है, उन्हींका अपमान करके हम कभी उन्नति नहीं कर सकते। उन्हें अज्ञानमें रखकर, अपनी माँ, पुत्री, पत्नी व बहनके प्रति अन्याय करते हैं। बहुपतिव्रत व बहुपत्नीव्रत दोनों ही अधर्म हैं।"

शराब और तम्बाकूका सेवन

इन सामाजिक बुराइयोंके अतिरिक्त मद्यपान व धूम्र-पानकी बुराइयाँ भी इस प्रदेशमें खूब फैली हुई हैं। यहाँ के लोग मँडवा, झँगोरा व जौ आदिकी शराब घरमें ही बनाते हैं। मेले, त्योहार व शादियोंके अवसरपर तो शराबका प्रयोग खूब ही होता है और इसके साथ-साथ गोश्त भी खूब खाया जाता है। सुना है, जौनसार-बावरमें २८ पौषके दिन प्रत्येक परिवारमें एक बकरा कटना अनिवार्य है! इस प्रकार शराब व मांसकी अनिवार्यताके कारण कितने ही गरीब लोग ऋणी बन जाते हैं, इनके खेत तक बिक जाते हैं, जिनके कारण पुरुषोंको दर-दर मज़दूरी करनी पड़ती है और स्त्रियोंको कई बार वेश्या-वृत्ति। मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वहाँ शायद एक भी स्त्री या लड़की ऐसी न थी, जो सिगरेट या बीड़ी न पीती हो। लगता है यह आदत उनमें फौजके लोगोंके कारण आई है। इसमें कोई शक नहीं कि वहाँके लोग इन बुराइयोंके दुष्परिणाम धीरे-धीरे समझने लगे हैं और आशा है शीघ्र ही वे इन कुप्रथाओं को बन्द कर देंगे। इससे उनकी आर्थिक स्थितिमें अवश्य क्रान्तिकारी परिवर्त्तन होगा।

अशोकका आदर्श

निःसंदेह सम्पूर्ण जौनसार-बावर आज केवल शिक्षाकी दृष्टिसे ही नहीं, बल्कि आर्थिक व सामाजिक दृष्टिसे भी अत्यन्त पिछड़े हुए प्रदेशोंमें से है। गांधी-मेलेका उद्घाटन करते हुए काका साहबने कहा—"आज हमारा धर्म है कि हम सारे पिछड़े लोगोंको जागृत करके आगे ले जायँ; नहीं तो
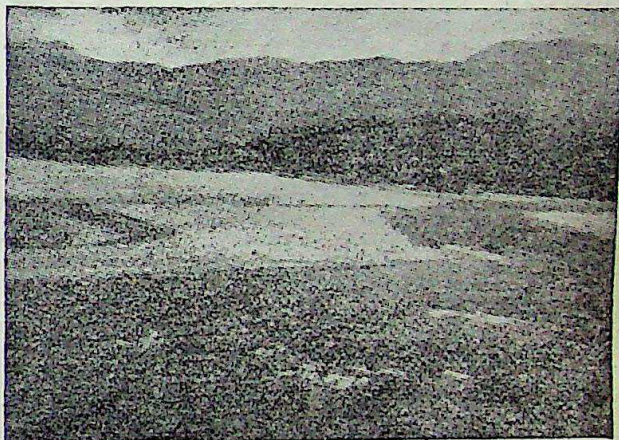
अशोक-स्तम्भके पास यमुना और अमलाका संगम

हम खतरेमें हैं। जैसे पड़ोसीके घरमें लगी आग मेरे घरके लिए भी खतरा है, उसी तरह कहीं भी रहा अज्ञान हमारे ज्ञानके लिए खतरा है।" उन्होंने इस अवसरपर जौनसार-बावरके उन सैकड़ों नौजवान लड़के-लड़कियोंको, जो अशोकके शिला-लेखके पास एकत्रित हुए थे, सम्बोधित करते हुए कहा—"अशोक दुनियाके तीन सम्राटोंमें से एक था। उसकी शक्ति असीम थी। उसने अपनी फौजके द्वारा कलिंग (उड़ीसा) के लोगोंको कुचल डाला और सारे कलिंग-देश का नाश कर डाला। पर इसी सम्राटको फिर उड़ीसाके लोगोंके सामने उनकी आज़ादीकी उत्कट उपासना देखकर सिर झुकाना पड़ा और कहना पड़ा कि जो-कुछ हो गया है, सो हो गया; अब ऐसा काम नहीं करूँगा, जिससे हिंसा हो। और तब यहाँ आकर उसने इस शिलालेखके रूपमें अपने मनकी गहन वेदनाको प्रकट किया। तो मक्खनसे भी ज्यादा मुलायम जिसका दिल हो गया था, उस सम्राटके दर्शन आपको यहाँ होते हैं। बुद्ध भगवान शाक्य वंशके थे, क्षत्रिय थे;

पर अहिंसाकी साधनामें उन्होंने ४० वर्ष व्यतीत किए। इस प्रकार इस शिलालेखके साथ इन दोनों महान विभूतियों का सम्बन्ध है। अगर ये दुनियाके किसी ओर देशमें होते, तो इन्हें कभी लोग न भूलते। पर दुर्दैव हमारा था कि हम उन्हें भूल गए।"

सचमुच अशोकका यह शिलालेख आज दुनियाके सारे लोगोंकी प्रेरणाका स्रोत बन रहा है। देश-देशके लोग यहाँ आकर उस महान पुरुषकी अहिंसाकी भावनाके सामने श्रद्धानत होते हैं। पर अफ़सोस है कि यहाँ आज भी उन श्रद्धालुओंके लिए कोई डाकबँगले-जैसा भी ठहरनेका स्थान नहीं है। सरकारको चाहिए कि वह शीघ्रसे शीघ्र वहाँ एक डाकबँगला बनवाए,ताकि यात्री लोग दो-चार दिन वहाँ रुक सकें। इसके साथ-साथ वहाँ एक अच्छा पुस्तकालय भी होना चाहिए, जिसमें अशोकके उपदेश-सम्बन्धी ग्रन्थों व शिलालेखोंकी प्रतिलिपियाँ हों।

गाँधीजीकी महत्ता

बापूकी निधन-तिथिपर आयोजित होनेके कारण मेलेमें काका साहबने जो संदेश जौनसार-बावरकी जनताको दिया, वह बड़ा महत्वपूर्ण था। उन्होंने कहा—"आज़ादी के बाद सारे देशको हमने प्रजाका राज्य बनाया है। इस प्रजाके राज्यकी नींव महात्माजीने डाली। बुद्ध भगवान के धर्मका प्रचार सम्राट अशोकने किया था। वह एक प्रचण्ड बादशाह था। पर उसने उस राज्यका त्यागकर धर्मका राज्य स्थापित करना पसन्द किया। उसने सारे देशमें पत्थरोंपर शिलालेख खुदवाए और इसके द्वारा यह बताया कि देशमें कैसी संस्कृति चाहते हैं। इस संस्कृति का प्रचार करनेका काम अब भारतका है। किसी भी काम के लिए प्राणार्पण करना तो एक अच्छा काम ही है। उसके लिए मर-मिटना ही पवित्र बलिदान है और इस प्रकारके बलिदानके प्रतीक हैं गांधीजी। इसीलिए हमने आजके दिनको 'बलिदान-दिवस' कहना आरम्भ किया है। महात्माजीका दिल महाविशाल था। जो लोग बुरे हैं, उनके लिए भी महात्माजीके हृदयमें स्थान था। मैं एक ऐसे आदमीको जानता हूँ, जिसे सारी दुनिया महान पापी कहती थी, पर बीमार होनेपर उसकी भी गांधीजीने बड़ी लगनसे सेवा की। यह एक अहिंसक हृदयका बलिदान है। महाभारतमें एक प्रसंग है कि जब धृतराष्ट्रको शतरंजके पासेकी चोट लगी, तो श्रीकृष्णने उनके खूनको ज़मीनपर नहीं गिरने दिया, क्योंकि उसका गिरना अशुभ होता। उस धर्मराजसे भी महान विभूति गांधीजी हैं। आज सारी दुनिया भारतकी ओर आँख लगा कर देख रही है। इस हिंसामय वातावरणके बीच अहिंसाको चलानेके लिए भारत आज जो कर रहा है, वह सबके सामने है। अहिंसाका यह संदेश सारी दुनिया को शब्दोंसे अधिक कामों द्वारा पंडित नेहरू पहुँचा रहे हैं। यह सब हमारी आज़ादीके कारण सम्भव हुआ है। गांधीजी का आदर्श फौज व सत्ता पाना नहीं था। उनका आदर्श तो स्वराज्य था। गाँधीजी बराबर कहते थे कि 'मैं राजनीतिज्ञ नहीं हूँ। मैं तो धर्मका सेवक हूँ। मुझे तो इसीके द्वारा सेवा करनी है। इसीलिए मैं राजनीतिमें आ गया। स्वराज्य धर्मके लिए पहली ज़रूरत है।' अपने जीवनके द्वारा उन्होंने तो यह बात सिद्ध कर ही दी। अब उनके प्रति कृतज्ञ रहना हमारा कर्त्तव्य है। देखना यह है कि जो चीज़ हमें इतने बड़े बलिदानसे मिली है, उसके हम योग्य भी हैं या नहीं। अगर उस बलिदानकी परम्परा क़ायम रही, तो हम भी टिकेंगे और अगर इस बलिदानका मार्ग हम भूले, तो फिर हमारा अधःपतन ही होगा।"

काका साहबने जौनसार-बावरके नौजवानोंको इस अवसरपर त्याग व बलिदानके महत्व व उसकी ज़रूरतको समझाते हुए कहा—"मैं महाराष्ट्रका हूँ। आजसे सदियों पूर्व शिवाजीको जब अपने राष्ट्रको एक सूत्रमें बाँधनेके लिए एक झंडा चाहिए था, तो उन्होंने अपने गुरु रामदाससे कहा। गुरुने उन्हें एक मामूली भगवा कपड़ा दे दिया और कहा कि जब तक यह ध्वज रहेगा, तब तक तुम्हारे राज्यमें सुख,समृद्धि व आनन्द रहेंगे। पर ज्यों ही इसका रंग बदला कि अधःपतन होगा। शिवाजीकी मृत्युके बाद उनके उत्तराधिकारी मुसलमान बादशाहोंके दरबारोंमें गए, वहाँकी शान-शौकत व विलाससे प्रभावित होकर उन्होंने भी अपने झंडे को सोने-चाँदीसे मढ़ा और भगवा रंगके साथ उसमें अन्य रंग भी मिला दिए। बस, उसी दिनसे उनका पतन आरम्भ हो गया। वास्तवमें त्याग महान चीज़ है। आज इसी बातकी ज़रूरत है कि हम सेवा-मार्गी बनें, बैरागी नहीं। आजके बैरागी तो केवल शून्य हो जाते हैं। केवल 'एक लँगोटी दो रोटी' के लिए त्याग करना उत्तम नहीं। आजके बलिदानके लिए हृदयकी शुद्धि, सेवाका संकल्प और द्वेषहीनता ज़रूरी हैं। तभी त्याग श्रेष्ठ होगा।"

इस प्रकार जौनसार-बावरमें कालसीके पास बिताया हुआ वह एक दिन हम सबके लिए एक चिरस्मरणीय दिन बन गया। वहाँके ग़रीब भोले-भाले बालक-बालिकाओं और ईमानदार स्त्री-पुरुषोंके चेहरोंपर जो नई आशाकी झलक देखी, उसके कारण मन उत्साहसे भर गया। मैंने अशोक महानके उस शिलालेखके सामने खड़े होकर बार-बार यही कामना की कि यहाँके नौजवानोंको वह ताक़त और प्रेरणा मिले, जिससे एक बार यह प्रदेश देशके अन्दर पिछड़े प्रदेशोंके लिए आदर्श बन सके।

सोवियत रूसमें जनताका जीवन-स्तर

श्री के० बी० गोयल

सोवियत रूसके विषयमें अनेक व्यक्तियोंकी तर्क-पद्धति बहुत कुछ इस प्रकार है : राजनीतिक दृष्टिसे सोवियत रूस अधिनायकवादी हो सकता है, उसने व्यक्ति-स्वातन्त्र्यको सीमित कर दिया होगा; लेकिन इस तथ्यको सभी स्वीकार करते हैं कि उसने जीवनकी गहनतम समस्या—भूख—को समाप्त कर दिया है। 'रोटी सबको मिलती है'-जैसे लोलुप, सुख-स्वप्नोंके अनुकूल वाक्यको सुनकर वे आँख मींचकर सोचते हैं—वह कैसी स्वतन्त्रता, जहाँ भूखसे तड़फ़-तड़फ़कर मर जानेकी स्वतंत्रता है ! यह सब तो धोखा है, मरीचिका है, एक अमूर्त कल्पना है। यदि व्यक्ति-स्वातंत्र्यका कोई वास्तविक मूल्य है, तो वास्तविक प्रश्न—भूख—हल होना चाहिए। जीवनकी रक्षा पहला प्रश्न है, जीवनकी व्यवस्था दूसरा। जीवनकी रक्षा ही समस्त अधिकारों और स्वतंत्रताओंका आधार होना चाहिए। और फिर जैसे सुख-स्वप्नोंसे किसीने उन्हें झकझोर दिया हो, वे पूछते हैं—कौन दावा करता है कि प्रजातंत्रोंने इस प्रश्नका उत्तर भी दिया है, उसे हल करनेका प्रश्न तो बादमें उठता है। जहाँ मनुष्य मनुष्य नहीं समझा जाता, अपितु...., वह कैसा प्रजातन्त्र ? यहाँ तक कि उनमें से अधिकांशकी तो यही धारणा है कि तथाकथित प्रजातन्त्र और व्यक्ति-स्वातन्त्र्यपरक समाज-व्यवस्थाओंके माध्यमसे यह प्रश्न हल ही नहीं किया जा सकता !

सोवियत-प्रयोग सम्बन्धी भ्रान्ति

भारतमें ही नहीं, अपितु अन्य देशोंमें भी यह भ्रान्त धारणा प्रचलित है कि सोवियत रूसने जनताकी रोटीकी समस्याको ही हल नहीं किया, अपितु वह एक स्वर्गकी सृष्टि कर रहा है, जहाँ व्यक्ति अपनी आवश्यकताके अनुसार सभी मनोवांछित चीजें प्राप्त कर लेता है। एक बार आँद्रे जीद ने भी लिखा था—"मैं अपने-आपको सोवियत-प्रयोगके युगमें पाकर सौभाग्यशाली मानता था। समाजके इस नवजन्मका साक्षात्कार करनेके लिए मैं अपना समस्त जीवन बलिदान करनेके लिए कटिबद्ध हो गया।" इस दिशामें मिथ्या प्रचारके फल-स्वरूप लोग यहाँ तक कहने लगे कि रूसमें जनताका जीवन-स्तर पश्चिमी गणतन्त्रोंकी जनताके जीवन-स्तरकी तुलनामें कहीं अधिक ऊँचा है। दूसरे कुछ लोगोंका यह विश्वास है कि कम्युनिज्मका सिद्धान्त तो अच्छा है, किन्तु सोवियत रूसने उसे विकृत कर डाला है। यह एक भयानक भूल है। द्रुत गतिसे उद्योगीकरण, कृषिका सामूहीकरण, किसानोंका शोषण, गुलामखाने, मज़दूरोंकी स्वाधीनताका अपहरण, करोड़ों की हत्या और जेल-यात्रा, जीवन-स्तरका ह्रास, आर्थिक असमानता—ये सब कम्युनिस्ट योजनाके अभिन्न अंग हैं। उद्योगीकरणका अपने-आपमें कोई मूल्य नहीं। उद्योगी-करणका फल क्या होता है और उसके द्वारा आर्थिक सम्पन्नता बढ़ती है या नहीं, यही बातें देखकर उद्योगीकरणका मूल्य आँका जा सकता है। यदि किसी सिद्धान्तने केवल उद्योगी-करणको ही साध्य बना डाला हो और उस साध्यकी प्राप्ति के लिए मनुष्यपर होनेवाले अत्याचारोंकी ओरसे आँखें मूँद ली हों, तो उस सिद्धान्तकी कानी कौड़ी भी क़ीमत नहीं।

भारी उद्योग बनाम उपभोक्ता पदार्थ

अब एक महत्त्वका प्रश्न उठता है यदि मान लिया जाय कि सोवियत कम्युनिज्मका आर्थिक सिद्धान्त सर्वथा अमान्य है, तो क्या यह आशा की जा सकती है कि भविष्य में कभी सोवियत अर्थ-व्यवस्था सम्पन्न बन सकेगी ? सिंहासनारूढ़ होनेके बाद मालेन्कोवने ऐसा दावा किया था। उनका अभिप्राय यह था कि अर्थ-व्यवस्थाके ढाँचेको ज्यों-त्यों रखकर केवल उपभोक्ता पदार्थोंके उत्पादनमें वृद्धि की जाय। अगस्त, १९५३ में सुप्रीम सोवियतके सम्मुख भाषण देते हुए मालेन्कोवने कहा था—"अभी तक हम उप-भोक्ता पदार्थों और खाद्य पदार्थोंका उत्पादन उतना नहीं बढ़ा सके, जितना कि भारी उद्योगोंका। अब हमारे लिए यह अनिवार्य हो गया है कि उपभोक्ता पदार्थोंका उत्पादन बढ़ाया जाय, ताकि जनताके जीवनमें लौकिक और सांस्कृ-तिक समृद्धिका समावेश हो सके।" मालेन्कोवने उपभोक्ता पदार्थोंके उत्पादनके सम्बन्धमें एक बड़ी योजना भी बना डाली। किन्तु साथ ही उन्होंने कहा—"हम यह भरसक चेष्टा करेंगे कि भारी उद्योग—अर्थात् धातु-उद्योग, तेल, बिजली, रसायन द्रव्य, लकड़ी तथा मशीनें इत्यादि—खूब बढ़ें। यातायातमें पूर्णता लाना भी हमारा ध्येय है। हमें यह याद रखना चाहिए कि भारी उद्योग ही हमारी समाजवादी अर्थ-व्यवस्थाका आधार है, क्योंकि भारी उद्योगों

की उन्नति बिना उपभोक्ता पदार्थोंके उत्पादनके नहीं हो सकती, कृषिमें प्राण नहीं आ सकते और हमारे राष्ट्रकी सुरक्षाका प्रबन्ध नहीं हो सकता।" अर्थशास्त्रका साधारण ज्ञान रखनेवाला भी समझ सकता है कि मालेन्कोव की बातोंमें कितना अन्तर्द्वन्द्व है। इस प्रकारकी योजना बनाकर निकट भविष्यमें उपभोक्ता पदार्थोंका उत्पादन नहीं बढ़ाया जा सकता। इससे शायद उपभोक्ता पदार्थों का उत्पादन एक अंशमें बढ़ जाय, किन्तु यदि भारी उद्योगों की वृद्धिपर ज़ोर दिया जाता है, तो उपभोक्ता पदार्थोंका उत्पादन अधिक नहीं बढ़ सकता।

इसी सम्बन्धमें यह कहना अनुचित न होगा कि सोवियत रूसके आयोजन-विशेषज्ञ श्री गोपलानने यह स्वीकार किया था कि विशाल उद्योगोंको बढ़ानेके साथ-ही-साथ उपभोक्ता पदार्थोंको नहीं बढ़ाया जा सकता। यह तो सर्वविदित है कि सोवियत रूसने अपने साधनोंका अधिकाधिक उपयोग बड़े-बड़े उद्योगोंके विकासकी दिशामें किया है। इस संबंधमें अन्तिम और प्रामाणिक जानकारी सोवियत संघके भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री जी० एम० मालन्कोवके उस भाषण से प्राप्त होती है, जो उन्होंने सुप्रीम सोवियतके समक्ष दिया था (देखिए 'प्रावदा' और 'इजवेस्तिया', अगस्त १९५३, पृष्ठ १ और ४)। अपने इस भाषणमें उन्होंने कहा था—"इस समय रूसके औद्योगिक मज़दूरोंका लगभग ७० प्रतिशत अंश बड़े-बड़े आधारभूत उद्योगोंमें काम कर रहा है। १९२४-२५में रूसके अन्दर कुल मिलाकर जितना औद्योगिक उत्पादन हुआ था, उसमें उत्पादनोंके साधनों (अर्थात् मशीनों आदि) का अनुपात केवल ३४ प्रतिशत था। सन् १९३७ में द्वितीय पंचवर्षीय योजनाकी समाप्तिपर यह अनुपात बढ़कर ५८ प्रतिशत हो गया; और भी बढ़कर ६० प्रतिशत हो गया। इस प्रकार सन् १९२४-२५ में जहाँ मशीनोंका उत्पादन कुल औद्योगिक उत्पादनका केवल एक-तिहाई ही था, वहाँ आज वह दो तिहाईके लगभग है।"

पंचवर्षीय योजनाओंकी विफलता

जीवन-स्तरपर विचार करते समय हम तीन बातोंपर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे। पहली है जीवनीय आवश्यकता, जिसमें नित्यप्रति उपयोगमें आनेवाले उपभोक्ता पदार्थ आते हैं। दूसरी निवास-स्थान और तीसरी कृषि-जन्य क्षेत्रों में मवेशीकी अवस्थाएँ। उद्योगीकरणका स्वयं अपनेमें कोई मूल्य नहीं। जहाँ तक जीवनीय आवश्यकताओंका संबंध है, निम्नांकित तालिकाके अध्ययनसे यह स्पष्ट हो जायगा कि रूसकी पंचवर्षीय योजनाओंके लक्ष्य गिर रहे हैं:

वस्तु	पहली यो० १९३२-३	दूसरी यो० १९३७	तीसरी यो० १९४२	चौथी यो० १९५०
सूती कपड़ा (दस हज़ार लाख मीटर)	४०७	५०१	४०९	४०७
ऊनी कपड़ा (दस हज़ार लाख मीटर)	२७०	२२०	१७७	१५९
लिनन (दस हज़ार लाख मीटर)	५००	६००	३८५	X
बनस्पति तेल (दस लाख टन)	११००	७५०	८५०	८८०
चीनी (दस लाख टन)	२·६	२·५	३·५	२·४

उपर्युक्त तालिकामें अंकित लक्ष्य प्रतिवर्ष घटते जा रहे हैं। यहाँ तक कि चौथी पंचवर्षीय योजनामें भी ये लक्ष्य पूरे नहीं हो सके हैं। इसका अनुमान निम्नलिखित तालिकासे प्राप्त होता है:

वस्तु	निर्धारित लक्ष्य १९५०	प्राप्त लक्ष्य १९५०
सूती कपड़े (दस हज़ार लाख मीटर)	४६८६	३८१५
चमड़ेके जूते (दस लाख जोड़े)	२४०	२०५
बनस्पति तेल (हज़ार टन)	८८०	७७५

जब १९४६ में चौथी पंचवर्षीय योजनाका प्रारम्भ हुआ, तब सावधानीसे घोषित किया गया कि कुछ समय में रूसीका जीवन-स्तर दुनिया-भरसे ऊँचा उठ जायगा; किन्तु १९५० समाप्त हो चुका है और चौथी पंचवर्षीय-योजना भी पूरी हो गई है, पर अभी तक कोई ऐसे चिह्न दिखाई नहीं देते, जिनसे अनुमान लगाया जा सके कि रूसी जनता समृद्धिशाली होती जा रही है। हाँ, यदि पंचवर्षीय योजनाके लक्ष्यों और उपलब्धिके आँकड़ोंको देखा जाय, तो तस्वीरका दूसरा रुख साफ़ दिखाई देता है। रूसमें निम्न वस्तुएँ प्रत्येक मनुष्यके हिस्सेमें आती हैं:

ऊनी कपड़ा	·७५ गज़
चमड़ेके जूते	१·२ जोड़े
रबरके जूते	·४·४ जोड़े
जुर्राबें	२·९ जोड़े
मक्खन	·३ पौंड
मांस	१४६ पौंड
बनस्पति तेल	९·८ पौंड
मछली	२४·६ पौंड
चीनी	२७ "
आटा	११३ "
साबुन	९·८

जन-जीवनके स्तरमें गिरावट

जब सैनिक और औद्योगिक उत्पादनको अधिक महत्व दिया जायगा, तो जीवनीय आवश्यकताएँ कम हो जायँगी। इसी सरकारने मशीनों और कच्चे मालका उत्पादन बढ़ाने के लिए जनताके जीवन-स्तरको बिलकुल ही पीछे डाल दिया है। मांस, दूध, मक्खन आदिके संबंधमें इस समय जो स्थिति है, उसपर निम्नलिखित तालिकामें दिए गए आँकड़ोंके दृष्टिकोणसे विचार किया जा सकता है। ये आँकड़े रूसकी कम्युनिस्ट-पार्टी की सैन्ट्रल कमेटीके सेक्रेट्री एन० एस० ख्रुस्चेव द्वारा दिए गए हैं। ख्रुस्चेवकी यह रिपोर्ट केन्द्रीय कमेटीके सामने गत ३ दिसम्बर, १९५३को पेश की गई थी:

सन्	मवेशी	गाय	सूअर	बकरी और भेड़ें	घोड़े
१९१६	५८०·४ लाख	२३·०८	२३०	९६०·३	३८४·२
१९५३	५६०·३ ,,	२४०·५	२८०·५	१०९०·९	१५०·३

आलू और शाक-सब्जीके संबंधमें ख्रुश्चेवने अपनी रिपोर्टमें कहा है—"पिछले वर्षोंमें इन फसलोंको बढ़ानेकी दिशामें जो प्रयत्न किए गए हैं, वे असफल रहे। फसलोंमें वृद्धिकी कौन कहे, उल्टा ह्रास हुआ है।"

मालेन्कोवने सुप्रीम सोवियतके सम्मुख यह घोषणा की थी कि सन् १९५३ में सूती और ऊनी कपड़ेका उत्पादन सन् १९४०की तुलनामें क्रमशः ४० और ७० प्रतिशत अधिक होगा। यदि इस बातको मान भी लिया जाय, तो भी जनताके जीवन-स्तरमें कोई विशेष उन्नति प्रमाणित नहीं होती, क्योंकि सन् १९१६ से अब तक रूसकी जनसंख्या भी तो लगभग ५० प्रतिशत बढ़ गई है। जनसंख्यामें यह वृद्धि मुख्यतः योजना-कालमें हुई है। यदि इस तथ्यको दृष्टिगत किया जाय, तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इन उपभोक्ता पदार्थोंके संबंधमें स्थिति आज तक सन् १९१६ के आसपास-सी ही रही है और कभी-कभी तो वह उससे भी नीचे स्तरपर चली गई है!

मकानोंकी कमी

निवास-स्थानके सम्बन्धमें ट्रेड यूनियनकी केन्द्रीय कमेटीके अध्यक्ष एन० एस० खेरनिकके वक्तव्यसे भी काफ़ी जानकारी प्राप्त हो सकती है। आपने केन्द्रीय कमेटीके ग्यारहवें अधिवेशनमें अपना भाषण देते हुए घोषणा की है कि रूसमें सर्वत्र मकानोंका निर्माण-कार्य जोर-शोरसे चल रहा है। किन्तु साथ-ही-साथ आपने यह चेतावनी भी दी है कि कुछ मंत्रालय और सरकारी विभाग अपने उत्तर-दायित्वको समुचित रूपसे नहीं निबाह रहे। प्रत्येक वर्ष हम देखते हैं कि मंत्रालय गृह-निर्माण-कार्यके अतिरिक्त पुराने मकानोंकी मरम्मतका कार्य भी समुचित रूपमें ही नहीं कर रहा। सरकारी स्तरपर सन् १९५३ के लिए गृह-निर्माण-योजना जिस रूपमें स्वीकृत हुई थी, निम्न स्तर पर भी १९५३ के पहले तीन महीनोंमें योजनाको केवल १२ प्रतिशत सफलता ही प्राप्त हुई। 'इकनामिक सर्वे आफ् यूरोप इन १९४८' के अनुसार रूस और यूरोपके अन्य देशोंमें प्रति व्यक्ति निवास-स्थानके निम्नलिखित आँकड़े मिलते हैं:

देश	प्रति व्यक्ति निवास-स्थान (वर्गमीटरोंमें)
रूस	१२
इटली	१२
बेल्जियम	१५
डेन्मार्क	२१
फ्रांस	२३
स्वीडन	२३
ब्रिटेन	२५-२६

रूसमें निवास-स्थानके सम्बन्धमें और भी कई हिसाब लगाए गए हैं। जिनके अनुसार प्रति व्यक्ति औसत और भी कम पड़ता है। डा० नाम जास्नोने १९५४ में छपे अपने लेख 'दि न्यू इकनामिक कोर्स इन यू० एस० एस० आर०' में लिखा है—"१९२८ में निवास-स्थान बहुत कम था, तो भी प्रत्येक नागरिकके हिस्सेमें औसत ६·१ वर्गमीटर आता था। किन्तु आज वह औसत ४ वर्ग मीटरसे किसी भी प्रकार अधिक नहीं माना जा सकता।" किंतु चूँकि डा० जास्नोने अपने हिसाबका आधार उक्त लेखमें नहीं बताया, इसलिए कुछ शंकाको स्थान मिल सकता है। यह तो हुई रूसके नगरोंमें निवास-स्थानकी कहानी; पर रूसके देहातोंके सम्बन्धमें समुचित आँकड़े प्राप्त नहीं। किन्तु रूसमें घूमकर आनेवाले कई व्यक्ति देहातोंमें निवास-स्थान की तंगीका ज़िक्र करते रहे हैं। इन सब बातोंका एक ही निष्कर्ष निकलता है और वह यह कि रूसमें गृह-निर्माण-योजनाएँ काफ़ी हद तक असफल रही हैं और इस समय भी वहाँ निवास-स्थानकी बहुत बड़ी तंगी है।

मजदूरोंका वेतन बनाम मूल्य-वृद्धि

और मजदूरोंके वेतनका क्या हाल है? क्या उनमें उसी अनुपातसे वृद्धि हुई है, जिस अनुपातमें कि मूल्य-स्तर बढ़ा है? यदि १९२६-२७ को आधार-स्वरूप १००० मान लिया जाय, तो सन् १९५० की चतुर्थ पंचवर्षीय योजनामें वेतन-वृद्धिका लक्ष्य ९६१५ निकलता है। स्पष्ट है कि मूल्योंमें हुई भयानक वृद्धिको दृष्टिगत करनेपर यह वेतन-वृद्धि मजदूरकी आधी क्षति भी पूरी नहीं कर सकती। यह सच है कि रूसके मज़दूरको कुछ अन्य सुविधाएँ प्राप्त

हैं, किन्तु असली बात तो है उपभोक्ता पदार्थोंका उत्पादन। उस उत्पादनकी दयनीय दशा रहते मज़दूरका जीवन-स्तर कभी ऊँचा उठ नहीं सकता। एक साधारण रूसी कर्मचारीका क्या जीवन-स्तर है? इसका उत्तर निम्नलिखित आँकड़ोंमें १९२६ और १९५०के बीचमें मूल्यों और वेतनों की तुलना की गई है, जिनसे पता चलता है कि इस समय मूल्योंमें कितनी वृद्धि हुई है और वेतनोंमें कितनी :

वेतनमें हुई वृद्धि

	१९२६-२७ (रूबलमें)	१ जुलाई, १९५० (रूबलमें)	वृद्धि
वार्षिक वेतन (औसतन)	६२४	६०००	९॥

वस्तुओंके मूल्यमें वृद्धि

राईकी रोटी (किलोग्राम)	·०८	२·०	२५ गुना
पिसे हुए जौ (किलोग्राम)	·०१६६	४·६०	२८ ,,
आटा ,,	·२१	३·९१	२० ,,
मक्खन ,,	२·२	४०·३२	१८ ,,
चीनी ,,	·१७	१३·२०	१८ ,,
दूध (लीटर)	·२२	३·१५	१५ ,,

इन आँकड़ोंके परीक्षणके पश्चात् यह बात प्रकट हो जाती है कि रूसमें कम्युनिस्ट शासनमें जीवन-स्तर पहलेसे आधा रह गया है। जबकि वेतनमें ९॥ गुना वृद्धि हुई है, तो उपभोक्ता पदार्थोंमें १५-२५ गुना तक वृद्धि हुई। इसके यह अर्थ हुए कि १९२६-५० तक वस्तुओंके मूल्योंमें तो वृद्धि होती रही, किंतु वेतनोंमें उसके अनुपातसे वृद्धि नहीं हुई। ३० सालके तथाकथित समाजवादी आयोजनके पश्चात् भी आज साधारण रूसीका जीवन-स्तर ज़ारके समय का दो-तिहाई ही है! कॉलन क्लर्कका कहना है कि रूस में सन् १९३१में प्रति व्यक्ति आय ३६० अन्तर्राष्ट्रीय इकाइयोंसे गिरकर अब ११७ रह गई है! आज लगभग सभी राजनीतिक पर्यवेक्षकोंका यह मत है कि यदि रूसमें आर्थिक संकट नहीं, तो आर्थिक असंतुलन अवश्य है; और हाल हीमें वहाँ जो राजनीतिक परिवर्त्तन हुए हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि जनताको प्रतिदिनके उपयोगकी वस्तुओंको प्राप्त करनेके लिए अभी और संकटके दिन देखने होंगे।

राधा मर गई!

श्रीमती शकुन्तला श्रीवास्तव

"गजाधर एक औरत लाया है।"

"अच्छा! कैसी है वह?"

"अच्छी तो है, पर पैरकी लँगड़ी है।"

"आपने क्या देखा है उसे?"

"नहीं, कुमुद बता रही थी।"

अभी हम लोगोंकी बात चल ही रही थी कि गजाधरने अपनी नई पत्नीके साथ प्रवेश किया। गजाधरकी वेश-भूषा भी आज विचित्र थी। लम्बा कुरता, घुटनों तक धोती, सिरमें चमेलीका फूल और बेलेके फूलोंकी माला गलेमें, उसका काला वर्ण तेलकी चमचमाहटसे चमक रहा था। उसकी बहू एक लाल किनारीकी पीली साड़ी पहने थी। हाथमें लाखकी चूड़ियाँ थीं। काफ़ी लम्बा-सा घूँघट काढ़े थी। गजाधरने उससे कहा—"बुआजी, बाईजीके पैर छू ले। आसीरवाद मिलेगा।"

मैंने हँसते हुए कहा—"गजाधर, कहाँसे लें आए? बहू तो बड़ी अच्छी है।"

"सुसकारी—ससुराल—गया था न! वहाँ पड़ोसमें यह रहती थी। अकेली थी बेचारी। सरहज कहने लगी—'तुम भी अकेले हो, राधा भी; ले जाओ। रोटी पानीकी तकलीफ होती है तुम्हें।"

"रोटी तो शेवड़े साहबके यहाँ खाता है न तू?"

"जी हाँ, मगर बिना औरत राधा..."

"बिन घरनी घर भूतका डेरा!"—भाभीने हँसते हुए कहा।

(२)

इस घटनाको बहुत दिन हो गए। मैं सालमें एकाध बार जबलपुर जाती थी। अब गजाधर और राधा हमारे यहाँ ही काम करने लगे थे। बँगला बन रहा था। भाभीने उससे कहा कि पीछे तेरे लिए कोठरी बनवा दूँगी। तब तक उसे एक कोठरी रहनेको दे दी थी।

एक दिनकी बात है। आठ बजे सवेरे तक जब गजाधर काम करने न आया, तो सुधा उसे बुलाने गई। देखा वह सो रहा है। राधा लाठी टेकती हुई आई और बर्त्तन माँजने बैठ गई। भाभीने उससे पूछा कि गजाधर कहाँ रह गया? राधाने शिकायतके स्वरमें कहा—"क्या बताऊँ बाईजी, करम तो मेरा फूटा है न? आजकल १२-१ बजे रात तक ग़ायब रहते हैं। कुछ पूछो, तो मारने को दौड़ते हैं। कहते हैं—मारकर निकाल दूँगा। और दूसरी औरत ले आऊँगा। मुझे औरतोंकी कमी नहीं!"

भाभीने कहा—"अच्छा, देखूंगी उसे। सुधा बुला तो ला उसे।"

सुधाके पीछे अँगड़ाई लेता हुआ गजाधर आया। आँखें लाल थीं। भाभीने उसे डाँटकर कहा—"काम-काज की सुध नहीं, अभी तक सो रहा था ?"

"बाईजी, रातको गम्मत रही थी न। ज़रा अबेर हो गई घर आनेमें।"

"आज अबेर हो गई ! रोज़ ही तुम आते हो देरमें।" —राधाने तेज़ स्वरमें कहा।

"तू चुप रह, रधिया।"—गजाधर क्रोधमें बोला।

"क्यों चुप रहूँ ?"

"बाईजीके सामने मुँह लग रही है ?"—उसने कुल्हाड़ी हाथमें उठा ली और बोला—"इसीसे सिर फोड़ दूंगा तेरा, लकड़ीकी तरह।"

तब तक बड़े भैयाका स्वर सुनाई पड़ा। गजाधर भीगी बिल्लीकी तरह खिसक गया। राधा दो घंटे तक रो-रोकर अपना दुखड़ा सुनाती रही।

(३)

राधाके एक लड़का हो गया है आनन्दी। बिल्कुल माँकी तरह है। गजाधर उसको बड़ा दुलार करता है। राधाको तो वह सिर-माथेपर बैठाए रखता है। उसके होनेमें राधा बीमार पड़ गई थी। तब उसने दिन-रात लगकर उसकी सेवा-सुश्रूषा की। नौकरीकी परवा छोड़कर हम लोग तो उसका स्वभाव जानते ही थे। भाभीने एक दूसरे नौकरसे तबतक काम कराया।

जब राधा दो महीने तक बीमार रही, तो गजाधर इधर-उधर ताक-झाँक करने लगा। बागमें काम करने-वाली मायासे—जो पहले उसकी पत्नी रही थी—अक्सर सलाह करता। उससे कहता—"न हो तू मेरे यहाँ आ जा। रामलाल तो तेरी क़द्र नहीं करता। राधा बीमार है। भगवानने औलाद दी है, तो उसका कोई पालनेवाला नहीं। तू ही उसकी असली माँ बनेगी। वैसे भी तू मेरी औरत ही तो है।"

"राधा मारकर निकाल देगी"—मायाने धीरेसे कहा।

"उसकी मजाल है जो वह एक सबद भी बोले।"

गजाधरके कहनेसे माया अक्सर बच्चेको जाकर खिलाती और राधाकी देख-भाल भी करती। यह सब तो नाम-मात्रको ही होता, असलमें गजाधरकी चंचल प्रकृति भौंरा बनकर उसके चारों ओर मँडराती। पहले तो राधा बड़ी प्रसन्न हुई मायाके आनेसे, पर बादमें जब दोनोंके ये हाल देखे, तो जल गई। एक दिन कोठरीसे बाहर निकलकर उसने देखा, दोनों प्रेमपूर्ण संभाषणमें निमग्न हैं। गर्मीकी दोपहरी थी। बारह बजे थे। मगर बागमें ठंडक थी। आमके पेड़के तले दोनों बैठे थे। राधाके कानोंमें आवाज़ पड़ी—"तो तू कब आएगी ?"

"आनन्दीके बापू, यह हो कैसे सकता है ! माली मार डालेगा।"

"वह तो ऐसे ही तुझे मारता है। कौन-सा सुख देता है तुझे ? सारे दिन तू बागमें काम करती है, फिर घर जाकर मरती है, उसपर भी उसके मिजाज़ नहीं मिलते।"

"यह तो ठीक है। पर यहाँ भी तो राधा है।"

"तो क्या हुआ ? दो औरतें नहीं रहती हैं क्या ? और अगर वह ज़रा भी गड़बड़ करेगी, तो कान पकड़कर निकाल बाहर करूँगा उसे।"

अब राधासे बर्दाश्त न हुआ। चिल्लाकर बोली—"बड़े आए हैं निकाल बाहर करनेवाले ! बाईजीसे कहकर अभी तुम दोनोंको निकलवाती हूँ। देखूंगी कौन निकलता है !"

माया धीरे-धीरे बागमें चली गई और गजाधर उसके पैर पड़कर माफी माँगने लगा। राधाकी धमकी काम दे गई। गजाधर मालकिनके डरसे दो दिन ग़ायब रहा।

(४)

राधाकी शक्ल-सूरत अच्छी थी। बुद्धि भी उसकी बड़ी तीव्र थी। जब लड़कियाँ कहानी सुननेकी ज़िद करतीं, तो वह बड़ी मज़ेदार लम्बी-लम्बी कहानियाँ सुनाती। उसका जीवन स्वयं ही एक कहानी था। माँ-बाप उसके थे नहीं। एक धोबीने उसका पालन-पोषण किया था। बचपनसे ही वह दूसरोंके साथ रही। जिसके साथ विवाह हुआ, वह एक साल बाद ही स्वर्ग सिधार गया। राधाने उसके बाद कई घर बसाए। वह तीन-चार जगह रही। जहाँ भी रही, शानके साथ रही। दबना तो वह जानती ही न थी। या तो उसका पति मर जाता या उसे घरसे निकलना पड़ता। वहाँसे निकलकर फिर अपने गाँवमें आ जाती। मेहनत-मज़दूरी करके अपना पेट भरती। वैसे चरित्र उसका अच्छा था। जिसके पास रहती, निष्ठापूर्वक उसीकी होकर रहती।

गजाधरमें और उसमें बड़ा फ़र्क़ था। राधा सुन्दर, चालाक और चुस्त थी। गजाधर उतना ही मूर्ख और बिगड़ी प्रकृतिका था। उसकी शक्ल बड़ी हास्यास्पदक थी। जब कोई बाहरसे आता, तो बड़े भैया उसको बुलाते। उसकी बातें सुनकर लोगोंको बड़ी हँसी आती। जब कमरेकी सफ़ाई करता, तो सिगरेटके टुकड़े काग़ज़के टुकड़े

और छोटी-छोटी रद्दी चीज़ें भी मेज़पर सजाकर रख देता था। क्रोध या हर्षमें उसकी मुख-मुद्रा दर्शनीय होती थी।

राधाने पुत्र होनेके बाद यह अच्छी तरह समझ लिया था कि अब उसका जीवन गजाधरके यहाँ ही कटेगा। उसकी एक टाँग टेढ़ी थी। बीमारीके कारण वह लँगड़ी हो गई थी। वह ज्यादा चल-फिर नहीं सकती थी। वह अक्सर गजाधरसे कहती "मेरा पैर ठीक होता, तो एक मिनट भी तुम्हारे यहाँ न रहती।"

राधाका कंठ-स्वर मधुर था। गाना बड़ा अच्छा गाती थी। कहा करती—"यदि पैर ठीक होता, तो में गा-गाकर ही पेट भर लेती।"

आनन्दी अब बड़ा हो गया था। उसके खाने-पीने का सारा भार भाभीपर था। घरमें कोई छोटा बच्चा न था। भाभी उसको बहुत प्यार करती। राधाने इस प्रवृत्तिका समुचित लाभ उठाया। वह हमारे यहाँ दूध पीता, खाना खाता, नाश्ता करता, चाय पीता। बहरहाल अपने घर सोने जाता, नहीं तो हर समय यहीं रहता। वह उसको सिखाती रहती—"जा देख, क्या बना है। ले आ।" वह आता और चौकेके द्वारपर खड़ा हो जाता। चाहे कितना ही पेट भरा रहता, पर उसको बिना दिए तो चलता ही नहीं। कभी-कभी महराजिन डाँट देती, तो भाभीके पास जाकर उसकी शिकायत करता।

एकबार कोई दावत थी। आनन्दीने इतना खाया कि हिलनेकी भी गुंजाइश नहीं रही। उसको पूरियाँ खाते देखकर घरके बच्चोंको भी शरारत सूझी। अनुरागने उससे कहा—"और खायगा आनन्दी? पेट तो भर गया है, पर अभी दो पूरी......"

"अच्छा दो पूरियाँ दे दो।"

इसके बाद अनुरागने कहा—"यदि अब भी तूने खाया, तो तुझे दो आने मिलेंगे।"

आनन्दी खाता गया और रातको उसकी हालत बिगड़ गई। डाक्टरको बुलाना पड़ा। बच्चे उसे नसीहत देना चाहते थे। पर उसकी माँकी शिक्षा थी कि मुफ्त माल जितना भी हो सके, उसका उपयोग करना चाहिए!

(५)

इस बार लगभग दो साल बाद जबलपुर जानेका मौका मिला। मेरा आना सुनकर राधा दौड़कर आई और मेरे पैर छुए। मैंने उसकी क्षेम-कुशल पूछी, तो भाभी बोलीं—"गजाधर तो लड़कर भाग गया है। एक दिन उसने राधासे लड़ाई की, तो मैंने कहा कि मेरे घरमें यह गँवारपन नहीं चल सकता। उसे भी ताव आ गया और वह निकल गया। राधाको भी अपने साथ ले जाना चाहता था। यह नहीं गई। बोली—"मरूँगी तो यहीं, जियूँगी तो यहीं। तुम तो जाने कहाँ-कहाँकी खाक छानोगे। मैं बच्चोंको लेकर कहाँ जाऊँगी?" तबसे राधा यहीं है। हमारे यहाँ के अलावा और भी दो-चार घरोंमें चौका-बर्त्तन करती है। इसका गुज़ारा हो ही जाता है। कुछ दिनोंमें बच्चे ठीक हो जायँगे, जायँगे कहाँ?"

राधा बोली—"कहीं भी जायँ, मुझे कोई मतलब नहीं। बाईजी मेरी और बच्चोंकी परवरिश कर ही रही हैं। मैं बड़ी सुखी हूँ।"

एक दिन राधाका तीव्र कंठ-स्वर बागसे सुनाई पड़ा। आवाज़ सुनकर हम लोग सब भागकर गए। एक साहब, जो बच्चोंके ट्यूटर थे, अमरूद तोड़कर थैलेमें भर रहे थे। राधा उन्हें और पहले भी कई बार मना कर चुकी थी। इस बार उसने ज़रा सीधे खड़े होकर उनका हाथ पकड़ लिया। कहने लगी—"बस करिए मास्टर साहब, मैंने अभी तक बाईजीसे कहा नहीं है, नहीं तो......।" मास्टर साहब क्रोधित होकर बोले—"तेरी इतनी मजाल कि मेरा हाथ पकड़े, बैरिस्टर साहबको पता है कि मैं अमरूद ले जाता हूँ, उन्होंने ही कहा था।

"क्या कहा था उन्होंने कि चोरी करना?"—राधाने कुपित स्वरमें कहा। हम लोगोंने देखा कि मामला बढ़ रहा है, तो चुपकेसे अन्दर खिसक आए। मास्टर साहबने शायद देख लिया। वे भी नौ-दो-ग्यारह हो गए।

एक दिन हम लोग किसीसे मिलने गए थे। लौटे तो रातके आठ बज गए। राधा बरामदेमें बैठी रो रही थी। मैंने कहा—"क्या है राधा, बात क्या है?" बहुत पूछनेपर उसने बताया—"वह जो मद्रासी किराएदार है न बगलके मकान में, उसकी स्त्री आजकल देश गई है। अकेला है वह। मुझे रोज़ चाय और खानेके लिए कुछ दे देता था। आज जब मैं काम करके आने लगी, तो बोला—'सब जगह काम कर आई राधा?'

"मैंने कहा—'हाँ बाबूजी।

'तो बैठ थोड़ी देर।'

'नहीं, बैठकर क्या करूँगी? मालकिन भी तो नहीं हैं।'

'तो क्या हुआ। पहले मालकिनके पास बैठती थी, आज मेरी खातिर.....'

"मैं वहाँसे चुपचाप चल दी, तो वह मेरी बाँह पकड़कर बोला—'अरी रुक थोड़ी देर, बड़ी नवाबज़ादी है।'

"मैंने उसे ज़ोरका एक झटका दिया, वह गिरते-गिरते बचा और जी-भरकर खूब गालियाँ सुनाईं, तो पैर पकड़ने लगा।"

भाभी सुनकर नाराज़ हुईं। कहने लगीं—'खबरदार जो अब उसके घर काम करने गई। पेट तो तेरा भर ही जाता है। ज़ेवर गढ़ानेकी फिक्र है क्या? और बेईमान को तो देखो। बीवी-बच्चे हमारे सिर पटककर भाग निकला है!"

गजाधरको भी इस घटनाका पता चला। वह उस मद्रासीसे लड़नेपर आमादा होगया, पर फिर समझानेसे शान्त हुआ। हाँ, इसका फल यह हुआ कि वह अब घरमें स्त्री के साथ शांतिपूर्वक रहने लगा। राधाकी जीवन-चर्या बहुत सुखपूर्वक व्यतीत हो रही थी। वह और गजाधर काफी कमा लेते थे। उसका ज़ेवर बनवानेका शौक बहुत बढ़ गया था। एक समय खाना बनाती। बच्चे हमारे यहाँ ही खाते थे।

(६)

इसके बाद तो साधनाकी शादीमें मुझे जाना पड़ा। इस बीच मेरा तो संसार ही उजड़ गया था। मेरी जानेकी इच्छा नहीं थी। पर बड़े भैया कैसे मानते? वे भी अभी शादी करना नहीं चाहते थे, पर वर-पक्षवाले नहीं माने। मैंने उन्हें समझाया—"अब देर करनेसे फायदा भी क्या है? जैसे अभी की वैसे साल-भर बाद....."

मैं गई, लेकिन मेरा हृदय तो दुःखसे टूटा हुआ था। सभी दुखी थे। उत्साह-उल्लास तो सारा खत्म हो गया था। जब राधा कई दिन दिखाई न दी, तो पता चला कि वह बहुत अधिक बीमार है। लिवर छाती तक खराब हो गया है। अस्पताल भी भेजा, पर वह वहाँसे वापस आ गई। अस्पतालका नाम लेनेसे लड़ती है, रोती है। बच्चे—आनन्दी और उसकी बहन पुन्टी—यहीं पड़े रहते थे। पुन्टी तो बड़ी दुखी और दीन रहती थी राधाके लिए खाना जाता था। उसे नमक मना था, पर ज़िद्द करके खा ही लेती थी। उसकी बीमारी दिन-पर-दिन बढ़ती ही गई। वह चारपाईसे शौचादिके लिए उठती थी, नहीं तो सारे दिन पड़ी ही रहती थी। गजाधर इस चिन्तामें था कि यह कब मरे! पहले उसकी दवा-इलाज उसने मामूली ढंगसे किया था। पर इससे कहीं फायदा होता है? बीमारी बहुत बढ़ गई थी। साधनाकी शादीमें बेचारी उठ भी नहीं सकी। एक दिन बोली—"कितने दिनोंका अरमान था कि बाईके ब्याहमें मैं काज करूँगी, गाना गाऊँगी, खूब खुशी मनाऊँगी। पर मेरे भाग्यमें तो कुछ भी नहीं बदा था!"

गजाधर अक्सर कहता—"अब राधा बचेगी नहीं, मर जायगी।" पर जब उसकी दवा बदली गई, और कुछ लाभ होने लगा, तो एक दिन बोला—'बुआजी, अब तो लगता है वह बच जायगी। दवासे फायदा तो है।" घरके नौकरोंने बतलाया कि वह तो उसके मरनेकी बाट जोह रहा है! राधा चारपाईपर पड़ी रहती, गजाधर उसके खाने-पीनेकी भी फिक्र न करता। आनन्दी समझदार था, पर वह भी शादीमें लगा रहता था या बच्चोंके साथ खेलता। माँकी परवा उसे भी नहीं थी।

मेरे आनेके कुछ दिन पहलेसे ही राधाने अपने मायके जानेकी रट लगा दी थी। एक बार उसके गाँवसे कोई आदमी आया, तो वह बहुत ही रोई। बोली—"मेरी यहाँ तो किसीको ज़रूरत है नहीं। आजकल यही दूसरा दिन। तो क्यों न गाँवमें जाकर मरूँ। बचूँ या मरूँ, अब यहाँ न रहूँगी।"

गजाधर भी यही चाहता था। वह उसको गाँव भेज आया।

आनन्दी और पुन्टी उसके जानेसे बहुत दुखी रहते। खाना भी मुश्किलसे खाते। चार सालकी पुन्टी और आठ सालका आनन्दी, जो पहले माँके पास भी न जाते थे, अब बेहद उदास रहते। पुन्टी कहती—"अम्मा अब कब आयगी। उसके बिना हम नहीं रह सकते। हमें वह क्यों नहीं ले गई?"

बच्चोंका उदास मुख देखकर कलेजा फटने लगता। पर चारा ही क्या था? गजाधरने लौटकर बताया कि उसके पड़ौसी उसकी सेवा-सुश्रुषा कर रहे हैं। हम लोगों को इस बातपर विश्वास नहीं हुआ। यह गजाधरकी नवीं पत्नी थी। अबतक वह नौ स्त्रियाँ लाया था। स्त्रियाँ अक्सर भाग जाती थीं। राधा नौ साल उसके साथ रही। एक तो उसका पैर लँगड़ा था, दूसरे दो बच्चे थे उसके।

(७)

यहाँ आनेपर एक हफ़्ते बाद सुधाका पत्र बड़ी बहनके पास आया। लिखा था—"राधा मर गई, उसके गाँवका आदमी खबर देने आया था। वहाँ जानेके बाद उसकी हालत बहुत खराब हो गई थी। गाँववालोंने झाड़-फूँक की। इलाज तो वे क्या करते? पर किसीको पता न था कि वह मर जायगी। जब मरने लगी, तो बच्चोंकी याद करके बिलखती रही। मर जानेपर आदमी आया। लाश गाड़ दी गई थी, क्योंकि दाह-क्रिया तो गजाधर ही करता। पति-पुत्रके होते हुए भी गाँववालोंने लाशको गाड़ दिया।

गजाधर आया। जब पूछा, तो कहने लगा—'दाह-क्रिया कर दी है।" पर दो-तीन दिन बाद वहाँसे एक आदमीने आकर बताया कि लाश ठीकसे गाड़ी भी नहीं गई थी। उसे चील-गीदड़ोंने खोद लिया और राधाका शरीर उनका आहार हो गया!

मरनो भलो विदेसको, जहँ न आपुनो कोय,
माटी खाय जनावरा, महा महोच्छव होय!

अमरकंटक

श्रीमती शीला शर्मा

विन्ध्य-प्रदेश सुरम्य स्थानोंसे भरा पड़ा है। बस इतना ही है कि वे सभी रीवा (विन्ध्य-प्रदेशकी राजधानी) से दूर हैं। पता नहीं, रीवाके सिरपर यह राजधानीका सिरमौर कब तक सुशोभित होगा! सुनते हैं कि विन्ध्य-प्रदेशका भाग्य त्रिशंकुके समान आकाशमें लटका हुआ है। सम्भवतः यह और किसी प्रदेशमें अपना अस्तित्व लीन करके जीवित रहेगा।

इस बार हमने सबसे दूरके एक स्मरणीय स्थानपर धावा बोल दिया। यह एक ३५०० फीटकी ऊँचाईपर एक अच्छा खासा 'हिल-स्टेशन' है। प्रकृतिकी ओरसे तो यह हिल-स्टेशन है ही, अवश्य ही मनुष्यने अभी तक इसको हिल-स्टेशन बनानेमें अपना सहयोग नहीं दिया था। अब तैयारियाँ इतनी ज़ोरोंसे हो रही हैं कि लगता है सारी कसर एक साथ ही पूरी कर दी जायगी! बाँध बनाकर नर्मदा नदीका पानी रोककर झील बनाई जा रही है, जिससे झीलों और तालोंवाले हिल-स्टेशनोंसे सुन्दरतामें यह पीछे न रह जाय! डाक-बँगले तो बन चुके, अब तो ज़मीन खरीदकर निजी मकान बनानेका काम भी शुरू हो गया है। इन सभी चीज़ोंमें हमें तो फलोंका बगीचा बड़ा अच्छा लगा, यद्यपि अभी वह अपने शैशव-कालमें ही है। इस स्थान का नाम है 'अमरकंटक'। सुना जाता है कि यह नामकरण वास्तवमें 'अमरकंठ' के नामसे हुआ था, जो कि शिवजीके 'नीलकंठ' आदि नामोंका पर्यायवाची है।

तीर्थस्थान और नर्मदा-कुंड

हिल-स्टेशन तो अमरकंटक शायद भविष्यमें बनेगा, परन्तु अभी अपने वर्त्तमान रूपमें भी वह एक तीर्थस्थान ही कहा जाता है। कहा जाता है कि सब तीर्थ करनेके पश्चात् अमरकंटकके तीर्थकी परम्परा है। कहनेवाले तो यह भी कहते हैं कि अन्तमें यदि अमरकंटकका तीर्थ न किया जाय, तो अन्य तीर्थोंका माहात्म्य भी नहीं होता। अमरकंटकके तीर्थको बद्रीनाथ, प्रयाग, काशी, पुरी, अमरनाथ, रामेश्वरम्, द्वारका तथा दक्षिणके अगणित तीर्थोंके अन्तमें रखा जाना कुछके लिए अनेकों पौराणिक कथाओंके समान निरर्थक भले ही लगे, परन्तु मुझे इसके पीछे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अर्थकी झाँकी झिलमिलाती लगती है। तीर्थोंके अधिष्ठाता देव भले ही भिन्न-भिन्न हों, उनके प्राकृतिक दृश्योंमें भले ही अन्तर हो, निवासियोंके रहन-सहन व पहनावेसे वहाँ भले ही एक पृथकताका अनुभव होता हो; परन्तु यदि वे तीर्थ हैं, तो उनमें एक समानता अवश्य होगी, सभी जगह मक्खियोंकी तरह बिना बुलाए ही अपने-आप भिनभिनानेवाले पण्डे अवश्य ही होंगे, सभी मन्दिरोंमें रूमालमें जकड़ी नाकके अन्दर पहुँच जानेवाली नारकीय दुर्गन्ध अवश्य होगी, मृगशावक-से भोले भक्त-हृदयको चतुरतासे अपने जालमें बाँध लेनेवाले पाशविक बधिक अवश्य होंगे, भिक्षाके नामपर चिपकनेवाले श्वान हर जगह एक ही-से होंगे। ये सभी तीर्थ भिन्न होते हुए भी जैसे समान हैं!

इन तीर्थोंके बीच अमरकंटकको तीर्थ कहनेमें एक तरफ़ लज्जा आती है, तो दूसरी ओर गर्व भी होता है। यहाँ शांति अचला होकर विश्राम करती है। नर्मदाके प्राचीन मन्दिरके विशाल आँगनके द्वारपर मुझे केवल दो भिक्षुक
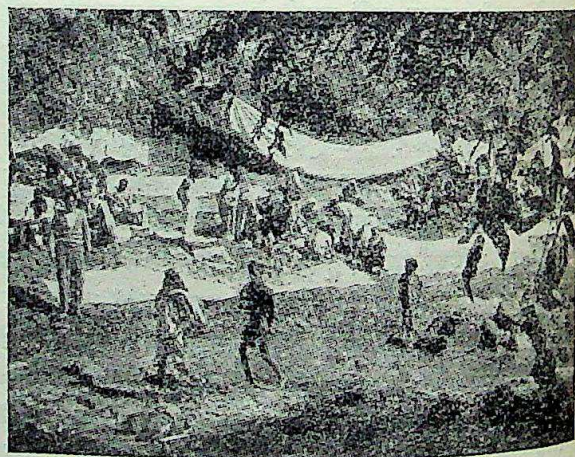
नर्मदाके किनारे शिवरात्रिपर आए लोगोंकी भीड़

मिले—एक अन्धा था, दूसरा पंगु। अन्धा बाँसुरी बजा रहा था और पंगु उसके साथ कीर्त्तनके बोल गा रहा था। उनसे दूर भागनेके बदले इच्छा हुई कि उनका कीर्त्तन सुनते ही रहें। कीर्त्तन सुननेके पश्चात् ही ध्यान आया कि एक सूरदास है और दूसरा पंगु। उन्हें कुछ देते समय आदमी टके नहीं गिनता, परन्तु यह सोचने लग जाता है कि क्या और रेज़गारी जेबमें न होगी? यहाँ किसी पंडेके दर्शन न हुए और न कोई ऐसी नारकीय दुर्गन्ध ही आई कि वहाँसे भाग खड़े होनेकी इच्छा होती। प्राचीन छोटे-से सादे मंदिरके अन्दर एक साधारण-सी प्रतिमा रखी थी, जिसे नर्मदा-माँकी प्रतिमा कहकर सम्बोधित किया जाता है।

पासमें दानपत्र रखा था। शान्ति वहाँ ऐसी थी कि मुझ-सा नास्तिक भी उस दान-पात्रमें २) डाल आया। ऊपर के गुम्बज टूट जानेके कारण अब अलग-अलग तीन मन्दिर-से लगने लगे हैं, पर वास्तवमें यह एक ही मंदिर है।

नर्मदा-कुण्ड भी इसी मंदिरके समीप है। इसी कुण्ड में एक मन्दिर है, जो नर्मदा नदीके स्रोतके ऊपर बना दिया गया है। पानीका प्रवाह कहीं दिखाई ही नहीं पड़ता। उस कुण्डमें एक नाली-जैसे द्वारने हमारा ध्यान आकर्षित कर यह बतला दिया कि कुण्डमें अधिक जल आ जानेपर पानी इसी नालीके द्वारा बाहर निकल जाता है। उस छोटी-सी नालीसे समय-समयपर निकला जल नर्मदा-जैसी बड़ी सरिताको जन्म देता है, इसपर बड़ा आश्चर्य हुआ!

एक मनोवैज्ञानिक रहस्य

अमरकंटकको अन्तका तीर्थ रखनेमें एक बड़ा मनोवैज्ञानिक रहस्य जान पड़ता है। तीर्थोंमें भटक-भटककर प्राणी यह अनुभव करने लगता है कि भगवान तीर्थोंमें नहीं हैं। इसमें भी आश्चर्य नहीं कि इन समस्त तीर्थ-यात्राओंके पूर्व प्राणी आस्तिक रहा हो और लौटकर आनेपर नास्तिक हो जाय। काशीमें श्री विश्वनाथके स्वर्णकलश के दर्शन तो हो जायँगे, पर उस सच्चिदानन्द-स्वरूपके दर्शन न होंगे, जिन्हें भक्तका हृदय खोज रहा है। एक-एक मन्दिर को और तीर्थको लेकर क्या कहूँ। मेरी अमरकंटककी यात्राकी बातें सुनकर कुछ लोग मुझसे मिलने आए। मेरा ख़याल था कि जब लोग मेरी यात्राकी बात सुनकर मिलने आए हैं, तो अवश्य ही उस स्थानके बारेमें कुछ जानना चाहते होंगे। पर सब अपनी-अपनी कहनेको उतावले थे। एक बोले—"मैं पुरी गया था। क्या लोगोंने ठगनेका तरीक़ा निकाल रखा है कि शायद एक तहमत पहनकर जाओ, तो बचो; वर्ना तो वे कपड़े भी उतार लेते हैं! ऐसे सधे हुए हाथ हैं पण्डों के कि चलते यात्रीके गलेमें दूरसे ही माला फेंककर डाल देते हैं और माला सीधी गलेमें पड़ भी जाती है। फिर माला फेंकनेवाला यजमानके रूप, वेशभूषा आदिसे अन्दाज़ लगाकर उनके उचित ही मूल्य माँगना शुरू कर देता है। अधिक-से-अधिक माँगनेकी तो मात्रा निश्चित नहीं है, परन्तु कम-से-कम एक मालाका दाम चार आने तो इस ललकारसे माँगा जाता है कि देनेवाला मुकर ही न सके। और अगर किसीने आनाकानी की भी, तो भगवानका अपमान होता देख सारे भगवानके ठेकेदार एक साथ नीचे उतरकर इकट्ठे हो आते हैं और भगवानके अपमानका कलंक लगाकर वस्त्र तक उतार डालते हैं! इतना ही नहीं, गो-माताको भी सुपुत्रोंके व्यवसायमें हाथ बँटाना सिखा दिया गया है। वह राहीको देखकर एक साथ मार्ग रोककर खड़ी हो जाती है और बीचमें ऐसा मार्ग रोकती है जैसे साक्षात् हिमालय पर्वतकी अचला शक्ति उसमें समा गई हो! और चारों ओरसे पुत्रगण सहगानके स्वरमें गायन शुरू कर देते हैं। एक आनेको घासकी गड्डी खिला दीजिए, अभी हट जायगी। और सचमुच गोमाता घासकी गड्डी का प्रसाद पानेके पश्चात् दूसरे यात्रीकी खोजमें चली जाती है! गोमाताको तो पंडोंके इस व्यवसायमें सहायता करनेके कई कारण हो सकते हैं। एक तो यही कि भूखा क्या न करता? दूसरा यह कि माताका पुत्रपर स्वाभाविक प्रेम जो होता है। उसीके खूँटेसे बँधकर उसीको दूध पिलाती हैं, उसीकी घास बिकवाती है। इन सुपुत्रोंकी बुद्धिकी तो केवल दाद ही देते बनती है!"

दूसरे सज्जनने बद्रीनारायणकी तीर्थ-यात्राकी चर्चा आरम्भ की। बद्रीनारायणकी एक शिलाका महात्म्य बताते समय वे एक पौराणिक कथा बतलाने लगे—"श्री ब्रह्माजीने अपनी पुत्री सरस्वतीके रूपपर आसक्त होकर"... —मेरा हृदय क्षोभ और ग्लानिसे भर गया और मैं उठकर चल दी। मेरा विचार था कि विद्याकी देवीका स्त्री-रूप मनुष्यकी पशु-भावनासे अवश्य ही अछूता बचा होगा, पर वह

गुलबकावलीका फूल

एक भ्रम था। जब मुझे इतनी ग्लानि हो उठी, तो जो भक्त इतना भटक-भटककर शान्तिकी खोजमें इन तीर्थस्थानोंमें जाकर पवित्र कथाएँ सुनता होगा, उसके हृदयकी क्या गति होगी? उदाहरण तो इन दो ही तीर्थोंके पर्याप्त हैं। इन तीर्थ-यात्राओंके पश्चात् अपना विक्षिप्त हृदय लेकर जब प्राणी अमरकंटक केवल इस भावनासे पहुँचता है कि अब, जब सब

तीर्थ कर ही लिए, तो इसे भी कर ही डालो, ताकि एक काम ही खत्म हो जाय; तो अमरकंटकका पूर्णतः परिवर्त्तित वातावरण एक साथ फिर उसका हृदय 'एक सच्चिदानन्द-स्वरूप भी है' की भावनासे भर देता है। उसे लगता है कि ईश्वर गगनचुम्बी अट्टालिकाओंमें नहीं रहता। वहाँ तो उसे वह अभी खोज ही आया है। न वह उन ठेकेदारोंके पास है. जो उसे उसके पास ले जानेका दम भरते हैं। उनसे भी वह अभी मिल ही चुका है। वह वहाँ नहीं, उन सबसे दूर अपने पास ही है—इस शांत वातावरणमें। बेचारेको इतना शान्त वातावरण तो मिले, ताकि उसे अपनेमें खोज सके।

विचित्र कंद और जड़ी-बूटियाँ

अमरकंटकके मंदिरमें न रजत है, न स्वर्ण; न रत्नोंकी सीढ़ियाँ हैं, न पारसका पत्थर; न ईश्वरके वे एजेन्ट हैं, जो सीधे ईश्वरके पास ले जानेका दम भरते हैं, न ऐसी सुन्दर मूर्त्ति ही है कि उसकी सुन्दरतामें आप ही भूल जायँ कि इस मूर्त्तिमें सर्वशक्तिमानके किस रूपकी छाया है! न वहाँ स्वर्ण व रत्नके कलश हैं, जिसमें आप ईश्वरको भूलकर यह सोचने लग जायँ कि आखिर इनमें कितना सोना लगा होगा? और फिर इतना सोना लगवाया किसने होगा? और पता नहीं सोना है भी कि पीतल ही? क्या पता निरा
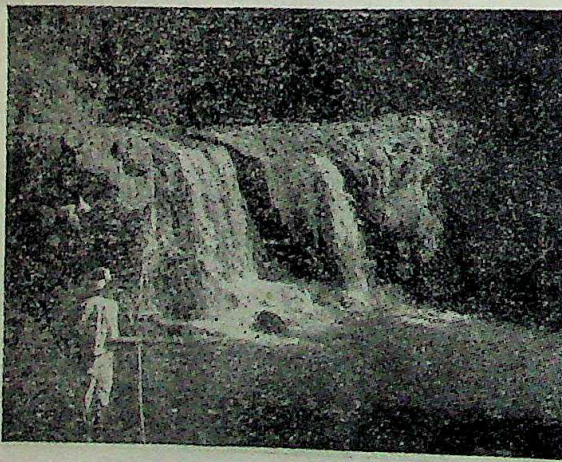
दुग्धधारा

पीतल ही हो। फिर एकसाथ ध्यान आ जाता है कि कहीं मेरे पास भी इतना सोना होता, तो? ईश्वर-प्राप्तिकी इच्छा लेकर मंदिरमें गए थे और स्वर्ण-प्राप्तिकी इच्छासे बाहर आए। अमरकंटकमें विक्षेप नाम-मात्रको भी नहीं है। न वहाँ जिम्याके चाटुकारोंके लिए हलवाईकी दुकानें हैं, न हर समय बटुओंका ध्यान दिलानेवाली अनन्त क्रमसे लगी क्रय-विक्रयके पदार्थोंसे सजी दुकानोंकी दो कतारें हैं। इसके विपरीत एक दो-छोटी-मोटी दुकानें हैं, जिनपर ऐसा विचित्र सामान मिलता है कि जंगलोंमें से खोद-खोदकर व्यापारी तरह-तरहके कन्द निकाल लाते हैं। एक जमींकन्द के रंग तथा पूरे कुम्हड़ेके आकारका कन्द था, जिसे 'पाताल कुम्हड़ा' कहते हैं। कहते हैं कि थोड़ी मात्रामें ही इसका सेवन करनेसे शरीरकी शक्ति तो संचित रहती ही है, पर आहारकी ओरसे रुचि हट जाती है। इसी प्रकार एक और प्रकारका कन्द था। इस प्रकारके भोजनकी ओर विशेष रुचि न होनेके कारण उनके नाम तो अब ठीकसे याद नहीं रहे, पर सम्भवतः उसे 'कन्हैया कन्द' कहते थे। सप्ताहमें एक दिन उसका सेवन कर लिया जाय, तो फिर आहारकी ओरसे पूरी छुट्टी! सात दिन तक भूख ही नहीं लगती! बाहरसे आए हुए साधु-संन्यासी ये कन्द व जड़ी-बूटी खरीदकर ले जाते हैं। वहाँकी गुफाओं, घने जंगलों व कन्दराओंमें रहनेवाले साधु उसी जंगलमें से ये जड़ी-बूटियाँ खोद लाते हैं, जहाँ कि रहते हैं। ब्राह्मी व गुलबकावली की असली बूटियाँ यहीं मिलती हैं, क्योंकि उनमें मिश्रण करनेके लिए नकली बूटी लाकर मिलाना असलीसे अधिक मँहगा पड़ेगा। गुलबकावलीका फूल तो समस्त भारत-भर में यहीं मिलता है। यह आँखोंकी औषधिके लिए अनिवार्य माना जाता है। (आँखोंकी ज्योति क़ायम रखनेके लिए इसे सुरमेंमें डाला जाता है।)

नर्मदाके प्रपात

जहाँ झेलम आदि नदियोंके जन्मदायक स्रोतोंका गति-प्रवाह देखकर एक साथ प्राणी प्रकृतिकी लीला देखकर मन्त्र-मुग्ध-सा रह जाता है, वहाँ नर्मदाका यह पतला नाली-जैसा उद्गम हास्यप्रद-सा लगने लगता है। यही सोचकर कि जब अमरकंटकके नर्मदा-कुंडका इतना माहात्म्य गाया गया है, तो आसपास कुछ रोचकता तो होगी ही, हम दो मील तक उसके किनारे घूमते चले गये, पर अन्तरके रूपमें हमने केवल इतना देखा कि वह नाली आगे जाकर थोड़ी चौड़ी हो गई है। पानी कहीं-कहीं तो जमीनपर पड़े पत्थरोंसे आधा या एक इंच ही ऊपर है, कहीं-कहीं गड्ढे आ जानेसे आकार बढ़ गया है। जहाँ ढाल आ जाय, उसकी बात तो दूसरी है। वैसे प्रवाहका नाम-निशान तक दिखाई नहीं पड़ता शिवरात्रिपर इसी क्षीण नर्मदाके तटपर बड़ा मेला लगता है। लोग स्नान करके अपने जो वस्त्र सुखाते हैं, नर्मदाके सँकरे पाटसे तो वे धोतियाँ ही अधिक चौड़ी लगती हैं! मुझे तो आश्चर्य है कि उन्होंने उस सँकरे पाटपर स्नान कैसे किया होगा, कुण्डमें स्नान करनेकी बात तो समझमें आती है।

अबकी शिवरात्रिके मेलेमें ९०००) चढ़े थे। यात्रियोंकी सुविधाके लिए दो-चार सादी-सी धर्मशालाएँ हैं, पर मेले की भीड़में वे कम पड़ जाती हैं और सभी यात्री कुण्डपर व इस पाटपर ही टिकते और यहीं स्नान करते हैं।

परन्तु वास्तवमें नर्मदामें स्नान करनेका आनन्द तो इसके दो प्रपातोंमें आता है। पहला प्रपात कपिलधारा कहलाता है। सुनते हैं कि कपिल मुनिने यहाँ तपस्या की थी। नर्मदा नदी ठीक बीचमें पड़े हुए दो पदचिन्होंको 'कपिल-पद-चिन्ह' भी कहते हैं। परन्तु वे आकारमें इतने बड़े हैं कि उनको देखकर यह लगता ही नहीं कि वे किसी मानवके हैं। यह स्थान अत्यन्त रमणीय है। पासमें साधुओंकी एक कुटी है—बड़ी शान्तिदायक व स्वच्छ। दो-चार साधु दिखाई भी पड़े। हमें देखनेके पश्चात् हमारा ध्यान आकृष्ट करनेके लिए न उन्होंने ज़ोर-ज़ोरसे चिमटे बजाए न रामधुन ही शुरू की। इसके विपरीत हमें देखकर वे हट गए। प्रपातकी एक पतली-सी धारा नीचे दूर तक एक पत्थरपर गिरती है। वह स्थान इतना गहरा है और वन इतना सघन कि हम नीचे नहीं गए, बल्कि एक और दूसरे प्रपातकी बात सुनकर दो मील और आगे बढ़ गए।

कपिलधारा तक तो जीप जाती थी, पर दुग्धधाराके ये दो मील हमें पैदल ही तय करने पड़े। पहाड़ोंका वन के बीचमें कँकरीला-पथरीला मार्ग अपने उतरानपर था। जाते समय यही सोच रहे थे कि अभी तो उतरान है, बड़ा अच्छा लग रहा है, लौटकर आते समय जब यही मार्ग चढ़ाई पर तय करना पड़ेगा, तब पता चलेगा। दुग्धधाराकी दुग्ध-सी उज्ज्वल तीन धारें देखकर तो इच्छा हुई कि यहाँसे वापस ही न जाया जाय। जब हमारी जीप बार-बार नर्मदा नदीके मोड़के ऊपरसे उसके दो-तीन इंच गहरे जलके ऊपरसे निकलकर आगे बढ़ रही थी, तब चारों ओर सन्तरी की तरह सीधे खड़े हुए पेड़ोंकी सुन्दरता बार-बार ध्यान आकर्षित करती थी। लगता था, नर्मदा प्रहरियोंकी सुरक्षामें जन-क्रीड़ाको निकली हो! यहाँ स्नान करनेका स्थान भी ठीक था और प्रपात भी बहुत गहरा न था। इस स्थानपर स्नानमें जो आनन्द आया, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ऐसा शीतल जल था कि थकान तो जो मिटी, वह मिटी ही, शरीरमें ऐसी स्फूर्ति आ गई कि वह दो मीलकी चढ़ाई, जिसका हमें इतना भय था, चढ़नेके पश्चात भी थकानका नाम तक न था। उस दिन ऐसा भोजन किया, मानो महीनोंके भूखे हों।

दुग्धधाराका वन बड़ा सघन है। इस सघन वनका दर्शन तो हमने अमरकंटक जानेके मार्गसे ही करना शुरू कर दिया था। यात्राके मार्गमें ही मीलोंका सघन वन पार करना पड़ता था। पर्वतके नीचेका जंगल बहुत प्रसिद्ध है, क्योंकि वहाँ एक ऐसा शेर पाया जाता है जैसा कि संसारमें और कहीं नहीं पाया जाता। यह शेर सफ़ेद रंग का होता है और उसपर अन्य शेरोंके समान धारियाँ पड़ी रहती हैं। इसको 'सफ़ेद शेर' कहते हैं। रीवाके महाराजा ने एक ऐसा शेर रीवासे १२ मीलकी दूरीपर अपने विश्राम-गृहमें पाल भी रखा है।

नर्मदाका माहात्म्य

नर्मदा नदीकी ओर देखकर मेरे शून्य हृदयमें भी बार-बार एक प्रश्न उठ खड़ा होता था—आखिर इस सरिताका
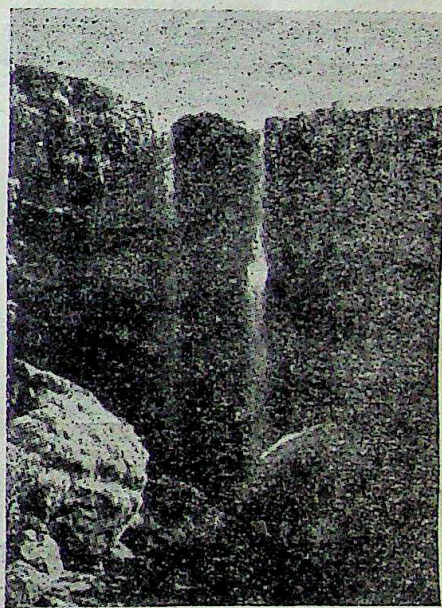
कपिलधारा

इतना माहात्म्य क्यों है? न इसका उद्गम रोमांचकारी है, न इसके प्रवाहमें प्रथम तीन मील तक सरसता है। गुण-गान करनेवाले इसके जलमें अवश्य कुछ विशेषता बताते हैं, पर हमारा विज्ञानसे दूषित हृदय इसे स्वीकार नहीं करता, न हमारी बुद्धि ही इसकी दाद देती है और यही कहकर टाल देगी कि ये गुण उन्हीं आदिवासियोंके लिए हैं, जो शैशवसे ही इस जलमें पले हैं। बुद्धि इस तरह बहक ही रही थी कि इसका माहात्म्य एकसाथ प्रत्यक्ष यों दीखने लगा मानो स्वयं नर्मदा मुझे व्यथित देखकर बोल उठी हो—'मेरी सुन्दरताको ओर न देखो। सुन्दरता तो आती और चली जाती है। मुझमें रोमांचकारी उद्गम की खोज न करो। रोमांचकारी जन्म जीवनके प्रवाहमें सबको नहीं मिलता। वह तो विरलोंके लिए ही है। मैं तो जन-साधारणकी तरह एक

साधारण सरिता हूँ। अगर मैं आज महान् बनी हूँ, तो अपनी निरन्तरताके कारण। मेरा सौन्दर्य है मेरी यही निरन्तरता। मेरा उद्गम क्षीण है, पर है वह निरन्तर। हे साधको, यदि उपासना करते हो, यदि ईश्वरका ध्यान करते हो, तो निरन्तर करो। मेरे प्रवाहमेंसे निरन्तरता निकल जाय, तो मैं अभी रुके हुए जलकी एक झील-सी बन जाऊँ, जो अपने सड़ते हुए जलकी दुर्गन्ध चारों ओर फैलाने लग जाय। तुम अपनी साधनामें से यह निरन्तरता निकाल दो, तो तुम भी जड़-बुद्धि धर्मान्ध बन जाओगे और सारे वातावरणको अपनी स्थगित धार्मिक दुर्गन्धसे दूषित कर दोगे। अपने महान् कलाकारोंसे इसकी महत्ता पूछो। निरन्तर साधनाने ही उन अगुनियोंमें वह शक्ति भरी है, जो निर्जीव वीणाको सजीव कर देती है। यही वह माहात्म्य है, जिसके लिए तीर्थों-महातीर्थोंसे भटककर अन्तमें तुम मेरे पास आए हो!'

सोनभद्र

अमरकंटककी पर्वतश्रेणी नर्मदा ही नहीं, सोनभद्र नामक एक और सरिताकी भी जीवनदायिनी है। इन दोनों सरिताओं--नर्मदा और सोनभद्र--को मनुष्योंने अपनी भावनाग्रसित बुद्धिसे एक कथामें बाँध दिया है। नर्मदा सोनभद्रके प्रेम-पाशमें बँधी प्रणयको चिरकालीन रूप देनेको विवाहके लिए उत्कंठित थी। पर सोनभद्रके किसी और सरितासे अनुचित प्रेमका ज्ञान होनेसे वह उससे जितना प्रेम करती थी, उतनी ही घृणा करने लगी और उससे बिना मिले दूसरी ओरको बह निकली। सदैव अनुचित राहपर चलने-वाले ही अनुचित प्रेमके काल्पनिक स्वादके लिए ऐसी सिनेमा-जगत्‌की-सी थोथी कथाकी कल्पना कर सकते हैं। मुझे तो ऐसी अर्थहीन कथाओंसे इतनी ही नफ़रत है, जितनी शायद नर्मदाको भी सोनभद्रसे न होगी!

रूसकी शान्ति-साधना

राजनीतिका एक विद्यार्थी

नेहरूजीकी रूस-यात्रासे कुछ ही दिन पहले रूसके प्रधान मंत्री बुल्गेनिन, कम्युनिस्ट पार्टीके प्रधान मंत्री ख्रुश्चेव, उद्योग-मंत्री मिकोयन आदिने यूगोस्लावियाकी यात्रा की थी। यह यात्रा उन्होंने यूगोस्लावियाके निमंत्रणपर नहीं, अपनी इच्छासे सूचना देकर की। ऐसा करनेकी आवश्यकता रूसी आक़ाओंको क्यों पड़ी—जिसे ग्रीसके कम्युनिस्ट-मुखपत्रमें छपे वहाँकी कम्युनिस्ट-पार्टीके नेता विदाली के शब्दोंमें 'रूस और पूर्वी यूरोपकी अन्यान्य कम्युनिस्ट-पार्टियोंकी प्रतिष्ठा-प्रभावको कम करनेवाला' बतलाया गया है—इसका कुछ आभास यात्राके बाद निकले संयुक्त वक्तव्यसे मिल जाता है। यद्यपि दोनों पक्षोंने ही इस यात्राके फल-स्वरूप अपनी-अपनी विजयकी घोषणा की है, पर इतना तो स्पष्ट है कि कुछ रियायतें रूसको देनी पड़ी हैं और कुछ जोखिम यूगोस्लावियाने मोल ली है। यह तो सामान्य बुद्धिवाला कोई भी व्यक्ति समझ सकता है कि आखिर अपनी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा-प्रभावको थोड़ा-सा आघात पहुँचाकर भी रूसियोंने जो यह यात्रा की, वह सिर्फ़ यूगोस्लावियासे कूटनीतिक सम्बन्ध सुधारने और उस स्वतंत्र नीतिकी घोषणा करानेके लिए ही तो नहीं, जो कि एक पत्र अथवा प्रतिनिधिके द्वारा भी हो सकता था।

बेईमानका मुँह काला!

'बेईमानका मुँह काला'-मसलकी इतनी सचाई शायद ही और कभी प्रकट हुई हो, जितनी कि रूसियोंकी इस यात्रा और टीटोके सामने नाक रगड़कर अपना थूका हुआ चाटने के रूपमें हुई। प्रथम तो बिना बुलाए यूगोस्लाविया पहुँचे इन मेहमानोंका स्वागत-जैसा कुछ नहीं हुआ। इनके यूगोस्लाविया पहुँचनेसे लेकर और सारी यात्राओं तकमें मार्शल टीटो और यूगोस्लाव जनताके चेहरे सहमे, निर्व्याज और उस गंभीर उपेक्षाके रहे, जो कि किसी भी बेईमान और मिथ्यावादीके प्रति होना स्वाभाविक है। हवाईजहाजसे उतरकर यूगोस्लावियाकी भूमिपर पहला क़दम रखते ही ख्रुश्चेवने अपनी जेबसे मास्कोसे तैयार करके ले जाया गया एक वक्तव्य पढ़ा, जिसका एक अंश इस प्रकार था--"जो-कुछ हुआ है, उसके लिए हमें हार्दिक खेद है और हम उस समय के सारे अभियोगोंको दृढ़ निश्चयके साथ हटा देना चाहते हैं। जहाँ तक हम लोगों का सम्बन्ध है, हम बिना किसी संदेहके यह स्पष्ट बता देना चाहते हैं कि यूगोस्लाविया और रूसके सम्बन्धोंमें उत्तेजना बढ़ानेका जो कार्य हुआ है, वह बेरिया, एबाकुमोव आदि जनताके शत्रुओं द्वारा हुआ है, जिनकी कि बादमें कलई भी खुल चुकी है। उस समय

यूगोस्लाव-सरकारके नेताओंके खिलाफ़ जो गंभीर आरोप और अपमान किए गए, उनकी आधारभूत सामग्रीका हमने ब्योरेवार अध्ययन किया है। तथ्योंसे यह प्रकट होता है कि वह सारी सामग्री जाली थी और जनताके उन शत्रुओं, साम्राज्यवादके उन घृणित एजेंटों द्वारा बनाई गई थी, जो कि धोखेसे हमारी पार्टीमें घुस आए थे।"

इस कथनपर विचार करनेसे पहले ज़रा देखें कि इसकी प्रतिक्रिया टीटोपर क्या हुई? ख्रुश्चेवने सोचा होगा कि इस पहले उद्‌घाटनसे ही टीटो और यूगोस्लावियाके अन्यान्य अधिकारियों तथा कम्युनिस्ट-पार्टीके नेताओंके सारे भ्रम, विरोध, कटुता आदि दूर हो जायँगे और उनका जादू काम कर जायगा। पर जिस तरह टीटो और उनके साथी रूसियोंके झूठे आरोपों और अपमानोंसे विचलित नहीं हुए, उसी तरह इस झूठी स्वीकारोक्ति एवं प्रशंसासे—जिसे शायद कुछ ही दिनों बाद स्वयं ख्रुश्चेव या उनके विरोधी ग़लत और बनावटी कह सकते हैं—भी वे तनिक भी प्रभावित नहीं हुए और जब ख्रुश्चेवने अपने वक्तव्य के बाद टीटोसे माइकको ओर आकर कुछ कहनेका संकेत किया, तो मार्शल टीटोने इस या रूसियोंके स्वागतमें एक शब्द भी न कहकर चलनेके लिए मोटरोंकी ओर इशारा-भर कर दिया! इससे रूसी मेहमानोंके दिलों और दिमाग़ोंपर जो पाला पड़ा, उसका पता तो शायद स्वयं उन्हें ही होगा; पर उनके चेहरोंपर जो मुर्दनी और उदासी छाई, उसका स्पष्ट प्रमाण इस समय लिए गए कुछ चित्र हैं, जो कि यूगोस्लावियाके पत्रोंमें ही छपे हैं, रूसके पत्रोंमें नहीं!

सफ़ेद झूठकी पराकाष्ठा

झूठ, बेईमानी और ग़लतबयानीमें अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें बहुत बदनाम नात्सी और फ़ैसिस्ट प्रचारक भी रूसी कम्युनिस्टोंके सामने निरे बच्चे ही जान पड़ते हैं। स्तालिनके समयमें झूठे आरोपों और अपमानोंका शिकार बनाकर लाखों आदमियोंकी राजनीतिक हत्याएँ हुईं, पर एक रूसीने चूँ तक नहीं की। उनकी मृत्युके बाद अगर मलंकोव और ख्रूश्चेवमें फूट न पड़ती, तो शायद दुनियाके सामने यह बात भी नहीं आती कि जिन आठ डाक्टरोंको इसी पेटेंट तरीकेका शिकार बनाया गया था, वे झूठ और बेईमानीके सिवा और किसीके दोषी नहीं थे। और अब कम्युनिस्ट-पार्टीके प्रधान मंत्री ख्रूश्चेव-जैसे बुजुर्ग और अनुभवी व्यक्तिको भी यह कहते शर्म नहीं आई कि यूगोस्लावियाके खिलाफ़ १९४८ में आरोपों और अपमानोंकी जो गोलियाँ मास्कोसे दागी गई थीं, उनका आधार सौ फ़ीसदी जाली और जनताके शत्रुओं द्वारा बनाया गया था! रूस में कौन जनताका शत्रु है और कौन मित्र, यह जानना बाहरवालोंके लिए और स्वयं रूसकी जनताके लिए भी लगभग असंभव है। यदि कल मलंकोव या कोई अन्य व्यक्ति सत्तारूढ़ होकर सफलतापूर्वक स्तालिनकी खाल ओढ़कर अपना चमत्कार दिखा सके, तो असंभव नहीं कि ख्रूश्चेव और बुल्गेनिन तथा इनका गिरोह भी जनताका शत्रु ही सिद्ध किया जाय। ख्रूश्चेव खुद शायद महसूस नहीं कर पाए होंगे कि टीटोको खुश करनेको अपने विरोधियों एवं प्रतिद्वन्द्वियोंकी एक झूठ और बेईमानीका भंडा फोड़कर करनेके लिए उन्होंने जिस सफ़ेद झूठका सहारा लिया, उससे उन्होंने रूसी जनताकी दयनीय असहायावस्था तथा पार्टी और शासनके यंत्रों द्वारा होनेवाली बेईमानियों और ज्यादतियोंकी पोल भी स्वयं ही खोल दी है। पर यह कोई नई बात भी नहीं है, क्योंकि आज दुनिया रूसियोंकी असलियतसे बखूबी परिचित हो चुकी है।

ख्रूश्चेवका उपर्युक्त कथन सौ फ़ीसदी सफ़ेद झूठ इसलिए है कि जून १९४८ की कोमिनफार्मकी उस मीटिंगका, जिसमें कि टीटोके खिलाफ़ (यूगोस्लाव-सरकारके नेताओंके खिलाफ़ नहीं, जैसा कि ख्रूश्चेवने कहा है) कार्यवाही की गई थी, जो विवरण रूसी पत्रोंमें छपा था, उसके अनुसार उसमें बल्गेरियन वर्कर्स (कम्युनिस्ट) पार्टीके टी० कोस्तोव और बी० शेर्वेकोव; रूमानियन पार्टीके जी० ज्योर्ज्यूदेज, वी० लूकाज और आना पोकर; हंगेरियन पार्टीके राकोसी, फारकाज और ग्रेको; पोलिश पार्टीके जे० बूमान और ए० ज़वादस्की, फ्रांसकी पार्टीके जे० डूक्लोस और ई० फैजों; चेकोस्लोवाक पार्टीके स्लेंस्की, सिरोकी और बारेस; इटालियन पार्टीके तोगलियात्ती और सियोचिया तथा रूसी कम्युनिस्ट-पार्टीके ज़डेनव, मलंकोव और सुस्तोव उपस्थित थे। बेरिया की उपस्थितिका कहीं कोई उल्लेख नहीं है। इसके अलावा इस मीटिंगमें सर्वसम्मतिसे पास हुए प्रस्तावका मसविदा स्तालिन, मलोतफ़ बुल्गेनिन, ख्रुश्चेव, वरोशिलफ़ आदिने स्वीकृत किया था। उस खानगी मीटिंगमें भी बेचारे बेरियाकी कहीं छाया तक न थी। और यह सर्वविदित है कि बेरिया और एबाकुमोव कोई राजनीतिज्ञ या मतवादी पंडित नहीं थे। उन्हें स्तालिनने सुरक्षा-पुलिसका अध्यक्ष इसलिए बना रखा था कि जिन लोगोंकी पार्टी द्वारा राजनीतिक हत्या होती थी, उनके शरीर और आत्माको एक-दूसरे से मुक्त करनेका काम इन्हें सौंपा जाता था। अगर ख्रुश्चेव

के कथनको एक क्षणके लिए सत्य मान भी लें, तो क्या यह संभव था कि बेरियाकी अनुपस्थितिमें ही न केवल रूसके, बल्कि अन्य कम्युनिस्ट देशोंके प्रतिनिधियोंने भी आँख मूँदकर युगोस्लाविया-संबंधी जाली प्रस्तावको स्वीकार कर लिया ? और क्या यूगोस्लावियासे हुए विस्तृत पत्र-व्यवहारकी ज़िम्मेदारी भी बेरियापर ही थी ? क्या ख्रुश्चेव दुनियाको यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि इतने बड़े देशके चोटीके नेता, कोमिनफार्मका संगठन और रूसके मतवादी पण्डित सब-के-सब सुरक्षा-पुलिसके मुखियाके इशारे पर ही नाचते रहे हैं ? क्या वे दुनियाको यह बताना चाहते हैं कि जनताके शत्रु और साम्राज्यवादके एजेंट रूसमें इतने प्रभावशाली हैं ? ख्रुश्चेवकी यह सफेद झूठ रूसकी मौजूदा व्यवस्थापर कितनी बड़ी टिप्पणी है, इसका पाठक सहज ही अनुमान कर सकते हैं।

जीत किसकी हुई ?

पर इतना बड़ा झूठ बोलकर, अपनी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा-प्रभावकी इतनी हानि सहकर थूका हुआ चाटकर भी रूसने क्या खोया-पाया, इसका कुछ अनुमान दोनों देशों की ओरसे निकले संयुक्त वक्तव्यसे ही लगाया जा सकता है। रूसी चाहते थे कि यूगोस्लावियाके साथ मतवादी आधारपर समझौता हो—अर्थात् यूगोस्लावियाकी कम्युनिस्ट-पार्टी रूसकी कम्युनिस्ट-पार्टीके साथ अपने सम्बन्ध सुधारे—और शायद इसीलिए यूगोस्लेविया गए शिष्टमण्डलके नेता रूसके प्रधान मंत्री बुल्गेनिन नहीं, बल्कि कम्युनिस्ट-पार्टीके प्रधान मंत्री ख्रुश्चेव ही हुए। पर टीटो इसपर राज़ी नहीं हुए। उन्होंने कहा कि जो कुछ भी तय होगा, वह दोनोंकी सरकारों द्वारा ही। इसीलिए टीटोने ६० करोड़ डालर हर्जाना मिलने और रूसमें क़ैद या रोके गए यूगोस्लाव नागरिकों एवं बंदियोंकी वापसीकी माँग की और ख्रुश्चेवने यूगोस्लावियाके मजदूरों द्वारा कल-कारखानोंकी व्यवस्था किए जाने, ट्रेड यूनियन आंदोलन और पार्टीकी व्यवस्था आदिमें दिलचस्पी दिखलाई। राजनीतिक दृष्टिसे स्पष्टतया यह मार्शल टीटोकी जीती है, क्योंकि उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि (अ) साम्यवादी व्यवस्था लानेका एकमात्र रूसी ढंग ही नहीं, और भी ढंग हो सकते हैं तथा (ब) उस व्यवस्थाके लिए कार्य करनेको जनता और मज़दूरोंकी स्वतन्त्रताका १०० फ़ीसदी अपहरण करना और उन्हें एक फौलादी तानाशाही के कठघरेमें कसकर रखना अनिवार्य नहीं। यूगोस्लावियाके पेरिस-स्थित राजदूत बेबलरके लड़के और कुछ अन्य युवकों—जिन्हें रूसमें निःशुल्क मार्क्सवादकी शिक्षा देनेके लिए ले जाया गया था और रूस-यूगोस्लाव मतभेदके बाद जिन्हें रूसने ज़बरदस्ती रोक रखा है—की वापसीकी माँगकर टीटोने रूसी नेताओंपर यह भी प्रकट कर दिया कि तथाकथित कम्युनिस्ट होकर भी रूसी नेताओंकी अपेक्षा वे मानवीय अधिकारों एवं मानवताका अधिक आदर करते हैं। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिकी अन्य समस्याओं के बारेमें दोनोंने अपनी-अपनी नीतिकी जो घोषणा की है, उसमें तो कोई खास उल्लेखनीय या नई बात नहीं है। मार्शल टीटोने जहाँ चीनके संयुक्त राष्ट्रसंघका सदस्य बनाए जानेका समर्थन किया है, वहाँ उन राष्ट्रोंकी सदस्यताका भी समर्थन किया है, जिनका रूसकी ओरसे विरोध हो रहा है। इस प्रकार यद्यपि मार्शल टीटोने रूसके साथ सहयोग करनेकी स्वीकृति दी है, पर अपनी शर्त्तोंपर और बड़ी सतर्कतासे। यूगोस्लावियाने सारे अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों और उनके निर्णयोंको संयुक्त राष्ट्रसंघके तत्वाधानमें सौंपे जाने पर ज़ोर देकर तथा फौजी समझौतोंसे तनातनी बढ़ती है, युद्धका खतरा बढ़ता है और राष्ट्रोंमें परस्पर विश्वासकी हानि होती है आदि बातें स्पष्टकर रूसी दावों और क़दमोंके प्रति एक परोक्ष चेतावनी भी दी है।

ऊपरी दृष्टिसे रूसी नेताओंकी यूगोस्लाविया-यात्रासे अर्थनीतिक और राजनीतिक लाभ चाहे यूगोस्लावियाको हुआ हो (और रूसको शायद कुछ राजनीतिक हानि भी हुई हो), पर फौजी दृष्टिसे उनकी यह यात्रा उनके लिए कम लाभदायक नहीं रही। पता नहीं वे कहाँ तक यह आशा करते होंगे कि यूगोस्लावियाको फिर कोमिनफार्ममें लिया जाय अथवा पूर्वी यूरोपीय गुट्टमें शामिल किया जाय; पर इतना तो वे अवश्य चाहते होंगे कि यदि वे यूगोस्लावियाको अपने अधीन या साथ न कर सकें, तो कम-से-कम उसे अपने विरोधियोंका भी साथ न देनेके लिए तो राज़ी कर ही लें। और यद्यपि यूगोस्लावियाने पाश्चात्य राष्ट्रोंको यह आश्वासन दिया है कि रूससे हुई बातचीतके फल-स्वरूप उसके उनके साथके सम्बन्धोंपर कोई असर नहीं पड़ेगा, तथापि रूसके खिलाफ़ किसी पाश्चात्य गुट्टका साथ भी वह नहीं देगा, यह भी उतना ही सुस्पष्ट है। यूगोस्लावियाका बारबार यह कहना कि तुर्की और ग्रीसके साथ हुए बल्कान-पैक्ट-संबंधी अपने वादोंको पूरा करनेमें वह स्वतन्त्र होगा, इस बातका द्योतक है कि अब उसका रूस या कम्युनिस्ट-गुट्टका विरोध उतना गहरा और कड़ा नहीं होगा, जितना कि उस पैक्टपर हस्ताक्षर करनेके समय था। इसप्रकार जिस बल्कान-पैक्टको पाश्चात्य राष्ट्र नाटोका छुटभाई समझ रहे थे, वह एक तरहसे प्रभावहीन हो गया है। रूसी तो यही चाहते हैं कि हेलसिंकीसे बेलग्रेड तकका क्षेत्र तटस्थ रहे—अर्थात्

दोनोंमें से किसी भी गुट्टके प्रभावमें न रहे; ताकि यदि कभी लड़ाई छिड़े, तो रूसको दो मोर्चोंपर न लड़ना पड़े। साथ ही जर्मन-समस्याके हल, एक-दूसरेके आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने और हर देशके स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी उन्नति करनेके सिद्धान्तको स्वीकार कर अप्रत्यक्ष सहयोग द्वारा भी यूगोस्लावियाने न सिर्फ रूसके शान्ति-प्रयत्नके अनुकूल वातावरण बनानेमें ही सहायता दी है, बल्कि उसकी सचाईकी परख करनेकी स्थिति भी पैदा की है। साथ ही टीटोने परोक्ष रूपसे रूस-यूगोस्लावियाके झगड़ेसे रूसके पूर्वी साम्राज्यमें फैली भ्रान्ति, बेचैनी और अविश्वासको एक हदतक दूर करनेमें भी सहायता पहुँचाई है। इस प्रकार रूस पहलेकी अपेक्षा आज अपने निकट पड़ोसियोंके सम्बन्धमें अधिक निश्चिन्त और स्वयं अपने-आपको अधिक सुरक्षित महसूस कर रहा है।

भारत और रूसके सम्बंध

रूसकी सुरक्षाकी दृष्टिसे यूरोपमें जो स्थान और महत्व यूगोस्लावियाका है, उससे कहीं महत्तर स्थान एशिया और विश्वमें भारतका है। इसीलिए कलतक मास्को-रेडियो और पत्रों द्वारा टीटोसे भी बुरी-बुरी गालियाँ जिन नेहरूजीको दी जाती रही हैं, उनका रूसमें वह भव्य स्वागत हुआ, जो आज तक किसी विदेशीका न हुआ होगा। इस अतिके पीछे रूसकी यह कूटनीतिक चाल है कि नेहरूजी को अगर अपने गुट्टमें शामिल न कर सके, तो यह विश्वास तो दिला ही दे कि वह शांति चाहता है और पंच-शिलाका पूरा समर्थक है! मास्कोमें हुई सार्वजनिक सभामें नेहरूजीके बाद बुल्गेनिनने जो भाषण दिया, उसमें यह सिद्ध करनेका प्रयत्न था कि उनके और रूसी नेताओंके विचारोंमें कोई अन्तर नहीं है! दोनोंके हस्ताक्षरोंसे निकले संयुक्त वक्तव्य में इस बातपर खुशी प्रकट की गई है कि दोनों देशोंके सम्बन्ध मैत्री और एक-दूसरेको ठीक-ठीक समझनेकी भित्तिपर आधारित हैं। मैत्री और समझकी यह भित्ति हठात् रातों-रात कहाँसे और कैसे तैयार हो गई, यह हमारे लिए विचारणीय है। अभी कल तक तो रूसवाले न सिर्फ गांधीजी को ही ब्रिटिश साम्राज्यवादका एजेंट और जनताका शत्रु कहते थे, बल्कि नेहरूजी और उनके शासनको भी रूसियोंकी आँखोंमें गिरानेको झूठ और गलतबयानीका सहारा लेते रहे हैं। कुछ उदाहरण देखिए :

१९४८-५१ में यूजेन वरगाजने 'बेसिक प्राब्लम्स आफ़ इकनामी एण्ड पालिसी आफ़ इम्पीरियलिज्म' नामसे एक पुस्तक लिखी थी, जो १९५२-५३ में स्तालिनकी 'इकनामिक प्राब्लम्स इन यू० एस० एस० आर०' की रोशनीमें दोहराई गई। इसमें भारतके सम्बन्धमें कई जगह उल्लेख किया गया है। नेहरूजीके सम्बन्धमें एक उल्लेख देखिए--"इंडियन नेशनल कांग्रेसके सभापतिकी हैसियतसे नेहरूने १९२४ में कहा था 'औपनिवेशिक दरजेका अर्थ यह होगा कि मुट्ठी-भर भारतीयोंके हाथोंमें कुछ छूँछी शक्ति आ जायगी और जनताका दमन तथा शोषण और अधिक होगा। आज़ादीका हमारा मतलब ब्रिटिश शासन और ब्रिटिश साम्राज्यवादसे पूरी मुक्ति है।' २३ साल बाद नेहरू भारतीय उपनिवेशके प्रधान मंत्री बन गए। इससे भारतीय जनताकी स्थितिमें कोई अन्तर नहीं आया। भारत-सरकारने, जोकि ज़मींदारों और बुर्जुआ वर्गकी है, जनता और उसके प्रगतिशील तबकेके खिलाफ़ एक आतंकवादी शासन स्थापित कर रखा है। ब्रिटिश साम्राज्यवादके मुक़ाबलेमें आज जनताका शोषण कम नहीं हो रहा है। जेलोंमें ज़रूरतसे ज्यादा भीड़ है। जिन मेहनतकशोंको ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंने जेलोंमें ठूँस दिया था, 'स्वतन्त्र भारत' में उन्हें फिर पकड़ लिया गया है।" (पृष्ठ ३६२-६३)

"जनताका दमन करनेवाले ज़मींदार और भारतीय बुर्जुआ ही आज दक्षिणी एशियामें पूँजीवाद के मुख्य समर्थक हैं।" (पृष्ठ १७६)

"अब भारतमें प्रतिगामी बुर्जुआ और ज़मींदारोंकी मार्फ़त ब्रिटिश साम्राज्यवाद शासन कर रहा है।" (पृष्ठ १७६)

"भारतीय बुर्जुआ वर्गके प्रमुख व्यक्तियों--नेहरू, जिन्ना आदि--ने सुविधा-प्राप्त ब्रिटिश विश्वविद्यालयोंमें शिक्षा पाई है। नेहरू अपनी मातृभाषा हिन्दुस्तानीसे भी अँगरेजी ज्यादा अच्छी बोलते और लिखते हैं। पर भारतीय जनता कभी भी ब्रिटिश आधिपत्यमें खुश नहीं रही और उन्हें सदा घृणा ही करती रही।" (पृष्ठ ३५४)

भारत द्वारा समय-समयपर की गई साम्राज्यवाद-विरोधी घोषणाओंका कारण बतलाते हुए लिखा गया है कि "चीनी जनताको क्रान्तिमें मिली सफलताने भारतीय जनता में गहरी सहानुभूति पैदा की।" (पृष्ठ ३७४)। "पर यदि हम भारतके आधुनिक शासकों द्वारा की गई इन साम्राज्य-विरोधी घोषणाओंका विश्लेषण करें, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ये घोषणाएँ चीन और कोरिया-संबंधी ब्रिटिश नीतिके ही अनुकूल हैं। यह बात नेहरू द्वारा ईरानके तेलके संबंध में ब्रिटेनसे समझौता कर लेनेको मुसद्दिककी दी गई सलाहसे जाहिर है। ब्रिटेनने चीनी जनतंत्रको अपने व्यापारिक स्वार्थ और तीसरा विश्व-युद्ध टालनेकी इच्छासे मान्यता दी, किन्तु नेहरूने इसे अपनी साम्राज्यवाद-विरोधी नीति बतलाया।" (पृष्ठ ३७४)

"अपने भाषणोंमें कांग्रेसके नेताओंने साम्राज्यवाद-विरोधी लफ़्फ़ाजीका प्रयोग किया, परन्तु वे हमेशा चाहते यही रहे कि जनतंत्रात्रिक-क्रांतिकारी आधारपर मिलनेवाली सच्ची आज़ादीके मुक़ाबलेमें सामन्त-बुर्जुआ आधारपर ब्रिटिश साम्राज्यवादसे समझौता कर लें।" (पृष्ठ ३५६)

"भारतके शासक वर्गोंका नेतृत्व निःसंदेह देशको साम्राज्यवादी कैम्पमें शामिल करनेमें पूर्णतया सहमत है, यह वहाँ हो रहे कम्युनिस्टोंके दमनसे साबित होता है। पर सामान्यतया साम्राज्यवाद और ख़ास तौरपर ब्रिटिश साम्राज्यवादके खिलाफ़ समूची भारतीय जनतामें गहरी घृणा होनेसे भारतको साम्राज्यवादी कैम्पमें शामिल नहीं किया जा रहा। इसीलिए नेहरूने यह घोषणा की है कि भारत एक स्वतंत्र वैदेशिक नीति बरत रहा है और वह दोनोंमें से किसी भी कैम्पके साथ नहीं है, वह तो शान्ति चाहता है।" (पृष्ठ ३७९)

स्थानाभावके कारण हम और अधिक उद्धरण नहीं दे सकते। ऊपरके कुछ उद्धरणोंसे पता चलता है कि रूसके मौजूदा अधिकारियोंका गाँधीजी, नेहरूजी, कांग्रेस और भारतकी स्वतंत्र वैदेशिक नीतिके बारेमें क्या रुख और दृष्टि रही है। आगे चलकर लेखकने भारतीय कांग्रेस और उसके नेतृत्वकी तुलना कुओमिन्तांग तथा च्यांगके गुट्टसे की है। इस पृष्ठभूमिमें पाठक ज़रा मास्कोमें नेहरूजी और भारतकी वैदेशिक नीतिकी हुई प्रशंसाके शब्दोंपर ग़ौर करें और देखें कि दोनोंमें कितना विपर्यय है! दोनोंमें से सच कौन-सी बात है, यह जाननेकी माथा-पच्ची करना व्यर्थ है। हाँ, इतना तो कहना ही पड़ेगा कि मास्कोमें नेहरूजीके स्वागतमें हुए भोजों और प्रदर्शनियोंमें जो बातें कही गई हैं, वे कूटनीतिकी हैं; जब कि रूसके मतवादी रुख और दृष्टिका प्रतिनिधित्व तो उपर्युक्त उद्धरण ही करते हैं। वैसे रूसी कम्युनिस्टोंके लिए कुछ भी कहकर कभी भी मुकर जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं।

रूसी घोषणाओंकी कसौटी

यथार्थमें रूसी नेताओंसे नेहरूजीकी क्या-क्या बातें हुईं, इस सम्बन्धमें कुछ न ज्ञात हुआ है और न शायद कभी प्रकाश्य रूपसे हो ही सकेगा। मोटे तौरपर नेहरूजीने यही बताया है कि रूसी शान्ति चाहते हैं, अन्तर्राष्ट्रीय तनातनी कम करना चाहते ह, निःशस्त्रीकरण चाहते हैं, फारमोसा, हिन्द-चीन, जर्मनी आदिकी समस्याका शांतिपूर्ण हल चाहते हैं और बाण्डुंग-सम्मेलनमें स्वीकृत अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारके १० सिद्धान्तोंको स्वीकार करते हैं। कौन ऐसा राष्ट्र है, जो आज इन्हीं शब्दोंमें इन्हीं बातोंको नहीं मानता या कहता? फिर भी आखिर अशान्ति, अविश्वास और तनातनीका वातावरण क्यों है? इसीलिए न कि आजके राष्ट्र-नेताओंकी कथनी और करनीमें आकाश-पातालका अन्तर है। नाटो और सीटो-समझौतोंपर रूसने बहुत हो-हल्ला मचाया। पर उसने चीनसे और हाल हीमें पूर्वी यूरोपके राष्ट्रों (जिन्हें आज रूसी उपनिवेश कहना ज्यादा ठीक होगा) से जो फौजी समझौते किए हैं, क्या वे महज़ शान्ति-रक्षाके लिए हैं? अपना थूका हुआ चाटकर यूगोस्लोविया और भारतकी आज वह जिस तरह चिरौरी कर रहा है, क्या वह सिर्फ़ शान्तिके लिए ही? जिस अति और उग्रताके साथ आज वह शान्तिका प्रोपेगेंडा कर रहा है, वह शान्तिसे ज्यादा जनतंत्र-विरोधी—और खासकर अमरीका-विरोधी—ज़हर उगलना ही है। 'शांति' शब्दके सिवा इसमें और युद्धके प्रोपेगेंडामें कोई अन्तर नहीं। भाषा, भावना और वातावरणसे शान्तिकी अपेक्षा इस प्रोपेगेंडामें अशान्ति, घृणा, कटुता आदिकी बू ही अधिक आती है। रूसके और उसके द्वारा गुलाम बनाए गए तथाकथित कम्युनिस्ट देशोंके बाहर यह प्रोपेगेंडा कम्युनिस्ट-पार्टियाँ करती हैं। पर जो सबसे ऊँची आवाज़में शान्तिका नाम ले, वह यथार्थमें शांति चाहता हो है, यह कोई ज़रूरी तो नहीं। और सच तो यह है कि कम्युनिस्ट देशों या ग़ैर-कम्युनिस्ट देशोंमें इनके पाँचवें दस्तोंके सिवा शान्तिका इतना उग्र प्रोपेगेंडा कहीं नहीं हो रहा। इसका अर्थ यह तो नहीं कि अन्य सब देश शांति नहीं चाहते या केवल युद्ध ही चाहते हैं। रूसमें तो जैसे यह अपने देशवासियोंसे ज्यादा विदेशियोंको प्रभावित करनेके उद्देश्यसे ही हो रहा है। नेहरूजीका इससे प्रभावित होना इस प्रोपेगेंडा-वृत्तिकी सफलताका सबसे बड़ा प्रमाण है!

लगभग १० वर्ष पूर्व चर्चिलने कहा था कि रूस युद्ध नहीं, बल्कि उसके फल चाहता है। 'मैंचेस्टर गार्जियन' के शब्दोंमें रूसकी आजकी नीति यह है कि वह शान्ति नहीं, बल्कि शान्तिके फल चाहता है। और उसके अपने तर्कके अनुसार बांडुंग-सम्मेलनमें पास हुए सिद्धान्तोंको तो वह मानता है; पर फारमोसा, हिन्दचीन, जर्मनी आदिकी समस्याएँ उस तरह ही हल होनी चाहिएं, जिस तरह कि वह उनका हल चाहता है—अन्यथा अन्तर्राष्ट्रीय तनातनीके कम होने या विश्व-शान्ति बनी रहनेमें उसकी कोई ज़िम्मेदारी नहीं। उसकी कथनी और करनीकी यह खाई प्रोपेगेंडासे पाटना बड़े-से-बड़े जादूगरके भी बसकी बात नहीं। यह काम तो रूसके राजनेता स्वयं अस्वाससे ही कर सकते हैं—बशर्ते कि वे सचमुच शान्ति चाहते हों।

शैलीकार बेनीपुरी

प्रो० रामखेलावन राय

हमारे देशसे अभी पण्डितराज जगन्नाथ और राजशेखर की परम्परा मिटी नहीं है। यह दुर्भाग्यका विषय है कि जबतक ऐसे मनीषी हमारे बीच रहते हैं, तबतक हम उनका यथार्थ मूल्यांकन नहीं कर पाते। 'अति परिचयादवज्ञा' एक साधारण मानव-धर्म है। जब पण्डितराजने कहा था— 'उत्पत्स्यते सपदि कोऽपि समानधर्मा, कालो ह्ययं निरवधिः विपुला च पृथ्वी', तो उनके समकालीन विद्वानोंने उनकी खिल्ली उड़ाई थी, और पण्डितराज शिवकी भाँति हलाहलका पान कर गए थे। वस्तुतः विद्वानके पास उसकी विद्वत्ताका गौरव होना ही चाहिए। हाल हीमें जब श्री बेनीपुरीजीने यह कहा कि 'नाविकके तीर छोटे होते हैं, किन्तु घाव गंभीर करते हैं। नाविकके तीरके एकमात्र अधिकारी बिहारीलाल ही नहीं थे, शायद ज़माना कहेगा, किसी ज़मानेमें कोई बेनीपुरी भी था।' ('मैं कैसे लिखता हूँ ?') । तो कुछ लोगोंके बीच चर्चाका विषय बन गया। कई लोगोंने तो दबे स्वरमें इसका मज़ाक भी उड़ाया। किन्तु 'क़लमके जादूगर'को भला इन क्षुद्र आक्षेपोंपर ध्यान देनेके लिए अवसर ही कहाँ है ? उसकी लेखनी पहाड़ी निर्झरिणीके समान अप्रतिहत वेगसे आगे बढ़ती ही जा रही है।

बेनीपुरीजी लगभग सत्तर पुस्तकोंके लेखक हैं; जिनमें बाल-साहित्यको यदि पृथक् भी कर दिया जाय, तो लगभग पचास पुस्तकें शेष रह जाती हैं। इनके अतिरिक्त दिनों-दिन उनकी लेखनीकी गति क्षिप्रतर होती जा रही है और पता नहीं उनके विशाल भावकोशमें अभी कितनी चीजें दुनियाका प्रकाश देखनेके लिए छटपटा रही हैं। इस परिणत वयसमें भी उनकी कार्यक्षमता तथा असीम रचना-शक्ति देखकर चकित रह जाना पड़ता है। हिन्दी-साहित्यके वर्तमान युगके शैलीकारोंमें बेनीपुरीजीका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। विशेषकर शब्दचित्रके क्षेत्रमें तो इनकी प्रतिभा अप्रतिम है। इनके शब्दचित्रोंके संबंध में श्री बनारसीदास चतुर्वेदीने कहा है कि 'यदि हमसे प्रश्न किया जाय कि आजकल हिन्दीका सर्वश्रेष्ठ शब्दचित्रकार कौन है, तो हम बिना किसी संकोचके बेनीपुरीका नाम उपस्थित कर देंगे।' राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजीके शब्दोंमें 'बेनीपुरीजीकी लेखनी जादूकी छड़ी है।' पं० माखनलाल चतुर्वेदीकी दृष्टिमें 'वह फौलाद उगलती है।'

किसी भी लेखककी शैलीका विवेचन मुख्यतः दो रूपों में किया जाता है—वाह्य एवं आभ्यंतरिक। किन्तु भारतीय साहित्यशास्त्रमें शैलीके विवेचनमें कोई इस प्रकार का विभाजन स्वीकार नहीं किया गया है। भारतीय पद्धतिमें यों तो शैलीके नामसे पृथक् कुछ भी नहीं कहा गया है, फिर भी रीति, गुण एवं अलंकारोंकी गणना हम इसके

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

अन्तर्गत कर सकते हैं। रीति-सिद्धान्तको 'वाद' के रूपमें स्वीकार करनेवाले आचार्य वामनने इसे काव्यकी आत्मा माना है। वामनके पूर्व केवल दो रीतियों (वैदर्भी और गौड़ीय) का अस्तित्व था, जिनके आविष्कारक थे भामह एवं दण्डी। वामनने पांचाली नामक एक तीसरी रीतिका आविष्कारकर रीतियोंकी संख्या तीन कर दी। ये तीन रीतियाँ वस्तुतः काव्यके तीन गुणोंपर आधारित हैं। वैदर्भीमें माधुर्य गुणकी प्रधानता होती है तथा गौड़ी-पांचाली में क्रमशः ओज एवं प्रसादका प्राधान्य होता है। अतः गुणों और रीतियोंमें हम सरलतासे ऐक्यकी स्थापना कर

सकते हैं। वस्तुतः गुणोंके आधारपर ही इन रीतियोंका विभाजन भी हुआ है। समासकी न्यूनता या बहुलता भी गुण-विशेषकी उपस्थिति-अनुपस्थितिका ही परिणाम है। मनोविज्ञानके अनुसार भी यही सत्य है। मनोविज्ञान के पंडितोंने भी मनकी तीन ही स्थितियाँ मानी हैं और ये स्थितियाँ अभिनव गुप्तद्वारा वर्णित चित्तकी तीन अवस्थाओं (द्रुति, दीप्ति और व्याप्ति) से प्रायः साम्य रखती हैं। अभिनव के अनुसार गुण चित्तकी अवस्थाको ही कहते हैं और चित्त की तीन अवस्थाओंके अनुसार गुण भी तीन ही हैं। चित्त की द्रवितावस्थाको माधुर्य, दीप्तावस्थाको ओज और व्यापकावस्थाको प्रसाद कहते हैं। पश्चिमके काव्यशास्त्रियोंने शैलीके लिए जिन गुणोंको अनिवार्य माना है, उनमें स्वच्छता, सरलता, मर्मस्पर्शिता, प्रभावोत्पादकता तथा लालित्य मुख्य हैं। किन्तु पश्चिमके आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट ये गुण भी माधुर्य, ओज और प्रसादमें अन्तर्भुक्त हो जाते हैं। तात्पर्य यह कि शैलीके मूलाधार मुख्यतः माधुर्य, ओज और प्रसाद ये ही तीन गुण हैं।

बेनीपुरीजीकी रचनाओंमें माधुर्य, ओज और प्रसाद इन तीनोंकी एक अद्भुत त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है। ये तीनों गुण अपनी पूर्ण शक्तिके साथ इनके साहित्यमें वर्तमान हैं। माधुर्यका एक छोटा-सा उदाहरण देखिए—"वेदना जब संगीत बन जाय, व्यथा जब रागिनीका रूप धारण करे, प्रेमकी सार्थकता तब सिद्ध होती है।" (अंबपाली, पृ० ४६)। 'गेहूँ और गुलाब' के अधिकांश चित्र माधुर्यसे ओत-प्रोत हैं। ओजसूसे युक्त पंक्तियाँ हमें 'अम्बपाली' नाटकमें विशेष रूपमें उपलब्ध होती हैं। अजातशत्रु द्वारा वैशालीपर आक्रमण होनेपर अंबपाली नागरिकोंको संबोधित करती हुई कहती है—"क्या कहते हैं, अगर वह भिक्षु हो चुका, तो वह हमपर क्यों चढ़ दौड़ा है? क्या भिक्षुओंकी सेना तलवार लेकर चलती है? गाँवोंको जलाती है? फसलों को रौंदती है और आदमीके खूनसे ज़मीनको सींचती है?" (अंबपाली, पृ० ६३)। इसी प्रकार महामात्य चेतक द्वारा कर्तव्य-ज्ञानका उपदेश सुननेके बाद अंबा कहती है—"वैसा ही होगा महामात्य। अंबपाली सिद्ध कर देगी, वह गौरी ही नहीं, दुर्गा भी है। वह सोहनी ही नहीं, भैरवी भी सुना सकती है।" (अंबपाली, पृ० ६०)

और प्रसाद गुणसे तो बेनीपुरीजीका सम्पूर्ण साहित्य ही भरा पड़ा है। वस्तुतः पश्चिमके साहित्य-विशारदोंने शैलीके लिए जिस स्वच्छता एवं स्पष्टताका होना अनिवार्य माना है, उसका चमत्कार प्रसाद गुणमें ही देखनेको मिलता है। प्रसाद गुणकी परिभाषा देते हुए मम्मटने कहा है—

शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः
व्याप्नोत्यन्यत प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः।
(काव्यप्रकाश : अष्टम उल्लास)

अर्थात् शुष्क ईंधनमें अग्निकी भाँति अथवा स्वच्छ वस्तुमें जलकी भाँति क्षिप्रतासे व्याप्त हो जानेवाली वस्तुको प्रसाद गुण कहते हैं। इस गुणकी स्थिति सभी रसों और भावों में हो सकती है। बेनीपुरीजीकी विशेषता यह है कि ये गंभीर-से-गंभीर तथ्यको भी प्रसादमयी शैलीमें व्यक्त कर उसे सर्वसाधारणके लिए बोधगम्य बना देते हैं। 'गेहूँ और गुलाब' में उनकी पनिहारिन कहती है—"भगवान् मुझसे अब यह गागर ढोई नहीं जाती, मेरी रक्षा करो। या तो मेरे सिरसे यह गागर उतारो, या अपनी इस विराट् गागर-विश्वको फोड़ दो!" निस्सन्देह इस प्रसाद गुणके कारण ही इनकी रचनाओंमें इतनी प्रभावोत्पादकता आ गई है।

वैयक्तिकताकी छाप

किन्तु बेनीपुरीजीकी लेखन-शैलीकी सबसे बड़ी विशेषता है उसपर उनकी वैयक्तिकताकी अमिट छाप। किसी भी लेखककी शैलीमें उसका वैयक्तिक तत्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। इसी तथ्यको दृष्टिमें रखकर बफनने कहा है कि 'शैली ही व्यक्ति है। जिस प्रकार हम अपने किसी मित्र की आहट पाते ही उसे पहचान लेते हैं, ठीक उसी प्रकार हम किसी भी लेखककी दो-चार पंक्तियाँ पढ़कर ही कह सकते हैं कि यह अमुक लेखककी कृति है।' भाषाके वैयक्तिक प्रयोगके कारण ही ऐसा कहा जाता है। बेनीपुरीजीने इस वैयक्तिक विशेषताके कारण हिन्दी-साहित्यके शैलीकारों में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। इनके तूफ़ानी जीवनके पारिणाम-स्वरूप इनकी भाषा भी उच्छल-चंचल उन्मद है। उसमें जवानीकी ताज़गी और वासंतिक सुषमाके साथ-साथ परिणत वयसका गंभीर चिंतन भी है। लेखकके क्रान्तिकारी विचारोंका प्रभाव उसकी भाषाके ऊपर अनिवार्य रूपसे पड़ा है। बेनीपुरीजी जिस सांस्कृतिक नवोत्थानके समर्थक हैं, उसके लिए ऐसी ही भाषा अपेक्षित थी।

किसी भी लेखककी शैलीमें मार्मिकता और प्रभावोत्पादकता तभी आती है, जब लेखक जीवन-सागरमें गोते लगाकर वहाँसे कटु-मधु अनुभवोंके मोती प्राप्त करता है और अपनी नौकाको जीवन-सागरमें एकाकी खेनेका साहस रखता है। जिसने स्वयं जीवनके हलाहलका पान नहीं किया, उसकी शैलीमें विदग्धता और मार्मिकता नहीं आ सकती। लेखक अपने अनुभवोंको प्रेषणीय बनानेमें जब पूर्णतया सफल होता है, वस्तुतः तभी उसे हम शैलीकार

कह सकते हैं। और ऐसे लेखक कम ही होते हैं, जिनकी अपनी शैली होती है। शैली-निर्माणका सीधा संबंध जीवनसे है। इसे अध्ययनके द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। बेनीपुरीजी अपने जीवनके प्रारम्भसे ही तूफ़ानों से खेलते रहे हैं। फलतः उनकी शैलीमें भी तूफानोंका-सा ज़ोर और क्षिप्रता है। बफ़नका 'शैली ही व्यक्ति है' कथन इनके संबंधमें पूर्णतया चरितार्थ होती है। यहाँ शैली विचारोंका परिधान अथवा त्वचा बनकर नहीं आई है, वरन् वह छायाकी भाँति इनका पीछा करती है। परिधान और त्वचाको हम शरीरसे पृथक् कर सकते हैं, पर छायाको नहीं। अतः शैली उधार लेनेकी वस्तु नहीं। जिस प्रकार विचार और अनुभूति लेखककी वैयक्तिक वस्तुएँ हैं, उसी प्रकार उसकी भाषापर उसकी वैयक्तिकताकी अमिट छाप हुआ करती है। विचार-रूपी धागोंका ताना-बाना उसकी शैली ही है। वाल्टर पेटरके शब्दोंमें 'समस्त रंगिनियोंके साथ भावनाकी सम्पूर्ण एवं सत्य अभिव्यक्तिकी कलाका नाम शैली है।' अतः शैली सम्पूर्णतः आभ्यांतरिक वस्तु है, वाह्य नहीं। जब लेखकके मस्तिष्कमें विचार उठते हैं, तो शब्दोंकी टोलियाँ पंक्तिबद्ध होकर अपना-अपना स्थान प्राप्त करनेके लिए खड़ी हो जाती हैं और लेखककी लेखनीकी नोंकके समक्ष स्वतः आती जाती हैं। उसके लिए लेखकको रंच-मात्र भी आयास-प्रयास नहीं करना पड़ता है।

अलंकार : अभिव्यक्तिके अनिवार्य अंग

अलंकारोंके संबंधमें भी यही कहा जा सकता है। अलंकार भी वाह्य अलंकरण-मात्र नहीं हैं। ये अभिव्यक्ति के अनिवार्य अंग हैं। शब्दोंके समान अलंकार भी अपना-अपना स्थान प्राप्त करनेके लिए 'मैं यहाँ बैठूँगा', 'मैं यहाँ रहूँगा' ऐसा कहते हुए दौड़ पड़ते हैं (अहमहमिकयावृत्या अलंकाराः प्रधावन्ति)। लेखकके अनजाने ही ये अलंकार अपनी-अपनी जगह बैठकर अपना-अपना प्राप्य ले लेते हैं और लेखक भौंचक देखता रह जाता है।

'चपलाकी चमक'में बिजलीके कौंधनेका जो अमर चित्र लेखकने खींचा है, वह उसकी शैलीका उत्कृष्ट नमूना है—"उन बादलोंकी काली पृष्ठभूमिपर बिजली मानो एक परी की चपल गतिसे नृत्य कर रही हो। अभी यहाँ पश्चिम-कोनेपर उसके घाघरेकी ज़रदार किनारी चमकी, पलक गिरते वह ठीक-ठीक मेरी नाककी सीधमें आकर विभ्रमकारी गतिसे नाच उठी। फिर एक छलांग लेती वह पूरब कोने पर पहुँच गई, जहाँ उसकी एक मुस्कानसे नीला आसमान उजला-उजला हो रहा। वहाँसे फिर मुड़ पड़ी—नाचती, हँसती। कभी ऊपर उछल गई, कभी नीचे सिमट गई। कभी ठिठक गई, कभी ठठा पड़ी। यहाँ-वहाँ, इधर-उधर इसका पीछा करनेमें आँखें भी समर्थ नहीं। बादलोंके बीच बिजलीकी चमक है, स्वर्गमें सहस्र परियोंका नृत्य एक साथ ही हो रहा है; क्योंकि अब तो पल-पल उसकी गति इतनी चपल होती जाती है कि एक परीकी कल्पना की नहीं जा सकती। पूरब-कोनेसे पश्चिम-कोने तककी इस शत-सहस्र मीलकी लम्बी रंगभूमिके कोने-कोनेको जो विहँसित-चमत्कृत कर रही है, वह एक परी नहीं हो सकती। विहँसित, मुखरित और चमत्कृत भी! हाँ, सुन रहा हूँ मंजीरका सिंजन और किसी चतुर वादकके मृदंगका रव भी। किन्तु स्वर्ग कहाँ है? परियाँ झूठ हैं या सच, कौन बतावे? क्या बूढ़े हिमालयको ही आज युगोंके बाद कुछ रासरंगका शौक चर्राया है और उसने ही अपने स्वर्ण-मृगोंको इन बादलों के वनमें कुलाँचें लेनेको छोड़ दिया है? वह उनकी पूँछ चमकी, उनके पैर चमके, उनके सींग चमके, उनके नथुने चमके। बादलोंके वनमें इन स्वर्ण-मृगोंकी कुलाचोंके कारण ही तो ये शब्द हो रहे हैं? कभी अकेली मृगी दौड़ी, मधुर-मधुर शब्द हुआ। कभी पूरा मृगझुंड दौड़ा, अजीब गड़गड़ाहट हुई। ...आँखोंमें अभूतपूर्व दृश्यावली, कानोंमें अभूतपूर्व ध्वनि-प्रतिध्वनि, मस्तिष्कमें चित्र-विचित्र, कल्पनाकी लहरी।.... किन्तु अब वह परियोंका नृत्य नहीं मालूम होता। मालूम होता है शिवके गणोंने परियोंको खदेड़ दिया है और वे हाथमें मशाल लेकर तांडवका अभ्यास कर रहे हैं। या स्वर्णमृग भाग चले, भूरे ऐरावतोंको पहाड़ी दस्यु खदेड़े जा रहे हैं। कहाँका मृदंग-रव, परी-पद-सिंजन या मृगी-पद-ध्वनि। अब अजीब धमाचौकड़ी है, उठा-पटक है, चीख़ है, चिल्लाहट है। हड़-हड़-हड़ धड़-धड़-धड़-धड़। अरे! अब तो आँधी आई!" (गेहूँ और गुलाब, पृ० ४२)

हिन्दी-साहित्यमें बिजलीके कौंधनेका ऐसा दूसरा चित्र उपलब्ध नहीं है। अनंताकाशके रंगमंचपर नृत्य करती हुई विद्युन्मालाका यह चित्र सचमुच अपूर्व है। इसे ही शैलीका चमत्कार कहते हैं। और ऐसे ही चित्रोंके कारण बेनीपुरीजी अमर शैलीकार हो गए हैं। उपर्युक्त उद्धरणमें अलंकारोंने जो स्वतः अपना स्थान प्राप्त कर लिया है, उसके बिना अभिव्यक्ति भला पूर्ण कही जा सकती है? सम्पूर्ण पुस्तक ('गेहूँ और गुलाब') ऐसे ही चित्रोंकी एक मोहक चित्रसारी है। इसमें जहाँ एक ओर दीन-हीन एवं क्षीणकाय मानव-कंकालोंका चित्र है, वहीं गुलाबों और हर-सिंगारोंका रंग-बिरंगी इन्द्रधनुषी चित्र भी है। लेखक सचमुच कीचड़को ठेलता हुआ बढ़ रहा है और उसकी आँखें

उस स्वर्णिम समाजपर जमीं हैं, जिसके साक्षात्कारके लिए वह अपने रक्तको पानीके समान बहा रहा है।

'गेहूँ और गुलाब'की विशिष्टता

बेनीपुरीजीके शब्दचित्रोंके तीन संग्रह अबतक प्रकाशित हो चुके हैं–'माटीकी, मूरतें' 'लाल तारा' तथा 'गेहूँ और गुलाब'। इनमें से 'माटीकी मूरतें' पर तो भारत-सरकारकी ओरसे दो हजार रुपएका पुरस्कार भी मिल चुका है तथा 'गेहूँ और गुलाब' के प्रकाशनने हिन्दी-संसारमें एक विचित्र आंदोलन खड़ा कर दिया था। गेहूँसे गुलाबकी ओर जानेकी भावना कुछ लोगोंको बेवक्तकी शहनाई मालूम पड़ी और ऐसे लोगोंने लेखकको प्रतिक्रियावादी तक कह डाला। जब देशमें लोग रोटीके एक-एक टुकड़ेके लिए मुहताज हों, तब गेहूँको छोड़कर गुलाबका राग अलापना सचमुच ऊपरसे बेवक्तकी शहनाई ही मालूम पड़ती है। लेकिन ऐसे लोग शायद यह नहीं जानते कि प्रत्येक महान् पुरुष स्वप्नदर्शी होता है। बेनीपुरीजीने 'गेहूँ और गुलाब' की भूमिकामें कहा है—"पैर कीचड़को ठेलते बढ़ रहे हों, किन्तु आँखें इन्द्रधनुषपर जमी हों।" यह पलायनवाद नहीं है। यदि हम इसे पलायनवाद कहें, तो दुनियाका सबसे बड़ा पलायनवादी कदाचित् मार्क्स ही होगा, जिसने एक भव्य समाजकी कल्पना की थी। 'गेहूँ और गुलाब' में बेनीपुरीजीने हरसिंगार, गेंदा और गुलाबसे पूर्ण जिस समाजका चित्र अंकित किया है, उस समाजको अपनी आँखों देखनेके लिए जैसे आकुल-व्याकुल हैं, क्योंकि जीवनकी कटुता और तिक्तताका अनुभव उन्होंने अपनी किशोरावस्थासे ही किया है। यही कारण है कि जब वे दीन चरवाहे अथवा मज़दूर अक्लकी बेबसीका चित्र खींचते हैं, तो उसकी एक-एक पंक्तिमें करुणाका सागर उद्वेलित होकर लहराने लगता है। 'घासवाली' का जो चित्र उन्होंने अंकित किया है, उसके एक-एक शब्दमें उसकी सम्पूर्ण दीनता साकार हो उठी है—"लौटते समय, जीवनमें पहली बार, उसने काठकी धेलेवाली कंघी खरीदी और खरीदा एक पैसेका नारियलका तेल।"

भारतीय ग्राम्यजीवनके चित्र

बेनीपुरीजीके शब्दचित्रोंका दूसरा संग्रह 'माटीकी मूरतें' हैं। कहानीकी चाशनीमें पगे हुए इन शब्दचित्रों में बेनीपुरीजीने भारतीय ग्रामोंको साकार कर दिया है। मेरी धारणा है कि लन्दन-म्युजियम या सुदूर न्यूयार्कके किसी पुस्तकालयमें बैठकर भी यदि कोई विदेशी एक बार इस पुस्तकका परायण करे, तो फिर भारतीय ग्रामीण जीवन-पद्धतिके संबंधमें जाननेके लिए और कुछ शेष न रह जायगा। इसीसे इसकी शैलीकी विशिष्टता, स्वच्छता, सरलता और मार्मिकताका अनुमान किया जा सकता है। 'बलदेवसिंह', 'सरयू भैया, 'बालगोविन भगत', 'बैजू मामा', सुभानखाँ' और 'रूपाकी आजी' प्रभृति माटीकी मूरतें नहीं, प्रत्युत सोनेकी जीवन्त मूर्त्तियाँ हैं, जो साहित्य-देवताके मंदिरमें प्रतिष्ठित हैं।

'लाल तारा' के शब्दचित्र विविध विषयोंसे संबंध रखते हैं। इसमें हलवाहे और कुदालसे लेकर शहीदोंकी चिताओं पर, इन्क्लाब ज़िन्दाबाद, नई संस्कृतिकी ओर, रेलगाड़ी, जीवन, कलाकार और दीप-दान तकपर लिखे गए चित्र हैं। शब्द-चित्रोंके क्षेत्रमें लेखकका यह प्रथम प्रयास था। 'लाल-तारा'से 'माटीकी मूरतें'में क्रमशः उनकी शैली विकसित होती चली गई है और 'गेहूँ और गुलाब'में आकर वह प्रौढ़ता को प्राप्त हुई है। यहाँ आकर उनकी भाषामें पर्याप्त गांभीर्य आ गया है और रेखाचित्र अत्यंत विचारोत्तेजक हो गए हैं, जो गंभीर चिंतनके लिए बाध्य करते-से प्रतीत होते हैं। 'गेहूँ और गुलाब' नामक चित्रमें वे एक जगह कहते हैं—"पृथ्वी और आकाशके कुछ तत्व एक विशेष प्रक्रिया से पौदोंकी बालियोंमें संगृहीत होकर गेहूँ बन जाते हैं, उन्हीं तत्वोंकी कमी हमारे शरीरमें भूख नाम पाती है।"मानवीय क्षुधाकी इस वैज्ञानिक परिभाषाके पश्चात् वे इसकी परितृप्ति के लिए भी ऋजु वैज्ञानिक पद्धति बतलाते हैं—"क्यों पृथ्वी की जुताई, कुड़ाई, गुड़ाई क्यों आकाशकी दुहाई? हम पृथ्वी और आकाशसे उन तत्वोंको सीधे क्यों नहीं ग्रहण करें?"

शब्दों और मुहावरोंके सम्राट

रेखाचित्रकारका पथ कहानीकार या उपन्यासकारके समान सरल नहीं होता। यहाँ एक-एक शब्द नपे-तुले और सधे होते हैं। 'एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः सुष्ठु प्रयुक्तः स्वर्गेलोके च कामधुक भवति'—पतंजलिका यह सूत्र व्याकरण-दर्शनमें अपना जो भी महत्व रखता हो, पर उसके वास्तविक स्वरूपका दर्शन तो हम कविता एवं रेखाचित्रोंमें ही करते हैं। रेखाचित्र साहित्यमें चित्रकलाका अनुकरण है। चित्रकार कूँची एवं रंगोंके सहारे विविध प्रकारकी रेखाएँ खींचकर चित्रोंका निर्माण करता है, रेखाचित्रकार शब्दोंसे रेखाओं का काम लेता है। शब्द रेखाका काम करे, यह कितनी विचित्र बात है। फिर भी शब्दकी रेखाओंसे वह जिन चित्रोंका निर्माण करता है, वह चित्रकारके चित्रसे कम महत्व नहीं रखता; शर्त्त केवल यह है कि रेखा-चित्रकारका शब्दकोश अत्यन्त विशद हो तथा उसपर उसका पूर्ण आधिपत्य हो। बेनीपुरीजीके सफल रेखा-चित्रकार होनेका रहस्य यही है कि वे शब्दोंके सम्राट हैं।

ऊख और चीनीकी करामात

पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

संसार विज्ञानकी सहायतासे धूलसे रस्सी बनाता है। भारत देखता है, पर उसे ऐसा करनेका या तो साहस नहीं होता या उसे यह बाजीगरी जान पड़ती है। एक समय था, जब इस देशमें मारिशससे चीनी आती थी और मोरिस की चीनी कहाती थी। विदेशोंमें चुकन्दर (बीट-रूट) से भी चीनी बनती थी और हमारे खानेके लिए मँगाई जाती थी, क्योंकि इसके कुछ ही समय पहले हमारा चीनी का व्यवसाय नष्ट कर दिया गया था। सैकड़ों वर्ष पहले यहाँसे मिश्री रोम जाती थी और दवाके काम आती थी। पर विदेशी प्रतियोगितामें, जिसकी जड़में जर्मन अर्थशास्त्री फ्रेड्रिक लिस्टका 'उत्पादनकी शक्ति' (पावर आफ् प्रोडक्शन) का सिद्धान्त था, प्राचीन ढंगसे चलनेवाला हमारा चीनीका व्यवसाय नष्ट हो गया। अँगरेज़ अपने ही स्वार्थके लिए नहीं, अपने यूरोपियन बन्धुओंके हितार्थ भी हमारे यहाँ चीनीके कारखाने खड़े नहीं होने देते थे, क्योंकि वे जावाके डच कारखानोंमें बननेवाली चीनीको हानि पहुँचने देना नहीं चाहते थे!

परन्तु पहले महासमरके बाद अँगरेज़ोंको यह मालूम हुआ कि आपत्कालके लिए यहाँ भी आवश्यक वस्तुओंके उत्पादनको प्रोत्साहन देना चाहिए। इसलिए इस देशमें चीनीके कारखाने खुलने चाहिएँ। हमें याद है कि विदेशी चीनी १०) मन बिकती थी। चीनीकी मिलें खड़ी हुईं और उन्हें संरक्षण भी मिला। दूसरे महासमरमें आवश्यक पदार्थ दुर्लभ वा अलभ्य होने लगे, तब ब्रिटिश भारत-सरकार को अपनी नई नीतिकी उपयोगिता हृदयंगम करनेका अवसर मिला। कंट्रोलका ज़माना था। फिर भी चीनी लोगोंको ९ आने सेर तक मिली थी। पर महासमरकी समाप्तिके बाद चीनी महँगी हुई और कन्ट्रोलसे चौदह आने सेर मिलने लगी। चोरबाज़ारमें तो उसका दाम सवा रुपए-डेढ़ रुपए सेर तक था।

चीनीका उत्पादन बढ़ा है तथा बढ़नेकी संभावना भी है। कहते हैं १०से बढ़कर १५ लाख टन तक चीनी अगले साल तैयार होगी। फिर भी हल्ला मच रहा है कि चीनी-उद्योग संकटमें है! इसका कारण है कि चीनीके कारखानेवाले समझते हैं कि जितना लाभ हमें होना चाहिए, उतना नहीं होता। गन्ना उपजानेवाले किसान कहते हैं कि हमें गन्नेका दाम कम मिलता है, अधिक मिलना चाहिए। कारखानोंमें काम करनेवाले कहते हैं कि हमें मजूरी कम मिलती है, अधिक मिलनी चाहिए। बोनस भी मिलना चाहिए। इसके साथ ही उपभोक्ताओंकी शिकायत है कि जिन दामोंमें चीनी मिलती है, वे इतने अधिक हैं कि चीनी खरीदना कठिन हो रहा है। ग़रीब आदमी गुड़पर ही गुज़ारा करते हैं। सारांश यह है कि चीनीके कारखाने जिस ढंगसे चलते हैं, उससे किसीको भी सन्तोष नहीं है; सबको शिकायत है।

इसमें दोष किसका है? इस प्रश्नका उत्तर तभी दिया जा सकता है, जब देखा जाय कि अन्य देशोंमें जहाँ चीनी बनाई जाती है और गन्नेकी खेती होती है, क्या वहाँ भी यही शिकायत है? यदि है, तब तो रोग असाध्य समझा जायगा। यदि नहीं है, तो क्यों, यह देखना होगा। अमरीकाके हवाई-द्वीपपुंजमें भी गन्नेकी खती होती है और वहाँ चीनी तैयार की जाती है। पर वहाँ किसीको कोई शिकायत नहीं है। उपभोक्ताओंको भी सस्ती चीनी मिलती है। इसका कारण क्या है? होनोलूलूसे जो ब्योरा आया है, उससे जाना जाता है कि हवाईके कारखाने-वाले इस उद्योग-धन्धेकी उन्नतिके लिए वैज्ञानिक उपायों का अवलम्बन कर रहे हैं। चीनी बनाकर भी जो रद्दी बच जाती है, उससे तरह-तरहका सामान बनानेका उपक्रम किया जा रहा है।

अमरीकाके हवाई द्वीपपुंज उत्तर-प्रशांत महासागरमें हैं। इनकी संख्या २० है। आठ मुख्य टापुओंका क्षेत्रफल ६,४२३ वर्गमील है और जनसंख्या ४,९९,७९४ है। इस

द्वीपपुंजका मुख्य नगर होनोलूलू है, जो ओआहू टापूमें है। इस जनसंख्यामें १,७७,७०० आदमी कारबारमें लगे हैं, जिनका १३ प्रतिशत चीनीके उद्योग-धन्धेमें काम करता है। यहाँकी मुख्य पैदावार चीनी और अनन्नास है। यहाँसे शोरा, काफी, चमड़ा, केला और फूल बाहर (अमरीका) भेजे जाते हैं। श्रमिकोंकी सदा कमी रहती है, इसलिए हवाईके फार्म सुयंत्रित हैं। १९५०में २४,३२,०६९ एकड़के ५,७५० फार्म थे, जिनकी ज़मीन और इमारतोंका मूल्य १९,५२,७७,१२१ डालर था। इन फार्मोंमें १९,८०,६१८ एकड़के तो मैनेजरोंके अधीन और २,४०,११३की व्यवस्था मालिक आप करते थे। ३,१६,१८८ एकड़ किसानोंके प्रबन्धमें हैं। इससे समझना चाहिए कि फार्मोंके प्रबन्ध-कर्त्ता तीन प्रकारके लोग हैं और तीनों उन्नतिमें प्रयत्नशील हैं। औसत फार्म ४२३ एकड़का होता है और उसका मूल्य ३३९६१ डालर होता है।

१९५२में २,२०,००० एकड़ ज़मीनमें ऊख बोई गई थी, जिससे १०,२०,००० शार्ट टन (२२०० पौंडका टन) चीनी निकली थी। इसके पहले १९३२-३३ में १०,६३,६०५ टन चीनी पैदा की गई थी। आशा की जाती है कि अब १०,५२,००० टन चीनी प्रतिवर्ष पैदा हुआ करेगी। १८से २२ महीने तक ऊखकी फसल होती है। ३९ कंपनियाँ चीनीके व्यापारमें लगी हैं, जिनमें ३१ने मिलकर कैलिफोर्नियामें चीनी साफ़ करनेका एक कारखाना साझे में कर रखा है। काफी आदिका काम भी अच्छा चलता है। पर चूँकि यहाँ चीनीके व्यवसायपर मुख्य विचार है, इसलिए उनकी चर्चा नहीं की जा रही है।

कई वर्षोंके अनुसंधानसे पता लग गया है कि चीनीके व्यवसायके साथ ही और कौन-कौन-सी चीजें बनाई जा सकती हैं। चीनी बनानेके बाद जो रद्दी सामान बचा रह जाता है, उसे अमरीकी भाषामें बैगास कहते हैं। इससे नई चीज़ बनानेका प्रबन्ध हुआ है। जानवरोंके चारेके लिए शीरा मिला हुआ सामान तैयार होगा, नौसादर तैयार किया जायगा और हवासे खेतोंमें देनेके लिए खाद नाइट्रोजनसे बनाई जायगी। कई वर्षोंके अनुसंधान के बाद, जिसमें ५ लाख डालर खर्च हुए हैं, बहुत-सी आश्चर्य-जनक चीजोंके बनानेका मनसूबा बाँधा जा रहा है। बैगाससे करूगेटेड (कर्कट) बनाया जायगा। इस नए कर्कटसे बक्स बनाए जायँगे। ब्लीच्ड पल्प या बुरादा भी इससे बनाया जायगा। दूधकी बोतलें रखनेके लिए आजकल कागजके जो बक्स होते हैं, उन्हें बनानेके लिए बुरादा अमरीकन कम्पनियोंको बेंच दिया जायगा। यह भी कहा जाता है कि बैगास और कंक्रीटके मेलसे मकान बनाने का सामान तैयार हो सकेगा। यह भी आशा की जाती है कि कागज और कागजका सामान बनानेके काममें भी बैगासका उपयोग हो सकेगा। कहते हैं कि इससे प्रतिवर्ष ५ लाख टन कागज तैयार हो सकेगा।

हवाईके शुगर-प्लैंटर्स असोशियेशनके पल्प (गूदा या बुरादा) और कागज-अनुसंधानको अमरीकाके कागजके उद्योगवालोंने सराहा है। असोशियेशनका कहना है कि इस अनुसंधानसे हमें बैगासके विषयमें बहुत बड़ा ज्ञान हो गया है। इस उद्योग-धन्धेमें जो लोग हैं, उनका कहना है कि बैगास पल्प ऐसी चीज़ नहीं है, जिसपर नाक-भौं सिकोड़ी जाती है, वरंच वह संसारके व्यापारकी महत्वपूर्ण वस्तु होगी। अक्तूबर, १९५४में अर्जेंटाइनामें जो बैगास-सम्मेलन हुआ था, जिसमें कागजकी बड़ी कंपनियोंके प्रतिनिधियोंने इसी प्रकारके विचार प्रकट किए थे। इससे स्पष्ट है कि विज्ञान इस दिशामें और भी बहुत-से चमत्कार करनेको चीनीवालोंको प्रोत्साहित कर रहा है।

यह विषय विचार-कोटिसे निकलकर व्यवहार-कोटिमें आ गया है। हवाईमें इस ढंगसे बननेवाले कागजके उत्पादन, जहाजोंपर लादकर उसे रवाना करनेकी व्यवस्था तथा बेचनेके प्रबन्धपर विचार करनेको कागजवालों और उसका व्यवहार करनेवालोंमें बातचीत होने लग गई। शीरेमें जानवरों और मुर्गियोंको पुष्ट करनेवाले तत्व हैं। इसमें और चीजें मिल जानेसे जो चारा तैयार होगा, वह दूसरे चारोंसे उन्नीस नहीं रहेगा। ये चारे ६,३०० टनकी मात्रा में हवाईमें आते हैं। नए चारेसे इनकी खपत घट जायगी। हवाईमें जानवरोंको खिलानेका २ करोड़ ४० लाख पौंड चारा खर्च होता है। यदि हवाईमें ऊख और उससे उत्पन्न पदार्थोंका सदुपयोग किया जा सकता है, तो भारतमें क्यों नहीं किया जा सकता?

हवाईमें यदि अनुसंधानका यह सुफल हो सकता है; ऊखका रेशा-रेशा काम आ सकता है और चीनीके आनुषंगिक पदार्थ अन्य उपयोगी सामग्रीकी सृष्टि कर सकते हैं, तो यहाँ भी कर सकते हैं। आवश्यकता इस बातकी है कि चीनी मिलोंके मालिक और सरकार इधर ध्यान दें। हमारे देशमें नकली चावल बनाये गए, वर्षा करानेके उपाय भी काममें लाए गए; पर इस नई दिशामें किसीका ध्यान नहीं गया। यदि चीनीकी सीठी वा बैगाससे इतना लाभ हवाईवाले उठा सकते हैं, तो हम भी उठा सकते हैं। इससे चीनीके व्यवसायसे किसी प्रकारका सम्बन्ध रखनेवालोंको कोई शिकायत न रहेगी। मालिकोंको पूरा मुनाफ़ा मिलेगा और श्रमिकोंको पूरा वेतन तथा बोनस मिलेगा। साथ ही उपभोक्ताओंको सस्ती चीनी भी मिलेगी। देशमें नए-नए उद्योग-धन्धोंके खड़े होनेसे बहुतसे लोगोंको काम मिलेगा और देशकी समृद्धि बढ़ेगी। आवश्यकता केवल ध्यान देनेकी है। इस ओर ध्यान दिया नहीं गया कि चीनीका दाम ३०) मनसे घटकर १०) मन हो सकेगा और सबको सुख होगा।

कांग्रेस और देशकी अवस्था

वैसे तो भारतके राष्ट्रीय जागरण तथा आजादीका इतिहास वस्तुतः १८५० के स्वातंत्र्य-संग्रामके बादसे आरम्भ होता है। इससे पूर्व देशमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीका शासन था। उससे असंतुष्ट होकर ही १८५७ में देशके निवासियों ने विद्रोह किया था। उस विद्रोहका दमन तो अवश्य हुआ, परन्तु ब्रिटिश सरकारने यह अनुभव किया कि देशमें अशांति है और जब तक उसे दूर न किया जायगा, तब तक शासन स्थायी नहीं हो सकता। इसीलिए पहले तो ईस्ट इण्डिया कम्पनीके हाथसे भारतका शासन-सूत्र ब्रिटिश सरकारने अपने हाथमें ले लिया, फिर उसने इस बातका प्रयत्न किया कि शासन-व्यवस्थामें ऐसा सुधार किया जाय, जिससे शासन-तंत्रमें जनताका सहयोग प्राप्त हो। यह थी साम्राज्यवादी भेद-नीति। इस नीतिके सहारे दो सौ वर्षों तक भारत एक विदेशी सत्ताके प्रभुत्वमें रहा। ये २०० वर्ष भारतके लिए सामाजिक जड़ता और आर्थिक विनाशके थे। उस समय स्वतंत्र राष्ट्रोंकी प्रगति और समृद्धि हुई। जब कि स्वतंत्रताका उपभोग करनेवाले राष्ट्रोंमें अवसर बढ़े और सामाजिक स्वतंत्रता आई, अँगरेज़ी शासनके अन्तर्गत भारतमें आर्थिक संकट दिन-ब-दिन बढ़े और सामाजिक असमानताओंका बोझ तो और सख्तीके साथ बढ़ा। उद्योग-निर्माण कम हुआ, कृषिमें ग़रीबी आई, बेकारी बढ़ी और विदेशी शासकों तथा देशके मुट्ठी-भर व्यक्तियोंने सारा धन चूस लिया। देशकी प्राचीन असमानताएँ विदेशी शासन द्वारा जान-बूझकर क़ायम रखी गईं, ताकि अपनी विशेष सुविधाओंको बनाए रखनेके लिए शासकोंकी कृपा पर निर्भर रहनेवाले उच्च वर्गोंकी ताक़त बढ़े। इस तरहसे भारतमें आर्थिक और सामाजिक जीवन एकांगी हो गया।

उपरोक्त आर्थिक और सामाजिक जीवनकी तमाम सुविधाओंकी पुनः प्राप्तिके लिए इस देशमें कांग्रेसका निर्माण हुआ। आज़ादीकी तस्वीर हासिल करनेमें देशके ग़रीबों, मेहनतकशों, किसानों और युवक-युवतियोंने असंख्य कुरबानियाँ दीं। जेल गए, लाठियाँ खाईं, फाँसीके फन्देको चूमा, बहन-बेटियोंकी बेइज्जती सही; लेकिन अपने लक्ष्य से न हटे। केवल इसलिए नहीं कि विदेशी शासनसे छुटकारा मिले, वरन् इसलिए भी कि जीवनके हर क्षेत्रमें स्वतन्त्रता की लहर दौड़ जाए। जब ग़रीब, मेहनतकश, किसान, नवयुवक और दलित आज़ादीके झण्डेके नीचे जोश और भक्ति लेकर इकट्ठे हुए, तो उनके सामने नए हिन्दुस्तानका एक नक्शा था, जिसमें देशसे अँगरेज़ोंको हटानेके साथ आर्थिक और सामाजिक परिवर्त्तनका आरम्भ और नए अवसरोंकी प्राप्ति भी सम्बन्धित थी। नए जीवन, नई यात्राओं और नई सिद्धियोंकी इस आशाने ही हमारी जनताको अपूर्व वीरतापूर्ण कार्योंके लिए विवश किया। आज हम आज़ादी के आठवें वर्षको पार कर रहे हैं। १९४८ से ही भारतके हृदय-सम्राट प्रधान मंत्री नेहरूजी देहलीके लाल क़िलेपर झण्डा फहराते हुए कहते चले आ रहे हैं कि 'फिरकापरस्ती देशकी लुटिया डुबो देगी। आओ, कन्धेसे कन्धा मिलाकर ग़रीबी, भुखमरी और बेकारीके खिलाफ़ बिगुल बजा दें।' मगर वह बिगुल आज तक बजता नज़र नहीं आया, क्योंकि अँगरेज़ी राज्यमें जिस तरह समाजमें ज़ालिम तबक़ा मज़लूम इन्सानोंपर छूत-छात, ऊँच-नीच व ग़रीबी-अमीरीके नामपर जुल्म ढहाता था, आज भी देशमें कमानेवाले वर्ग लूटनेवाले वर्गके नीचे सामाजिक और आर्थिक जंज़ीरोंसे बँधा दबा हुआ है। हमारे देशके ३६ करोड़ नर-नारियोंने, जो गाँवों और नगरोंमें बसते हैं, आशा की थी कि यह देश आज़ादीके बाद जनतंत्र, शान्ति, सुख-समृद्धि और सांस्कृतिक विकासका देश होगा। मगर आज कट्टरसे कट्टर कांग्रेसी भी यह दम्भ नहीं कर सकता कि आजकी आज़ादी जनतंत्र, शांति समृद्धि और सांस्कृतिक विकासकी आजादी है। हाँ, कांग्रेस और सरकार यह प्रचार ज़रूर करती हैं कि देशसे ग़रीबी, बेकारी, भुखमरी और कई प्रकारकी कठिनाइयाँ दूर कर दी गई हैं। मगर यह बात छिप नहीं सकती कि ८ वर्षके समयमें जनतापर लगातार टैक्सोंका भार लादा जाता रहा है, मँहगाई बढ़ी है, व्यावहारिक वस्तुओंकी कमी अधिक हुई है और जनताका रहन-सहन और नीचे गिरा है।

सत्ता-प्राप्तिके कुछ काल बाद तक तो जनताको यह कहा गया कि सरकारके सामने इससे बड़े-बड़े काम हैं, अतः २०० वर्षोंकी ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा की गई बरबादियोंका प्रभाव

दूर करनेमें कुछ समय लग सकता है। जनताको यह भी बताया गया कि उसकी अवस्था और गिर जानेके कारण कांग्रेसकी नीतियाँ नहीं, अपितु पुरानी गुलामीका प्रभाव है! जनताको यह भी विश्वास कराया गया कि सरकार साम्राजी अवशेषोंको मिटाने और सच्चे अर्थोंमें सहयोगी साझेदारी-व्यवस्था स्थापित करनेका भरसक प्रयत्न कर रही है। और यदि ऐसे अवसरपर उसका विरोध किया गया, तो उसके इस काममें बाधाएँ उपस्थित हो जाएँगी। पर पिछले ८ वर्षोंके अनुभवोंने देशकी जनताको बता दिया कि इन बहानोंमें कितना विश्वास और किया जाए। जनता ने यह भी देख लिया कि जनताकी सरकारको सच्चे अर्थोंमें काम करनेकी कौन कहे, यह सरकार उल्टे रजवाड़ों, बड़े जमींदारों, इजारेदारों, महाजनों, चोरबाज़ारियों और भ्रष्ट अफ़सरोंके स्वार्थोंकी ही रक्षा कर रही है। प्रतिदिन जनता को यह विश्वास होता जा रहा है कि कांग्रेसी सरकारें देशको आर्थिक, सामाजिक और सुख-समृद्धिकी राहपर ले चलने के बजाय पद और धनके टुकड़ोंकी छीना-झपटी करनेवाले नेताओंका अखाड़ा ही बना रही हैं। जबसे देश आज़ाद हुआ है और हमारे स्वदेशी मंत्रिगण पदारूढ़ हुए हैं, अनुचित पक्षपात (भाई-भतीजावाद) तथा भ्रष्टाचार ज़ोरोंसे बढ़ रहा है। प्रथम तो इनके खिलाफ़ खुल्लम-खुल्ला शिकायत करनेका साहस कम लोगोंको होता है; फिर अगर कोई साहस करे भी, तो या तो कोई ठिकानेकी सुनवाई नहीं होती या उल्टे शिकायत करनेवालेको ही लेनेके देने पड़ जाते हैं। भाषा और संस्कृतिके आधारपर प्रान्तोंका पुनर्निर्माण, अध्यापकों एवं पटवारियोंकी हड़ताल, व्यापारियोंके आंदोलन, असंख्य बेदखलियाँ, करोंके विरुद्ध किसानोंके मोर्चे, छात्रों में अनुशासनहीनता, पंचवर्षीय योजनाओंके लिए नये कर, चीज़ोंकी बढ़ती हुई क़ीमतें और उपचुनावोंमें अनेक स्थानों पर हुई कांग्रेसकी पराजयसे हवाके रुखका कुछ अन्दाज़ किया जा सकता है। पर इनसे कुछ सबक़ हासिल करनेके बजाय कांग्रेसने अपनी संकीर्णता और दलबंदीको और अधिक बढ़ाया है। हर कांग्रेसी चीन और रूसमें नेहरूजीकी बढ़ती हुई लोकप्रियताकी दुहाई देकर मानो इस स्थितिपर पर्दा डालने की चेष्टा करता है। पर भला बाहरी वाहवाहीसे देशकी स्थिति कैसे सुधरेगी?—सुरजनसिंह 'भूषण', भिवानी (पंजाब)।

सैनिक शिक्षाकी आवश्यकता

जिस तरह देशोंके लिए आज अपनी एक भाषा आवश्यक है, उसी तरह अनिवार्य सैनिक शिक्षा भी आवश्यक है। आजकल सब देशोंमें सैनिक शिक्षाकी ओर प्रायः बहुत ही ध्यान दिया जाता है, लेकिन भारतमें उसका अभाव-सा दिखाई देता है—बल्कि यों कहना चाहिए कि वह इस दिशामें काफ़ी पीछे रह गया है। सैनिक शिक्षा के लिए अनेक बातोंपर ध्यान रखना होता है। सबसे पहली बात तो यह है कि प्रत्येकको आज्ञाकारी होना पड़ता है। पहले जिन लोगोंने कभी किसी जगह आज्ञापालन न किया हो, ऐसे आदमियोंको सैनिक शिक्षाके लिए अयोग्य ठहराया जाता है, क्योंकि सैनिक शिक्षाके लिए आराधना होनी आवश्यक है। सेनामें सब काम आज्ञासे किया जाता है। जो आदमी आज्ञापालन और समयका पाबन्द हो, उसीको सैनिक शिक्षाके लिए काबिल माना जाता है। इसीलिए यूरोप, अमरीका आदि देशोंमें बच्चोंको स्कूलोंसे ही सैनिक शिक्षाका महत्व समझाया जाता है, ताकि वे आगे चलकर अपने देश और समाजकी रक्षा कर सकें। आज हम देखते हैं कि उन देशोंका सैनिक दल हमसे कहीं अधिक ताक़तवर है। भारतमें छोटे-छोटे बच्चोंके स्कूलोंमें, हाई स्कूलोंमें और कालेजोंमें सिर्फ आधे वर्ष ही पढ़ाई होती है और आधा वर्ष पूजा, दीपावली, होली, मकर संक्रान्ति, ईद, बड़े दिन आदि कई छोटे-बड़े त्योहारों की छुट्टियाँ रहती हैं। इन छुट्टियोंमें हम विद्यार्थियोंसे बहुत कुछ काम करवा सकते हैं। कहनेका मतलब यह नहीं है कि विद्यार्थियोंको लेकर 'लेफ्ट-राइट' करना ही सिखा दें। लेकिन शारीरिक तंदुरुस्तीको क़ायम रखनेके वास्ते उन्हें फौजी क़वायद और कसरतें तो सिखाई ही जानी चाहिएँ, ताकि वे योग्य और सबल नागरिक हो सकें। अनुशासन, आज्ञापालन और शारीरिक सबलता किसी भी शिक्षासे कम आवश्यक नहीं। इस लिए इसे भी शिक्षाके एक अनिवार्य अंगके रूपमें अपनाया जाना चाहिए। --रतिलाल एच० राणा, नवापुरा गोलवाड, सूरत।

श्रम-शक्तिका उपयोग

बेकारी केवल शहरोंमें ही नहीं है। देहाती क्षेत्रोंमें भी है और शहरोंकी अपेक्षा उसे दूर करना आसान भी है। इन क्षेत्रोंमें गोपालन, बागवानी, करघा-उद्योग, लकड़ी, लोहे और चमड़ेका कार्य तथा अन्य निर्माण-कार्य शुरू करके बहुतसे लोगोंको रोज़गार दिलाया जा सकता है। इन सब कार्योंकी प्रारम्भिक शिक्षाके केन्द्र प्रत्येक क्षेत्रमें खोले जायँ और उनके केन्द्रोंमें एकएक कामदिलाऊ विभाग भी सम्बन्धित हो। सहकारी संस्थाओंको प्रोत्साहन देकर पर्याप्त पूँजी भी उन्हीं क्षेत्रोंसे प्राप्त की जाय। इन संस्थाओंको सरकारी सहायता मिलनी चाहिए। भारी मुनाफ़ेवाले बड़े उद्योगोंको सरकार अपने प्रबन्धमें लेकर अतिरिक्त धन प्राप्त करे, ताकि प्रारम्भिक अवस्थामें उद्योगों को सहायता दी जा सके। उद्योगोंमें पूँजी लगानेके लिए बचत-आन्दोलन भी चलाया जाना चाहिए। मादक द्रव्य तथा ऐशोआरामकी चीज़ें विदेशोंसे मँगानेपर कठोर नियंत्रण किया जाय। इस तरह बचे धनको उत्पादन बढ़ानेवाली मशीनें तथा अन्य उपकरण जुटानेमें खर्च करने की व्यवस्था की जाय। देहातोंमें सरकारी बैंक भी हों, जो आभूषणोंके रूपमें बेकार पड़ी पूँजीको काममें लानेमें सहयोग दे सकें। यदि सच्ची लगन और निष्ठासे काम किया जाय, तो देशकी बेकार जानेवाली अपार श्रम-शक्ति को विकास-कार्योंमें लगाया जा सकता है, जिससे करोड़ों लोगोंका कल्याण हो सके।—कमला शर्मा शास्त्री, गवर्नमेंट कालेज, दौसा (राजस्थान)।
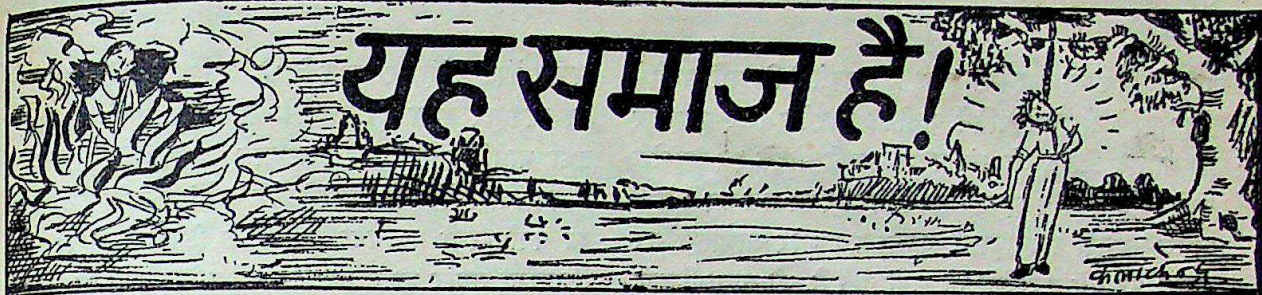
एक युवती और एक दर्जन पुरुष !

धर्म और आदर्शोंकी दुहाई देनेवाले इस देशमें कभी-कभी एक घटना ऐसी हो जाती है, जो सारे देशका मुँह काला करनेको काफ़ी है । ऐसा ही एक घटना गत जूनके प्रथम सप्ताहमें दिल्लीमें हुई । कहते हैं कि अपने पति या भाई की बीमारीका तार पाकर एक मद्रासी युवती वहाँ आई हुई थी । स्थान-रास्तोंसे अपरिचित होनेके कारण वह बेचारी भटक गई । गत २ जूनको वह दिल्ली ट्रांस-पोर्टकी बस नं०३ में स्टेशन जानेकी सवार हुई । पर कहते हैं कि कंडक्टर उसे चकमा देकर स्टेशनके बजाय किंग्ज़वे कैम्प-डिपोमें ले गया । वहाँके एक भंगीका जो बयान दिल्लीके पत्रोंमें प्रकाशित हुआ है, उससे प्रकट है कि कंडक्टर उसे कई लोगोंकी सहायतासे घसीटकर डिपोके पासके खेतोंमें ले गया, जहाँ उस एकाकी अबलाके साथ उसके सहित लगभग एक दर्जन नराधमोंने बलात्कार किया । बेचारी युवती की चिल्लाहट किसी भी सहायकके कानों तक नहीं पहुँची । दिल्लीमें इन दिनों शोहदेपन और गुंडेपनकी जो बाढ़-सी आ रही है, यह उसका एक सामान्य-सा उदाहरण है । रास्ते चलते लड़कियों और स्त्रियोंपर आवाज़ें कसना, छेड़ना और कइयोंको उठा तक ले जाना तो आजकल वहाँ रोज़मर्राकी घटनाएँ हो गई हैं । मुसलमानों और अँगरेज़ोंके शासनमें भी दिल्लीमें इतना अंधेर तो नहीं रहा, जो कि आज सर्वतन्त्र स्वतंत्र भारतकी राजधानीमें है । इसका कड़ाईसे दमन होना चाहिए और इन अपराधोंकी सज़ा और भी कड़ी होनी चाहिए ।

और सचमुच वह मर गई !

कलकत्तेके प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेटकी अदालतमें एक सास और पतिपर नवयुवती बहूकी आत्महत्यामें सहायक होनेके अभियोगमें मामला चल रहा है । चूंकि मुक़दमा अभी विचाराधीन है, हम कौन कितना अपराधी है, इस सम्बन्धमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे कुछ भी न कहकर यहाँ मुक़दमेका सारांश-भर ही देना चाहेंगे : नीलिमा नामक एक १२ वर्षीया कन्याका एक युवकसे विवाह हुआ था, जिसमें ४० हज़ारका दहेज़ दिया गया और दादी-सासकी इच्छानुसार ५ हज़ारके नेशनल सेविंग्स सर्टीफिकेट लड़कीके नाम लिए गए । एक साल तो पतिके साथ वह सुखसे रही, फिर पति ने उससे नेशनल सेविंग्स सर्टीफिकेट माँगने शुरू किए । ये बालिग होनेपर ही नीलिमाको मिल सकते थे । अब पति ने नीलिमाके साथ गाली-गलौज, मार-पीट और दुर्व्यवहार करना शुरू किया । अक्सर वह कहता कि 'तू मर जाय, तो मैं दूसरी शादी कर लूं ।' सासकी ओरसे भी दुर्व्यवहार होने लगा । और हालहीमें जब कि वह मुश्किलसे १६ वर्षकी हो पाई थी, उसने अपने कपड़ोंमें आग लगाकर आत्म-हत्या कर ली ! धर्म, संस्कृति, परम्परा आदिके नामपर दहेज लेनेवाले कलमुँहोंसे कोई पूछे कि क्या उन्होंने कभी सोचा है कि दहेजके लोभियोंने न जाने कितनी नीलिमाओंको असमय ही मार डाला है !

पतिके रहते दूसरा विवाह क्यों !

मेरठके एक मजिस्ट्रेटने गत १८ जूनको मुसम्मात बशीरन नामक एक युवतीको पतिकी जीवितावस्थामें दूसरा विवाह कर लेनेके कारण भारतीय दंड-विधानकी धारा ४९४ के अनुसार ६ महीनेकी सख्त क़ैद और १००) जुर्माने की सज़ा दी है ! मजिस्ट्रेट साहबने बशीरनकी इस दलील को स्वीकार नहीं किया कि उसका पति मौखिक रूपसे उसे तलाक दे चुका है । क़ानूनके हम पंडित नहीं, पर सहज-बुद्धि और मनुष्यताकी दृष्टिसे इससे बड़ा अन्याय और अनाचार शायद ही कुछ हो कि न्याय और क़ानूनके नामपर एक स्त्रीको ज़बरदस्ती उस पुरुषके साथ रहनेपर मजबूर किया जाय, जिसे वह नहीं चाहती । न्याय और क़ानूनके नामपर इस तरहकी अमानुषिकता तो शायद पशु-जगत्में भी न हो । पिछले दिनों जब संसदमें हिन्दू-विवाह और तलाक-बिलपर बहस हो रही थी, तो महिला-सदस्याओंने विशेष रूपसे इस धारापर आपत्ति की थी और इसे एकदम अमानुषिक बताया था । यह कम दुख और शर्मकी बात नहीं कि जिस शासनमें स्त्री-पुरुषोंकी समानता-स्वतंत्रताके ढोल पीटे जाते हों, उसीमें ऐसे फ़ैसले भी हों !

गेहूं नहीं, सिर्फ़ घुन पिसा !

गत ९ जूनको बंबईके प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेटकी अदालतमें

एक विचित्र मामला पेश हुआ है। कहते हैं कि पति-पत्नीमें हुए झगड़ेके दौरानमें पतिने पत्नीको मारनेके लिए एक ज़ोर का आघात किया, जो संयोगवश उसकी गोदके १२ महीनेके बच्चेको लगा और वह ज़मीनपर गिरकर तत्काल मर गया! पुलिस-सर्जनके कथनानुसार बच्चा भय और आघातसे मर गया। पर ऐसे बच्चोंकी भी कमी नहीं है, जो माता-पिताके झगड़ों और मार-पीटसे उत्पन्न भय और आघातकी विरासत यावज्जीवनके लिए समाजमें मनोवैज्ञानिक प्रश्न-चिह्न बने घूमते रहते हैं। ये झगड़े हमारे समाजका एक आवश्यक अंग बन गए हैं। और जहाँ विवाहके नामपर केवल नर मादाके जोड़े मिलाए जाते हों, पतिको पत्नीका और पत्नी को पतिका आदर करना सिखाया ही नहीं जाता, वहाँ ये झगड़े तो मामूली बातें हैं। इस तरहके विवाहों और अशिक्षित पति-पत्नीसे न सिर्फ़ दाम्पत्य जीवन ही नरक बनता है, बल्कि भावी पीढ़ियोंका मानस भी कलुषित होता है।

सिर्फ़ एक पत्नीवाला पी० सी० एस०

जहाँ पाकिस्तानमें प्रधान मंत्री तकने एक पत्नीके रहते दूसरी शादी कर ली और उसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठानेवाले स्त्री-पुरुषोंको इस्लामके नामपर चुप कर दिया गया, भारतमें इस कुप्रवृत्तिको रोकनेके लिए सरकारकी ओर से काफ़ी चेष्टा हो रही है। इससे केवल एक-दो व्यक्तियोंका दाम्पत्य जीवन ही संकटमें नहीं पड़ता, बल्कि जो अस्वस्थ वैयक्तिक और सामाजिक प्रतिक्रियाएँ होती हैं, उनका प्रभाव शासनपर अच्छा नहीं पड़ता। इसलिए शासनका इस सम्बन्धमें सविशेष रूपसे सतर्क रहना आवश्यक है। दिल्ली में पिछले दिनों मुल्की और फौजी अफ्सरोंको यह हिदायत की गई थी कि वे बिना पूर्व स्वीकृतिके एक स्त्रीके रहते दूसरी शादी न करें। हाल हीमें पंजाब-सरकारने घोषणा की है कि अपवादोंको छोड़कर कोई भी ऐसा व्यक्ति प्रान्तीय सिविल सर्विसके उम्मीदवारके रूपमें नहीं लिया जायगा, जिसकी एकसे अधिक पत्नी होगी। ऊपरसे यह शर्त्त शायद बहुतोंको अटपटी लग सकती है, पर जब तक अधिकारी अपनी छैला-वृत्तिपर काबू नहीं पा लेते और स्त्रियाँ शिक्षा तथा अर्थनीतिक स्वतन्त्रता हासिलकर पुरुषके हाथकी निर्जीव कठपुतलियाँ बननेसे इन्कार नहीं कर देतीं, इस तरहकी पाबंदियाँ ज़रूरी लगती हैं।

अनाथालय और विधवाश्रम

उत्तर-प्रदेशकी सरकारने समाज-कल्याण-मंत्रीकी अध्यक्षतामें एक बोर्ड बनाया है, जो इस राज्यके अनाथालयों विधवाश्रमोंकी देख-रेख करेगा। इसके लिए शीघ्र ही एक बिल भी भी पेश किया जा रहा है। यह क़दम विधवाश्रमों और अनाथालयोंकी जाँच करनेके लिए कुछ समय पूर्व नियुक्त की गई कमेटीकी सिफ़ारिशके अनुसार उठाया गया है। पाठकोंको स्मरण होगा कि कुछ समय पूर्व उत्तर-प्रदेशके कई अनाथालयों और विधवा-आश्रमोंके बारेमें चौंका देनेवाले तथ्य प्रकाशमें आए थे। पर आमतौरसे अपवादोंको छोड़कर आज देशके अनाथालयोंमें क़साईका-सा व्यवहार होता है। बच्चोंके साथ और उनके शारीरिक तथा मानसिक विकासको आघात पहुँचता है। और विधवा-आश्रमोंका तो नाम ही जैसे अनैतिक व्यापारके अड्डों का पर्यायवाची बन गया है। इस स्थितिसे बच्चों और स्त्रियोंका सुधार या उद्धार केवल देख-रेख हीसे हो सकेगा, यह संदिग्ध है। ज्यादा अच्छा तो यह हो कि सरकार और सार्वजनिक संस्थाएँ मिलकर कोई ऐसी व्यवस्था करें, जिससे ये बच्चे और स्त्रियाँ 'अनाथ' और 'विधवा' का मार्का लगजानेसे उम्रभर समाजसे अलग और बहिष्कृत न रहें। इनके प्रति समाजकी धारणामें आज आमूलचूल परिवर्त्तन होनेकी आवश्यकता है।

भिखमंगोंकी समस्या

जनसंख्या विभागकी ओरसे प्रकाशित आँकड़ों के अनुसार १९११में जहाँ सारे भारतमें भिखारियोंकी संख्या २५ लाख थी, १९५१ में वह केवल ५ लाख ही रह गई है! पता नहीं ये आँकड़े किस तरह संकलित किए गए हैं। पर पिछले ४० वर्षोंमें देशकी आम आबादी, अनाथों और मुफ़लिसोंकी संख्या और भीख माँगनेकी कलामें हुई व्यावसायिक उन्नतिको देखते हुए सहज ही इनपर विश्वास सा नहीं होता। तीर्थों और बड़े-बड़े शहरोंमें तो निश्चित रूपसे इनकी संख्यामें वृद्धि हुई है। पर संख्यासे ज्यादा इनकी समस्या समाज और शासनके लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है। जिस देशमें 'दान' को पुण्य माना जाता है, वहाँ भीख माँगना हेय नहीं समझा जाता। अतः यहाँ यह व्यवस्था करनेके लिए कि किसीको किसीका मुहताज न होना पड़े, माँगनेपर मजबूर न होना पड़े, शासन और समाज दोनोंको ही अधिक परिश्रम और सूझ-बूझसे काम लेना पड़ेगा।

ईश्वरीय चमत्कार

धर्म और ईश्वरके नामपर जो व्यापार चलते हैं, उनमें चिकित्सा-व्यापार सबसे अधिक प्रचलित और लाभदायक है। अज्ञान और अंधविश्वासके प्रतीक धर्मकी ओटमें ताबीज़ डोरा, राख और टोना-टोटकासे किस रोगके इलाजका ठेका नहीं लिया जाता? अमरीकाके प्रेस्बीटेरियन चर्चके ९५वें सम्मेलनने इस चिकित्सा-प्रणालीकी घोर निन्दा की है। पर भारत और एशिया-अफ्रीकामें अभी भी इसका बोलबाला है। कोलम्बोका २० जूनका एक संवाद है कि वहाँ किसीने एक ऐसी दवाका विज्ञापन किया कि जिसे ग्रहणके दिन सेवन करनेसे बूढ़े भी जवान हो जायँगे! फलतः बहुतोंने उसे आज़माया और कोई बीस हज़ार आदमी इस बुरी तरह बीमार पड़े कि अस्पतालों, डाक्टरों और नर्सोंके लिए उन्हें सम्हालना तक मुश्किल हो गया। अभी तक पता नहीं चला है कि लंका-सरकारने अपराधीके प्रति क्या किया या सोचा है। पर समाजके ऐसे शत्रुओंको कड़ी सजा मिलनी चाहिए।

मयूराक्षी-बांधका महत्त्व

११२ फुट-ऊँचे मयूराक्षीके बांधका निर्माण समाप्त हो गया है। यह पश्चिमी बंगालकी सबसे बड़ी सिंचाई-योजनाका निर्माण है। इसके अन्तर्गत चावल-उत्पादनका १,४०० वर्गमीलका क्षेत्र आता है। इससे वीरभूम, मुर्शिदाबाद और बर्दवान-जिलोंके खरीफ़ (जून-अक्टूबर) के ६००,००० एकड़ और रबी (नवंबर-मई) के १२०,००० एकड़ खेतोंकी सिंचाई हो सकेगी और संथाल-परगनाके खरीफ़के २०,००० और रबीके ५००० एकड़की। इससे वर्षा-ऋतुके बाद ४,००० और साल-भर २००० किलोवाट बिजली पैदा होगी, जो सिंचाईके लिए पानी उठाने तथा बंगाल और बिहारमें चलनेवाले सामूहिक विकास-कार्योंके लिए दी जायगी। जिस ४० हज़ार एकड़ भूमिको इससे सिंचाईके लिए पानी मिलेगा, उसकी १९५४ की फ़सलसे ज्ञात होता है कि चावलके उत्पादनमें प्रति एकड़-मनमें ६ मन तक वृद्धि हो सकेगी। बाँधमें जमा होनेवाले पानीका फैलाव ऊपरकी ओर १९,००० एकड़ तक होगा। इसके कारण जो १४ हज़ार व्यक्ति विस्थापित होंगे, उनके पुनर्वासपर लगभग दो करोड़ रुपए खर्च होंगे।

हुगलीको साफ़ रखनेकी योजना

भारत-सरकारने हुगली नदीकी सफ़ाई और ख़ास तौरसे फुल्टा, निनान और जेम्स तथा मेरी रीचेज़को ठीक अवस्थामें रखनेके लिए २·३ करोड़ खर्च करना स्वीकार किया है। पिछले छ वर्षोंसे इस बातका अध्ययन किया जा रहा है कि जहाँ दामोदर और रूपनारायण आकर हुगलीसे मिलती हैं वह स्थान कुछ ऐसा हो गया है कि एक तो उसमें नौका-संचार, मुश्किल है; दूसरे उस कारण नदीमें इतनी मिट्टी आकर गिरती है कि एक तो नदीको गहरा रखनेके लिए अधिक सफाई करनी पड़ती है, दूसरे फुल्टा, निनान तथा जेम्स और मेरी रीचेज़की स्थिति खराब होती जा रही है। इसलिए पूना के सेंट्रल वाटर एंड पावर-रिसर्च स्टेशनपर प्रयोग करके यह तय किया गया है कि यदि किसी प्रकार उपर्युक्त दोनों नदियोंकी धाराको निमंत्रित कर ठीकसे हुगलीमें मिलाया जाय, तो न सिर्फ उक्त स्टेशनोंकी ही रक्षा हो जायगी, बल्कि नदीकी सफ़ाईका काम भी कम हो जायगा।

विस्थापितोंका पुनर्व्यवास

१ जुलाई, १९५४ से अबतक पश्चिमी बंगालमें २७ लाखके लगभग विस्थापित आए हैं। इनके पुनर्आवासके लिए केन्द्रीय सरकारने दूसरी पंचवर्षीय योजनामें ८६·३७ करोड़ रुपए देने तय किए हैं। पश्चिम-बंगालके सहायता और पुनर्आवास-विभागकी मंत्रिणी श्रीमती रेणुका रायने इसका विवरण बतलाते हुए कहा है कि इसमें से ४७·२६ करोड़ रुपए तो विस्थापितोंको उनके विकास-कार्योंके लिए कर्ज़ दिया जायगा और १३ करोड़ उनके पुनर्आवासपर ख़र्च किया जायगा, जिस मदमें २६·१ करोड़ आगे चलकर ख़र्च होगा। आपने बताया कि चूँकि पूर्वी बंगालसे अभी बराबर लोग आ रहे हैं और इन सबको जमीन देना सरकारके बसकी बात नहीं; अतः सरकारने तय किया है कि विस्थापित खेती अथवा मकान बनानेके लिए ज़मीनकी व्यवस्था स्वयं करें। सरकार इसके लिए उन्हें कर्ज़-भर देगी। ८५ लाख रुपया शिक्षापर ख़र्च किया जायगा। शहरोंमें इनके लिए बस्तियों, सड़कों, बिजली और स्वास्थ्य-व्यवस्थापर १६·२१ करोड़ ख़र्च किया जायगा। जहाँ विस्थापितोंका जमाव अधिक है, ऐसी ५० म्युनिसिपैलिटियोंको ३·४४ करोड़की सहायता दी जायगी। ९·६ करोड़ रुपया कुटीर-शिल्पके लिए अलग रखा गया है। ५ करोड़की लागतसे दो कमरोंके छोटे घर बनाए जायँगे, जो विस्थापितोंको भाड़े दिए जा सकेंगे। उनके लिए भूमि प्राप्त करनेमें २.५ करोड़ व्यय होगा। विस्थापितोंके बच्चोंकी शिक्षाके लिए ७५ लाख की लागतसे १००० प्राथमिक और ६ लाखकी लागतसे १० बुनियादी शिक्षण-केन्द्र खोले जायँगे। २·५२ करोड़ यक्ष्माके रोगियोंके लिए ३००० बेडकी व्यवस्था करनेपर खर्च होंगे।

पीड़ितोंकी सहायता

गत वर्ष पश्चिम-बंगालके अनेक भागोंमें बाढ़से काफ़ी क्षति हुई थी और इस वर्ष १४ में से ९ जिलोंमें सूखा पड़नेसे खेतिहर लोगोंकी स्थिति काफ़ी बिगड़ गई। इनकी सहायतार्थ सरकारने कई निर्माण-कार्य शुरू किए हैं। मिदनापुर-ज़िलेमें लगभग एक लाख आदमियोंको नई सड़कें बनानेके काममें लगाया गया है। इसी प्रकार बाँकुड़ामें २५०००; कूचबिहारमें १९,०००; माल्दामें ९,०००;

वीरभूममें ३,०००; हुगलीमें २,०००; जलपाईगुड़ीमें २,००० और हावड़ामें १,००० को काम दिया गया है। इसके अतिरिक्त गत १ अप्रैलसे सरकार पीड़ितोंकी सहायतार्थ ४४ लाख रुपएके २५०,००० मन चावल बँटवाए हैं और १६ लाख रुपए कमकरोंको वेतनके रूपमें दिए हैं।

आदिमवासियोंमें सहायता-कार्य

गत १३ जूनको शिलांगमें उच्चाधिकारियोंके सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए आसामके गवर्नर श्री जयरामदास दौलतरामने बतलाया कि दूसरी पंचवर्षीय योजनामें अन्यान्य लोगोंके साथ उत्तर-पूर्वी सीमा-प्रदेशके आदिवासियोंकी उन्नतिके लिए भी बहुत-कुछ किया जायगा और इस कार्य में उनका अधिकाधिक सहयोग प्राप्त करनेकी चेष्टा की जायगी। सबसे पहले ध्यान दिया जायगा कृषिकी उन्नतिपर, ताकि लोगोंको पर्याप्त अन्न मिले और कुछ बच भी रहे, जिससे उनकी क्रय-शक्ति बढ़े। दूसरा स्थान संवहन और संचारके साधनोंकी उन्नतिपर दिया जायगा, ताकि अन्यान्य भागवालोंके साथ आदिवासियोंका आवागमन और संपर्क-सम्बन्ध बढ़े। शिक्षित आदिवासियोंको अधिक नौकरियाँ देनेकी ओर भी ध्यान दिया जायगा।

जंगली हाथियोंसे कृषि-कार्य

उत्तर-प्रदेशमें जंगली हाथियोंकी संख्या जिस अनुपात में बढ़ी है, उनके द्वारा होनेवाली कृषि और बस्तियोंकी हानि भी उसी अनुपातमें बढ़ी है। जंगलात-विभागका कहना है कि केवल हरद्वार और रामनगरके बीच ही कोई १००० जंगली हाथी उपद्रव मचाते घूमते रहते हैं। पीलीभीत-ज़िलेमें शारदा नदीके किनारे पूर्वमें तनकपुर तक अनेक झुण्ड घूम रहे हैं। इन्होंने कालागढ़ और रामनगर में कई कीमती पेड़ उखाड़ फेंके, आदमियोंको मार डाला और अनेक बस्तियोंको उजाड़ डाला। पहले महायुद्धके बाद से बलरामपुरके जंगलोंमें हाथियोंको पकड़नेका जो काम होता रहा है, उसे कई अन्य स्थानोंपर भी शुरू किया गया है। नाशके बदले अब इन्हें खेतीके काममें सहायक होना सिखलाया जा रहा है। हालही में उत्तर-प्रदेशके भूतपूर्व मुख्य-मंत्री पंतजीने दिल्लीके लाल कुएँमें हाथी द्वारा हल जोतनेका एक प्रदर्शन कराया। बैल ही नहीं, ट्रैक्टरसे भी हाथी अच्छा जोतता है और जहाँ ट्रैक्टर केवल ५ साल चलता है, हाथी ३०-४० वर्ष तक काम दे सकता है!

कृषिकी उन्नतिकी योजना

पिछले महीने दिल्लीमें केन्द्रीय और राजकीय कृषि-अफ़सरोंकी एक बैठकमें दूसरी पंचवर्षीय योजनाके अन्तर्गत कृषिकी उन्नतिके सम्बन्धमें विचार-विनिमय हुआ। इसी योजनाके अन्तर्गत एक करोड़ टन खाद्यान्न, १० लाख गाँठ पाट, १३ लाख गाँठ रूई और २६ लाख टन ऊखके लक्ष्य स्थिर किए गए। उत्पादनकी इस वृद्धिको समस्त राज्यों में बाँटा गया है। ३४ विचाराधीन योजनाओंमें से स्वीकृत २० योजनाएँ केवल कृषि-उत्पादनकी वृद्धिसे संबंध रखती हैं। इनमें सिंचाईकी व्यवस्थाके साथ कुएँ खुदवाना, नलकूप बनवाना, कृषि-शिक्षाका प्रसार और उत्पादन-वृद्धिके लिए कर्ज़ देना आदि प्रमुख हैं। योजनाओंके अनुसार कोई ५ हज़ार कुएँ और नलकूप बनाए जायँगे और ३८ हज़ार कार्यकर्त्ताओंको उन्नत कृषिकी शिक्षा दी जायगी। दूधका उत्पादन बढ़ानेके लिए ३० नगरोंमें सहयोगी आधार पर दुग्धशालाएँ खोली जायँगी। १० दुग्धशालाएँ ग्रामीण क्षेत्रोंमें भी खुलेंगी। बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली आदि बड़े नगरोंमें उन्नत ढंगकी पशुशालाएँ स्थापित की जायँगी और ९ दूध सुखाकर पाउडर बनानेकी मशीनें भी लगाई जायँगी। कृषि-संबंधी अनुसंधानपर ६ करोड़ रुपया खर्च किया जायगा।

समाज-कल्याणका कार्य

उत्तर-प्रदेशकी सरकारने ११ कस्बोंमें शिक्षाप्राप्त समाज-कल्याण-अफ्सरोंको नियुक्त करनेकी निश्चय किया है, जो ज़िला-योजना-समितियोंके सहयोगसे अभावग्रस्त लोगोंकी अर्थनीतिक और सामाजिक स्थिति सुधारनेकी दिशामें कार्य करेंगे। इनका मुख्य कार्य होगा अनाथालयों और विधवा-आश्रमोंकी अवस्था सुधारना, अनाथ स्त्रियोंके लिए कार्यकी व्यवस्था करना, इनके लिए नए केन्द्र और आश्रम खोलना, भिखमंगों और अपाहिजोंके लिए कार्यकी व्यवस्था करना। फिलहाल कुछ संस्थाओंको सरकार अपने हाथमें ले तथा उन्नत रूप देकर उन्हींकी मार्फ़त इन कार्योंको अग्रसर करेगी। बम्बई, सौराष्ट्र और कच्छके समाज-कल्याण-कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन पिछले दिनों बम्बईमें हुआ था, जिसमें जन-साधारणकी अर्थनीतिक स्थिति सुधारनेके सिवा स्त्रियों और बच्चोंके साथ न्याय करनेकी बातपर भी ज़ोर दिया गया। बम्बईके मुख्य मंत्री श्री मुरारजी देसाईने कहा कि बिना इसके हमारे विकासका कार्य विशेष ठोस और स्थायी न होगा। केन्द्रीय समाज-कल्याण-बोर्डकी अध्यक्षा श्रीमती दुर्गाबाई देशमुखने बतलाया कि बोर्डकी ओरसे पिछले २० महीनोंमें समाज-कल्याण-संबंधी २१० योजनाओंके अन्तर्गत १००५ केन्द्र खोले जा चुके हैं। इनका एक उद्देश्य अर्थनीतिक दृष्टिसे महिलाओंको आत्म-निर्भर बनाना भी है।
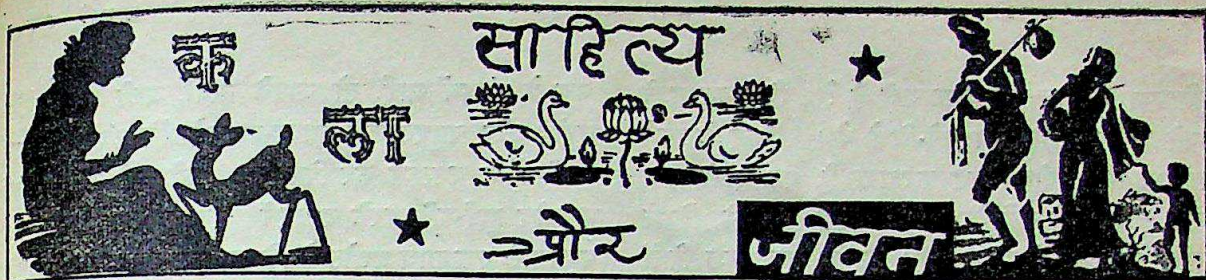
ख़ौफ़नाक कौमिकोंपर पाबन्दी

पिछले कुछ दिनोंसे भारतमें ख़ौफ़नाक और आतंकपूर्ण कौमिकोंका आयात बहुत बढ़ गया था, जिसके ख़िलाफ़ देशके अनेक विशिष्ठ व्यक्तियोंने आवाज़ उठाई। आखिर सरकारको सी-कस्टम्स एक्टकी धारा १९ के अनुसार ऐसे अवांछनीय और ख़ौफ़नाक कौमिकोंके आयातपर पाबंदी लगानी पड़ी है, जिनमें हिंसा, अपराध-वृत्ति, क्रूरता, पशु-बलके प्रयोगकी प्रशंसा और ऐसे ही कुरुचिपूर्ण दृश्य हों, जिनका कोमलमति किशोरों और युवकोंके मस्तिष्कपर बुरा असर पड़े। कहते हैं कि सबसे पहले नेहरूजीने ही इस ख़तरेको देखा, जो पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं और फिल्मों के रूपमें बेतहाशा इस देशमें आ रहे हैं और देशकी नई पीढ़ीका दिमाग़ ख़राब कर रहे हैं। पर देशमें भी जो ऐसा अथवा इसीसे मिलता-जुलता साहित्य बेधड़क बिक रहा है, उसका प्रचार रोकनेके लिए भी तो कुछ होना चाहिए।

गन्दी फिल्मोंका कुप्रभाव

ख़ौफ़नाक कौमिक तो पुस्तकों या पत्र-पत्रिकाओंके रूप में पढ़े-लिखोंका ही दिमाग़ ख़राब करते हैं; पर गंदी फिल्में तो इनके सिवा बिना पढ़े-लिखोंका दिल और दिमाग़ भी फेर देती है, क्योंकि उनमें हाव-भावके प्रदर्शन, गानों और व्यावहारिक ढंगसे सारी बातें कहीं अधिक आकर्षक बना दी जाती हैं। फिर फ़िल्मोंका प्रचार भी कहीं व्यापक है। इस दृष्टिसे गंदी फिल्मोंसे होनेवाली हानि भी कौमिकोंसे कहीं व्यापक है। पर इनके संबंधमें सरकारने काफ़ी हो-हल्ला करके भी अभी कोई कड़ा और प्रभावपूर्ण क़दम नहीं उठाया है। गत २१ जूनको पोपने फिल्म-निर्माताओंसे अपील की है कि वे गंदी, अनैतिक और वर्जनाओंपूर्ण फिल्मों को छोड़कर अच्छी, भद्रतापूर्ण और सुन्दर फिल्मोंका निर्माण करें। आपने सरकारसे अपील की है कि जिन फिल्मोंसे व्यक्ति और परिवारोंकी मर्यादा, भद्रता और नैतिकता नष्ट हो, उनके ख़तरनाक कुप्रभावसे जनताको बचानेके लिए कड़ी कार्यवाही की जानी चाहिए। क्या भारत-सरकार भी इस दिशामें कुछ करेगी?

विदेशी-नाटकोंका भारतीयकरण

नाटकीय तत्वकी दृष्टिसे दुनियाकी प्रायः सभी भाषाओं में ऐसे श्रेष्ठ नाटक हैं, जिन्हें थोड़ा-बहुत बदलकर किसी भी भाषाके जानकारोंके सामने रखा जा सकता है। शेक्स-पीयरके नाटकोंके अनुवाद भी काफ़ी सफलतापूर्वक खेले गए हैं। पर जिन विदेशी नाटकोंका भारतीयकरण हुआ है, उनकी सफलता कहीं बढ़ी-चढ़ी है। पिछले दिनों बहुरूपी (कलकत्ता) ने आस्कर वाइल्डके एक नाटकका 'दशचक्र' नामसे भारतीयकरण किया, जो काफ़ी सफल रहा। हाल हीमें देहरादूनके दून-स्कूलने प्रसिद्ध जर्मन-लेखक पाल वुल्डियसके नाटकको 'यूथ एट दि हैल्म' नामसे अँगरेज़ीमें पेश किया। इसमें एक ऐसे आवाराका चित्रण है, जो अपने व्यक्तित्वके बलपर लोगोंको ठगता है और यह कहकर कि 'आप तो सब-कुछ जानते ही हैं!' छात्रोंके अभिनयने सचमुच नाटकमें बड़ी जान डाल दी। अच्छा हो यदि यह कार्य अब भारतीय भाषाओंमें हो।

रेडियो-नाटक और रूपक

अखिल-भारतीय रेडियोके विभिन्न केन्द्रोंसे अब भाषणों और संगीतके अतिरिक्त नाटक, रूपक, काव्य आदि भी प्रसारित होने लगे हैं। पढ़ने या देखनेवाले नाटक-रूपक के मुक़ाबलेमें श्रव्य नाटक लिखना और सारे भावों-प्रति-क्रियाओंको केवल सुनाकर श्रोताको हृदयंगम कराना आसान नहीं। टेकनीकके सिवा कम शब्दों और कम समयमें सब-कुछ बता देना भी उतना ही कठिन है। अतः सभी रेडियो-स्टेशनोंसे अच्छे नाटक-रूपक प्रसारित हों, यह संभव भी नहीं। पर जो नाटक-रूपक प्रसारित हों, वे कम भले ही हों, पर हों अच्छे। इस विषयपर कुछ दिनों पहले दिल्लीसे श्री भगवतीचरण वर्माका एक भाषण भी प्रसारित हुआ था। पर इधर हिन्दीके कुछ नाटक और रूपक सुनकर हमें निराशा हुई। उदाहरणके लिए दिल्लीसे प्रसारित श्री सत्यदेव शर्माका कबीर-संबंधी रूपक अनेक दृष्टियोंसे बड़ा बेतुका और अस्वाभाविक था। कबीर अपने प्रगतिशील विचारों, अंधविश्वास-विरोधी दर्शन, मानवताके प्रबल हिमायती और सच्चे समाज-सुधारकके रूपमें सर्वविदित हैं। पर रूपकमें अधिक ज़ोर इस बातपर दिया गया कि ईश्वर एक है और उनकी स्त्री लोईकी उनके प्रति कितनी आस्था थी! कबीरके जीवन, दर्शन और

साहित्यका श्रेष्ठतम अंश क्या यही है? फिर यह सभी जानते हैं कि कबीर कम पढ़े-लिखे थे। किन्तु लेखकने जिस भाषाका प्रयोग उनसे करवाया है, वह मानो सन्त कबीर नहीं, किसी अभिनेता कबीर द्वारा दूसरेकी लिखी बातोंको उगलवा दिया गया है। इसी प्रकार कुछ दिनों पहले प्रसारित श्री चिरंजीतका 'खज़ानेका साँप' भी ज़रूरतसे ज्यादा करुणापूर्ण और दयनीय हो गया था। पता नहीं, इस लापरवाही और हल्केपनके साथ प्रसारित होनेवाली इन कृतियोंमें संबंधित अधिकारियोंको क्या लाभ दिखाई देता है?

राष्ट्रीय संगीत-समारोह

रेडियोसे गंदे फिल्मी गानोंके बंद होनेसे जो क्षुब्ध हों, उनकी बात तो हम नहीं कहते, अन्यथा इधर रेडियोके संगीत-प्रोग्रामोंमें ख़ासा अच्छा सुधार हुआ है। पक्के राष्ट्रीय संगीतको मिले प्रोत्साहनने तो एक तरहसे उसे पुनरुज्जीवित ही कर दिया है। पिछले दिनों प्रसारित हुए रेडियोके राष्ट्रीय संगीत-समारोहको जिसने तनिक भी ध्यानसे सुना, उसे अवश्य ही यह सुखद अनुभव हुआ होगा। लक्ष्मीबाई जाधवका संगीत अपनी श्रेष्ठता, उनके गलेके सुरीलेपन, आवाज़की मधुरता और भजनके भावोंमें आत्म-विभोर हो जानेकी विभूति तो जैसे जादूका-सा काम कर गई। मिस्र-देशमें गाए गए उनके भजन और साथमें गुलाम सबीरकी सधी हुई सारंगी मानो अमृत और मिश्रीका संयोग सुलभ कर रहे थे। हाँ, गुलामअहमदका तबला कभी-कभी रस-भंगका आभास अवश्य करा देता था। उस्ताद अलादियाखाँका 'तिलवारा' अपने अस्थायीमें ही श्रोताओंको मंत्रमुग्ध करने लगा। आपका 'बड़ा ख्याल' भी ख़ासा जमा। पर राग कान्हड़ा, विहाग और गांधार उतने नहीं जमे। अन्तमें मिस्र-देश और मालकोसमें गाए गए भजन काफ़ी अच्छे रहे।

भारतीय कलाकारोंकी विदेश-यात्रा

विदेशके जो लोग भारतको भी एशियाके अनेक देशों और अफ्रीकाकी तरह जंगली, असभ्य और कलाहीन समझते थे, उन्हें भारतीय कलाके सामान्य प्रदर्शन देखकर ही जैसे एक नई दुनिया दिखाई देने लगी है। शान्तारावके नृत्यों ने (लंदनमें पूरे तीन घंटेतक उन्होंने भरतनाट्यम्का प्रदर्शन किया!) अनेक देशोंमें उदयशंकर और रामगोपालकी नृत्य-परम्परामें मानो चार चाँद लगा दिए। पिछले दिनों जब वे लंदनमें आईं, तो आपके नृत्यों, अली अकबरखाँके सरोद और चतुरलालके तबला-वादनने जैसे लंदनके कला-पारखियोंको चमत्कृत कर दिया। और तो और लंदनमें भारतीय हाई-कमिश्नरके दफ़्तरमें काम करने और वहाँ पढ़नेवाले एक छात्र प्रद्योत सेनके तानपूरा-वादन तकने लोगों को मुग्ध कर दिया। येहूदी मेनूहिनके इसराज-वादन पर तो लोग झूम उठे। सोमशेखर अनन्तकी अध्यक्षतामें एक दूसरा कला-मंडल केन्द्रीय यूरोपका भ्रमण कर रहा है। एक तीसरा दल वैदेशिक विभागके श्री ए० के० चंदाकी अध्यक्षतामें चीन तथा अन्य पूर्वी देशोंका दौरा कर रहा है। पीकिंगमें तो इसके प्रदर्शन देखनेकी उत्सुकता इतनी बढ़ी कि पहले दिन सुबह सात बजे ही रातके प्रदर्शनके सारे टिकट बिक गए। अब्दुलहलीम जाफ़रखाँके इकतारे, देवव्रत विश्वासके रवीन्द्र-संगीत, मुन्नेखाँ और प्रेमवल्लभके मृदंग, पलुस्करके भजनों और उत्तर-पूर्वी तथा पश्चिमी भारतके नृत्योंने दर्शकोंको मंत्र-मुग्ध कर दिया। यह दल उत्तर-पूर्वी एशियाके कई नगरोंका भ्रमण कर रहा है। निश्चय ही इसने बाहर भारतका नाम उज्ज्वल किया है और उसके प्रति आदर और श्रद्धाकी भावना बढ़ाई है।

रवीन्द्रनाथके चित्रोंकी प्रदर्शनी

कलकत्तेमें गत मास पहली बार विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरके चित्रोंकी प्रदर्शनी हुई, जिसका उद्घाटन राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबूने किया। आपने कहा—"रवीन्द्रनाथ कवि, गीत-कार, संगीतज्ञ और नाटककारके रूपमें तो विश्व-विश्रुत हैं; पर चित्रकारके रूपमें उतने प्रसिद्ध नहीं हैं। इसका कारण यह नहीं कि उनके चित्र प्रशंसाके योग्य नहीं; बल्कि यह कि उन्होंने चित्रांकन काफ़ी वृद्ध होनेपर आरंभ किया और उनका विशेष प्रचार-प्रसार नहीं कर पाए।" एक बार किसीने कवि गुरुसे पूछा कि आपके चित्रोंका आखिर आशय क्या है? इसपर उन्होंने मुस्कराकर कहा—'यह बात मेरे समझानेकी नहीं, स्वयं चित्रोंके प्रकट करनेकी है!" और सचमुच इस प्रश्नका इसके सिवा और कोई उत्तर नहीं। प्रदर्शनीमें रवीन्द्रनाथके १०२ चित्र और रेखाचित्र हैं। सरकार इन्हें तथा कवि गुरुके अन्यान्य चित्रोंको राष्ट्रीय चित्र-प्रदर्शनीके लिए लेनेकी व्यवस्था कर रही है, ताकि इन्हें सुरक्षित रखा जा सके। इन चित्रोंमें कवि गुरुके मन और व्यक्तित्वकी जो झाँकी मिलती है, वह उनकी अन्य साहित्यिक कृतियोंमें संभव एवं सुलभ नहीं।

हमारे पड़ोसी देश : लेखक––स्व० रघुराजसिंह 'रंजन'; प्रकाशक––विद्यामंदिर-प्रकाशन, ग्वालियर ; पृष्ठ १४२; मूल्य २।।)

एक समय हमारे आजके सुदूर-पूर्वके पड़ोसी हमारी ही संस्कृतिका एक अंग थे, पर आज हम उन्हें पाश्चात्य लेखकोंके भ्रांतिपूर्ण विवरणोंसे ही जानते हैं। यह प्रसन्नता और संतोषसे बढ़कर गौरवकी बात है कि इतनी शताब्दियोंकी उथल-पुथलके बाद भी आज इन देशोंमें वह संस्कृति जीवित-जाग्रत है। और भारत तथा इन देशोंके स्वाधीन हो जाने के कारण आज आवागमन अधिक सुगम हो गया है। इसलिए रंजनजीने स्वयं स्याम, कम्बुज, सिंहल आदिकी यात्रा कर उनके आधुनिक रूपोंकी कुछ झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। हर भारतीयके लिए यह परिचय बड़े कामका है। लिखनेकी शैली बड़ी विशद और रोचक है।

नेपालकी कहानी : लेखक––काशीप्रसाद श्रीवास्तव; प्रकाशक––आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली; पृष्ठ २९३; मूल्य ८)

नेपाल हमारा पड़ोसी ही नहीं, हिमालय-घाटीका भारत का एक अभिन्न अंग है। पर दुर्भाग्यवश विदेशी शासनके कारण उससे हमारा सम्बन्ध लगभग टूट-सा ही गया। इधर नए राजनीतिक पट-परिवर्त्तनके कारण उसका महत्व और भी अधिक हो गया है। पर हिन्दीमें नेपालका कोई संगोपांग परिचय अभी तक सुलभ नहीं था। प्रस्तुत पुस्तक इस कमीको बड़ी अच्छी तरह पूरा करती है। इसमें नेपालकी आर्थिक पृष्ठभूमि, प्राकृतिक और राष्ट्रीय रूप-रेखा तथा राजनीतिकी सविस्तार चर्चा की गई है। नेपाल और भारतके हर नागरिकके लिए पुस्तक बड़े कामकी है। पर इसका मूल्य बहुत ज्यादा है।

संतुलन : लेखक––प्रभाकर माचवे; प्रकाशक––आत्माराम एन्ड संस; दिल्ली; पृष्ठ १९२; मूल्य ४)

हिन्दीमें आलोचना-साहित्यका काफ़ी अभाव है। जो साहित्य प्रकाशमें आ रहा है, वह काफ़ी एकांगी, पूर्वाग्रह-पूर्ण और कभी-कभी तो वितंडावादी भी होता है। माचवेजी की यह पुस्तक इन दोषोंसे काफ़ी बरी है। इसमें समीक्षाके सिद्धान्त-पक्षकी चर्चा ही प्रमुख है। पुस्तकका प्रथम भाग 'कला और साहित्य'पर बड़ा अध्ययन और विवेचनापूर्ण है। दूसरेमें आधुनिक कविताकी सभी प्रचलित प्रवृत्तियोंकी चर्चा की गई है। तीसरे भागमें इसी तरह आधुनिक गद्यकी विवेचना है। पुस्तककी शैली बड़ी रोचक और रचनात्मक तथा लेखककी अध्ययनशीलताकी परिचायक है। साहित्यके अध्येत्ताओंके लिए पुस्तक बड़े कामकी है।

ग्राम्य-गीतोंमें करुण-रस : संपादिका––सीतादेवी, लीलावती एवं दमयन्ती देवी; प्रकाशक––युगान्तर प्रकाशन लि०, दिल्ली; पृष्ठ १२४

ग्राम्यगीतोंके संरक्षणके जो भी अल्पाधिक प्रयास इन दिनों हो रहे हैं, उन्हींमें से यह प्रस्तुत भी एक जान पड़ती है। महिलाओंके अन्तर्मनसे करुणा एवं शृंगार रसोंका जो स्वाभाविक स्वच्छंद स्रोत प्रवाहित होता है और उससे जो अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता है, उसका सहज वर्णन इनमें पठनीय है। गीतोंका तारतम्य जन्मजात उद्भुत शब्दोंके प्रस्फुटनसे ही है। जहाँ तक ग्राम्यगीतोंका सम्बन्ध है, उसमें नानाविध छन्द-शास्त्र-सम्मत वाह्य अस्वाभाविकता लाना उपयुक्त भी नहीं लगता। उसके लिए व्याकरणके बन्धन, पिंगलालंकारोंकी सजावट नगण्य है। पुस्तकके उत्तरार्धमें संस्कृतके कतिपय प्राचीन एवं हिन्दीके आधुनिक कवियोंकी कविताएँ संगृहीत हैं। पता नहीं इन्हें जोड़नेमें सम्पादिकात्रयका क्या अर्थ निहित था ! वैसे अपने विषय का यह संग्रह अच्छा और हृदयस्पर्शी है।

प्रेमचंद और गोर्की : संपादिका––शचीरानी गुर्टू; प्रकाशक––राजकमल प्रकाशन लि०, दिल्ली; पृष्ठ ५८५; मूल्य १२)

आलोच्य पुस्तकमें गोर्की और प्रेमचंदके जीवन और साहित्यकी विवेचनामें लिखे गए ५७ निबंध संगृहीत हैं। इनमें से कुछ निबंध शुद्ध साहित्यिक विवेचना के रूप में

लिखे गए हैं और कुछ नारावादी तथाकथित प्रगतिशीलता के ढंगपर। विदुषी लेखिकाने आरंभमें ही यह स्पष्ट कर दिया है कि गोर्की और प्रेमचन्दको एक साथ रखनेका यह मन्तव्य कदापि नहीं है कि वे पूरी तौरपर यकसाँ अथवा उन्हें छोटा-बड़ा या एक-दूसरेसे ही हीन या श्रेष्ठ सिद्ध करनेका उद्देश्य है। यह केवल समान प्रवृत्तिवाले दो कलाकारोंको गंभीर विचार-मंथन द्वारा समझनेकी प्रयत्न है। पर यथार्थमें दो लेखोंको छोड़कर ३३ लेख प्रेमचन्द और उनके साहित्य-विषयक हैं तथा २३ गोर्की-संबंधी। विवेचित विषय और वस्तुकी बहुत-कुछ समानताके बावजूद प्रेमचन्दकी रचनाओंमें कहीं भी उस श्रेणी-संघर्षका आभास नहीं है, जो गोर्कीके साहित्यका मूलाधार था। और दृष्टिका यह भेद बहुत बड़ा और मौलिक है। अतएव दोनोंकी तुलनाका प्रश्न तो उठना ही नहीं चाहिए। हाँ, जन-कलाकारोंके रूपमें दोनोंका स्वतन्त्र दृष्टियोंसे अलग-अलग अध्ययन होना ज़रूरी है। इस दृष्टिसे प्रस्तुत पुस्तकका काफी महत्व है। पर पुस्तकका मूल्य बहुत अधिक है। इससे साधारण पाठक शायद उससे विशेष लाभ न उठा सकें।

भारतीका सपूत : लेखक—रांगेय राघव; प्रकाशक—विनोद पुस्तक-मंदिर, हास्पिटल रोड, आगरा; मूल्य पृष्ठ १५२; मूल्य ३)

प्रस्तुत पुस्तक भारतीके सपूत भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके जीवनसे सम्बन्धित है। इसमें उनके जीवनकी प्रमुख घटनाओंके आधारपर और कल्पनाके योगसे लेखकने उनके दृष्टिकोण, विचार एवं परिस्थितियोंको अधिक स्पष्ट करके रखा है। मनोरंजक तौरपर महापुरुषोंके जीवन-वृत्तांतका यह औपन्यासिक रूप सुन्दर बन पड़ा है। विचारणीय केवल यह है कि इसमें तथ्यके साथ कल्पनाका योग किस दूरी तक किया गया है, क्योंकि इस प्रकारके जीवनी-साहित्यका ऐतिहासिक महत्व भी होता है।

समिधा : लेखक—दयाशंकर मिश्र; प्रकाशक—शारदा-मंदिर, नई सड़क, दिल्ली; पृष्ठ २४०; मूल्य ४)

'समिधा' एक ऐसे व्यक्तिकी आत्मकथा है, जिसके जीवनमें कई नारियाँ आती हैं। वह उनके निकट पहुँचता है, फिर वे किसी-न-किसी कारणसे विलग हो जाती हैं। अतः अनुभूति-क्षेत्र बहुत सीमित है। अनुभूतिमें वह गहराई भी नहीं, जो हृदयको स्पर्श कर सके। पुरुषोंकी अति भावुकता एवं हर तीसरे मिनटपर रोना अस्वाभाविक लगता है।

पंचामृत : लेखक—बालशौरि रेड्डी; हिन्दी-संपादक—श्रीराम शर्मा; प्रकाशक—आंध्र-हिन्दी-परिषद्, हिन्दी-प्रचार-सभा, हैदराबाद; पृष्ठ २२८; मूल्य ४)

प्रस्तुत पुस्तकमें तेलुगुके पाँच प्रतिनिधि कवियों (पोतन्ना, पेदन्ना, वेमन्ना और वेंकट कवि) का संक्षिप्त परिचय और उनकी कुछ उत्कृष्ट रचनाओं (नागरी-लिपिमें) का हिन्दी-भाषान्तर-सहित संकलन किया गया है। हिन्दी-भाषा-भाषियोंके लिए यह संग्रह सुलभकर आंध्र-हिन्दी-परिषद्ने बहुत बड़ा कार्य किया है। इन रचनाओंसे स्पष्ट है भारत-राष्ट्रकी तरह ही माँ-भारतीकी आत्मा भी एक ही है, भारतीय संस्कृति भी एक ही है, जो कि विविध भाषाओं के माध्यमसे व्यक्त हुई है। इन कृतियोंसे मिलते-जुलते भावोंकी रचनाएँ प्रायः सभी भारतीय भाषाओंमें प्राप्य हैं। हमें आशा है, हिन्दी-संसार इसे चावसे अपनायगा।

पहला कहानीकार : लेखक—रावी; प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी; पृष्ठ १९८; मूल्य २॥)

यह रावीजीकी लघुकथाओंका संग्रह है, जिसमें प्रथम कहानीके प्रारंभसे लेकर, मानव-जीवनकी विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया गया है। अनेकानेक पौराणिक एवं आधुनिक जीवनकी पृष्ठभूमिमें इन समस्याओंका समाधान किया गया है। संग्रह रोचक है।

जिप्सी : लेखक—अलेक्सान्दर सेर्गेविच पुश्किन; हिन्दी-अनुवादक—वीर राजेन्द्र ऋषि; प्रकाशक—आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली; पृष्ठ ७७; मूल्य २)

'जिप्सी' पुश्किनकी बड़ी प्रिय और भावपूर्ण रचना है। इसमें क्रान्ति-पूर्व रूसके खानाबदोशोंके जीवन, दुख-सुख, अभाव-अभियोग, प्रेम-विग्रह, मान्यता-मर्यादाओं, आदर्श-परम्पराओं आदिका जितना सुन्दर और काव्यमय चित्रण हुआ है, शायद ही और किसी ग्रन्थमें मिलेगा। इसके पद-पदमें पुश्किनकी प्रतिभा, भाव-प्रवणता, अन्तर्द्वन्द्व और अभिव्यक्तिका चमत्कार जैसे मुँह बोलता है। अनुवादमें इनकी बहुत-कुछ रक्षा हुई है, यह असंदिग्ध रूपसे कहा जा सकता है और यह शायद मूल रूसीसे हिन्दीमें किया गया है, पहला अनुवाद है, जिसके लिए ऋषिजी बधाईके पात्र हैं। पर यह हमारी समझमें नहीं आया कि अनुवादक और प्रकाशकको इस बातका उल्लेख करनेमें शर्म या संकोचका अनुभव क्यों हुआ कि यह पूरी रचना 'नया समाज' (जनवरी, १९५५)में प्रकाशित हो चुकी है!

चीनमें कई जगह सशस्त्र उपद्रव और दमन

अनेक प्रांतोंमें खाद्यान्नका अभाव : पूर्वी जर्मनीमें अशांति

फ्रांसके उपनिवेशोंमें उपद्रव : एक नीग्रोकी हत्या

चीनसे आनेवाली स्फुट खबरोंसे वहाँकी आन्तरिक स्थिति का कुछ पता चलता है। पिछले दिनों हुई चीनी कम्युनिस्टों की मीटिंगमें शायद पहली बार हर क्षेत्र, विभाग और कार्य-कर्त्तापर कड़ी निगाह रखनेका निर्णय हुआ। यद्यपि काओ कांगने बिना अपना अपराध स्वीकार किए आत्महत्या कर ली, तथापि पार्टी द्वारा उसकी निन्दामें पास किए गए प्रस्तावोंमें कहा गया है कि वह अफ़वाह फैलाता था, षड्यंत्र और दलबंदी करता था, अपनी प्रशंसा करता था और केन्द्रीय कमेटीको बदनाम करता था। शेन्सीकी राजधानी सियेन से आनेवाले कम्युनिस्ट पत्रोंमें छपी खबरोंके अनुसार उत्तर-पश्चिमके इस प्रदेशमें सशस्त्र बग़ावत और तोड़-फोड़के प्रयत्न करनेके कारण ५२ व्यक्तियोंको प्राणदंड और ४५० को सख्त क़ैदकी सज़ा दी गई है। कहते हैं कि ये लोग एक अर्ध-धार्मिक प्रतिगामी फौजी दलके सदस्य थे। इसमें से कुछ च्यांगकाई-शेकके एजेण्ट भी हैं। केंटनके कम्युनिस्ट मुखपत्र 'सदर्न डेली' के अनुसार क्वान्तुंग-प्रान्तमें हुई सशस्त्र बग़ावतके फल-स्वरूप १० व्यक्तियोंको प्राण दंड दिया गया और ३६ को कारावास दंड दिया गया। कहते हैं कि यह बग़ावत मकाओ-स्थित च्यांगकाई-शेकके गुप्तचरोंने क्वान्तुंग के चुंगशान ग्रामसे आरंभ की। इसका उद्देश्य शासनको उलट फेंकना था। पीकिंगके दैनिक 'कुआंग मिंग' के अनुसार क्वांगसी-प्रान्तके सुन-यू ग्राममें कम्युनिस्ट-विरोधी मुक्ति फौजके गुप्त अड्डेकी तलाशी लेनेपर बहुत-से शस्त्रास्त्र बरामद हुए हैं। १०-११ मईको ७ क्रांति-विरोधियोंको प्राणदंड दिया जा चुका है। अब तक ६९ बागियोंको प्राणदंड और ४८२को कारावास दंड दिए जा चुके हैं। गत १८ जून को पीकिंग रेडियोने घोषणा की कि राजमंत्रियों ने शासनको उलटनेके लिए गुप्त समितियाँ बनाई हैं, जिन्होंने अपना काम चलानेके लिए मोर्चे और खाइयाँ खोदी हैं तथा हथियार भी बनाने शुरू किए हैं। इनके २७ गुप्त अड्डे बताए जाते हैं। पीकिंगसे १०० मील उत्तर पश्चिमके कलेगान-प्रदेशमें ये किसानोंमें घुल-मिल गए हैं। इनका कार्य बड़े रहस्यपूर्ण ढंगसे होता है।

ग्रामीण क्षेत्रोंमें अभाव और अशांति

गत मई और जूनमें चीनके अनेक भागोंमें हुई बग़ावत और सामूहिक धर-पकड़के पीछे वहाँके ग्रामीण क्षेत्रोंमें पिछले मार्चसे ही हो रहा अन्नाभाव और वितरण-संबंधी धाँधली है, जिसके खिलाफ़ प्रत्येक स्थानपर किसानोंने बग़ावत की है। टुंटसिनके 'ताकुंग पाओ' पत्रने अपने गत ३० मई, १९५५ के अग्रलेखमें लिखा है—"लगभग १५ करोड़ किसानोंको अन्न नहीं मिल रहा है। शासनके उत्पादनकी जो योजना थी, वह पूरी नहीं हुई है।" १४ मई, १९५५ को न्यू चाइना न्यूज़-एजेन्सीने पीकिंगसे भेजे गए अपने एक संवादमें लिखा है, कि अन्नाभावके कारण शेन्सीके ६० हज़ार किसान उत्तर-पूर्वी चीन और भीतरी मंगोलियामें जानेको बाध्य हुए हैं। इसी एजेंसीने सिनानसे १० मईको भेजे गए अपने संवादमें बताया है कि मध्य-मार्चसे अन्नके वितरण और आयोजना-नुसार विक्रयमें हुई धाँधलीके कारण कई ग्रामीण क्षेत्रोंमें स्थिति बड़ी गंभीर हो गई है और किसानोंका नैतिक मेरुदंड टूट रहा है! 'जेन मिन जी' पत्रका कहना है कि अनेक स्थानोंपर किसानोंने अन्न-वितरकोंसे डटकर मुक़ाबला किया है। ग्रामीण क्षेत्रोंमें अन्नाभावके अतिरिक्त वितरणमें होनेवाले पक्षपात, भ्रष्टाचार और चोरबाज़ारीके खिलाफ़ भी लोगोंमें बड़ा असंतोष है। इस प्रकार अन्नाभाव और अन्न-वितरणमें होनेवाली धाँधलीके कारण जो उपद्रव हो रहे हैं, उन्हें निर्ममतापूर्वक दबानेके लिए सरकारने इन्हें क्रांति-विरोधी षड्यंत्र, कुओमिन्तांगके गुप्तचरोंके कार्य आदि कहना शुरू किया है।

वेतनके बदले खाना-कपड़ा

चीनका प्रधान उद्योग और राजस्वका साधन कृषि ही है। उसकी स्थिति खराब होनेसे सरकारी अर्थनीतिपर गहरा असर पड़ा है। कहीं-कहीं चोरबाज़ारीके साथ मुद्रा-स्फीतिके आसार भी नज़र आने लगे हैं। कदाचित् इसीलिए गत १७ जूनको हुई चीनी मंत्रिमंडलकी विशेष बैठकमें यह तय किया गया कि १ जुलाईसे सारे देशके कर्म-चारियोंको 'आर्थिक उजरत' न मिलकर 'वास्तविक उजरत' मिलेगी—अर्थात् वेतनके बदलेमें रोटी, कपड़ा और मकान। गत २० जूनको इसकी घोषणा करते हुए पीकिंग-रेडियोने कहा है कि इस परिवर्त्तनसे सरकारी कर्मचारियोंको जो हानि होगी, उसे समाज-कल्याण-कोषसे कुछ आर्थिक सहायता देकर पूरा किया जायगा!

भारत चीनसे कहीं आगे !

स्टेनफोर्ड-विश्वविद्यालयके दो अर्थशास्त्री प्रो० युवान-लीवू और राबर्ट सी० नार्थ द्वारा हाल हीमें दी गई एक रिपोर्ट में कहा गया है कि कम-से-कम आँसू बहाकर भी भारत औद्योगिक उन्नतिमें चीनसे कहीं आगे है। उद्योगीकरणकी दौड़में जनतांत्रिक और धीमी गतिसे आगे बढ़कर भी भारत जीतता नज़र आता है। प्रति व्यक्ति उत्पादन-वृद्धिके औसतमें भी चीन अभी भारतका प्रतिद्वन्द्वी नहीं हो पाया है, जब कि उसने सारा ज़ोर पूंजी लगानेके कार्यक्रमपर ही लगा दिया है। भारतीयोंके जीवन-स्तरपर और करोंका असह्य बोझ न पड़े, इस दृष्टिसे भारतने जान-बूझकर धीरे-धीरे पूंजी लगानेका रास्ता अख्तियार किया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि जहां भारतमें प्रति व्यक्ति चीज़ोंका उपभोग बढ़ रहा है, चीनमें कम हुआ है। दोनों अर्थ-शास्त्रियोंकी रायमें चीनकी अपेक्षा भारतकी इस उन्नतिका मूल कारण यह है कि वह चीनकी अपेक्षा अधिक विदेशी पूंजी आकृष्ट कर सका है।

पूर्वी जर्मनीमें अशांति

पूर्वी जर्मनीका एक संवाद है : विगत १७ जून, १९५३ को पूर्वी जर्मनीके शोषित-पीड़ित श्रमजीवियोंने रूसी आक्राओं के ख़िलाफ़ खुली बग़ावत की थी। यद्यपि सोवियत टैंकों, मशीनगनों और फौजोंके सामने उन निहत्थोंको झुकना पड़ा था—५६९ व्यक्ति मारे गए, १७४४ घायल हुए और ५००० गिरफ्तार हुए—पर अभाव और अशांतिके कारण तो बने ही रहे। उस निर्मम दमनके दो वर्ष बाद अब फिर वहाँ अभाव-असंतोष बढ़ रहा है। अन्य चीज़ोंकी बात जाने दीजिए, कई ज़िलोंमें मांस, चीनी, चर्बी और आटा मिलना भी दूभर हो गया है। प्रधान मंत्री ओटो ग्रोटवोहलने गत वर्ष फसल अच्छी न होने और लोगोंमें चोरीसे चीज़ें जमाकर रखनेके कारण चीनी, आँटे और शराबके राशनमें कमी करनेकी बात स्वीकार की। चीज़ोंको जमाकर रखनेकी प्रवृत्तिका अंत करनेके लिए अनेक स्थानोंपर पुलिसने चीज़ोंका स्टाक जब्त कर लिया है। १९५४ में खुराकबंदीके खत्म होनेकी बात थी, सो अभी तक भी नहीं हो सकी है। रूस के विधाताओंने सूचना दी है कि वहाँ भी इस वर्ष फसल अच्छी नहीं हुई है, अतः १९५३-५४ में वहाँसे जितना खाद्यान्न आया, इस वर्ष उतना नहीं आ सकेगा। चेकोस्लोवाकिया, हंगेरी, पोलेण्ड और रूमानियामें भी इस वर्ष फसलें बहुत अच्छी नहीं हैं, अतः वहाँसे भी शायद अधिक अन्न न आ सकेगा। एक तो पूर्वी जर्मनीमें वैसे ही मज़दूरोंकी कमी थी, अब इन कठिनाइयोंसे तो और भी लोग भागकर पश्चिममें जा रहे हैं। एक दूसरा कारण यह भी है कि मज़दूरोंको उजरत तो कम मिलती है, पर काम अधिक करनेको मजबूर किया जा रहा है, जिससे वे और भी परेशान एवं असंतुष्ट हैं।

फ्रांसीसी उपनिवेशोंमें उपद्रव

फ्रांसके अफ्रीकी उपनिवेशोंमें आज़ादीका आंदोलन इतना उग्र हो रहा है कि उसे बढ़ने न देनेके लिए सरकार उसे चोरी, लूट और आतंकवादी उपद्रव कह कर दबा रही है। पिछले महीने फ्रांसीसी कैमेरूनके याऊँदे नगरमें प्रदर्शनकारियोंपर चलाई गई गोलीसे अनेक हताहत हुए। गत २ जूनको संयुक्त राष्ट्रसंघकी ट्रस्टीशिप-कौंसिलकी बैठकमें भारतीय प्रतिनिधि श्री ऋषि जयपालने एक तार दिखाकर कहा कि विश्वस्त सूत्रसे ज्ञात हुआ है कि इन उपद्रवों के व्यापक दमनमें ५००० व्यक्ति मारे गए और हज़ारों घायल हुए हैं। एक विमानसे आंदोलनकारियोंपर बम भी गिराए गए, जिनसे काफ़ी क्षति हुई। फौजों द्वारा बेतहाशा ज़ुल्म किया जा रहा है। मोरक्को और एल्जीरियामें भी उपद्रव बहुत व्यापक होते जा रहे हैं। व्यापक लूट-मार और अग्निकाण्डोंको रोकनेके लिए स्फा (ट्यूनीसिया) से १४वीं फ्रांसीसी सेना एल्जीरियामें भेजी गई है। सामूहिक दमन, गोली और हत्याकाण्डसे भी स्थितिपर काबू न पाकर फ्रांसीसी सरकारने सारके अपने राजदूत गिलब्रर्ट ग्रांदवलको मोरक्कोका रेज़िडेंट जनरल बनाकर भेजा है। फ्रांसके प्रधान मंत्रीने अपील की है कि चूंकि एल्जीरिया नाटो में है, अतः इन उपद्रवोंको दबानेमें मित्र-राष्ट्रोंको सहायता करनी चाहिए। फ्रांस-सरकार इसमें सफल नहीं हो रही है, इसका एक सबूत तो यह है कि उपद्रवों और आतंकवादके नामपर शोषित-पेषित जनतापर जो ज़ुल्म-ज़्यादतियाँ की जा रही हैं, उनसे असहमत होकर कई पुलिस और फौजके व्यक्ति भी काम छोड़-छोड़कर भाग रहे हैं। ऐसे कुछ सिपाही तो पेरिसमें भी तलाशी लेने गई फ्रांसीसी पुलिसपर टूट पड़े।

स्वतंत्र जनतंत्रमें मताधिकार

अमरीकाके यूनाइटेड प्रेसका एक संवाद है : जार्ज वेसली ली नामक एक नीग्रो पादरीको इसलिए गोलीसे उड़ा दिया गया कि उसने अन्य अमरीकनोंकी तरह ही स्वतंत्रतापूर्वक अपने मताधिकारका उपयोग करनेका निश्चय किया था। बेल्सोनी (मिसीसिपी) में हुई उसकी शोक-सभामें ४०० के लगभग नीग्रो शामिल हुए, जो काफ़ी चिन्तित और त्रस्त दिखाई पड़ रहे थे। उन्हें बताया गया कि 'किसीने' पादरी जार्जको सूचना दी कि वे मतदाता सूचीसे अपना नाम हटवालें। इसपर उन्होंने कहा कि चूंकि वे अमरीकी नागरिक हैं, उन्हें भी वोट देनेका उतना ही अधिकार है, जितना किसी और अमरीकनको। फलतः उन्हें अपने प्राण देने पड़े !

संयुक्त राष्ट्रसंघके दस वर्ष

आजसे १० वर्ष पहले, २६ जून, १९४५ को, दूसरे महायुद्धमें भाग लेनेवाले प्रमुख देशोंके प्रतिनिधियोंने संयुक्त राष्ट्रसंघके उस घोषणापत्रपर हस्ताक्षर किए थे, जो कि आगे चलकर विश्व-शांति, पिछड़े देशों और लोगोंकी समृद्धि और स्वतन्त्रता, छोटे राष्ट्रोंकी सुरक्षा तथा मानवके मौलिक अधिकारोंका एक नया खरीता, सम्प और समझौतेका एक नया संगठन, बननेवाला था। यद्यपि इस समय तक सर्वत्र युद्धकी लपटें शान्त नहीं हुई थीं, महायुद्धकी भयंकर नाश-लीला और हिरोशिमा-नागासकीमें अणु-बम द्वारा हुए अभूत-पूर्व विनाशकी विभीषिका शांतिकी आकांक्षा और आग्रह को अधिक व्यापक एवं प्राणमय बना रही थी; तथापि मित्र-राष्ट्रोंकी एकता और शान्ति-लिप्साके पीछे दबे-ढँके भय और आशा दोनों ही प्रकट होने लगे थे। भय इस बातका था कि कहीं मतभेदकी यह खाई इतनी चौड़ी न हो जाय कि दिवंगत राष्ट्रसंघकी तरह इसे भी उदरस्थ करले और आशा इस बातकी थी कि संभवतः संयुक्त राष्ट्रसंघ ही सम्प-समझौते द्वारा पारस्परिक मतभेद, अविश्वास और परस्पर संदेहकी प्रवृत्तिको दूर कर सकेगा। तब इस बातकी किसीने कल्पना भी नहीं की थी कि जिस सोवियत संघकी आज़ादी ही नहीं, अस्तित्व तककी मित्र-राष्ट्रोंने आदमी और सामान देकर रक्षा की है, वही उनके शांति-प्रयत्नको विफलकर अपने विश्व-आधिपत्यके स्वप्नको पूरा करनेके लिए दुनियाको फिर युद्धके द्वारपर ला खड़ेगा और जिस संयुक्त राष्ट्रसंघके निर्माणमें उसका भी हाथ रहा है, उसकी सत्ता और प्रभावको परोक्ष रूपसे नष्ट करनेका बीड़ा उठायगा। यद्यपि पिछले दस वर्षोंमें रूस द्वारा ६० बार विशेषाधिकार (वीटो) का प्रयोग किए जाने और उसके प्रतिनिधियों द्वारा सुरक्षा-परिषद् और आम सभाकी लगभग हर बैठकको कटु विवादका मोर्चा बनानेके प्रयत्नके कारण संघ संप और सम-झौतेकी दिशामें उतना काम नहीं कर पाया, जितना कि वह शायद कर सकता था; तथापि उसने युद्धकी ओर बढ़नेसे राष्ट्रोंको रोका तो अवश्य ही। पिछले राष्ट्रसंघकी मृत्यु और दूसरे महायुद्धका एक बहुत बड़ा कारण यह था कि जब १९३५में इटली द्वारा अबीसिनियापर आक्रमण हुआ, तो वह उसे रोक नहीं सका। महीनोंकी बहसके बाद कहीं वह इटलीके खिलाफ़ अंकुश लगा सका, जो हाथीको रोकने के लिए चींटीके प्रयास-से हास्यास्पद और प्रभावहीन थे। इसका परिणाम यह हुआ कि अबीसीनियाके पतनसे पहले ही राष्ट्रसंघकी मृत्यु हो गई और इटलीके बड़े भैया जर्मनी और जापान अपने आक्रमणात्मक युद्धोंकी तैयारी करने लगे। यदि १९५०में दक्षिणी कोरियापर हुए रूस-चीन-प्रेरित आक्रमणका भी प्रभावपूर्ण ढंगसे अवरोध नहीं किया गया होता, तो दक्षिण-कोरिया ही नहीं, आज समूचा एशिया भी कम्युनिस्टोंकी फौलादी एड़ियोंके नीचे कराहता होता और पश्चिमी यूरोपका भाग्य भी अँधेरेमें होता। छोटा होने पर भी यह आक्रमण आततायी कम्युनिस्ट-गुट्ट द्वारा ज़ोर-आज़-माई और उनका रुख देखनेके लिए छोड़ा गया एक शोशा था। यदि इस समय संयुक्त राष्ट्रसंघ भी इस नग्न, निर्लज्ज और बर्बर आक्रमणका प्रतिरोध न कर बहसों, दलीलों और प्रस्तावोंके भँवरमें जा फँसता, तो संघके साथ ही स्वतंत्र जनतंत्रकी अकाल मृत्युके सम्बन्धमें शायद कोई संदेह न था। भविष्यमें भी इस प्रकारकी संभावनाओंसे बचनेके लिए संघके घोषणापत्रमें एक दूसरा विकल्प भी रखा गया है। वह यह कि धारा ५१ के अनुसार छोटे राष्ट्र अपनी सुरक्षा के लिए क्षेत्रीय संगठन बना सकते हैं, यद्यपि इनपर नियंत्रण सुरक्षा-परिषदका ही रहेगा। पर छोटे-बड़े राष्ट्रोंकी सुरक्षा और आक्रमणके प्रतिरोधसे भी बढ़कर जो कार्य संघ की विभिन्न शाखा-संस्थाओंने किया है, वह है मानवके मौलिक अधिकारोंकी महत्ताका प्रचार, ग़रीब और पिछड़े देशोंकी अभावग्रस्त जनताका जीवन-स्तर और स्वास्थ्य-मान ऊँचा करनेको की गई सहायता, यांत्रिक सहायता, उपेक्षित बच्चोंकी विशेष सहायता, शरणार्थियोंकी सहायता तथा विभिन्न देशोंके लोगोंको अधिकाधिक निकट लानेके लिए साहित्यिक एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदानकी व्यवस्था, प्रतिभाशाली छात्रोंके लिए उच्च शिक्षा एवं शोध-कार्यकी व्यवस्था आदि। पर किसी बड़ी शक्तिकी स्वीकृतिसे ही सदस्य होनेकी शर्त्त द्वारा संघने अपनी सदस्यताके द्वार हर राष्ट्रके लिए खुले न रखकर परोक्ष रूपसे अपने घोषित उद्देश्यकी विफलतामें आंशिक योग भी दिया है। चीन को सदस्य न बनने देकर और उपनिवेशोंका खात्मा न कर उसने अपने विरोधियोंको बल पहुँचाया है। कश्मीर,

दक्षिण-अफ्रीका और फारमोसाके बारेमें भी कोई स्पष्ट और कड़ा क़दम न उठाकर उसने उन राष्ट्रोंके असंतोष और संदेह को पुख्ता करनेमें सहायता पहुँचाई है, जो यह कहते और समझते हैं कि वह स्वतंत्र और निष्पक्ष न होकर अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस आदिकी इच्छा और हितोंसे ही अधिक प्रभावित है। एशियाई और बाण्डुंग-सम्मेलन एशियाई और अफ्रीकी राष्ट्रोंके इस असंतोष और संदेहके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं, जिनसे कम्युनिस्ट-पक्षको स्वभावतया बड़ा बल मिला है। पर इन सब त्रुटियों और ख़ामियोंके बावजूद अपने जीवनके पिछले दस वर्षोंमें संयुक्त राष्ट्रसंघने विश्व-शांतिकी रक्षा और विश्व-मानवताके कल्याणके लिए जो-कुछ किया है, उसका महत्व अशेष है। यदि भविष्यमें हर राष्ट्र उसे सौ फ़ीसदी अपने स्वार्थको अग्रसर करनेका मंच ही न बनाकर ईमानदारी और सच्चे मनसे विश्व-कल्याणके उद्देश्यसे उसके घोषित आदर्शोंके अनुसार कार्य करेगा, तो यह असंभव नहीं कि सारे राष्ट्रोंमें पूरा सम्प और समझौता चाहे न हो, पर कमसे कम किसी नएं युद्धके विनाशसे मानवताकी रक्षा तो अवश्य हो सकेगी।

चार बड़ोंका सम्मेलन

अपनी कई प्रकारकी कमियों और सीमाओंके कारण संयुक्त राष्ट्रसंघ सदस्य-राष्ट्रोंके आन्तरिक मामलोंमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता। अतएव अनेक बार अनेक मसले उसके बाहर सुलझानेका प्रयत्न किया जाता है। गत वर्ष हिन्द-चीनके सम्बन्धमें जेनेवामें हुआ सम्मेलन काफ़ी सफल और उपयोगी सिद्ध हुआ। इधर कुछ समयसे अन्तर्राष्ट्रीय तनातनी और युद्धकी संभावना दूरकर शांतिका वातावरण पैदा करनेके लिए अणु और उद्जन बमोंके विनाश, अणु-शक्ति के नियंत्रण एवं उसके सृजनात्मक प्रयोग तथा शस्त्रीकरण के सीमा-निर्धारणकी चर्चा चल रही है। इनपर विचार करनेके लिए शीघ्र ही जेनेवामें चार बड़े राष्ट्रोंका सम्मेलन होने जा रहा है। इससे पूर्व इस सम्बन्धमें जो प्रयत्न हुए हैं, उन्हें विफल करनमें रूसका प्रमुख हाथ रहा है। कदाचित् इसीलिए इस बार आणविक अस्त्रोंके निषेध और प्रचलित शस्त्रास्त्रोंकी कमीका प्रस्ताव उसीकी ओरसे रखा गया है, ताकि इसकी अस्वीकृति और सम्मेलनकी विफलता का दोष कमसे कम उसके सिर तो न मढ़ा जा सके! पर सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि रूसकी आणविक शक्ति कितनी है, उसके पास कितनी सेना और आधुनिक युद्धास्त्र हैं, क्या वह सचाईके साथ इसे प्रकट कर सकेगा? यदि नहीं, तो निषेध और नियंत्रण किस बातका? इस तरह के स्टण्ट वह पहले भी रच चुका है, जिनका एकमात्र उद्देश्य यह प्रोपेगेंडा करना है कि वह तो शान्तिका वातावरण पैदा करनके लिए तैयार है, पर अन्य राष्ट्र सहयोग नहीं देते! जो भी हो, इसके बावजूद विश्व-मानवताके व्यापक हितके लिए इस दिशामें कुछ तो किया ही जाना चाहिए। इसी लिए दुनियाके करोड़ों शान्तिकामी लोगोंकी आँखें इस सम्मेलनपर लगी हैं। सहयोग, सम्प और समझौतेके प्रयत्न तो जितनी बार भी किए जायँ, अच्छे ही हैं।

नेहरूजीकी रूस-यात्रा

अन्तर्राष्ट्रीय तनातनी, अविश्वास और भयके इस वातावरणमें नेहरूजीकी रूस यात्राने बहुतोंके मनमें यह आशा जगाई है कि शायद उनका प्रयत्न स्थितिको सुधारनेमें कुछ सहायक हो। यद्यपि रूसके लिए रवाना होनेसे पहले नेहरू जीने बार-बार कहा कि वे वहाँ किसी खास मसलेपर बात-चीत करने या किसी बारेमें किसी प्रकारकी मध्यस्थता करने नहीं जा रहे; तथापि अन्तर्राष्ट्रीय तनातनीके कारणों और मसलोंपर रूसी नेताओंसे हुए उनके विचार-विनिमय और फिर लंदन-यात्राका कुछ प्रभाव-परिणाम तो अवश्य ही होगा। श्री मैननकी चीन-यात्राके बाद हुई नेहरूजीकी रूस-यात्रा से इतना तो तय है कि भारतने आज कम्युनिस्ट-पक्षकी वस्तु-स्थिति, रुख, सीमा और संभावनाओंको अच्छी तरहसे जान लिया है और यदि वह पश्चिमी राष्ट्रोंको भी इस सीमित औचित्यका विश्वास दिला सके, तो अन्तर्राष्ट्रीय तनातनीके दूर होनेमें काफ़ी सहायता मिलनेकी आशा भी की जा सकती है। पर इसमें कोई शक नहीं कि रूसवालों ने अपने पक्षका औचित्य सिद्ध करने तथा अपनी शान्ति-कामना और उसके लिए सक्रिय सहयोग देनेकी अपनी तत्परता के बारेमें नेहरूजीको प्रभावित करने और विश्वास दिलानेमें कोई कसर नहीं छोड़ी है। क्रेमलिनके ग्रांड पैलेसमें उनके सम्मानमें हुए भोजमें रूसी प्रधान मंत्री बुल्गेनिनने कहा—"मुझे आशा है कि हमारे दोनों देशोंके संयुक्त प्रयत्नोंके फल-स्वरूप चीनके पूर्वी तटपर फारमोसाके पास तनातनी दूर होनेमें सहयता मिलेगी।" इसमें यह संकेत तो स्पष्ट है कि फारमोसाकी माँगके पीछे रूसका बल है और वह यह आशा करता है कि नेहरूजीकी मध्यस्थतासे शायद फारमोसा चीनको मिल जाय। साथ ही इससे यह भी प्रकट होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय तनातनीका रूसकी दृष्टिमें शायद एकमात्र कारण फारमोसा ही है। कदाचित् इसीलिए नेहरूजीने विनम्र उत्तर दिया—"हमारा मुल्क तो अभी-अभी आज़ाद हुआ है और इसीलिए वह आज दुनियाके बड़े-बड़े मसलों के बारेमें जोरदार आवाज़में कुछ नहीं कह सकता। फिर हम लोग नरम और धीमे बोलनेके आदी हैं, क्योंकि यही हमारे

देशकी परम्परा है।" इन शब्दोंको सुनकर एक तानाशाह को पहली बार शायद यह परोक्ष संकेत मिला कि उसकी तेज़ और ज़ोरदार आवाज़ दुनियामें क्या प्रतिक्रिया पैदा करती है! इतना ही नहीं, नेहरूजीने रूसके द्वारा होनेवाले शान्तिके उग्र प्रोपेगेंडा और हिंसा तथा बल-प्रयोगसे अपना लक्ष्य प्राप्त करनेकी प्रवृत्तिपर भी चोट की। आपने कहा—"अब समय आ गया है कि दुनियामें शान्ति चाहनेवालों को—विशेषतया जो सत्तारूढ़ हैं, उन्हें—ऐसे कोई काम नहीं करने चाहिएँ, जिनसे हिंसा और झगड़े पैदा हों। जो लोग यह समझते हैं, कि हिंसासे शांति प्राप्त की जा सकती है, वे बहुत बड़ी भूल कर रहे हैं।....सोवियत् संघपर आज जितनी बड़ी ज़िम्मेदारियाँ हैं, उतनी कम देशोंपर ही होंगी। मुझे तनिक भी संदेह नहीं कि इन बड़ी ज़िम्मेदारियोंका इस्तेमाल उस शान्ति-रक्षाके लिए होगा, जो कि हम चाहते हैं—आप और हम सब चाहते हैं।" रूसके किसी नेताने अपने किसी भी भाषणमें इस सम्बन्धमें फिर कुछ नहीं कहा!

रूस और भारतकी नीति

नेहरूजीकी रूस-यात्राके जो विवरण पत्रोंमें प्रकाशित हुए हैं, उनसे यह तो स्पष्ट है कि जितनी आवश्यकता रूस को इस समय नेहरूजीकी है, उतनी शायद उन्हें रूसकी नहीं। दोनोंके हस्ताक्षरोंसे निकले संयुक्त वक्तव्यसे तो यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है, जिसमें रूसके नेताओंने उस भारतीय वैदेशिक नीतिके आधारभूत पंचशिलाके सिद्धान्तोंको मुक्त कंठसे स्वीकार किया है, जिसकी कि कल तक वे खिल्ली उड़ाते और जिसे ब्रिटेन और अमरीकाकी पूँजीवादी तथा साम्राज्यवानी नीतियोंका पुछल्ला-भर बतलाते रहे हैं! पर आज वे बिना किसी शर्म और संकोचके कह रहे हैं कि भारत और रूसकी नीतियोंका आधार समान है! किन्तु हमें इस धोखेमें नहीं पड़ना चाहिए। हमारे देशकी रीति-नीतिमें आज चाहे जितनी कमियाँ, त्रुटियाँ, विरोधाभास और अन्यान्य दोष हों; किन्तु उसका प्रेरणा-स्रोत बुद्ध, अशोक और गाँधीके आदर्श-सिद्धान्तोंकी मानवतावादी परम्परा ही है। इसके विपरीत कम्युनिस्ट रूसकी नीति उस मानवघाती निरंकुश स्वेच्छाचारितापूर्ण ज़ारशाहीसे भी बदतर तानाशाही है, जिसके एक-एक अक्षरसे ख़ून और हिंसा चमक रहे हैं और जिसके महलकी एक-एक ईंटके नीचे न-जाने कितने निरीहोंकी लाशें कराह रही हैं। यहाँ रूसके आन्तरिक मामलोंमें जानेकी हम आवश्यकता नहीं समझते, पर जिस आसानीसे उसने पंचशिलाके सिद्धान्तोंपर अपनी स्वीकृति की मुहर लगादी है, उसे ज़रा सावधानीसे देखने-परखनेकी ज़रूरत है। रूस शांतिपूर्ण सह-स्थितिमें विश्वास करने लगा है, वह किसी देशकी सीमाका सम्मान करेगा, दूसरे देशों के आन्तरिक मामलोंमें हस्तक्षेप नहीं करेगा और समान हित के लिए दूसरे देशोंसे समान स्तरपर व्यवहार करेगा—इन बातोंपर दुनियाको विश्वास दिलानेके लिए रूसको अभी काफ़ी प्रमाण देने होंगे। जब तक वह गुप्त षड्यंत्रों और बल-प्रयोग द्वारा ग़ैर-कम्युनिस्ट देशोंके शासन उलटने तथा हर ग़ैर-कम्युनिस्ट देशमें अपना पाँचवाँ दस्ता (देशी कम्युनिस्ट-पार्टीके नामसे) रखनेकी नीति अपनाए है, उसकी शान्ति, शान्तिपूर्ण सह-स्थिति और दूसरे देशोंके आन्तरिक मामलोंमें हस्तक्षेप न करनेकी घोषणाओंका मूल्य ही क्या है? नेहरूजीके साथ रूस गए 'स्टेट्स्मेन' के विशेष संवाददाताने वारसासे २४ जूनको भेजे गए अपने संवाद (जो संवादसे ज्यादा रूसके वैदेशिक विभागका प्रोपेगेंडा ही लगता है) में लिखा है—"विश्वस्त सूत्रसे पता चला है कि नेहरूजीने अपने मेज़बानोंसे जो बातचीत की, उसमें कोमिनफार्मके कार्योंकी कोई चर्चा नहीं हुई। यह शायद इसीलिए अनावश्यक समझा गया होगा कि रूसने दूसरे देशोंके आन्तरिक मामलोंमें हस्तक्षेप न करनेके सिद्धान्तको सहज ही स्वीकार कर लिया है।" (और इसी पत्रके विशेष संवाददाताने दिल्लीसे नेहरूजीके मास्कोके लिए रवाना होते समय छापा था कि वे रूसमें कोमिनफार्मके कार्योंका चर्चा अवश्य करेंगे!) पर शायद सभी लोग इस संवाददाताकी-सी समझ-बूझके नहीं हैं। रूसके जिस आश्वासनपर वह कोमिनफार्मकी गति-विधिकी चर्चा अनावश्यक समझता है, वह इसके बाद तो और भी आवश्यक जान पड़ती है। यदि सचमुच रूस ईमानदारीसे दूसरे (ख़ास तौरसे ग़ैर-कम्युनिस्ट) देशोंके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहता, तो मास्कोकी हिदायत और नियंत्रणमें उसका पाँचवाँ दस्ता विविध देशोंमें तोड़-फोड़ और षड्यंत्रके जो काम करता है, उनके बारेमें उसका क्या रुख होगा? इस बारेमें यदि नेहरूजीने सचमुच कोई स्पष्टीकरण नहीं चाहा है, तो रूसके पंचशिलाके सिद्धान्तोंकी स्वीकृतिपर शायद सबको उतना विश्वास न हो, जितना कि नेहरूजीको हो गया होगा।

नीतियोंका मौलिक भेद

जिसे मार्क्सवादी कट्टरपन्थियोंकी जहनियतका थोड़ा-सा भी ज्ञान है, उसे यह बतलानेकी ज़रूरत नहीं कि कम्युनिस्ट-रूसकी घोषित और लेनिन-स्तालिन द्वारा समर्थित नीति सारी दुनियामें सर्वहारा वर्गका अधिनायकतंत्र क़ायम करना है। रूसके पत्रोंमें जब-तब इस बुनियादी मूलनीतिको दोहराया भी जाता है। जुलाई, १९४८ के 'बाल्शोविक'में पी० फेदोसीवेने लिखा था—"मार्क्स और लेनिनकी पार्टीके

तत्वावधानमें एकमात्र श्रमजीवी वर्ग ही शोषकोंके खिलाफ़ सफलता पूर्वक श्रेणी-संघर्ष कर सकता है। पूंजीवादी समाज-व्यवस्थाको समाजवादी व्यवस्थामें परिणत करनेके मार्क्स-लेनिनके सिद्धान्तोंको कार्यान्वित करनेके लिए वर्ग-संघर्ष की सर्वहारा-वर्गके अधिनायकतंत्रकी स्थापनाके रूपमें परिणति करना ही इसकी नीतिका मूलाधार है। यह अवसरवादी विचारधारा कि पूंजीवादसे समाजवादकी स्थितिमें शान्तिपूर्ण और पार्लमेंटरी मतदान द्वारा पहुँचा जा सकता है, मार्क्स-लेनिनवादके अनुकूल नहीं है। पूंजीवादी देशोंमें जो जनतंत्रवादी संस्थाएँ हैं, वे केवल बुर्जुआ-अधिनायकतंत्रपर पर्दा डालनेके लिए हैं। कोई भी जनतंत्र या पार्लमेंट बुर्जुआ-वर्गसे न सत्ता छीन सकते हैं और न पूंजी के प्रभुत्वको ही खत्मकर सकते हैं।" रूस बराबर इसी नीतिका पालन कर रहा है। गत फरवरीमें मलंकोवको हटानेके समय ख्रूश्चेव और बुल्गेनिनने इसीलिए उपभोक्ताओं के लिए अधिक सुविधाएँ देनेका मार्ग छोड़कर भारी उद्योगों का कार्यक्रम अपनाते हुए कहा था—"हमारी सेना और उद्योगोंको युद्धके लिए तैयार रहना चाहिए और हमारी कूटनीतिको शांतिके लिए।" इसीलिए रूसके वर्त्तमान देवताओंने अपना रक्षा-बजट बढ़ाया और तेज़ीसे वे फौजी भारी उद्योगोंके कार्यक्रमको अग्रसर कर रहे हैं। जहाँ तक रूसके मतवाद और आन्तरिक नीतिका प्रश्न है, हमें कुछ नहीं कहना है। पर जब उसकी यह नीति है, तो भारत या अन्यान्य ग़ैर-कम्युनिस्ट देश इस बातपर कैसे विश्वास कर सकते हैं कि वह सच्चे मनसे पंचशिलाके सिद्धान्तोंपर विश्वास करता है और वफ़ादारीसे उनपर अमल करेगा? मार्क्स-लेनिनकी बातोंको गाँठ बाँधकर चलनेवाले रूसियोंकी शायद यह समझमें नहीं आ सकता कि बिना लाखों व्यक्तियोंको यमलोक पठाए और करोड़ोंको नागरिक स्वतन्त्रताओंसे वंचित किए भी समाजवादी लक्ष्यकी ओर जनतांत्रिक ढंगसे बढ़ा जा सकता है! उनके पुराणके अनुसार जनतांत्रिक या पार्लमेंटरी प्रणाली भले ही बुर्जुआ-अधिनायकतंत्रके लिए एक पर्दा हो, पर सर्वहारा-वर्गके अधिनायकतंत्र-रूपी गुलाम-खानेसे तो वह कहीं बेहतर है। इसीलिए अपने एक भाषण में नेहरूजीने रूसियोंसे ज़रा अक्ल और सहिष्णुतासे काम लेनेका अनुरोध करते हुए कहा—"दूसरे देशोंसे हम बहुत-कुछ सीख सकते हैं; पर यह शिक्षा यदि बाहरसे थोपी जाय, तो विशेष फलप्रद न होगी। समाजवाद या जनतंत्र चाहे जो रूप भी ग्रहण करें, पर दूसरेके अधिकारोंका सम्मान तो होना ही चाहिए। ....रूसके बारेमें ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जिन्हें हम नहीं समझते और बहुत-सी बातें हमारे बारेमें भी ऐसी हैं, जिन्हें शायद रूसवाले नहीं समझते। इसलिए हमें एक-दूसरेके निकट एक-दूसरेको चाहने और सहयोग देनेकी भावनासे आना चाहिए, न कि न चाहनेकी और एक-दूसरेको नुक़सान पहुँचानेकी भावनासे।" शायद इससे अधिक सही और स्पष्ट ढंगसे कोई भी ग़ैर-कम्युनिस्ट और जनतंत्रवादी राष्ट्र रूसके प्रति अपनी मैत्री और सहयोग की भावना व्यक्त नहीं कर सकता। पर क्या इसके बाद भी रूसके धनी-धोरी ग़ैर-कम्युनिस्ट राष्ट्रोंके प्रति अपनी दोमुँही, कपटपूर्ण और षड्यंत्रकी भावनाके बदले समझ, बुद्धि और सहिष्णुतासे काम लेना सीखेंगे?

जब शान्तिका मसीहा स्तब्ध रह गया!

नेहरूजीके मास्को पहुँचनेपर सबसे पहले उनका स्वागत १८ बच्चोंसे करवाया गया, जिन्होंने नेहरूजीके स्वागतमें शांतिके दूत १८ कबूतर छोड़े और नेहरूजीको गुलदस्ते भेंट किए। डाइनमो-स्टेडियममें हुए उनके भाषणके समय श्रोताओंके आगे खेलकी वर्दी पहनाकर बैठाए गए ५-५ सौ युवक-युवतियोंने बराबर करतल-ध्वनिकर उनके प्रति जनताका हर्ष प्रकट किया! प्रधान मंत्री बुल्गेनिन पहली बार उनके साथ खुली मोटरमें अपने ही देशकी सड़कोंपर अपनी ही जनताके बीचमें से गुज़रे और जनताने भी शायद पहली बार सुरक्षा-पुलिसकी पाबंदियोंकी परवाह न कर शान्तिके इस मसीहाको भर-नज़र देखा और हर्ष-ध्वनि कर उन्हें फूलोंसे लाद दिया। दावतों और सैरके सिवा नेहरूजीको आणविक-शक्ति, मोटर और जेट-बमवर्षकोंकी फैक्टरियाँ भी दिखाई गईं। पर उस समय नेहरूजीको पहली बार अपने रूसमें होनेका अनुभव हुआ, जब कि भारतसे उसके साथ गए संवाददाताओंको उनके साथ जेट-बमवर्षकोंकी फैक्टरी में नहीं जाने दिया गया! इतना ही नहीं, 'टाइम्स आफ़ इंडिया' के संवाददाताका कहना है कि जब नेहरूजीने इस फैक्टरीके उत्पादन-आँकड़ोंके सम्बन्धमें पूछ-ताछ की, तो टालमटूल कर दी गई! इस फैक्टरीके निरीक्षणका जो विविरण 'फ्री प्रेस जर्नल' में छपा है, उसका एक अंश देखिए—"इस फैक्टरीमें प्रधान मंत्री नेहरूको भावी युद्ध में बड़े पैमानेपर होनेवाले विनाशका पूर्व दृश्य देखनेका अनुपम सुअवसर प्राप्त हुआ! फैक्टरी देखते समय उन्हें हल्के जैट-बमवर्षकोंके हिस्सोंको जोड़नेके स्थानमें भी ले जाया गया। वहाँ उन्होंने दो बमवर्षकोंके नीचे खड़े होकर देखा कि किस प्रकार जल्दीसे बमोंका पिटारा खुलता है और उसमें से तेजीसे बम बरसने लगते हैं। यह देखकर एक क्षणके लिए जिन नेहरूजीको रूसियोंने शांतिका मसीहा कहकर अभिनंदित किया, वे स्तब्ध रह गए!"

चीनकी 'उदारता'

कुछ समय पूर्व चीनके प्रधान मंत्रीने यह मत प्रकट किया था कि अन्तर्राष्ट्रीय तनातनी कम करने और फारमोसा-समस्याके हलके सम्बन्धमें वे अमरीकासे सीधी बातचीत करेंगे। एक बार तो इस खबरकी बड़ी अच्छी प्रतिक्रिया हुई, पर फिर बात आगे नहीं बढ़ी। गत ३० मईको चीनने शायद इस बातचीतके लिए अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करके खयालसे ४ अमरीकी उड़ाकोंको मुक्त कर दिया है। इस रिहाईको लेकर चारों ओर चीनकी उदारता, दया, मेहरबानी, सहयोग-सद्‌भावकी अभिव्यक्ति आदि कहकर बड़े ढोल पीटे जा रहे हैं। इन उड़ाकोंका 'अपराध' यह था कि ये गत २४ मईको उड़ते समय ग़लतीसे चीनकी हवाई-सीमामें चले गए थे। इसके लिए चीनके फौजी ट्रिब्यूनलने इन्हें चीनकी सुरक्षा और चीनियोंके शान्तिपूर्ण जीवनकी खतरेमें डालने, उत्तेजना और परेशानी फैलानेके लिए अपराधी घोषितकर दंडित किया! यही ग़लती जनवरी १९५३में भी ४ अमरीकी उड़ाकोंसे हुई थी, जिसपर चीनियोंने उनके विमानोंको गिरा दिया था। कप्तान फिशरके मतनानुसार इंजनकी गड़बड़ीके कारण उन्हें मजबूरन उतरना पड़ा था। पर चीनियोंने चारोंको खुफियागिरीमें दंडित किया! इनके अलावा ४७ अमरीकी नागरिक भी अभी तक चीनकी जेलोंमें सड़ रहे हैं। अमरीकाने चीनमें क़ैद ५२ अमरीकनोंकी रिहाई और बाकी ११ के बारेमें ठीक- ठीक सूचना दिए जानेकी माँग की है। चीनकी तथाकथित जन-अदालतोंके न्यायके अभिनयके साथ की गई इस ज्यादतीका शान्ति और अन्तर्राष्ट्रीय तनातनी कम करनेके किसी भी हिमायतीने विरोध नहीं किया। यदि चीन सचमुच मतभेद और तनातनीका अन्त करना चाहता है, तो उसे इस तरहकी मनमानी और ज्यादतीसे बाज़ आना चाहिए। पर उसने न सिर्फ़ अन्यायपूर्वक इन और अनेक दूसरे देशोंके लोगोंको अपनी जेलोंमें ही डाल रखा है, बल्कि उन्हें वे अमानुषिक यंत्रणाएँ भी दी हैं, जो कम्युनिस्ट आततायियोंका रोज़मर्राका काम है। कोरियामें पकड़े गए जो युद्धबंदी हाल हीमें छूटकर आए हैं, उन्होंने बतलाया है कि किस प्रकार पहले तो उन्हें कम्युनिज्ममें दीक्षित करने, झूठी बातें स्वीकार करने आदिके लिए मजबूर किया गया और ऐसा न करनेपर उन्हें तरह-तरहकी यंत्रणाओं और भूखों मारकर अधमरा कर दिया गया। यह कहाँका न्याय और शराफ़त है! इस तरहके अमानुषिक व्यवहारवाले आदमी जब शांति, सद्‌भाव और समझौतेकी बात करते हैं, तो शायद शैतान भी अपनी हँसी नहीं रोक सकता।

नेपालको चीनका उपहार!

पाश्चात्य पूँजीवादियों एवं साम्राज्यवादियोंके प्रति चीनियों (और दूसरे कम्युनिस्टों)के मनमें घृणा और कटुता होनेका कुछ आधार हो सकता है। पर ग़ैर-कम्युनिस्ट एशियायियोंके प्रति उनके मनमें क्या भाव है, इसके अनेक उदाहरण कोरियासे लेकर हिन्दचीनके संघर्ष तक सामने आए हैं। फिलहाल हम उन सबको न लेकर केवल एक नेपाल-संबंधी उदाहरण ही लेते हैं। १९५१ में जब नेपाली कांग्रेसने अपने राणा-विरोधी अभियानका अन्त कर दिया, तो के० आई० सिंह नामके एक बाग़ीने सशस्त्र संघर्ष जारी रखा। १९५२ में कुछ लोगोंको जमाकर उसने फिर एक शसस्त्र विद्रोहका विफल प्रयत्न किया। इसके बाद वह तिब्बत और फिर चीन चला गया। उसकी गिरफ्तारी पर १५ हज़ारका इनाम भी घोषित किया गया; पर भारत और नेपालकी मैत्रीका दम भरनेवाले चीनने उसे नहीं लौटाया। इतना ही नहीं, दूसरे देशके आन्तरिक मामलोंमें हस्तक्षेप न करनेका दावा करनेवाले चीनने उसका स्वागत-सत्कार किया और उसे अन्तःप्रवेशके कम्युनिस्ट-धर्मकी दीक्षा भी दी। गत अक्टूबरमें चीनी क्रान्तिके वार्षिकोत्सवमें यह नया वीर मंचको सुशोभित कर रहा था! अब चीन-सरकारने नेपाल-सरकारको सूचना दी है कि वे उसे और अधिक नहीं रख सकते (जैसे अबतक उन्होंने नेपाल-सरकारके अनुरोधपर ही उसे रखा था!) और वह यह धमकी दे रहा है कि यदि उसे वापस नेपाल नहीं भेजा गया, तो वह आत्महत्या कर लेगा! मध्य जूनमें आए समाचारों से पता चलता है कि वह नेपालकी सीमापर पहुँच भी गया है। इन सबमें कितनी सचाई है, यह कहना तो संभव नहीं; पर इससे नेपाल और भारतके प्रति चीनके रुखका कुछ अभास तो ज़रूर मिलता ही है।

नीकोवालकी दुर्घटना

कुछ समय पूर्व जम्मूके नीकोवाल गाँवके एक फार्ममें जब कुछ भारतीय फौजी और नागरिक काम कर रहे थे, तो पाकिस्तानियोंने न सिर्फ़ ६ भारतीय फौजियों और ६ नागरिकोंको गोलीसे ही मारा, बल्कि उनकी लाशोंको घसीट कर पाक-सीमामें ले गए और उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। भारत-सरकारके प्रतिवाद करनेपर पाक-अधिकारियोंने कहा कि भारतीयोंने पाक-सीमाका उल्लंघन किया था। यदि यह बात ही सच होती, तब भी उन्हें भारतीयोंको जानसे मारने और फिर लाशोंके टुकड़े-टुकड़े करनेका क्या अधिकार या औचित्य था? इसपर भारतने संयुक्त राष्ट्र-संघके पर्यवेक्षकोंसे इसकी जाँच करवानेकी माँग की।

यद्यपि उनकी रिपोर्टको भारतने भारत-पाक संबंधोंकी बेहतरीके खयालसे छपवाया नहीं है, तथापि इसमें यह स्पष्ट कहा गया है कि पाक-अधिकारियोंका यह कार्य पूर्व योजनानुसार था और उन्होंने भारतकी सीमामें घुसकर यह जघन्य कार्य किया। पाक-प्रधान मंत्री मोहम्मदअली जब पिछले दिनों दिल्ली आए थे, तो उन्होंने कहा था कि अगर कोई पाक-अधिकारी इस जघन्य कर्मका अपराधी पाया गया, तो उसे दंड दिया जायगा। पर अभी तक उन्होंने इस दिशामें कुछ किया है, ऐसा सुना नहीं गया। और तो और, भारत-सरकारने मृत व्यक्तियोंके परिवारोंकी सहायतार्थ जो १२ लाख रुपए हर्जानेकी माँग की है (अभी उसने अस्थायी तौरपर उन्हें ५००) मासिक देना शुरू भी कर दिया है), उसका कोई उत्तर भी नहीं दिया गया है। यह मानवता, एक दोस्त और एक पड़ोसी राष्ट्रके प्रति इतना बड़ा विश्वासघात और जघन्य कर्म है, जिसका हर्जाना रुपयोंके रूपमें नहीं आँका जा सकता। फिर इस घटनाका जम्मू-कश्मीरकी सीमामें होना और भी खेदजनक है। तुरन्त हर्जाना देनेके अतिरिक्त पाक-अधिकारियोंको चाहिए कि संबंधित अधिकारियोंको कड़ी सज़ा दें और ऐसा प्रयत्न करें कि भविष्यमें इस तरहकी दुर्घटनाएँ फिर कभी न हों।

पुस्तकोंपर सरकारी पुरस्कार

इधर कुछ वर्षोंसे केन्द्रीय और राजकीय सरकारोंने शायद सत्साहित्यको प्रोत्साहन देने और साहित्यिकोंका सम्मान करनेकी भावनासे अच्छे ग्रन्थोंपर पुरस्कार देने शुरू किए हैं। पर ये ग्रन्थको देखकर दिए जाते हैं या ग्रन्थकारको देखकर, यह निर्णय करना मुश्किल है। कहीं तो १८-२० वर्ष पुरानी पुस्तकपर पुरस्कार दिया जाता है और कहीं उपयोगी मौलिक पुस्तकोंकी उपेक्षाकर अनुवादों और संकलनों तकपर। इस प्रकारकी धाँधलीका परिणाम यह होता है कि जहाँ परिचितों, खुशामदियों और वसीलेवालोंकी बन आती है, वहाँ अनचाहे या अनजाने ही अच्छे ग्रन्थों एवं अच्छे ग्रन्थकारोंकी उपेक्षा हो जाती है। उदाहरणके लिए इस बार उत्तर-प्रदेश सरकारने जिन ग्रन्थोंपर पुरस्कार दिए हैं, उनकी सूची पहलेकी अपेक्षा कहीं बड़ी है। पर हमें यह जानकर दुःख हुआ कि इस बड़ी सूचीमें भी हिन्दीके खरे और सुयोग्य साहित्यकार पं० किशोरीदासजी वाजपेयीकी 'अच्छी हिन्दी' अथवा साहित्यकारोंके संस्मरणको स्थान नहीं मिल सका। यदि इस सूचीके सारेके सारे ग्रन्थ वाजपेयीजीकी पुस्तकोंसे श्रेष्ठ और अधिक उपयोगी होते, तब भी कोई बात थी; पर जहाँ नितान्त सामान्य पुस्तकोंको पुरस्कृत किया गया है, वाजपेयीजीके ग्रन्थोंकी उपेक्षा खेदजनक और एक हद तक अपमानजनक भी लगती है। साथ ही यह निर्णायकोंकी सूझ, समझ और ग्रन्थोंकी श्रेष्ठताको तौलनेके विवेकपर एक खेदजनक टिप्पणी भी है। वाजपेयीजी न पुरस्कारके भूखे हैं, न सम्मानके; पर उनके एक ग्रन्थके एक पृष्ठके पासंगमें भी जो न टिक सके, ऐसी मुद्रित रद्दी तकको पुरस्कृत करना और उनके ग्रन्थोंकी उपेक्षा करना सहज बुद्धिका भी अपमान-सा लगता है। क्या हम आशा करें कि भविष्यमें सरकार और निर्णायक ज़रा अधिक समझ और और सतर्कतासे काम लेंगे?

नारायण मल्हार जोशी

गत ३० मईको बम्बईमें सुप्रसिद्ध ट्रेड यूनियन नेता श्री नारायण मल्हार जोशीका ७५ वर्षकी अवस्थामें देहान्त हो गया। रक्तचाप और हृद्रोगसे पीड़ित होनेपर भी आप अन्तिम क्षण तक सचेत रहे। आपका जन्म जून, १८७९ में हुआ था। पूनाके न्यू इँगलिश स्कूल और डेकन कालेजमें शिक्षा प्राप्त करनेके बाद आपने कोई ८ वर्ष तक अध्यापन-कार्य किया। फिर १९०९ में आप भारत-सेवक-समाजके सदस्य हो गए (जहाँसे १९४० में अवकाश ग्रहण किया)। आपने बम्बईमें एक समाज-सेवा-संघ खोला, जिसके आप मंत्री रहे। आपने एक समाज-सुधार-संघ भी चलाया, जिसके भी आप १९१५से ३० तक मंत्री रहे। पश्चिम-भारत-लिबरल एसोशियेशनके भी आप १९१९ से २९ तक मंत्री रहे। इसी समय आपका ध्यान बम्बईकी मिलोंके मज़दूरोंकी ओर आकृष्ट हुआ और आपने उनकी अवस्था सुधारनेके लिए आंदोलन शुरू किया। १९१९ से २४ तक आप भारतीय मज़दूरोंके प्रतिनिधिकी हैसियतसे जेनेवा और वाशिंगटनमें हुई अनेक अन्तर्राष्ट्रीय कांफ्रेंसोंसे शामिल हुए और १९३०, ३१ तथा ३२ की गोलमेज़-कान्फ्रेन्सोंमें भी इसी हैसियतसे शामिल हुए। १९३७ में आप राष्ट्रीय योजना-आयोग, वेतन-आयोग और नागरिक स्वतंत्रता-संघके भी सदस्य हुए। १९१९से २३ तक आप बम्बई-कार्पोरेशनके और १९४६ तक केन्द्रीय धारा-सभाके सदस्य रहे, जहाँ आपने मज़दूरोंके हितोंसे सम्बन्ध रखनेवाले क़ानूनोंके निर्माण और संशोधनमें काफ़ी महत्वपूर्ण योग दिया। पूंजीवादके लोभ और ज्यादतियोंके विरोधी होकर भी आप कभी कम्युनिस्ट-पद्धतिके समर्थक नहीं बने। आपने ट्रेड यूनियन-आंदोलनकी एकताकी सदा प्राण-पणसे चेष्टा की। केन्द्रीय धारा-सभाके नामज़द सदस्य होकर भी आपन शासनकी ज्यादतियोंकी जैसी कड़ी और खरी आलोचनाएँ कीं, उससे कभी-कभी तो विरोधी-दलवाले भी दंग रह गए। आपका निधन उदारवादी प्रगति-परम्पराके एक युगका अन्त है। आपको भारत सदा कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करेगा।

Printed and Published for the Naya Samaj Trust by B. M. Singhi at 33, Netaji Subhas Road Calcutta-1 at United Commercial Press Limited. 1. Raja Gurudass Street, Calcutta-6.
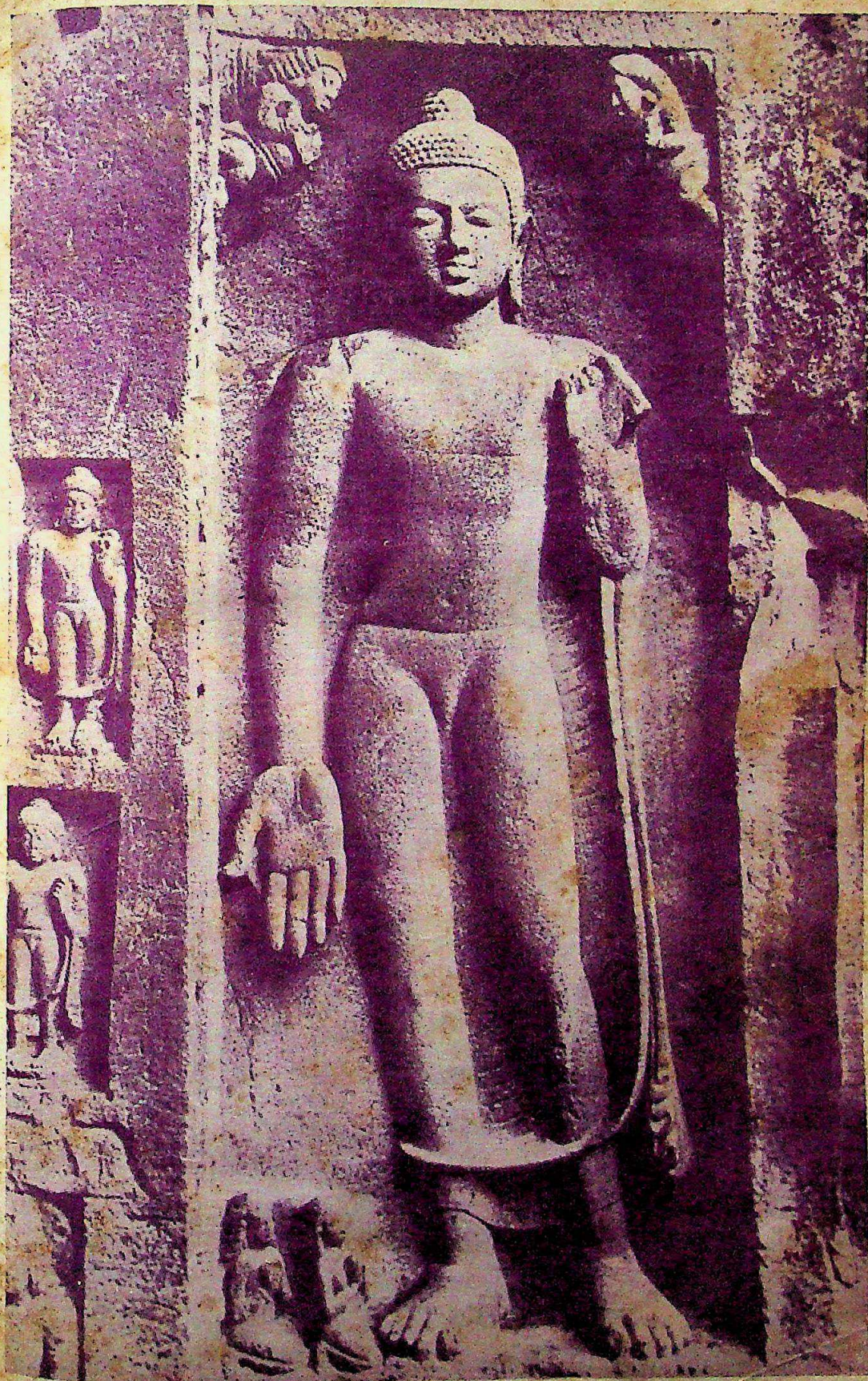
बुद्ध-जयंती अंक

भगवान् बुद्ध—वरद-मुद्रामें

इस्थमियन लाइन्स, इन्कार्पोरेटेड
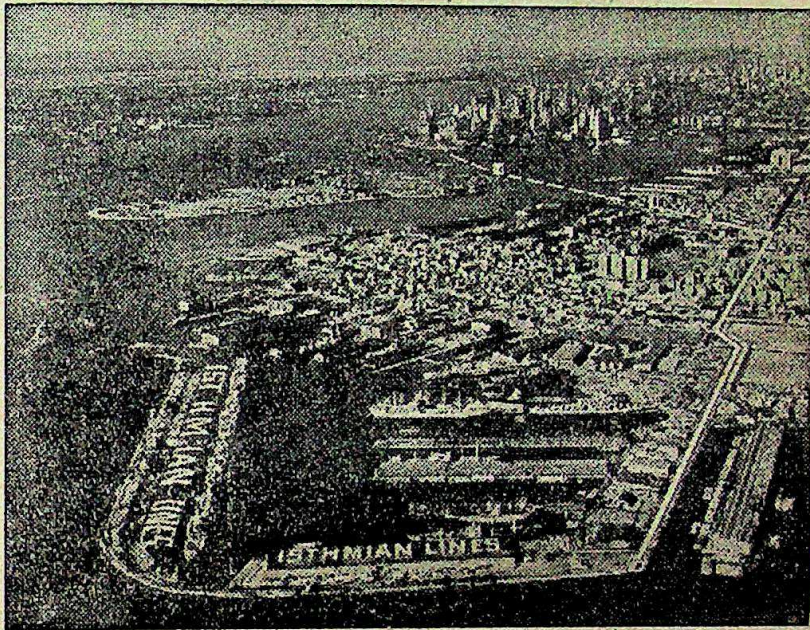
कलकत्ता, बम्बई, मालाबार-तटके बन्दरगाहों और मद्राससे अमरीका, उत्तरी अतलांतिक, दक्षिणी अतलांतिक तथा गल्फके बन्दरगाहों के लिए एक्सप्रेस और सीधी सर्विसें

माल तथा यात्रियोंके भाड़े और अन्य विवरणके लिये लिखिए:

कलकत्ता : दि अंगस कम्पनी लि०,
३, क्लाइव रो।

बम्बई : मैकिनन मैकेंजी एण्ड कं० लि०
बेलार्ड एस्टेट।

मद्रास : विन्नी एण्ड कं० (मद्रास) लि०,
आरमीनियन स्ट्रीट।

कोचीन : ए० वी० टॉमस एण्ड कं० लि०,
बेलार्ड रोड, फोर्ट कोचीन।

अलेप्पी : ए० वी० टॉमस एण्ड कं० लि०,
बीच रोड

मंगलोर : पीयर्स लेज़ली एण्ड कं० लि०

संचालक
नया समाज-ट्रस्ट

'नया समाज'

सम्पादक
मोहनसिंह सेंगर

(स्वतन्त्र विचारोंका सचित्र हिन्दी-मासिक)

विषय-सूची : जून, १९५६

वार्षिक ८)] 'नया समाज'-कार्यालय, इण्डिया एक्सचेंज (तीसरा तल्ला), कलकत्ता-१ [एक अंकका ॥)
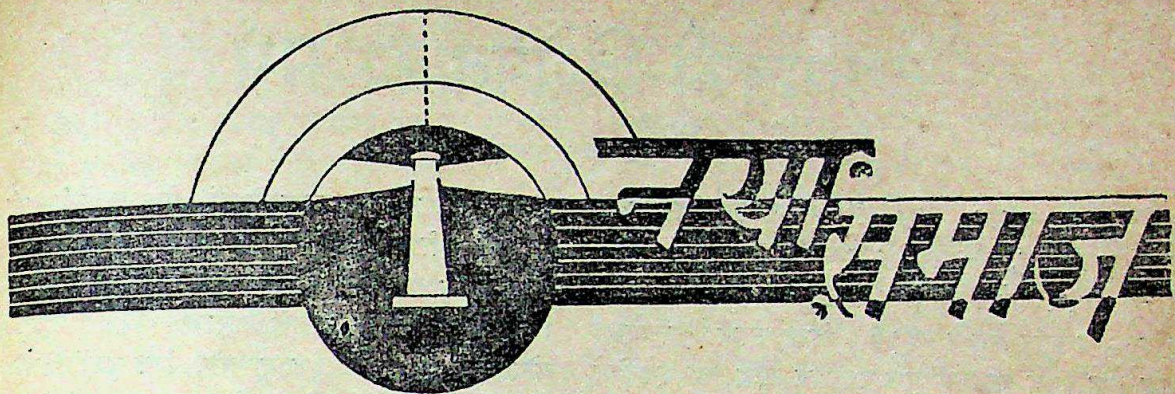
वर्ष ८ : खंड २] कलकत्ता : जून, १९५६ [अंक ६ : पूर्णांक ९६

बोधिसत्व और नवयुग

श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'

(१)

बोधिसत्व, अमिताभ, धराके प्राण-कमलपर रख पदतल फिर
रण-भय-पीड़ित जग में आओ, शांति-प्रतीक प्रेरणा बनकर !
बुझे तुम्हारे करुणा-जलसे विग्रह-वैर-विषमता-ज्वाला,
संजीवनी प्रेमकी पीकर मर्त्य-विश्व बन जाय अनश्वर !

(२)

युग बदला, काषाय-ग्रहणके युगका रवि अब प्रखर नहीं है,
नई किरण इस आकांक्षाकी जन-जनके मानसपर छाई;
उपसंपदा वस्त्रसे सूचित अब न तुम्हारी रहे विश्वमें,
तव असीम अनुकंपा-स्वर जन-जन-मनमें दे आज सुनाई !

(३)

जो न तुम्हारे कहलाते हों, वे सब भी हों आज तुम्हारे,
प्राण-प्राणमें मानवतामय अभिनव रूप तुम्हारा जागे !
उर-उरमें झंकार तुम्हारे सात्विक संदेशोंकी गूंजे,
अंकित हों पद-चिन्ह तुम्हारे जनता-पथपर आगे-आगे।

(४)

निस्पृह, अपनी बोधभूमिका गौरव तुमने जिसे दिलाया,
स्थूल रूपसें उसपर विस्तृत रही न धर्म-संघकी छाया;
पर वह भारत शांति-प्रेमका ले अंतस्संदेश तुम्हारा,
सर्वाधिक अविचल आस्थासे आज विश्व-पथपर फिर आया।

(५)

नव-भारत हो वही तुम्हारा, जिसमें नव-संस्कृति विकसित हो,
छोटे-से-छोटे मानवका पथ इतना अबाध बन जाए;
करे साधना यदि वह, उसको बोध प्राप्त हो ऐसा, जिसमें
विश्व, तथागत, प्रभा तुम्हारी जगमग ज्योतित जाग्रत पाए !

(६)

क्रम बदले; आदर्श, संगठन, नेता अनुक्रम आदर पाएँ,
तीनोंके ऊपर हो जगमें मानवताका सम्मानित पद;
मानव-मूल्योंमें परिवर्तन हो, श्रमका हो मूल्य उच्चतम,
ऐसा नया समाज देखकर बुद्ध, तुम्हारा उर हो गद्गद् !

(७)

मठों, वनों, आरामोंमें तुम युग-प्रवाह सीमित न रहोगे,
प्राणि-मात्र, मानव-मानव, कण-कणका तुमको है आवाहन !
आज विश्वका हर मनुष्य कर मस्तक उन्नत खड़ा हुआ है,
वह न करेगा अन्यायोंको, वैषम्योंको आत्म-समर्पण।

(८)

नवयुगमें आकर तुम जन-जनके मन-मनकी ज्योति बनो नव,
शक्ति बनो तुम, धैर्य बनो तुम, शांति बनो तुम, शील बनो तुम !
मानव-मानवमें वितरित हो नव-अवतरण तुम्हारा सार्थक;
हिंसा-दग्ध विश्वपर बरसो करुणाघन, प्रिय नील बनो।

तथागतकी विशेषताका मर्म

पं० सुखलालजी

तथागत बुद्धकी २५००वीं महापरिनिर्वाण-जयन्ती मनाई जा रही है, और वह भी भारतमें ! भारतमें बुद्धके समयसे लेकर अनेक शताब्दियों तक बौद्ध-अनुयायियोंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती रही है। किन्तु उसमें ऐसा भाटा आया कि आज भारतमें मूल भारतीय बौद्ध तो इने-गिने ही हैं ! परन्तु भारतके बाहर उसके उत्तर, दक्षिण व पूर्व तीनों दिशाओंमें, एशियामें ही, बौद्धोंकी तथा बौद्ध प्रभाव-वाले धर्मोंके अनुयायियोंकी संख्या इतनी विशाल है कि जिससे दुनियामें इस धर्मका स्थान अत्यन्त महत्वका है। ऐसा होनेपर भी भारतके बाहर किसी भी बौद्ध देशमें यह जयन्ती न मनाकर भारतमें ही यह मनाई जा रही है, और वह भी राज्य व प्रजा दोनोंके सहयोगसे। आजका भारतीय गणतन्त्र किसी भी एक धर्मसे अनुबद्ध न होकर असाम्प्र-दायिक है और भारतीय जनता मुख्यतः बुद्ध-धर्मके अतिरिक्त दूसरे अनेक धर्म-पंथोंमें विभक्त है। अतः स्वाभाविक तौरपर प्रश्न होता है कि राज्य व जनता द्वारा मनाई जानेवाली इस बुद्ध-जयन्तीके पीछे प्रेरक बल कौन-सा है ?

असाम्प्रदायिक मानवताका तत्व

मेरे अभिप्रायके अनुसार इसका सच्चा और मौलिक उत्तर यह है कि बौद्ध एक धर्म या पंथ होनेपर भी उसके स्थापक और प्रवर्त्तक तथागतमें असाम्प्रदायिक मानवता का तत्व ही प्रधान था। किसी भी एक धर्म-पुरुषके अनु-यायी मूल पुरुषके मौलिक और सर्वग्राही विचारोंको सम्प्रदाय और पंथका रूप दे देते हैं। इससे वह धर्म-पुरुष शनैः-शनैः साम्प्रदायिक समझा जाने लगता है। परन्तु तथागत बुद्धका मूल स्वरूप ही अधिकाधिक मानवताकी दृष्टिपर रचित है। अतः बुद्धको एक मानवतावादीके तौरपर ही यदि हम देखें-भालें, तो साम्प्रदायिकताकी भाषामें जयन्ती मनानेके विरुद्ध प्रश्न ही खड़ा नहीं होता। भारतके बाहर करोड़ोंकी संख्यामें बौद्ध हैं, कई देश तो समूचे-के-समूचे बौद्ध-धर्मावलम्बी हैं; यह सही है; पर ऐसे विशाल बौद्ध धर्मके स्थापक और प्रवर्त्तकको जन्म देने, उसकी साधनाको सम्बल प्रदान करने और उसके धर्मचक्रको गति देनेका सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक श्रेय तो भारतको ही है। यदि भारतका ही यह मूल सत्व न होता, तो न होते बुद्ध और न फैलता भारतके बाहर ही बौद्ध-धर्म।

भारतमें अनेकानेक धर्म-पुरुषोंने जन्म लिया है। अध्यात्मकी पराकाष्ठापर पहुँचे हों, ऐसे पुरुषोंकी कमी भी भारतमें कभी नहीं रही। ऐसा होनेपर भी सुदूर अतीतसे आज तकका भारतका इतिहास इतना तो कहता ही है कि सिद्धार्थ गौतमने मानवताके विकासमें जितना और जैसा योग प्रदान किया है, उतना और वैसा दूसरे किसी एक धर्म-पुरुषने विश्वके इतिहासमें प्रदान नहीं किया। यदि ऐसा है, तो भारत जब बुद्ध-जयन्ती मनाता है, तब वह किसी एक सम्प्रदाय या पंथको महत्व दे रहा है, ऐसा न मानकर सिर्फ़ इतना ही मानना चाहिए कि भारत अपनेको और विश्वको मिली हुई सर्वोच्च मानवताकी विरासतकी जयन्ती मना रहा है।

भारतके बाहर किसी भी एक बौद्ध-देशने—उदाहरणार्थ जापान या चीन जैसे विशाल राष्ट्रने—बुद्धकी यह जयन्ती भारत जिस तरह मना रहा है, उसकी अपेक्षा कहीं अधिक सज-धजके साथ और अधिक कुशलतापूर्वक मनाई होती, तो भी क्या भारतमें मनाई जानेवाली जयन्तीकी अपेक्षा उसमें अधिक गौरव आता ? मेरा विश्वास है कि ऐसा उद्यापन केवल मँगनीके गहनों-जैसा ही होता। जिस देशमें बुद्ध ने जन्म लिया, परिव्राजक होकर लोगोंके बीच घूमे, जहाँ उन्हें बोधि लाभ हुआ और जहाँ जीवन-कार्य पूर्ण करके निर्वाण प्राप्त किया, वहाँ उनकी जयन्ती मनाना कितना सहज हो सकता है, यह समझना विचारशील मनुष्योंके लिए तनिक भी कठिन नहीं है। इस प्रश्नको केवल साम्प्र-दायिक या राजनीतिक दृष्टिकोणसे न देखकर अगर हम मानवीय संस्कृतिकी दृष्टिसे देखें, तो ऐसे जयन्ती-उत्सवका मुख्य प्रेरक बल ध्यानमें आ सकता है।

बुद्धकी असाधारण विशेषताएँ

गाँधीजीने अपने जीवन-काल तथा जीवन-कालके पीछे कुछ ही वर्षोंमें विश्वके मानवतावादी लोगोंके हृदयमें जो स्थान प्राप्त किया, उसे प्राप्त करनेमें बुद्ध-जीवनको हज़ारों वर्ष लगे। इसका कारण काल-भेद रहा है। बुद्धके समयमें यदि गाँधीजी पैदा हुए होते, तो उनके विचारोंके फैलनेमें भी उतना ही समय लगता, जितना बुद्धके विचारोंके फैलनेमें लगा। आजके विचार-विनिमयके साधन इतने तेज़ हैं कि यदि बुद्ध आजके समयमें हुए होते, तो गाँधीजी की भाँति अपने जीवन-कालमें ही अपने विचारोंका दूरगामी प्रतिघोष वे सुन सकते। बुद्धका मानवतावादी विचार

इतने दीर्घकालके पश्चात भी एक ही साथ सारे भारतमें और विश्व-भरमें गूँज रहा है, यह नए ज़मानेकी एक अपूर्व सिद्धि ही है। यदि बुद्धका व्यक्तित्व ऐसा है, तो सहज रूपसे यह जाननेकी आकांक्षा होती है कि बुद्धकी ऐसी कौन-सी विशेषता है, जिसके कारण वे दूसरे महान आध्यात्मिक पुरुषोंसे अलग छँट जाते हैं। बुद्धके जीवनमें, उनके विचार एवं आचारमें दूसरे महान् धर्म-पुरुषोंके जीवन और आचार-विचारमें भिन्नता दिखाई देती है। परन्तु विशिष्ट प्रतीत होनेवाली कुछ विशेषताएँ ऐसी हैं, जो बुद्धके जीवनमें ही दृष्टिगोचर होती हैं। उन विशेषताओंको अगर बराबर समझ लिया जाय, तो बुद्धके जीवन तथा उनके व्यक्तित्व का सच्चा हार्द ध्यानमें आ सकता है।

क्षत्रिय वंशमें जन्म, श्रमण होकर गृह-त्याग, कठोर तप, ध्यानकी भूमिकाओंका अभ्यास, मार या वासनाओं को जीतकर धर्मोपदेश देना, यज्ञ, यात्रादिमें होनेवाली हिंसा का विरोध, संघकी स्थापना, सरलतासे समझमें आ सके, इसलिए लोकभाषामें उपदेश और ऊँच-नीचका भेद-भाव भूलकर लोगोंमें समान रूपसे मिलना-जुलना—इन और ऐसी ही दूसरी बातें बुद्धकी विशेषताएँ नहीं समझी जा सकतीं, क्योंकि ऐसी विशेषताओंका उल्लेख तो बुद्धके पूर्वकालीन, समकालीन और उत्तरकालीन अनेक धर्म-प्रवर्त्तक पुरुषोंमें इतिहासने किया है। इतना ही नहीं, इन विशेषताओंमें से कोई-कोई विशेषता तो बुद्धकी अपेक्षा भी कहीं अधिक मात्रामें अन्य धर्म-प्रवर्त्तक पुरुषोंमें थी, ऐसा इतिहास कहता है। फिर भी दूसरे किसी भी धर्म-प्रवर्तक पुरुषने बुद्ध-जैसा विश्व-व्यापी स्थान प्राप्त नहीं किया। इस कारण बुद्धकी असाधारण विशेषता जाननेकी वृत्ति सविशेष प्रबल हो उठती है। उनकी ऐसी असाधारण विशेषताओं में से कुछ ये हैं :

स्वानुभवके उद्गार

गत तीन हज़ार वर्षका धार्मिक और आध्यात्मिक इतिहास देखनेपर प्रतीत होता है कि इतने सुदूर भूतकालमें बुद्धके अतिरिक्त दूसरा कोई महापुरुष ऐसा नहीं हुआ, जिसने अपने मुँहसे अपनी जीवन-कथा और साधना-कथा विभिन्न अवसरोंपर भिन्न-भिन्न पुरुषोंको सम्बोधित करके स्पष्ट रूपसे कही हो और वह इतने विश्वसनीय रूपसे सुरक्षित भी रही हो। दीर्घ तपस्वी महावीर हों, या ज्ञानी सुकरात हों, ईसा मसीह हों या कृष्ण हों, अथवा राम-जैसा अन्य कोई मान्य पुरुष हो—इन सबकी जीवन-कथा मिलती तो है, पर बुद्धने अपनी कहानी और अपना अनुभव स्वमुखसे भिन्न-भिन्न स्थानोंपर जैसा और जितना कहा है और वह सुरक्षित रहा है (यथा मज्झिमनिकाय, अरियपरियेसन, महासच्चक, साहिनाद, चूलदुक्खक्खन्ध आदि सुत्तोंमें और अंगुत्तरनिकाय और सुत्तनिपात आदिमें), वैसा और उतना दूसरे किसीके भी जीवनमें वर्णित मालूम नहीं होता। मुख्य पुरुषका जो जीवन-वृत्त शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा जाननेको मिलता है, वह यथावत भी हो सकता है; पर उसका मूल्य स्वयं कथितकी अपेक्षा तो कम ही है। कम-से-कम अधिक तो सर्वथा नहीं है। स्वयंकथित या स्वानुभव-वर्णनमें कहनेवालेकी आत्माके तार जिस मधुरता और संवादके साथ बज उठते हैं, वह मधुरता और संवाद अन्य द्वारा प्राप्त वर्णनमें शायद ही सुनाई दे। यह सच है कि बुद्धके अनेक जीवन-प्रसंग उनके शिष्य-प्रशिष्योंने लिखे हैं,

लेखक

भक्ति एवं अतिशयोक्तिका उनमें गहरा पुट भी है; फिर भी अनेक जीवन-प्रसंग ऐसे हैं, जो स्वयं बुद्धने कहे हैं और आसपासका सन्दर्भ तथा उस कथनकी स्वाभाविकता देखने पर इसमें तनिक भी शंका नहीं रहती कि उस प्रसंगका वर्णन स्वयं बुद्धने ही किया होगा। यह कोई ऐसी-वैसी विशेषता नहीं है। आज जब कि चारों ओर तटस्थ भावसे लिखी हुई आत्मकथाका महत्व बढ़ रहा है, तब पचीस सौ वर्ष पूर्व की ऐसी आत्मकथाका थोड़ा भी विश्वस्त भाग अगर मिले, तो वह कहनेवाले पुरुषकी ऐसी-वैसी विशेषता नहीं समझनी चाहिए, क्योंकि स्वानुभवके उन विश्वस्त थोड़े उद्गारों पर से भी कहनेवालेके व्यक्तित्वका सच्चा मूल्यांकन करने की सामग्री मिल जाती है।

सत्यकी अदम्य शोध

तथागतकी दूसरी और महत्वकी विशेषता सत्यकी अदम्य शोध और प्राणान्त होनेपर भी पीछे न हटनेके उनके दृढ़ संकल्पमें रही है। भारतमें और भारतके बाहर भी अनेक सच्चे सत्य-शोधक हुए हैं, पर तथागतकी व्याकुलता और भूमिका सबसे विलक्षण प्रकारकी हैं। जब उन्होंने हँसते-हँसते माता-पिता, पत्नी आदिको छोड़कर प्रव्रजित होनेका ऐतिहासिक संकल्प किया, तब उनकी प्राथमिक धारणा क्या थी और उनकी मानसिक भूमिका कैसी थी, यह एकके बाद एक प्रचलित साधना-मार्गोंका उन्होंने जो त्याग किया और अन्तमें भीतरसे ही समाधानकारक मार्ग का जो उदय हुआ, उसका जब विचार करते हैं, तब हमें स्पष्ट रूपसे ज्ञात होती है। आध्यात्मिक शुद्धि सिद्ध करनेका उद्देश्य तो बुद्धका था ही, परन्तु ऐसे ही उद्देश्यसे प्रव्रजित दूसरे साधकोंकी संख्या उस कालमें भी अल्प नहीं थी। यदि बुद्धका सिर्फ़ इतना ही उद्देश्य होता, तो वे स्वीकृत साधना-मार्गोंमें से किसी एकमें स्थिर हो जाते। परन्तु उनका महान् उद्देश्य तो यह भी था कि क्लेश और लड़ाई-झगड़ेमें ओतप्रोत मानवताको वर्त्तमान जीवनमें ही स्थिर सुख प्रदान करे, ऐसे मार्गकी खोज करना।

बुद्ध उस समय अतिप्रचलित और प्रतिष्ठित ध्यान एवं योग-मार्गकी ओर सर्वप्रथम झुकते हैं। उसमें वे पूर्ण सिद्धि भी प्राप्त करते हैं। फिर भी उनका मन वहाँ नहीं जमता, ऐसा क्यों? उनके मनमें होता है कि ध्यान एवं योगाभ्याससे एकाग्रताकी शक्ति और कई सिद्धियाँ तो प्राप्त होती हैं और वे हैं भी अच्छी; परन्तु उनसे समग्र मानवताको क्या लाभ? यह व्यग्रता उन्हें उस समयमें प्रचलित अनेकविध कठोर देह-दमनकी ओर प्रेरित करती हैं। वे कठोरतम तपस्या द्वारा देहको सुखा डालते हैं। पर इससे भी उनके मनका अन्तिम समाधान नहीं होता। ऐसा क्यों? उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि सिर्फ़ ऐसे कठोर देह-दमनसे चित्तमें विचार एवं कार्यशक्ति विकसित होनेके बदले वह मुरझा जाता है, एक तरहसे वह मूढ़ हो जाता है। यह देखकर उन्होंने वैसा उग्र तप करना भी छोड़ दिया और साथ ही पूर्वके अपने पाँच विश्वासपात्र सहचारी साधक भी खोए। बुद्ध अब बिल्कुल अकेले पड़ गए। वे अब किसी संघ, मठ या सहयोगकी ऊष्मासे वंचित हो गए, अपने मूल ध्येयकी असिद्धिसे उत्पन्न व्याकुलता अब उन्हें अधिक-से-अधिक बेचैन करने लगी। परन्तु बुद्धकी मूल भूमिका ही असाम्प्रदायिक और पूर्वाग्रहशून्य थी। इसीसे उन्होंने अनेक गुरु, अनेक साथी और अनेक प्रशंसकोंको छोड़नेमें तनिक भी हानि न देखी। इसके विपरीत उन्होंने उन पूर्वपरिचित शिष्यों और साथियोंको छोड़कर एकाकी रहने, विचरने और विचारनेमें ही विशेष उत्साह दिखलाया। घर-बार सब-कुछ छोड़ा जा सकता है, पर स्वीकृत पंथके पूर्वाग्रहोंको छोड़ना सबसे अधिक कठिन कार्य है। बुद्धने यह कठिन कार्य किया और उन्हें अपनी मूल धारणाके अनुसार सिद्धि भी प्राप्त हुई।

आन्तरिक वृत्तियोंका तुमुल द्वंद्व

यह सिद्धि ही बुद्धके व्यक्तित्वको विश्वव्यापी रूप देनेवाली असाधारण विशेषता है। नैरंजना नदीके किनारे पर विशाल मैदानमें और सुन्दर प्राकृतिक दृश्योंके बीच पीपलके पेड़के नीचे बुद्ध आसनबद्ध होकर गहरे विचारमें डूब गए, तब उनके मनमें काम और तृष्णाके पूर्व संस्कारों का द्वन्द्व शुरू हुआ। उन वृत्तियों अर्थात् मारकी सेना का पराभव करके बुद्धने जो वासना-विजय या आध्यात्मिक शुद्धि प्राप्त की, उसका स्वानुभूत वर्णन सुत्तनिपातके पधान-सुत्तमें मिलता है। उसमें न अत्युक्ति है और न कवि-कल्पना। जो साधक सचमुच ही इस दिशा में गया होगा, उसे बुद्धके उद्गारोंमें अपने अनुभवका ही प्रतिबिम्ब प्रतीत होगा। कालिदासने 'कुमारसंभव'में महादेवके काम-विजयका मनोहर, रोमांचकारी और कलामय चित्र खींचा है; परन्तु उस काव्य-कलामें कविकी कल्पना के आवरणके आगे मानव-अनुभव तनिक गौण-सा हो गया है। दीर्घतपस्वी महावीरने संगम असुरके कठोर उपसर्ग छः मास तक सहन किए और अन्तमें उसका पराभव किया। इस रूपक-वर्णनमें भी सीधे तौरपर मानवीय मनोवृत्तिका तुमुल द्वन्द्व नहीं देखा जाता। कृष्णकी कालियनाग-दमन की कथा भी एक पौराणिक कथा ही बन जाती है; जबकि बुद्धका कुशल-अकुशल वृत्तियोंका आन्तरिक तुमुल द्वन्द्व उनके सीधे स्वानुभव-वर्णनमें सुरक्षित है। बादमें चाहे अश्वघोषने अथवा 'ललितविस्तर'के लेखकने उसे कवि-कल्पनाके झूलेमें क्यों न झुलाया हो!

ब्रह्मदेव नहीं, ब्रह्म-विहार

मार-विजयसे बुद्धकी साधना पूर्ण नहीं होती, वह तो आगेकी साधनाकी पूर्वपीठिका-मात्र ही बनती है। बुद्ध का आन्तरिक प्रश्न यह था कि मानवताको सच्चा सुख मिले, ऐसा कौन-सा व्यावहारिक मार्ग है? इस प्रश्नका निराकरण इस समय जितना सरल लगता है, उतना उनके लिए उस कालमें नहीं था। परन्तु बुद्धने ऐसा निराकरण जब तक न मिले, तब तक शान्त न होनेका कठोर संकल्प ही कर रखा था। इस संकल्पने अन्ततः उन्हें मार्ग

दिखलाया। उस समय आत्मतत्व-विषयक तथा उसके बारेमें एक-दूसरेके विरुद्ध चर्चा-प्रतिचर्चा करनेवाले अनेक पंथ थे। उनमें एक पंथ ब्रह्मवादका भी था। उसका मानना था कि चराचर विश्वके मूलमें एक अखण्ड ब्रह्मत्व है। यह सच्चिदानन्द रूप है और इसके कारण यह समग्र विश्व अस्तित्वमें आया है, टिका हुआ है तथा प्रवर्त्तित हो रहा है। ऐसा ब्रह्म सर्वदेवोंका अधिष्ठान होनेसे देवाधिदेव भी है। किंतु बुद्धका प्रश्न व्यावहारिक था। उन्हें जगतके मूलमें क्या है, वह कैसा है, इत्यादि बातें जाननेकी खास परवाह नहीं थी। उन्हें तो यह खोजना था कि समग्र प्राणि-वर्गमें श्रेष्ठ समझी जानेवाली मानव-जाति ही इतर प्राणि-जगत्की अपेक्षा कहीं अधिक कलहपरायण और सविशेष वैर-प्रतिवैरपरायण देखी जाती है, तो उसके इस संतापके निवारणका कोई सरल और व्यावहारिक मार्ग है, या नहीं? इस मन्थनने उन्हें कुछ मदद की होगी, पर ब्रह्म-विहारकी खोजमें मुख्य प्रेरक बल तो व्यावहारिक प्रश्नके सुलझावके पीछेकी उनकी लगनमें ही दिखाई देता है। निस्संदेह उस समय और उससे पहले भी आत्मौपम्यकी नींवपर अहिंसाकी प्रतिष्ठा हो चुकी थी। सर्वभूतहितेरत और मैत्रीकी भावनाका जहाँ-तहाँ उपदेश भी दिया जाता था, परन्तु बुद्धिकी विशेषता ब्रह्मतत्व या ब्रह्मदेवके स्थानमें ब्रह्म-विहारकी प्रतिष्ठा करनेमें है। हम अब तकके प्राप्त साधनों द्वारा यह नहीं जानते कि बुद्धके अतिरिक्त दूसरे किसीने ब्रह्म-विहारकी व्यापक भावनाकी इतनी सुरेख और हृदयग्राही नींव डाली हो। बौद्ध वाङ्मयमें जहाँ-तहाँ इस ब्रह्म-विहारका जैसा विशद् और हृदयहारी चित्र अंकित मिलता है, वह बुद्धकी विशेषताका सूचक भी है। जब बुद्धको मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा इन भावनाओंमें मानव-जातिके सुखका मार्ग दिखाई दिया, तब उन्हें अपनी दूसरी खोज सिद्ध होनेकी प्रतीति हुई। बादमें इन्हीं भावनाओंको ब्रह्म-विहार कहकर मानव-जातिको जताया कि 'तुम अगम्य और अकल ब्रह्मतत्वकी जटिल चर्चा करते रहोगे, तो भी अन्ततः तुम्हें सच्ची शान्तिके लिए इस ब्रह्म-विहारका आश्रय लेना ही पड़ेगा।' यही व्यावहारिक और जीवनमें प्रयत्नशील सबके लिए सुलभ ब्रह्म है। यदि बुद्धके इस ब्रह्म-विहारका मानव-जातिके स्थिर सुखकी नींवके रूपमें हम विचार करें, तो हमें यह प्रतीत हुए बिना नहीं रहेगा कि यह कैसी जीवनप्रद शोध है। बुद्धने जीवन-भर जो सतत नया-नया उपदेश दिया है, उसके मूलमें इस ब्रह्म-विहारका विचार ही ओतप्रोत रहा है, जिस तरह कि गाँधीजीकी अनेक विप्र-प्रवृत्तियोंमें सत्य और अहिंसाकी प्रबल वृत्ति ओतप्रोत रही है।

प्रतीत्यासमुत्पाद और आर्यसत्य

ऐसा कहा जाता है कि प्रतीत्यासमुत्पाद और चार आर्यसत्य—ये दो बुद्धकी निजी विशेषताएँ हैं। पर इस कथनमें मौलिक सत्यांश नहीं है। बुद्धके पूर्वसे ही भारतीय आध्यात्मिक चिन्तक इस नतीजेपर आए थे कि अविद्यासे तृष्णा और तृष्णामें से ही दूसरे दुःख पैदा होते हैं। इस विचारका ही बुद्धने अपने ढंगसे प्रतीत्यासमुत्पादके नामसे विकास एवं विस्तार किया। इसी तरह चार आर्यसत्य भी बुद्धके पहलेसे साधकों और योगियोंमें प्रसिद्ध थे। इतना ही नहीं, बहुतसे तपस्वी और त्यागी इन सत्योंके आधारपर जीवन-निर्माणका प्रयत्न भी करते थे। जैन-परम्पराके आस्रव, बन्ध, संवर और मोक्ष ये चार तत्व कुछ महावीरकी प्राथमिक शोध नहीं हैं। इनकी परम्परा पार्श्वनाथ तक तो जाती ही है। ये चारों उपनिषदोंमें भी भिन्न-भिन्न नामोंसे मिलते हैं और कपिलके प्राचीन सांख्यका आधार भी यही चार तत्व हैं। इस तरह यद्यपि प्रतीत्यासमुत्पाद या चार आर्यसत्य बुद्धकी मौलिक विशेषता नहीं हैं, फिर भी इनके आधारपर उच्च जीवनके निर्माणकी पद्धति तो बुद्धकी अपनी ही है। जब उन्होंने निर्वाणके उपायके रूपमें आर्यअष्टांगिक मार्गका निरूपण किया, तब इस वर्त्तमान जीवनमें बाह्य-अभ्यन्तर दोनों प्रकारकी शुद्धिके ऊपर उन्होंने अधिकाधिक ज़ोर दिया।

परन्तु यदि इसमें भी बुद्धकी कोई विशेषता है, तो वह निश्चित रूपसे यह है कि उन्होंने विचार एवं आचारकी साधनामें मध्यमार्गी वृत्ति अपनाई। यदि उन्होंने ऐसी वृत्ति न अपनाई होती, तो उनका भिक्षु-संघ भिन्न-भिन्न संस्कारवाले देश-देशान्तरमें न तो जा ही सकता, न काम कर सकता और न विभिन्न प्रकारके लोगोंको अपनी ओर आकर्षित ही कर सकता या उन्हें जीत सकता था। मध्यम मार्ग बुद्धको सूझा, यही सूचित करता है कि उनका मन किसी भी प्रकारके एकांगी पूर्वग्राहसे कितना विमुक्त था।

सूक्ष्म और निर्भय प्रज्ञा

स्पष्ट दृष्टिगोचर हो, ऐसी बुद्धकी महत्वकी एक विशेषता यह है कि वे अपनी सूक्ष्म व निर्भय प्रतिभा एवं प्रज्ञाके बलसे कई तत्वोंके स्वरूपोंका तलस्पर्शी स्पष्ट आकलन कर सकते थे। और जब जिज्ञासु व साधक-जगत्के समक्ष दूसरा कोई उनके बारेमें पूरी हिम्मतके साथ कहनेमें समर्थ नहीं था, तब बुद्धने अपना वह आकलन सिंहकी तरह निर्भय हो, कोई राज़ी हो या नाराज़ इसकी परवा किए बिना, प्रकट किया।

उस समयके अनेक आध्यात्मिक आचार्य या तीर्थंकर

विश्वके मूलमें कौन-सा तत्व है और वह कैसा है, इसका कथन मानो प्रत्यक्ष देखा हो, इस तरह करते तथा निर्वाण या मोक्षके स्थान व उसकी स्थितिके बारेमें भी स्पष्ट और आँखोंदेखा-सा वर्णन करते; तब बुद्धने कभी वाद-विवाद समाप्त न हो ऐसी गूढ़ और अगम्य बातोंके बारेमें कह दिया कि 'मैं ऐसे प्रश्नोंका व्याकरण (कथन) नहीं करता, ऐसी बेसिर-पैरकी बातोंमें पड़ता भी नहीं। मैं ऐसे ही प्रश्नोंका निरूपण और व्याख्यान लोगोंके समक्ष करता हूँ, जो उनके अनुभवमें आ सके, ऐसे हों और वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवनकी शुद्धि व शान्तिमें निर्विवाद रूपसे उपयोगी हो सकें, ऐसे भी हों। देश-कालकी सीमामें बद्ध मानव अपनी प्रतिभा तथा सूक्ष्म बुद्धिके बलपर देश-कालातीत प्रश्नों की यथाशक्ति और यथामति चर्चा करता आया है, पर ऐसी चर्चा और वाद-विवादके परिणाम-स्वरूप कोई अन्तिम सर्वमान्य निर्णय फलित नहीं हुआ है। यह देखकर वाद-विवादके अखाड़ेसे दूर रहने और तार्किक विलासमें व्यय होनेवाली शक्ति सुरक्षित रखनेके लिए बुद्धने साधकोंके समक्ष ऐसी ही बातें कहीं हैं, जो सर्वमान्य और जिसके बिना मानवताका उत्कर्ष ही शक्य न हो। बुद्धका यह उपदेश अर्थात् आर्यअष्टांगिक मार्ग तथा ब्रह्म-विहारकी भावनाका उपदेश संक्षेपमें कहना हो तो, वैर-प्रतिवैरके स्थानमें प्रेमकी वृद्धि और पुष्टिका उपदेश है।

अगूढ़ वाणी और वक्तव्यकी स्पष्टता

बुद्धकी अन्तिम और सर्वाकर्षक विशेषता उनकी अगूढ़ वाणी तथा मर्मवेधी व्यावहारिक दृष्टान्त और उपमाओं द्वारा वक्तव्यकी स्पष्टता है। विश्वके वाङमयमें बुद्धकी दृष्टान्त व उपमा-शैलीकी तुलना कर सके, ऐसा दूसरा नमूना अत्यन्त विरल है। इसलिए बुद्धके पालि-भाषामें दिए गए उपदेशोंका विश्वकी सभी सुप्रसिद्ध भाषाओंमें अनुवाद हुआ है और उसका पठन-पाठन भी रसपूर्वक होता है। उसकी वेधकता तथा प्रत्यक्ष जीवनमें ही लाभ उठाया जा सके, ऐसी बातोंपर ही ज़ोर—इन दो तत्वोंने बौद्ध-धर्मकी आकर्षकतामें सर्वाधिक हिस्सा बँटाया है और इनके असरका प्रतिघोष उत्तरकालीन वैदिक, जैन आदि परंपराओंके साहित्यपर भी पड़ा है।

विष्णुके एक अवतार !

जिस बुद्धकी अवगणना करनेमें एक बार वैदिक और पौराणिक कृतार्थता समझते थे, उन्हीं वैदिक और पौराणिकों ने उसी बुद्धको विष्णुके एक अवतारके तौरपर स्थान देकर उनके अति विशाल अनुयायी-वर्गको अपनी-अपनी परम्परामें समा लिया है ! यह क्या सूचित करता है ? इससे एक बात ही सूचित होती है कि तथागतकी विशेषता उपेक्षा न की जा सके, ऐसी महती है।

गृह-त्यागकी बात

बुद्धकी जिन विशेषताओंके बारेमें ऊपर सूचन किया गया है, उन्हें स्पष्ट रूपसे सूचित करनेवाले पालि-त्रिपिटकों के कुछ भाग नीचे सार-रूपसे संक्षेपमें देता हूँ, जिससे पाठकोंको लेखमें उल्लिखित सामान्य सूचनाकी दृढ़ प्रतीति हो सके और वे स्वयं ही इस विषयमें अपना स्वतन्त्र अभिप्राय निश्चित कर सकें।

एक प्रसंगपर भिक्षुओंको उद्दिष्ट करके बुद्ध अपने गृह-त्यागकी बात करते हुए कहते हैं कि 'हे भिक्षुओ ! मैं स्वयं बोधि-ज्ञान प्राप्त करनेसे पूर्व जब घरमें था, तब मुझे एक बार विचार आया कि मैं खुद ही जरा, व्याधि और शोक-स्वभाववाली परिस्थितिमें बद्ध हूँ, और फिर भी ऐसी ही परिस्थितिवाले कुटुम्बी जन और दूसरे पदार्थोंके पीछे पड़ा हूँ। इसलिए अब मैं अजर, अमर, परम पदकी खोज करूँ, यही योग्य है। ऐसे विचारमें कुछ समय बीता। मैं पूरी जवानीमें आया। मेरे माता-पिता आदि आप्तजन मुझे मेरी खोजके लिए घर छोड़कर जानेकी किसी भी हालत में अनुमति नहीं देते थे। फिर भी मैं एक बार उन सबको रोता छोड़कर और गृह-त्याग करके प्रव्रजित होकर चल निकला।'

श्रद्धा नहीं, साधना

एक दूसरे अवसरपर अग्गिवेस्सनके नामसे प्रसिद्ध सच्चक नामके एक निर्ग्रन्थ पंडितको संबोधित करके प्रव्रज्याके बादकी अपनी स्थितिका वर्णन करते हुए बुद्ध कहते हैं कि 'हे अग्गिवेस्सन, प्रव्रज्या लेनेके बाद मैंने शान्तिकी शोध शुरू की। पहले एक आलारकालाम नामके योगीसे मिला और उसके धर्म-पंथमें शामिल होनेकी इच्छा प्रदर्शित की। उसने मुझे अपनाया। मैंने उसके पास रहकर उसके दूसरे शिष्योंकी भाँति उसका कुछ तत्व-ज्ञान सीखा। उसके दूसरे शिष्योंकी तरह मैं भी तोतेकी भाँति वाद-विवाद के ज्ञानमें प्रवीण हो गया, पर मुझे आखिरकार कुछ जँचा नहीं। मैंने एक बार कालामसे पूछा कि 'तुमने जो तत्व-ज्ञान प्राप्त किया है, वह केवल श्रद्धासे तो प्राप्त नहीं किया होगा ? तुमने उसके साक्षात्कारका जो मार्ग अपनाया हो, वह मुझ भी कहो। मैं भी केवल श्रद्धापर अवलंबित न रहकर उस मार्गको जीवनमें उतारूँगा।' इसपर कालामने मुझे उस मार्गके रूपमें आकिंचन्यायतन नामकी समाधि सिखलाई। मैंने वह सिद्ध तो की, परन्तु उससे भी अन्ततः मेरा समाधान न हुआ। कालामने मुझे उच्च

पद देनेका तथा अपने ही पंथमें रहनेका लालच दिया, पर हे अग्गिवेस्सन, मैं तो मेरी आगेकी खोजके लिए वहाँसे चल दिया।'

देह-दमनके बदले देह-रक्षा

'हे अग्गिवेस्सन, दूसरे एक उद्दक रामपुत्र नामके योगीसे मेरी भेट हुई। उसके पाससे मैंने नेवसंज्ञाना-संज्ञायतन नामक समाधि सीखी। उसने भी मुझे अपने पंथमें रखने और उच्च पद देनेका लालच दिया। पर मेरे आन्तरिक असमाधानने मुझे वहाँसे भी मुक्त किया। मेरा असमाधान यह था कि ध्यान एकाग्रताके लिए उपयोगी है, पर नायं धम्मो सम्बोधाय अर्थात् यह धर्म सार्वत्रिक ज्ञान और सार्वदिक सुखका नहीं है। इसके पश्चात् मैं ऐसे मार्गकी खोजके लिए आगे चला। हे अग्गिवेस्सन, इस तरह घूमते-घूमते मैं राजगृह आया। वहाँ कई श्रमणपंथ थे, जो भाँति-भाँतिकी उग्र तपस्या करते थे। मैं भी राजगृहसे आगे बढ़कर उरुवेला (आजका बुद्ध-गया) में आया और अनेक प्रकारकी कठोरतम तपस्या करने लगा। मैंने आहारकी मात्रा एकदम कम कर दी और सर्वथा नीरस आहार लेने लगा। साथ ही मैंने श्वासो-च्छवास रोककर स्थिर आसनपर बैठ रहनेका कठोर प्रयत्न किया। परन्तु, हे अग्गिवेस्सन, उस उग्र तप तथा हठ-योग-प्रक्रियाका आचरण करते समय मुझे ऐसा विचार आया कि मैं जैसी अत्यन्त दुखकर वेदना इस समय सह रहा हूँ, वैसी तो शायद ही किसी दूसरेने सही होगी। फिर भी इस दुष्कर कर्मसे लोकोत्तर धर्मका मार्ग प्राप्त हो, ऐसा मुझे प्रतीत नहीं होता। अब दूसरा कौन-सा मार्ग है, इसके गहरे चिन्तनमें मैं पड़ा। उस समय हे अग्गिवेस्सन, मुझे मेरी बाल्यावस्थाके एक अनुभवका स्मरण हो आया। स्मरण यह था कि मैं कभी छोटी उम्रमें पिताजीके साथ घरके एक खेतमें जामुनके पेड़के नीचे छायामें बैठकर सहज भावसे चिन्तन करता और सुखका अनुभव करता था। हे अग्गि-वेस्सन, मुझे ऐसा लगा कि वह मध्यम-मार्गी रास्ता तो सच्चा नहीं होगा। तो फिर उस मार्गपर जानेमें मैं क्यों डरूँ? ऐसे विचारसे उपवास आदि देह-दमन छोड़कर मैंने देह-पोषण-जितना अन्न लेना शुरू किया। यह देखते ही मेरे नजदीकी साथी और परिचारक मैं साधना-भ्रष्ट हुआ हूँ, ऐसा समझकर मुझे छोड़कर चले गए। अब मैं अकेला रहा, परन्तु मेरा शोधका संकल्प तो चालू ही रहा। योग्य और मित भोजनसे मुझमें शक्ति आई और मैं शान्ति का अनुभव करने लगा।'

भोग और रोगका वैपरीत्य

उस समय सामान्य लोक-व्यवहारका अनुगमन करके बोधि-सत्वने देह-दमनके मार्गका अवलंबन लिया, पर उस समय भी उनके मनका समस्त विचार-प्रवाह उसी दिशामें बहता था, ऐसा समझना ठीक नहीं। सामान्य मनुष्य को समुद्र एक जैसा ही दिखाई देता है। पर उसमें भी परस्पर विरुद्ध दिशामें बहनेवाले अनेक प्रवाह होते हैं। उसी प्रकार बोधि-सत्वके चित्रमें भी विरोधी अनेक विचार-प्रवाह बहते थे। उनका यह मानसिक चित्र जब वे अग्गि-वेस्सनको सम्बोधित करके तीन उपमाओंका निर्देश करते हैं, तब स्पष्ट रूपसे प्रतिभासित होता है। वे तीन उपमाएँ ये हैं—(१) पानीमें पड़ी हुई एक भींगी लकड़ी हो और वह दूसरी लकड़ीसे घिसी जाय, तो उसमें से आग पैदा नहीं होती। इसी तरह जिनके मनमें वासना भरी हो और भोगके साधनोंमें जो लवलीन हों, वे कितना ही हठयोगका कष्ट क्यों न सहें, फिर भी उनके मनमें सच्चा ज्ञान प्रकट नहीं हो सकता। (२) लकड़ी पानीसे दूर हो, पर हो भींगी, तो भी उसे घिसनेपर उसमें से आग नहीं निकलती। इसी तरह भोगके साधनोंसे दूर अरण्यमें कोई साधक रहता हो, पर मनमें वासनाएँ उमड़ती हों, तो भी कोई तप उसमें सत्य-ज्ञान प्रकट नहीं कर सकता। (३) परन्तु जो लकड़ी एकदम सूखी हो और पानीसे भी दूर हो, उसे अरणिसे घिसनेपर आग जरूर प्रकट होगी। इसी तरह भोगके साधनोंसे दूर तथा वासनाओंसे विमुक्त साधक ही योग-मार्गका अवलम्बन कर सच्चा ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

मार-विजयकी यथार्थता

अन्यत्र बुद्ध भिक्षुओंको उद्दिष्ट करके कहते हैं कि 'मैं जब साधना करता था, तभी मुझे विचार आया कि मनमें अच्छे और बुरे दोनों प्रकारके वितर्क या विचार उठते हैं। इससे मैंने इनके दो विभाग किए: जो अकुशल या बुरे वितर्क हैं, वे एक तरफ़ और जो कुशल या हितकारी वितर्क हैं, वे दूसरी तरफ़। काम, द्वेष और दुःख देनेकी वृत्ति ये तीन अकुशल वितर्क हैं। इनके विपरीत निष्कामता, प्रेम और किसीको दुःख न देनेकी वृत्ति ये तीन कुशल वितर्क हैं। मैं चिन्तन करने लगता। उस समय मनमें कोई अकुशल वितर्क आता, तो मैं फौरन ही सोचता कि यह वितर्क मेरा दूसरे किसीका हित करनेवाला तो है ही नहीं और ऊपरसे यह प्रज्ञाको रोकता है। मनपर के पक्के पहरे और सतत जागृतिसे ऐसे वितर्कोंको मैं रोकता। जैसे कोई ग्वाला धानसे लहलहाते हुए खेतोंको नुक़सान न हो, इसके लिए उस तरफ़ जानेवाले पशुओंको सतर्कतापूर्वक खेतोंसे

दूर रखता है, उसी तरह मैं सतर्कतापूर्वक मनको रोकता। परन्तु जब मनमें कुशल वितर्क आते, तब वे वितर्क मेरे दूसरों के तथा सबके हितमें किस प्रकार हैं, इसका विचार करके सतत जागृतिसे मैं उन कुशल वितर्कोंकी रक्षा करता। बहुत विचार करके बैठे रहनेसे अगर शरीर थक जाय, तो सुतरां मन भी स्थिर नहीं रह सकता। ऐसा सोचकर मैं जब कुशल वितर्क आते, तब मनको भीतरकी ओर ही मोड़ता, जिस तरह खेतोंमें से फसल काट लेनेके बाद ग्वाला पशुओंको खेतों में छोड़ देता है, सिर्फ़ दूर रहकर वह उनपर निगरानी ही रखता है, उसी तरह मैं कुशल वितर्क आनेपर उनपर निगरानी रखता, पर मनके निग्रहका विशेष प्रयत्न न करता।' बुद्ध का यह अनुभव उनके मार-विजयका सूचक है।

ब्रह्म-विहारकी महिमा

बौद्ध-धर्ममें ब्रह्म-विहारकी महिमा वेदान्तियोंकी ब्रह्म-महिमा जैसी ही है। इसलिए ब्रह्म-विहारके बारेमें थोड़ा अधिक स्पष्टीकरण आवश्यक है। ब्रह्म अर्थात् जीवलोक; इसमें विहार करनेका मतलब है समग्र जीव-सृष्टिके साथ प्रेममूलक वृत्ति पैदा करके सबके साथ समानता सिद्ध करना। ये वृत्तियाँ मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा इन चार भागोंमें विभक्त की गई हैं। इनका जो महत्व प्रो० धर्मानन्द कौसाम्बीने पालि-ग्रन्थोंके आधारपर बताया है, वह उन्हींके शब्दोंमें संक्षेपमें देखें—"माता जैसे दूध पीते बच्चेका मैत्री (प्रेम) से पालन करती है; वह बीमार हो, तब करुणासे उसकी सेवा करती है; बादमें विद्याभ्यास आदि में वह कुशल हो, तब मुदित अन्तःकरणसे उसकी पीठ ठोंकती है और उसके बाद जब वह स्वतन्त्र रूपसे दाम्पत्य-जीवन शुरू करता है अथवा अपने मतसे विरुद्ध आचरण करता है, तब उसकी उपेक्षा करती है, कभी उसका द्वेष तो करती ही नहीं और उसे सहायता करनेमें सर्वदा तैयार रहती है। वैसे ही महात्मा लोग इन चार श्रेष्ठ मनोवृत्तियोंसे प्रेरित होकर जन-समूहका कल्याण करनेके लिए तत्पर होते हैं।"

अव्याकृत प्रश्नोंकी उपेक्षा

गूढ़ बुझौवल-जैसे और अनिर्णीत प्रश्नोंसे दूर रहनेकी बुद्धकी वृत्ति समझनेके लिए मालुंक्यपुत्रके साथका उनका वार्त्तालाप संक्षेपमें जानना उपयुक्त होगा। किसी समय मालुंक्यपुत्रने बुद्धसे पूछा कि 'आप तो दूसरे आचार्योंकी तरह जगत्के आदि-अन्त मूल कारणके विषयमें तथा निर्वाणके बादकी स्थिति आदिके बारेमें कुछ कहते नहीं हैं, तब मैं आपका शिष्य नहीं रह सकूँगा।' बुद्ध जवाब देते हुए कहते हैं कि 'जब मैंने तुझे शिष्य बनाया, तब क्या ऐसा वचन दिया था कि ऐसे अव्याकृत प्रश्नोंका उत्तर मैं दूँगा? तूने भी क्या ऐसा कहा था कि यदि ऐसे प्रश्नोंके जवाब आप नहीं देंगे, तो मैं शिष्य नहीं रह सकूँगा?' इसपर मालुंक्य-पुत्रने कहा—'नहीं, ऐसा तो कोई समझौता नहीं हुआ था।' बुद्धने इसपर पुनः पूछा—'तो फिर शिष्यत्व छोड़ने की बात क्या योग्य है?' मालुंक्य—'नहीं।' इससे मालुंक्यकी उत्तेजना तो शान्त हो गई, पर बुद्ध सिर्फ़ इतनेसे ही निबटा दें, ऐसे नहीं थे। उन्होंने आगे एक ऐसी बोधक उपमा दी, जो उनकी वृत्तिको विशेष स्पष्ट करती है।

उन्होंने कहा कि 'कोई ज़हरीले बाणसे घायल हो। उसके हितचिन्तक उसके शरीरमें से वह बाण निकालनेके लिए तैयार हुए हों, तब वह घायल उनसे कहे कि मुझे सर्व-प्रथम मेरे नीचेके प्रश्नोंके जवाब दो, बादमें बाण बाहर निकालना। मेरे प्रश्न ये हैं: बाण मारनेवाला किस जातिका था? वह किस गाँवका, किस नामका और किस क़दका था? इत्यादि। इसी प्रकार वह बाण किसमें से और किस तरह बनाया गया है? धनुष और उसकी प्रत्यंचा भी किससे बनाए गए हैं? आदि। इन प्रश्नोंका जवाब न मिले, तब तक यदि लगा हुआ बाण वह निकालने न दे, तब क्या वह घायल पुरुष बच सकेगा?' मालुंक्यपुत्र कहता है—'नहीं।' इसपर बुद्ध कहते हैं—'तो फिर जो गूढ़ और सर्वदाके लिए अनिर्णीत रहनेवाले प्रश्न हैं, उनके उत्तरके साथ ब्रह्मचर्यवास या संयम-साधना या विशुद्धिके प्रयत्नका क्या सम्बन्ध है? मालुंक्यपुत्र, माना कि विश्व शाश्वत है या अशाश्वत, निर्माणके बाद तथागत रहते हैं या नहीं इत्यादि तूने न जाना हो, तो भी क्या तेरी संयम-साधनामें कुछ बाधा आयगी? और मैं जो तृष्णा और उससे उत्पन्न होनेवाले दुःखोंकी बात कहता हूँ और उनके निवारणका उपाय दिखलाता हूँ, वे तो इसी समय जाने और अनुभवमें आ सकें, ऐसे हैं। तो इनके साथ ऐसे अकल्प प्रश्नोंका क्या सम्बन्ध? इससे हे मालुंक्यपुत्र, मैंने जिन प्रश्नोंको अव्याकृत कहकर एक तरफ़ रखा है, उनकी चर्चामें शक्तिका दुर्व्यय न कर और मैंने व्याकृतके रूपमें जो प्रश्न सबके सामने उपस्थित किए हैं, उन्हींको यथावत समझ और उनपर आचरण कर।'

स्वतंत्र विचारक

ऊपरके कुछ गद्यांश और उनमेंका वक्तव्य ही बुद्धका उपमा-कौशल स्पष्ट करते हैं। अतः इसकी स्पष्टताके लिए अधिक उपमाओंका उल्लेख न करके एक उपयोगी, मार्मिक और मनोरम उपमा यहाँ देना मुझे उचित लगता है। किसी समय अरिष्ट नामका एक भिक्षु बुद्धके उपदेशका विपर्यास करके लोगोंको बहकाता था। तब अरिष्टको

बुलाकर दूसरे भिक्षुओंके समक्ष बुद्धने उपमा द्वारा जो वस्तु सूचित की है, वह जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें सबके लिए एक-जैसी उपयोगी है। बुद्ध कहते हैं कि 'कोई व्यक्ति प्रतिष्ठित समझे जानेवाले जितने शास्त्र पढ़े, मुँहसे बोले, पर उनका सच्चा भाव प्रज्ञासे न समझे; मात्र उनका उपयोग ख्याति प्राप्त करनेके लिए या आजीविका बढ़ानेके लिए करे, तो वह तोतेके जैसा ज्ञान उल्टा उसे नुकसान पहुँचा सकता है। जिस तरह कोई सँपेरा बड़े भारी साँपको पकड़े, पर उसकी पूँछ या पेट पकड़ मुँह न दबाए, तो वह साँप चाहे जैसे बलवान और दक्ष सँपेरेको भी काट ले, उसकी पकड़ व्यर्थ सिद्ध हो; इसी प्रकार प्रज्ञासे जिनका वास्तविक अर्थ और भाव न जाना हो, ऐसे शास्त्रोंका लाभ-ख्यातिके लिए उपयोग करनेवाला मनुष्य अन्ततः दुर्गति प्राप्त करता है। इसके विपरीत, जो पुरुष प्रज्ञा और समझदारीसे शास्त्रोंका मर्म योग्य रूपसे ग्रहण करता है और उनका उपयोग लाभ-ख्यातिके लिए नहीं करता, वह पुरुष संडासेमें मुँह दबाकर साँपको पकड़नेवाले कुशल सँपेरेकी तरह साँपके काटनेसे बच जाता है। इतना ही नहीं, वह साँपका योग्य रूपसे उपयोग भी कर सकता है।'

भारतीय तत्वचिन्तकोंकी विचार-स्वतन्त्रताका सूचन करते हुए प्रो० मेक्समूलरने १८९४ ई०में वेदान्तपरके अपने तीसरे व्याख्यानमें बुद्धकी इसी विशेषताका निर्देश किया है। सत्यशोधक और स्वतन्त्र-विचारक स्वर्गीय श्री किशोरलाल भाईने भी 'जीवन-शोधन' की प्रस्तावनाके प्रारम्भमें बुद्धकी इसी विशेषताका उल्लेख किया है। मैं जानता हूँ, वहाँ तक बुद्धके पहले और बुद्धके पीछेके आज तकके २५०० वर्षोंमें दूसरे किसी भी पुरुषने उनके-जितनी स्वस्थता, गम्भीरता और निर्भयताके साथ विचार-स्वातंत्र्यकी प्रतीति करा सके, ऐसे उद्गार नहीं निकाले। ये उद्गार ही उनकी सर्वोपरि विशेषता हैं और वे हैं—"हे मनुष्यो, मैं जो-कुछ कहता हूँ, वह परम्परागत है, ऐसा समझकर सच मत मानना। तुम्हारी पूर्व परम्पराके अनुसार है, ऐसा समझ कर सच मत मानना। 'ऐसा होगा' ऐसा समझकर सच मत मानना। तर्क सिद्ध है, ऐसा जानकर सही मत मान लेना। लौकिक न्याय है, ऐसा जानकर सही मत मानना। सुन्दर लगता है, अतः सत्य मत मानना। तुम्हारी श्रद्धाका पोषक है, ऐसा जानकर सच मत मानना। मैं प्रसिद्ध साधु हूँ, पूज्य हूँ, ऐसा जानकर सच मत मानना। परन्तु तुम्हारी अपनी विवेक-बुद्धिसे मेरा उपदेश सत्य प्रतीत होता हो, तभी तुम उसे स्वीकार करो तथा सबके हितकी बात है, ऐसा यदि लगे, तभी उसे मानो।"

[अनु०—शांतिलाल म० जैन

भगवान बुद्धके प्रति

महाकवि 'निराला'

आज सभ्यताके वैज्ञानिक जड़ विकासपर
गर्वित विश्व नष्ट होनेकी ओर अग्रसर
स्पष्ट दिख रहा; सुखके लिए खिलौना जैसे
बने हुए वैज्ञानिक साधन; केवल पैसे
आज लक्ष्यमें हैं मानवके; स्थल-जल-अंबर
रेल-तार-बिजली-जहाज-नभयानोंसे भर
दर्प कर रहे हैं मानव, वर्गसे वर्गपण,
भिड़े राष्ट्रसे राष्ट्र, स्वार्थसे स्वार्थ विचक्षण।
हँसते हैं जड़वाद-ग्रस्त प्रेत ज्यों परस्पर,
विकृत नयन-मुख कहते हुए अतीत भयंकर
था मानवके लिए, पतित था वहाँ विश्व-मन,
अपटु अशिक्षित वन्य हमारे रहे बंधुगण;
नहीं वहाँ था कहीं आजका मुक्त प्राण यह,
तर्कसिद्ध है, स्वप्न एक है विनिर्वाण यह।

वहाँ बिना कुछ कहे, सत्य-वाणीके मन्दिर
जैसे उतरे थे तुम, उतर रहे हो फिर-फिर
मानवके मनमें, जैसे जीवनमें निश्चित
विमुख भोगसे, राजकुँवर त्यागकर सर्वस्थित
एकमात्र सत्यके लिए, रूढ़िसे विमुख, रत
कठिन तपस्यामें, पहुँचे लक्ष्यको तथागत!
फूटी ज्योति विश्वमें, मानव हुए सम्मिलित,
धीरे-धीरे हुए विरोधी भाव तिरोहित;
भिन्न रूपसे भिन्न धर्मोंमें संचित
हुए भाव, मानव न रहे करुणासे वंचित;
फूटे शत-शत उत्स सहज मानवता-जलके
यहाँ-वहाँ पृथ्वीके सब देशोंमें छलके;
छलके, बलके पंकिल भौतिक रूप प्रदर्शित
हुए तुम्हींसे हुई, तुम्हींसे ज्योति प्रवर्शित!

सिद्धार्थ गौतम बुद्ध

ल्यू ताल्स्ताय

दो हज़ार चार सौ वर्ष पहले भारतमें शुद्धोधन नामके राजा राज्य करते थे। उनक दो रानियाँ थीं। दोनों बहनें थीं। परन्तु दोनोंसे कोई संतान नहीं थी। इससे राजा बहुत दुखी थे। जब राजा पुत्र-प्राप्तिकी ओरसे हर तरह निराश हो चुके थे, तभी उनकी रानी मायादेवी ने एक पुत्रको जन्म दिया।

राजा शुद्धोदन अपने इकलौते पुत्रको बहुत प्यार करते थे और उसकी सुख-सुविधाके लिए उन्होंने कोई कसर बाक़ी नहीं रखी थी। पुत्रको ज्ञानी बनानेके लिए राजाने उसे हर तरहकी विद्याएँ सिखानेकी व्यवस्था की। पुत्र सिद्धार्थ था यथानाम तथागुण, अत्यन्त चतुर और दयालु स्वभाव।

सिद्धार्थकी उम्र उन्नीस सालकी हुई, तो राजाने उसकी चचेरी बहनसे उसकी शादी कर दी। यह सुन्दर युगल मूर्त्ति एक भव्य प्रासादमें रहती थी, जो चारों ओरसे मनोरम उद्यानोंसे घिरा था। उन प्रासाद और उन उद्यानोंमें सिद्धार्थको सुखी बनाए रखनेकी प्रत्येक व्यवस्था मौजूद थी। राजा शुद्धोदन अपने प्रिय पुत्रको सदैव सुखी-ही-सुखी देखना चाहते थे। राजाने उस प्रासादके सभी नौकरों-चाकरोंको यह कड़ी हिदायत कर रखी थी कि सिद्धार्थ को किसी भी तरहकी तकलीफ़ न होने पाए। केवल इतना ही नहीं कि किसी तरहकी तकलीफ़ न होने पाए, बल्कि प्रत्येक ऐसी बात, जिससे उसके दुःखी होनेकी सम्भावना हो, उससे छिपाकर रखी जाय। सिद्धार्थ अपने विशाल प्रासादकी चहारदीवारीके बाहर कभी नहीं जा पाता था और उस चार-दीवारीके भीतर उसे कभी भी कोई पुरानी, गली, सड़ी वस्तु देखनेको नहीं मिली। उस प्रासादके नौकर-चाकर हर तरहकी पुरानी, गली, सड़ी वस्तु, जिससे सिद्धार्थके मनके तनिक भी दुखी होनेकी सम्भावना रहती, शीघ्रातिशीघ्र हटा दिया करते थे। यहाँ तक कि पेड़ों, पौधों और दूसरी झाड़ियोंकी सूखी पत्तियाँ भी उनपर न रहने दी जाती थीं। इसलिए सिद्धार्थको अपने चारों ओर हमेशा नई, स्वस्थ, और खूबसूरत चीज़ें ही दिखाई देती रहती थीं।

बाहरी दुनियासे साक्षात्कार

एक दिन सिद्धार्थने अपने सारथीको चारदीवारीके बाहरका नगर देखने चलनेको कहा, जिससे वह देख सके कि अन्य सामान्य जन किस तरह रहते हैं। जब उसने नगरमें प्रवेश किया, तो उसे वहाँ सभी-कुछ—सड़कें, मकान, रंग-बिरंगी पोषाकें पहने पुरुष और स्त्रियाँ, दुकानें तथा खरीदने-बेचनेकी चीज़ें—नया लगा। इन सभी चीज़ोंको देखकर सिद्धार्थको असीम प्रसन्नता हुई। अचानक सिद्धार्थ की सड़कपर एक अजीबो-ग़रीब आदमी दिखाई दिया, जैसा उसने पहले कभी नहीं देखा था। वह आदमी एक मकान की दीवालसे सटा हुआ सिकुड़कर बैठा था और ज़ोर-ज़ोर से कराह रहा था। उसका चेहरा एकदम फीका था, जिस पर झुर्रियाँ पड़ी थीं। वह काँप रहा था। सिद्धार्थ पूछ बैठा—"इस आदमीको क्या हो गया है?"

सारथीका उत्तर था—"यह शायद बीमार हो गया है।"

"बीमार होनेका क्या मतलब होता है?"

"बीमार होनेका मतलब होता है कि उसके शरीरमें किसी तरहका विकार हो गया है।"

"क्या, इससे उसे किसी तरहका दर्द होता होगा?"

"हो सकता है, होता हो।"

"लेकिन उसे ऐसा क्यों होता है?"

"क्योंकि वह बीमार हो गया लगता है।"

"क्या ऐसी बीमारी सभीको होती है?"

"हाँ, ऐसी बीमारी सभीको हो सकती है।"

इसके बाद सिद्धार्थने सारथीसे फिर और कुछ नहीं पूछा। कुछ आगे बढ़नेपर एक बूढ़ा भिखारी सिद्धार्थको सामनेसे जाता दिखाई दिया, जो शरीरसे दुर्बल था, जिसकी कमर झुकी हुई थी, जिसकी आँखें गँदली थीं, जो अपने सूख कर लकड़ी हो गए पैरोंके बल बड़ी मुश्किलसे चल सकता था और जो अपने पोपले मुँहसे निकलनेवाली अस्पष्ट आवाज़ से भीख माँग रहा था। सिद्धार्थने जिज्ञासा की—"क्या यह भी बीमार है?"

छन्नक—"नहीं, यह तो एक बूढ़ा आदमी है।"

"बूढ़ा आदमी? क्या मतलब बूढ़े आदमीका?"

"इसका यही मतलब है कि वह बूढ़ा हो गया है।"

"लेकिन वह बूढ़ा क्यों हो गया है?"

"ऐसे तो सभी होते हैं, जो ज्यादा दिनों तक जी जीते हैं।"

"क्या सचमुच ऐसा सभीको होना पड़ता है, जो ज्यादा दिनों तक जीते हैं?"

"हाँ, सभीको होना पड़ता है।"

"क्या, यदि मैं भी ज्यादा दिनों तक जीवित रहा, तो मुझे भी ऐसा होना होगा?"

"हाँ, आपको भी ऐसा ही होना होगा।"

"तो चलो, लौट चलें।"

छन्नक रथको लौटाए लिए जा रहा था। कुछ ही आगे जानेपर देखा कि चन्द लोग कन्धोंपर कोई चीज लिए जा रहे हैं, जो लेटे हुए आदमीकी तरह है। सिद्धार्थ ने प्रश्न किया—"यह क्या है?"

छन्नकका उत्तर था—"यह एक मुर्दा है।"

"मुर्दा? मुर्देका क्या मतलब?"

"इसका मतलब है कि इस आदमीका जीवन समाप्त हो गया है।"

सिद्धार्थ रथसे उतरकर लोगोंके उसी झुंडमें जा पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि मुर्देकी आँखें खुली हुई थीं, मुँह बाया हुआ था और दाँत दिखाई दे रहे थे। हाथ वैसे ही लकड़ी बने पड़े थे, जैसे किसी भी मुर्देके होते हैं।

"यह ऐसा क्यों हो गया है?"

"इसका समय आ गया है, और यह मर गया है।"

"क्या सभी इसीकी तरह मरते हैं?"

"हाँ, सभी इसीकी तरह मरते हैं।"

चिन्तन और महाभिनिष्क्रमण

सिद्धार्थ वापस लौट आया। उसका सिर झुका हुआ था। वह महल लौटा, तो सारा दिन अपने प्रासादके उद्यानके एक कोनेमें बैठा हुआ बार-बार उन्हीं बातोंपर विचार करने लगा, जो उसने दिनमें देखी थीं। सभी बीमार होते हैं, सभी बूढ़े होते हैं, सभी मरते हैं। यह जानते-बूझते हुए भी आदमी कैसे जीवित रहते हैं? सभी को समय-समयपर बीमार होना होता है; सभी जराप्राप्त होते हैं, सभीका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है, सभी मृत्युको प्राप्त होते हैं—कोई एक दिन पहले, कोई एक दिन पीछे। यह सब जान लेनेपर आदमीके लिए सुखी बने रहना, प्रसन्न बने रहना, कैसे सम्भव है? यह हो नहीं सकता। किसी न किसीको कोई रास्ता ढूंढ़ निकालना ही होगा। मैं ही खोजूंगा और जब वह रास्ता, वह ज्ञान, मुझे मिल जायगा, तो मैं उसे दूसरोंको दूंगा, दूसरोंको सिखा दूंगा। लेकिन उस रास्तेको खोज निकालनेके लिए मुझे महल, बंधुओं आदिका त्याग करना ही होगा। यहाँकी प्रत्येक वस्तु मुझे पथ-भ्रष्ट करती प्रतीत होती है। मुझे पत्नीको छोड़ना होगा, पिताको छोड़ना होगा और माता तकको छोड़ना होगा। मुझे जंगलमें जाकर ऋषियोंसे जिज्ञासा करनी होगी कि इन और ऐसी सभी बातोंके बारेमें वे क्या सोचते हैं?

एक दिन सिद्धार्थने अपने सारथी छन्नकको बुलाया और उसे आज्ञा दी कि वह घोड़ेको कसकर महलके दरवाज़े पर तैयार खड़ा रखे। महल छोड़नेसे पहले वह अपनी पत्नीको देखने गया, जो उस समय सो रही थी। सिद्धार्थ ने उसे जगाया नहीं। उसने उससे मन-ही-मन विदा ली। किसी दास-दासी तकको भी बिना खबर लगने दिए उसने
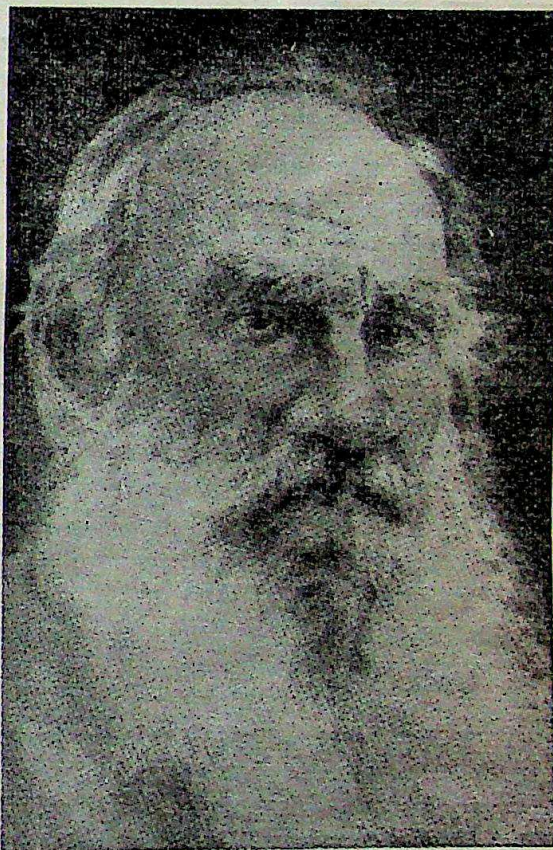
लेखक

हमेशाके लिए अपने राजप्रासादका त्याग कर दिया। वह घोड़ेपर चढ़कर अपने माता-पिताको छोड़ दूर, बहुत दूर, चला गया। वह वहाँ तक गया, जहाँ तक उसका घोड़ा उसे ले जा सकता था। तब उसने उसे छोड़ दिया और जाने दिया।

तपस्वियोंसे जिज्ञासा

अब उसने अपने कपड़ोंकी एक भिखारीसे अदला-बदली करली और अपने बाल काट डाले। वह कुछ तपस्वियों के पास गया और उनसे उन बातोंके बारेमें पूछा, जिन्हें वह नहीं समझ सका था—इस संसारमें रोग क्यों है?

बुढ़ापा क्यों है? मृत्यु क्यों है? इनसे मुक्ति कैसे मिल सकती है?

एक तपस्वीने उसे अपना चेला बना लिया और उसे इन बातोंके विषयमें हिन्दू-धर्मके विश्वासोंके अनुसार ज्ञान दिया। हिन्दू-धर्ममें कहा गया है कि मनुष्यकी आत्मा एक शरीरमें से दूसरे शरीरमें चली जाती है। हर आदमी अपने पिछले जन्मके कर्मोंके अनुसार इस जन्ममें और इस जन्मके कर्मोंके अनुसार अगले जन्ममें छोटे या बड़े सत्वके रूपमें जन्म ग्रहण करता है।

सिद्धार्थने इस ज्ञानको समझा तो सही, लेकिन स्वीकार नहीं किया। वह उन ब्राह्मण तपस्वियोंके साथ छः महीने तक रहा। फिर उन्हें छोड़कर सुदूर जंगलमें चला गया। वहाँ भी अनेक प्रसिद्ध तपस्वी रहते थे। सिद्धार्थ उन तपस्वियोंके साथ छः साल तक रहा और तपस्या करता रहा। वह अपनी तपस्यामें इतना कठोर था कि सभी उसके बारेमें बातें करने लगे। उसके पास कुछ चेले भी जमा हो गए, जिन्होंने उसकी पूजा तक करनी शुरू कर दी!

उन तपस्वियोंकी संगतिमें भी उसे वह ज्ञान हाथ नहीं लगा, जिसकी उसे तलाश थी। निराश हो वह वापस अपने महलमें लौटनेकी बात भी सोचने लगा, लेकिन वह वापस नहीं लौटा। हाँ, उसने उन चेलोंको छोड़ दिया, जो उसकी पूजा करते थे और स्वयं उस स्थान से भी अधिक एकान्त किसी दूसरे स्थानको चला गया। वहाँ भी वह इन्हीं बातोंपर विचार करता रहा कि रोग, बुढ़ापे तथा मृत्युसे मुक्ति कैसे प्राप्त हो? लेकिन यहाँ भी उसे असफल ही होना पड़ा। इसी तरह हैरान-परेशान होते न-जाने कितना समय बीत गया।

आर्य-सत्योंकी प्राप्ति

एक दिन वह एक (बरगदके) पेड़के नीचे बैठा इन्हीं प्रश्नोंके बारेमें गहरे चिंतनमें डूबा हुआ था कि यकायक इस प्रकारके सभी प्रश्नोंका उत्तर उसे सूझ गया। उसे रोग, बुढ़ापे और मृत्युसे मुक्ति पानेका मार्ग मिल गया। उसे ज्ञान-लाभ हो गया। उस ज्ञानके अनुसार उसने चार आर्य-सत्योंको जाना। पहला आर्य-सत्य था कि सभी प्राणी दुखी हैं; दूसरा आर्य-सत्य था कि सभी प्राणियोंका यह दुःख सकारण है; तीसरा आर्य-सत्य था कि सभी प्राणियोंको इस दुःखसे मुक्ति मिल सकती है; चौथा आर्य-सत्य था वह जिसपर चलनेसे प्राणी अपने दुःखका अन्त कर सकता है, आर्य-सत्यपर इस मार्गके चलनेके लिए चार बातोंकी अनिवार्य आवश्यकता है। प्रथम हृदयको जाग्रत करनेकी; दूसरे विचारोंको शुद्ध करनेकी; तीसरे अपने-आपको बुराई और क्रोधसे मुक्त करनेकी और चौथे केवल मनुष्योंके प्रति ही नहीं, बल्कि सभी प्राणियोंके प्रति मैत्री-चित्त-युक्त होनेकी। पीड़न सर्वथा अनावश्यक है। सर्वोपरि आवश्यकता है चेतनाको निर्मल बनानेकी। सच्चा आत्म-विकास मैत्री द्वारा ही हो सकता है। जब आदमी अपनी तृष्णाको मैत्रीमें बदल देता है, तभी वह अविद्या तथा लोभके बन्धनों से मुक्त हो सकता है, दुःख तथा मृत्युका अंत कर सकता है।

दस शीलोंका उपदेश

जब सिद्धार्थ गौतमको यह ज्ञान हो गया—अर्थात् वे बुद्ध हो गए, तो वे सभीको उपदेश देते हुए एक स्थानसे दूसरे स्थानपर विचरने लगे। उनके कुछ शिष्य, जो उनका साथ छोड़ गए थे, उनसे ज्ञान प्राप्त कर लेनेके बाद फिर उनके आसपास रहने लगे। बहुतसे ब्राह्मणोंने उनका साथ नहीं दिया; वे उनके विरुद्ध अधिकसे अधिक प्रचार करते रहे। बुद्धने अपने उपदेशोंको दस शीलोंका रूप दिया—(१) किसी प्राणीकी हत्या न करना; (२) चोरी, न करना, लूट-मार न करना; दूसरोंकी परिश्रम की कमाई न छीनना; (३) मन और कर्मसे व्यभिचारी न होना; (४) झूठ न बोलना, उचित समय और स्थानपर दूसरोंके हितको ध्यानमें रखकर सत्य बोलना; (५) किसीकी निन्दा तथा चुगली न करना; (६) कसम न खाना; (७) बकवास न करना; (८) किसीपर क्रोध न करना; (९) मनको शुद्ध रखना, घृणाके स्थानपर प्यार करना; (१०) सत्यकी खोजमें लगे रहना और उसे समझनेका प्रयत्न जारी रखना।

बुद्ध ६० (अस्सी वर्षकी आयु तक—अनु०) वर्ष तक लोगोंको उपदेश देते हुए विचरते रहे। उनको अपनी एक यात्रामें अपना अंत समय समीप मालूम दिया। उन्हें प्यास लगी थी। उनके शिष्योंमें से एक—आनन्दने उन्हें पानी पिलाया। उन्होंने बैठकर पानी पिया और फिर आगे चल दिए।

अन्तिम उपदेश

वे हिरण्यवती नदीके तटपर रुके और एक (दो शाल वृक्षों—अनु०) वृक्षके नीचे बैठकर अपने शिष्योंको सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! मेरा अंत समय समीप है। मेरे परिनिर्वाणके बाद भी मेरी शिक्षाओंको ही अपना मार्ग-दर्शक समझना।" आनन्दने यह सुना, तो वह अपने-आपको रोक नहीं सका और रो पड़ा। बुद्धने उसे सांत्वना देते हुए कहा—"यह ठीक नहीं है। रोओ नहीं, घबराओ नहीं, चिन्तित न होओ। सभीको एक दिन अपने प्रियजनोंको छोड़ ही देना पड़ता है। इस संसारमें कोई भी वस्तु नित्य नहीं है।"

बुद्धने अपने दूसरे सभी शिष्योंको भी सम्बोधित करके कहा—"भिक्षुओ! मैंने तुम्हें करना और जीना सिखा दिया है। उसी ढंगसे रहो। मुक्तिका जो रास्ता मैंने बताया है, एकमात्र वही मार्ग है। याद रखो कि सभी वस्तुएँ नाशवान हैं। मुक्तिकी प्राप्तिमें सदा यत्नवान रहो, यही तुम्हारे योग्य है।" ये ही वे शब्द हैं, जो बुद्ध के अन्तिम शब्द थे। [अनु०—दीनदयाल 'दिनेश'

बुद्धका दर्शन

श्री राहुल सांकृत्यायन

बुद्धको अबौद्धोंने भी 'योगिनां चक्रवर्ती' कहकर महा-योगी माना है। आधुनिक युगमें उनके अहिंसा, पंचशील और सदाचारपर जोर देनेकी बातोंको लेकर कितने ही लोगोंने उन्हें आचारशास्त्रका आचार्य माना है। इसमें शक नहीं कि उनके व्यक्तित्वमें ये दोनों चीजें भी मौजूद हैं, लेकिन उन्होंने दर्शन (प्रज्ञा) पर सबसे अधिक जोर दिया है। दार्शनिकके तौरपर उनका और उनके अनुयायियोंका बहुत ऊँचा स्थान है। बुद्धके दर्शनके तीन महावाक्य हैं—अनित्य, दुःख, अनात्मा; उसी तरह जैसे वेदान्तके सत्-चित्-आनन्द। और यह दोनों दर्शन एक-दूसरेके पूरे विरोधी हैं, यह इनके इन तीन वाक्योंकी तुलना करने हीसे मालूम हो जायगा। अनित्यवादपर बुद्धका बहुत जोर है, और एक तरहसे कह सकते हैं कि यही बुद्ध और बौद्ध-दर्शनकी आधार-शिला है। इसको ठीक तरहसे समझनेपर ही बौद्ध-दर्शनको समझा जा सकता है, और इसे भी समझा जा सकता है कि अपने भारतसे लुप्त होनेके समय (१२वीं सदी) तक क्यों बौद्ध-दर्शन बराबर आगे बढ़ता रहा।

उपनिषद्-दर्शन और बुद्ध

बुद्धके प्रादुर्भावसे पहले ही उपनिषद्के विचारकोंके रूपमें हमारे देशमें दार्शनिकोंका महत्व बढ़ चुका था। उपनिषद् बाहरी दुनियाको अनित्य माननेके लिए तैयार था, लेकिन वह उसके भीतरसे एक नित्य सत्ता खोज निकालना चाहता था। परिवर्त्तनकी दुनिया सचमुच ही शान्तिकी दुनिया नहीं हो सकती, इसलिए वास्तविक हो या काल्पनिक एक सनातन अपरिवर्त्तनशील तत्वको ढूंढ़नेकी तरफ़ वेद-कालके बादके विचारकोंकी पीढ़ियाँ दिन-रात एक करने लगीं और उन्होंने आत्मा (ब्रह्म)के रूपमें उस तत्वको ढूंढ़ा, यद्यपि इस सफलताका यह परिणाम नहीं हुआ कि अब नई-नई जिज्ञासाएँ उत्पन्न न हों। यह तो इसीसे मालूम होता है कि बुद्ध-कालमें बुद्धको लेकर सात बड़े-बड़े आचार्य अपने-अपने दर्शनके आविष्कार और प्रतिपादनके लिए ख्यात थे और ये सभी उपनिषद् या वेदके मार्गके अनुयायी नहीं थे, बल्कि ब्राह्मणोंके धर्मके मुकाबलेमें उन्होंने नए तीर्थ—धार्मिक संप्रदाय—स्थापित किए। सभी अपने-अपने तीर्थोंके प्रवर्तक माने जाते थे और उनके धर्ममें भौतिकवाद और अनीश्वरवाद तक सम्मिलित थे।

बुद्धका मुख्य प्रहार उपनिषद्-दर्शनपर था, यह तो इसीसे मालूम है कि उपनिषदके आत्मतत्वकी जगह उन्होंने अपने दर्शनमें अनात्मका प्रतिपादन किया। अनात्मसे मतलब आत्माका अभाव-मात्र नहीं था, बल्कि वह इस शब्दसे यह बतलाना चाहते थे कि भीतरी-बाहरी किसी संसार या पदार्थको देख जाएँ, कहींपर उपनिषद्-प्रतिपादित आत्मा जैसे सनातन तत्वका अस्तित्व नहीं मिलता। सभी पदार्थ बाहरसे भीतर तक सतत परिवर्त्तनशील हैं। और यह परिवर्त्तन ऊपरी-ऊपरी नहीं होता, बल्कि जड़-मूलसे एक वस्तुको

लेखक

नाशकर क्षण-भरके लिए दूसरी वस्तुको ला रखता है। इस तरह देश और कालमें यह परिवर्त्तन सदासे होता आ रहा है और सदा होता रहेगा। 'सब अनित्य हैं' (सब्बं अनिच्चं), 'सब्ब अनात्म हैं' (सबं अनात्तं) इन वाक्योंको बुद्धने इनके पूरे अर्थोंमें इस्तेमाल किया और विश्वमें इसे अटल सिद्धान्त बतलाया। अनित्यताके नियमका कोई अपवाद नहीं है, या कह लीजिए अपवाद सिर्फ़ यही सर्वव्यापी अनित्यता है।

सद्वस्तुकी परिवर्त्तनशीलता

अनित्यवादको और स्पष्ट करते हुए पीछेके आचार्योंने इसका दूसरा नाम क्षणिकवाद रखा और बतलाया कि 'जो सद्वस्तु है, वह क्षणिक है' (यत् सत् तत् क्षणिकं)। दूसरे शब्दोंमें यह भी कह दिया कि जो क्षणिक नहीं, वह सद्वस्तु नहीं, कल्पित हो सकती है। क्षणिकता या नित्यताके विश्वव्यापी नियमको स्वीकार कर लेनेपर फिर न आत्मा की गुंजाइश रह जाती है, न ईश्वरकी। इसलिए बौद्ध-धर्म और दर्शनका अनीश्वरवादी होना बिल्कुल स्वाभाविक है। बुद्धके समय या उससे पहले ऐसा दर्शन मौजूद नहीं था। भौतिकवादी भी इस तरहके भौतिक सूक्ष्म तत्वोंके ठोस और अचल रहनेको मानते थे, जो ईंटकी तरह जोड़कर पदार्थोंको बनाते थे। यह सिद्धान्त बहुत-कुछ परमाणुवाद-सा था, पर परमाणुवाद अभी भारतमें स्वीकृत नहीं हुआ था। ग्रीक लोगोंके भारतमें आनेपर ही उसका भारतीकरण हुआ और वैशेषिकोंने उसे अपने मौलिक सिद्धान्त के तौरपर स्वीकार किया। भौतिकवादियों तकने जब विश्वके अन्तस्तलमें कूटस्थ अविकारी ईंटोंको मान लिया था, तो दूसरोंकी बात ही क्या ?

बुद्ध-दर्शनकी विशिष्टता

क्षणिकवादके सिद्धान्तको अपनानेपर कई समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। ईश्वर या आत्मा-जैसी किसी अवलम्ब लेनकी सत्ताके अभावमें अब निर्बल आदमीको कैसे अपनी जीवन-यात्रा करनी चाहिए ? बुद्धने इसके लिए कहा : 'तुम स्वावलम्बी बनो (अत्तदीपा भवथ अत्तसरणा)। तुम अपने ही स्वामी हो (अत्ता हि अत्तनो नाथो)। किसी देव या मनुष्यकी शरण या सहायता लेना बेकार है और उसकी आवश्यकता भी नहीं है। मनुष्य अपने ही बलपर आगे बढ़ सकता है, अपनी ही गलतीसे अगर उसे डूबना भी पड़े, तो कोई परवाह नहीं। पर दूसरेकी बातमें पड़के, दूसरेका सहारा लेकर डूबना, बेवकूफ़ बनना शोभाकी बात नहीं है।' बुद्धने इस प्रकार स्वावलम्बनका ज़बर्दस्त पाठ पढ़ाया। स्वावलम्बी होकर आदमी अकर्मण्य नहीं हो सकता। आखिर उसे अपने कामोंके भरोसेपर ही तो चलना है। यह कर्म-सिद्धान्त बौद्धोंका एक मुख्य सिद्धान्त है। वैसे दूसरे भारतीय धर्म 'कर्म-प्रधान विश्व करि राखा, जो जस करै, सो तस फल चाखा' को मानते रहे हैं, पर कर्मके फेरमें पड़नेसे बचनेका भी उपाय बतलाते हैं— 'कभी अपने कर्मोंका भरोसा बिल्कुल छोड़कर भी भगवान् की शरणमें आ जाओ और मुक्ति तुम्हारे हाथमें धरी हुई है !' वैष्णव-धर्मने भी इस बातका प्रचार किया, और ईसाई-धर्म तो इसको ही सर्वोपरि सिद्धान्त मानता रहा— 'भगवान् ईसा मसीहकी कृपा होनी चाहिए, फिर नरककी यातना नहीं मिल सकती !' इस्लामने भी इस्लाम-धर्म मानने और पैग़म्बरकी सिफ़ारिशपर सभी पापोंके विनाशकी घोषणा की। पर बौद्ध-दर्शन साफ़ कहता है कि 'हरेक अच्छा या बुरा काम हाथोंसे छूटा हुआ तीर है। करनेके साथ ही वह जीवनको अपने रूपमें बदल देता है। हरेक जीवन अपने अतीतके अनन्त कालके कर्मोंके प्रभावोंका योग है। इस योगको करनेके लिए किसी बाहरी देवता और साधनकी अवश्यकता नहीं है। जिस तरह बहती हुई जल-प्रणालीमें लगातार पड़ते हुए रंग उसे तत्काल अपने रूपमें रँगते जाते हैं, वही स्थिति जीवनकी है।'

सतत परिवर्त्तनका सिद्धांत

जीव, आत्मा या दूसरी तरहके शब्द बौद्ध-दर्शनके समझने में भ्रांति पैदा करते हैं, क्योंकि वह किसी-न-किसी स्थिर तत्वकी सूचना देते हैं; जब कि बौद्ध-दर्शनके अनुसार शरीरमें आत्मा या जीव-जैसी कोई चीज़ नहीं है, बल्कि जैसे शरीर भौतिक तत्वोंका क्षण-क्षण बदलता प्रवाह है, उसी तरह उसके भीतरकी चेतना (जीवन) भी क्षण-क्षण बदलती चेतनाका प्रवाह है। द्वैतवादी बौद्ध-दर्शन इन दोनों प्रवाहोंको एक-दूसरेपर आश्रित बराबर बदलते हुए मानते हैं। अद्वैतवादी इनमें एकको मुख्यता देते हैं और दूसरेको उसी मुख्य तत्वका परिणाम-मात्र कहते हैं। शरीर भौतिक पदार्थ है। भौतिक पदार्थोंको बौद्ध-परिभाषामें 'रूप' कहा जाता है और इसके भीतरके अभौतिक प्रवाहको, चेतनाको, विज्ञान कहते हैं।

चेतना और चेतनका उनके यहाँ कोई भेद नहीं है। चेतनको ही चेतनाका नाम दिया जाय, तो इसमें उन्हें आपत्ति नहीं है। पर इन दोनोंके अलग अस्तित्वको माननेमें फिर आत्मवादकी भ्रांति पैदा हो जानेका डर है, इसलिए उसे बौद्ध पसन्द नहीं करते। इस असीम परिवर्तनशीलताको देखनेपर दुनियामें वस्तुतः 'वस्तु' नामकी कोई चीज़ नहीं है बल्कि घटनाएँ हो रही हैं। घटनाएँ कालमें इतने थोड़े-थोड़े अन्तरसे होती हैं कि उनका पकड़ना भी मुश्किल है, और उनके उन परिवर्त्तनोंको न देखनेपर देर तक एक तरहके रूप देखकर एकता या स्थिरताका भ्रम हो जाता है। बौद्ध-दर्शन स्थिरताके दर्शनसे उल्टा है। जब विश्वमें स्थिरता नामकी कोई चीज़ है ही नहीं, बल्कि प्राकृतिक नियमोंके कारण हरेक वस्तु या घटना जड़-मूलसे परिवर्तित होनेके लिए मजबूर है, तो विश्वमें परिवर्त्तन करनेवाली गतिकारक शक्तिकी आवश्यकता नहीं। पदार्थोंका अपना ही रूप गति देनेके लिए पर्याप्त है।

विनाशके लिए हेतु अनावश्यक

गति, नित्यता या विनाशके इस अटल सिद्धान्तको मान लेनेपर इसकी यह व्याख्या स्पष्ट हो जाती है कि संसारमें वस्तुओंके विनाशके लिए किसी कारणकी आवश्यकता नहीं। बिना कारण, बिना हेतु, सारे पदार्थ पैदा होकर दूसरे क्षण अपने-आप नष्ट हो जायँगे, यह बौद्धोंका अहेतुक विनाश-सिद्धान्त है। पर इसके कारण यह अहेतुवादी नहीं कहे जा सकते। विनाशके लिए किसी हेतुकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि विनाश अभाव-रूप है। लेकिन उत्पत्तिके लिए हेतुकी आवश्यकता है—हेतु नहीं, बल्कि हेतुओंकी आवश्यकता है। उत्पत्ति किसी वस्तुके भावके रूपमें होती है। किसी एक वस्तुकी उत्पत्तिके लिए एक कारण विश्वमें कहीं नहीं देखा जा सकता। अनेक हेतु मिलकर एक कार्यको उत्पन्न करते हैं। बौद्धोंके इस सिद्धान्तको 'हेतुसामग्री-वाद' कहते हैं। जो लोग अनुमानसे ईश्वरकी सत्ता साबित करना चाहते हैं, उनके लिए बौद्धोंकी यह ज़बर्दस्त आपत्ति है कि दुनियाकी छोटी या बड़ी किसी चीज़को ले लीजिए, उसके उत्पन्न होनेमें अनेक कारण होते हैं। घड़ेके पैदा करनेमें कुम्हार, उसका डंडा, उसका चाक, मिट्टी, पानी, मिट्टी ढोनेवाला गदहा और कितनी ही चीज़ें हैं। कुम्हारकी कलाके विकास करनेमें सहायता देनेवाली सैकड़ों पीढ़ियाँ हैं। सभी घड़ेके उत्पादनमें कारण हैं। अगर कार्यसे कारणका अनुमान होता है, तो यही कि एक कार्य के अनेक कारण होते हैं। अनेक कारणोंमें किसीको महत्वहीन नहीं कहा जा सकता, क्योंकि चाहे बाज़ारके मोल-भावमें किसी चीज़का दाम कितना ही कम हो, लेकिन जब उसके बिना कार्यका होना बिल्कुल असंभव है, तो वह दूसरे कारणोंके ही समान महत्व रखता है।

कार्य-कारणकी नई व्याख्या

चरम अनित्यताके सिद्धान्तके अनुसार कार्य-कारणका दूसरा रूप हो जाता है। स्थिरवादमें हम घड़ेका कारण मिट्टीके लौंदेको मानते हैं, और उस लौंदे और घड़े दोनोंमें मिट्टी परिवर्त्तन होते भी मौजूद है। इस तरहके स्थूल कथनको बौद्ध भी व्यवहार-सत्यके तौरपर मान लेते हैं, लेकिन यह परमार्थ सत्य नहीं है। परमार्थ दृष्टिसे देखने पर मिट्टीके लौंदेके भीतरके सूक्ष्म अंशों (परमाणुओं) और उनकी नितान्त क्षणभंगुरताका ख़याल रखना होगा। वह दूसरे ही क्षण बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं, और फिर दूसरी चीज़ उनकी जगहपर आ जाती है। कार्य और कारणमें कोई चीज़ एकसे दूसरेमें स्थिर रहते स्थानान्तरित नहीं होती, बल्कि एक जड़-मूलसे नष्ट होकर दूसरेके उत्पन्न होने के लिए रास्ता छोड़ती है। कारण जिस वक्त था, उस वक्त कार्य नहीं था; कार्य जिस वक्त अस्तित्वमें आया, उस वक्त कारणका अत्यन्त विनाश हो चुका होता है। इसलिए वास्तविक तौरसे कार्य और कारणका एक-दूसरेके साथ कोई भी सम्पर्क नहीं हुआ। उनके बारेमें यही कहा जा सकता है कि कारण पहले था, उसके बाद कार्य आया—'अस्मिन् सति इदं भवति' (इसके होनपर यह होता है)। इस तरह हम देखते हैं कि बौद्ध दार्शनिक विचारोंसे कार्य-कारणकी व्याख्या भी नई हो जाती है।

बुद्ध-दर्शन निराशावादी नहीं

अनित्यताको आत्मवादपर लगानेपर आत्माका सिद्धान्त आ जाता है, इसे भी ऊपरके कथनसे आसानीसे समझा जा सकता है। 'सब दुःख है' कहनसे बुद्धका दर्शन दुःखवाद मालूम होता है, लेकिन दुःखवाद या निराशावाद बौद्ध-दर्शनमें नहीं है। वह सिर्फ़ इस वास्तविकताको बतलाना चाहता है कि हरेक वस्तुके क्षण-क्षण विनाशी होनेसे कोई भी संयोग स्थायी नहीं हो सकता, या हरेक संयोगकी जड़में वियोग बैठा हुआ है। प्रियके वियोग, प्रिय वस्तु या प्राणी के वियोग होनेपर दुःख होता है। इस प्रकार जीवनमें दुःखका मिलते रहना स्वाभाविक है। पर दुःखको मानने के लिए नहीं, बल्कि दुःखको हटानेके लिए बुद्धने कहा है। हरेक दुःखका कारण (समुदाय) होता है, उसे हटाया जा सकता है (निरोध), और हटानेका उपाय (मार्ग) है। इस तरह देखनेपर बुद्धका दर्शन निराशावादी नहीं रहता।

बुद्धके इस तरहके क्रान्तिकारी दर्शनने यदि ऐसी विचार-धाराको जन्म दिया, जो हर तरहके उथल-पुथलका स्वागत करनेके लिए तैयार थीं, तो कोई आश्चर्य नहीं। इसकी झलक हमें छठी शताब्दीके अन्तके महान् दार्शनिक नालन्दा के आचार्य धर्मकीर्तिके निम्न श्लोकसे मिलती है :

वेदप्रामाण्यं कस्यचित्कर्तृवादः स्नानेधर्मेच्छा जातिवादावलेपः
संतापारंभः पापहानाय चेति ध्वस्तप्रज्ञानां पंच लिंगानि जाड्ये।

वेद (ग्रंथ) की प्रमाणता किसी (ईश्वर) का (सृष्टि अर्थात् कर्त्तापन) कर्तृवाद स्नान (करने) में धर्म होनेकी इच्छा रखना, जातिवाद (छोटी-बड़ी जात-पाँत) का घमंड, और पाप दूर करनेके लिए शरीरको संताप देना (उपवास तथा शारीरिक तपस्याएँ करना)—ये पाँच हैं अकल-मारे लोगोंकी मूर्खता (जड़ता) की निशानियाँ।"

तथागतकी दिनचर्या

त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

भगवान् बुद्धके आचरण एवं व्यक्तित्वको समझनेके लिए उनकी दिनचर्या जाननी अत्यावश्यक है। व्यक्ति की दिनचर्या उसके आचरण एवं व्यक्तित्व दोनोंको प्रकट करती है। हम तथागतकी दिनचर्याको इसी दृष्टिकोण से देखेंगे, जिससे उन्हें समझनेमें किसी प्रकारकी कठिनाई न हो।

साधारण रूपसे तथागतकी दिनचर्या पाँच भागोंमें विभक्त की जाती है—(१) भोजनके पूर्वकी चर्या, (२) भोजनके बादकी चर्या, (३) पहले पहरकी चर्या, (४) बिचले पहरकी चर्या और (५) पिछले पहरकी चर्या। भगवान् बुद्ध प्रातः ही उठकर मुख धोना आदि नित्य कर्मकर भिक्षाटन के समय तक एकान्त स्थानमें रह, अन्तर्वासक पहन, काय-बन्धन बाँध, चीवर ओढ़, पात्र ले, और अकेले ही कभी-कभी भिक्षु-संघसे घिरे हुए गाँव या कस्बेमें भिक्षाके लिए प्रवेश करते थे। वे गाँवके पास पहुँचकर संघाटीको भली प्रकार ओढ़ते थे, भिक्षु-संघ भी भली प्रकार संघाटी ओढ़कर तैयार हो जाता था, तब भगवान् गाँवमें प्रवेश करते थे। गाँवमें जानेपर भगवान्को देखकर कभी-कभी लोग प्रार्थना करते थे—'भन्ते! हमें दस भिक्षु दें, हमें बीस भिक्षु दें!' और भगवान्के पात्रको ले सुन्दर बिछे हुए आसनपर बैठकर सत्कारपूर्वक भोजन कराते थे। भगवान् भोजन कर हाथ धो उन्हें योग्यतानुसार धर्मोपदेश देते थे। कभी-कभी विशेष बात आ जानेपर या किसी भिक्षुके गुणको प्रकाशित करनेके विचारसे स्वयं उपदेश न देकर उस भिक्षुके गुणको प्रकाशित करनेके विचारसे उस भिक्षुको ही उपदेश देनेके लिए आज्ञा करते थे। उपदेश के समाप्त होनेपर वे भिक्षु-संघके साथ अपने विहार करने के स्थानको लौट जाते थे। कभी-कभी भगवान् गाँवमें जाकर घरकी परिपाटीसे भिक्षाटन कर पाए हुए भोजनको ले एकान्त स्थानमें जाकर भोजन करते थे। भोजनोपरान्त लौटकर विहारमें चले आते थे। कभी-कभी ही किसी विशेष बातके आ जानेपर वे भिक्षाटन करने न जाकर विहार में ही रहते थे। एक बार भगवान् मथुराके गुन्दावनके विहारमें वास कर रहे थे। भोजनके समय भगवान् भिक्षु-संघके ही साथ भिक्षाटनके लिए नगरकी ओर चले। भगवान् ज्यों ही नगरके समीप पहुँचे, एक यक्षिणी नंगी हो सामने आ खड़ी हुई। भगवान् भिक्षु-संघके साथ वहींसे लौट आए। मथुरावासी गृहस्थोंने जब इस समाचारको सुना, तब उन्होंने विहारमें ही भोजन पहुँचानेका प्रबन्ध किया।

ऐसे ही एक बार भगवान् श्रावस्तीके जेवन-विहारमें वास करते थे। नगरमें होलीका उत्सव (बाल-नक्षत्र) मनाया जा रहा था। गँवार लोग गालियाँ देते घूम रहे थे। उस समय भी भगवान् एक सप्ताह तक भिक्षु-संघके साथ भिक्षाटन करने नहीं गए। भोजनकी व्यवस्था विहार में ही हुई।

जब कभी कोई दायक भगवान्को भिक्षु-संघके साथ भोजनके लिए निमंत्रित करता था, तब वे भिक्षु-संघके साथ उस दायकके घर जा भोजनकर धर्मोपदेश देकर लौटते थे। जब कभी भगवान् भिक्षु-संघके साथ नगरमें भिक्षाटनके लिए जाते थे, तब आगे-आगे भगवान् चलते थे और उनके पीछे-पीछे क्रमशः भिक्षु-संघ। जब पाँच सौ भिक्षुओंकी पंक्ति नगरमें प्रवेश करती, तो कितनी भली जान पड़ती! लोग इस शान्त-दान्त भिक्षु-मण्डली एवं भगवान्को देखकर चकित हो जाते। कभी-कभी भिक्षाटनसे पूर्व अन्य साधु-परिव्राजकोंके आश्रमोंमें जाकर कुछ वार्त्तालाप करते थे और समय हो जानेपर भिक्षाके लिए नगरमें प्रवेश करते थे। वहाँसे लौटकर भगवान् विहारके मण्डपमें बुद्धासनपर बैठते थे। जब कभी भिक्षु भोजन-कृत्यसे निवृत्त हो जाते थे, तब भगवानके उपस्थाक आकर निवेदन करते थे—'भन्ते! सभी भिक्षु भोजन कर चुके।' तदुपरान्त तथागत गन्ध-कुटीमें प्रवेश करते थे। इसे तथागतकी भोजनके पूर्वकी चर्या कहते हैं।

इस प्रकार भगवान् भोजनके पूर्वके कृत्यको समाप्त कर गन्धकुटीके बरामदेमें बैठकर पैरोंको धो भिक्षु-संघको उपदेश देते थे—"भिक्षुओ! अप्रमादके साथ जीवनके लक्ष्यका सम्पादन करो। संसारमें बुद्धका उत्पन्न होना दुर्लभ है, मनुष्यका जन्म पाना कठिन है, सुअवसरका प्राप्त होना मुश्किल है, प्रव्रजित होना दुर्लभ है और धर्म-श्रवण करना दुर्लभतर है।" तब कोई-कोई भगवान्से कर्मस्थान (योग-विधि) पूछते थे। भगवान् उनकी चर्याके अनु-रूप कर्मस्थान बतलाते थे। तत्पश्चात् सभी भगवान् को प्रणाम कर अपने-अपने रात्रि एवं दिनमें विहार करने के स्थानमें चले जाते थे। कोई अरण्यमें, कोई वृक्षके नीचे, कोई पर्वत आदिमें से किसी एक जगह। तदुपरान्त भगवान्

गन्धकुटीके भीतर जा यदि इच्छा होती, तो मुहूर्त-भर दाहिनी करवटसे स्मृति एवं सम्प्रजन्यके साथ सिंहशय्यासे लेटते थे। विश्रामसे उठ महाकारुणिक दृष्टिसे संसारको देखते थे। भगवान् जिस गाँव या कस्बेके पास विहार करते थे, वहाँके लोग भगवान् एवं भिक्षु-संघको दोपहरसे पूर्व दान दे, भोजनोपरान्त भली प्रकार पहन-ओढ़ कर गन्ध, पुष्प आदि ले विहारमें एकत्र होते थे। तब भगवान् गन्धकुटीसे निकलकर परिषद्में जा, बिछे बुद्धासन पर बैठ परिषद्के योग्य स्थान एवं कालको देखते हुए धर्मोपदेश देते थे। समयानुसार भगवान् परिषद्को विदा करते थे। लोग भगवान्को अभिवादन कर चले जाते थे। इसे तथागतकी भोजनके बादकी चर्या कहते हैं।

भगवान् भोजनोपरान्तके कृत्यको समाप्तकर यदि स्नान करना चाहते, तो बुद्धासनसे उठ स्नानघरमें प्रवेशकर उपस्थापक भिक्षु द्वारा प्रस्तुत किए गए जलसे स्नान करते। उपस्थापक भी भगवान्के आसनको लाकर गन्धकुटीके परिवेण (आँगन)में बिछा देते। तथागत लाल रंगका अन्तरवासक पहन, काय-बन्धन (कमरबन्द) बाँध उत्तरासंग (ओढ़नेका चीवर) को एकांश कर वहाँ आ, मुहूर्त-भर अकेले ही चुपचाप बैठते थे। तब भिक्षु धीरे-धीरे चारों ओरसे आकर भगवान्के पास एकत्र होते थे। उनमें से कोई प्रश्न पूछता, कोई कर्मस्तान और कोई धर्मोपदेश के लिए प्रार्थना करता। सुगत उनकी इच्छाओंको पूर्ण करते हुए पहले पहरको बिता देते थे। इसे तथागतकी पहले पहरकी चर्या कहते हैं।

पहले पहरके व्यतीत होनेपर जब भिक्षु भगवान्को अभिवादन कर चले जाते, तब सम्पूर्ण दस हज़ार चक्रवालों के देवता अवसर पा भगवान्के पास आकर प्रश्न पूछते थे। शास्ता उनके प्रश्नोंके उत्तर देते हुए ही बिचले पहरको बिता देते थे। इसे तथागतकी बिचले पहरकी चर्या कहते हैं।

पिछले पहरको भगवान् तीन भागोंमें बाँट, पहले भाग को चंक्रमण करते हुए बिताते थे। दूसरे भागमें गन्धकुटी में प्रवेशकर स्मृति और सम्प्रजन्यके साथ दाहिनी करवट से सिंहशय्यासे लेटते थे। तीसरे भागमें उठकर बैठ, पहलेके बुद्धोंके शासन-कालमें दान, शील आदि पुण्य-कर्मों को किए हुए व्यक्तियोंको देखनेके लिए महाकरुणा-समापत्ति को प्राप्तकर बुद्ध-चक्षुसे संसारको देखते थे। इसे तथागत की पिछले पहरकी चर्या कहते हैं।

यह तथागतकी साधारण दिनचर्या है। काल, स्थान एवं प्रयोजन-विशेषके अनुसार इस दिनचर्यामें अल्पमात्र ही अन्तर होता था, वह भी वर्षावासके तीन मास तथा किसी विहारमें कुछ दिन ठहरनेके अतिरिक्त चारिका आदि समयों में ही। शास्ता जब किसी दूरस्थ व्यक्तिपर अनुकम्पा कर ऋद्धि-बलसे वहाँ जानेके लिए 'त्वरित चारिका' करते थे और जब ग्राम, निगम और नगरसे होते भिक्षाटन करते थे, तभी इन चर्याओंमें अल्पमात्र अन्तर पड़ता था। तथागत कभी-कभी अपने सामने भूखोंको भोजन दिलवाते थे, रोगियोंकी सेवा करते थे, कई योजन जाकर छाया-रहित वृक्षके नीचे बैठकर जगदोद्धारका चिन्तन करते थे। कभी-कभी सारी रात खुले मैदानमें ही बैठ ध्यान-सुखमें बिता देते थे। कभी ऐसा भी होता था कि वे दोपहरके बाद दूसरे परिव्राजकोंके आश्रममें जाकर धार्मिक वार्त्तालाप भी करते थे। कितनी बार भगवानको खाली पात्र ही लौट आना पड़ा था।

इस प्रकार हमने देखा कि तथागतकी दिनचर्या अत्यन्त परिशुद्ध एवं अनुपम थी। तथागतकी दिनचर्यासे संसार के किसी भी महापुरुषकी दिनचर्याकी तुलना नहीं की जा सकती। क्या संसारके किसी भी कोनेमें कभी ऐसे महापुरुषका जन्म हुआ है, जिसकी दिनचर्या नियमित एवं सदा क्रमबद्ध रही हो और जिसने स्वयं मुक्त न हो, ऐसे लोगों को मुक्त करनेके प्रयत्नमें ही अपना सम्पूर्ण जीवन बिता दिया हो?

तथागतका क्षोभ

श्री राजेश्वरप्रसादनारायणसिंह

मर्त्य-भुवनको देखकर, नीचाकर निज माथ,
कहा बुद्धने एक दिन, दुःख क्षोभके साथ—
"देख रहे हो भुवनमें हुआ आज क्या हाल?
बिछा अविद्याका जहाँ पुनः तिमिर-सा जाल।
तिस्सोविज्जाको सभी गए भूल आनन्द,
सजग हुए फिरसे वहाँ, हिंसा औ' छल-छन्द!
नाम हमारा ले रहे प्रतिजन—लेकर केश,
और हमारी हड्डियाँ घुमा रहे प्रतिदेश!
हाय, हड्डियोंमें बँधा उनका सारा प्यार,
भूल तथागतकी गया वाणी पर संसार!
'मणिपद्मोऽहम' बोलते, खो उरका मणि हाय,
निष्प्रभ मणि खोकर हुआ यथा सर्प निरुपाय।
बुद्ध-जयन्तीको चला मनुज मनाने आज,
दुर्व्यसनोंमें जो पड़ा सत्य-विहीन समाज!
ऐसे भक्तोंकी नहीं हमें चाह आनन्द,
जिनमें मुख औ' कार्यका नहीं ऐक्य-सम्बन्ध!
समारोह ये व्यर्थ हैं, व्यर्थ उच्च जयघोष!
मौखिक बातोंसे नहीं हमें तृप्ति-संतोष!"

महाकारुणिक तथागत

भदन्त शान्तिभिक्षु शास्त्री

तथागत उन महामानवोंमें से हैं, जिन्हें लोग अत्यन्त प्राचीन कालसे आजतक नाना दृष्टियोंसे देखते रहे हैं। कुछने उनकी प्रशंसा की है तथा कुछने उनकी निन्दा। पर सभी प्रशंसक तथा निन्दक इस बातमें एकमत हैं कि तथागत अहिंसाके परम पुजारी तथा महाकारुणिक महापुरुष रहे हैं। तथागतकी महाकरुणाका सहारा लेकर उनके सुदूर, अदूर एवं सन्निकट जीवनको नाना उपाख्यानोंने घेर रखा है। कवियोंको इन सब उपाख्यानोंके सहारे ललित-ललित सुभाषितोंके कहनेका अवसर मिला है। सबसे अधिक सरस सुभाषितोंको तथागतके जिस अवसरने जन्म दिया है, वह अवसर वैशाख-पूर्णिमाकी एक मनोहर रात्रि है। वह रात्रि सचमुच अपूर्व रात्रि थी, क्योंकि वह सोनेकी रात्रि न थी, प्रत्युत वह जागनेकी रात्रि थी। उस रात्रिको तथागतका चर्मचक्षु खुल गया था। उस रात्रिको तथागतने बोधि-चक्षुका लाभ किया था। अपने दोनों चक्षुओंके होते हुए भी, तथागतने उस रात्रिको ही अपनेको चक्षुष्मान कहा था (चक्खुं उदपादि)। वस्तुतः वह रात्रि काव्यभाषामें शिवा थी, क्योंकि चर्मचक्षुओंके युगलने उसमें एक तीसरा, संसारका शिवंकर, बोधि-रूपी चक्षु प्राप्त किया था। इस प्रकारका तृतीय चक्षु प्राप्त करनेके लिए किसकी आँखें जागरूक न रहेंगी। आज वह रात्रि फिर समीप है। चक्षुओ, जागरूक रहो, सावधान रहो। तुम्हें तुम्हारा-जैसा साथी मिल सकेगा —

रात्रिः शिवा का चन संनिधत्ते विलो्ने जाग्रतमप्रमत्ते।
समानधर्मा युवयोः सकाशे सखा भविष्यत्यचिरेण कश्चित्॥

चक्षुष्मान् तथागतकी चक्षुष्मत्ता उनकी अप्रमाण तथा अप्रमेय करुणामें रही है। सुनते हैं कि करुणाकुल तथागतने अपने एक पूर्वके जन्ममें अपना शरीर एक ऐसी सिंहीको दे डाला था, जो भूखके मारे अपने नवजात शावकोंको खोने पर तुली हुई थी। कथा प्रायः कथा होती है। पर कुछ कथाएँ अमर हो जाती हैं। वाल्मीकिने पानीपर पत्थरोंको तैरनेवाला बनाकर उनसे समुद्रपर सेतु बँधवा दिया और सेतुकी कथा विरोध और असंगतियोंके होते हुए भी अमर हो गई तथा किसीके मनमें यह भाव भी नहीं होता कि उसे असंगत कह सके। करुणाकुल महासत्वके लिए शरीर-त्याग कोई ऐसी घटना नहीं है, जिसमें कुछ भी विरोध तथा असंगति हो। फलतः इस प्रकारकी कथाका अमर होना स्वाभाविक ही था। इस अमर कथाके सहारे एक कविने बड़ी ही रमणीय सूक्ति कही है। श्रृंगार जगत्में वह पुरुष सचमुच बड़ा भाग्यवान् माना जाता है, जिसके अंगों पर प्रियतमाके दन्तक्षतों तथा नखक्षतोंके प्रहार दिखलाई पड़ जाते हैं। इन प्रहारोंको पाकर प्रेमीका रोम-रोम हर्षित हो जाता है तथा उन लोगोंके मनमें इस प्रकारके प्रहारोंके प्रति लालसा बिना जगे नहीं रहती, जो किसी कारण

लेखक

अपनी प्रियतमासे दूर हैं। यह श्रृंगारका भाव मृगवधू (सिंह) तथा बोधिसत्वके अपूर्व संगममें न दिखाई पड़े, सो हो नहीं सकता; क्योंकि जब बोधिसत्वने अपना शरीर उसके आगे फेंक दिया, तो उसने बोधिसत्वके शरीरपर दन्त-प्रहार भी किए तथा नख-प्रहार भी। इन प्रहारोंसे बोधिसत्वको वेदना हुई हो, सो बात नहीं। प्रत्युत इस बातसे उनके अंग पुलकित हो गए कि उन्होंने उन अबोध सिंही-शावकोंको बचा लिया, जो अपनी माँका आहार बनने जा रहे थे। अन्तमें बोधिसत्वको ऐसी दशामें जंगलके मुनियोंने देखा, पर बड़ी स्पृहाके साथ, क्योंकि इस प्रकारकी करुणा-

वीरता मुनियोंके लिए कम स्पृहणीय वस्तु नहीं हो सकती। इस प्रकारकी भावनासे आत्म-विभोर हुए कविने यों कहा है—

दन्तक्षतानि करजैश्च विपाटितानि
प्रोद्भिन्नसान्द्रपुलके भवतः शरीरे।
दत्तानि रक्तमनसा मृगराजवध्वा
जातस्पृहैर्मुनिभिरप्यवलोकितानि ॥

एक और कथा है। तथागतने अपने किसी पूर्वभव में एक अंधे ब्राह्मणको चक्षुदान देकर चक्षुष्मान् बनाया था। यह कथा अपने-आप उतनी रोचक नहीं है, जितनी कि कवि-सूक्तियोंमें आकर रोचक हो गई है। यहाँ पहले सूक्तिकी निदान-कथा कहनी होगी। बोधिवृक्षके नीचे बोधि-प्राप्तिके निमित्त तथागत ध्यानलीन विराजमान हैं। पूर्ण चन्द्र तथा वसन्तके संयोगसे प्रकृति सरस हो रही है। इस सरस वातावरणमें मार-वधुएँ चारों ओरसे तथागतको ध्यान-च्युत करनेके नाना उपाय कर रही हैं। तथागतकी करुणा से वे परिचित हैं। उन्होंने तथागतके पूर्वजन्मोंकी जातक-कथाएँ सुनी हैं। वे जानती हैं कि तथागतने किसीको अपना मस्तक उतार दिया था तथा किसीको अन्यान्य अंग दे डाले थे। इतना ही नहीं, उन्हें यह भी पता है कि यह समूची साधना जगत्के उद्धारके लिए है। और जगत् के उद्धारकी सामग्री तथागतके उद्धारके लिए है। और जगत्के मनमें अप्रमाण क्षमा, अप्रमाण मैत्री, अप्रमाण अहिंसा तथा अप्रमाण करुणा है। वे जानती हैं कि जैसे दिव्य मत्स्यके छिलकोंकी सीमामें महासागर समा गया था, दिव्य कच्छपकी पीठपर धरामंडल छिप गया था, महावराह की दीव्य दंष्ट्रापर धरती सुस्थिर हो गई थी, नृसिंहके नखों में महादैत्य अन्तर्हित हो गया था, त्रिविक्रम महावामनके पदक्षेपोंमें महान् द्यावापृथिवीका अन्तर्भाव हो गया था, परशुरामके क्रोधमें क्षत्रिय-गण लुप्त हो गए थे, रामके बाणों में दशानन रावणका विलोप हो गया था, बलरामके हाथोंमें प्रलम्बासुर ऐसा समाया कि फिर उसको लोक-दर्शन न हुआ था, कल्किके खंगमें अधार्मिकोंको क्षीण होना है तथा इस महामानव तथागतके करुणापूरित ध्यानमें विश्व मग्न है—

यस्यालीयत शल्कसीम्नि जलधिः पृष्ठे जगन्मण्डलं
दंष्ट्रायां धरणी नखे दितिसुताधीशः पदे रोदसी।
क्रोधे क्षत्रगणः शरे दशमुखः पाणौ प्रलंबासुरो
ध्याने विश्वमसावधार्मिककुलं कस्मै चिदस्मै नमः ॥

ये महापुरुष नमस्करणीय हैं। इनसे किसीको भय नहीं हो सकता। ये किसीको वरदान ही दे सकते हैं, शाप नहीं। इस यथार्थ धारणासे प्रेरित होकर मार-वधुओंने तथागतसे नाना प्रकारके नरम वचन कहे। कवि-सूक्तियोंमें वे मर्मवचन बिखरे पड़े हैं। यहाँ हम कुछकी चर्चा करेंगे।

तथागतको ध्यानावस्थित तथा जागरूक देख एक मार-वधू, जो तथागतके पुरावृत्तमें निष्णात थी, ललित स्वरमें उलहना देती हुई बोली—'मैं कामके बाणोंसे घायल हूँ और ऊपरसे बाणोंकी बौछार होती जा रही है। मैं विह्वल हो गई हूँ। मुझे आशा थी कि आप मुझे दयादृष्टिसे देखेंगे, पर आप तो इधर आँख भी नहीं घुमा रहे हैं। आपकी इस निष्ठुरतासे मुझे आपके पुरावृत्तपर भी आस्था नहीं हो रही है। भला, जो एक दुखियाको आँख घुमाकर न देख सके, उसका यदि पुरावृत्तविद् यह कहकर बखान करें कि उसने किसी द्विजश्रेष्ठको चक्षुदान दिया था, तो उसपर कौन विश्वास करेगा?'

अस्यै पतन्मदनसायकविह्वलायै
दृष्टिप्रदानमपि कर्तुमपारयन्तं।
उत्पाट्य लोचनयुगं द्विजपुंगवाय
त्वां दत्तवानिति कथं ब्रुवते पुराणाः ॥

एक दूसरी मार-वधूने प्रकारान्तरसे उपालंभ देना आरंभ किया। उसने कहा—'मैंने सुना है कि आपने हृदयसे वैर-भाव सर्वथा बिसरा दिया है। महाकवि गाते ही रहते हैं कि आपने कभी मस्तकदान किया था। दूसरे को मस्तकदान, बहुत संभव है, आपने किया हो, पर उसका निदर्शन तो मिलता नहीं। मैं अपने हाव-भाव एवं अनिन्दित विलासोंसे आपको रिझा रही हूँ तथा आप चुप बैठे हैं। यह भी नहीं होता कि हमारी सराहनामें सिर ही हिला दें।'

दृष्ट्वास्मदीयमनवद्यतमं विलासं
श्लाघाशिरोविधुतिमप्यति दूरयन्तं।
उच्छिद्यमस्तकमुदस्तरिप्रभावं
त्वां दत्तवानिति वदन्ति कथं कवीन्द्राः ॥

कितनी ही मार-वधुओंने तथागतकी अपने प्रति इस नीरसताको देखकर कहना आरंभ किया—'महात्मन्! ध्यानके बहाने किसमें मन लगा रहे हैं? जरा आँखें खोलिए न! इधर देखिए, हम सब कामके बाणोंसे घायल होकर लोट-पोट हो रही हैं। आप तो लोकके त्राता हैं, रक्षक हैं, पर हमारी रक्षा नहीं करते? आप सचमुच कारुणिक नहीं हैं और यदि आप जैसा ही कारुणिक हो, तो भला निठुर और होगा ही कौन?'

ध्यानव्याजमुपेत्य चिन्तयसि कामुन्मील्य चक्षुःक्षणं
पश्यानंगशरातुरं जनमिमं त्रातापि नो रक्षसि।
मिथ्याकारुणिकोऽसि निर्घृणतरस्त्वत्तः कुतोऽन्यःपुमान्
सेर्ष्यं मारवधूभिरित्यभिहितो बोधौ जिनः पातु वः ॥

तथागतकी करुणाको लक्ष्य करके इसी प्रकारकी अनेक

ललित उक्तियाँ कवि-वचनोंमें पाई जाती हैं। इस युगके कवियोंको भी तथागतकी महाकरुणाने मुखरित किया है। स्वर्गीय रवीन्द्रनाथने आत्म-विभोर होकर गाया है—

हिंसाय उन्मत्त पृथ्वि नित्य निठुर द्वन्द्व,
घोर कुटिल पन्थ तार लोभजटिल बन्ध।
नूतन तव जन्म लागि कातर सब प्राणी,
कर त्राण महाप्राण, आन अमृत वाणी।
विकसित कर प्रेमपद्म चिर-मधुनिष्यन्द,
शान्त हे, मुक्त हे अनन्तपुण्य,
करुणाघन, धरणीतल कर कलंकशून्य।

अर्थात् धरती हिंसासे पागल हो उठी है। नित्य ही निष्ठुर द्वन्द्व होते रहते हैं। धर्मपन्थोंमें सहज तथा सरल भाव नहीं रहा है। उनका बन्धन कोरा बन्धन नहीं, प्रत्युत लोभसे उलझा हुआ है। तुम्हारे नवीन अवतरणके लिए जीव अधीर (भावसे प्रतीक्षामें खड़े) हैं। हे महासत्व! अमृतवाणी बरसाकर लोकका परित्राण करो। प्रेम-पद्मका विकास करो, जिसका कि मधु-निर्झर चिरकाल तक बहता रहे। हे शान्तिके स्वामी! मुक्तिके स्वामी! हे अपर्यन्त पुण्यशाली! करुणाघन! पृथ्वीतलको (हिंसादि) कलंकसे रहित करो।

जिस तथागतकी महाकरुणाने कवि-हृदयको नाना सूक्तियोंके सर्जनमें समर्थ बनाया है, वह इस संसारके लिए एक स्पृहणीय वस्तु है। तथागतका मार्ग महाकरुणाका मार्ग है। इसी महाकरुणाके मार्गको कितनी ही बार निषेधात्मक शब्द 'अहिंसा' द्वारा प्रकट किया गया है (धर्मं समासंतोऽहिंसां वर्णयन्ति तथागताः)। तथागतकी महाकरुणाका बखान संसारमें तब तक होता रहेगा, जब तक कि संसारमें वैर-विरोध वर्तमान हैं तथा जिस दिन संसारमें प्रेम तथा मैत्रीका साम्राज्य स्थापित हो जाएगा, उस दिन तथागतकी महाकरुणा फलवती होगी। महाकारुणिक तथागतको, जो लोकबन्धु होते हुए स्वजाति-संबंधसे अर्कबन्धु (सूर्यवंशी) हैं, जो तेजके उन्मेष हैं, जो मोक्षरूपी कल्प-वृक्षके मूलकन्द हैं, कामके दर्पानलको शान्त करनेके लिए जो कृष्णमेघ हैं तथा जिनकी निगाहमें करुणाकी तरंगें उठती रहती हैं, उनकी २५००वीं बरसीके अवसरपर नमस्कार हो—

कारुण्यकल्लोलित दृष्टिपातं कन्दर्पदर्पानलकालमेघं।
कैवल्यकल्पद्रुममूलकन्दं वन्दे महःकन्दलमर्कबन्धुं॥

बुद्धकी चारिकाओंका भूगोल

डा० भरतसिंह उपाध्याय

बोधि प्राप्त करनेके बाद भगवान् बुद्धने सात सप्ताह बोधि-वृक्ष और कुछ अन्य वृक्षोंके नीचे समाधि-सुखमें बिताए। बोधि-वृक्षके नीचे चार सप्ताह ध्यान करनेके पश्चात् भगवान् बुद्ध अजपाल नामक बरगदके वृक्षके नीचे गए। वहाँ एक सप्ताह तक उन्होंने ध्यान किया। इसके बाद भगवान् मुचलिन्द नामक वृक्षके नीचे गए। यहाँ भी उन्होंने एक सप्ताह तक ध्यान किया। तदनन्तर भगवान्ने राजायतन नामक वृक्षके नीचे एक सप्ताह तक ध्यान किया। इस प्रकार बुद्धत्व-प्राप्तिके बाद सात सप्ताह तक भगवान्ने विभिन्न वृक्षोंके नीचे ध्यान किया। सातवें सप्ताहकी समाप्ति पर तपस्सु और भल्लिक नामक दो व्यापारियों (वाणिजा) ने, जो पाँच सौ गाड़ियोंको साथ लिए हुए उत्कल जनपदसे (उक्कला जनपदा) मध्य-देशकी ओर जा रहे थे (मज्झिदेसं गच्छन्ता), भगवान्को राजायतन वृक्षके नीचे बैठे देखा और मट्ठे (मन्थं) और लड्डू (मधुपिण्डिकं) से भगवान् का सत्कार किया, जिसे उन्होंने कृपापूर्वक स्वीकार किया। तदनन्तर हम भगवान्को फिर अजपाल नामक बरगदके पेड़के नीचे जाते देखते हैं और यहींपर धर्म-प्रचारका संकल्प करने के पश्चात् वे वाराणसीके इसिपतन मिगदाय (ऋषिपतन मृगदाव) की ओर चल पड़ते हैं, जहाँ पंचवर्गीय भिक्षु उस समय निवास कर रहे थे। उरुवेलासे काशियोंके नगर वाराणसीको जाते हुए बोध-गया और गयाके बीच रास्ते में भगवान्को उपक नामक आजीवक मिला और उससे उन्होंने कहा—"मैं जिन हूँ।"

क्रमशः चारिका करते हुए भगवान् वाराणसी के समीप ऋषिपतन मृगदावमें पहुँचे।[1] वहाँ उनसे पंचवर्गीय भिक्षुओंको त्रिरत्न-शरणागति प्राप्त हुई। इसके पाँच दिन बाद अनत्तलक्खण-सुत्तन्तका उपदेश दिया गया। इसके दूसरे दिन वाराणसीके प्रसिद्ध श्रेष्ठ-पुत्र

(१) बीचकी यात्राका विवरण पालि-तिपिटकमें नहीं है। परन्तु 'ललितविस्तर'में बीचके पड़ावोंका भी उल्लेख है। उदाहरणतः वहाँ कहा गया है कि बीचमें गंगा नदीको पार करनेमें भगवान्को कठिनाई हुई, क्योंकि उनके पास नाव-वालेको देनेके लिए पैसे नहीं थे। बादमें बिम्बिसारको जब यह बात मालूम पड़ी, तो उसने सब साधुओंको निःशुल्क पार उतारनेकी आज्ञा दी।

यशकी प्रव्रज्या हुई। इसके बाद यशके कई गृहस्थ-मित्र भिक्षु बने और क्रमशः अर्हतोंकी संख्या, भगवान् बुद्धको छोड़कर, ६० हो गई।

ऋषिपतन मृगदावमें भगवान्ने अपना प्रथम वर्षावास किया, जिसके बाद वे आश्विन पूर्णिमा (महापवारणा) के दिन ६० भिक्षुओंको भिन्न-भिन्न दिशाओंमें धर्म-प्रचारार्थ जानेका आदेश देकर स्वयं उरुवेलाके सेनानीगामकी ओर चल पड़े। वाराणसी होते हुए वे पहले कप्पासिय वन-खण्डमें पहुँचे, जहाँ भद्रवर्गीय नामक तीस व्यक्तियोंको प्रव्रजित किया और फिर उरुवेला पहुँचकर भगवान् वहाँ तीन मास ठहरे। उरुवेलाके तीन प्रसिद्ध जटाधारी साधु-बन्धुओं (तेभातिक जटिले)—उरुवेल काश्यप, नदी काश्यप और गया काश्यप—को उनके विशाल साधु-संघके सहित भगवान्ने उपसम्पादित किया। अपने इन अनुयायियोंको साथ लेकर भगवान् उरुवेलासे गयाके गयासीस पर्वतपर गए, जहाँ उन्होंने आदित्तपरियाय-सुत्तका उपदेश दिया। तदन्तर भिक्षु-संघ सहित भगवान् चारिका करते हुए पौष (फुस्स) मासकी पूर्णिमाको राजगृह पहुँचे। यहाँ भगवान् लट्ठिवनुय्यान (लट्ठिवन उद्यान—वर्तमान जठियाँव) के सुप्रतिष्ठित चैत्यमें ठहरे। यहीं मगधराज श्रोणिक बिम्बिसार उनसे मिलने आया। दूसरे दिन भोजनोपरान्त बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको उसने वेणुवन उद्यान अर्पित किया। इसके बाद भगवान् दो मास तक और राजगृह में ठहरे और फिर सम्भवतः इसी वर्ष वर्षावाससे पूर्व लिच्छवियोंकी प्रार्थनापर, जो उन्होंने महालिके द्वारा भेजी थी, भगवान् वैशाली गए। इस समय वैशाली नगरी महामारी से पीड़ित थी। भगवान्ने वहाँ जाकर रतन-सुत्तका उपदेश दिया और वैशालीवासियोंके सब रोग-दुःख दूर हुए। वैशाली से लौटकर भगवान् फिर राजगृह आ गए, जहाँसे वे वेणुवन में ठहरे, परन्तु शीघ्र ही फाल्गुण (फग्गुण) की पूर्णिमाको उन्होंने अपने पिता और परिजनोंके अनुकम्पार्थ अपने बाल्यावस्थाके मित्र काल उदायीकी प्रार्थनापर, जिसे शुद्धोदनने उन्हें कपिलवस्तु लानेके लिए भेजा था, कपिलवस्तुके लिए प्रस्थान कर दिया। जातकट्ठकथाकी निदान-कथामें राजगृहसे कपिलवस्तुकी दूरी ६० योजन बताई गई है। भगवान् दो मासमें कपिलवस्तु पहुँचना चाहते थे। इस लिए धीमी गतिसे चले। भगवान्के साथ अंग-मगध जनपदोंके अनेक निवासी भी थे। निश्चित समयपर भगवान् कपिलवस्तु पहुँचे, जहाँ उन्हें न्यग्रोधाराममें निवास प्रदान किया गया। मज्झिमनिकायकी अट्ठकथाके अनुसार भगवान् बुद्धकी कपिलवस्तुकी इस प्रथम यात्राके अवसरपर ही उनकी मौसी महापजावती गोतमीने अपने हाथसे काते और बुने नए दुस्स (धुस्से) के जोड़ेको भगवान् को भेंट करनेकी इच्छा प्रकट की, जिसका वर्णन मज्झिमनिकायके दक्खिणाविभंग-सुत्तमें है। नन्द और राहुलकी प्रव्रज्या इसी समय हुई और उसके थोड़े समय बाद ही भगवान् कपिलवस्तुसे चल दिए और और मल्लोंके देश में चारिका करते हुए अनूपियाके आम्रवनमें पहुँचे, जहाँ भद्दिय, अनुरुद्ध, आनन्द, भृगु, किम्बिल, देवदत्त और उपालि की प्रव्रज्या हुई। आगे चलते हुए भगवान् राजगृह लौट आए, जहाँके सीतवनमें, जो एक श्मशान-वन था, भगवान् ने अपना दूसरा वर्षावास किया।

जिस समय भगवान् राजगृहमें निवास कर रहे थे, उसी समय श्रावस्तीका श्रेष्ठी सुदत्त (अनाथपिण्डिक), जो राजगृहमें अपने किसी कामसे आया था, भगवान्से मिला और उनसे प्रार्थना की कि अगला वर्षावास वे कृपाकर श्रावस्तीमें करें। भगवान्ने उसकी प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया और राजगृहसे चलकर पहले वैशाली पहुँचे, जहाँ की महावन कूटागारशालामें उन्होंने विहार किया और फिर आगे चारिका करते हुए श्रावस्ती पहुँचे। यहाँ अनाथपिण्डिक ने ५४ कोटि धनसे जेतवनाराम बनवाकर आगत-अनागत चातुर्दिश भिक्षु-संघको अर्पित किया। कुछ विद्वानोंका मत है कि इसी समय विशाखा मृगारमाताने पूर्वाराम नामक विहार बनवाकर बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको दान किया। परन्तु यह घटना काफ़ी बादकी जान पड़ती है—सम्भवतः बुद्धके बाईसवें वर्षावासके समयकी, जिसे भी उन्होंने श्रावस्ती में बिताया था। अंगुत्तरनिकाय और बुद्धवंसकी अट्ठकथाओंके अनुसार भगवान् वर्षावाससे पूर्व राजगृह लौटकर आ गए, जहाँ उन्होंने बुद्धत्व-प्राप्तिके बादकी दूसरी वर्षाके समान अपनी तीसरी वर्षा भी बिताई।

भगवान्ने अपना चतुर्थ वर्षावास राजगृहके कलन्दक निवापमें किया। यहीं उन्होंने राजगृहके एक श्रेष्ठि-पुत्रको, जिसका नाम उग्गसेन (उग्रसेन) था और जो रस्सीपर नाच दिखानेवाली एक नटिनीके प्रेममें पड़कर स्वयं उसी कामको करने लगा था, बुद्ध-धर्ममें दीक्षित किया।

बुद्धत्व-प्राप्तिके पाँचवें वर्षमें भगवान्के पिता शुद्धोदन की मृत्यु हो गई। इसी समय शाक्यों और कोलियोंमें रोहिणी नदीके पानीको लेकर झगड़ा हुआ।[2] भगवान्

(२) डा० ई० जे० टामस ('दि लाइफ आफ़ बुद्ध', पृष्ठ १०७) और मललसेकर ('डिक्शनरी आफ पालि प्रापर नेम्स', जिल्द पहली, पृष्ठ ७९६) ने इस घटनाको बुद्धत्व-प्राप्तिके पाँचवें वर्षमें ही दिखाया है, जब कि उसके शमनार्थ वे वैशालीसे कुछ समयके लिए वहाँ गए। महापण्डित राहुल सांकृत्यायनने उक्त घटनाको भगवान् बुद्धके पन्द्रहवें वर्षावासके समय घटित दिखाया है, जिसे उन्होंने कपिलवस्तुमें किया। (देखिए 'बुद्धचर्या', पृष्ठ २३३-२३५, द्वितीय संस्करण)। पालि-तिपिटक या उसकी अट्ठकथाओंमें क्रमबद्ध विवरण न मिलनेके कारण इस विषयका सम्यक निर्णय नहीं किया जा सकता।

इस समय वैशालीकी महावन कूटागारशालामें विहर रहे थे। वे वहाँसे कपिलवस्तु गए और वहाँके न्यग्रोधाराममें ठहरे। यह भगवान्‌के द्वारा की हुई कपिलवस्तुकी दूसरी यात्रा थी। इसी समय महापजावती गोतमीने भगवानसे प्रार्थना की कि वे उन्हें भिक्षुणी बननेकी अनुमति दे दें। भगवान्‌ने उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की और वैशाली लौट आए, जहाँ उन्होंने अपना पाँचवाँ वर्षावास किया। यहींपर फिर महापजावती गोतमीने आकर आनन्दकी सहायतासे भगवान्‌से भिक्षुणी बननेकी अनुमति प्राप्त कर ली और भिक्षुणी-संघका प्रारम्भ हुआ।

छठी वर्षा भगवान्‌ने मंकुल पर्वतपर बिताई, जो सम्भवतः सूनापरान्त-जनपदमें था। डा० मललसेकरने मंकुल पर्वत को सूनापरान्त-जनपदके मंकुलकाराम नामक विहारसे मिलाया है, जहाँ स्थविर पूर्ण (पुण्ण) धर्म-प्रचार करते हुए निवास करते थे।[3] छठा वर्षावास मंकुल पब्बत या मंकुलकाराममें करनेके अतिरिक्त एक अन्य अवसरपर भी भगवान् स्थविर पूर्णकी प्रार्थनापर वहाँ गए थे और सात दिन तक ठहरे थे। स्थविर पूर्णके उपासकोंने यहाँ भगवान्‌के लिए एक 'गन्धकुटी' और 'चन्दनशाला' बनवाई थी। भगवान् मंकुलकारामको जाते हुए मार्गमें सच्चबन्ध नामक पर्वतपर ठहरे थे और वहाँसे वापस आते हुए उन्होंने नम्मदा (नर्मदा) नदीके तटपर विहार किया था। बुद्धत्व-प्राप्तिके बाद छठी वर्षामें ही श्रावस्तीमें ऋद्धि-प्रतिहार्यका प्रदर्शन किया गया।

सातवाँ वर्षावास भगवान्‌ने त्रायस्त्रिंश लोकके पाण्डु-कम्बल-शिला नामक स्थानमें किया और पवारणा (आश्विन पूर्णिमा) के दिन संकस्स (संकाश्य—वर्तमान संकिसा बसन्तपुर, ज़िला फर्रुखाबाद, उत्तर-प्रदेश) नामक स्थान पर उतरे, जिसकी दूरी धम्मपदट्ठकथामें श्रावस्तीसे ३० योजन बताई गई है। कण्ह जातकके अनसार भगवान् संकाश्यसे श्रावस्ती चले गए, जहाँ वे अनाथपिण्डिकके जेतवनाराममें ठहरे। सम्भवतः श्रावस्तीकी चिंता माणविकाने इसी समय अपना निन्दित काण्ड रचा।

आठवीं वर्षा भगवान् बुद्धने भग्गोंके देशमें सुंसुमार गिरिके समीप भेसकलावन मृगदावमें बिताई, जहाँ वे वैशाली से गए थे। आदर्श वृद्ध दम्पति नकुलपिता और नकुलमाता, जो भग्ग देशमें के सुंसुमार गिरिके निवासी थे, यहीं भगवान्‌से मिले। एक अत्यन्त आश्चर्यजनक व्यवहार, अंगुत्तर-निकायकी अट्ठकथाके अनुसार, इन वृद्ध व्यक्तियों ने इस समय दिखाया। जैसे ही उन्होंने भगवान्‌को देखा, वे उनसे लिपट गए और कहने लगे—"यह हमारा पुत्र है!" और फिर वात्सल्य स्नेहसे अभिभूत होकर भगवान्‌के चरणों में गिर गए और रोकर कहने लगे—"पुत्र! तुम इतने दिनोंसे हमें छोड़कर कहाँ चले गए थे? तुम इतने दिन कहाँ रहे?" बुद्धने उनके इस व्यवहारकी ओर ध्यान नहीं दिया और उन्हें धर्मोपदेश किया। भगवान्‌के सुंसुमार गिरिमें निवास करनेके समय नकुलपिता और नकुलमाताने अनेक बार उन्हें भोजनके लिए निमन्त्रित किया और उन्हें बताया कि उन्होंने अपने जीवनमें कभी एक-दूसरेपर क्रोध नहीं किया है और उनकी इच्छा है कि वे इसी प्रकार परस्पर प्रेमपूर्वक दूसरे जन्ममें भी रहें। भगवान् ने इन दोनों उपासकोंको विश्वासकोंमें श्रेष्ठ बताया था।

नवीं वर्षा भगवान् बुद्धने कौशाम्बीमें बिताई। इसी वर्ष वे कुरुदेशमेंभी चारिकाके लिए गए और उसके कम्मासदम्म नामक प्रसिद्ध निगममें मागन्दिय ब्राह्मण द्वारा अपनी सुवर्णवर्णा कन्या मागन्दियाको उन्हें प्रदान करनेका प्रस्ताव किया गया, जिसके उत्तरमें भगवान्‌ने ब्राह्मणसे कुछ न कह किसी दूसरेसे बोलनेकी भाँति कहा—"तृष्णा, रति और राग को देखकर मैथुन-भावमें मेरा विचार नहीं हुआ। यह मल-मूत्र-पूर्ण क्या है, जिसे मनुष्य पैरसे भी न छूना चाहे?"

बुद्धत्व-प्राप्तिके दसवें वर्षमें कौशाम्बीके भिक्षु-संघमें एक कलह उत्पन्न हो गया। किसी भिक्षुको उत्क्षेपणका दण्ड दिया गया था। उसीकी वैधता या अवैधताको लेकर यह झगड़ा हुआ, जिसके शमनका प्रयत्न भगवान्‌ने किया, परन्तु सफल न हुए। खिन्न होकर भगवान् एकान्तवासकी इच्छा करते हुए कौशाम्बीके घोषितारामसे, जहाँ यह विवाद चल रहा था, चल दिए और क्रमशः बालकरोणकार गाम और पाचीनवंस (मिग) दायमें चारिका करते हुए पारिलेय्यक वनमें पहुँचे, जहाँके रक्षित वन-खण्डमें उन्होंने दसवाँ वर्षावास किया। बालकलोणकार गाम कौशाम्बीके पास एक गाँव था, जिसे हम वंस (वत्स) या चेदि-जनपदमें मान सकते हैं। पाचीनवंस (मिगदाय) के सम्बन्धमें हमें यह निश्चित रूपसे मालूम है कि वह चेदि-राष्ट्रमें था। पारिलेय्यक वन और उसके रक्षित वन-खण्डको सम्भवतः चेदि-राष्ट्रमें ही होना चाहिए। पारिलेय्यक वनके रक्षित वन-खण्डमें वर्षावास करनेके बाद भगवान् श्रावस्ती चले गए और वहाँ अनाथपिण्डिकके जेतवनाराममें विहार करने लगे। उस समय तक कौशाम्बीके भिक्षुओंको सुबुद्धि आ चुकी थी। वे श्रावस्ती गए और शास्तासे क्षमा याचना की। संघमें फिर एकता आ गई।

ग्यारहवाँ वर्षावास भगवान्‌ने मगध देशके नाला नामक

(३) 'डिक्शनरी आफ़ पालि प्रापर नेम्स', पृष्ठ ४०७

ब्राह्मण-ग्राममें किया, जो बोधि-वृक्षके समीप एक गाँव था। नालामें ग्यारहवाँ वर्षावास करनेके समयके आसपास ही भगवान्‌ने दक्षिणागिरि-जनपदके एकनाला ब्राह्मण-ग्राममें विहार किया और इसी समय सुत्त-निपातके कसि-भारद्वाज-सुत्तमें वर्णित कसि भारद्वाजसे उनका संलाप हुआ। एक-नाला ग्रामको नाला नामक ग्रामसे भिन्न समझना कदाचित् अधिक ठीक होगा, क्योंकि एकनाला ग्राम मगधके दक्षिणा-गिरि-जनपदमें था, जो राजगृहके दक्षिणमें स्थित था, जब कि नाला नामक ग्राम बोधि-वृक्षके समीप कहीं स्थित था।

बारहवाँ वर्षा भगवान्‌ने वेरंजामें बिताई। यह स्थान मथुरा और सोरेय्य (सोरों), के बीचमें था। अतः इसे सम्भवतः सूरसेन या पंचाल-जनपदमें होना चाहिए। अंगुत्तर निकायके अनुसार भगवान् वेरंजामें श्रावस्तीसे आए थे, और वेरंजामें वर्षावास करनेके उपरान्त समन्त पासादिकाके अनुसार क्रमशः सोरेय्य (सोरों) संकस्स (संकिसा बसन्तपुर) और कण्णकुंज्ज (कन्नौज) नामक स्थानोंमें होते हुए पयाग पतिट्ठान (प्रयाग-प्रतिष्ठान—प्रयाग-स्थित गंगा-यमुना का संगम) पहुँचे थे, जहाँ उन्होंने गंगाको पार किया। आगे बढ़ते हुए भगवान् वाराणसी पहुँचे, जहाँ कुछ दिन निवास करनेके पश्चात् वे वैशालीकी महावन कूटागारशालामें चले गए। चुल्लसुक जातकमें कहा गया है कि भगवान् वेरंजामें वासकर क्रमशः चारिका करते हुए श्रावस्ती पहुँचे। अतः भगवान् उपर्युक्त मार्गसे वैशाली आनेके पश्चात श्रावस्ती गए, ऐसा मानना यहाँ ठीक होगा। भगवान् जब वेरंजा में वर्षावास कर रहे थे, तो वहाँ भयंकर दुर्भिक्ष पड़ रहा था। उत्तरापथके ५०० घोड़ोंके सौदागर, जो वहाँ पड़ाव डाले हुए थे, प्रस्थ (पसों)-भर चावल भिक्षुओंको दे देते थे, जिन्हें ऊखलमें पीसकर भिक्षु खाते थे और उसीमें से भगवान्‌को दे देते थे। वेरंजामें दुर्भिक्षके कारण भगवान्‌को तीन मास जौ भी खाना पड़ा था। जिस वेरंज या वेरंजक नामक ब्राह्मणने भगवान्‌को वेरंजामें वर्षावास करनेके लिए निमन्त्रित किया था, उसने सम्पन्न होते हुए भी लापरवाही की, परन्तु तथागतने फिर भी उसपर अनुकम्पा करते हुए वर्षावासकी समाप्तिपर उसे अपने अन्यत्र चारिकाके लिए जानेकी इच्छा की सूचना दी और अन्तिम दिन उसके यहाँ भोजन भी किया। अंगुत्तरनिकायके वर्णनानुसार भगवान् बुद्ध मथुरा गए थे और वहाँ उन्होंने उपदेश भी दिया था। इसी निकायके वेरंजक-ब्राह्मण-सुत्तमें हम भगवान्‌को मथुरा और वेरंजाके बीचके रास्तेमें जाते देखते हैं, अतः यह निश्चित है कि बुद्धत्व-प्राप्तिके बारहवें वर्षमें ही भगवान् बुद्धने मथुराकी यात्रा की और उसके बाद लौटकर वे वेरंजा ही आ गए, जहाँसे उन्होंने अपनी श्रावस्ती तककी पूर्वोक्त यात्रा की।

बुद्धत्व-प्राप्तिके बाद तेरहवाँ वर्षावास भगवान्‌ने चेदि-राष्ट्रके चालिय या चालिक पर्वतपर किया, जो उसी राष्ट्रके पाचीन वंस दायमें था और जिसके पास ही जन्तुगाम और किमिकाला नदी थे। इस समय आयुष्मान् मेघिय भगवान् बुद्धकी सेवामें थे।

चौदहवाँ वर्षा भगवान्‌ने श्रावस्तीमें बिताई। इस समय राहुलकी अवस्था बीस वर्षकी थी। विनयपिटक के नियमके अनुसार उनका उपसम्पदा-संस्कार इसी समय हुआ।

भगवान्‌का पन्द्रहवाँ वर्षावास कपिलवस्तुमें हुआ। इस समय उनके स्वसुर सुप्रबुद्धने भगवान्‌का घोर तिरस्कार किया। सुप्रबुद्ध समझता था कि गृहस्थ-जीवन त्यागकर गोतमने उसकी पुत्री भद्राकात्यायनी (राहुल-माता) के साथ अन्याय किया है। इसलिए वह भगवान् बुद्धसे क्रुद्ध था। शराब पीकर वह कपिलवस्तुके मार्गमें बैठ गया और भगवान् बुद्धको आगे नहीं बढ़ने दिया। भगवान् को विवश होकर लौटना पड़ा। इसी वर्ष सुप्रबुद्धकी मृत्यु हो गई।

सोलहवाँ वर्षावास भगवान्‌ने पंचाल देशके आलवी नामक नगर (वर्तमान अर्वल, ज़िला कानपुर या नवल या नेवल, ज़िला उन्नाव) में किया, जहाँ वे एक रात आलवक यक्षके निवास-स्थानपर और बादमें मुख्यतः अग्गालव चैत्य में ठहरे। हस्तक आलवकके साथ भगवान्‌का संवाद, जो सुत्तनिपातके आलवकसुत्तमें निहित है, इसी समय आलवीमें हुआ। विनयपिटकसे हमें सूचना मिलती है कि भगवान् श्रावस्तीसे काशी-जनपदके निगम कीटागिरि में आए थे और फिर वहाँसे क्रमशः चारिका करते हुए आलवी नगरमें पहुँचे थे। आलवीमें वर्षावास करनेके पश्चात् भगवान् राजगृह चले गए।

बुद्धत्व-प्राप्तिके सत्रहवें वर्षमें हम भगवान बुद्धको फिर श्रावस्ती लौटते देखते हैं। यहींसे वे एक ग़रीब और परेशान किसानपर अनुकम्पा करनेके लिए दुबारा आलवी गए। भगवान्‌ने आलवी पहुँचकर निश्चित समयपर भोजन किया, परन्तु भोजनोपरान्त उपदेश उन्होंने तब तक नहीं दिया, जब तक वह किसान वहाँ न आ गया। बात यह थी कि उस किसानका बैल उस दिन खो गया था, जिसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह परेशान रहा और शाम तक खाना भी नहीं मिला। भूखा ही वह किसान भगवान्‌के दर्शनार्थ सन्ध्या समय आया। भगवान्‌ने सर्वप्रथम उसे भोजन दिलवाया और जब उसका मन शान्त हो गया, तो भगवान्‌ने चार आर्य-

सत्योंका उपदेश दिया, जिसे सुनते ही किसानको स्रोत-आपत्ति-फलकी प्राप्ति हो गई। भगवान् इसके बाद राजगृह लौट आए, जहाँ उन्होंने अपना सत्रहवाँ वर्षावास किया।

अठारहवाँ वर्षावास भगवान्ने अपने तेरहवें वर्षावास के समान चालिय पर्वतपर ही किया। यहाँसे एक बार भगवान् फिर आलवी गए। इस बार वे एक गरीब जुलाहे की लड़कीपर अनुकम्पार्थ वहाँ गए। बादमें करघेके गिर जानेसे इस गुणवती लड़कीकी मृत्यु हो गई और भगवान्ने उसके पिताको, जिसकी जीविका चलानेमें यह लड़की सहायता करती थी, सान्त्वना दी। अंगुत्तरनिकायके आलवकसुत्तमें हम भगवान्को अन्तराष्टक (माघके अन्तके चार दिन और फाल्गुनके आदिके चार दिन) में आलवीके समीप सिंसपा वनमें विहार करते देखते हैं। सम्भवतः यह इसी वर्षकी या इससे एक वर्ष पूर्वकी घटना हो सकती है। उन्नीसवीं वर्षा भी भगवान्ने चालिय पर्वतपर ही बिताई।

बुद्धत्व-प्राप्तिके बाद बीसवाँ वर्षावास भगवान्ने राजगृहमें किया। इस वर्ष जब भगवान् राजगृहसे श्रावस्तीकी ओर जा रहे थे, तो मार्गमें उन्हें भयंकर डाकू अंगुलिमाल मिला, जिसे उन्होंने दान्त किया।

बुद्धत्व-प्राप्तिके बीसवें वर्षमें ही आनन्दको भगवान्का स्थायी उपस्थाक (शरीर-सेवक) बनाया गया। इस समयसे लेकर ठीक भगवान्के महापरिनिर्वाण तक, अर्थात् करीब २५ वर्षसे अधिक समय तक, आनन्दने छायाकी भाँति भगवान्को कभी नहीं छोड़ा और अत्यन्त तन्मयता और आत्मीयताके साथ उनकी सेवा की।

इक्कीसवें वर्षावाससे लेकर ४५वें वर्षावास तक अर्थात् पूरे पचीस वर्षावास भगवान्ने श्रावस्तीमें किए। इन पूरे पच्चीस वर्ष भगवान्ने अपना प्रधान निवास-स्थान श्रावस्तीको बनाया, परन्तु बीच-बीचमें वे दूर तक चारिकाओं के लिए जाते थे और केवल वर्षामें श्रावस्ती लौटकर आ जाते थे, जहाँ सुत्तनिपातकी अट्ठकथा (परमत्थजोतिका) के अनुसार यदि वे दिनको मृगारमाताके प्रासाद पूर्वाराम में रहते थे, तो रातको अनाथपिण्डिकके जेतवनाराममें और यदि रातको मृगारमाताके प्रासाद पूर्वाराममें रहते थे, तो दिनमें अनाथपिण्डिकके आराम जेतवनमें। वैसे यदि औपचारिक ढंगसे देखा जाय, तो भी प्रायः बराबर ही वर्षावास भगवान्ने जेतवनाराम और पूर्वाराममें किए, परन्तु यह आश्चर्यकर और ध्यान देने योग्य बात है कि उपदेश उन्होंने अधिकतर जेतवनाराममें ही दिए, पूर्वाराममें उतने नहीं। प्रथम चार निकायोंके ८७१ सुत्तोंका उपदेश भगवान्ने श्रावस्तीमें किया, जिनमें से ८४४का उपदेश अकेले जेतवनाराममें किया गया और केवल २३ का पूर्वाराममें। चार सुत्तोंका उपदेश श्रावस्तीके आसपासके अन्य स्थानों में किया गया। श्रावस्तीमें २५ वर्ष तक वर्षावास करते हुए भगवान्ने जिन चारों ओर फैले हुए अनेक स्थानोंकी यात्राएँ विभिन्न समयोंपर कीं, उन्हें राज्य, जनपद आदिकी दृष्टिसे इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है:

मगध-राज्यमें

(१) अन्धकविन्द (ग्राम), (२) अम्बलट्ठिका, (३) अम्बसण्ड, (४) एकनाला, (५) कलन्दकनिवाप, (६) खाणुमत ब्राह्मण-ग्राम, (७) जीवकम्बवन, (८) तपोदाराम, (९) दक्खिणागिरि, (१०) नालन्दा, (११) पंचशाल, (१२) मणिमालक चेतिय, (१३) माडला, (१४) मोरनिवाप परिब्राजकाराम, (१५) लट्ठिवन, (१६) सीतवन, (१६) सूकरखाता।

कोसल-राज्यमें

(१) इच्छानंगल ब्राह्मण-ग्राम, (२) उक्कट्ठा, (३) उग्गनगर, (४) उजुञ्ञा, (५) ओपसाद, (६) चण्डलकप्प, (७) दण्डकप्प, (८) नगरक, (९) नगरविन्द, (१०) नलकपान, (११) पंकधा, (१२) मनसाकट, (१३) रम्मकाराम (श्रावस्ती), (१४) वेनागपुर, (१५) सललागारक, (१६) साकेत, (१७) सालवतिका, (१८) साला, (१९) सेतव्या, (२०) वेलुद्वार।

वज्जि-जनपदमें

(१) वैशाली, (२) अम्बपालिवन (वैशालीके समीप), (३) उक्काचेल (गंगा नदीके किनारे); (४) कोटिगाम, (५) गोसिंग सालवन; (६) चेतियगिरि, (७) नादिका, (८) पाटिकाराम (वैशाली), (९) बेलुवगाम, (१०) हत्थिगाम, (११) तिन्दुकखाणु (परिब्राजकाराम)।

वस (वत्स्य) राज्यमें

(१) कौशाम्बी।

पंचाल-देशमें

(१) अग्गालव चेतिय (आलवी नगरमें), (२) सिंसपावन (आलवीमें), (३) किम्बिला।

चेदि-राष्ट्रमें

(१) भद्दवती।

अंग-जनपदमें

(१) अस्सपुर, (२) चम्पा, (३) भद्दिय।

अंगुत्तरापमें

(१) आपण।

सुह्म-जनपदमें

(१) सेदक, सेतक या देसक, (२) कजंगल।

कुरु-राष्ट्रमें

(१) कम्मासदम्म, (२) थुल्लकोट्ठित ।

शूरसेन या पंचाल-जनपदमें

(१) वेरंजा ।

विदेह-राष्ट्रमें

(१) मिथिला, (२) विदेह (किसी विशेष स्थानका उल्लेख नहीं किया गया है)।

काशी-जनपदमें

(१) कीटागिरि ।

शाक्य-जनपदमें

(१) उलुम्प, (२) खोमदुस्स, (३) चातुम, (४) देवदह, (५) मेदलुम्प या मेदतलुम्प, (६) वेधञ्जा, (७) सक्कर, (८) सामगाम, (९) सिलावती ।

कोलिय-जनपदमें

(१) उत्तर (कस्बा), (२) कक्करपत्त, (३) कुण्ड-धान-वन, (४) सज्जनेल, (५) हलिद्दवसन ।

मल्ल-राष्ट्रमें

(१) उरुवेलकप्प, (२) भोगनगर ।

कालामोंके प्रदेशमें

(१) केसपुत्तनिम ।

उपर्युक्त सूची ८२ स्थानोंकी है। इनके अलावा तीन स्थान ऐसे हैं, जिनका राज्य या जनपदोंके रूपमें वर्गीकरण नहीं किया जा सकता और दो ऐसे हैं, जिनके विषयमें हम पूर्णतः निश्चय नहीं कर सकते कि किस प्रदेशमें थे। जिन स्थानोंको हम राज्यों और जनपदोंके अन्तर्गत नहीं रख सकते, उनमें अनोतत्त (अनवतप्त) दह, हिमवन्त पदेस और उत्तर-कुरु हैं) अनोतत्त दहको अक्सर मानसरोवर झीलसे मिलाया जाता है और हिमवन्त-प्रदेश तो हिमालय है ही। उत्तर-कुरुसे तात्पर्य कुरु-द्वीपसे है, जो जम्बुद्वीपके उत्तरमें हिमालयसे परे स्थित था। जिन दो स्थानोंको हम निश्चित रूपसे किसी विशेष जनपद या राज्यमें स्थित नहीं दिखा सकते, वे हैं उत्तरका और तोदेय्य। उत्तरका कस्बा थुलू लोगोंके (जिन्हें पाठ-भेदसे बुमु और खुलू भी कहा गया है) प्रदेशमें था। परन्तु ये थुलू, बुमू या खुलू लोग कौन थे, इसका अभी सम्यक् निर्णय नहीं हो सका है। सम्भवतः मज्झिम-देशमें हम थुलू-जनपदको रख सकते हैं, क्योंकि यह एक सुविदित जनपद था, जहाँ भगवान् सुनक्षत्र लिच्छविपुत्रके साथ एक बार गए थे। तोदेय्य एक गाँव था, जिसके सम्बन्धमें हम केवल इतना कह सकते हैं कि वह श्रावस्ती और वाराणसीके बीच स्थित था। भगवान् बुद्ध यहाँ आनन्दको साथ लेकर एक बार गए थे। भगवान् बुद्धके जीवन-कालमें चूँकि काशी एक स्वतन्त्र राष्ट्र न होकर कोसलका ही एक अंग था, इसलिए हम तोदेय्यगामको आसानीसे कोसल-राज्यमें मान सकते हैं।

श्रावस्तीमें पैंतालीसवाँ वर्षावास करनेके बाद भगवान् राजगृह चले गए। बुद्धत्व-प्राप्तिके बाद उनके पार्थिव जीवनका यह छियालीसवाँ और अन्तिम वर्ष था, जिसकी प्रमुख घटनाओंका उल्लेख हमें दीघनिकायके महापरिनिब्बाण-सुत्त, महासुदस्सन-सुत्त और जवनसभ-सुत्तमें मिलता है। राजगृहके गृध्रकूट पर्वतसे भगवान् ने वैशालीके लिए प्रस्थान किया, जहाँ होते हुए वे कुसिनारा गए। यह उनकी अन्तिम यात्रा थी। प्रस्थानसे पूर्व मगधराज अजातशत्रुका ब्राह्मण मन्त्री वर्षकार उनसे मिला और उसने भगवान्को बताया कि राजा अजातशत्रु वज्जियोंपर अभियान करना चाहता है, जिसके उत्तरमें भगवान्ने सीधे वर्षकारसे कुछ न कहकर पासमें उनपर पंखा झलते हुए आनन्दसे कहा कि जब तक वज्जी लोग सात अपरिहानिय धर्मोंका, जिनका उपदेश उन्होंने पहले एक बार वज्जियोंको वैशालीके सारन्दद चैत्यमें दिया था, पालन करते रहेंगे, तबतक उनकी कोई क्षति नहीं हो सकती। तदन्तर भिक्षुओंके अनुरूप सात अपरिहानिय धर्मोंका उपदेश भगवान् ने राजगृहकी उपस्थान-शालामें दिया और फिर भिक्षु-संघ के सहित अम्बलट्ठिकाके लिए प्रस्थान किया, जहाँ उन्होंने राजागारक (राजकीय भवन) नामक स्थानमें निवास किया। यहाँसे आगे चलकर भगवान् नालन्दा आए और प्रावारिक-आम्रवन (पावारिकम्ब-वन) में ठहरे। नालन्दासे चलकर भगवान् पाटलिगाम पहुँचे, जो गंगा नदीके दक्षिणी किनारेपर स्थित था। आवसथागारमें उन्होंने वहाँके उपासकोंको सदाचारपर उपदेश दिया। इस समय सुनीध और वस्सकार नामक अजातशत्रुके ब्राह्मण मन्त्री वज्जियोंको जीतनेके लिए नगरको बसा रहे थे (नगरं मापेन्ति वज्जीनं पटिबाहाय)। नगरकी इस बनावटको देखकर भगवान्ने यह भविष्यवाणी की कि आगे चलकर यह गाँव पाटलिपुत्र नामसे जम्बुद्वीपका प्रसिद्ध नगर होगा। दूसरे दिन भगवान् ने उपर्युक्त दो ब्राह्मण मन्त्रियोंके यहाँ भोजन किया और उनके तथा अन्य अनेक नागरिकोंके द्वारा अनुगमित होते हुए गंगा नदीको पार किया। जिस द्वारसे भगवान् पाटलि-ग्रामसे निकले, उसका नाम 'गौतम द्वार' और जिस घाटसे उन्होंने गंगा नदीको पार किया, उसका नाम 'गौतम तीर्थ' या 'गौतम घाट' रखा गया। गंगा नदीको पारकर भगवान् वज्जियोंके कोटिगाम नामक गाँवमें पहुँचे। वहाँ

उन्होंने भिक्षुओंको चार आर्यसत्योंका उपदेश दिया। आगे चलकर भगवान् वज्जि-जनपदके ही नादिक या नादिका नामक नगरमें पहुँचे, जहाँके गिल्जकावसथ नामक आवासमें, जो ईंटोंका बना हुआ था, वे ठहरे।

यहाँसे चलकर भगवान् वैशाली पहुँचे, जहाँ वे अम्बपालिवनमें ठहरे और अम्बपालिके आतिथ्यको स्वीकार किया। इसके बाद भगवान् समीपके बेलुव नामक ग्राममें चले गए और उन्होंने भिक्षुओंसे कहा—'भिक्षुओ! तुम वैशालीके चारों ओर....वर्षावास करो। मैं यहीं बेलुव गामकमें वर्षावास करूँगा (एथ तुम्हें भिक्खवे समन्ता वेसालिं....वस्सं उपेथ। अहं पन इधेव बेलुव गामके वस्सं उपगच्छामीति)।' परन्तु इसी समय भगवानको कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई। भगवान्ने संकल्प-बलसे उसे दबा दिया, क्योंकि वे बिना भिक्षु-संघको अवलोकन किए महापरिनिर्वाणमें प्रवेश करना नहीं चाहते थे। वर्षावासके उपरान्त एक दिन भगवान् वैशालीमें भिक्षार्थ गए और ध्यानके लिए चापाल चैत्यमें बैठे। यहीं उन्होंने आनन्दसे कहा कि वे तीन मास बाद महापरिनिर्वाणमें प्रवेश करेंगे। इसका अर्थ यह है कि इस समय माघ मासकी पूर्णिमा थी और प्रवारणा (वर्षावासकी समाप्ति—आश्विन पूर्णिमा) को हुए चार मास बीत चुके थे। इसके बाद भगवान् वैशालीकी महावन-कूटागारशालामें चले गए और वैशालीके आसपास विहरनेवाले सब भिक्षुओंको बुलवाकर उन्होंने उनसे कहा कि जिस धर्मका उन्होंने उन्हें उपदेश किया है, उसका ज्ञानपूर्वक पालन उन्हें करना चाहिए, ताकि यह ब्रह्मचर्य (बुद्ध-धर्म) चिरकाल तक बहुत जनोंके हित और सुखके लिए स्थित रहे। इसी समय भगवान्ने भिक्षुओं से कहा—"मेरी आयु परिपक्व हो चुकी है। मेरा जीवन थोड़ा है। मैं तुम्हें छोड़कर जाऊँगा। मैंने अपनी शरण बना ली है।"

दूसरे दिन वैशालीमें भिक्षाचर्या करनेके बाद भगवान् ने मुड़कर वैशालीकी ओर देखा और आनन्दसे कहा—"आनन्द! यह तथागतका अन्तिम वैशाली-दर्शन होगा।" इसके बाद ही भगवान् भण्डगामकी ओर चल दिए। भण्डगाम पहुँचकर भगवान्ने भिक्षुओंको शील, समाधि, प्रज्ञा और विमुक्ति सम्बन्धी उपदेश दिया और फिर क्रमशः हत्थगाम, अम्बगाम और जम्बुगाम होते हुए भोगनगर पहुँचे, जहाँ वे आनन्द-चैतियमें ठहरे। तदन्तर भगवान् आगे बढ़ते हुए पावा पहुँचे, जहाँ वे चुन्द सुनारके आम्र-वनमें ठहरे और उसके यहाँ 'सुक्करमद्दव' का भोजन किया, जो पच न सका और भगवान्को कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई। इसी अवस्थामें वे कुसिनाराकी ओर चल पड़े। रास्तेमें थककर भगवान् एक पेड़के नीचे बैठ गए और आनन्दने संघाटी चौपेती कर उनके नीचे बिछा दी। भगवान्को कड़ी प्यास लगी हुई थी। पासमें ही एक छोटी नदी (नदिका) बह रही थी, जिसमें से पानी लानेको भगवान्ने आनन्दसे कहा। आनन्द वहाँ गए, परन्तु देखा कि अभी-अभी पाँच सौ गाड़ियाँ वहाँ होकर गई हैं, अतः पानी गन्दा है। भगवान्के पुनः आग्रह करनेपर आनन्द वहाँ गए और इस बार पानी स्वच्छ पाया। तथागतने जल पिया और इसी समय मल्लपुत्र पक्कुस व्यापारी, जो कुसिनारासे पावाकी ओर पाँच सौ मालसे लदी गाड़ियोंके सहित आ रहा था, उनसे मिला और उसने भगवान्को एक इंगुरवर्ण दुशाला भेंट किया, जिसके एक भागको भगवान्के आदेशानुसार उसने उन्हें उढ़ा दिया और दूसरे भागको आनन्दको। आगे चलकर भगवान् ककुत्था नामक नदीपर आए, जिसमें स्नान और पानकर (नहात्वा च पिवित्वा च) उसे पार किया और एक आम्रवनमें विश्राम किया, जो इसी नदी (ककुत्था) के दूसरे किनारेपर स्थित था। इस आम्र-वनसे आगे चलकर भगवान्ने एक और नदीको पार किया, जिसका नाम हिरण्यवती था। इस नदीको पारकर भगवान् कुसिनाराके समीप मल्लोंके 'उपवत्तन' नामक शाल-वनमें आए। यहीं जुड़वाँ शाल-वृक्षोंके नीचे आनन्दने भगवान्के लिए उत्तरकी ओर सिरहाना करके चारपाई बिछा दी, जहाँ भिक्षुओं को संस्कारोंकी अनित्यता और अप्रमादपूर्वक जीवनोद्देश्य पूरा करनेका उपदेश देते हुए असमयमें भूले शाल-वृक्षोंके फूलों तथा दिव्य मन्दराव पुष्पोंके पराग-रेणुओंसे पूजित होते हुए वैशाख पूर्णिमाके रातके अन्तिम याममें तथागतने महापरिनिर्वाणमें प्रवेश किया।

बोधिसत्व

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

'बोधिसत्व' महायान धर्मका विशेष पारिभाषिक शब्द है। महायानको 'बोधिसत्व-यान' भी कहते हैं। बोधिसत्वका अर्थ है वह व्यक्ति, जो बोधि या ज्ञान प्राप्त करनेके मार्गमें स्थित हो, किंतु जिसके चित्तमें महाकरुणाका उदय हो गया हो और जो उस करुणाके कारण न केवल अपने लिए, वरन् और सब प्राणियोंके लिए भी दुःख-निवृत्ति या मोक्षकी अभिलाषा करता हो।

'बोधि' शब्दका सीधा-सरल अर्थ ज्ञान है। बुद्धने कठिन तपस्या और ध्यानके बाद जो ज्ञान प्राप्त किया, उसे बौद्ध-ग्रंथोंमें संबोधित या पूर्ण ज्ञान कहा गया है। संबोधि का तात्पर्य है मानव-हृदयमें पूर्णतम बुद्धि या प्रज्ञाका उदय हो जाना। यह प्रज्ञा ही बुद्धका सबसे बड़ा लक्षण है। प्रज्ञाको ही अनुत्तर ज्ञान कहा गया, अर्थात् ऐसा ज्ञान, जिससे उत्कृष्ट ज्ञान और कोई नहीं है। सरल शब्दोंमें इसे समझना चाहें, तो यों कह सकते हैं कि प्रज्ञा या बुद्धि ही मानवका सबसे विशिष्ट लक्षण है। बुद्धिका स्वभाव ही है ज्ञानकी उपलब्धि। बुद्धिसे निरन्तर हम वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करते जाते हैं, किंतु यह ज्ञान ऐसा नहीं होता, जिसे हम अनुत्तर या महाज्ञान कह सकें। ठीक प्रकारका ज्ञान ही सम्यक् ज्ञान या संबोधि कहलाता है। सम्यक् ज्ञान उस प्रकारकी प्रज्ञा है, जिसे प्राप्त कर लेनेपर मनुष्य क्षणिक और नित्यका भेद पहचान लेता है, प्रसन्न या तृप्त नहीं होता, बल्कि विपुल सुख चाहता है, जिसे स्थायी, शाश्वत् या नित्य सुख कहते हैं। 'धम्मपद' में स्पष्ट ही कहा गया है कि धीर व्यक्ति वह है, जो मात्रा-सुख (इन्द्रिय और विषयके संपर्कसे प्राप्त होनेवाला सुख) त्यागकर विपुल सुख पर अपनी दृष्टि रखता है—

मत्ता सुखपरिच्चागा पस्से चे विपुलं सुखं।
चजे मत्तासुखं धीरो संपस्सं विपुलं सुखम्॥

महाकरुणाका उदय

जिसे यहाँ विपुल सुख कहा गया है, उसे ही प्राचीन उपनिषदोंकी भाषामें भूमा-सुख कहा गया था। सम्यक् व्यक्तिके मनमें जो ज्ञानका नया उज्ज्वल प्रकाश होता है, वह इंद्रिय-सुखसे विलक्षण नित्य-सुख होता है। प्रज्ञा या उच्च बुद्धिपर आश्रित जो प्राचीन बुद्ध-धर्म था, वह कुछ उसी प्रकारके सुखकी ओर लक्ष्य करता था। कहा जाता है कि ज्ञानका उदय होनेके बाद जब बुद्धको उस प्रकार के महान् सुखका अनुभव हुआ, तो वे कुछ कालके लिए उसके रसमें डूब गए। उनका मन उस सुखकी अनुभूतिमें ऐसा रम गया कि उन्होंने उसे ही अपने जीवनका लक्ष्य समझ लिया। वे सोचने लगे कि मेरे लिए यह सुख पर्याप्त है। इस संबोधिसे बढ़कर अब और आनन्द क्या होगा? बौद्ध ग्रंथोंमें साहित्यिक शैलीकी कुशलतासे बुद्धके ऐसे विचारों को मारका एक नया इंद्रजाल कहा गया है, जिसमें उसने बुद्धको ज्ञान उत्पन्न हो जानेके बाद भी फँसाए रखना चाहा। पर बुद्ध मारके इस चक्रमें नहीं आए। इस क्षणमें उनके चित्तमें एक नए गुणका उदय हुआ। उस गुणका नाम महाकरुणा था। उन्हें संसारके उन प्राणियोंके प्रति करुणा उत्पन्न हुई, जो दुःख और क्लेशमें पड़े हुए हैं। जब तक उनके क्लेशोंका छुटकारा न हो, तब तक बुद्धका ज्ञान प्राप्त करके निर्वाणमें चले जाना विशेष अर्थ नहीं रखता। फल यह हुआ कि अकेले बुद्धके चित्तमें जिस मारकी पराजय हुई है, वह एकदेशीय है। उसकी पूरी पराजय तभी सम्भव है, जब प्रत्येक चित्तमें संबोधिका उदय हो, क्लेशोंका निवारण हो और निर्वाण-सुखका अनुभव हो। इस प्रकार का लोक-कल्याणकारी भाव मनमें आते ही बुद्धिने निश्चय किया कि वे सब प्राणियोंके लिए उस मार्गका उपदेश करेंगे, जिसपर चलकर वे स्वयं निर्वाण तक पहुँच चुके थे। धर्म के जिस अक्ष-बिंदुपर उन्होंने स्वयं अपनी प्रज्ञामें प्रतिष्ठा प्राप्तकी थी, उसे एक चक्रका रूप देकर जब वे सबके लिए उसका प्रवर्त्तन कर सकेंगे, तभी बुद्ध-धर्मकी सच्ची प्रतिष्ठा और विजय सिद्ध होगी।

प्रज्ञा और महाकरुणाका समन्वय

ऊपरकी इस काव्यमय कल्पनासे दो तथ्य प्रकट होते हैं: एक प्रज्ञाका मार्ग है और दूसरा महाकरुणाका। बुद्धको पहले प्रज्ञा या बोधि प्राप्त हुई। उस प्रकारके प्रज्ञाशील बोधिचित्तमें महाकरुणाका जन्म न हुआ होता, तो वह प्रज्ञा या बोधि संसारके मानवोंके काम न आ सकती। प्रज्ञा या बोधि एवं महाकरुणा इन दोनों धर्मोंकी पूर्णताका समन्वय बुद्धके व्यक्तित्वमें हुआ था, अर्थात् बुद्धके चित्तमें दोनोंका समान अस्तित्व था। तभी ज्ञान प्राप्त होनेके बाद प्राणियों के हितार्थ उन्होंने अपने धर्मका उपदेश दिया। किन्तु इन दो गुणोंमें से किसी एकको विशेष गौरव प्रदान करनेका परिणाम बौद्ध-धर्मके इतिहासके विकासपर विशेष महत्व-

पूर्ण हुआ। जो पहला प्रज्ञाका धर्म था, वही अर्हत्-यान अथवा हीन-यान हुआ। कालांतरमें सामाजिक परिस्थितियोंकी माँगसे वह धर्म लोगोंको पर्याप्त प्रतीत नहीं हुआ और तब उस महायान-धर्मकी मान्यता बढ़ी, जिसमें बोधिचित्तके महाकरुण गुणको विशेष गौरव प्रदान किया गया।

बुद्धका अनन्यथावाद

प्राचीन ग्रंथोंमें बुद्धको प्रज्ञा-संघ या प्रज्ञाका महावृक्ष कहा गया है। जो व्यक्ति प्रज्ञा और शीलमें समाहित ह, देवता और ब्रह्मा भी उसकी प्रशंसा करते हैं। जो प्रज्ञाके प्रासादपर आरोहरण कर लेता है, वह बुद्धिमान् व्यक्ति निर्ज्वर शांत भाव प्राप्त करता है और अशोक बन जाता है। इस प्रकार बुद्धकी प्रज्ञा एवं संबोधिकी प्रशंसा प्राचीन बौद्ध-धर्ममें पाई जाती है। उसका आदर्श अर्हत्-पदकी प्राप्ति था। अर्हत् वह है, जो स्वयं संबुद्ध हो जाता है और निर्वाण का अधिकारी बन जाता है। इस प्रकारका जो आदर्श था, वह विशेषतः बौद्ध भिक्षुओंमें सम्मानित हुआ, किंतु गृहस्थोंके लिए वह लोकप्रिय नहीं हो सकता। भारतीय इतिहासमें अर्हत्-यान और बोधिसत्व-यान इन दोनोंके उदय और विकासकी कहानी बहुत महत्वपूर्ण है। कहा जाता है कि अशोकके समयमें जो बौद्ध संगीति हुई थी, उसमें ही आदर्शोंके ये भेद ऊपर उभर आए थे और ऐसे लोगोंने, जो महायानके लोकोपकारी भावोंसे उद्वेलित हो रहे थे, स्पष्टतासे अपनी बात उस समय कही थी। किन्तु फिर भी उस समयका पाला स्थविरवाद अथवा थीरवाद प्राचीन मतावलंबियोंके हाथमें ही रहा। कनिष्कके समयमें आते-आते पाँसा बहुत-कुछ पलट गया था। उस समय भागवत्-धर्मके गृहस्थ-केंद्रिक धर्मका प्रचार उत्कर्षपर था। पुष्यमित्र शुंगके समयमें और महाक्षत्रप शोडाशके समयमें मथुरासे दो सौ मीलके घेरेमें भागवत्-धर्मने अपना पूरा प्रभाव फैला लिया था। अवश्य ही इस धर्ममें गृहस्थोंके लिए शील और आचारकी सुविधाएँ सबसे अधिक थीं। भगवान्की भक्ति और आराधना करनेवाले अधिकांश जन गृहस्थ-मार्गके अनुयायी थे। संभावना यही है कि बौद्ध-धर्मपर भी इन विचारोंका सूक्ष्म प्रभाव पड़ा हो। एक ही युगकी सामाजिक प्रवृत्तियोंमें ऐसा आदान-प्रदान प्रायः स्वाभाविक होता है। ऐतिहासिक कारणोंकी मीमांसा के लिए यह स्थल पर्याप्त नहीं, परंतु इतना निश्चय है कि कनिष्कके राज्य-कालमें जो धार्मिक आंदोलन ऊपर आया था, उसमें बुद्ध और उनके धर्मके लोक-हितकारी पक्षपर बार-बार अत्यधिक ध्यान दिलाया गया था। बुद्धको लोक-विनायक, लोकनाथ, लोक-हितानुकम्पी, इस प्रकारके विशेषण दिए जाने लगे थे। सद्धर्म-पुंडरीकमें स्पष्ट कहा गया है कि एक ही यान सच्चा यान है। दूसरे-तीसरे और जो यान या मार्ग लोकमें बताए जाते हैं, वे ठीक नहीं हैं। जो लोग नाना मार्गोंका उपदेश करते हैं, वे दूसरे-दूसरे उपाय बताते हैं, इसलिए वे अन्यथावादी हैं। भगवान् बुद्धने तो यान-नानात्वका भी समर्थन नहीं किया। वे तो एक ही यानके माननेवाले थे और वह एकयान महायान था। लोकनायक भगवान् बुद्ध अनन्यथावादी थे—

एकं हि यानं द्वितियं न विद्यते न हीनयानेन नयन्ति बुद्धाः।
अनन्यथावादिन लोकनायका एकं इदं यान द्वितीय नास्ति॥
(सद्धर्मपुण्डरीक २।५५,७०)

उस समय उद्घोषपूर्वक और चुनौतीके साथ यह कहा जाने लगा कि हीनयान बुद्धोंका मार्ग नहीं है। जो लोग बहुतसे यानोंकी बात करते हैं, वे भ्रांत हैं। बुद्धका तो केवल एक ही मार्ग था—वह, जिसे यहीं महायान कहा गया। महायानका शब्दार्थ है चौड़ा रास्ता या चलनेके लिए चौड़ा मार्ग। यह 'चौड़ा मार्ग' इसलिए इस नामसे प्रसिद्ध हुआ कि भिक्षु और गृहस्थ दोनों ही इस मार्गपर चल सकते थे।

महायानकी विशेषताएँ

यहाँ यह प्रष्टव्य है कि इस नए मार्गकी विशेषताएँ और आदर्श क्या थे? विद्वानोंके अनुसार महायानकी तीन विशेषताएँ थीं: बुद्ध-कायकी पूजा, बोधिसत्व-आदर्शपर विशेष गौरव और शून्यवादका सिद्धान्त। इनमें से जिसे कालांतरमें शून्यता या शून्यवाद कहा गया, वह प्राचीन थेरवाद धर्मके 'अनत्ता' धर्मका ही स्वाभाविक विकास था। जिसके विषयमें 'है' और 'नहीं' इन दोनों उपाधियोंका प्रयोग न किया जा सके, उस प्रकारका कोई तत्व विशेष दार्शनिकोंकी भाषामें शून्य कहलाया। आगे चलकर भारतवर्षके दार्शनिक इतिहासमें शून्यवादकी बहुत-सी शाखाएँ फूटीं—यहाँ तक कि ब्राह्मण-धर्म भी उससे अछूता न बचा। किंतु अंततोगत्वा शंकराचार्यकी प्रतिभाके फल-स्वरूप उपनिषदोंके प्राचीन ब्रह्मवादने शून्यवादकी स्थापनाओंको अपने गर्भमें ले लिया और अप्रज्ञात, अप्रतर्क्य, अभिधेय शून्य-तत्वका स्थान आनन्द-घन ब्रह्म-तत्वने ले लिया।

महायानकी दूसरी विशेषता बुद्ध-कायको देवत्व प्रदान करके उसकी पूजा थी। बुद्धने स्पष्ट कहा था कि जब उनका नश्वर शरीर न रहेगा, तब कोई भी उनके लिए पूजा-अर्चा नहीं करेगा। किंतु उनके महापरिनिर्वाणके बाद ही उनके लिए धातु-गर्भ स्तूपोंका निर्माण किया जाने लगा

आरम्भमें ये स्तूप आठ थे, जिनमें बुद्धकी शरीर-धातु या अस्थियाँ मंजूषा-गर्भित करके रखी गईं। कालांतरमें अशोकने धातु-गर्भ मूल आठ स्तूपोंकी धातुओंका विस्तार करके अनेक नए स्तूपोंका निर्माण कराया, जिन्हें वैस्तारिक स्तूप कहा जाता है। कल्पनाकी भाषामें ऐसा माना गया कि अशोकके वैस्तारिक-स्तूपोंकी संख्या चौरासी सहस्त्र थी। यह स्पष्ट ही एक काल्पनिक संख्या है। जो हो, कालक्रमसे पूजार्थ स्तूपोंकी संख्यामें अवश्य वृद्धि हुई होगी। इसी स्तूप-पूजाका स्वाभाविक पर्यवसान बुद्धके धर्मकायकी पूजाके रूपमें हुआ। पहले तो बुद्धके धर्मकायकी पूजाके स्तूप एवं उसके अतिरिक्त बोधिवृक्ष, धर्मचक्र आदि प्रतीक या चिन्हों़की पूजाके रूपमें लोकमें उत्तरोत्तर फैली। ईसासे एक-दो शती पूर्वकी बौद्ध-कलामें इसी प्रकार प्रतीकोंकी पूजा पाई जाती है। किन्तु प्रथम शती ईस्वीमें कनिष्कका राज्य-काल आरम्भ होते ही इस सिद्धान्तमें एक नया महत्व-पूर्ण परिवर्त्तन हुआ और वह चिन्ह-पूजाके स्थानमें सीधे बुद्ध-मूर्त्तिकी पूजाका आरम्भ था। कनिष्कके राज्य-काल के पहले वर्षकी बुद्ध-मूर्त्ति पेशावरके स्तूपकी मंजूषापर अंकित पाई गई है। दूसरे वर्षकी कोशाम्बीमें और तीसरे वर्षकी सारनाथमें पाई गई है। दूसरी और तीसरी इन दोनों मूर्त्तियोंका निर्माण मथुरामें हुआ था। इससे स्पष्ट है कि निर्माणका महान् परिवर्त्तन कनिष्कके राज्य-कालके आरंभिक भागमें संपन्न हो गया था। और संभवतः इसका श्रेय मथुराके उस भक्ति-प्रधान वातावरणको था, जिसमें भागवत् लोग विष्णुकी मूर्त्तिकी पूजा पहलेसे करते आ रहे थे। बुद्ध-मूर्त्तिका आरम्भ कहाँ हुआ, इसकी छानबीन तो ऐतिहासिक विषय है, किन्तु जनताके लिए यह महत्वपूर्ण बात है कि एक बार जब बुद्ध-मूर्त्तिका पूजन आरम्भ हो गया, तो वह उस युगके नए धर्मकी सबसे बड़ी विशेषता बन गई और लोकमें प्रचलित जो बौद्ध-धर्म था, वह मूर्त्ति-पूजाका ही धर्म बन गया। बुद्ध-मूर्त्तिके इस प्रादुर्भावका परिणाम न केवल भारतवर्ष, बल्कि एशिया महाद्वीपके अन्य-अन्य देशोंकी कलापर भी पड़ा। और विशेषतः अफ़ग़ा-निस्तान, मध्य-एशिया और चीन इस प्रभावके अंतर्गत आए।

महायान-धर्मकी तीसरी विशेषता, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है, बोधिसत्वका नया आदर्श था, जिसने प्राचीन अर्हत्-धर्मके आदर्शको हटाकर लोकमें एक नए प्रकारके प्रेरणात्मक धार्मिक आदर्शकी स्थापना की। अर्हत वह है, जो केवल अपने ही क्लेशोंसे मुक्ति या छुटकारा चाहता है; किन्तु बोधिसत्व वह है, जो अपनी साधनाका सारा फल इसलिए परार्पण कर देता है कि दूसरे प्राणियोंका भी दुःख दूर हो, जैसा बोधिचर्यावतारमें शांतिदेवने कहा है—

एवं सर्वमिदं कृत्वा यन्मयाऽऽसादितं शुभम्।
तेन स्यां सर्वसत्त्वानां सर्वदुःखप्रशांतिकृत्॥
मुच्यमानेषु सत्वेषु ये ते प्रामोद्यसागराः।
तैरेव ननु पर्याप्तं मोक्षेनारसिकेन किम्॥

अर्थात् अपने पुण्य-कर्मोंसे जो भी शुभ फल मुझे प्राप्त हुआ हो, उसका उपयोग मैं अपने निर्वाण-सुखके लिए नहीं चाहता, किंतु दूसरे प्राणियोंके दुःखकी शान्तिके लिए उसका उत्सर्ग करता हूँ। जिस समय प्राणी अपने-अपने दुःखोंसे मुक्त होते हैं, उस समय जो आनन्दका समुद्र लहरें लेता है, उसकी तुलनामें मोक्षका सुख तो बिल्कुल कुछ नहीं है। मुझे प्राणियोंके दुःखसे उत्पन्न उसी आनन्द-सिंधुकी उपलब्धि पर्याप्त है। इस प्रकारके मानसिक भावका सीधा तात्पर्य यही है कि बोधिसत्व व्यक्ति केवल अपने कल्याणके लिए निर्वाणका सुख नहीं चाहता। उसके चित्तमें प्रज्ञाकी अपेक्षा महाकरुणाका भाव अधिक विकसित होता है। वह अपने ही केन्द्रमें आत्माराम या सीमित नहीं बनना चाहता। वह अपने मनके भावोंका विस्तार करता है और उसमें सारे विश्वको सम्मिलित कर लेता है। विश्वमें जो क्लेश और अशान्ति है, वह उसके सुखके केन्द्रमें प्रविष्ट हो जाती है और तब उन दोनोंके आपसी संघर्षका फल यह होता है कि बोधिसत्वके चित्तकी आनन्द-वृत्ति पराए दुःखको अपनेमें पचा लेती है और उसका शमन करती है। बोधि-चित्तकी शीत वायु जहाँ तक फैल सकती है, फैलती है। वह प्राणियोंके लिए क्षेम और कल्याणका वितरण करती है। यह भाव अत्यन्त ही मनोमोहक और सुन्दर है। बोधिसत्वकी चित्त-वृत्ति रखनेवाला व्यक्ति निर्वाणके सुखसे भी आकर्षित नहीं होता। वह अपने इस जन्म-मरणके चक्रको समाप्त करनेके लिए भी आतुर नहीं होता। बुद्धने संसारको दुःखमय माना और उस दुःखके निरोधका मार्ग भी बताया। बोधिसत्व व्यक्ति स्वयं अपने लिए तो दुःखका निरोध कर ही लेता है, किंतु उससे भी आगे बढ़कर अपने समस्त शील और प्रज्ञा-बलकी शक्तिसे आर्त्त-प्राणियोंके लिए भी दुःख-निरोधका उपाय संभव बनाता है। ऐसा करते हुए उसकी सबसे बड़ी शक्ति आत्मोत्सर्ग अर्थात् अपने तन-मन-धनके सर्व-हुत दान या यज्ञसे उसे मिलती है। इस प्रकारकी शक्तिको बौद्ध-धर्ममें दान-पारमिता कहा गया है। पारमिताका अर्थ है पार पहुँचनेकी स्थिति अर्थात् परिपूर्णता। बौद्ध धर्ममें इस प्रकारकी छः पारमिताएँ या गुण माने गए

हैं, जिनका पूर्ण करना प्रत्येक बोधिसत्वके लिए आवश्यक है। छः पारमिताएँ सर्वथा पूर्ण करनी चाहिएँ। वे इस प्रकार हैं—दान-पारमिता, शील-पारमिता, क्षांति या क्षमा-पारमिता, वीर्य-पारमिता अर्थात् इष्ट वस्तुकी प्राप्तिके लिए अधिकतम परिश्रम करनेकी शक्ति, ध्यान-पारमिता अर्थात् चित्तकी अविचल स्थिति, और प्रज्ञा-पारमिता अर्थात् सर्वश्रेष्ठ ज्ञानकी प्राप्ति या मन और बुद्धिकी सर्वोच्च संबुद्धि-स्थिति, जिसमें मानव सब-कुछ जान लेता है और उसी ज्ञानसे जो प्राप्तव्य है, उसे प्राप्त भी कर लेता है। जो व्यक्ति इन गुणोंकी सविशेष साधना करता है, वह बोधिसत्व है। प्रत्येक व्यक्तिको बोधिसत्व बननेके लिए बोधि-चित्तकी प्राप्ति करनी चाहिए। सच्चा बोधि-चित्त वही है, जिसमें महाकरुणाका अंकुर उत्पन्न हो गया हो। शांतिदेवने प्रश्न किया है कि बोधिसत्वके जीवनका सच्चा आरंभ कहाँसे होता है और इस प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा है कि महाकरुणाका आरंभ ही बोधिसत्व जीवनका आरम्भ है—

किमारंभा मंजुश्री बोधिसत्वानां चर्या, किमधिष्ठिाना? मंजुश्रीराह महाकरुणारंभा देवपुत्र बोधिसत्वाना चर्या, सत्वाधिष्ठानेति विस्तरः। (बोधिचर्यावतार)

बुद्ध-धर्मकी जड़

वैसे तो कहनेके लिए सैकड़ों प्रकारके चरित्र और शीलके गुण हैं, जिन्हें बुद्ध-धर्म कहते हैं। सब बुद्ध-धर्मोंकी चरित्र या शील-गुणोंकी जड़ एक है— वह है महाकरुणा। जहाँ करुणा रहती है, वहाँ सारे बुद्ध-धर्म स्वयं ही उपस्थित हो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्तिको पहले बोधि-चित्तका व्रत ग्रहण करना चाहिए। इसका अर्थ है अपने चित्तकी बिखरी हुई वृत्तियोंको ज्ञानकी ओर मोड़ना। इस प्रकार एक बार जब व्यक्ति उच्च मार्गपर चलनेका संकल्प कर लेता है, तो उसे उत्साहपूर्वक दान-शील आदि गुणोंमें मन लगाना चाहिए। बुद्धने स्वयं इस प्रकारकी साधना अनेक जन्मोंमें की थी। प्रत्येक जन्ममें पारमिताका आश्रय लेते हुए अंतःकरणमें उमँगनेवाला आनन्द उनके साथ था और अन्तमें उसीकी कृपासे उन्हें बुद्धत्व प्राप्त हुआ। बुद्धत्वकी स्थितिमें प्रज्ञा और करुणा दोनोंका पूर्णतम विकास उनके व्यक्तित्वमें हुआ। मानवीय व्यक्तित्वका पूर्णतम विकास यही बोधिचर्याका लक्ष्य है। संसारमें इस प्रकार बोधिचर्यामें लगे हुए व्यक्ति ही मानव-समाजकी सच्ची विभूतियाँ हैं। जिस ग्राम या नगर या प्रदेशमें एक भी सच्चा बोधिसत्व व्यक्ति उत्पन्न हो जाता है, वहाँ नाना कल्याणोंके स्रोत प्रवाहित होने लगते हैं। बोधिसत्वका आदर्श महायान बौद्ध-धर्मके युगमें ही लोकप्रिय नहीं हुआ, वरन् हमारी अर्वाचीन विचारधाराके भी वह अति सन्निकट है। वस्तुतः इस युगका मानव जिस प्रकार सोचता है, उससे बोधिसत्वका आदर्श पूरी तरह मिल जाता है। मनोवैज्ञानिक और सामाजिक दोनों क्षेत्रोंमें मानवके व्यक्तित्वकी विकास-पद्धतिके लिए बोधिसत्व-आदर्शकी सर्वमान्य स्वीकृति में मतभेदकी संभावना नहीं। मानवके लिए आवश्यक है कि वह नैतिक या चरित्र-बलसे पहले अपना पूर्णतम विकास करे और फिर अपनी उपार्जित शक्तियोंका विश्व-मानव या विश्व-कल्याणके लिए उत्सर्ग कर दे। प्रगतिकी ये समानान्तर रेखाएँ हैं, किंतु प्रत्येक मानवीय केन्द्रमें जिस बिंदुपर इनका संमिलन होता है, वही विकासका सबसे ऊँचा बिंदु है। वहीं बोधिसत्व-मानवका जन्म होता है।

काराबद्ध महावीरके आँसू!

मैं बिहारमें एक जगह जैनियोंका मंदिर देखने गया। वहाँ महावीर स्वामीकी मूर्त्ति थी। जिस तरहसे जेलमें एक दीवारके बाद दूसरी दीवार हुआ करती है और भीतर जानेके लिए एक दरवाज़ेके बाद दूसरे दरवाज़ेमें होकर गुज़रना पड़ता है, उसी तरह कई घेरों और दरवाज़ोंको उलाँघकर में मूर्त्तिके पास पहुँच सका। इतना ही नहीं, जेलकी ही तरह बन्दूक लेकर वहाँ संतरी भी मंदिरके दरवाजेपर खड़ा था! एक-एककर कई दरवाजे हमारे लिए खुलते गए और अन्तमें हम वहाँ पहुँचे, जहाँ भगवान् महावीर स्वामीकी नग्न मूर्त्ति थी—उस महापुरुषकी मूर्त्ति, जिन्होंने सर्दी-गर्मीसे बचनेके लिए भी वस्त्र पहनना कभी उचित नहीं माना। उनके दर्शनके लिए हमें वहाँ जाना पड़ा, जहाँ हमेशा दरवाज़े बन्द रहते हैं और सिपाही खड़े मिलते हैं। जो मुक्तात्मा सारे बिहारमें निस्संकोच और निर्भयतापूर्वक जंगल-जंगलमें घूमते थे, उनको आखिर इस तरह बन्दी बनाकर क्यों रखा गया है? कारण यही हो सकता है कि मंदिरके अन्दरके भागमें जगह-जगह आँगी और स्वर्णाभूषणोंकी सजावट है। इस स्वर्णके परिग्रहको भगवान् महावीर तो कभी पसंद नहीं करते, परन्तु शिष्य लोग जहाँ एक ओर महावीरकी करुणाके भक्त हैं, वहाँ स्वर्णकी प्रतिष्ठाका मोह भी नहीं छोड़ सकते, क्योंकि वे यह मानते हैं कि दुनियामें स्वर्णका ही साम्राज्य है! आज दुनियाकी सबसे बड़ी शक्ति जिस देशके पास समझी-जाती है, उस अमरीकामें ही दुनियाका आधा सोना है। जैनी लोग महावीरको भी चाहते हैं और स्वर्णको भी। उनकी दोनोंमें निष्ठा है। दोनोंमें जो विरोध है, वह उनको दिखाई नहीं पड़ता। जब इस मूर्त्तिके दर्शन किए, तो मुझे तो ऐसा लगा कि उसकी आँखोंमेंसे आँसू टपक रहे हैं! मैं तो वहाँ ज्यादा देर तक ठहर ही नहीं सका। अत्यन्त खिन्न मन लेकर चला आया। गया तो था महापुरुषके दर्शन करने के लिए, परन्तु दर्शन हुए हमारे दुर्दैवके!

—विनोबा

मार-विजय

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

महाभिनिष्क्रमणकी उस रात, जब सिद्धार्थने कन्थक घोड़ेको थपथपाकर कहा—"कन्थक! आज तू मुझे एक रात तार दे, मैं तेरी सहायतासे बुद्ध होकर देवताओं सहित सारे लोकको तारूँगा।"

कन्थकने सोचा—यदि प्रासादका द्वार न खुला, तो मैं अपनी पीठपर बैठे अपने स्वामी और पूँछ पकड़कर लटकते हुए छन्दकके साथ प्रासादकी दीवार लाँघ जाऊँगा!

लेकिन मार*ने बीचमें बाधा डालनी चाही। उसने आकाशमें खड़े होकर कहा—"मित्र! मत निकलो। आजसे सातवें दिन तुम्हारे लिए चक्ररत्न प्रकट होगा। दो हज़ार छोटे द्वीपों सहित चारों महाद्वीपोंपर राज्य करोगे। लौटो मित्र, लौटो।"

"तुम कौन हो?"—सिद्धार्थने पूछा।

"मार हूँ।"

"मार! मैं भी जानता हूँ कि मेरे लिए चक्ररत्न प्रकट होगा। लेकिन मुझे राज्यसे काम नहीं। मैं तो देवताओं सहित सारे लोकको तारूँगा। बुद्ध बनूँगा। तुम हट जाओ रास्तेसे।"

घोड़ा कन्थक भी हिनहिनाया और अपने स्वामीको लेकर हवासे भी तेज़ चालसे तीस योजन निकल गया।

मार बौखलाया—अच्छा, मैं तुम्हें समझूँगा। और तबसे मौक़ा ताकते हुए छायाकी तरह बिना अलग हुए वह सिद्धार्थका पीछा करने लगा। और जब सिद्धार्थने बोधि-वृक्षकी ओर पीठ करके दृढ़-चित्त हो निश्चय किया कि चाहे मेरी चमड़ी ही क्यों न बाकी रह जाय, चाहे मेरी नसें ही क्यों न बाकी रह जायँ, चाहे मेरी हड्डी ही हड्डी क्यों न बाकी रह जाय और मेरे शरीरका मांस, रक्त सब सूख जाय, तो भी यथार्थ-ज्ञानको प्राप्त किए बिना मैं इस आसनको नहीं छोड़ूँगा।

तब मारने सोचा—सिद्धार्थ कुमार मेरे हाथोंसे निकलना चाहता है, इसे नहीं ही जाने दूँगा। आज मैं ज़रूर इसे पराजित करूँगा। और अपनी सेनाके पास जा यह बात कह सेना सहित वह सिद्धार्थपर हमला करनेके लिए निकल पड़ा।

मारकी वह सेना, मारके आगेकी ओर बारह योजन, दाहिनी ओर बारह योजन, बाईं ओर बारह योजन, ऊपर आसमानमें नौ योजन और पीछे पृथ्वीके छोर तक फैली हुई थी। उस सेनाका जय-घोष एक हज़ार योजन दूर से भी पृथ्वीके फटनेकी तरह सुनाई देता था। मारने डेढ़ सौ योजनके गिरिमेखल नामक हाथीपर चढ़ अपने हज़ार हाथोंमें नाना प्रकारके शस्त्रोंको ग्रहण किया। सेनाके और लोग भी नाना प्रकारके रंग तथा मुखवाले बन एक-दूसरेसे भिन्न-भिन्न प्रकारके शस्त्रोंको ग्रहण कर सिद्धार्थको डराने चले।

उस समय दस सहस्र चक्रवालोंके देवता सिद्धार्थकी स्तुति करते रहे। देवेन्द्र शक्र अपने विजयोत्तर शंखको
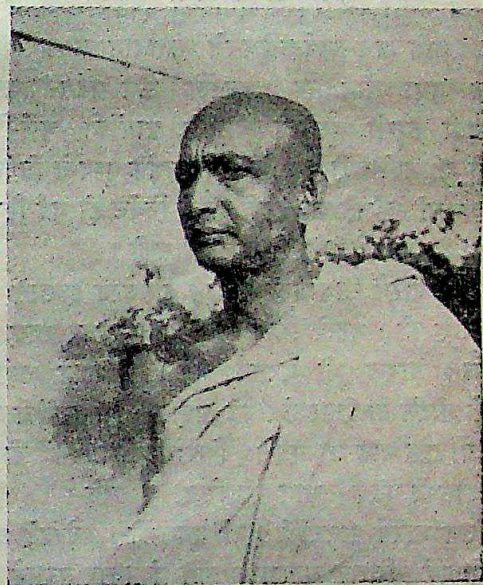
लेखक

फूंकता रहा—एक सौ बीस हाथवाला वह शंख, जो एक बार फूंक देनेसे चार महीने तक गूँजते रहकर निःशब्द होता था। महाकाल नागराजा शेष सौ श्लोकोंसे गुणगान कर रहा था। महाब्रह्मा श्वेत छत्र लिए खड़ा था। लेकिन मार और उसकी सेनाके बोधिवृक्षके पास पहुँचते-पहुँचते, उस देव-सेनामेंसे एक भी खड़ा न रह सका; सभी भाग गए।

महाकाल नागराजा पृथ्वीमें अन्तर्धान हो पाँच सौ योजनवाले अपने मंजेरिक नाग-भवनमें जा दोनों हाथोंसे मुँहको ढँक लेट रहा। शक्र, विजयोत्तर-शंखको पीठपर रख चक्रवालके प्रधान द्वारपर जा खड़ा हो गया। महा-

* मार—शैतान, कामदेव।

ब्रह्मा श्वेत-छत्रको चक्रवालके सिरेपर रख ब्रह्मलोक भाग गया। एक भी देवता वहाँ न ठहर सका।

लेकिन सिद्धार्थ अकेले ही बैठे रहे। मारने अपनी सेनासे कहा—"देखो! शुद्धोदन-पुत्र सिद्धार्थके समान दूसरा वीर नहीं है। हम उसके साथ सामनेसे युद्ध नहीं कर सकेंगे। पीछेसे हमला करेंगे।"

सिद्धार्थने सभी देवताओंके भाग जानेके कारण तीनों दिशाओंको खाली देखा और उत्तर दिशाकी ओरसे मार तथा सेनाको आगे बढ़ते हुए सोचा—"इतने लोग मेरे अकेले के विरुद्ध प्रयत्नशील हैं। आज यहाँ माता, पिता, भाई या दूसरा कोई भी सम्बन्धी नहीं है। मेरी दस पारमिताएँ ही चिरकालसे मेरी परिजन हैं। अतः इन पारमिताओंको ढाल बनाकर, पारमिता-शस्त्रको चलाकर, मुझे इस सेना-समूहका विध्वंस करना होगा।"

तब मारने सिद्धार्थको भगानेकी इच्छासे आँधी पैदा की। उसी क्षण पूर्व-पश्चिमसे झंझावात उठकर अर्द्ध-योजन तथा तीन-तीन योजनोंके ऊँचे पर्वत-शिखरोंको उखाड़ती फेंकती, वृक्षोंको बिछाती, ग्रामोंको चूर्ण-विचूर्ण करती हुई आगे बढ़ी। किन्तु सिद्धार्थके पुण्य-तेजसे उसके पास पहुँचते-पहुँचते वह आँधी इतनी निर्बल हो गई कि वह उनके चीवरके कोनेको भी हिला न सकी।

तब मारने सिद्धार्थको पानीमें डुबानेकी इच्छासे महा-वर्षा शुरू की। मारके दिव्य बलसे आसमानपर छाए हज़ार तहोंवाले बादल भी बरसने लगे। वर्षाकी बड़ी-बड़ी बूँदोंके ज़ोरसे पृथ्वीपर छेद पड़ गए। वन-वृक्षोंकी ऊपरी चोटियों तक बाढ़ आ गई। फिर भी सिद्धार्थके चीवरको वह ओसकी बूँदके समान भी भिगो न सकी।

तब मारने पत्थरोंकी वर्षा शुरू की। बड़े-बड़े जलते-दहकते पर्वत-शिखर आकाश मार्गसे धुँआधार बरसने लगे। लेकिन सिद्धार्थके पास पहुँचकर वे दिव्य-पुष्पोंके गुच्छ बन गए।

तब मारने आयुध-वर्षा शुरू की। एक धार, द्विधार, तलवार, शक्ति, तीर, सभी प्रज्वलित आयुध आकाश मार्गसे आने लगे। लेकिन सिद्धार्थके पास पहुँचकर वे सभी दिव्यमालाएँ बन गए।

तब मारने अंगारोंकी वर्षा शुरू की। लाल रंगके बड़े-बड़े शोले आकाशसे बरसने लगे। लेकिन सिद्धार्थके पैरोंके पास पहुँचकर वे दिव्य-पुष्प बनकर बिखर गए। तब मारने राखकी वर्षा शुरू की। अत्यन्त ऊष्ण अग्नि-चूर्ण आकाशसे बरसने लगा। लेकिन सिद्धार्थके पैरोंपर वह चन्दन-चूर्ण बनकर गिरने लगा।

तब मारने रेतकी वर्षा शुरू की। धुँधुआती, प्रज्वलित अतिसूक्ष्म बालू आकाशसे बरसने लगी। लेकिन सिद्धार्थ के चरणोंपर वह दिव्य-चूर्ण बनकर गिर पड़ी।

तब मारने कीचड़की वर्षा शुरू की। धुँधुआता, प्रज्वलित कीचड़ आकाशसे बरसने लगा। लेकिन सिद्धार्थ के पैरोंपर वह दिव्य-लेप बनकर गिरने लगा।

उसके बाद मारने सिद्धार्थ कुमारको भगानेकी इच्छासे अन्धकार कर दिया। वह अन्धकार चारों तरफसे घन-घोर अन्धकार था। तो भी सिद्धार्थके पास पहुँच सूर्य-प्रभासे विनष्ट अँधेरेकी भाँति अंतर्धान हो गया।

इस प्रकार जब वायु, वर्षा, पाषाण, हथियार, धधकती राख, बालू, कीचड़ और अन्धकारकी वर्षासे भी मार सिद्धार्थको न भगा सका, तो उसने अपनी सेनासे कहा—"भणे! खड़े क्या हो? इस कुमारको पकड़ो, मारो, भगाओ।" और स्वयं गिरिमेखल हाथीके कन्धेपर बैठ अपने चक्रको ले सिद्धार्थके पास पहुँचकर बोला—"सिद्धार्थ! इस आसन से उठ, यह आसन तेरे लिए नहीं है। मेरे लिए है।"

सिद्धार्थने कहा—"मार! तूने न दस पारमिताएँ पूरी कीं; न उपपारमिताएँ; न परमार्थ-पारमिताएँ ही, न तूने पाँच महात्याग ही किए, न जातिहित न लोकहितके काम किए; न ज्ञानका आचरण ही। यह आसन तेरे लिए नहीं, मेरे लिए है।"

मार अपने क्रोधको न रोक सका। उसने सिद्धार्थपर अपना चक्र चलाया। सिद्धार्थने अपनी दस-पारमिताओं का स्मरण किया, तो वह चक्र फलोंका चन्द्रमा बनकर उसके ऊपर आकाशमें ठहर गया। यह वही तेज़ चक्र था, जिसे यदि और दिनों मार क्रोधित होकर फेंकता, तो एक ठोस पाषाण-स्तम्भको बाँसके कड़ीरोंकी तरह खंड-खंडकर देता। तब मारकी सेनाने सिद्धार्थको वहाँसे भगानेकी इच्छासे पत्थरकी बड़ी-बड़ी शिलाएँ फेंकीं। वे शिलाएँ भी दस पारमिताओंका स्मरण करते ही सिद्धार्थके पास पुष्प बनकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं।

उस समय चक्रवालके किनारे खड़े देवतागण सिर उठा-उठाकर देख रहे थे। सिद्धार्थने मारसे कहा—"मार! परेशान न हो, यह आसन मेरे लिए ही है। यदि तू यह आसन चाहता है, तो कह कि तूने दान दिया है, इसका कौन साक्षी है?"

मारने अपनी सेनाकी ओर हाथ पसारकर कहा—"यह इतने जने साक्षी हैं!"

उस समय 'मैं साक्षी हूँ', 'मैं साक्षी हूँ' कहकर मार-सेनाने जो नाद किया, वह पृथ्वीके फटनेके शब्दके समान था।

तब मारने सिद्धार्थसे पूछा—"सिद्धार्थ तूने दान दिया है, इसका कौन साक्षी है ?"

"मार ! वेस्सन्तर-जन्म*के समय मेरे द्वारा सात सप्ताह, दिए गए दानकी यह अचेतन, ठोस महापृथ्वी साक्षिणी है।"

तब चीवरके भीतरसे दाहिना हाथ निकाल महापृथ्वी की ओर हाथ लटकाकर कहा—"वेस्सन्तर-जन्मके समय मेरे द्वारा सात सप्ताह दिए गए दानकी तू साक्षिणी है या नहीं ?"

महापृथ्वीने लाख वाणीसे मारकी सेनाको तितर-बितर करते हुए महानाद किया—"मैं तेरी तबकी साक्षिणी हूँ।"

यह सुन मारके गिरिमेखल हाथीने अपने दोनों घुटने टेक दिए। मार-सेना दिशाओं-विदिशाओंकी ओर भागने लगी। एक ही मार्गसे दो जनोंका जाना नहीं हुआ। वे सिरके आभरण तथा वस्त्रोंको छोड़ जिधर मुँह समाया, उधर ही भाग निकले।

* वेस्सन्तर जातक, भाग ६

तब मारने कहा—"सिद्धार्थ ! तूने महादान दिया, तूने उत्तम दान दिया। मैं हारा।"

देवताओंने भागती हुई मार-सेनाको देख सोचा—मारकी पराजय हुई। सिद्धार्थ विजयी हुआ। आओ, हम चलकर विजयीकी पूजा करें। तब नागों, गरुड़ों, देवताओं और ब्रह्माओंने हाथमें गन्धमाला ले बोधि-आसन के पास जा प्रमुदित हो सिद्धार्थकी विजय उद्घोषित की।

और तब सिद्धार्थने बुद्धत्व लाभकर, ज्ञानका साक्षातकर, सभी बुद्धों द्वारा कहे गए प्रीतिवाक्यको कहा—

"दुःखदाई जन्म बार-बार लेना पड़ा। मैं संसारमें शरीर-रूपी गृहको बनानेवाले गृहकारकको पानेकी खोजमें निष्फल भटकता रहा। लेकिन गृहकारक ! अब मैंने तुझे देख लिया है। अब तू फिर गृह-निर्माण नहीं कर सकेगा। तेरी सब कड़ियाँ टूट गईं। गृह-शिखर बिखर गया। चित्त निर्वाण-प्राप्त हो गया; तृष्णाका क्षय मैंने देख लिया।

तथागत

श्री मैथिलीशरण गुप्त

रसना-लोलुप मनुज हिंस्र पशु हो उठा
यज्ञ-पुरुष भी उसे देखकर रो उठा !
वे ही आँसू, देव, तुम्हारे रूपमें,
उद्धारक बन मिले हमें भव-कूपमें !
राजभवन धन-धान्य और जनसे भरा,
राहुल-सा शिशु पुत्र, कलत्र यशोधरा,
हाय ! हमारे हेतु क्या न तुमने तजा;
किसमें ऐसा विश्व-वेदना-स्वर बजा ?
देख सके तुम हमें न आधिव्याधिमें,
यह कहकर रत हुए अखण्ड समाधिमें—
'सूख जाय यह काय, न आसनसे हिले,
मुझे न जबतक सर्व-मुक्ति-दर्शन मिले।'
आकर दिए अनेक लोभ-भय 'मार' ने,
छू पाया क्या तुम्हें परन्तु विकारने ?
कर-मरपर पुरुषार्थ तुम्हारा तुल गया,
तभी उठे तुम, सब रहस्य जब खुल गया।
तनुपर केवल एक गेरुआ वस्त्र था,
एकाकी थे, पास न कोई शस्त्र था।
तदपि भिक्षु भगवान, जिधर तुम चल पड़े,
आ-आकर नत हुए नरेन्द्र बड़े-बड़े।
हम क्या करते नहीं आप जिसके लिए,
गिनते हैं कब पुण्य-पाप जिसके लिए,
तुमने पाकर त्याग किया उस भोगका,
दिया नया उपचार पुराने रोगका।

थल-पर-सा चल नदी पार कोई गया,
लोग चमत्कृत हुए, तुम्हें आई दया,
'धेलेका वह चमत्कार' तुमको जँचा
उतराईका यही नाव-भाड़ा बचा !
घाव लगा था तुम्हें, लगी सबको व्यथा,
पर कुछ भी वैकल्य-भाव तुममें न था।
'व्यथा व्यथा है', सुगत, सहज तुमने कहा
'मानूँ अथवा उसे न, यह मुझपर रहा !'
ईश्वर हो वा न हो, किन्तु तुम हो, सुनो,
पथ अनेक हैं यहाँ, जिसे चाहो चुनो,
कर्मोंकी गति सदा सभीके साथ है,
भूत गया, भवितव्य तुम्हारे हाथ है।'
नहीं वैरमें, वैर-शान्ति है प्रेममें,
क्षेम तुम्हारा यहाँ सभीके क्षेममें।
मैत्री-करुणा बिना कहाँ कल्याण है,
जलते हो तुम आप, प्राप्य निर्वाण है।
'बढ़ो भिक्षुओ, भिन्न पथोंसे लोकमें
तड़प रहा जो पड़ा दुःखमें, शोकमें।
तुम सबका हित और सौख्य साधन करो,
एक ओरको गमन एक ही जन करो।'
भय-संशयमें पड़ा लोक लय पा रहा,
अवश मृत्युके घाट उतरता जा रहा।
देव, दयाकर मार्ग दिखाओ फिर उसे,
पंचशीलकी सीख सिखाओ फिर उसे।

महात्मा बुद्ध

श्री रमेश चौधरी, एम० ए०, एल्-एल्० बी०

महात्मा गौतमबुद्धके अवतरणसे पूर्व भारतवर्षमें आर्यो का ब्राह्मणवाद एवं उसकी पूर्तिके हेतु कर्मकाण्डका वितण्डा-वाद समाजके प्रत्येक वर्गमें अपना सम्पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर चुका था। वैदिक मंत्र-दृष्टाओंने मंत्रोंकी शक्तिको इस प्रकार आरोपित किया था कि उस क्षेत्रमें तर्क अथवा बुद्धिका आलम्बन ग्रहण करनेवाले, उन मंत्रोंके प्रतापसे चमत्कारी रूपमें स्वयमेव पतित हो जायँगे। इतना ही नहीं, अपितु आर्य-मस्तिष्क ब्राह्मण-वर्गने अपने भौतिक स्वार्थों एवं अन्तोंके हेतु अपने प्रकृतिदत्त देवों, जिनका भजन वे प्राकृतिक द्वंद्वोंके शमनार्थ भय तथा स्वयंकी सीमाओं से आक्रांत होकर करते थे, के द्वारा ही जाति-भेदकी संकुचित सीमाओंमें मानवको विभाजित करा दिया। परिणाम स्वाभाविक था। मानव-मानवके सम्मुख निम्न तथा हीन जन्तु बनकर रह गया।

समाजकी गतिके हेतु शाश्वत् नहीं, अपितु सदैव परि-वर्तनशील नियमों तथा विधानोंकी आवश्यकता होती है। अन्ततः मानव एक जीवनधारी और बुद्धिवादी प्राणी है। अतएव किसी भी प्रकारकी अभिन्न श्रृंखलाएँ उसको सदैव-सर्वदाको मान्य अथवा स्वीकार्य नहीं हो सकतीं। इसीके साथ मानवकी सबसे जटिल तथा भयजनक त्रुटि मृत्यु-भयका लाभ उठाकर आर्य-ऋषियोंने आत्माकी अमरता एवं शाश्वतताका नारा लगाया। इसीकी आड़में आवागमन तथा पाप-पुण्यकी मीमांसा अपने चरम लक्ष्य तक पहुँचकर जाति-भेद तथा वर्ग-श्रेष्ठताको पोषित करती रही। मानवके साहस एवं विवेकने इसके सम्मुख अपनी पराजय स्वीकार कर ली। यद्यपि महात्मा सांख्यने अपने दर्शन द्वारा इन विश्वासोंकी भीतपर करारी चोट की, किन्तु वे सफल न हो सके। शायद इसलिए कि मानवको उसकी प्राकृतिक तथा भौतिक सीमाएँ बाधित किए हुए थीं। काल-क्रममें उन्हें 'भगवान्'की उपाधिसे सुशोभित करके उनके सिद्धान्तोंको ही एक प्रकारसे झुलसा दिया गया।

सुन्दर नामों, उपनामों अथवा विशेषणोंकी आड़में मानव-मूल्योंके स्थानपर एक ऐसी सामाजिक विषमता एवं जीवनसे पलायनवादिताके सिद्धान्तोंका निरूपण गहन तथा पूर्णकी आड़में मानव समुदायपर थोपा जा रहा था कि जिसकी दलदलसे निकल पाना जन-साधारणको असम्भव-सा बन गया है। यद्यपि उस समयके बुद्धिवादी तथा सत्तावादी वर्गकी ओरसे निरन्तर सन्तोष, सत्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य इत्यादिको ही जीवनकी परम निधि एवं अन्त घोषित करनेके हेतु हर प्रकारके प्रयत्न किए जा रहे थे, किन्तु फिर भी स्वयं प्रणेता ही इस धार्मिक नैतिकताकी बुनियादसे संतुष्ट नहीं थे। उन्हें स्वयं वनोंमें भी भौतिक सुखोंकी कामना बनी रहती थी। इसीलिए उन त्यागी विचारकोंने सत्ताका आलम्बन नहीं छोड़ा था। शायद इसीलिए बिना श्रम किए दानकी महत्ताको इतना अधिक मान हमारे दर्शनमें मिल सका था। जीवनकी मान्यताओं एवं सत्यताओंको तिलांजलि देकर हम उससे नेत्र भले ही मूंद लें, किन्तु उससे हमें छुटकारा कभी नहीं मिल सकता। कैसे यह बात बुद्धिमें समा सकती है कि जीवन तथा मानव-मूल्योंसे पलायन त्याग एवं आत्मिक उत्थानका रूपक है।

सभी धार्मिक विश्वासों एवं मान्यताओं और विशेषकर भारतीय ब्राह्मण-धर्मकी सबसे महान् त्रुटि आज तकके मानव-इतिहासमें यही रही है कि उसने अपनी अंधतामें जीवनके हर क्षेत्रको अपनी अस्वाभाविक सीमाओंमें बाँधने का प्रयत्न किया है। धर्म-विशेषकी मान्यताओंको अस्वीकार करनेवाला व्यक्ति मानव भी न रहे अथवा उसकी समान आवश्यकताएँ भी भिन्न हो जाती हों, यह कैसे सम्भव है। धर्मकी आड़में इस प्रकारके प्रयासोंने, मानवको अत्यधिक व्यक्तिवाद एवं संकुचित मनोवृत्तिकी ओर उन्मुख किया है। इसी भावनाके कारण, जिसको व्यक्ति-विशेष का कर्म कहकर नहीं टाला जा सकता, धर्म-युद्धोंकी श्रृंखलाके रूपमें हमारे इतिहासमें मिलती है; जहाँ हमने निर्द्वन्द्व भावसे धार्मिक साधनाके नामपर पवित्र मानव-रक्तसे होली खेली है।

महात्मा बुद्धके अवतरणसे पूर्व वैदिक वैधानिकोंकी भी यही अवस्था थी। यज्ञोंका आडम्बर, निर्दोष एवं मूक पशुओंकी बलि इत्यादि इसी भावनाके द्योतक हैं। यदि वास्तवमें इन यज्ञोंसे सन्तोष तथा आत्मिक शान्तिका नियमन होता रहा हो, तब उनमें इतनी भव्य कृत्रिमता एवं भौतिक पदार्थोंकी आवश्यकता कदापि उत्पन्न न हुई होती। अब तक ब्राह्मण-धर्म केवल मानव-मनके सहज विश्वासोंकी आधारशिलापर पनप रहा था, जहाँ बुद्धि तथा तर्कको कोई स्थान नहीं था। ऐसे समयमें महात्मा बुद्ध एक सामाजिक क्रांतिकारीके रूपमें ५४४ ई० पूर्व उत्पन्न

हुए। यद्यपि वे भी एक राजपुत्र थे, अतएव उन्हें भी वैदिक संस्कार ही विरासतमें मिले थे। संसारकी नश्वरता एवं नैराश्यसे भाराक्रांत होकर वे एक दिन अपने परिवार तथा स्त्री-पुत्रसे वैरागी होकर बिना कहे ही वनवासी हो गए। संस्कारोंके अन्तर्गत उनका यह कार्य चाहे स्तुत्य कहा जा सकता हो, किन्तु यह उनकी निपट कमज़ोरी थी कि वे अपने निर्णयको किसीपर प्रकट नहीं कर सके।

वन-गमनके पश्चात् उन्होंने भी परम्परानुसार शरीर को क्लेश देना आरम्भ कर दिया! पोषणकी कमीके कारण उनका समस्त शरीर जर्जरित हो गया, यहाँ तक कि उनमें उठने-बैठनेकी शक्ति भी न रही। सम्भव था कि वे क्षुधा-वह्निपर ही सदाको आहुत हो जाते कि एक नारीने उन्हें एक खीरसे भरा थाल लाकर खानेको दिया। अन्नको देखकर उनके पथराए नेत्रोंमें चमक आ गई। उन्होंने खाया और उल्टी की, किन्तु भोजनसे स्वयंको भिन्न न रख सके। इस क्रियाके पश्चात् जीवनके सत्य स्वयं उनके सम्मुख प्रतिभासित हो उठे और वे शाक्य मुनिसे गौतम बुद्ध बन गए।

महात्मा बुद्धने जीवनके सत्यके साथ आँखमिचौनी खेलनेका प्रयत्न नहीं किया और न उसकी ओरसे बधिर ही बन जानेका। वास्तवमें व्यक्ति अपनी मान्यताओं एवं सीमाओंकी तंग भित्तियोंमें स्वयंको भूल जाता है और उन्हींसे चिपके रहनेमें जीवनकी महानतम श्रेष्ठता एवं इति समझ लेता है। वैदिक ऋषियोंकी भाँति उन्होंने शाश्वतता तथा पूर्णताका ढोंग खड़ा करके जन्म-जन्मान्तरों के लिए ऐश्वर्य-साधनाको अप्रत्यक्ष रूपमें योगदान नहीं दिया। उन्होंने जीवनको सत्य माना, परिवर्त्तनशील कहा और मृत्यु-भयकी आड़ लेकर आवागमनके काल्पनिक सिद्धान्त का सृजना नहीं किया, अपितु उसे प्रकृति-जन्य स्वाभाविकता कहा। वे वास्तवमें दुखी मानवताको त्राण देनेके हेतु वनमें गए थे। यद्यपि वे अपनी इस प्रेरणामें तो सफल नहीं हो सके, किन्तु उन्होंने किसी सीमा तक मानवीय व्यवहारों तथा मूल्योंमें नवीन चेतना भरकर मानवको समान रूपसे उसका भागीदार बननेकी प्रेरणा देकर सामाजिक मूल्योंमें व्यक्तिवादी व्यवस्थाके विपरीत नवीनक्रमका सूत्रपात अवश्य किया।

ईसासे लगभग १०००-१२०० वर्ष-पूर्वसे ही महाभारत कालमें, संघ-शासन अथवा समूह-शासनके स्थानपर साम्राज्यवादी एवं एकतंत्रवादका विकास होना आरम्भ हो चुका था। साथ ही आदि-आर्य जातिका सामान्य संगठन विघटित होने लगा था। अब जाति-नेता योग्यतानुसार नहीं, अपितु जन्मसे होने लगा था। यदि कुमारोंमें से कोई असंतुष्ट रहे, तब वह विद्रोह भी कर सकता था। महाभारतका युद्ध इसीका प्रमाण है। महाभारत-काल एवं गीताके दर्शनका समय प्रमुखतया आर्य तथा द्रविड़ जातियों के सम्मिश्रण तथा आर्य-जातिकी आदि-परम्पराओंसे नवीन विश्वासों एवं मान्यताओंका संक्रान्ति काल था। आर्य-जातियाँ घुमक्कड़ जीवनको छोड़कर शनैः-शनैः स्थान-विशेषोंपर जमती जा रही थीं। एक ओर काल्पनिक तथा प्राकृतिक प्रतीक साकार रूपमें अपना स्थान बना रहे थे, तब दूसरी ओर मानव-मनकी सहज रागात्मिका अभिव्यक्ति उन आधारोंमें ही सौन्दर्य तथा वैभवकी प्रतिष्ठापना करके व्यक्तिकी महत्त्वाकांक्षाओंकी पूर्त्ति लक्षित करनेका प्रयत्न कर रही थी।

अब तक पशुओंका पालन विशेषकर भोजन जुटाने तथा बोझा ढोनेके ही हेतु होता था। किन्तु द्रविड़ जातिके संसर्गने आर्योंको उनके अन्य उपयोग भी सिखाए। इसीलिए कृष्णने, जो कि वर्णसंकर जातिके थे, गौपालनका नारा लगाया, जिससे वे जन-समाजमें स्तुत्य बन गए। वे एक अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी राजनीतिज्ञ थे। जरासंधसे पराजित होनेके बाद मथुरासे भागकर उन्हें अपने विचारों के प्रचारके हेतु शक्तिकी आवश्यकता अनुभव हुई और वह उन्हें मिली पदच्युत पाण्डवोंमें।

आर्योंमें भी कितनी ही जनजातियाँ जहाँ-तहाँ बस गईं थीं एवं वे अपनी परंपराओंके अनुसार व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओंकी पूर्त्तिके हेतु परस्पर संघर्षरत रहा करती थीं। कृष्णने भी एक विशाल साम्राज्य-स्थापना तथा अपनी आकांक्षाओंकी पूर्त्तिके हेतु, अर्जुनको स्वधर्मकी शिक्षा देकर, धर्म तथा न्यायके नामपर परस्पर अपने भाइयोंके साथ ही रक्तिम संघर्षमें गूँथा दिया। कुरुक्षेत्रके समरांगणमें कौरवों तथा पाण्डवोंकी सेनाएँ आमने-सामने खड़ी थीं। पाण्डवोंके प्रधान सेनाध्यक्ष अर्जुनको अपने स्नेहियोंके प्रति स्नेहकी कारुणिक भावनाने आच्छादित कर लिया। कृष्णने अर्जुनकी इस भावनाको विजित करनेके हेतु गीता का उपदेश दिया। ऐतिहासिकोंकी इस समस्यापर दृष्टिपात न करते हुए कि भागवत्‌गीता कुरुक्षेत्रमें कही गई अथवा वह भी महाभारतके प्रणेता वेदव्यासका ही दर्शन है, हमें केवल इतना ही देखना है कि उस समयकी परिस्थियोंके अनुरूप आर्योंके प्राकृतिक देवता एवं काल्पनिक ब्रह्माका चमत्कार, द्राविड़ोंके सन्सर्गसे कम होने लगा था तथा एकलिंग-महाराजकी साकार उपासनाका साधारण जनतापर प्रभाव पड़ने लगा था। कृष्णकी माँ देवकी स्वयं द्राविड़ अथवा जिन्हें श्याम होनेके नाते आर्य राक्षस

कहते थे, थीं। अतएव कृष्ण आर्योंकी सहायतासे ही नवधर्म अथवा यूँ कहें कि सगुण अथवा व्यक्तिकी उपासना को प्रोत्साहन देना चाहते थे। गीतामें कृष्णके विराट् रूपका विशद् वर्णन इसी भावनाका द्योतक है।

गीतामें कृष्णने स्वधर्म, निष्काम कर्म एवं कर्मको प्रधानता दी है। साथ ही परिवर्तनोंको भी स्वाभाविक कहा है। किन्तु उन्होंने परिवर्त्तनका प्रारूप शाश्वत तथा पूर्णके साथ निभाया है। उन्होंने गीताके रूपमें एक ऐसे दर्शनका सृजन किया, जो जीवन तथा प्रकृतिसे भिन्न एक सम्पूर्ण इकाई है, जो कि सबमें होता हुआ भी सबसे पृथक् एवं पूर्ण एकाकी है। इस प्रकारकी कल्पना जीवनके प्रति व्यक्तिको जागरूक रहनेकी प्रेरणा नहीं देती, अपितु उसे पलायनवादके दलदलमें फँसा देती है। निष्काम-कर्मकी प्रेरणामें भी यही भावना निहित है। जब जीवनमें कोई आकर्षण ही न हो, तब कर्मोंके विपाकोंसे ही क्या लाभ है। इस सिद्धान्तसे आत्म-महत्तासे अनुप्राणित होकर कोई भी देवता भले ही बन जाय, किन्तु निपट मनुज नहीं रह सकता। स्वधर्मका अर्थ भी अखण्डताको आरोपित करनेके विरुद्ध कुछ नहीं है। यह कहना कि अमुक व्यक्तिका यही स्वधर्म है, अत्यन्त कठिन है। फिर क्षत्रियका केवल युद्ध ही स्वधर्म है, कुछ समझमें नहीं आता। युद्धने धर्मके उत्थानमें कौन-सा योग दिया, इसपर गीता अथवा महाभारत पूर्णतया मौन हैं। हाँ, इतना ठीक है कि कृष्णकी महत्त्वाकांक्षाएँ एवं उनकी व्यक्तिगत मान्यताओंको इस युद्धसे अवश्य बल मिला। भौतिक स्वार्थोंकी पूर्त्तिके हेतु आत्मवाद, आध्यात्मिक अथवा अमानवीय शक्तियोंके आलम्बन द्वारा देवत्वकी सृष्टि पागलोंके आत्मसंतोषसे ऊपर कुछ नहीं है।

महात्मा बुद्धने एक सामाजिक क्रांतिकारीके रूपमें अपनेसे पूर्व आर्योंके इन काल्पनिक विश्वासोंकी अंध-भित्तियों को बुद्धि तथा तर्ककी कसौटीपर रखकर उड़ा दिया एवं नव-चिन्तनका द्वार उन्मुख कर दिया। उन्होंने अपने दर्शनमें जीवनको क्षण-क्षण परिवर्त्तनशील कहा है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार नदीका जल समान स्थलपर वही नहीं है, जो एक क्षण पूर्व था, उसी प्रकार जीवन भी एक प्रवाहके समान है, जो निरन्तर भिन्न-भिन्न गतियोंसे बहता जाता है। पुरातन निर्वाणोन्मुख है एवं नवीन सृजनकी ओर, जिनका परस्पर कोई मेल नहीं, सम्मिलन नहीं। इसीलिए वे आत्माको शाश्वत् एवं अविनाशी नहीं मान सके। आत्मा की अखण्डताका विश्वास जीवनके प्रति निर्मम मोहसे अधिक अन्य कुछ नहीं है।

आत्माके प्रति इस प्रकारकी आस्था ही आर्य-दर्शनकी सर्वप्रमुख त्रुटि है। यही भावना व्यक्तिको समाजसे भिन्न करके अत्यधिक व्यक्तिवादी तथा आत्मवादी बना देती है, जहाँ वह स्वयं अथवा पारलौकिक सुखोंके बाहर कुछ भी नहीं सोच पाता। परिणाम केवल एक ही निकला है कि न तो हम कभी मानवको मानव ही समझ सके और न आगेको ही अपनी सन्ततियोंको कुछ छोड़ सके। हर स्थलपर पाप-पुण्यकी भावनाको आश्रय देकर तथा जीवनके साथ सम्पूर्ण रूपसे संयोजित मानकर कैसे कोई व्यक्ति गतिवान रह सकता है?

महात्मा बुद्धने ठीक ही कहा था कि कोई भी वस्तु सदैवको हर परिस्थितिमें समान अथवा सत्य होगी—यह कहना एकदम निरर्थक एवं स्वयंमें एक महान् असत्य है। इसको विस्तृत रूपसे समझाते हुए उन्होंने अपने शिष्योंसे कितनी ही बार कहा था कि जिस प्रकार एक नाव केवल नदी पार करनेके निमित्त है, उसका बोझा मस्तकपर ढोनेको नहीं है, उसी प्रकार इस परिवर्त्तित संसारमें हर एक वस्तु अथवा मान्यता विशेष मार्ग तय करनेको है, उसका स्वयंमें कोई भी सम्पूर्ण मूल्य नहीं है।

महात्मा बुद्धने ब्रह्मवादकी कल्पनापर भी कुठाराघात किया। उन्होंने मानव-धर्मको ही धर्म कहा और ईश्वर के नामपर प्रचलित शोषण, आडम्बर तथा हिंसाका वर्जन किया। उनका धर्म पारस्परिक साहचर्य एवं सन्तोषपर निर्भर करता था। मानव सदैव दुःखोंमें पलता है, किन्तु उनमें ही सन्तोष मान तथा स्वाभाविक स्वीकार कर उन्हें कम किया जा सकता है। उनके अनुसार भिन्नतामें दुःख एवं सामाजिक अन्याय तथा समन्वयतामें ही मानवीय सुख निहित है।

उनके उद्भवकालके समय आर्यावर्त्तमें एक प्रकारसे आर्यों एवं द्रविड़ोंका संघर्ष समाप्त हो चुका था। दोनों संस्कृतियाँ परस्पर संयोजित होकर एकाकार हो चुकी थीं। राजनैतिक मंचपर संघ-शासनके स्थानपर राजतंत्रोंका विकास हो रहा था, जिसमें मगध सर्व-अग्रणी था। समाजमें अन्त्यजोंके रूपमें दासोंकी निरन्तर अभिवृद्धि होती जा रही थी। वर्ण-संघर्ष अपने चरम उत्कर्षपर था। यहाँ तक कि ब्राह्मणों (मस्तिष्क) तथा क्षत्रियों (सत्ता) में भी संघर्ष विद्यमान थे। कभी भगवान्का क्षत्रिय रूप में, कभी ब्राह्मण रूपमें अवतार इसी पारस्परिक द्वंद्वका द्योतक है। उस कालमें कर्मकाण्डका विकास अत्यन्त द्रुतगतिसे हो रहा था। साथ ही नारीको भी आर्य-शास्त्रों द्वारा सम्पत्तिके रूपमें समाजमें प्रतिष्ठापित किया जा रहा था। उनकी स्वतंत्रता विशाल अट्टालिकाओं

एवं पुरुषकी इच्छाओंमें केन्द्रित हो चुकी थी। यज्ञोंकी पूर्त्तिके हेतु युद्धोंका आयोजन होता था एवं निरीह पशुओंको उनकी वेदीपर निर्ममतापूर्वक बलि कर दिया जाता था। संसार-त्याग तथा वैराग्यकी आड़में शिष्योंकी संख्या बढ़ाकर राजाश्रय पानेको प्रपंच रचे जाते थे। सामूहिक नेतृत्व के स्थानपर व्यक्ति-पूजाका बोलबाला था। शास्त्रोंका निर्माण राजाकी अनधिकारपूर्ण चेष्टाओं तथा इच्छाओंकी पूर्त्तिके हेतु हो रहा था। इन विषम परिस्थितियोंमें महात्मा बुद्धने बुद्धिका आश्रय लेकर एक क्रांतिकारीकी भाँति मानव-धर्मका नारा लगाया। जहाँ समस्त मानव समान थे और सबकी आर्थिक आवश्यकताएँ भी समान थीं। ब्राह्मण-ऋषियोंकी भाँति केवल दान ही स्वर्गका द्वार उन्मुख करनेवाला नहीं था, अपितु आवश्यकतासे अधिक भोजन भी ग्रहण करना भिक्षुओंको वर्जित था। उनके धर्ममें मानव-मात्रको शरण थी, वह व्यक्ति विशेषोंकी बपौती नहीं थी। नारी-पुरुष समान रूपसे भिक्षु बन सकते थे तथा धर्मकी शरणमें जा सकते थे।

महात्मा बुद्धने तपस्वीका जीवन प्राणि-मात्रको दुःखोंसे निर्वाण दिलानेके हेतु ग्रहण किया था। फिर उनके सम्प्रदायमें विभेद कहाँ होता? वास्तवमें इस द्वंद्वात्मक विश्वमें अधिकतर दुःख तथा क्लेश स्वयं मानवजन्य है। यदि मानव में अन्योंके अधिकारोंके अपहरणकी चेष्टा न हो, तब उसके अधिकांश दुःखोंका शमन हो जाय। प्राकृतिक दुःखोंका प्रतिशोध तो मानव अपने अकथ प्रयत्नोंसे कर सकता है और करता भी आ रहा है, किन्तु स्वयंसे उत्पन्न क्लेशोंका त्याग बिना सद्बुद्धि तथा सहृदयताके असम्भव है। इसीलिए महात्मा बुद्धने अहिंसा तथा प्रेमपर ही मानवके समस्त क्रिया-कलापोंकी आधारशिला स्थापित करनेका प्रयत्न किया था। हिंसा तर्ककी नहीं, अपितु सत्ताकी द्योतक है, जो कि किसीपर लादी जाती है; उसे कोई सहर्ष अंगीकार नहीं करता। जबकि अहिंसाके द्वारा हम मानवको हृदयसे किसी तथ्यको समझनेकी प्रेरणा देते हैं। वैदिक ऋषियोंका कर्म-सिद्धांत, आवागमन तथा स्वर्ग-नरकका रूपक केवल भय तथा दासत्व का सृजन करनेके विपरीत अन्य कुछ नहीं है, ताकि मनुष्य-समाज भयभीत होकर जैसा वे चाहते हैं, स्वीकार कर लें। यह कौन-सा महान् सिद्धान्त है कि हम स्वयंको आरम्भ हीसे कलुषित अथवा पापी मानकर भगवान्का नाम ले-लेकर पुण्य संचय करते रहें। या उसको स्मरण न करके हम कौन-सा पाप संचय कर रहे हैं? हम मानव हैं और मानव ही बनकर यदि हम रहें, तब कौन महान् हानि की आशंका हो सकती है? मानव-मनमें भयका सृजन करके उन ऋषियोंने इतनी भयानक हिंसा जनताके साथ की है, जिसका अंत आजकी वैज्ञानिक शताब्दि तकमें उपलब्ध नहीं हो सका है। महात्मा बुद्धने इसीलिए मुक्तिके स्थानपर निर्वाण शब्दका प्रयोग किया है, जिसका अर्थ होता है बुझ जाना, समाप्त हो जाना। इसके द्वारा उन्होंने मानव-मनमें पैठी कायरताका उपचार करनेकी चेष्टा की है।

कुछ इतिहासज्ञ तथा दर्शनकार महात्मा बुद्धके दर्शनको दुःखवादी दर्शन कहते हैं; क्योंकि वे मानव दुःखोंको देखकर ही जीवनसे निराश होकर उसके त्राणके हेतु संन्यासी बने थे। किन्तु वे व्यावहारिक रूपमें मृत्युको विजित नहीं कर सके। उनकी इसी आधारभूमिके कारण उनके दर्शन में करुणाका चिरन्तन आभास लक्षित रहता है। यह ठीक है कि वे मृत्युको तथा प्राकृतिक अवश्यंभाविताओंको विजित नहीं कर सके, इसलिए उन्होंने संसारको तथा जीवनको करुणाका अभिन्न अंग तथा प्रतिरूप माना है। किन्तु इसपर भी वे जीवनकी कल्पनाकी डोरसे नहीं बाँध सके, जैसा कि आर्य-ऋषियोंने किया था।

महात्मा बुद्ध गणतंत्रके समर्थक थे। अतएव उन्होंने बौद्ध भिक्षुओंके लिए भी संघ-रूपमें ही रहनेका उपदेश किया। बौद्ध-संघारामोंमें हर एक भिक्षु समान था तथा हर भिक्षुको समान रूपसे केवल आठ वस्तुओंको ही अपना कह सकनेका अधिकार होता था जिनमेंसे एक कमण्डल भी होता था। बौद्ध मतको यदि हम मानवीय तथा नैतिक नियमोंके संस्थापक धर्मके स्थानपर कहें, तब अधिक उपयुक्त होगा। वे भय अथवा शक्तिसे थोपी गई नैतिकता, जिसका अर्थ शोषण होता है, के समर्थक नहीं थे; अपितु उनका कहना था कि मानवको दुःखोंसे बचनेके लिए सन्तोष तथा प्रत्येक प्राणीमें समभावका दर्शन होना आवश्यक है।

बौद्ध मत महात्मा बुद्धके ही समयमें बुद्धिवादी मीमांसाकी एक क्रान्तिकारी प्रक्रियाके रूपमें समस्त आर्यावर्तमें सर्वत्र महत्त्व पाने लगा था, किन्तु उसे वास्तवमें सम्राट् अशोकके शासन-कालमें राज्यका आलम्बन पाकर अत्यन्त बल मिला। अशोकने स्थान-स्थानपर चैत्यों, स्तूपों तथा बौद्ध-विहारोंकी स्थापना कराई। उसने देश-देशान्तरोंमें बौद्ध मतके प्रचारार्थ कितने ही भिक्षु-दलोंको भेजा। इतना ही नहीं, उसने अपने भाई-बहनको भी भिक्षुओंके रूपमें विदेश भेजनेमें आनाकानी नहीं की। यद्यपि उसने पशु-वध न करनेकी आज्ञा प्रसारित करा दी थी, किन्तु उसने धर्मान्धताका सहारा कभी नहीं पकड़ा। यह उदारता ही बौद्ध-धर्मकी महान्-तम निधि थी।

अशोकके बाद मौर्यवंशमें कोई अधिक निष्ठावान् तथा योग्य शासक नहीं हुआ। एक प्रकारसे वे लोग अपने पूर्वजोंकी संगृहीत पूँजीका ही सुख-भोग करते आ रहे थे। परिणाम यह हुआ कि स्थान-स्थानपर करद-नृपोंने विद्रोह करके स्वतंत्रताका नाद गुँजा दिया था। इतना ही नहीं, उत्तर-पश्चिमी सीमान्तपर भी विदेशी आक्रमण होने लगे थे। अन्ततः मगधके प्रधान सेनापति ब्राह्मणकुलोत्पन्न पुष्यमित्रके नेतृत्वमें एक बार फिर ब्राह्मणवादका पुनरुत्थान होने लगा तथा अंतिम मौर्य सम्राटके साथ बौद्ध धर्म भी ह्रासकी ओर उन्मुख हो चला। इस प्रकारके विग्रहका प्रमुख कारण बौद्ध धर्मकी अहिंसा नहीं, अपितु ब्राह्मण-वर्गकी प्रधानता तथा श्रेष्ठतापर बौद्ध-दर्शनका कुठाराघात था।

बौद्ध मतके अपने ही आदि-देशसे समाप्त हो जानेके कारणोंपर भी एक दृष्टि इस स्थलपर डाल लेना अनुपयुक्त नहीं होगा। बौद्ध मतके ह्रासके प्रमुख कारणोंमें एक कारण यह था कि राष्ट्रका बुद्धिवादी विवेकशील वर्ग भिक्षु-सम्प्रदायमें निरन्तर सम्मिलित होता जा रहा था। जिससे समाजके साधारण तत्व अपनी उसी स्थिति तक सीमित होकर रह गए थे। फिर बौद्ध-भिक्षुओंका कर्मक्षेत्र अत्यन्त सीमित हो गया था। उनका काम केवल बौद्ध आदर्शों का प्रचार-मात्र था, जीवनकी वास्तविकताओंसे नहीं। भिक्षु बनकर व्यक्तिकी आवश्यकताओंको सीमित कर लेने मात्रसे दुःखोंका विनाश नहीं हो सकता। यही दुःखवाद कालान्तर में ब्राह्मणवादके आडम्बरपूर्ण कर्मकाण्डसे भी अधिक निकृष्ट होकर रह गया था। किसी भी धर्ममें शाश्वतताका निरूपण उसकी जड़ें खोखली कर देता है। यही बौद्ध धर्म में भी समयके साथ-साथ हुआ। तथागतके अनुगामियोंने उनमें पूर्णता आरोपित करके आर्योंकी मान्यताओंको ही बढ़ावा दिया और अपने नेताके सिद्धान्तोंको भुला दिया, जिन्होंने परिवर्त्तनको सर्वोपरि माना था।

तथागत्ने स्वयं भी आर्य-परम्पराओंके अनुरूप अपरिहार्य ब्रह्मचर्य इत्यादिपर अत्यधिक बल दिया था। यद्यपि उन्होंने नारी-जातिको भी उप-सम्पदा स्वीकार करनेकी आज्ञा दे रखी थी, किन्तु नारी-पुरुषके प्राकृतिक संबंधोंको वासनाका प्रतिरूप तथा उत्थानका बाधक ही माना था। परिणाम स्वाभाविक था। कालान्तरमें विहार भोग-विलासके केन्द्र बन गए। इससे जन-साधारणपर अत्यन्त विपरीत प्रभाव हुआ। वास्तवमें जीवनकी उस स्वाभाविकतासे मुँह नहीं मोड़ा जा सकता। बरजोरी अनावश्यक रूपमें इंद्रियोंके दमनमें कौन महानता है? यही अवस्था आर्य-ऋषियोंकी थी कि वैसे तो वनगामी हो चुके थे, किन्तु किसी नारीके जीवनमें प्रवेश करते ही फिसल गए! यह संबंध किस प्रकार अस्वाभाविक अथवा सब पापोंका मूल उनके सम्मुख बन सका था, कुछ समझमें नहीं आता। यदि इसको पापकी संज्ञा न दी गई होती, तो क्या वह स्थिति अधिक स्वाभाविक तथा स्थायी न होती। जीवनको जीवनके रूपमें अस्वीकार करके उसमें वाह्य मान्यताओं एवं प्रेरणाओं की अभिव्यंजना कौनसे धर्मका अन्त हो सकती है, बुद्धि ग्रहण नहीं कर पाती।

धीरे-धीरे बौद्ध विहार भी आर्य-ऋषियोंके आश्रमोंकी भाँति आमोद-प्रमोदके केन्द्र-स्थानोंमें परिवर्त्तित हो गए थे। दानियों तथा सम्राटोंकी लक्ष्मीने उन्हें भी तिरोहित कर लिया था। श्रम करनेवालोंको नैतिकता तथा निषेधाज्ञाओंके अनगिनत सदुपदेश तथा वैरागियोंको सम्पूर्ण ऐश्वर्य, जनता कैसे और कब तक सहन करती?

तक्षशिलाके बौद्ध दर्शनकार नागार्जुन द्वारा बौद्ध धर्म में एक नवीन शाखा महायानका प्रवर्त्तन स्वयं बौद्ध धर्मके पतन तथा उसके सिद्धान्तोंकी अवहेलनाका कारण बना। नागार्जुनने तथागतके कितने ही जन्मोंका वर्णन किया है, जिनकी विवेचना बौद्धपिटकोंमें संगृहीत है। इस मान्यता ने तथागतके बुद्धिवादी अनात्म-दर्शनका ही दिवाला निकाल दिया। कालान्तरमें ब्राह्मणोंने उन्हें भी भगवान्की विभूतिसे सुशोभित करके स्वयंमें समाहित कर लिया। अनन्ततः बौद्ध धर्म भी ब्राह्मणवादकी एक शाखा-मात्र बनकर रह गया और अपने जन्मस्थानसे समाप्त हो गया।

जीवनके प्रति निराशा एवं कम-से-कम आवश्यकताओं को अपना भिक्षु बनकर समस्त संसार अपना जीवन-यापन नहीं कर सकता। पग-पगपर संघर्षशील इस जगत्में दुःखों के अन्त तथा मानवताके उत्थानके हेतु हमें जीवन तथा उससे संबंधित सीमाओंको तनिक उदार दृष्टिकोणसे देखना होगा। आज इस वैज्ञानिक सदीमें उनकी २५००वीं जयन्ती मनाते समय हमें उनके दर्शनमें वास्तविक तथा नवीन अध्याय जोड़ने होंगे, तभी हम उनके दर्शनका वास्तविक लाभ आजके युद्धोंसे जर्जर मानवको दे सकेंगे। दान लेने अथवा देनेकी पुरानी शोषणकी पद्धतिको छोड़कर यदि हम कर्त्तव्य-भावसे समाजको कुछ देकर अधिकार रूपमें उससे कुछ ग्रहण करना सीख सकें, तब शायद हम वास्तवमें तथागतके अहिंसा, सत्य तथा प्रेमका पाठ विश्वको भली भाँति दे सकनेमें समर्थ हो सकेंगे।

अभिसार

मूल—रवीन्द्रनाथ ठाकुर : अनु०—श्यामसुन्दर खत्री

एक बार मथुरा नगरीके
दृढ़ प्राचीर-तले थे सुप्त,
बुझे दीप खा व्यजन पवनके,
रुद्ध द्वार थे पौर-भवनके,
सघन गगन-पटमें सावनके,
नैश तारिकाएँ थीं लुप्त।
किसके नूपुर-शिंजित पदयुग
सहसा बजे वक्षसे आज!
चौंक चकित संन्यासी जागे,
स्वप्न-जाल पलकोंसे भागे,
क्षमा-मंजु नयनोंके आगे
रूढ़ दीप था रहा विराज।
नगर-नटी अभिसार हेतु थी
जाती यौवन - मद - मत्ता,
नील वर्ण था, चंचल अंचल,
मृदु-मुखरित आभरण समुज्वल,
संन्यासीपर पड़ा चरण-तल,
ठिठक पड़ी वासवदत्ता!
ले प्रदीप निरखा तब उसने
उनका गौर-वर्ण, वह कान्ति!
सौम्य सहास तरुण वय उत्तम,
करुणा-किरण-विकच दृग अनुपम;
हिमगिरि-शुभ्र-भालपर विधुसम
उद्भासित सुस्निग्ध सुशान्ति!
ललित कंठसे बाला बोली,
लज्जासे झुक पड़े नयन—
"क्षमा करो अविनय किशोर-वर,
हो यदि सदय, चलो मेरे घर;
कठिन कठोर धरा-शय्यापर
श्रेयस्कर है नहीं शयन!"
करुण वचन बोले संन्यासी—
"अयि लावण्य-मधुरिमा-पुञ्ज!
अभी नहीं आया वह अवसर,
जहाँ चली हो, जाओ सत्वर;
आऊँगा उपयुक्त समयपर
सुन्दरी स्वयं तुम्हारे कुंज!"
सहसा शान्त वदन-मण्डलपर
झलका विद्युत्-शिखा-प्रकाश,
डरकर बाला काँपी थर-थर,
बजा वायुमें शंख लयंकर,
सोपहास पवित्र अट्टहासकर
गरजा गूंज उठा आकाश।

(२)

वर्ष व्यतीत न होने पाया,
आई मधु-ऋतुकी संध्या।
बही समीरण केलि-कलाकुल,
पथ-तरुओंमें लसे मुकुल-कुल,
राजवनोंमें फूले पारुल,
बकुल और रजनीगंधा।
पवन ला रही थी सुदूरसे
मदिर-मंद्र वंशीकी तान,
थी जनहीन पुरी, सब पुरजन
गए कुसुम-उत्सवमें मधुवन,
नीरव सान्द्र-चन्द्र छविमान।
निर्जन ज्योत्स्नालोकित पथके
पथिक आज दण्डी एकान्त।
स्वर-लहरीसे भर तरु-वीथी
कोयल कूक-कूक उठती थी;
क्या अभिसार-निशा आई थी,
यह इतने दिनके उपरान्त?
गए नगरके बाहर दण्डी,
जिस थल थी प्राचीर खड़ी।
परिखा-पार आम्र-वनके घन
तममें खड़े हुए जा तत्क्षण,
अरे! कौन वह रमणी उन्मन
थी उनके पग निकट पड़ी?
दारुण-रोग-पीड़िता थी वह,
भरे फफोलोंसे थे अंग;
था मसि-सम विवर्ण तनु जर्जर,
पौर जनोंने उसको लाकर
फेंक दिया था पुरके बाहर,
तजकर उसका विषमय संग।
बैठ, झुका सिर, संन्यासीने
लिया अंकमें उसे निशंक,
शुष्क अधरमें कर जल-सिंचन
किया शीशपर मन्त्रोच्चारण,
गलितांगोंपर किया विलेपन;
स्वकरों शीतल चन्दन-पंक।
झरते फूल, कूकते कोकिल,
रजनी थी ज्योत्सनासत्ता;
"आए हो तुम कौन दयाकर?"
हुआ प्रश्न यह; मिला सदुत्तर—
"आज रात आया वह अवसर,
आया हूँ, वासवदत्ता!"

सुधारक बुद्ध

श्री सन्तराम, बी० ए०

महापुरुष बुद्धको मानव-प्रकृतिका जितना अच्छा ज्ञान था, उतना शायद ही किसी दूसरे सुधारकको रहा होगा। इसीलिए उनकी उपदेश-शैली बड़ी हृदयग्राही और प्रभावोत्पादक होती थी। उनकी वाणी इतनी सुन्दर होती थी कि उससे कटु सत्य भी मधुर मालूम होता था। महापुरुष और साधारण व्यक्तिमें एक बड़ा अन्तर यह भी होता है कि जहाँ साधारण व्यक्तिकी बातका सुननेवालेपर बहुत कम या कुछ भी प्रभाव नहीं होता, वहाँ महापुरुषके मुखसे निकली हुई वही बात गहरा प्रभाव डालती है।
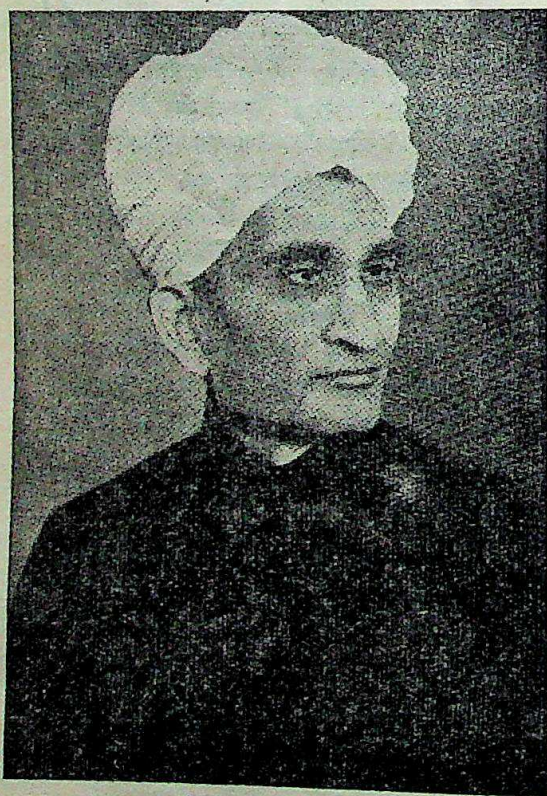
लेखक

महापुरुष किसीसे वाद-विवाद नहीं करता। वह कटु बोलकर किसीको नहीं खिझाता। वह ऐसे ढंगसे उपदेश करता है, जिससे कि सुननेवालेको उसकी बातपर विश्वास होकर वह अपनेको उपदेष्टाका आभारी मानने लगता है। अपनी इस बातके स्पष्टीकरणके लिए हम आगे बुद्धके जीवनसे कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

शार्दूलकर्णकी कथा

एक समय भगवान् बुद्ध श्रावस्तीमें विराजमान थे। उनके प्रिय शिष्य आनन्द नगरमें भिक्षाके लिए गए। मार्ग में प्यास लगी। एक कुएँपर एक चाण्डाल-कन्या पानी भर रही थी। लड़कीका नाम प्रकृति था। उससे आनन्दने पानी माँगा। प्रकृति बोली—"हे भिक्षु, मैं चाण्डालकी लड़की हूँ। मैं आपको पानी कैसे दे सकती हूँ?" आनन्दने कहा—"बहन, मैं कुल या जाति नहीं पूछता। मुझे पानी दो।" प्रकृतिने आनन्दको पानी पिला दिया। पानी पीकर आनन्द चल दिए। प्रकृतिको आनन्दके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। फल यह हुआ कि प्रकृतिको भगवान बुद्धके साक्षात् दर्शन प्राप्त हुए। भगवान्ने अनुकम्पा करके उसे धर्मोपदेश दिया और अपने भिक्षुणी-संघमें सम्मिलित कर लिया।

इस समाचारको सुनकर श्रावस्तीके ब्राह्मणोंने वहाँके राजा प्रसेनजित्को भड़काया कि बुद्धने एक अछूत-कन्याको क्यों दीक्षा दी? राजाने भगवान्के निकट आकर इसकी चर्चा की। तब भगवान् बुद्ध राजासे बोले—"राजन्, त्रिशंकु चांडालोंका एक राजा था। शार्दूलकर्ण उसका पुत्र था। वह बहुत सुन्दर था। उसने विधिवत् शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त की थी। त्रिशंकुको अपने लड़केके लिए कन्याकी आवश्यकता हुई। वह एक ब्राह्मण पुष्कर-सारिके पास गया और उससे अपने बेटेके लिए उसकी कन्या माँगी। ब्राह्मणने कहा—"तुम चाण्डाल हो, मैं ब्राह्मण। चाण्डाल चाण्डालके साथ और ब्राह्मण ब्राह्मणके साथ ही नाता जोड़ते हैं। मुझसे यह अनुचित प्रस्ताव कर तुमने मेरा अपमान किया है।" इसपर त्रिशंकुने उत्तर दिया—"हे पुष्करसारि, ब्राह्मण और चाण्डाल दोनोंका जन्म एक ही तरह होता है। ब्राह्मण कुछ आकाशसे नहीं आते। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र केवल नाम हैं। ये मनुष्य के बनाए हैं। जिस प्रकार बालक सड़कपर खेलते हैं और मिट्टीके खिलौने बनाकर आप ही उनके भिन्न-भिन्न नाम रख लेते हैं—किसीको खीर, किसीको दही, किसीको घी कहते हैं। परन्तु उन बालकोंके कहनेसे वे खिलौने वैसे तो नहीं बन जाते। इसी प्रकार मनुष्यके ब्राह्मण, क्षत्रियादि भिन्न-भिन्न नाम रख लेनेसे उनमें कोई भेद नहीं हो जाता।

उनकी नाक, आँख, कान, मुख सब एक ही प्रकारके होते हैं। जैसा भेद गाय, घोड़े, गदहे, भेड़, बकरी आदि पशुओंकी जातियोंमें एक-दूसरेसे पाया जाता है, वैसा भेद मनुष्योंके चार वर्णोंमें नहीं दिखाई देता। सब मनुष्य एक ही पिता की सन्तान हैं। इसलिए वे एक-दूसरेसे भिन्न नहीं हो सकते।" ऐसी ही बहुत-सी बातें पुष्करसारिने सुनीं, पर उससे उनका कोई उत्तर न बन पड़ा। अन्तमें यह जानकर कि त्रिशंकु सब शास्त्रोंका पूर्ण ज्ञाता है, उसने अपनी कन्याका विवाह उसके पुत्र शार्दूलकर्णसे पक्का कर दिया। आचार्यके इस निर्णयको सुनकर उसके ब्रह्मचारियोंने उससे कहा—"जब इतने ब्राह्मण पाए जाते हैं, तब आपका चाण्डाल से सम्बन्ध जोड़ना ठीक नहीं।" परन्तु पुष्करसारिने उत्तर दिया—"जो त्रिशंकु कहता है, वह ठीक है और मैं वैसा ही करूँगा।"

भगवान्‌के मुखसे यह कथा सुनकर महाराज प्रसेनजित् को बोध हो गया। वे बड़े ही आल्हादित हुए। उनका वर्णाभिमानका सन्देह दूर हो गया। वे भगवान्‌की चरण-वंदना करके चले गए।

भगवान् बुद्ध जाति-भेदके कट्टर विरोधी थे। उन्होंने अपने शिष्योंसे कहा है—"गंगा, यमुना प्रभृति बड़ी-बड़ी नदियाँ अनेक दिग्देशोंमें पैदा होकर भी जैसे समुद्रमें मिलकर अपनी स्वतन्त्र सत्ता और नाम खो देती हैं, वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि सब जातियोंके मनुष्य सत्य-धर्म ग्रहण करते ही अपनी जाति और गोत्र खोकर एक हो जाते हैं। नाई उपालि नीच जातिका होनेपर भी महापुरुष बुद्धका दाहिना हाथ हो गया। नवीन धर्मके प्रभावसे वह शूद्र न रहा।

जीर्ण मताभिमानसे हानि

जो लोग हिताहितका विचार किए बिना पुराने परम्परागत विचारोंसे चिपटे रहनेमें अभिमान किया करते हैं, उनको इसकी हानियाँ समझानेके लिए भगवान बुद्धने एक बार एक बहुत अच्छा आख्यान सुनाया था। उन्होंने कहा—एक समयकी बात है, किसी गाँवके दो युवक धन कमाने के लिए घरसे निकले। कुछ दूर जानेपर उन्हें एक खेतमें सनके बहुतसे पौधे कटे हुए मिले। उन्होंने पौधोंका एक-एक गट्ठर बाँधकर उठा लिया और आगे चल पड़े। उनका विचार उन पौधोंको बेचकर पैसे प्राप्त करनेका था। कुछ दूर जानेपर उन्हें एक जगह पौधोंसे उतरा हुआ बहुत-सा सनका छिलका पड़ा हुआ मिला। तब उनमें से एकने सोचा कि हम जो सनके पौधे ले जा रहे हैं, उनको छीलकर भी सनका रेशा ही निकाला जायगा। सो वह रेशा यहाँ उतरा पड़ा है। मैं इन पौधोंको फेंककर सनका रेशा ही क्यों न उठा लूँ। बस उसने पौधोंका भारा फेंककर उसके स्थानमें सनके रेशोंका गट्ठा उठा लिया। परन्तु दूसरे व्यक्तिने कहा कि मैं सनके पौधे बहुत दूरसे लाया हूँ, इसलिए मैं इनको नहीं फेंकूँगा। तब वे आगे चल पड़े। कुछ दूर आगे जानेपर उन्हें एक जगह सनके रेशेको कातकर बनाई हुई रस्सीका ढेर मिला। जो व्यक्ति रेशा लाया था, उसने सोचा कि इस रेशेकी भी रस्सी ही बनाई जाएगी। जब वह रस्सी यहाँ बनी पड़ी है, तब मैं इस रेशेको यहाँ फेंककर रस्सीको ही क्यों न उठा लूँ। इसपर उसने रेशा फेंककर रस्सीका गट्ठर उठा लिया। परन्तु दूसरेने सनके पौधोंका गट्ठर फेंककर रस्सी उठानेसे यह कहकर इन्कार कर दिया कि मैं इन पौधोंको बहुत दूरसे लाया हूँ, अब इनको क्यों छोड़ दूँ? तब वे आगे चल पड़े। कुछ दूर आगे जानेपर उन्हें एक जगह सनकी रस्सीकी बुनी हुई बोरियाँ पड़ी मिलीं। पहले मनुष्यने सोचा कि इस रस्सीकी बोरियाँ ही बनाई जाएँगी और वे बोरियाँ पहलेसे ही यहाँ बनी पड़ी हैं। मैं क्यों न रस्सीको फेंककर ये बोरियाँ ही उठा लूँ और इनको बेचकर धन प्राप्त करूँ? यह सोचकर उसने रस्सीका गट्ठर वहीं फेंक दिया और बोरियोंका गट्ठर बाँधकर उठा लिया। परन्तु दूसरेने फिर वही कहकर कि मैं सनकी छड़ियोंको इतनी दूरसे उठाकर लाया हूँ, उनको फेंककर बोरियाँ उठानेसे इन्कार कर दिया। तब वे और आगे चल पड़े। कुछ दूर और आगे जानेपर उन्हें चाँदीके ढेर लगे मिले। पहलेने सोचा कि बोरियाँ बेचकर भी मुझे चाँदी ही मिलेगी। सो, वह चाँदी यहाँ पड़ी है। मैं क्यों न बोरियाँ फेंककर चाँदीसे ही उठा लूँ। बस, उसने बोरियाँ फेंक दीं और चाँदी उठा ली। परन्तु दूसरेने फिर यही कहकर कि मैं सनके पौधोंको बहुत दूरसे उठाकर लाया हूँ, चाँदी उठानेसे इन्कार कर दिया। और वे फिर आगे चल पड़े। कुछ दूर जानेपर उन्हें ढेरों सोना पड़ा मिला। पहलेने सोचा कि चाँदी बेचकर भी मैं सोना ही लूँगा। सो, वह सोना यहाँ पड़ा है। मैं इसे ही क्यों न उठालूँ? तब उसने चाँदी फेंककर सोना उठा लिया। परन्तु दूसरेने फिर यही कहकर सोना उठानेसे इन्कार कर दिया कि मैं इन सनके पौधोंको बहुत दूरसे उठाए लिए आ रहा हूँ, मैं इनको नहीं छोड़ सकता। तब वे दोनों लौटकर अपने गाँव पहुँचे। परन्तु एकके पास सोना था और दूसरेके पास सनके पौधे। जो सोना लाया था, उसे देखकर उसके घरवाले बहुत प्रसन्न हुए और दूसरा जो सनके पौधोंका गट्ठर उठाए हुए था, उसे देखकर न केवल यही कि उसके घरवाले उससे कुपित

हुए, वरन् दूसरे गाँववाले भी उसकी मूर्खताके कारण उसकी खिल्ली उड़ाने लगे !

शान्ति और वैराग्यका उपदेश

भगवान् बुद्धका उपदेश सुननेके लिए धर्मपरायण लोग दूर-दूरसे आते थे। कपिलवस्तुके राजा शुद्धोदनने जब सुना कि राजकुमार सिद्धार्थने अलौकिक जीवन प्राप्त किया है और उनके अमृतमय उपदेशको सुनकर सहस्र-सहस्र प्राणी पवित्र और प्रव्रजित हो रहे हैं, तो उन्होंने भी भगवान्को अपने यहाँ निमंत्रित किया। पहले तो वे आए नहीं, परन्तु बादको उन्होंने मान लिया। एक दिन भगवान् नगरके भीतर होकर राजप्रासादकी ओर भोजनार्थ जा रहे थे। मार्गमें दोनों ओर दर्शक-दर्शिकाओंकी भीड़ लग गई। भगवान्की उज्ज्वल ज्योति, सौम्य मूर्त्ति, करुणापूर्ण दृष्टि, आजान बाहु, विशाल वक्षस्थल, उन्नत ग्रीवा तथा शान्त, विनीत और गंभीर स्वरूपके दर्शन करके अलौकिक आनंद प्राप्त होता था। आगे-आगे भगवान् थे और उनके पीछे पीत वस्त्रधारी शिष्योंकी पंक्ति थी। बुद्धदेवने कपिलवस्तु जाकर वहाँ वृद्ध पिताके साथ साक्षात्कार किया—जिस कपिलवस्तुसे एक दिन गम्भीर निशीथमें वैराग्यका दीप्त तेज हृदयमें लिए वे बाहर निकले थे। कितने काल के उपरान्त उसी प्रिय जन्मभूमि कपिलवस्तुमें उन्होंने सर्वत्यागी संन्यासीके रूपमें प्रत्यावर्त्तन किया। आज उनके केश मुंडित थे। आज उनके परिधानके वस्त्र पीत थे। आज उनके हाथमें भिक्षा-पात्र था। नगरमें प्रवेशकर सिद्धार्थ द्वार-द्वार भिक्षा करने लगे। राजा शुद्धोदन यह बात सुन व्यथित हो दौड़े हुए आए। "संयासी पुत्र," वे करुण कंठसे बोले—"क्या यही मेरे वंशके दुलारे शक्य-कुल-प्रदीप युवराज सिद्धार्थ हैं ? क्यों वत्स, तुम क्यों द्वार-द्वार भिक्षा माँगते फिर रहे हो ?"

तब बुद्धदेव बोले—"महाराज, मैंने अपने तपके प्रभाव से एवं प्रेम-बलसे जो अक्षय रत्न लाभ किए हैं, उनको पितृदेवके चरणोंमें समर्पित करूँ; यही मेरी एकांत इच्छा है। आप मेरा वह दान ग्रहण कीजिए।"

शुद्धोदन लज्जित हो गए। अप्रतिभ हो उन्होंने पुत्रके हाथसे भिक्षा-पात्र छीन लिया और उनको राजप्रासाद में ले गए। वहाँ पहुँचकर बुद्धदेवने पिताके निकट निर्वाण-मुक्तिकी वाणी कह सुनाई और उस अमृतधारासे उनके चित्तको अभिषिक्त कर दिया।

यशोधराका प्रेम और निष्ठा

बुद्धदेवके राजप्रासादमें प्रवेश करनेपर राज-परिवार के सभी स्त्री-पुरुष उनकी अभ्यर्थना करनेके लिए उपस्थित हुए। एक नहीं आई केवल उनकी पत्नी यशोधरा। बुद्धदेवने यशोधराके विषयमें पूछ-ताछ की। राजान्तःपुरवासियोंने कहा कि वे नहीं आयँगी। तब गौतमने शुद्धोदनके साथ अन्तःपुरमें प्रवेश किया। उन्होंने जाकर देखा—यशोधरा मलिन-वसना, रुक्ष एवं मुक्त कुंतला, उदास बैठी है। अपने समीप पतिदेवताको देख उसके प्रेमाश्रु उमड़ पड़े। जो दीर्घ संयम और सहिष्णुता द्वारा अपने मनको संयत रखे हुए थी, आज प्रत्यक्ष देवता स्वामीको सम्मुख देखकर अपने संयमकी रक्षा न कर सकी। गौतमके पदयुगलको पकड़कर वह अजस्र धारासे अश्रु-विसर्जन करने लगी। उस मिलनके पवित्र मुहूर्त्तमें अमरावतीका आनन्द उसके हृदयमें बिजलीकी भाँति चमक गया और प्रेम-मन्दाकिनीकी धारा बह निकली। उसने चिर प्रेमोन्मादिनीका रूप धारण कर लिया।

महाराज शुद्धोदनने यशोधराके प्रेम और निष्ठाकी प्रशंसा की। वे बोले—"जबसे इसने सुना कि तुमने काषाय वस्त्र पहने हैं, तभीसे यह भी काषाय वस्त्र पहनती है। तुम एक बार भोजन करते हो, यह सुनकर यह भी एक बार खाने लगी है। तुम ऊँचे पलँगपर नहीं सोते, यह सुनकर यह भी भूमिपर ही सोती है तथा माला, गंध और चन्दनका स्पर्श तक नहीं करती। दिन-रात तुम्हारा ही ध्यान और तुम्हारी ही मंगल-कामना किया करती है। इस प्रकार हमारी बहू तपस्विनी होकर जीवन बिताती है। तुम इसे उचित उपदेश देकर सन्तुष्ट करो।"

यशोधराकी पवित्र चर्या सुनकर भगवान् संतुष्ट हुए और उसके पूर्व जन्मकी कई कथाएँ सुनाकर उन्होंने उसे शांति प्रदान की।

श्रेष्ठ भिक्षा

हम ऊपर कह आए हैं कि भगवान् बुद्धकी उपदेशकी अपनी एक विशिष्ट रीति थी। वे किसी सचाईका उपदेश ऐसे प्रभावोत्पादक और नाटकीय ढंगसे देते थे कि उनकी शिक्षाका प्रभाव बड़ा गहरा और विचार चिरस्थायी होते थे और जन-साधारणको उन्हें ग्रहण करनेमें आनन्द मिलता था। एक दिनकी बात है। श्रावस्ती नगरीके महलोंके शिखर पर उषाकी लाली पड़ रही थी। सब नगरवासी निद्रा की गोदमें पड़े हुए थे। अभी तक वैतालिकोंका मंगल-गान भी आरम्भ नहीं हुआ था। कहीं-कहींपर घरोंमें से पालतू मोरोंका शब्द सुनाई पड़ जाता था। ऐसे प्रभात के समय एक बौद्ध भिक्षु ऊँचे स्वरसे कह रहा था—"हे पुरवासियो, जागो ! बुद्ध भगवान्के लिए भीख माँगता हूँ, कोई भिक्षा दो। वर्षाके बादल अपना नाश करके

जलधाराका दान देते हैं। त्याग-धर्म ही जगत्के सब धर्मोंका सार है।" सुदूर कैलास-शिखरसे आते हुए भैरवके महासंगीत-जैसी यह वाणी सुख-निद्रासे भरे हुए भवनोंमें गूंज उठी। राजा उठकर विचारने लगा—राज्य-धन वृथा है। गृहस्थ सोचने लगा—यह तुच्छ विलास-सामग्री मिथ्या है। बालिकाएँ बिना कारण आँसू बहाने लगीं। देखते-ही-देखते घर-घरके द्वार खुल गए। निद्रासे अलसाई हुई आँखें कौतूहल-भरी दृष्टिसे अन्धकारमय मार्ग पर देखने लगीं। "जागो पुरवासियो, भिक्षा दो!" इस प्रकार बोलता और महलोंकी अटारियोंको देखता हुआ एक भिखारी निर्जन राजमार्गपर अकेला चला जा रहा है।

धनवान् वणिकोंने मार्गपर रत्न फेंके। किसीने बहुमूल्य कंठहार डाले। किसीने शीशमणि गिराई। सेठोंने सुवर्ण-पात्र भेंट किए। पर भिखारीने कुछ न लिया। वह तो कहता था—"कोई मेरे प्रभुके लिए भिक्षा दे।" वस्त्रों और आभूषणोंसे मार्ग ढँक गया, पृथ्वीपर पड़ी हुई सुवर्ण-मणियोंसे राजमार्ग प्रकाशित हो उठा; फिर भी संयासी खाली झोली लिए हुए पुकारता रहा—"हे नगरजनो, सावधान होओ। बुद्ध भगवान्‌को सर्वश्रेष्ठ दान दो।"

राजा पीछे लौटा। सेठ वापस गए। प्रभुके लिए कोई भी भेंट न मिली! विशाल नगरी आज नीचा मुँह किए शर्मा गई। धीरे-धीरे बाल-रवि उदित हुआ। चहुँ ओर जगत् जाग्रत हो गया। श्रावस्ती नगरीका मार्ग पूरा हुआ और संन्यासी नगरके बाहर निकला। एक दीन माता उसको दीख पड़ी। पृथ्वी ही उसका बिछौना था। न खानेको अन्न और न पहननेको वस्त्र। उसके पास कपड़ेका एक ही टुकड़ा था। अपने शरीरको एक साड़ीमें छिपाते हुए उस बुढ़ियाने वह टुकड़ा भिक्षुके चरणोंमें रख दिया। फटे-पुराने वस्त्रको सिरपर रखकर, हाथ ऊँचा करके, भिक्षुने ऊँचे स्वरसे कहा—"जय हो, सारे जगत्‌की जय हो! धन्य जननी, आज ही महाभिक्षुका हृदय सन्तुष्ट होगा!" उस फटे-पुराने वस्त्रको लेकर भिक्षु प्रसन्न मन से भगवान् बुद्धके आश्रमकी ओर चला गया।

आदर्श उपदेष्टा, लोक-श्रेष्ठ, मनुष्यों और देवोंके शास्ता भगवान् तथागतकी २५००वीं जयन्तीपर बड़े भक्ति-भावसे उनके श्रीचरणोंमें अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए आचार्य शंकरके शब्दोंमें हम भी कहेंगे—

धराबद्ध पद्मासनस्थांघ्रि पष्टिः,
नियम्यानिलं न्यस्त नासाग्रदृष्टिः।
य आस्ते कलौ योगिनां चक्रवर्ती,
से बुद्धः प्रबुद्धोऽस्तु मच्चित्तवर्त्ती॥

अर्थात् पृथ्वीपर पद्मासन बाँधकर जिसने एकाग्रता और प्राणसंयमपूर्वक नासिकाके अग्र भागपर दृष्टि स्थिर की थी, जो कलियुगमें योगियोंके चक्रवर्ती हुए थे, वे महाज्ञानी बुद्ध मेरे हृदय-देशमें विराजमान हों!

भगवान बुद्ध द्वारा दिया गया पहला उपदेश (गांधार) पटना-म्यूजियम

निरंजना और यात्री

श्री चन्द्रदेवसिंह 'हृदय'

(निरंजना नदीकी लहरोंके उठने-गिरनेसे आती हुई ध्वनि)

समवेत गीत : यह पूनों की रात, सहेली !
लहरोंपर किरनोंकी छाया,
लगती ज्यों सपनोंकी माया;
ऐसेमें चुप रहना मुश्किल
आज करें कुछ बात, सहेली !

अरे, यहीं तो कभी तथागत
का सुरपुरसे करने स्वागत,
देवों, असुरों, गन्धर्वोंकी
आई थी बारात, सहेली !

तुम्हें याद होंगे ही वे क्षण,
मिला बुद्धको जब प्रकाश-कण;
जब अम्बरसे हुई धरापर
फूलोंकी बरसात, सहेली !
यह पूनोंकी रात, सहेली !

स्त्री-यात्री : यह वैशाखी पूनों उड़ती रजत-धूल ज्यों,
दीख रहा है चन्द कि स्नेहिल स्वप्न-फूल ज्यों !
उठती हैं रह-रहकर मानसमें इच्छाएँ,
सुन पड़ती हैं बीते युगकी ज्वलित कथाएँ।
निरंजने ! ये कूल कि पावन संस्मरणोंसे;
निरंजने ! तू पूत पुण्यके उपकरणोंसे।

पुरुष-यात्री : निरंजने ! कुछ बोल बावरी !
भूल नहीं अपनी लहरोंमें,
रजनीके मधुमय पहरोंमें;
कुछ उलझी हैं गाँठें मनकी,
आज उन्हें टुक खोल बावरी !

बता तथागतकी कुछ बातें,
सहतीं कैसे स्मृतिकी घातें ?
अपने ज्वलित आँसुओंसे ही,
जगमें मधुरस घोल बावरी !

(लहरोंकी ध्वनि-प्रतिध्वनि)

समवेत : बुद्धं सरणं गच्छामि,
धम्मं सरणं गच्छामि !
संघं सरणं गच्छामि !

(क्षण-भरके लिए शान्ति)

पुरुष-स्वर : निरंजने, कुछ बोलो भी तो
कैसे हुई बुद्धकी जय थी ?
कैसे पाई भला उन्होंने
बाधाओंपर अमिट विजय थी ?
कैसे किया परास्त मारको,
कैसे उनको मिला त्राण था ?
तपसे जर्जर, निबल बुद्धको
बोलो, कैसे मिला प्राण था ?

(लहरोंकी क्षीण ध्वनि)

निरंजना : मुझे याद है गला दिया था
जबकि बुद्धने तपमें निज तन,
उठनेकी न शक्ति थी उनमें,
साँसोंमें जीवित था जीवन।
तब भी एक प्रकाश भालपर
उनके जैसे दमक रहा था,
उनका ही था तेज कि मेरी
लहरोंपर जो चमक रहा था !
उनके तपः तेजके आगे
बाधाएँ खुद हार गई थीं,
उनके चरणोंपर विपदाएँ
अपना तन-मन वार गई थीं।
प्राणवान था किया सुजाताने
तप - जर्जर बुद्ध - प्राणको,
भुला कभी सकता है कैसे
पुरुष नारिके अमर दानको !

स्त्री-स्वर : निरंजने ! क्या तुम्हें ज्ञात है,
महाबुद्धका महाभिनिष्क्रमण ?
क्या उनमें न मोह जागा था,
क्या न भरे थे उनके लोचन ?
क्या वियोगकी स्मृतिसे उनका
अन्तर कभी नहीं रोया था ?
क्या राहुलकी किलकारीमें
उनका हृदय नहीं खोया था ?
क्या यशोधरा उन्हें न आई
याद साधनाके प्रहरोंमें ?
क्या कुछ भी न लिखा है, बोलो
देवि, तुम्हारी इन लहरोंमें ?

निरंजना : महाबुद्ध थे मनुज कि उनके
मनमें भी अनुराग-राग था;
किन्तु साथ ही उनके उरमें
लहराता रहता विराग था।
महासाधनाकी घड़ियोंमें
जब कि छेड़ती थीं किन्नरियाँ,
उन्हें डिगाना चाह रही थीं
जब कि इन्द्रपुरकी अप्सरियाँ।
उन्हें जगाने जब आती थी कोई गोरी,
उन्हें याद आता था राहुलका तुतलाना,
उन्हें याद आती थी यशोधराकी लोरी।

(लोरी)

सो जा, मेरे राजकुमार,
सपनोंकी छाँह तले।
दूर हुई दिनकी उजियारी,
फैली ठौर-ठौर अँधियारी,
अंधकारको दूध पिलाने,
घर-घर दीप जले!
दिन-भर बहुत हँसाया तूने,
ऊधम बहुत मचाया तूने,
सारे दिनके थके बटोही
घरको लौट चले।
सो जा मेरे राजकुमार,
सपनोंकी छाँह तले!

(लहरोंकी मन्द ध्वनि)

पुरुष-स्वर : क्या न कभी विपदाओंमें था—
हुआ बुद्धको क्लेश?

निरंजना : दुखका, सुखका कारण उनके लिए मात्र जीवन था,
सुख-दुखसे निर्वाण-प्राप्ति ही उनका दृढ़तम प्रण था।
उन्हें न बाँध सके थे नूपुर;
छूम - छनन स्वर लहरी
भौतिक सुखसे कहीं अधिक थी
उनकी करुणा गहरी।

(किन्नरियोंकी स्वर्गीय गायन-ध्वनि)

एक बार,
पलक द्वार खोल दो।
खिल जाएँ मन-शतदल,
स्मृतियोंके स्वप्न सजल,
थिरक उठें आशाके
अधरोंपर गीत नवल,
कहती हूँ बार-बार
बोल दो!
कितने युग बाद आज
सज पाए मिलन-साज,
त्यागो यह मौन देव!
बाधक बन रही लाज।
तुला गहो,
लाज-भार तोल दो!
सपनों-सी रात मधुर,
मधुकी बरसात मधुर,
कैसे रह सके मूक
अन्तरकी बात मधुर?
सागर में
स्नेह-ज्वार घोल दो!

स्त्री-स्वर : जब न स्वर्गकी ललना तक
उनका मन खींच सकीं;
फिर कैसे वह यशोधरा
उनका उर सींच सकीं?

निरंजना : यशोधराकी माया-ममता उनके लिए सुधा थी;
मिट्टी पूजित हो वसुधापर उनकी यह वसुधा थी।
अमित रूप, लावण्य, पराक्रम
उनको सहज मिले थे,
पर गृह-त्याग बाद ही उनमें
श्रद्धा-सुमन खिले थे!
धरतीकी यह रेणु उन्हें थी
माताके सम प्यारी,
यह उनका कुछ दंभ नहीं था,
थी मनकी लाचारी।

पुरुष-स्वर : क्यों न कहें हम यह था उनका
केवल मौन पलायन?
संघर्षोंसे भाग गए वे,
कैसा कायर - जीवन!

निरंजना : कायर कभी नहीं सह सकते,
ग्रीष्म, शीत, हँस-हँसकर,
कायर नहीं मुक्ति पा सकते
विपदाओंमें फँसकर!

(बादलोंके गड़गड़ानेकी तुमुल ध्वनि)

बादल रहे गरजते अविरल,
हँसती रहीं बिजलियाँ,
पर न डिगे वे और न भींगी
विश्वासोंकी कलियाँ।

(तूफ़ान आनेकी भयानक ध्वनि)

आते थे तूफ़ान, उजड़ जाती थीं तरु-मालाएँ!

दिखलाता था कामदेव भी अपनी सभी कलाएँ।
उनकी दृढ़ताके सम्मुख झुक गए सभी अभिमानी,
फिर तो धरतीने, अम्बरने पाई जैसे वाणी।

स्त्री-स्वर : किन्तु कहो, क्यों नहीं विचारा कभी बुद्धने मनमें?
घरमें छोड़ प्रिया हम जाते हैं क्यों बीहड़ वनमें?
वे तो मुक्त विहग-से उड़ सकते थे अखिल गगनमें,
लेकिन जिसने घरसे बाहर झाँका नहीं सपनमें,
उस सुहागिनीके दुखने था
क्यों न उन्हें तब रोका?

निरंजना : जगके भौतिक संघर्षोंसे
वे उठ चुके बहुत ऊपर थे।
जगका दुख उनका था,
उनके सुखके भागी नारी-नर थे।

पुरुष-स्वर : दिव्य-ज्ञान-प्राप्तिसे जागा था
न बुद्धमें क्या अभिमान?
क्योंकि उन्होंने ही पुजवाया था
निजको, जैसे भगवान।

निरंजना : मिली तथागतको थी तपसे
जो प्रकाशकी भाषा,
जो न गई थी सुनी कि जिसकी
बनी न थी परिभाषा;
हृदय न था संकीर्ण बुद्धका
स्वार्थ न छू पाया था,
बाँध दिया वह सब-कुछ, जो
अपना कहकर पाया था।

स्त्री-स्वर : और तुम्हें कुछ याद कि तजकर
तट वे कहाँ गए वे?

निरंजना : मैंने सुना मिली थी उनको
विजय कि जहाँ गए वे;
झुके चरणपर मुकुट नृपोंके,
झुकी बधिककी छूरी,
ऐसा कुछ कर दिया,
मिट गई हृदय-हृदयकी दूरी।
और ... ... आ ... ...ह!

(सिसकनेकी करुण ध्वनि)

रुष-स्वर : क्योंकर आने लगीं हिचकियाँ,
भर क्यों आए लोचन?

स्त्री-स्वर : याद आ रहे उनको जैसे
महामुक्तिके वे क्षण!

पुरुष-स्वर : रुको, सुनो तो कौन गा रहा है यह रसमय गायन?
स्वरके मधुसे बँधे जा रहे हैं जैसे जड़-चेतन!

(दूरागत गीत-ध्वनि)

तेरी ज्योति-किरनसे ज्योतित मेरा घर-आँगन है!
तू जो कुछ अपने प्रकाशकी वीणापर गाता है,
वह मेरी साँसोंपर जैसे फिर-फिर छा जाता है।
बहुत सोचनेपर भी यह संबंध न समझ सका हूँ,
तेरी ज्योति-किरनसे ज्योतित मेरा घर-आँगन है!
रजनीकी अँधियारीमें जब सारा जग सोता है,
तब भी तू जगकर प्राणोंमें स्नेह-बीज बोता है;
मेरे सपनोंपर प्रिय तेरा ही अधिकार रहा है,
तेरी सुधिसे मेरे सपनोंका मुस्काता वन है!
तेरे मधुवनसे सुधिका सौरभ उड़कर आता है,
तेरा सुधि-शुक मेरी पलकोंपर बसकर गाता है।
बहुत बाँधनेपर भी दृगकी बाढ़ न बँध पाती है,
मेरे आँसूसे गीला रहता मेरा आनन है!
यही बहुत है तुझसे मेरे जनम-जनमके नाते,
इसीलिए तो मिलन-मार्गपर पग बढ़ते ही जाते!
बहुत भूलनेपर भी तेरी दया न भूल सका हूँ,
तेरी स्नेह-डोरमें ही बँधकर जीवन जीवन है!

(क्षण-भरके लिए शान्ति)

पुरुष-स्वर : महा-महामानव थे वे, होती है घर-घर चर्चा,
और युगोंसे करते आए हैं हम पूजा-अर्चा।

स्त्री-स्वर : सत्य-धर्मके राजपथोंमें खो जाएगा क्रन्दन,
सम्यक् ज्ञान, अहिंसा सम्यक् कर्म जगतके चिंतन;
चंदाकी किरणोंके सँग जो प्रतिध्वनि बनकर आई,
धरतीकी यह अमर कहानी तारोंने दुहराई।
इसी पूर्णिमाको लहराई अमर ज्योतिकी धारा,
इसकी चिर-अक्षय निधि-सा है भारतवर्ष हमारा!

(लहरोंके उठने-गिरनेकी ध्वनि)

समवेत स्वर : बुद्धं सरणं गच्छामि,
धम्मं सरणं गच्छामि,
संघं सरणं गच्छामि!

ॐ मनिपद्मे हुम् !

श्री यमुनादत्त वैष्णव

ब्राह्मणोंके लिए जैसा पवित्र गायत्री या सावित्री मंत्र है, वैसा ही तिब्बती बौद्धोंके लिए 'ॐ मनि पद्मे हुम्' है। इस मंत्रका परिचय मुझे अ-आ-इ-ईके साथ ही हुआ गाँवकी दो कमरोंवाली काली स्लेटसे छायी लोअर-प्राइमरी पाठ-शालामें नहीं, बल्कि वहाँ जाते हुए मार्गमें। हमारा गाँव जिस पहाड़ीके मूलपर कोसी नदीके किनारे अखरोट, बाँज और दाड़िम (खट्टे अनार) के पेड़ोंके निकुंजोंके नीचे बसा है, उसी पहाड़ीकी चोटीपर कौसानीका वह स्कूल था। गाँव से वह डेढ़ मील दूर था। रास्ता ख़राब तो न था, सड़क घोड़े और खच्चरोंके चलने योग्य आठ-दस फुट चौड़ी थी, किन्तु पूरा मार्ग पहाड़की चढ़ाईकी ओर होनेसे हम लोगों को वहाँ पहुँचनेमें डेढ़-दो घंटेसे कम न लगता होगा। मैं बहुधा पिछड़ जाता था। मार्गमें दो ऐसे स्थान थे, जहाँ मुझे पूरा ज़ोर लगाकर अपने साथियोंके साथ क़दम मिलाकर जाना पड़ता था अथवा दौड़कर उनसे आगे-आगे। एक स्थान था नालेके आगे काठके पुलके पास, वहाँ बाँज और बुरुशके पेड़ घने हो जाते थे। एक दिन हमें काले लम्बे बालोंवाला भालू पेड़पर लिखमाल (बाँजके फल) खाता हुआ मिला था। दूसरा स्थान था, जहाँसे 'ॐ मनि पद्मे हुम्' की ध्वनि आती थी।

रीछ तो केवल एक ही बार दीखा था, किंतु 'ॐ मनि पद्मे हुम्' की ध्वनि लगातार तीन-चार मास तक सुनाई देती थी। प्रतिवर्ष कार्तिकके मेलेके उपरान्त 'चतरख' के खेतोंमें जो सड़कके किनारे ही थे, एक 'हुणिया' (पर्वत-प्रदेशमें तिब्बती यायावर लोगोंको इसी नामसे पुकारा जाता है) अपना खेमा गाड़ देता था। वह लम्बे डील-डौलका लम्बे बालों तथा लाल-लाल बड़ी-बड़ी आँखोंवाला अधेड़ व्यक्ति था। जैसी उसकी आकृति मुझे विकराल लगती थी, वैसे ही उसके वस्त्र और अन्य उपकरण भी। वह रक्त वर्णका लाल टखने तकका ढीला-ढाला चोगा पहनता था। यह लाल चोगा मोटी ऊनका बना होनेसे लाल रक्तमें रँगा-सा दीखता था। इसे वह ख़ूब मोटी ऊनके लाल कमरबन्दसे बाँधे रहता था। उसके पाँवोंपर घुटनों तक आनेवाले तिब्बती ऊनके बने बूट होते थे। दोनों हाथों में दो छोटे-छोटे मणिचक्र (ढोल) थे, जिन्हें वह न जाने किस भाँति बड़ी तेज़ीसे नचाता हुआ कहता था—'मनि पद्मे हुम्, ॐ मनि पद्मे हुम्'।

उस खेमेमें चार-पाँच तम्बू थे, जो सब ऊनकी ही चादरोंके बने थे और बँटी हुई ऊनकी रस्सियोंसे ताने जाते थे। 'हुणिए' के परिवारमें तीन-चार स्त्रियाँ भी थीं। वे भी विचित्र प्रकारके कपड़े पहनती थीं और रात-दिन तकली लिए कातती रहती थीं। चार-पाँच बच्चे भी थे, जो खच्चरों और चँवर-गायोंको आस-पास नालोंमें ले जाकर चराया करते थे। इन्हीं खच्चरों और चँवर-गायोंकी पीठपर 'हुणिया' तिब्बतसे अपना सामान, तम्बू और ऊन की ढेरियाँ लादकर लाता था और होलीके उपरांत फिर हमारे गाँवसे इन्हींपर सब-कुछ लादकर विदा हो जाता था। हुणिएके अपने तम्बूके आगे लाल-पीली झंडी गड़ी रहती थी। वह अपने मणिचक्र नचाता 'ॐ मनि पद्मे हुम्' कहता ही दृष्टिगोचर होता था।

गाँवके लोग कहते थे 'हुणिए' के पास न जाना चाहिए। वह नर-भक्षी होता है। बच्चोंको पकड़कर उनका माँस पकाकर खा जाता है। वह बड़े मंत्र-तन्त्र भी जानता है। 'ॐ मनि पद्मे हुम्' इस प्रकार हम बच्चोंके लिए 'हौआ' था। चतरखके पास पहुँचते ही सबसे निडर और उद्धत साथीकी भी अकेले जानेकी हिम्मत न होती थी। सब विद्यार्थी सहमे, सकपकाए-से, चुपचाप सड़कके किनारे-किनारे चल देते थे। यदि हुणिएका कोई बालक अथवा कोई खच्चर या याक सड़कपर खड़ा मिल जाता, तो प्राण सूख जाते थे! मैं सबसे छोटा था, पिछड़ जानेपर डरके मारे रो देता था। ऐसे समयमें कहीं हुणिएकी 'ॐ मनि पद्मे हुम्' मंत्रकी ध्वनि यदि कानमें पड़ती, तब तो यही भास होता कि यह जादू मुझे ही पकड़नेके लिए किया जा रहा है।

एक दिन शामको स्कूलसे घर लौटनेपर देखता क्या हूँ कि हुणिया हमारे ही आँगनमें पालती मारे रास्ता रोके अपने चक्र नचा रहा है! मैं मारे डरके चिल्ला पड़ा। सोचा, रास्तेमें मौका न पाकर यह आज मुझे पकड़ने घर ही आ पहुँचा! मेरे गलेमें डोरीसे लटकी पाटी (तख़्ती) थी और हाथमें कमेट (श्वेत घुली मिट्टी)-भरी दावात। मैंने दोनों हुणिएकी पीठपर पटक दीं। हुणिएकी विशाल पीठपर लटकती दोनों लटें एकाएक पलटीं, उसने चौंककर मेरी ओर देखा, फिर दाँत निकालकर मुस्कराता हुआ बोला—'ॐ मनि पद्मे हुम्, मनि पद्मे हुम्।'

मेरी दादी तत्काल आकर मुझे अपनी गोदमें न उठा लेती, तो सम्भवतः में उस समय आँगनकी दीवारसे कोई पत्थर उठाकर हुणिएको मार ही बैठता। दादीने मुझे पुचकारा, हुणिएसे व्यवहारके लिए क्षमा माँगी। मेरा भय पर्याप्त देरमें दूर हुआ। दादीने कहा—"ये लामा हैं, लापच्या लालो लामा। इन्हें ढोक (दंडवत) दो।" पर उस मैले-कुचैले दैत्यके चरणस्पर्श करनेको मेरा मन न हुआ। मैं न तो दादीकी गोदसे उतरा और न मैंने उस हुणिएका अभिवादन ही किया। दादीने उस हुणिएको 'लामा' कहा, यह नई बात थी। मैं समझ गया कि जैसे हमें अपने चरवाहे को 'डोम' न कहकर शिल्पकार कहनेकी शिक्षा दी गई है, वैसे ही अब 'हुणिए' को शिष्टाचारवश 'लामा' कहा जा रहा है। दादी कैलास-यात्रा कर चुकी थी। इसीलिए लामा लोगोंको साधुओंकी भाँति मानती थी। दादीने अब उस लामाको सम्बोधित करके कहा—"चोट तो नहीं आई आपको, लामाजी ?"

लामाने अपनी लटोंसे कमेटके श्वेत बिन्दुओंको झाड़ते हुए कहा—"मनि पद्मे हुम्, मीता मनि।"

मीताका हमारी भाषामें अर्थ होता है 'दीदी' और मनि का अर्थ है थोड़ा। मैं समझा थोड़ी चोट आई, यही आशय लामाका है। किंतु अर्थ वास्तवमें यह न रहा होगा, क्योंकि दादीने तत्काल ही कहा—"लामाजी, तुम तो जब देखो, तब पद्मे हुम् ही कहते हो। क्या अर्थ है इस मंत्रका ?"

लामा अपनी झोलीकी पोटलियोंको झाड़ता हुआ मुस्कराकर बोला—"मीता, मनि पद्मे हुम्का मतलब है यही, जो देख रही हो। यही मनि पद्मे हुम् है। यही श्वेत चमचमाती छोटी बूँदें। भाऊने (बालकने) अर्थको स्पष्ट कर दिया है।" फिर लामाने आधी तिब्बती और आधी कुमाऊँनीमें बादल, आकाश और 'रुइणी' (इन्द्र-धनुष) की उपमा देकर न जाने दादीको उसके कैलास-मानसरोवर तीर्थकी कौन-सी बात समझाई, जिसे मैं तनिक भी न समझ सका। मेरा ध्यान तो लामाकी पोटलियों, उसके दो-चार दाढ़ी-मूँछके बालों, लाल-लाल होंठों और उसके बोलनेके अनोखे ढंगकी ओर रहा।

कुछ देर तक वार्त्तालाप चलता रहा। फिर लामा बोला—"जम्मू (बघार देनेके लिए उपयुक्त तिब्बती घास), गनरैणी (एक जड़ी) और क्या चाहिए ? रीखितीती, निरबिसी ?"

दादीने मेरी माँको पुकारा और मुझे उसे सौंपते हुए कहा—"टोकरीमें तीन-चार पाथे (अनाज नापनेका एक काठका बर्तन) जौ ले आ।"

जौ आ गए और पाथा (माप) भी। लामाने जम्मू के छोटे-छोटे चार ढेर लगाकर कहा—"यह रहा एक पाथे जौके मोलका जम्मू।"

दादीने कहा—"इतना कम ? तुम तो लूट रहे हो। पार साल तो तुम इसका दूना दे गए थे।"

लामाने कहा—"ॐ मनि पद्मे हुम्, मनि पद्मे हुम।" और चारों ढेरोंपर एक दृष्टि डालकर बोला—"असली जम्मू है। लापच्या लालो घास नहीं, जम्मू लाया है।"

दादीने कहा—"तब तो सौदा न होगा, किसी और लामेसे ले लेंगे। जाओ।"

लामाने अपनी पोटलीसे चुटकी-चुटकी-भर जम्मू फिर प्रत्येक ढेरमें रखा और कहा—"ॐ मनि पद्मे हुम्।"

"नहीं, नहीं। एक ढेर और लगाओ, नहीं तो बहूसे कहती हूँ कि जौ सँभालकर रखले। इतना कम न लेंगे।"

इस प्रकार भाव-तोल हुआ और पहलेसे लगभग ड्योढ़ी अधिक मात्रामें जम्मू मिल गया। इसी प्रकार गनरैणीका मोल-तोल हुआ। रीखितीतीकी एक काली गाँठके लिए लामाने तीन पाथा जौ माँगा और निरबिसीके एक फूलके लिए दो पाथा। दादीको इतना ही देना पड़ा। रीखितीतीकी गाँठ बच्चोंकी बीमारियोंमें पानीमें घिसकर दी जाती थी। गर्मीके दिनोंमें तो इस गाँठकी माँग बढ़ जाती थी, जैसे शादी-व्याहमें पालकी और गलीचोंकी माँग बढ़ जाती है। यह कड़वी औषधि माँगनेके लिए दूर-दूरसे ग्रामीण आते थे।

उस दिन जाते-जाते लामा मार्गमें हमारे पयालके 'लुटे' को देखकर रुक गया और पयाल माँगने लगा। देर तक चिरौरी करता रहा। अंतमें लेकर ही टला। जड़ी-बूटियोंके सौदेमें जो रिआयत हुई थी, उससे अधिक मूल्य लामेको मिल गया।

उस दिनकी घटनाके उपरांत 'ॐ मनि पद्मे हुम्' ध्वनिसे मुझे कम भय लगता। अब स्कूलसे लौटते समय गाँवके लोगोंको लामासे जड़ी-बूटियाँ खरीदते देख मैं भी कुछ देर खड़े-खड़े उस खेमेकी वस्तुओंको देखने लगता। कभी हमें लामा अपने काठके गज-भर लम्बे खोखलमें चाय मथता मिलता। यह चाय विचित्र ढंगसे बनती थी। उबली हुई पत्तियोंको जलसहित उस काठके 'डोल' में उँड़ेलकर लामा उसमें सत्तू, मक्खन और नमक भी मिला देता। फिर डोलमें छेदवाला डाठ लगाकर उस छेदमें लम्बी-सी मथनी डालकर मिश्रणको खूब मथता। वह मथा हुआ मक्खन और चायका गरम फेनिल शरबत चाँदीके प्यालोंमें उँड़ेलकर परिवारके सदस्योंको पीनेके लिए दिया जाता।

लामा एक प्यालेकी रंगीन कपड़ेकी बनी प्रतिमाके सम्मुख रखकर माथा टेककर कहता—'मनिपद्मे हुम्, ॐ मनि पद्मे हुम्।' फिर एक रंग-बिरंगे चरखेको घुमाता चायकी चुस्की लेता। इस चरखेपर भी लिखा था—ॐ मनि पद्मे हुम्।

गर्मियोंके आते ही खेमा टूट गया और लामा अपने परिवार सहित तिब्बत लौट गया। किंतु जब कभी उड़दकी दालमें जम्मूका बघार पड़ता, मुझे उसमें से लामेकी ही गन्ध आती जान पड़ती। कभी-कभी गहत (पर्वतीय अन्न) की कचौरियोंमें दादी गनरैणीके मसाले पीस देती, तो वह गन्ध मेरे लिए असह्य हो जाती। मुझे गनरैणीको देखते ही लामेके खच्चरोंकी दुर्गन्ध आती जान पड़ती। अतः गहतका बना व्यंजन देखते ही मतली-सी आ जाती।

एक वर्ष बीत जानेपर शरद् ऋतुमें लामा फिर आया। सड़कके किनारे चतरखके खेतोंमें फिर खेमा लगा। इस बार लामाके परिवारमें तीन-चार बूढ़े और थे। पाठशालामें हमारे मास्टर साहबने 'भूगोल ज़िला अल्मोड़ा' और 'इतिहास तिमिरनाशक' के चित्र दिखाकर हमें बता दिया था कि लामा लोग बौद्ध हैं, वे हिमालयके उस पार तिब्बतके ठंडे पठारमें रहते हैं और 'ॐ मनि पद्मे हुम्' उनका पूजा-मंत्र है। इस मंत्रका अर्थ क्या है, यह मास्टर साहब स्वयं नहीं जानते थे।

उस वर्ष जाड़ा बड़ा भयंकर था। संभवतः वह सन् १९२१ रहा होगा। मेरे पिताजी और चाचा, जिन्हें सत्याग्रह-आन्दोलनमें जेल हो गई थी, अभी कारावाससे न लौटे थे। ताऊ गाँवसे चौदह मील दूर अस्पतालमें डाक्टर थे। वे हमारे लिए औषधियाँ भेजते थे। दादी को आदेश मिला था कि बावड़ीका कच्चा जल न पिया जाए। किंकिड़ (दालचीनी) की छाल उबाल और पकाकर पानी घड़ेमें रखा रहे और वही पानी पीनेके काममें लाया जाए। हमारा स्कूल जाना बन्द कर दिया जाए। इस आदेशका कारण तब मुझे ज्ञात हुआ जब कई महीनोंके उपरांत मैं जान पाया कि उस घाटीमें 'संजर' नामक ज्वरका प्रकोप हुआ था। यह एक प्रकारका इन्फ़्लुएंज़ा था, जिससे प्रतिदिन दो-चार व्यक्ति मर रहे थे। हमारे गाँवमें इतनी अधिक मृत्युएँ हुई थीं कि कभी एक मुर्देको फूंककर लौट आनेपर कंठेरुओंको दो और व्यक्ति मरे मिलते थे! इस महामारी से लामा-परिवार भी न बच पाया। चतरखके उन खेतों-के आसपास झाड़ियोंमें कपड़ेकी झंडियाँ दिन-प्रति दिन बढ़ने लगीं। लामा लोग अपने मुर्दोंको खेमोंके पास ही गाड़ देते और मिट्टीकी समाधिके ऊपर एक झंडी बाँध देते।

लापच्या लालो रातदिन 'ॐ मनि पद्मे हुम्' का जप करता। उसकी स्त्रियाँ भी चरखी घुमातीं। किंतु अन्धी होनहार थी या विधाताकी करतूत, केवल लापच्या लालोके और सब संजरके शिकार हुए। यही नहीं, मुरदोंको भली भाँति गाड़ा भी न जा सका। गीदड़ोंने शवोंको खोदकर खोपड़ियों को चतरखके खेतोंमें बिखेर दिया। गाँववालोंका उस ओर निकलना बन्द हो गया। उस भयानक दृश्यकी रिपोर्ट पटवारी (पर्वतीय पुलिस-अधिकारी) के पास भेजी गई, किन्तु पटवारीको भी उस ओर जानेका साहस न हुआ। लापच्या लालोको अपने गाँवमें बुलानेके लिए मुखिया राज़ी न हुआ। बड़े तर्क-वितर्कके उपरान्त गाँवके कालिका-मंदिरमें लामेको तफतीशके लिए बुलाया गया। दोपहरका चला शामको नाना प्रकारके लट्टुओं और डमरुओंको नचाता क्षीणकाय लामा मंदिर तक पहुँच पाया।

पटवारीके प्रत्येक प्रश्नका उत्तर लामाने 'ॐ मनि पद्मे हुम्' मंत्रसे ही दिया। इस मंत्रके अतिरिक्त एक शब्द भी वह न बोला। हरवाहेने, जो लामाको बुलाने गया था, बतलाया कि लामेके जानवर खूँटियोंपर ज्योंके त्यों बँधे हैं, उनके खानेको घास नहीं है। संभवतः लामा भी कई दिनसे उपवास कर रहा है। दादीने जब यह समाचार सुना, तो उससे न रहा गया। वह संध्याके झुटपुटेमें बिना किसीसे कुछ कहे लामेको घर लिवा लाई। गोठ (गोशाला) में लामाके लिए कम्बल भिजवा दिया गया। फिर दादी अपने हाथसे दालचीनीकी चाय बनाकर लामेको पीने दे आई। पहले तो लामेने उसे लेनेसे इन्कार कर दिया, किंतु दादीने कहा—"मेरे भी तो दो लड़के परदेशमें हैं, उनपर न जाने क्या बीत रही है? लापच्या, तू भी परदेशमें है, तू मुझे मीता (दीदी) कहा करता था। उसी नाते मैं तुझे अपना परदेशी भाई समझकर यहाँ लिवा लाई हूँ। जो हो गया, हो गया; अब अपने प्राण न गँवा।"

लामा जपता गया—'ॐ मनि पद्मे हुम्-मनि पद्मे हुम्।' दादीने कहा—"इस मंत्रको जपना छोड़। कल हमारे हरवाहेके साथ पहाड़के उस पार हमारे खरिकों (जंगलमें चरवाहोंके रहनेकी झोपड़ियाँ) में चले जाना। वे बरसात तक खाली पड़े रहते हैं। अपने जानवरोंको भी लेते जाना। वहाँ चारेकी कमी न होगी। अपने तम्बू पड़े रहने दे या फिर उन्हें शंकरकी उस बंजर दूकानमें बन्द कर जाना। पास-पड़ोस किसी और घाटीमें कोई तेरा पहचानका लामा हो, तो उसका नाम मुझे बता देना, उसे खबर कर दूंगी।

सुनकर लामा क्षण-भर चुप रहा, फिर उसने आँखें मूंद लीं और फफक-फफककर रोता हुआ बोला—"मीता,

सब मनि पद्मे हुम् हो गए। मुझे भी होने दो, जानवरोंको भी होने दो। ॐ मनि पद्मे हुम्, ॐ मनि पद्मे हुम्।"

मेरे लिए 'मनि पद्मे हुम्' अब और भी रहस्यमय सूत्र बन गया! मैं समझा कि 'मृत्यु हो जाना' ही इसका अर्थ है। लापच्या लालोने उस समय इसी अर्थमें इसका उपयोग किया था। दादीने लामेकी बकवासपर ध्यान न दिया। वह बोलीं—"तुम्हें न ज्वर है, न खाँसी, क्यों मन हल्का करते हो? खाना खा लो, तुम्हारे जानवरोंके लिए पयाल भेजे देती हूँ।"

लापच्या लालोने तीन बार ज़मीनपर माथा टेका। फिर गालोंपर मोटे-मोटे आँसू बहाता वह चाय पीने लग गया। थोड़ी देरके उपरांत उसके आगे रोटियाँ परोस दी गईं। कुछ ही मिनटोंमें दर्जनों रोटियाँ उड़ाकर वह पूर्ववत् चंगा हो गया। दादीने वह रात गोशालामें बिताने को कहा, किंतु वह न माना और पयालका एक पूरा गट्ठर पीठपर लादे उसी रात अपने खेमेमें लौट गया। दूसरे दिन स्वयं अपने खेमे उखाड़कर अपने खच्चरों और गायों सहित वह दादीके परामर्शके अनुसार पहाड़के दूसरे पार्श्वपर—हमारे गाँवके बरसाती खरिकोंमें जा—बसा। बीच-बीचमें कभी-कभी वह फेरी लगाता और माँके आगे माथा टेक जाता।

लामा अब मुझे पालतू जानवर-सा सीधा लगता। किंतु उसका वह रहस्यमय मंत्र वर्षों तक एक रहस्य ही बना रहा। हाईस्कूलमें मेरे साथ तिब्बतीय सीमान्तके कई सहपाठी थे। उन्होंने बतलाया कि 'ॐ मनि पद्मे हुम्' का जप कष्टोंके निवारणके लिए किया जाता है। यह श्रीगणेशायनमः की भाँति विघ्नोंके नाशके लिए उच्चारित किया जाता है। यह अर्थ संतोषप्रद न था। मणि और पद्मके शाब्दिक अर्थ विश्वविद्यालयमें आनेपर अँगरेज़ कवि सर एड्विन आरनल्डकी निम्नलिखित पंक्तियोंको पढ़नेपर ही स्पष्ट हुआ—

The dew is on the lotus! Rise Great Sun!
And lift my leaf and mix me with the wave.
OM MANI PADME HUM, THE SUNRISE COMES!
The DEW-DROP slips into the SHINING SEA.

अर्थात् मेरा जीवन कमल-दलमें ओस-बिन्दु (मणि)-सा है। महान सूर्य उदय होओ, इस मेरे जीवन-कमल-दलको उठाओ और इस बिन्दु-वायुके झोंकेमें समालो। ॐ मनि पद्मे हुम! सूर्योदय हो गया। ओसका बिन्दु भास्वर सागर में मिल जाता है!

इस अर्थका मैं जितनी बार मनन करता हूँ, लापच्या लालोकी बातोंका स्मरण हो आता है। वह लामा यद्यपि इस मंत्रका अर्थ दूसरोंको न समझा सका था, किन्तु स्वयं इसके गूढ़ अर्थसे भलीभाँति परिचित था। लामासे संबंधित वे घटनाएँ मेरे इस विश्वासकी पुष्टि करती हैं।

पराजय

श्री श्रवणकुमार 'दिव्य'

भिक्षाटन करके मोगलायन जब अपने विहारको लौटा, तो भिक्षापात्र उसने बड़ी अन्यमनस्कतासे एक ओर रख दिया। उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। उसी क्षण वह कहीं ऐसे स्थानपर चला जाना चाहता था, जहाँ कोई न हो। उगते सूर्यके साथ-साथ उसके क़दम बड़ी तेज़ीसे नदीकी ओर उठ रहे थे। वह किसी प्रकार अपनेको वशमें नहीं कर पा रहा था। पराजयका विचार उसे निरन्तर विचलित किए दे रहा था। एक बार, केवल एक बार, यदि वह भी कभी सारिपुत्तको पराजित कर सके!

नदीके तटपर पहुँचकर उसने दूर तक अपनी नज़र दौड़ाई। उसका कोई वार-पार ही नहीं है। दो कूलों के बीच होते हुए भी कितनी अनन्त है! जीवन भी नदीके समान है। वह दो-एक क्षण वैसे ही खड़े-खड़े वहाँ सोचता रहा। फिर एकाएक उसे उसका गर्जन सुनाई दिया। उसे लगा, जैसे वह भी उसकी तरह विकल हो, उद्विग्न हो। इससे उसके चित्तकी अवस्था और भी बिगड़ गई। वह सोचे जा रहा था....सारिपुत्त! सारिपुत्त! जीवनमें मैंने उसके साथ सब रंग देखे हैं। वह मेरा बालसखा है। लेकिन सदा मैंने उससे मात खाई है! और यह तो कल अनहोनी घटी। मैं अपनी समस्त विद्याके बावजूद उसके कायबंधको तनिक-सा भी हिला न सका। मेरी ऋद्धि-सिद्धिके बलसे पृथ्वी डोल गई। जड़-चेतन सभी पदार्थ काँप गए; लेकिन कपड़ेका वह छोटा-सा टुकड़ा दुराग्रहकी तरह अटल ही रहा! ओह! पर यह तो शास्ताका आदेश था। जन-समूह उनकी पवित्र वाणी सुननेके लिए उमड़ा आ रहा था और ऐसे अवसरपर सारिपुत्त विलुप्त! मैं उनके आदेशका पालन न करता, तो क्या करता? उसी क्षण श्रावस्ती पहुँचा, तो सारिपुत्त अपने विहारमें बैठा अपना

अंतरवासक सी रहा था और उधर तथागत उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। पर मेरे कथनका तो जैसे कोई मूल्य ही नहीं। मैं कहता हूँ कि तुम्हारी उधर राह देखी जा रही है और उसे अपने सीने-पिरोनेसे अवकाश नहीं और उसपर मुझसे स्पर्धा करना चाहता है ! मैंने यही तो कहा था न कि यदि तुम न उठे, तो तुम्हें बलपूर्वक उठा ले जाऊँगा। वह बोला—'यह कायबंध ही हिलाके दिखाओ, तो जानूं।' पर मैंने भी कैसी मूर्खता की ? व्यर्थमें ही उसके चक्करमें पड़ा। और आश्चर्य कि जब मैं लौटा, तो वह पहलेसे ही शास्ताके पास बैठा है ! पर कैसे ? क्या उसके पास मेरी सिद्धि से बढ़कर भी कोई शक्ति है ?

वह बड़ी व्यग्रतासे सोचता हुआ नदीके तटके साथ-साथ आगे बढ़ा जा रहा था। उसके पाँव कहीं रुकते ही न थे ? विचार भी घुमड़-घुमड़कर उसके मस्तिष्कमें आ रहे थे। सारिपुत्तके संग बिताया हुआ एक-एक क्षण उसे याद आ रहा था। पुरानी स्मृतियोंकी उसके सामने चित्रावली-सी बन गई थी। उसे याद आ रहा था कि जब वे अभी बालक ही थे, तो कैसे वे गिरज्ग-समज्जासे प्रभावित हुए थे; इस मूक अभिनयसे उनका निष्कपट शिशु-मन मानो आप्लावित-सा हो गया था। कैसे उन्होंने उस अल्पा-वस्थामें घर-बार छोड़ा और संजयका साथ किया। लेकिन 'किंकुशलगवेषियोंको संतोष न मिला और फिर कैसे उनकी अस्सजिसे भेंट हुई, जिसके आलोकन-विलोकन संकोचन-प्रसारणमें एक विशेष आकर्षण था, जो पूर्वाह्नके समय अति सुन्दर लग रहा था, जिसके उपदेष्टा तथागत थे और शोकरहित मार्ग दिखलाते थे। लेकिन अस्सजिसे पहले भेंट किसकी हुई ? सारिपुत्तकी। संजयका आश्रम छोड़कर वे दोनों जुदा इसलिए हुए थे कि देखें, पहले सत्य-मार्ग कौन खोजता है ? हाँ, यहाँ भी सारिपुत्त ही विजयी हुआ। सारिपुत्त ! अग्रश्रावक सारिपुत्त ! लेकिन कलके अपमानका बदला कैसे लिया जाय ? वह सोचता जाता था और आगे बढ़ता जाता था। सारी रात वह यही सोचता जा रहा था। व्यर्थ ही शास्ताने उसे उसके पास जानेका आदेश दिया। शायद उन्हींका यह सब प्रयोजन था। शायद वे ही उसे इस तरह नीचा दिखाना चाहते थे। हाँ, वह उनका औरस पुत्र जो ठहरा ! उसे आर्यशील जो प्राप्त हुआ ! हुँः ! सब शास्ताकी चाल है। अन्य शिष्योंको ठीक ही उससे डाह है !

मोग्गलायनको किसी तरह भी चैन नहीं मिल रहा था। नदीके तटकी बालुकाको वह ऐसे रौंदे जा रहा था, मानो वह अपनी मान्यता, अपनी आस्थाको रौंद रहा हो। एकाएक उसे दूर कुछ दीख पड़ा—काषायवस्त्रधारी एक व्यक्ति। वह कौन हो सकता है ? ज्यों-ज्यों वह उस ओर अग्रसर हो रहा था, त्यों-त्यों उसके मनकी उत्तेजना बढ़ती जाती थी, मानो वह स्वयं ही नदीकी बहिया बन गया था। और तेज, और तेज। कौन ? सुमना ? भिक्षुणी सुमना ? रूप-मयी सुमना ? क्या अपने वस्त्र धो रही है ? कितना उज्ज्वल शरीर है ! सूर्यकी अरुणिम आभामें आलोक-पुंज-सा लग रहा है, मानो स्वयं रति ही मूर्त्तिमान हो। तो क्या शारीरिक धर्मसे वंचित रहकर वह जीवनकी सत्यता निभा रहा है ? क्या संवेदन सत्य नहीं है ? संवेदन जीवन नहीं है ? लेकिन शास्ता बतलाते हैं कि जो कारण है, उसका हेतु भी है। तो संवेदन किस हेतुके निमित्त है ? निश्चय ही यह निष्प्रयोजन नहीं है। वह अपनी भावनाओं का हनन कर रहा है। यह आडम्बर है, सब आडम्बर है, सब कृत्रिमता है !

अब वह सुमनाके बहुत निकट पहुँच चुका था। उसके भरे हुए वक्षोजोंको देखकर उसे लगा मानो संसारका सार उन्हींमें निहित हो, मानो वे ही कारणको हेतुसे मिलानेवाले हों। वह उसके निकटस्थ हो ठिठका-सा खड़ा रह गया। कुछ भी बोलनेका उसका साहस नहीं हुआ। जब सुमनाने उसे देखा, तो बड़े स्वाभाविक रूपसे उसका अभिवादन करते हुए बोली—"आवुस, तुम्हारी इन्द्रियाँ प्रसन्न तो हैं न ?"

मोग्गलायनसे उत्तर देते न बना। वह हड़बड़ा-सा गया, जैसे उसको किसीने अनजानेमें ही कोंच दिया हो। सुमनाने अपना प्रश्न दोहराया, लेकिन मोग्गलायनपर जैसे कोई जादू चल गया था। वह मूर्त्तिवत् खड़ा उसे एकटक देखे जा रहा था। श्रावकके इस व्यवहारसे भिक्षुणी सशंकित हो उठी। अपनेको आश्वस्त करनेके लिए उसने एक बार फिर अपना प्रश्न दोहराया। लेकिन मोग्गलायन मोग्गलायन नहीं रहा था। उसका जैसे रूपान्तर हो गया था। उसका मन विकृत था, वाणी विशृंखल हो रही थी। कुछ अजीब-सा अभिनय करते हुए वह सुमनाकी ओर बढ़ा। सुमना आपादमस्तक काँप गई। फिर विद्युत्‌की तेजीसे वह सँभली और दूसरे ही क्षण नदीमें छलाँग लगा दी।

डूबती हुई भिक्षुणीको देखकर मोग्गलायनका मन अना-यास ही संतापसे भर गया। उस अनन्त जलराशिमें उसका कोई बचाव न था। यह सब उसीके कारण हुआ, हाँ उसीके। इस विचारने उसे निचोड़कर प्रायः रक्तहीन-सा कर दिया। उसकी टाँगें उसका सम्बल न बन सकीं। वह वहीं बैठ गया।

कुछ देरतक वह वहाँ वैसे ही बैठा रहा। जब प्रकृतिस्थ हुआ, तो उसने देखा कि सारिपुत्त उसके पार्श्वमें खड़ा मुस्करा रहा है। सारिपुत्त! लेकिन प्रतिकारकी भावना न जाने कैसे उसमें स्वयं ही भर गई। उसने देखा, सूर्यस्नात सारिपुत्तकी कान्ति शुद्ध और उज्ज्वल है। निर्द्वन्द्व, निर्विकार! उसके शब्द जैसे अमृतकी वर्षा कर रहे हों!

मोग्गलायन शीघ्र ही सारिपुत्तके साथ तथागतके सम्मुख उपस्थित हुआ। सहस्र-प्रभा-दीप्त उनका आनन देखते ही वह गद्गद् भावसे अभिभूत हो गया। उसकी तर्क-बुद्धि भी बिल्कुल काम नहीं कर रही थी। क्षणिक भावोद्रेकमें उसकी आस्था जो डोल गई थी, वह उसी क्षण स्थिर हो गई। तथागत बोले—"आवुस! तुम्हारा चित्त अशान्त है?"

मोग्गलायनने उत्तरमें अपनी आँखें झुका दीं। तब शास्ताने मोग्गलायन और सारिपुत्त दोनोंको अपने पास बैठा लिया। उस समय अन्य शिष्य भी उपस्थित थे। उन्होंने कहना आरम्भ किया—"भिक्षुओ! सारिपुत्त और मोग्गलायनकी सेवा करो। भिक्षुओ, सारिपुत्त और मोग्गलायन पंडित हैं, सब ब्रह्मचारियोंके अनुग्राहक हैं। भिक्षुओ, जन्मदाताकी तरह सारिपुत्त हैं। जन्मको पोसनेवालेकी तरह मोग्गलायन।"

फिर उन्होंने मोग्गलायनको संबोधित करते हुए कहा—"मोग्गलायन, तुम ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त हो, लेकिन सारिपुत्त महाप्रज्ञावान् है। यही उसकी प्रशस्तिका कारण है।"

मोग्गलायनने सब सुना और विचारा। फिर उसकी मुखमुद्रा बड़ी गंभीर हो गई, मानो उसने सब-कुछ समझ लिया था।

बौद्ध-कला

श्रीमती शचीरानी गुर्टू, एम० ए०

५६३ ई० पू० शैशुनाक-कालमें भारतीय कलाकी कोई खास परम्परा तो विकसित नहीं हुई थी, पर भावी कलाकी उत्प्रेरक एक महान् तेजस शक्ति भगवान् बुद्धके रूपमें अवतरित हुई, जिसने न केवल भारतमें, अपितु उसकी सीमाके परे दूर-दूर तक देशोंपर अपना व्यापक स्थायी प्रभाव डाला। यह धार्मिक अशांतिका युग था। शताब्दियों तक जैन, बौद्ध और ब्राह्मण-धर्ममें परस्पर प्रतिद्वन्द्विता चलती रही। ब्राह्मणोंमें यज्ञ, कर्मकाण्ड, बलि-प्रथा और जात-पाँतका पार्थक्य पराकाष्ठाको पहुँच गया था। यज्ञोंमें बहुत अपव्यय होता था और पशुओंकी बड़ी निर्दयतासे बलि दी जाती थी। जैन-धर्ममें भी तप, उपवास एवं अहिंसाके नियम इतने जटिल और दुस्साध्य थे कि प्रत्येकके बल-बूतेका काम न था कि उन्हें निभा सके। यद्यपि जैन-धर्मके प्रसारके साथ-साथ चित्रकलाका भी प्रचलन बढ़ा, पर यह जनताको अधिक ग्राह्य न हो सका। प्रायः जैन-साहित्य, जिसमें इस सम्प्रदायकी एक विशिष्ट शाखा श्वेतांबरके विषयकी विस्तृत चर्चा है, ताल-पत्रोंपर उल्लिखत मिलता है। विषयको अधिक ग्राह्य और सुपाठय बनानेके लिए उदाहरण-रूपमें प्रचुर चित्रोंका उपयोग किया जाता था। लेकिन ये चित्र जैन-धर्मके ऊब-भरे जटिल नियम-उपनियमोंमें जकड़ सहज काल्पनिक और रूढ़ बनकर रह जाते थे। इनमें कोई स्फुरणशील गति, नयापन या ताजगी न थी। इन्हें स्याहीसे बनाया जाता था और भद्दी, बेजान मोटी रेखाओंमें कोई आकर्षण न होता था। कला और साहित्य एक अवसादमयी जड़तामें सिमटते जा रहे थे। इन तीनोंमें बौद्ध-धर्मने मध्यम मार्ग अपनाया, जिसमें (१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक् वचन, (४) सम्यक् कर्मान्त, (५) सम्यक् आजीव, (६) सम्यक् व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति, (८) सम्यक् समाधि आदि अष्टांगिक मार्ग थे और अहिंसा, सत्य-भाषण, मादक-द्रव्योंके परित्याग, ब्रह्मचर्य-व्रतके पालन आदिपर जोर दिया गया था। उसमें जाति-पाँतिका भेद न था और स्त्री एवं शूद्र तक सत्कर्म द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकते थे।

कलापर बौद्ध-मतकी गहरी छाप

धीरे-धीरे बौद्ध-धर्म अत्यधिक लोकप्रिय हुआ और तत्कालीन कला एवं शिल्पपर उसकी गहरी छाप पड़ी। बुद्धके समय जो शक्ति सोलह गणराज्यों—वत्स, अवन्ती, कोसल, मगध, मल्ल, मौर्य, शाक्य, विदेह, लिच्छवि, वृजि, योधेय, कम्बोज, सुराष्ट्र, कुरु, कुकुर आदि—में विभक्त हो अनेकमुखी हो गई थी, वह क्रमशः संगठित होती गई। सम्राट् अशोकके राज्य-काल तक आते-आते बौद्ध-धर्मका सार्वभौम प्रभाव प्रतिफलत हुआ और नवीं-दसवीं शताब्दी तक वह उत्तरोत्तर बढ़ता गया। यह प्रभाव एकांगी न था, वरन् इसमें कितने ही बाहरी प्रभाव आत्मसात् होकर

पुष्ट हुए थे। मौर्य-साम्राज्यका विस्तार इतनी दूर तक था कि वह भारतकी सीमा लाँघकर अफ़गानिस्तान, बिलोचिस्तान, मकरान, सिन्ध, कच्छ, कश्मीर और नेपाल तक फैल गया था। लोकोत्तरचेता सम्राट् अशोककी कलाभिरुचियाँ अनेक स्तूपों, स्तम्भों, गुहाओं और राजप्रासादोंके निर्माणमें केन्द्रित हो गईं। अशोक-स्तम्भ, जो साँची, सारनाथ, दिल्ली, प्रयाग, मुजफ्फरपुर, बुद्धकी जन्मभूमि लुम्बिनी, लौरिया, नन्दनगढ़ आदि स्थानोंमें पाए गए हैं, एक ही क़िस्मके चुनारके लाल पत्थरको काटकर निर्मित हुए हैं। इनकी ऊँचाई तीससे चालीस फुट तक, वजन पचास टनतक है और ऊपरसे बिना किसी आधारके ये टिके हुए हैं। इनके दो भाग हैं—मुख्य दण्डाकार भाग, जो गोल और ऊपरसे नीचे तक चढ़ाव-उतारदार हैं तथा ऊपर का स्तम्भ-शीर्ष। स्तम्भोंकी गोलाई, चिकनाहट, निर्माण-प्रक्रिया और अद्भुत ओपमें मौर्य-कालकी कलाका चरम उत्कर्ष दीख पड़ता है। सारनाथमें सिंह-शीर्ष-स्तम्भ इतना विलक्षण है कि उसमें सत्, रज, तमकी भव्य भावना अंतर्हित है। ज्ञान प्राप्त कर लेनेके पश्चात् बुद्ध-गयासे लौटकर भगवान् तथागतने सारनाथमें ही भिक्षु-संघके साथ वर्षावास किया था और यहीं सर्वप्रथम धर्म-चक्रका प्रवर्त्तन किया था। सम्राट् अशोकने बुद्धके इसी धर्म-चक्र-प्रवर्त्तनके स्थानपर इस सुप्रसिद्ध स्तम्भकी स्थापना कराई। शीर्ष पर चारों सिंहोंका चार दिशाओंकी ओर मुँह किए बैठे रहना बड़ा ही दर्शनीय है। इनके नीचे चार प्रतिनिधि पशुओं—घोड़ा, शेर, हाथी, बैल—के चित्र बनाए गए हैं तथा बीचोंबीच चारों दिशाओंमें चार धर्मचक्र अंकित हैं, जो चिर-कालसे भारतीय जीवनकी प्रगति, अध्यात्म-भावना और उसकी मंगलमयी प्रेरक शक्तियों—सत्य, अहिंसा, परोपकार, दान, दया और सहिष्णुता—के ज्वलन्त दिग्दर्शक रहे हैं। भारतके दूरातिदूर अतीतकी शौर्य और शक्तिका, धार्मिक और आध्यात्मिक भावनाका यह शासकीय प्रतीक आज भी स्वीकृत कर लिया गया है।

स्थापत्य-कलाका आदर्श

सारनाथके ध्वंसावशेषोंसे ज्ञात होता है कि यहाँ बहुतसे मंदिर, मठ, चैत्य, विहार और शिक्षणालयोंकी स्थापना की गई थी। चीनी यात्री ह्व नसांगने, जो सातवीं शतीमें भारत आया था, लिखा है कि यहाँ तीस बौद्ध-मठ और लगभग सौ हिन्दू-मंदिर थे। मठोंमें तीन सहस्र बौद्ध-भिक्षुओंके रहनेकी व्यवस्था थी। ग्यारहवीं-बारहवीं शतीके मुस्लिम आक्रमणोंने इन सुन्दर कला-स्मारकोंको ध्वस्त कर दिया, फिर भी अवशिष्ट मूर्त्तियाँ और भवन-निर्माण-विधिसे तत्कालीन स्थापत्य-कलाके आदर्शोंपर प्रकाश पड़ता है। अशोकका एक स्तम्भ फिरोज़शाह तुग़लक मेरठसे दिल्ली ले आया था। यह अत्यन्त सुदृढ़, ओपदार पत्थरसे काटकर बनाया गया है, यद्यपि देखने और छूने में यह बिल्कुल धातुका बना हुआ-सा ज्ञात होता है। चम्पारन के रामपुरवा स्थानमें स्तम्भ-शीर्षपर जो भीमकाय वृषभ-मूर्त्ति बनी थी, वह बड़ी ही भव्य और कलात्मक है। कुछ स्तम्भोंके शिखरपर बारीक चित्रांकन हुआ है, यह तद्युगीन

पद्मपाणि बुद्ध (नेपाल और तिब्बतकी कला)

कलाकारोंकी सूक्ष्मदर्शी भावना, गहरी उपलब्धि और सौन्दर्य-साधनाको प्रकट करता है।

जनश्रुतिके अनुसार अशोकके बारेमें प्रसिद्ध है कि उसने तीन वर्षके अल्प कालमें लगभग चौरासी सहस्र स्तूपोंका निर्माण कराया था। अधिकांश स्तूप धलिसात् हो गए हैं, किन्तु इनमें जो कुछ सुरक्षित बच गए हैं, उनमें तत्कालीन कलाका प्राण-रस संचित है। ये स्थूल पवित्र स्थलों अथवा बुद्ध एवं उनके अनुयायियोंकी भस्मीपर बनवाए जाते थे। ये पत्थर या ईंटोंके उलटे कटोरेके आकार और ठोस गुम्बद-से

बने होते थे। इनपर प्रायः अभिलेख खुदे होते थे, जिनमें शासन-व्यवस्था और धार्मिक कार्योंका विवरण रहता था। साँचीका अशोककालीन वृहद् स्तूप आज भी गर्वसे सिर उठाए दर्शकको विस्मय-विमुग्ध कर रहा है। यह उस युगकी उन्नत शिल्प-कलाका द्योतक तो है ही, अशोकके अंत-र्प्रेमकी गाथा भी अपने समस्त साज-संभारके साथ समेटे अडिग खड़ा है। लंकामें उपलब्ध 'महावंश' ग्रन्थमें एक स्थलपर उल्लेख है कि जब राजकुमार अशोक अवन्तीके शासक थे, जिसे कि उनके पिता सम्राट् बिन्दुसारने उन्हें सौंपा था, तो वे उज्जयिनी पहुँचनेके पूर्व विदिशामें ठहरे थे। वहाँ विदिशाके श्रेष्ठीकी आकर्षक कन्या देवीसे उनकी भेंट हुई। उससे उन्होंने विवाह कर लिया और वहीं उनके ज्येष्ठ पुत्र महेन्द्रका जन्म हुआ। दो वर्ष पश्चात् कन्या संघमित्रा उत्पन्न हुई।
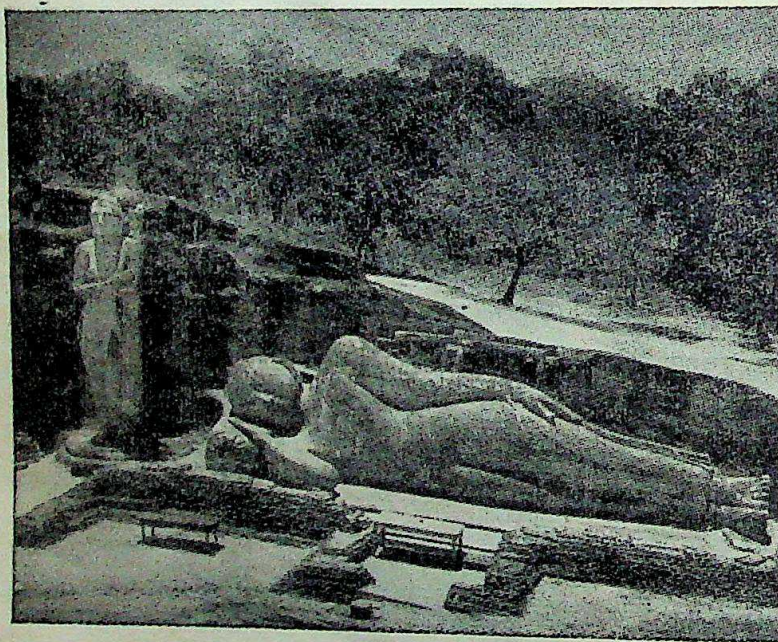
पलोनरुवा (लंका) में एक गुफ़ामें खोदकर बनाई गई बुद्धकी परिनिर्वाण-मूर्त्ति

'महावंश' में आगे लिखा है कि कैसे लंका जानेके पहले महेन्द्र अपनी माँसे मिलने विदिशा आया था। जब वह अपनी माँके सम्मुख उपस्थित हुआ, तो उसने अपने प्यारे पुत्र और उसके साथियोंका गद्‌गद् कंठसे स्वागत किया। उसने स्वयं अपने हाथों भोजन तैयारकर उन्हें खिलाया और बादमें विदिशागिरिके मंदिरमें दर्शन कराने ले गई। साँचीकी योजना तड़क-भड़कवाली नहीं है, वरन् उसमें अद्‌भुत सौम्यता और शांतिका निवास है। महान् मौर्य-साम्राज्यके पूर्व जो आर्य-बौद्ध-संस्कृति यहाँ जड़ जमा चुकी थी और जिसने सर्वांगीण रूपसे क्रमशः समृद्धिकी चरम सीमाएँ स्पर्श की थीं, उसकी समन्वित चेतनाके पुनीत स्मारक-रूपमें साँचीका अशोक-निर्मित स्तूप चिर अमर है। वृहद् स्तूपकी अर्द्धमण्डलाकार गुम्बजकी-सी शक्ल, उसके चारों ओर एक ऊँची मेधि, जो पहले प्रदक्षिणा-पथ थी, इससे लगी हुई दाहिनी तरफ़की दुहरी सीढ़ियाँ, भूमिसे समतल एक अन्य पाषाण-वेष्टनी या स्तूप-वेदिका, जहाँ चतुष्कोण चार तोरण-द्वार एक-दूसरेसे पृथक् बने हैं, इन तोरण-द्वारोंपर नानाविध मूर्त्ति-सज्जा, उत्कीर्ण चित्रण और अति-सूक्ष्म एवं सघन शिल्पसे मंडित श्रमसाध्य कारीगरी—इस प्रकार साँचीमें भारतके प्राचीन स्थापत्य-वभवका विहंगम दर्शन किया जा सकता है। साँची का मूल स्तूप अशोकके समय निर्मित हुआ, किन्तु तोरण शुंगकालीन हैं। तब तक निर्माण-कला और भी परिष्कृत हो चुकी थी। ये तोरण-द्वार इतने सुन्दर और कलापूर्ण हैं कि इनकी उच्चतर कलाकी छाप एकबारगी हृदयपर पड़ती है। आत्यन्तिक रूपसे हरकोण और हर पक्षका निरीक्षण करनेसे कलाकी एकान्तिक सत्ताका पूर्ण सत्य भासमान होने लगता है।

प्रतीक-चिह्न और मूर्त्तियाँ

इन चार तोरण-द्वारोंके वर्गाकार स्तम्भोंपर जो उत्कीर्ण मूर्त्तियाँ और जीवन-प्रसंग हैं, उनमें कलाकारोंकी मानवीय सहानुभूति और नैसर्गिक अभिव्यक्ति तो है ही, विषय-चयन, कल्पना-सामर्थ्य और विविध कला-रूपोंकी भी प्रचुरता है। दक्षिणी तोरण-द्वारपर भगवान् बुद्धके जीवनकी प्रमुख घट-नाएँ, सम्राट् अशोककी रामग्राम-स्तूपकी उत्सव-यात्रा, कमल-पुष्प, वृक्ष आदि चित्रांकित किए गए हैं। उन दिनों भगवान् बुद्धकी मूर्त्तियाँ बनानेकी प्रथा न थी, अतएव उनकी उपासनाके प्रतीकात्मक चिह्न वृक्ष, चरण, छत्र, पादुका, आसन, कमल, धर्मचक्र, स्वस्तिक अथवा रिक्त छोड़कर इस ओर संकेत कर दिया जाता था। तथागतके जीवनकी चार प्रमुख घटनाओं—जन्म, ज्ञानप्राप्ति, प्रथम धर्मोपदेश, परिनिर्वाण—को असाधारण प्रतीकों द्वारा व्यंजित किया गया है—यथा जन्मके लिए सिद्धार्थ-जननी महा-मायादेवीको कमल पुष्पके भीतर आसीन दिखाया गया है।

एक अन्य स्थलपर नवजात शिशुका तो बोध नहीं होता, पर दो हाथी माँ महामायाको भद्रघटोंसे अभिषिक्त कर रहे हैं। बुद्धत्व-प्राप्तिके दृश्यको पीपल-वृक्षके नीचे वज्रासन द्वारा अथवा कहीं-कहीं वृक्षके साथ छतरियों द्वारा या उपासना-आराधना करती हुई भक्त-मंडली द्वारा प्रकट किया गया है। धर्मोपदेशका प्रतीक चक्र है, जो सिंहासन या सिंह-स्तम्भपर प्रतिष्ठित है। कहीं-कहीं मृगदायके स्मृति रूप दो मृग भी दोनों ओर बैठे दिखाए गए हैं। परिनिर्वाण की स्थितिको प्रज्वलित चिता द्वारा, जिसकी अभ्यर्थनामें मनुष्य और देवता दोनों खड़े हैं, अथवा महानिर्वाण-स्तूप द्वारा दर्शाया गया है।

पूर्वी, पश्चिमी और उत्तरी तोरण-द्वारोंपर भी बुद्ध की जातक और पूर्व जन्म की कथाएँ बड़े कौशलसे उकेरी हुई मिलती हैं। बड़ेरियोंपर पशु, त्रिरत्न और धर्म-चक्र अंकित हैं। स्तम्भोंके निम्न भागमें प्रहरी यक्ष, उससे भी नीचे भीतरकी ओर चौमुखे हाथी और बौने तथा बाहरकी ओर वृक्ष सहित यक्षिणियाँ चित्रित की गई हैं। सारे दृश्य आँखोंके समक्ष सजीव-से हो उठते हैं। नारियोंकी उत्कीर्ण मूर्त्तियों में अलंकारोंकी अपूर्व छटा, शरीरका बहुविध साज-शृंगार और बड़ी ही भावपूर्ण मनोमोहक भंगिमाएँ हैं। कभी-कभी इतना झीना या अल्प वस्त्र उन्हें पहनाया गया है कि शरीरके अंग-प्रत्यंग अनावृत्त-से दिखते हैं, किन्तु ऐसा मर्यादित सीमामें ही हुआ है। कहीं भी अश्लीलता या असंयम नहीं आ पाया है। यक्षिणियोंकी प्रतिमाएँ अंकित करनेका उस युगमें काफ़ी प्रचलन था। प्रायः हाथमें चँवर लिए हुए उन्हें चित्रित किया गया है। मूर्त्तियों में भौतिक और आध्यात्मिक, ऐहिक सुख-साधन और उपरांत का समन्वित भाव द्रष्टव्य है।

अन्य स्तूपोंकी विशिष्टता

बड़े स्तूपके अलावा स्तूप संख्या ३ भी दर्शनीय और ऐतिहासिक महत्त्व लिए है। इस स्तूपकी ख्याति इसलिए भी है कि यहींसे भगवान बुद्धके दो प्रमुख अग्रश्रावक—सारिपुत्त और मौद्गल्यायन—जो उनके दाएँ और बाएँ हाथ समझे जाते थे—के पवित्र अवशेष प्राप्त हुए थे। सन् १८२२ में सर्वप्रथम कैप्टेन जान्सनने इस स्तूपका मुंह खोला था। सन् १८५१ में जनरल कनिंघम और लेफ्टिनेन्ट मेसीको शिलाके नीचे भूरे पत्थरके दो बक्स मिले। प्रत्येक बक्सकी लम्बाई-चौड़ाई डेढ़ फुट और उसका आवरण छः इंच मोटा था। आवरणपर पाली-लिपिमें कुछ लिखा था। दक्षिणकी ओर जो बक्स प्राप्त हुआ, उसके भीतर श्वेत पत्थर की छः इंच चौड़ी और तीन इंच ऊँची एक डिबिया मिली, जिसमें महास्थविर सारिपुत्तकी एक अस्थि रखी हुई थी।
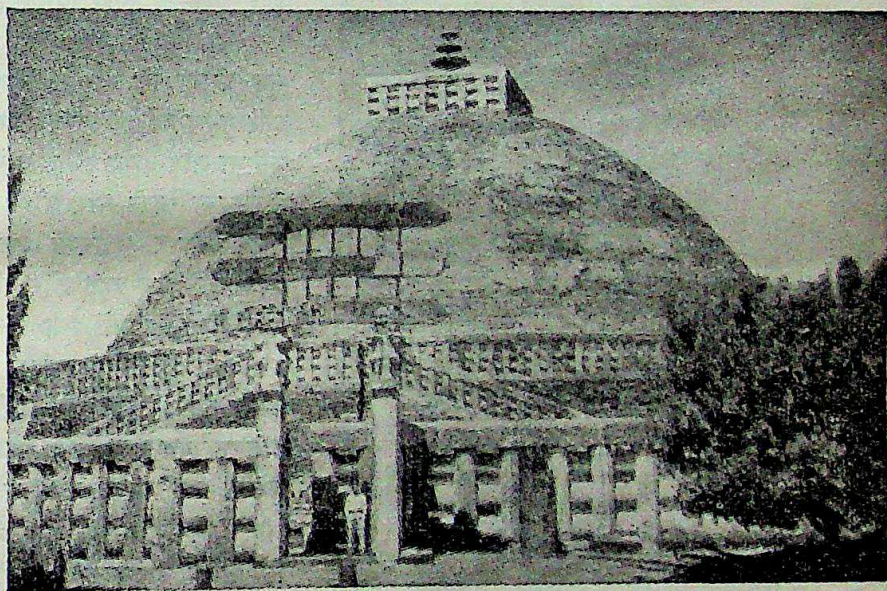
साँचीका बड़ा स्तूप और उत्कृष्ट चित्रकारीयुक्त तोरण

उसके साथ मालाके सब तरहके मनके भी थे। उत्तरसे प्राप्त होनेवाले बक्समें महास्थविर मौद्गल्यायनकी दो अस्थियाँ प्राप्त हुईं, जिसमें बड़ी अस्थि आधे इंचसे भी छोटी थी। सारिपुत्तवाली डिबियाके ढक्कनपर ब्राह्मी अक्षर 'स' और मौद्गल्यायनकी डिबियाके ढक्कनपर भीतरकी ओरसे 'म' लिखा हुआ था। ये अस्थियाँ तत्काल लंदन पहुँचाई गईं। वर्षोंसे इस बातका प्रयत्न किया जा रहा था कि इन्हें पुनः बौद्ध-संसारको सौंप दिया जाय। लगभग सौ वर्षोंसे भी अधिक समयके पश्चात् इन अर्हतोंके पवित्र अवशेष इधर लाए गए और साँचीके नवनिर्मित विहारमें इनकी पुनर्स्थापना कर दी गई। स्तूप संख्या ३ में भी जनरल कनिंघमको सम्राट् अशोककी तृतीय संगीतिमें भाग लेनेवाले बौद्ध-भिक्षुओं के पावन अवशेष मिले थे। इस स्तूपमें कोई तोरण नहीं है, जबकि बड़े स्तूपमें चार तोरण और स्तूप संख्या ३ में एक

तोरण है। यहाँ कुछ और स्तूप भी जीर्ण-शीर्ण अवस्थामें बिखरे पड़े हैं।

अशोकने बौद्ध-भिक्षुओंके लिए चैत्य, विहार और कुछ कंदराएँ भी पहाड़ काटकर बनवाई थीं। इनके भीतर की पालिश शीशेकी भाँति चमकती है और शिलाखंडोंपर अंकित लिपि भी सुपाठ्य और स्पष्ट है। चीनी यात्री मेगस्थनीज और फाह्यानने पाटलिपुत्र-स्थित मौर्यकालीन राजप्रासादोंको स्वयं जाकर देखा था। वे उनके अद्भुत
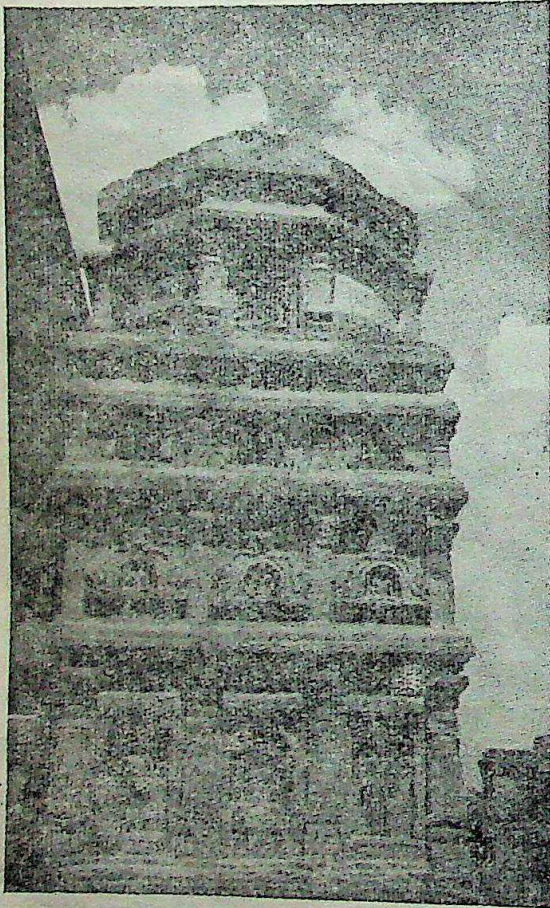
बौद्ध-गयाका एक विहार

कला-शिल्प और निर्माण-चातुर्यको देखकर दंग रह गए थे। फाह्यानने लिखा है कि ये महल मनुष्यों द्वारा निर्मित नहीं, बल्कि देवताओं और दैत्यों द्वारा बनवाए गए हैं!

मौर्यों और शुंगोंके समयकी कला

मौर्यकालीन स्तूपोंकी यह परम्परा शुंग-काल तक चलती रही, किंतु मध्य-भारतके नागोद-राज्यमें निर्मित भरहुतका वृहद् स्तूप ही अधिक प्रसिद्ध हुआ। यहाँ भी साँचीकी तरह बुद्ध-सम्बन्धी जातक-कथाओं और ऐतिहासिक घटनाओंका चित्रण मिलता है। यह स्तूप तो नष्ट हो चुका है, पर इसकी मूर्त्तियों और दृष्योंसे अलंकृत वेष्टनियाँ अब भी कलकत्तेके भारतीय संग्रहालयमें सुरक्षित हैं। भरहुत में लोक-जीवनसे सम्बन्धित मनोरंजक दृश्य और व्यंग्य-चित्र भी अंकित हैं। बन्दरोंवाला दृश्य, जो हाथियोंको गाजे-बाजेके साथ लिए जा रहा है, बड़ा ही हृदयग्राही और कौतुकपूर्ण है। एक दूसरे दृश्यमें एक आदमीका दाँत एक बड़े भारी सँडासेसे हाथी द्वारा खींचा जा रहा है। इसमें हास्य और व्यंग्य भरा पड़ा है। भरहुतकी अधिकांश मानव-मूर्त्तियाँ चपटी और दोषपूर्ण हैं, किन्तु उस युगकी कला और लोक-जीवनकी दिग्दर्शक हैं।

मौर्योंके पतनके बाद शुंग-राजाओंने ब्राह्मण-धर्मका खूब प्रचार किया। प्रसिद्ध ग्रन्थ 'मनुस्मृति' की रचना इसी समय हुई। कलाकी रूपरेखा, आकार-प्रकार, भाव-भंगिमा और बाह्य इंगित व चेष्टाओंमें अन्तर आ गया था। मौर्य-कला सादी और सौम्य सौष्ठव लिए होती थी, किन्तु शुंग-कलाकार शरीरकी गढ़न, अंग-प्रत्यंगकी पूर्णता और भाव-प्रदर्शनपर बहुत ज़ोर देते थे। पत्थरकी खुदाई और नक्काशीके काममें ख़ूब तरक्की हुई थी। शुंग, कण्व और सातवाहन वंशके शासक कट्टर ब्राह्मण थे; अतएव शिव, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, माँ लक्ष्मी, दुर्गा आदि देवी-देवताओंकी प्रतिमाएँ बनने लगीं। ब्रह्मा—सृष्टिका सर्जक, विष्णु—समस्त जड़-जंगम, चर-अचरका पालन-पोषण करनेवाले और शिव—जिनकी भृकुटीमें नाश और निर्माणकी शक्ति निहित थी, इस तरह मूर्त्तियोंके विधानमें भक्तोंके अचिन्त्य अनुग्रहको साकार किया जाने लगा। देव-मूर्त्तियोंके साथ-साथ चैत्यों और मंदिरोंकी आवश्यकता भी अनुभव हुई। पारमार्थिक सत्ता जागतिक प्रतीतिकी अवहेलना करती हुई गूढ़ भावोंकी व्यंजनामें खो गई। यूरोपियन मूर्त्तियोंकी भाँति उनमें दैहिक और आत्मिक द्वन्द्व न था, वे तो लोकोत्तर आनन्दकी सृष्टि करती हुई तुरन्त ही दर्शकको अपनी पावनता से अभिभूत कर लेती थीं।

प्रौढ़ और सूक्ष्म मूर्त्ति-कला

साँची, भरहुत, बोद्ध-गया और उड़ीसाकी शुंगकालीन कलामें देवी-देवताओंकी मूर्त्तियोंमें ऐसी चैतन्य-शक्ति निहित है, जो गूढ़, सोद्देश्य और अर्थव्यंजक तो है ही; अचिन्त्य, अपरिमेय ब्रह्मकी पारलौकिक सत्ताका भी आभास देती हैं। वैष्णव-धर्ममें जैसे-जैसे राम और कृष्णकी लीलाओं और अवतार-कल्पनाके नए आख्यान जुड़ते गए, कलाका भी व्यापक प्रसार होता गया। बौद्ध-धर्ममें अभी तक मूर्ति-पूजाका प्रचलन न था, पर भागवत-धर्मके प्रभावसे ये लोग

भी भगवान् बुद्धकी प्रतिमाएँ गढ़ने लगे! उपास्यके पूर्णत्व को साकार करनेके लिए मूर्त्ति-शिल्पीको गहरी भूमिकामें उतरना पड़ता था। भाव-भंगिमा, अध्यात्म-भाव और सरल सुस्पष्ट देवत्वको दर्शानेके लिए कलात्मक कल्पना अधिक प्रौढ़ और सूक्ष्म हो गई थी। वेसनगर (बड़ौदा) के परखम ग्रामसे प्राप्त मणिभद्र यक्षकी मूर्त्ति, पटनासे प्राप्त एक यक्ष-मूर्त्ति तथा दीदारगंग (पटना) की सुविख्यात् विशालकाय चामरधारिणी यक्षीकी मूर्त्ति, जो मौर्यकालीन कही जाती है तथा साँची व भरहुतके वृहद् स्तूपोंकी यक्ष-यक्षिणियोंकी मूर्त्तियोंकी इधरकी शुंग-सातवाहनकालीन मूर्त्तियोंसे तुलना करनेपर स्पष्ट अन्तर दीख पड़ता है। भारी डील-डौल और निर्माण-प्रक्रिया उच्च परम्पराओंके विकासकी द्योतक होते हुए भी उनमें उतनी उत्कट भावना परिलक्षित नहीं होती। लेकिन समयकी प्रगतिके साथ अंतरंग चिंतन अधिकाधिक उभरता गया। भागवत-धर्म, शैव-धर्म और बौद्ध-धर्मसे प्रेरित प्रतिद्वन्द्वी भावनाओंने एक-दूसरेसे बढ़कर सबल इंगितों द्वारा दर्शकको अभिभूत करनेकी चेष्टा की। मूर्त्तियोंकी अनुपातिक गढ़नमें तो अंतर आ ही गया था, भावाभिव्यक्तिमें भी पर्याप्त अन्तर दीख पड़ता था।

कलाका वैविध्य और अलंकरण

इस युगमें अनेक सुन्दर स्तूपोंका निर्माण हुआ और शिला-लेख भी लिखे गए। पर्वतोंकी विशाल चट्टानोंको काटकर गुफ़ाएँ भी बनाई गईं; जो चैत्य और विहार कहलाती थीं। 'विहार' बौद्ध-भिक्षुओंके लिए और 'चैत्य' मंदिरोंके रूपमें उपासनाके लिए बनाए जाते थे। नासिकमें बौद्ध-भिक्षुओं की गुफ़ाएँ, उड़ीसामें ख़ण्डगिरि और उदयगिरिकी गुफ़ाएँ, काले कन्हेरी भाजाकी गुफ़ाएँ और कार्लीके बौद्ध-चैत्य इसी पद्धतिसे चट्टानोंको काटकर बनाए गए हैं। इन चैत्यों और गुफ़ाओंकी स्तम्भ-पंक्तियों, दीवारों और दरवाज़ोंको सुन्दर चित्रों और मूर्त्तियोंसे भी अलंकृत किया जाता था। कार्लीके चैत्य-विहारोंके आश्चर्यकारी जीवन्त शिल्पको देखकर तद्युगीन कलाके वैविध्य और अलंकरणके प्राचुर्य के दर्शन किए जा सकते हैं। महाराष्ट्रमें ऐसी गुफ़ाएँ 'लेण' और उड़ीसामें 'गुम्फ़ाएँ' कहलाती थीं। सातवाहन-कालमें स्तम्भोंकी परम्परा भी सर्वथा लुप्त न हुई। विदिशाका सुप्रसिद्ध 'गरुड़ध्वज', जिसकी द्वितीय शताब्दी ई० पू० यूनानी राजदूत हेलिने स्थापना कराई थी, हिन्द-यूनानी वास्तुका सुन्दर निदर्शन है, फिर भी उसमें अशोक-स्तम्भोंकी-सी चमक और ओप नहीं है।

बौद्ध-कलाका उत्कर्ष

गुप्त-राजाओंके समय बौद्ध शिल्प एवं कला चरम उत्कर्षपर पहुँच गई। सौंदर्य एवं कला जीवनमें इतनी समाविष्ट हो चुके थे कि वे अपने युगकी सर्वांगपूर्ण कृतियों की तन्मयतामें डूबकर साकार हुए। मौर्यकालीन रूढ़ अकला-परम्पराओंका अतिक्रमण कर कला-चेतना सुदूर अतीतके गौरवसे मंडित आभ्यंतर प्रकाशकी दीप्तिसे जगमगा उठी थी। तत्कालीन कलामें भावनाका उदात्त आरोहण पद-पदपर परिलक्षित होता है। समस्त आनन्द और साधना और तल्लीनता, स्फूर्त्ति और अन्तःशक्ति उभरकर भारतीय कलाके स्वर्णिम विहानकी प्रभाको अजंताके अंतर्पटल में रूपायित कर रही हैं। यद्यपि दो सहस्र वर्षोंके थपेड़ों की मार उसने सही, पर आज भी कला-साधकोंके प्राणोंकी धड़कन वहाँकी रंगीन रेखाओं और निर्भर संकेतोंमें लहर-लहर-सी उठती है। समयकी निर्बाध असीमता भी धूमिल प्रकाशमें सिहरते उन अगणित रंगोंका सुषमा-कोष न मिटा सकी, जो कलाकी गतिमें एकाकार-सा लगता है। जैसे चरम निर्माण वहाँके कण-कणमें मूर्त्तिमान् हो उठा हो, निराकार और साकार रूप अनपढ़ शिला-खंडोंमें समा जानेको मचल रहा हो, भीतरी प्रेरणाकी मनुहारें छेनी और हथौड़ोंकी चोटोंमें गूँजकर बिखर गई हों और जैसे कलाकी पयस्विनी परिचित छाया-पथमें उतराती-उमड़ती शाश्वत प्रकाश-पुंज बनकर अक्षुण्ण व अमर बन गई हो।

जावामें बौद्ध-कला

डा० विश्वनाथ नरवणे

भारतके लोगोंका इस बातपर गर्व करना स्वाभाविक है कि इसी देशमें तथागतका जन्म हुआ, यहीं उन्होंने महा-बोधि प्राप्त करके चालीस वर्ष तक धर्मोपदेश दिया और इस देशके कलाकारों और दार्शनिकोंने उनके व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर अद्‌भुत सफलताएँ प्राप्त कीं। लेकिन इस राष्ट्रीय गर्वकी परिणति कभी-कभी अन्य देशोंकी सफ-ताओंकी उपेक्षामें हो जाती है। साँची, नालन्द, सारनाथ और अजन्ताका विश्व-संस्कृतिके इतिहासमें बहुत ऊँचा स्थान है; परन्तु भारतके बाहर बौद्ध-कलाकी जो आश्चर्यजनक उन्नति हुई है, उसे गौण समझना या उसकी अवहेलना करना भी अनुचित होगा। ईसाकी पाँचवीं शताब्दीके बाद तो बौद्ध-धर्मका और बौद्ध-कलाका विकास भारतकी अपेक्षा पूर्व-एशियाके देशोंमें ही अधिक हुआ। लंका, बर्मा, चीन, जापान, तिब्बत, कंबोडिया और जावामें अब तक बौद्ध वास्तुकलाके अच्छे-से-अच्छे नमूने मौजूद हैं। इन देशोंकी अपनी-अपनी स्थानीय परंपराएँ होनेके कारण इस कलामें वैचित्र्य और विविधता भरपूर है। साथ-ही-साथ इन सभी देशोंकी कलामें एक मूलभूत सामंजस्य भी है, क्योंकि तथागत-संबंधी आख्यायिकाओंके आधारपर ही सभी कला-कारोंने काम किया। मैत्री, दया और शान्तिके आदर्शोंने और बुद्ध भगवानके महान चरित्रने एक-दूसरेसे हजारों मील की दूरीपर स्थित मंदिरों, स्तूपों और मूर्त्तियोंको एक सूत्रमें बाँध दिया है।

स्तूपोंकी कला

बौद्ध-वास्तुकलाका सबसे पहला माध्यम था स्तूप। 'महापरिनिर्वाण सूत्र'में इस बातका उल्लेख है कि तथागत ने देहावसानके कुछ ही समय पूर्व यह आदेश दिया था कि उनके पार्थिव अवशेषोंको भूमिमें गाड़कर उस स्थानपर एक स्तूपका निर्माण किया जाय। फलतः परिनिर्वाणके बाद उनकी अस्थियोंका विभाजन हुआ और फिर जगह-जगह स्तूप बनने लगे। पहले-पहल जो स्तूप बने, उनमें कोई सजावट नहीं थी, न भित्तिचित्र थे, न पत्थरकी खुदाई का काम, न मूर्त्तियाँ। केवल एक पुनीत स्मृतिको जीवित रखनेके उद्देश्यसे उनका निर्माण हुआ। लेकिन मानव जिस वस्तुमें भी हाथ लगाता है, उसको सुशोभित करनेकी उसकी प्रवृत्ति होती है। धीरे-धीरे स्तूपोंका कलात्मक मूल्य बढ़ता गया, उनमें सुसज्जित प्रवेश-द्वार जोड़ दिए गए, विख्यात शिल्पियोंको उनके निर्माणमें योग देनेके लिए निमंत्रित किया गया। स्तूपोंके इस बदले हुए रूपका सबसे सुन्दर उदाहरण है जावा-द्वीपका सुविख्यात बोरो-बुदुर-स्तूप। केवल बौद्ध-कलाके ही नहीं, वरन् सारे संसारके सांस्कृतिक इतिहासकी श्रेष्ठतम कृतियोंमें इस स्तूपको गिना जाता है। इतने बड़े पैमानेपर कभी किसी देशमें अन्य कोई स्तूप नहीं बनाया गया। पिछले पचास वर्षोंमें अनेक बौद्ध-विद्वानों और पुरातत्ववेत्ताओंका ध्यान इसकी ओर खिंचा है। फल-स्वरूप यहाँकी शिल्प-कलाके विषयमें अनेक विवादग्रस्त प्रश्न उठाए गए हैं। भारतीय संस्कृति और कलाका विदेशोंपर जो प्रभाव पड़ा है, उसका अध्ययन आज नए सिरेसे किया जा रहा है। इस अध्ययन के लिए बोरोबुदुर-स्तूपकी विशेषताओंको समझना नितान्त आवश्यक है।

प्राकृतिक पृष्ठभूमि और इतिहास

बौद्ध-धर्मके विषयमें जो अनेक गलत धारणाएँ सदियों तक प्रचलित रही हैं, उनमें से एक यह भी है कि बौद्धोंके लिए प्राकृतिक सौन्दर्यका कोई महत्त्व नहीं हो सकता। वास्तवमें परिस्थिति इसके बिल्कुल विपरीत है। स्वयं तथागतके शब्दोंसे यह स्पष्ट है कि वे प्राकृतिक सौन्दर्यके प्रति उदासीन नहीं थे। बुद्धके शिष्य और बादमें बौद्ध भिक्षुगण जिस प्रकारसे जीवन व्यतीत करते थे, उसको देखते हुए यह स्वाभाविक ही मालूम होता है कि प्रकृतिके मृदु, कोमल और शांतिमय पक्षका उनके ऊपर गहरा प्रभाव पड़ता। करुणा, स्नेह और सहानुभति ही जिनका धर्म हो, उनसे अधिक संवेदनशील व्यक्तियोंकी कल्पना कैसे की जा सकती है?

मूर्त्ति और मन्दिर

बौद्ध-कला भी प्रकृति-प्रेमसे ओतप्रोत है। नदियों, झरनों, वृक्षों और पशु-पक्षियोंसे बौद्ध चित्रकारों और शिल्पकारोंको कितना लगाव था, यह अजन्ताके चित्रपटों और बोरोबुदुरके मूर्त्तिपटोंसे स्पष्ट हो जाता है। किसी इमारतके लिए स्थानका चुनाव करना भी एक कला है और यह कला वही आत्मसात् कर सकते हैं, जिनका प्रकृति-ज्ञान केवल बौद्धिक नहीं, हार्दिक और आन्तरिक हो। बोरो-बुदुर-स्तूपके लिए भी जो स्थान चुना गया है, वह जावा द्वीपके ही नहीं, समस्त एशियाके सबसे सुन्दर स्थानोंमें एक

है। इसीलिए इस प्रदेशमें स्तूपके अतिरिक्त अन्य मंदिर भी बनाए गए। इनमेंसे दो मंदिर और चन्दी पावोन अबतक सहस्त्रों यात्रियोंको आकृष्ट कर चुके हैं।चन्दी मेन्दुतमें बोधिसत्वकी कुछ ऐसी मूर्त्तियाँ हैं, जो सुन्दर होनेके साथ ही ऐतिहासिक दृष्टिसे भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। लेकिन जिस तरह ताजमहल के सामने आगरेकी अन्य मध्ययुगीन इमारतें फीकी लगती हैं, उसी तरह बोरोबुदूर की अलौकिक कीर्त्तिसे इन दो सुन्दर मंदिरोंका महत्त्व कुछ कम हो गया है।

बोरोबुदूर-स्तूप एक पहाड़ीके ऊपर बनाया गया है। नीचे 'प्रोगो' नदीकी रम्य घाटी है, जिसमें नारियल के सहस्रों वृक्ष हवामें झूमते हैं। पूर्वकी ओर जो ज्वाला-मुखी दिखाई पड़ते हैं, उन्हें संसारके सुन्दरतम ज्वाला-मुखी-पर्वतोंमें गिना जाता है। इनके नाम हैं 'मेर-बबु' (भस्म-पर्वत) और 'मेर-अपि' (अग्नि-पर्वत)। दक्षिणकी ओर एक लम्बी पर्वतमाला है। पश्चिमकी ओर समुद्र की सतहसे दस हज़ार फीट से भी अधिक ऊँचा 'सम्बिग' का शिखर है, और स्तूपके उत्तरमें है असीम, उन्मुक्त सागर। संसारकी कितनी इमारतोंको ऐसा अनुपम प्राकृतिक परिवेष मिला होगा?

स्तूपके निर्माण-कालके विषयमें मतभेदका स्थान बहुत कम है। करीब-करीब निश्चित रूपसे यह कहा जा सकता है कि स्तूप आठवीं शतीमें बनाया गया। बुद्धके परि-निर्वाणके बाद एक हज़ार वर्ष तक बौद्ध-धर्मका प्रचार जावा द्वीपमें बहुत कम हुआ। चीनी यात्री फ़ाहियान जब पाँचवीं शताब्दीके आरम्भमें यहाँ पहुँचा, उस समय यहाँ बौद्धोंकी संख्या बहुत कम थी, जिसपर उसने आश्चर्य व्यक्त किया है। जावामें अब तक जो शिलालेख मिले हैं, उनमें सबसे प्राचीन सन् ७७८ ईस्वीका है। यह शिलालेख मध्य जावामें कलसन गाँवके पास प्राप्त हुआ था। इसमें एक मंदिर और कई विहारोंका उल्लेख है, जो विनय तथा महा-यानके प्रकांड विद्वान भिक्षुओंके लिए बनाए गए थे। मंदिर के प्रस्थापनका श्रेय शैलेन्द्र-वंशके एक नरेशको दिया गया है। इस राज्य-वंशका उल्लेख प्राचीन भारतीय इतिहास में भी कई स्थानोंपर मिलता है। नालंदमें और कोरोमंडल सागर-तटपर नेगापटमूमें भी शैलेन्द्रोंने विहार बनवाए थे।

बोराबुदूर मन्दिरमें स्थित बुद्धकी एक पद्मासनी प्रतिमा

स्तूपकी रचना और विन्यास

बोरोबुदूरका स्तूप दूरसे कुछ अजीब-सा लगता है। बहुत-से आधुनिक वास्तुशिल्पी इसको देखकर विस्मित और निराश हुए हैं। उनमेंसे एकने यहाँ तक लिखा है कि "यह इमारत स्वयं निश्चय न कर सकी कि इसका आकार गोल हो
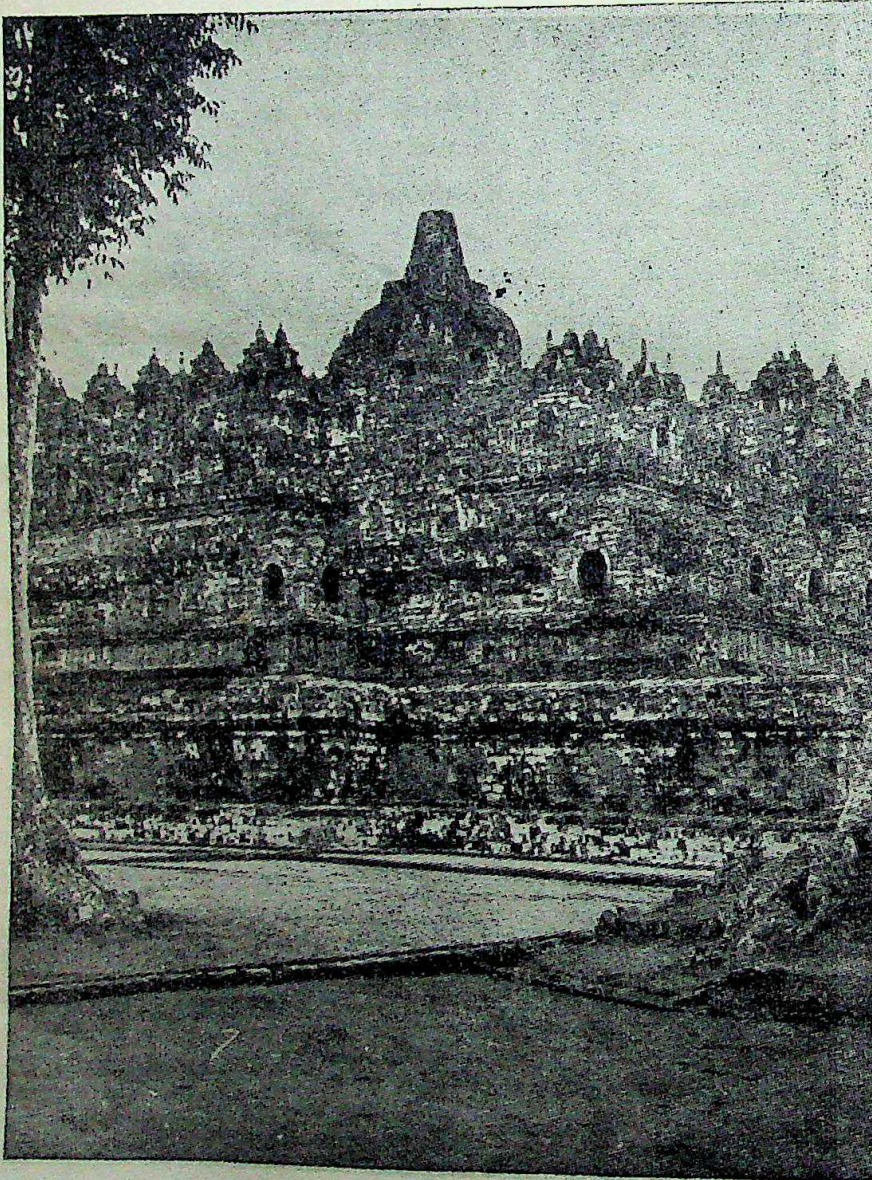
बोरोबुदूरके बौद्ध-स्तूपका बाहरी दृश्य

या 'पिरेमिड'-जैसा हो !" किसी सीमा तक इस विकृतिका कारण यह है कि यहाँ विभिन्न शैलियोंका समन्वय कराने का यत्न किया गया है। बौद्ध-स्तूप होते हुए भी मंदिरके भी कुछ गुणोंका इसमें समावेश कर लिया गया है। गान्धार-शैलीकी अपेक्षा दक्षिण-भारतकी कलाका जावाके शिल्पियोंपर अधिक प्रभाव पड़ना, ऐतिहासिक परिस्थितियों को देखते हुए, स्वाभाविक ही था। शैलियोंके इस सम्मिश्रणसे स्तूपके आकारमें कुछ अनोखापन आ गया है। विशेषज्ञोंका यह भी अनुमान है कि जब स्तूपकी कुछ मंज़िलें बन चुकीं, उस समय दीवारोंके ज़मीनमें धँसनेके लक्षण दिखाई पड़े और इसलिए इमारतको अधिक बल देनेके उद्देश्यसे, नींवके चारों ओर एक और मोटी दीवार बना दी गई। परिणाम-स्वरूप स्तूप और भी अधिक चौड़ा मालूम पड़ने लगा। आश्चर्य की बात तो यह है कि इस दुर्घटनाके बावजूद शिल्पियों की कलाने आकारके अनोखेपनको खपा दिया है। स्तूप का चौड़ापन बहुत ही कम समय तक आँखोंमें खटकता है और वह भी दूरसे। जब हम पास पहुँचकर एकके बाद एक स्तूपके दूसरे गुणोंसे परिचय लाभ करते हैं, तब इस त्रुटिको भूल जाते हैं।

स्तूप नौ मंज़िलोंका है। नीचेकी छः मंज़िलें वर्गाकार हैं और ऊपरकी तीन गोलाकार। चारों दिशाओं से सीढ़ियाँ ऊपरको गई हैं। हर मंज़िलपर पहुँचकर इनमेंसे प्रत्येक सीढ़ी एक भव्य प्रवेशद्वारसे होकर गुज़रती हैं। प्रत्येक प्रवेशद्वार के ऊपर सिंह और मकर बने हुए हैं और प्रत्येक मंज़िलपर बरामदे हैं, जिनसे यात्री पूरे स्तूपकी प्रदक्षिणा कर सकता है। इन बरामदोंकी दीवारोंपर इतने प्राचुर्यसे शिल्पकलाकी गई है कि कोई कोना खाली नहीं दिखाई पड़ता।

थोड़े-थोड़े फासलेपर तथागतकी विशाल मूर्त्तियाँ हैं। इन्हींमें बोरोबुदूरकी कलाका सबसे विकसित रूप हमारे सामने आता है। मूर्त्तियाँ सब एक ही ऊँचाईकी

हैं। जो-कुछ अन्तर है, तथागतकी आँखोंके भावमें और हाथोंकी मुद्राओंमें है। उत्तरकी ओर 'अमोघसिद्ध बुद्ध' की मूर्त्तियाँ हैं, जिनको हम 'अभयमुद्रा'में देखते हैं। पूर्व की तरफ जितनी मूर्त्तियाँ हैं, सब 'अक्षोभ्य बुद्ध' की हैं, जिनकी मुद्रा प्रसिद्ध 'भूमि-स्पर्श' मुद्रा है। बोरोबुदूर स्तूपमें इस मुद्राका विशेष महत्त्व है, जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे। दक्षिणकी ओर 'रत्नसंभव बुद्ध' हैं, वरद मुद्रामें। एक हाथ ऊपर उठा है, आँखोंमें असीम शांति और प्रेम है। भगवान सारी मानव-जातिको ही वरदान दे रहे हैं। और पश्चिमकी ओर है तथागतका सुपरिचित 'अमिताभ'-रूप ध्यान-मुद्रामें। इनके अतिरिक्त बुद्धकी अनेक मूर्त्तियाँ वितर्क मुद्रामें भी हैं। इनमें तथागतको किसी जटिल दार्शनिक समस्याका विवेचन करते हुए दिखाया गया है। प्रत्येक दिशामें बुद्ध-प्रतिमाओंकी कुल संख्या एक सौ आठ है। यह संख्या भारतमें सर्वदा ही शुभ मानी गई है।

जब हम नीचेकी मंज़िलोंसे ऊपर उठकर वर्तुलाकार मंज़िलोंपर पहुँचते हैं, तो हम अनुभव करते हैं कि सहसा सजावटका स्थान सादगीने ले लिया है। यहाँ जितनी मूर्त्तियाँ हैं, सब 'धर्मचक्र-प्रवर्तन-मुद्रा'में हैं। सबसे ऊपर की मंज़िलपर जो गुम्बद है, वही इस महान स्तूपका केन्द्र-बिंदु है। यह बिल्कुल उसी प्रकारका सीधा-सादा गुम्बद है, जैसा तथागतके परिनिर्वाणके बाद शीघ्र ही बनाए गए स्तूपोंमें हुआ करता था। बोरोबुदूरके स्तूपमें सजावट और सरलताका यह विरोध अत्यन्त अर्थपूर्ण है। नीचे की मंज़िलें, जिनमें शिल्पकलाकी भरमार है, व्यावहारिक जगत्का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन्हें पीछे छोड़ जब हम ऊपरकी अन्य गोलाकार मंज़िलोंपर पहुँचते हैं, तो हमें क़दम-क़दम पर जताया जाता है कि अब हम व्यावहारिक जगतमें नहीं हैं, एक उच्चतर आध्यात्मिक जगतमें पदार्पण कर रहे हैं, जहाँ बाह्य सुन्दरताका महत्त्व नहीं, जहाँ सरलता और मननका आधिपत्य है। इस तरह हम देखते हैं कि इस विशाल भवनका निर्माण आदिसे अंत तक एक उदात्त कल्पनाके आधारपर किया गया है।

एक विशिष्ट मूर्त्ति

यहाँ बोरोबुदूरमें प्राप्त एक ऐसी मूर्त्तिका उल्लेख भी आवश्यक ह, जिसके बारेमें काफ़ी तीव्र मतभेद है। यह मूर्त्ति स्तूपके मध्य स्थानमें मिली थी। जहाँ पवित्र अस्थियाँ रखी जाती थीं, वह स्थान सभी स्तूपोंमें इसी तरह बीचो-बीच हुआ करता था। ऐसे पवित्र स्थानपर मिली हुई प्रतिमाके विषयमें यह अपेक्षा की जा सकती है कि कलाकारों ने उसपर अपना पूर्ण कौशल लगा दिया होगा। पहले बोरोबुदूरकी यह मूर्त्ति अपूर्ण दशामें ही छोड़ दी गई थी। तथागतके हाथ, पैर, कान और केश-विन्यासकी ओर संकेत-मात्र किया गया है, उन्हें ठीकसे नहीं बनाया गया। विद्वानोंमें बहस इस बातकी है कि क्या जान-बूझकर ही मूर्त्तिको अपूर्ण रखा गया है? कुछ लोगोंके अनुसार यह प्रतिमा 'आदि-बुद्ध'की है। प्रसिद्ध बौद्ध-विद्वान कर्नके स्पष्ट शब्दोंमें, सिद्धार्थ जब अपनी माताके गर्भमें थे, उस अवस्थाकी ओर कलाकारका संकेत है। इसके विपरीत कुछ लोगोंका अनुमान है कि भविष्यमें बनाई जानेवाली बड़ी मूर्त्तिका यह एक मॉडेल-मात्र है। फ्रेंच-विद्वान फूशेर का यह अभिमत युक्ति-संगत जान पड़ता है कि यह अपूर्ण प्रतिमा उस मूर्त्तिकी नक़ल है, जो बोधि-वृक्षके नीचे वज्रासन-पर प्रस्थापित है। चीनी सूत्रोंके आधारपर यह निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि सातवीं शतीसे ग्यारहवीं शती तक बोधगयाको संसारके सभी बौद्ध सबसे बड़ा तीर्थस्थान मानने लगे थे। एक और बातसे फूशेरके मतको बल मिलता है। अपूर्ण होते हुए भी बोरोबुदूरकी प्रतिमामें भूमि-स्पर्श-मुद्राके स्पष्ट चिन्ह हैं। बोधगयाकी मूर्त्ति भी इसी मुद्रामें है, और इस बातके ऐतिहासिक प्रमाण हैं कि जिस कालका यह स्तूप है, उस समय बौद्ध जगत्के अधिकतर कलाकारोंने बोधगयाकी मूर्त्तिको ही अपना आदर्श बना लिया था। भूमि-स्पर्श-मुद्रा अत्यन्त लोकप्रिय हो चुकी थी और भारतसे प्रतिवर्ष वैसी सैकड़ों मूर्तियाँ विदेशोंमें भेजी जाती थीं।

भूमि-स्पर्श-मुद्रामें तथागतके जीवनकी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटनाका चित्रण है। जब सिद्धार्थ बोधिवृक्षके नीचे वज्रासनपर बैठे हुए महाबोधि प्राप्त करनेके लिए प्रयास कर रहे थे, पाप और वासनाके प्रतिनिधि 'मार' ने उनका आह्वान किया। मारने गरजकर कहा कि सिद्धार्थ को उस आसनपर बैठनेका कोई अधिकार नहीं है। सिद्धार्थ डटे रहे और उन्होंने आग्रह किया कि अनेक पूर्व जन्मोंके सदाचार और दान-धर्मसे उस आसनपर बैठनेका अधिकार उन्होंने अर्जन किया था। मारने तिरस्कारके स्वरमें पूछा—"इस बातका कोई साक्षी भी है?" सिद्धार्थने अपने दाहिने हाथसे पृथ्वीको स्पर्श करके कहा—"पृथ्वी, क्या तू साक्षी है कि मैं सत्य कह रहा हूँ?" भूमिसे आवाज़ आई—"हाँ, मैं साक्षी हूँ!" मारकी पराजय हुई, सिद्धार्थको बोधि मिली। इसी घटनाके आधारपर भूमि-स्पर्श-मुद्रा की बुद्ध-प्रतिमाएँ बनाई गईं। बोरोबुदूरके केन्द्र-बिंदुपर ऐसी एक मूर्त्तिका प्रस्थापन आयोजित रहा होगा, पर किसी आकस्मिक कारणसे मूर्त्ति अपूर्ण ही रह गई।

तथागतका पुण्यस्मरण

पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

बुद्धके परिनिर्वाणके २५००वें वर्षपर आज फिर बुद्धके सिद्धान्तोंकी चर्चा उनकी जन्म-भूमिमें ज़ोरोंके साथ होने लगी है और उनके जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले स्थानोंमें उत्सव मनाए जा रहे हैं। भारतमें ईस्वी सन्‌से पूर्व दूसरी शतीमें ही बौद्ध-धर्म लुप्त-सा हो गया था, क्योंकि हम देखते हैं कि उस समय पुष्यमित्र शुंगने अश्वमेध-यज्ञ किया था। बुद्ध और महावीर समसामयिक थे। महावीरका बड़ा ज़ोर अहिंसापर था। 'अहिंसा परमो धर्मः' जैन-धर्मका महावाक्य है। वैदिक धर्मका महावाक्य है 'सत्यान्नास्ति परोधर्मः।' परन्तु गौतम बुद्ध भी अहिंसाके पक्षपाती और हिंसाके विरोधी थे। उन दिनों यज्ञोंमें पशु-बलि प्रचलित धर्म था। बुद्ध और महावीर दोनोंने पशु-बलिके विरुद्ध आन्दोलन किया और इस आन्दोलनको आशातीत सफलता प्राप्त हुई।

विदेशोंमें धर्म-प्रचार

जहाँ महावीरका जैन-धर्म भारतमें ही सीमित रहा, वहाँ बौद्ध-धर्म भारतके बाहर दूर-दूर तक फैला। किसी समय इस देशके लोग बाहर जाकर अपने धर्मका प्रचार करते थे। बौद्ध श्रमणोंने ही नहीं, ब्राह्मण पण्डितोंने भी यह काम किया था। इसलिए आज अनेक देशोंमें बुद्ध-मूर्त्तियोंके साथ ही विष्णु, गणेश और शिवकी मूर्त्तियाँ भी मिलती हैं। दक्षिण-पूर्वी एशियामें ही नहीं, पश्चिमी एशिया और दक्षिणी अमरीका तक आर्य-सभ्यताका प्रभाव फैला था। हवाई द्वीप-पुंजमें ऐसे चिन्ह मिले हैं, जो बताते हैं कि आर्य-प्रचारक वहाँतक पहुँचे थे।

मतवादकी स्वतन्त्रता

भारतमें मतवादकी बड़ी स्वतन्त्रता रही है। यहाँ उपनिषदोंके ब्रह्मवादसे लेकर निरीश्वरवाद तक प्रचलित थे और आज भी कोई निरीश्वरवादी अपनेको हिन्दू कह सकता है, क्योंकि आर्य-धर्म मतवादका धर्म नहीं है, सांस्कृतिक धर्म है। आर्य वा हिन्दू-संस्कृतिको मानें, तो उसके लिए वैदिक, अवैदिक, नास्तिक, मूर्त्तिपूजक या मूर्त्तिपूजा-विरोधी, बौद्ध, जैन, सिक्ख, ब्रह्मसमाजी, आर्यसमाजी कुछ भी होना आवश्यक नहीं है। वह किसी मतको न माननेपर भी वैसा ही हिन्दू है, जैसे और हिन्दू।

आचार और नीतिकी शिक्षा

गौतम बुद्धका धर्म नकारात्मक ही नहीं था, आचारात्मक भी था। जैसा कि मनुने कहा है—'आचारः प्रथमो धर्मः' वैसा ही बौद्ध धर्ममें भी कहा गया है—'आचारो पठ्मो धम्मः'। अहिंसासे जीव-दयाका घनिष्ठ सम्बन्ध है, परन्तु बुद्धने मैत्री और करुणाकी भी शिक्षा दी है। यही नहीं, उन्होंने वैराग्यका उपदेश दिया है सही, पर निरुद्यमी रहनेको कहीं नहीं कहा है। इसके विपरीत निरुद्यमीकी निन्दाकी है। उनके मतसे रोग, जरा और मृत्युसे मुक्ति निर्वाण द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। ऐसा जान पड़ता है कि आचार और नीतिकी शिक्षा जैसी बौद्ध धर्ममें मिलती है, वैसी अन्यत्र कहीं नहीं मिलती।

मत-प्रचारकोंने विरोधियोंपर कहीं कभी अत्याचार नहीं किए, ऐसा कहना सत्य न होगा। परन्तु अन्य देशोंमें जैसे अत्याचार किए गए हैं, उनकी तुलनामें यहाँ नहीं हुए। यह क्या कम सहिष्णुता है? जिस समय बुद्धने अपने सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया था (यद्यपि बुद्धने कभी नहीं कहा कि मैं नया धर्म चलाता हूँ। वे सदा यही कहते रहे कि 'मैं प्राचीन आर्य-धर्मका ही उपदेश देता और उसका प्रतिपादन करता हूँ'।), ऐसा जान पड़ता है कि उस समय लोग यज्ञीय हिंसासे ऊब उठे थे। ऐसा न होता, तो बौद्ध-धर्म इतना लोकप्रिय न हो सकता। वैदिकी हिंसाके विरुद्ध बुद्धका आन्दोलन ईसाइयोंके कैथोलिक-सम्प्रदायके विरुद्ध ल्यूथरके प्रोटेस्टेन्ट-आन्दोलनके समान ही था।

संयम और वैराग्यका धर्म

बौद्ध-धर्मकी दूसरी विशेषता यह थी कि इसमें वर्णाश्रम का वह रूप नहीं था, जो उस समयके हिन्दू-समाजमें था। बुद्ध उस रूपमें चातुर्वर्ण्य नहीं मानते थे। वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कहनेकी अपेक्षा क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र कहते और कहना पसन्द करते थे। परन्तु ब्राह्मणोंकी महत्ता बौद्ध-धर्ममें अस्वीकृत नहीं हुई है। बुद्धने जाति-ब्राह्मणका विरोध किया है। एक वचन है "न जच्चा वसलो होदि न जच्चा होति ब्राह्मणो। कम्मणा वसलो होति। कम्मणा होति ब्राह्मणो।" अर्थात् जन्मसे न कोई वृषल होता है और न जन्मसे ब्राह्मण; कर्मसे वृषल होता है और कर्मसे ही ब्राह्मण। वसल वा वृषलका साधारण अर्थ शूद्र होता है, पर कहा गया है कि वृष भागवात् धर्म है और जो उसका लोप करता है, वह वृषल कहाता है। सम्भवतः बौद्धोंका यह वचन ब्राह्मणोंको उत्तर देनेके लिए है।

अवैदिक लोगोंको उस समय व्रात्य या वृषल कहते थे और शाक्य, लिच्छिवि आदि उस समयके गण व्रात्य वा वेद-बाह्य ही थे। बुद्धने इस प्रकार जन्मसे कर्मको बढ़कर बताया। बौद्ध-मतका प्रभाव वैदिकोंपर पड़े बिना नहीं रहा। धीरे-धीरे उनकी बहुत-सी बातें इन्होंने अपना लीं और इस प्रकार बौद्ध-धर्मको आत्मसात् कर लिया। बौद्ध-धर्मका लोप भारतसे इसलिए नहीं हो गया कि वैदिकों ने बौद्धोंपर अत्याचार किए, वरन अन्य अनेक कारणोंसे लोप हो गया।

बौद्ध-धर्म मूलतः संयम और वैराग्यका धर्म था। संसारमें फँसानेवाली सबसे बड़ी चीज़ स्त्री है। इसलिए बुद्धने आरम्भमें अपने संघमें स्त्रियोंको स्थान नहीं दिया था। जातक-कथाओंसे तो यहाँ तक जाना जाता है कि विहारके निर्माण वा सजावटमें भी स्त्रियोंसे किसी प्रकार की सहायता वा दान लेना मना था। जो स्त्रियाँ कुछ देतीं वा देना चाहती थीं, वे गुप्त रूपसे वा अपना नाम बताए बिना देती थीं। पीछे अपने शिष्य आनन्दके कहनेसे बुद्धने भिक्षु-संघकी भाँति भिक्षुणी-संघकी स्थापना भी स्वीकृत कर ली। परन्तु साथ ही तथागतने कहा कि 'जो धर्म बहुत काल तक चलनेवाला था, वह ५०० वर्षसे अधिक अब न चलेगा।' और यही हुआ भी, क्योंकि संयम और वैराग्य का बाँध टूट गया। इस प्रकार बौद्ध-धर्मके ह्रासका एक मुख्य कारण अनाचार तो था ही, क्योंकि ये लोग अविवाहित रहते थे, परन्तु ब्रह्मचर्यका पालन बहुधा नहीं करते थे। काषाय वस्त्र पहनते थे, परन्तु उसमें अपनी वासनाएँ छिपाए रहते थे और विरागकी जगह अनुरागका पोषण करते थे। आगे चलकर इन्हें भिक्षु वा श्रमणके बदले उपासक वा गृहस्थ होनके आदेश भी मिल गए थे। भारतके बाहरके देशोंमें दो तरहके भिक्षुओंका पता लगता है—एक अविवाहित वा ब्रह्मचारी और दूसरे विवाहित वा गृहस्थ। कुछ समय हुआ दक्षिण-कोरियामें ऐसे दो सम्प्रदायोंमें झगड़ा होनेका समाचार भी आया था।

जाति-भेदका अभाव

बुद्ध-संघकी एक उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि इसमें जात-पाँत नहीं थी। किसी भी जातिका मनुष्य बुद्ध-संघमें शामिल हो सकता था। इससे भी चातुर्वर्ण्यकी मर्यादा नष्ट हुई और बौद्ध-संघको बल मिला। वह जनताके आन्दोलनकी भाँति जनताका संघ था और कौन संघमें लिया जाय और कौन न लिया जाय, इसका न तो विचार था और न कोई विचार करनेवाला ही था। इसलिए बहुतसे अवांछनीय व्यक्तियोंका संघमें आ जाना स्वाभाविक ही था।

नीति और आचारका समन्वय

तथागत मध्यम मार्गके पक्षपाती थे। उनका कहना था कि शरीरको न सुखा ही डालना चाहिए और न उसको बहुत आराम ही देना चाहिए। उन्होंने तपसे शरीरको भली भाँति कसकर देख लिया; तब समझ गए कि मुक्ति वा निर्वाणका यह उपाय नहीं है। बुद्ध-धर्म उपनिषदोंसे बहुत-कुछ मिलता-जुलता है। तात्विक ज्ञानके विषय में कुछ अंशों तक यह ठीक है, परन्तु आचारशास्त्रीकी रचना बौद्ध-धर्ममें अद्वितीय है। नीति और आचारका ऐसा समन्वय अलभ्य नहीं, तो दुर्लभ अवश्य है।

भारतमें सैकड़ों वर्षों पहले ही बौद्ध-धर्मका लोप हो चुका था। सभी सांसारिक वस्तुओंकी तीन अवस्थाएँ होती हैं—वृद्धि, स्थान और क्षय। इसी प्रकार धर्मों और मतोंकी भी होती है। बुद्ध और महावीरके समयमें ही अनेक धर्म-सम्प्रदाय उत्पन्न हुए थे, पर वे अधिक दिन नहीं चले। जब किसी वस्तु वा धर्म अथवा सम्प्रदाय की उपयोगिता नहीं रहती, तब पहले कुछ समय तक वह स्थिर रहता है और बादको उसका क्षय आरम्भ हो जाता है। बौद्ध-धर्मका भी यही हुआ। वह पूर्वमें चटगाँव वा आसाम के कुछ भागोंमें ही रह गया।

इस बीसवीं शताब्दीमें उसे भारतमें पुनः प्रतिष्ठापित करनेका कार्य सिंहल वा लंकाके एक कर्मठ भिक्षु अनागारिक धर्मपालने किया। उन्हींके उद्योगसे कलकत्तेमें महाबोधि-सोसाइटीकी स्थापना हुई। उन्होंने अनेक देशोंमें भ्रमण कर बौद्ध-धर्मके प्रचारार्थ लाखों रुपए एकत्र किए। इसके बाद बुद्धके 'ह अक्कोहेन जिने कोहं असाधुं साधुना जिते' अर्थात् क्रोधसे क्रोधको और साधुको साधुतासे जीतना चाहिए। इसी सिद्धान्तका प्रतिपादन महात्मा गाँधीने भी किया। कांग्रेसके स्वराज्य-आन्दोलनने बौद्ध-धर्मकी लोकप्रियता बढ़ाई और अब तो हमारे नोटों और रुपए-पैसोंपर भी अशोकका धर्मचक्र दिखाई देता है। आज तथागतकी २५००वीं तिथिपर हम उनके सिद्धान्तों—करुणा, मैत्री आदि—का फिर स्मरण करके उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करते हैं।

लंकामें बौद्धधर्म

भिक्षु धर्मरत्न, एम० ए०

भारतका बच्चा-बच्चा लंकाके नामको जानता है—यद्यपि वर्त्तमान लंका रामायणकी लंका है या नहीं, यह अब तक एक विवादास्पद विषय ही रहा है। लंकाका दूसरा नाम सिंहल है। तीस मीलके समुद्रके पाटसे लंका और भारत भौगोलिक दृष्टिसे अलग हो गए हैं। फिर भी लंका और भारतका सम्बन्ध अतिप्राचीन है। यद्यपि लंका दक्षिण-भारतके सन्निकट है, फिर भी दक्षिण-भारत की अपेक्षा उत्तर-भारतसे ही लंकाका अधिक सम्बन्ध रहा है। प्रागैतिहासिक वृत्तान्तोंके अनुसार उत्तर-भारतके व्यापारी समुद्र-मार्गसे लंका जाते थे। उस समय बन्दरगाहोंमें ताम्रलिप्ति (वर्त्तमान तामलुक) तथा सुप्पारक (वर्त्तमान सोपारा) बहुत ही मशहूर थे। वलादस्स जातकसे मालम होता है कि जो व्यापारी यहाँसे लंका जाते थे, उनमें से कुछ लोग वहाँ बस जाते थे। ईस्वी-पूर्व छठी शताब्दी में विजय तथा उनके सात सौ अनुयायियोंकी मण्डली लंका पहुँची थी। वे लोग जगह-जगह बस गए। उनका वैवाहिक सम्बन्ध वहाँके आदिवासियों तथा मदुराके राजघरानोंसे हुआ था। महावंशके अनुसार कुछ ही दिनोंमें लंका-द्वीपपर विजयका प्रभुत्व हो गया था। बहुतसे लोग सिंहल-वंशका प्रारम्भ विजयसे मानते हैं। विजयके अपनी कोई सन्तान नहीं थी। इसलिए उनकी मृत्युके बाद उनका भतीजा पाण्डुवासुदेव, जिसका विवाह शाक्य-कुमारी भद्राकात्यायनीसे हुआ था, लंकाकी गद्दीके लिए बुलाया गया। वह भी बड़ी मंडलीके साथ लंका पहुँच गया। अब लंकाके कोने-कोनेमें सिंहलवंशज बस गए। सिंहल-वंशकी इस पृष्ठभमिपर ही हमें लंकामें बौद्ध-धर्मका दिग्दर्शन करना है।

आठ पवित्र स्थान

भारतके व्यापारी अपने देशकी संस्कृतिके प्रचारक भी रहे हैं। जहाँ-जहाँ वे गए, अपनी संस्कृतिको भी साथ लेते गए। भगवान् बुद्धके महापरिनिर्वाण तक उत्तर-भारतके बहुतसे प्रदेशोंमें उनके धर्मका प्रचार हुआ था। इसलिए सर्वप्रथम उत्तर-भारतके समुद्री व्यापारी भगवान् के सन्देश-सम्बन्धी कुछ स्मरण अपने साथ लंका ले गए हों, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। लंकाकी वंशकथाके अनुसार भगवान् बुद्धके महापरिनिर्वाणके दिन ही विजय लंका पहुँचे थे। उसके अनुसार परिनिर्वाण-शैय्यापर लेटे हुए भगवान्ने यह भविष्यवाणी की थी कि 'विजयके वंशज बौद्ध-धर्मका स्वागत और संरक्षण करेंगे।' विजयके राजपुरोहितके मुँहसे भी ऐसी ही भविष्यवाणी निकलती है। शाक्य-कन्या होनेके नाते भद्राकात्यायनीको भी बौद्ध-धर्म-सम्बन्धी कुछ-न-कुछ जानकारी अवश्य रही होगी। महावंशके अनुसार स्वयं भगवान् बुद्ध ऋद्धि-बल द्वारा तीन बार लंका गए थे। लंकामें जो-जो स्थान भगवान्के पाद-स्पर्शसे पुनीत माने जाते हैं, वे 'अटमस्तान' अर्थात् आठ महान् स्थानोंके नामसे विख्यात हैं। लंकाके बौद्ध इन आठ स्थानोंको अपने यहाँके पवित्रतम स्थल मानते हैं। पूर्णिमाके दिन इन स्थानोंपर श्रद्धालुओंकी भीड़ हो जाती है।

अशोक द्वारा धर्म-प्रचार

अशोक-कालसे पहले भगवान् बुद्ध तथा उनके धर्म-सम्बन्धी शुभ समाचार किसी-न-किसी रूपमें लंका पहुँच गए थे। लेकिन लंकामें बौद्ध-धर्मका विधिवत् प्रचार अशोक-कालमें ही हुआ था। कलिंग-विजयके बाद अशोक का जो हृदय-परिवर्त्तन हुआ था, उसका प्रभाव न केवल भारतपर, अपितु संसारके अधिकांश भागपर पड़ा। सम्राट् अशोकके तत्वावधानमें जो तीसरी संगीति पाटलिपुत्रमें हुई थी, उसके बाद ही संघस्थविर मोग्गलिपुत्ततिस्सके आदेशानुसार विदेशोंमें प्रचारक भेजे गए। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस प्रचार-कार्यमें सम्राटका बहुत बड़ा हाथ रहा है। सम्राट्के शिलालेखोंके अतिरिक्त लंकाकी वंश-कथासे भी इस बातकी पुष्टि होती है। समीपवर्ती देशों तथा कुछ सुदूर देशोंसे भी सम्राटका सम्बन्ध रहा है। पुरावृत्तोंसे मालूम होता है कि तत्कालीन लंकाके राजा देवानांप्रियतिष्यसे उनका घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। लंका के नरेश तथा सम्राट अदृष्टमित्र थे। समय-समयपर दोनों एक-दूसरेके यहाँ भेंट भी भेजते थे। कहते हैं कि अशोकके अभिषेकके बाद तिष्यने उनके पास बहुमूल्य मणि-मुक्ताओंको भेंटके रूपमें भेजा था। उसके बदलेमें भेंट भेजते समय अशोकने तिष्यके पास यह संदेश भी भेजा—"मैं बुद्ध-धर्म और संघकी शरण ग्रहणकर शाक्यपुत्रके शासन में उपासक हो गया हूँ। हे नरोत्तम! आप भी आनन्द-पूर्वक श्रद्धाके साथ इन उत्तम रत्नोंकी शरण ग्रहण करें।" इस प्रकार बौद्ध-धर्मके लिए लंकामें क्षेत्र तैयार हुआ था। इसके कुछ ही दिन बाद अशोकपुत्र महामहेन्द्रके नेतृत्वमें छः प्रचारकोंकी एक मण्डली लंका पहुँची।

भिक्षुणियोंके संघकी स्थापना

राजा और प्रजाकी ओरसे अर्हन्त महेन्द्र तथा उनकी मण्डलीका सादर स्वागत हुआ था। सर्वप्रथम सपरिवार राजा तथा उनके सभासद बौद्ध-धर्ममें दीक्षित हुए। तदुपरान्त देश-भरमें तथागतके संदेशका प्रचार होनेमें अधिक समय नहीं लगा। कुछ लोग भिक्षु-संघमें भी दीक्षित हुए, जिनमें कई राजकुमार भी थे। इस प्रकार लंकामें बौद्ध-धर्मकी नींव पड़ी और भिक्षु-संघकी स्थापना हुई। कुछ दिन बाद लंका-नरेशके अनुज तथा उपराज महानागकी रानी अनुला और कितनी ही कुलीन स्त्रियोंने प्रव्रज्या ग्रहण करनेकी अभिलाषा प्रकट की। इस दीक्षाके लिए भिक्षुणियोंकी आवश्यकता थी। महेन्द्रके आदेशानुसार तिष्य ने अशोकके पास अपनी पुत्री संघमित्राके नेतृत्वमें भिक्षुणियों की एक मण्डली भेजनेके लिए संदेश भेजा। संदेश पाकर सम्राट बहुत प्रसन्न हुए और भिक्षुणियोंकी मण्डली भेजने के लिए समुचित तैयारी करने लगे। बुद्ध-गयाके जिस पीपल-वृक्षके नीचे तथागतको सम्यक् सम्बोधिकी प्राप्ति हुई थी, उसकी एक शाखा भी उस मण्डलीके साथ भेजनेके लिए ठीक की गई। नियमित तिथिपर सम्राट पीपलकी शाखा तथा संघमित्राकी अध्यक्षतामें ग्यारह भिक्षुणियोंकी मण्डली लेकर ताम्रलिप्ति पहुँचे। वहाँसे उन्होंने भिक्षुणियों की मण्डलीको राजकीय जहाज़पर लंकाके लिए विदा किया।

एक सप्ताहके बाद वह जहाज लंका पहुँचा। लंकेश्वरने बड़े समारोहके साथ भिक्षुणी-मण्डलीका स्वागत किया। कुछ दिनोंके बाद संघमित्राकी अध्यक्षतामें अनुला तथा अन्य पाँच सौ कुलीन स्त्रियाँ भिक्षुणी-संघमें दीक्षित हुईं। इस प्रकार लंकामें भिक्षुणी-संघकी भी स्थापना हुई। बोधि-द्रुमकी जो शाखा संघमित्रा अपने साथ लंका ले गई, उसका रोपण लंकाकी राजधानी अनुराधपुरमें एक रम्य स्थलपर किया गया। तभीसे वह लंकाकी बौद्धोंकी श्रद्धाका एक केन्द्र-बिन्दु रही है। वह बोधि-वृक्ष आज तक उसी स्थलपर खड़ा है और वह संसारका प्राचीनतम ऐतिहासिक वृक्ष है। लंकामें शायद ही कोई ऐसा गाँव हो, जहाँ अनुराधपुरके इस ऐतिहासिक बोधिवृक्षका पौदा न हो। इतना ही नहीं और बहुतसे देशोंमें भी उसके अंकुर गए हैं। हाल हीमें आस्ट्रेलियाके बौद्ध अपने यहाँ बननेवाले विहारके पास रोपनेके लिए उसका एक अंकुर ले गए हैं। इस प्रकार वह बोधि-वृक्ष तथागतकी सम्यक् सम्बोधि-प्राप्ति का एक महान् प्रतीक बन गया है।

स्तूपों और विहारोंका निर्माण

पर लंकाकी जनता केवल बोधि-वृक्षसे ही सन्तुष्ट नहीं रही। उसने वन्दनाके लिए तथागतके शरीरावशेषोंके लिए भी माँग पेश की। महेन्द्रने लंका-नरेश द्वारा सम्राट् अशोकके पास यह संदेश भी भिजवा दिया। उस समय तक भारतमें स्थान-स्थानपर भगवान् बुद्ध तथा उनके प्रधान शिष्योंकी पवित्र अस्थियोंकी स्थापनाके लिए स्तूप बने थे। सम्राटने उन स्तूपोंमें से कुछ अस्थियोंको लेकर लंका भिजवा दिया। पूर्ववत् बड़ी धूमधामके साथ उनका भी स्वागत हुआ। उनकी स्थापनाके लिए अनुराधपुरमें थूपाराम-स्तूप बना, जोकि आज तक वहाँपर स्थित है। उसके बाद जगह-जगहपर और भी स्तूप बने।

लंकामें स्थान-स्थानपर विहार भी बने। संघकी वृद्धि होती गई और धर्मका प्रचार होता गया। इस प्रकार प्रचार-कार्यका परिणाम यह हुआ कि एक दिन ऐसा आया जब कि देशके शत-प्रतिशत लोग भगवान् बुद्धके अनुयायी बन गए। इस प्रकार महामहेन्द्र तथा संघमित्रा दोनों भाई-बहनने मिलकर कितना महान् कार्य किया, उसके महत्वको हम इतिहासके प्रकाशमें ही समझ सकते हैं। वे अपने साथ न केवल बौद्ध-धर्म और दर्शन ही, बौद्ध-आचार और विचार ही, अपितु तत्सम्बन्धी सारी परम्पराको भी ले गए। पिताके आदर्शको मानकर तथागतके अमर संदेशके बलपर उन्होंने यथार्थ रूपसे धर्मविजय प्राप्त की। जीवनकी अन्तिम घड़ी तक लोक-सेवामें निरत रहकर वे दोनों अर्हन्त निर्वाणको प्राप्त हुए। जिस सुन्दर और एकान्त पहाड़ी पर स्थविर महेन्द्र रहते थे, वह महेन्द्रस्थलके नामसे प्रसिद्ध है। आज वह बौद्ध संसारका एक तीर्थ बन गया है। जिस गुफ़ा में वे रहते थे, वह महेन्द्र-गुफ़ाके नामसे प्रसिद्ध है। आज वह भक्तजनोंके लिए एक मन्दिर बन गया है। महेन्द्र तथा संघमित्राके परिनिर्वाणके बाद उनकी पवित्र अस्थियों की स्थापनाके लिए दो स्तूप बनाए गए। प्रतिवर्ष लंका के बौद्ध उनके नामपर उत्सव मनाते हैं और उनकी मूर्त्तियों को जलूसमें ले जाते हैं। इस प्रकार महेन्द्र तथा संघमित्रा के नाम लंका ही नहीं, समस्त बौद्ध-जगत्में अमर हो गए हैं।

पालि-साहित्यका प्रचार

महेन्द्र पालिमें संगृहीत भगवान् बुद्धकी शिक्षाओं तथा उनपर रचित भाष्योंको अपने साथ लंका ले गए थे। भगवान्के महापरिनिर्वाणसे लेकर ई० पू० प्रथम शताब्दी तक गुरु-शिष्य-परम्परा द्वारा मौखिक रूपसे ही बुद्ध-वचन की रक्षा की गई, पर ई० पू० प्रथम शताब्दीके उत्तरार्द्धमें राजा वट्टगामणीके समयमें लंकाके महास्थविरोंने बुद्ध-वचन को लिपिबद्ध करनेकी आवश्यकता समझी। तदनुसार उन्होंने मातले नामक प्रदेशके आलोक नामके विहारमें

महासम्मेलनका आयोजन किया, जो कि चौथी संगीतिके नामसे प्रसिद्ध है। उसमें बुद्ध-वचन तथा उनपर रचित भाष्य लिपिबद्ध किए गए। 'बुद्ध-वचन-त्रिपिटक' के नाम से और उनपर रचित भाष्य 'अट्ठकथाओं' के नामसे प्रसिद्ध हैं। मुख्य रूपसे हम इन्हींको पालि-साहित्य भी कहते हैं। इस चौथी संगीतिके बाद लंकाके पालि-साहित्यका प्रचार बर्मा, स्याम तथा कम्बोडियामें भी हुआ था। जो अमूल्य निधि एक समय भारतसे लुप्त हुई थी, उसकी रक्षा इसी प्रकार हुई।

बौद्ध-संस्कृति और ईसाई-मत

फिर तो लंकामें बौद्ध-धर्मकी उत्तरोत्तर उन्नति होती गई। लोगोंकी शिक्षा-दीक्षा और आचार-विचार ही ही नहीं, बल्कि देशकी सारी संस्कृति उसके अनुसार बनी। साहित्य, कला, शिल्प आदि सभीपर बौद्ध-धर्मका प्रभाव पड़ा, बौद्ध-धर्मसे प्राप्त प्रेरणाओंसे ही सारी संस्कृति विकसित हुई। परिणामतः लंकाकी संस्कृति बौद्ध-संस्कृति हो गई। फिर भी लंकामें बौद्ध-धर्मकी गति अविछिन्न नहीं रही है। समय-समयसे दक्षिणसे जो आक्रमणकारी गए, उनसे न केवल राजनीतिक उथल-पुथल ही हुई, बल्कि धार्मिक संस्थाओंको भी काफ़ी हानि पहुँची। सोलहवीं शताब्दीमें एक नई विपत्तिका आरम्भ हुआ। उस समय पूर्वी देशोंमें जहाँ-तहाँ पश्चिमी लोगोंके व्यापारी केन्द्र बनने लगे, जो कि आगे चलकर उनके साम्राज्योंके भी केन्द्र हो गए। इस व्यापारके बहानेसे आकर पोर्चुगालके लोगोंने सबसे पहले गोआको अपने कब्जेमें कर लिया था। वहाँसे वे आस-पासके देशोंपर दृष्टिपात करने लगे। अब तक उनका व्यापारिक संबंध लंकासे भी हो गया था। वहाँके नरेश की आज्ञा लेकर उन्होंने समुद्रके किनारे कुछ गोदाम भी बना लिए। बादमें इन्होंने ऐसी चालें चलीं कि समुद्रवर्ती कुछ प्रदेशोंपर प्रभुत्व जमानमें उनको अधिक समय नहीं लगा। ये पोर्चुगीज धर्मान्ध केथलिक थे। ये अपने इलाकेके लोगोंको तलवारके बलपर इसाई बनाने लगे। कुछ लोग मृत्यु-भयके शिकार हो गए। जो लोग ईसाई होते थे, उन्हें ईसाई नाम भी रखने पड़ते थे। इस प्रकार कलका जयसिंह आजका डेविड बन गया बादमें यह नाम-करण एक फैशन बन गया। ईसाइयोंके सम्पर्कमें रहनेवाले बौद्ध भी उस प्रथाको अपनाने लगे। बहुतसे लोग अपने देशी नामके साथ एक क्रिश्चियन नाम भी रखने लगे। जोन स्टीफन सेनानायक और जोन कोतवाल ऐसे ही नाम हैं। इसलिए नामके अनुसार लंकाके बौद्धोंको पहचानना कठिन है। अब लोग शीघ्र ही इस प्रथाको छोड़ते जाते हैं।

विदेशियोंके आगमनका प्रभाव

लोग पोर्चुगीज़ोंके अत्याचारोंसे तंग आकर विद्रोह करने लगे। तब तक डच लोग इन्डोनीसियाके शासक बन गए थे। पूर्वी व्यापारके लिए पोर्चुगीज़ों तथा डचोंमें होड़ चल रही थी डच व्यापारी कई बार लंका भी गए थे। लेकिन पोर्चुगीज़ोंने उनका कड़ा विरोध किया। इसलिए पोर्चुगीज़ोंको दबानेके लिए वे मौका देख रहे थे। जब पोर्चुगीज़ इलाकेके लोगोंका असन्तोष मालूम हो गया, तो तुरन्त वे उनसे मिले। दोनोंमें जमकर लड़ाई हुई और अन्तमें पोर्चुगीज़ हार गए। डच कम चालबाज नहीं थे। लोगोंके सहायकोंके रूपमें आकर वे बादमें मालिक बन गए! डच भी अनेक उपायोंसे अपने इलाकेके लोगोंको इसाई-धर्म ग्रहण करनेके लिए बहकाते थे। लेकिन वे पोर्चुगीज़ों जैसे धर्मान्ध नहीं थे।

डच लोगोंके बाद अँगरेज़ आ गए। उनकी शक्तिके सामने डच ठहर न सके। उस समय तक केवल लंकाका समुद्रवर्त्ती इलाका विदेशियोंके अधीन था। १८१५ अँगरेज़ोंने सारे देशपर अपनी पताका फहराई। अँगरेज़ों तथा लंकाके अधिकारियोंके बीच जो सन्धि हुई थी, उसकी एक शर्त्त यह थी कि अँगरेज बौद्ध-धर्मको किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचायँगे और बौद्ध-संस्थाओंकी रक्षा करेंगे। यह शर्त्त कागज़पर ही रह गई। शासकोंने ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी, जिससे कि किसीको इसाई बने बिना आत्म-सम्मानके साथ रहना कठिन मालूम होने लगा। लेकिन अधिकांश लोगोंमें उस परिस्थितिका मुक़ाबला करनेकी शक्ति थी। अँगरेज शासकोंने लोगोंके धर्म-परिवर्त्तनके लिए मिशनरियोंको सभी प्रकारकी सहायताएँ, सुविधाएँ और अधिकार दिए। परिस्थितिको देखकर एक मिशनरी को इतनी अधिक आशा हुई कि उन्होंने यह भविष्यवाणी की कि पचीस सालके भीतर लंकाके शत-प्रतिशत लोग ईसाई होंगे! लेकिन उसकी भविष्यवाणी ग़लत सिद्ध हुई। डेढ़ सौ वर्षके आधिपत्यके बाद भी वे केवल चार प्रतिशत लोगों को इसाई बना सके और सो भी ताड़न-पीड़न तथा प्रलोभन के फल-स्वरूप ही। अब तो स्थिति बदल गई है। स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके साथ-साथ लोगोंमें एक नई धार्मिक जागृति आ गई है।

लंकामें ९० लाख लोग हैं, जिनमें ८० प्रतिशत बौद्ध हैं। १२ हज़ार भिक्षु हैं। लगभग हर एक गाँवमें एक विहार है, जहाँ दो-तीन भिक्षु रहते हैं। प्रारम्भसे ही लोगोंकी शिक्षा विहारोंमें होती रही। यद्यपि राज-नीतिक परिवर्त्तनोंसे इस परिपाटीमें परिवर्त्तन आ गए हैं, लेकिन बहुत हद तक अब भी वह जारी है। विहार लोगों का धार्मिक तथा सांस्कृतिक केन्द्र है। बौद्ध-धर्म तथा संस्कृतिके संरक्षकके रूपमें ही नहीं, बल्कि वर्त्तमान संसारमें भगवान् बुद्धके संदेशके प्रचारकके रूपमें भी बौद्ध-इतिहास में लंका द्वीपका बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। लंकामें बौद्ध धर्मका भविष्य उज्ज्वल है।

पूर्वेशियामें बौद्ध-धर्म

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

इस नारंगीकी तरह गोलाकार पृथ्वीपर दिशा भी एक वैसा ही भ्रम है, जैसा कि काल। फिर भी व्यावहारिक दृष्टिसे इस निवन्धमें बर्मा, स्याम तथा जापानमें बौद्ध-धर्म कब और कैसे पहुँचा तथा फला-फूला, इसीकी ही चर्चा करनेका विचार है। स्याम अथवा थाइलैण्डके साथ-साथ हिन्द-चीनकी भी कुछ चर्चा अस्थाने न होगी।

बर्मा

किसी भी देशके बारेमें यह कह सकना कि वहाँ बौद्ध-धर्म अथवा कोई भी धर्म कब पहुँचा, आसान नहीं। ऐतिहासिक पगडण्डीका आरम्भिक सिरा सदा ही कुहासेसे ढँका रहता है। धर्मचक्र-प्रवर्त्तनसे भी पहले, बुद्धत्व लाभके अनन्तर ही तथागतके तपस्सु तथा भल्लिक नामके दो व्यापारियों द्वारा मधुपिण्ड तथा मट्ठेसे आदृत होनेका उल्लेख है। उन दोनों व्यापारियोंके बारेमें लिखा है कि वे उक्कल-जनपदसे आए थे। उक्कल सीधा-सीदा उत्कल है अर्थात् वर्त्तमान उड़ीसा। लेकिन बर्मी धार्मिक इतिहासका कहना है कि यह उक्कल वर्त्तमान नगर रंगून ही रहा है, जो इससे पहले 'दगोन' कहलाता रहा है और उससे भी पहले शायद 'ओक्कल'। इस प्रकार इस श्रद्धा-जनित इतिहासको यदि हम अधिक महत्त्व दें, तो हमें बुद्धके समयमें ही सारनाथमें धर्मचक्र-प्रवर्त्तन होनेसे भी पूर्व बर्मामें बुद्ध-धर्मका प्रवेश स्वीकार कर लेना होगा।

बर्माके बुद्ध-भक्त तो तपस्सु-भल्लिकके जन्म-स्थानको ही अपने देशके एक स्थानके साथ मिलाते हैं। 'सिंहल महावंश'के लेखकके अनुसार लंकामें तो भगवान् बुद्धने तीन-तीन बार यात्रा की है और वहाँ सोलह स्थान ऐसे हैं, जो भगवान् बुद्धके चरणोंसे पूत हुए माने जाते हैं।

भगवान् बुद्धके परिनिर्वाणके बाद महाराज अशोकके समयमें महास्थविर मोग्गलिपुत्त तिस्सकी संरक्षतामें जो तीसरी बौद्ध संगीति हुई, उसके विवरणमें इस बातका उल्लेख है कि महास्थविर मोग्गलिपुत्त तिस्सने नाना देशोंमें भिक्षुओं को धर्म-प्रचारार्थ भेजा। लिखा है—"उन्होंने सोग तथा उत्तरको स्वर्ण-भूमिमें धर्म-प्रचारार्थ भेजा।" इस स्थापनामें हमें सन्देह करनेकी गुंजायश नहीं है, क्योंकि साँची-स्तूपसे न केवल महास्थविर मोग्गलिपुत्त तिस्सकी अस्थियाँ प्राप्त हो चुकी हैं, बल्कि और भी अनेक स्थविरोंकी, जिन्हें अशोकने विदेशोंमें धर्म-प्रचारार्थ भेजा था।

इन धर्मदूतोंकी अस्थियाँ साँचीमें दो ही तरह मिल सकती हैं —या तो ये अपने जीवन-कालमें ही पुनः साँची लौट आए हों या अशोकने उन-उन देशोंमें उनका शरीरान्त होनेपर उनकी अस्थियाँ मँगवाकर साँचीमें उनपर स्तूप बनवानेकी व्यवस्था करवाई हो।

बर्मामें बौद्ध-धर्मके प्रचारका इतिहास एकाधिक अवस्थाओंमेंसे होकर गुज़रता है। दक्षिण-बर्मामें जो पुरातत्व-सम्बन्धी सामग्री मिली है, उससे यह बात सिद्ध होती है कि पाँचवीं-छठी सदीमें बर्मामें बौद्ध-धर्म सम्यक् रूपसे प्रतिष्ठित था। सातवीं शताब्दी तक भी बर्मामें बौद्ध-धर्म का स्थविरवादी रूप ही प्रतिष्ठित रहा। इसके बाद भारतकी तरह ही बर्मामें भी वज्रयान और तेचयानकी प्रधानता हो जाती है, जिससे बर्माको मुक्त करनेका श्रेय एक ओर शिन् अर्हन्को है और दूसरी ओर राजा अनिरुद्ध को। लिखा है कि शिन्अर्हन त्रिपिटिक और दूसरे शास्त्रोंमें निष्णात थे। उन्होंने पगान (अरिमर्दनपर)के राजा अनुरुद्ध (अनवरहत्) के धर्म-प्रेमकी बात सुनी थी। उनमें धर्म-प्रचारकी भी धुन थी। एक दिन वह थातोन् छोड़ पगान नगरके नातिदूर एक अरण्यमें निवास करने लगे। एक दिन लोग उन्हें राजा अनुरुद्धके पास ले गए। अनुरुद्धने उनसे पूछा—'भन्ते (स्वामी), आप कौन वंशके हैं? कहाँसे आए हैं? किसके सिद्धान्तोंका अनुसरण करते हैं?'

'मेरा वंश भगवान् बुद्धका वंश है। मैं भगवान् बुद्ध के गंभीर, सूक्ष्म, पंडित-वंदनीय सिद्धान्तका अनुगमन करता हूँ।'

'तो भन्ते! मुझे भी भगवान्के उपदेशित धर्मका थोड़ा उपदेश कीजिए।'

शिन्-अर्हन्ने राजा अनुरुद्धको बुद्धके शुद्ध धर्मका इतना सुन्दर उपदेश दिया कि वह श्रद्धा-विभोर हो बोल उठा—'भन्ते! आपको छोड़ कोई हमारी शरण नहीं। मेरे स्वामी, आजसे हम अपना शरीर और जीवन आपको अर्पित करते हैं। भन्ते, मैं आपसे पाए सिद्धान्तको अपना करके ग्रहण करता हूँ।'

इस प्रकार शिन् अर्हन् और राजा अनुरुद्धके सहयोग की कथा आरम्भ होती है। भारतमें जो कार्य महामोग्गलिपुत्त तिस्स तथा धर्मराज अशोकके सहयोगसे हुआ, बर्मामें

वही कार्य शिन् अर्हन् तथा राजा अनुरुद्धके सहयोगसे हुआ। राजा अनुरुद्धका बुद्धकी पवित्र अस्थियोंपर बनवाया हुआ स्वेज़िगान-महास्तूप उसकी अमर कृति है। अनुरुद्धका तृतीय अधिकारी और पुत्र केन्ज़ित्था भी अपने पिताकी ही भाँति धर्म-प्रेमी था। उसे बोध-गयाके मन्दिरकी मरम्मत करानेका श्रेय प्राप्त है।

सिंहल और बर्मा दोनों ही स्थविरवादी हैं। दोनों ही देशोंमें दोनों देशोंकी उपसम्पदा-परम्पराका चालू होना उस ऐतिहासिक आवश्यकता तथा लेन-देनका परिणाम है, जिसने विपन्नावस्थामें दोनों देशोंमें स्थविरवादकी जड़ोंको सींचा।

इसके बादकी शताब्दियोंमें बर्माका धार्मिक इतिहास या तो वहाँके राजाओंके परस्परके कलहोंके परिणाम-स्वरूप उत्पन्न राजनीतिक दुरवस्था तथा धार्मिक जीवनके ह्रास का इतिहास है और भिक्षु-संघमें ही परस्पर विवाद-प्रियतासे उत्पन्न धार्मिक छिछोरेपनका इतिहास है। संतोषका विषय है कि इन काली घटाओंमें भी धर्मका विद्युत्-प्रकाश कभी सर्वथा मन्द नहीं पड़ने पाया है। राजनीतिक पराधीनतासे मुक्ति-लाभ होनेके अनन्तर इधर फिर बर्माका धर्म-प्रदीप उत्तरोत्तर प्रज्वलित हो रहा है। बर्माके प्रधान मंत्री ऊ-नूने पिछले कुछ वर्षोंमें यह दिखा दिया है कि किस प्रकार देशकी धार्मिक जागृतिको उसकी चतुर्मुखी उन्नति का साधन बनाया जा सकता है।

थाईलैंण्ड

बर्मासे और पूर्व थाईलैण्डमें प्रवेश करनेपर भी जो बात हम बर्माके बारेमें कह आए हैं, वही बात थाईलैण्डके बारेमें भी कहनी पड़ती है कि थाईलैण्डमें भी बौद्धधर्मके प्रवेशकी निश्चित तिथि नहीं ही कही जा सकती। कदाचित् भारतसे अपेक्षाकृत अधिक भौगोलिक दूरीके ही परिणाम-स्वरूप थाईलैण्डके बौद्धोंने भगवान् बुद्ध अथवा उनके समयसे तो अपना सीधा सम्बन्ध नहीं ही जोड़ा है, किन्तु वहाँके पण्डितोंका कहना है कि अशोकने अपने जो धर्म-प्रचारक 'स्वर्ण-भूमि' भेजे थे, वे हमारे यहाँ ही आए थे। अब सारा विवाद इस बातपर आकर केन्द्रित हो जाता है कि स्वर्ण-भूमि कौनसे और कितने प्रदेशको माना जाय? स्यामके प्रतम नकन (प्रथम नगर) आदि स्थानोंसे जो पुरातत्त्वकी सामग्री मिली है, उसके अध्ययनसे पता चलता है कि स्याममें पहले स्थविरवादका प्रचार था। बादकी शताब्दियोंमें बर्माकी ही तरह दक्षिण-भारतसे महायानका प्रचार हुआ।

तेरहवीं शताब्दीमें न केवल बर्मामें, बल्कि स्याम और बर्मामें भी जो राजनीतिक उथल-पुथल हुई, उसमें स्यामसे एक बार भिक्षु-परम्परा नष्ट ही हो गई। उस समय सिंहल-द्वीपने अपने यहाँसे संघ-परम्परा भेजकर फिरसे स्याम देशमें बौद्ध-संघकी स्थापना की।

इसके पाँच-छः सौ वर्ष बाद सिंहल-द्वीपमें भी संघकी आन्तरिक दुर्बलताओं और बाहरी आक्रमणोंके कारण जब बौद्ध-धर्मका दीपक 'आज बुझा-कल बुझा' हो रहा था, उस समय स्यामने महास्थविर उपालीकी अधीनतामें भिक्षुओं का एक संघ सिंहल-द्वीप भेजकर अपना पुराना ऋण चुकाया था। १९३४ में इन पंक्तियोंके लेखकका जब प्रथम बार स्याम जाना हुआ, तो उस यात्राका एक विशेष उद्देश्य था। अशोक-पुत्र महेन्द्रकी शिष्य-परम्पराकी एक अनुश्रुति सिंहल द्वीपमें सुरक्षित है। सोचा था कि यदि कहींसे इधर बीच की शिष्य-परम्पराकी कड़ियाँ मिल जातीं, तो हम अपना गुरु-शिष्य-परम्पराका सम्बन्ध सीधा महास्थविर महेन्द्रसे जोड़ लेते। स्याममें रहते समय इन पंक्तियोंके लेखकने बहुत पूछ-ताछ की। पता यही लगा कि महास्थविर उपालीकी गुरु-परम्परा हमेशाके लिए लुप्त हो गई है। इसके दो कारण हो सकते हैं—(१) सत्रहवीं शताब्दीकी बर्मा और स्यामकी लड़ाइयोंमें इतना अधिक तहस-नहस हुआ कि डेढ़-दो सौ वर्षसे पूर्वके धार्मिक इतिहाससे सम्बन्ध रखनेवाली कोई भी लिखित उपादान सामग्री प्राप्त नहीं है। (२) स्याममें अधिकांश विहारोंका प्रबन्ध राज्यके अधीन है। वहाँ यह आवश्यक नहीं कि गुरु-विशेषका शिष्य ही अपने गुरुके विहारका उत्तराधिकारी हो। जिस किसी विहारको किसी सुयोग्य भिक्षुकी आवश्यकता होती है, किसी भी विहारसे कोई योग्य भिक्षु बुलाकर वह विहार उसके सुपुर्द कर दिया जाता है।

यों तो सभी स्थविरवादी देशोंके भिक्षु एक ही भिक्षु-संघके सभासद् हैं, लेकिन सिंहल और बर्माकी ही तरह स्याम के भिक्षु भी एकसे अधिक निकायोंमें विभक्त हैं। पहले स्याम में केवल एक निकाय था, जिसका नाम है महानिकाय। पिछली शताब्दीमें एक सुधार-प्रेमी राजाने बर्मासे धम्मयुत्तिक नामक एक नए निकायको निमंत्रितकर उसे राजाश्रित बनाया। तबसे धम्मयुत्तिक निकाय फलने-फूलने लगा और महानिकाय राजाश्रयसे वंचित हो गया! इन पंक्तियोंके लेखकको पिछले वर्षोंमें सिंहल, स्याम, बर्मा की एकाधिक बार यात्रा करनेका अवसर आ चुका है। हर बार यही लगा है कि स्यामके भिक्षु सिंहल और बर्मा दोनों देशोंके भिक्षुओंकी अपेक्षा अधिक संगठित हैं।

भिक्षुओंमें सर्वोपरि पदप्राप्त भिक्षुको संघराज कहते

हैं। उसके नीचे भिक्षु पदाधिकारी सोम डैट कहलाते हैं। उसके नीचेके चौखाना रो। उसके नीचेके थम। उसके नीचेके थेप। उनके भी नीचेके राट। उनके भी नीचेके नायक। उनके भी नीचेके वलत्। और उनके भी नीचेके प्रक्रू। इन सभी पदाधिकारी भिक्षुओंके लिए राज्य-कोषसे मासिक खर्च बँधा हुआ है, जो उन भिक्षुओंको सीधा न दिया जाकर उनकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेवाले कप्पियकारकको दे दिया जाता है, जिसका काम होता है भिक्षुकी आवश्यकताओंकी पूर्त्ति करते रहना और आय-व्ययका हिसाब रखना।

धम्मयुत्तिक निकायके विहारों और भिक्षुओंकी अपेक्षा पुराने महानिकायके भिक्षु और विहारोंकी ही संख्या अधिक है। सिंहलकी अपेक्षा बर्मा और स्याम दोनों देशोंके भिक्षु-जीवनकी एक विशेषता है। सिंहलका भिक्षु बर्मा और स्यामके भिक्षुकी अपेक्षा एक विषयमें भारतीय संन्यासी के अधिक समीप है। एक बार भिक्षु, तो जीवन-भर भिक्षु। यदि कोई किसी कारणसे भिक्षु-वेषका त्याग कर देता है, तो लोग उसे अच्छा नहीं समझते। 'हीरलुवा' कहकर उसे अनादर बुद्धिसे देखते हैं। बर्मा और स्याममें यह बात नहीं है। वहाँके लोगोंके लिए 'भिक्षु-जीवन' एक धार्मिक संस्कार है, जिसमें से हर किसीको जीवनमें एक बार गुजरना ही चाहिए।

एक दृष्टिसे यह दृष्टि बहुत अच्छी है। जब तक इच्छा हो, जितने दिन भिक्षु-जीवन बितानेका संकल्प हो, भिक्षु-जीवन बिताओ, जब वैसी इच्छा न रहे अथवा संकल्प पूरा हो जाय, 'भिक्षु-जीवन' छोड़ दो। इस प्रकार प्रायः हर किसीके जीवनमें एक बार भिक्षु-व्रती होकर रहनेसे जहाँ हर किसीको भिक्षु-जीवन तथा गृहस्थ-जीवनका सामान्य रूपसे परिचय रहता है, वहाँ एक प्रकारकी जातीय एकता भी सुरक्षित रहती है। पर इसका यह मतलब नहीं कि बर्मा-स्याममें कोई आजीवन भिक्षु रहता ही नहीं। रहते हैं, किन्तु उनकी संख्या थोड़ी रहती है।

इण्डोनेशिया-इण्डोचाइना

जिस प्रकारकी बौद्ध-धर्मकी कहानी हमें बर्मा तथा स्यामके इतिहासके पृष्ठोंपर पढ़नेको मिलती है, कुछ-कुछ नाम-भेद तथा स्थान-भेदसे उसीकी पुनरावृत्ति हम इन्डोनेशियाके सुमात्रा, जावा, बाली आदि द्वीपों तथा हिन्द-चीनके चंपा, फोनन्, कम्बुज आदि प्रदेशोंमें देखते हैं। इस कथाको आप शिल्पके स्थायी अक्षरोंमें बाँचना चाहें, तो आप जावाके बोरोबुदूर चैत्य और कम्बोजके अंकोरवाट्की यात्रा कर आयें। भारतमें जो स्थान अजंता, एलोरा तथा साँचीका है, पूर्वेशियामें जावाका बोरोबुदूर चैत्य और कम्बोजका अंकोरवाट् किसी भी तरह उनसे कम नहीं हैं।

जापान

अब हम और पूर्व चलें तथा 'सूर्योदयके देश' जापान की सुधि लें। जिस समय ५२२ ई०में कोरियासे जापानको बुद्धकी मूर्त्ति और शास्त्र भेंट किए गए, वही समय जापानमें बौद्ध-धर्मके प्रवेशका समझा जा सकता है। उसके बाद ही भिक्षु आए, भिक्षुणियाँ आईं और मन्दिरों तथा मूर्त्तियोंके शिल्पी आए। आधी शतीके बाद सम्राट शोतुकका संरक्षण पाकर बौद्ध-धर्मने न केवल राज-दरबारमें, किन्तु देशमें भी अपने पैर दृढ़तासे जमा लिए। भारतमें बौद्ध धर्मके लिए अशोकने जो-कुछ और जैसा-कुछ किया, वैसा ही शोतुकने भी किया। उसने बौद्ध-मंदिर बनवाए, बिहार बनवाए, अस्पताल बनवाए, अनाथालय बनवाए और निराश्रित लोगों तथा वृद्ध विधवाओंके लिए आश्रय-स्थान बनवाए। उसने न केवल बौद्ध-धर्मको शासनका धर्म बनाया, बल्कि देशकी शासन-व्यवस्था भी बौद्ध-शिक्षाओंके अनुसार चलानेका प्रयत्न किया।

आठवीं और नवीं शताब्दीके अन्तिम भागमें जातीय एकता और केन्द्रीय सरकारको बौद्ध-शासनका पूरा सहारा मिलनेसे बादकी तीन शताब्दियोंमें देशका सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक जीवन बहुत-कुछ इस परिस्थितिके अनु-रूप हो गया। तेरहवीं शती जापानमें इतिहासके एक विशेष परिच्छेदका आरम्भ करती है। राजनीतिक तथा सामाजिक परिवर्त्तनोंके साथ-साथ लोगोंकी आध्यात्मिक आवश्यकताओंके अनुरूप बौद्ध-धर्मके भी कई रूप हो गए। बौद्ध-धर्म एक जातीय धर्म न रहकर व्यक्तिगत आचरणका विषय-मात्र रह गया। युगकी आवश्यकताओंने ऐसे बौद्ध नेताओंको पैदा किया, जो एक ओर अध्यात्मके आचार्य थे और दूसरी ओर पूरे योद्धा।

जापानमें बौद्ध-धर्मका जो रूप स्थापित हुआ है, वह सामान्यतः महायान कहलाता है। आरम्भमें उसमें कहीं कोई सम्प्रदाय नहीं था; लेकिन पीछे जाकर वह कई सम्प्रदायों में विभक्त हो गया। इन भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके आचार्यों ने बौद्ध-सूत्रोंपर अद्भुत भाष्य लिखे, वे सभी इस बातके प्रमाण हैं कि जापानियोंने किस उत्साहसे बौद्ध-धर्मको अप-नाया। बौद्ध-धर्म उनके लिए एक नया दर्शन था, एक नया विज्ञान था, एक नई संस्कृति थी, कुशल प्रेरणाओं तथा सद्भावनाओंका एक निरन्तर बहता रहनेवाला स्रोत था।

स्वाभाविक रूपसे प्रारम्भमें जापानी बौद्ध-धर्म एक प्रकार से सोलहों आने चीनी रंग-ढंगका था। आठवीं सदी तक

वह पर्याप्त रूपसे रा य रंगमें रँग गया। जापानके अनेक देवी-देवताओंको बौद्ध-धर्मने अंगीकार करके उस 'जापानीकरण'की प्रक्रियाको पूरा कर दिया। बौद्ध-धर्ममें इस धार्मिक क्रान्तिको लानेका श्रेय दो जापानी भिक्षु महापुरुषोंको है—एक तो तेन्दाई-सम्प्रदायके संस्थापक देनग्यो-देशी (७६७-८२२) को और दूसरा शिन्गोव-सम्प्रदाय के संस्थापक कोबोदेशी (७७४-८३५) को।

चार शताब्दियों तक देशमें यही दो सम्प्रदाय सब-कुछ थे। कालने इन्हें जंग लगा दिया। तब इनका परिमार्जन करनेके उद्देश्यसे बारहवीं और तेरहवीं शताब्दियोंमें और चार बौद्ध-सम्प्रदायोंने जन्म लिया—(१) जैन, (२) जोदो, (३) शिन और (४) निचिरेन। इसे (११४५-१२१५) तथा दोगेन (१२००-१२५३) नामके दो महापुरुष जापानमें जैन-सम्प्रदायके प्रवर्त्तक माने जाते हैं। इस सम्प्रदायके अनुयायियोंमें अनेक प्रभावशाली नेता और योद्धा हो चुके हैं। यह एक प्रकारकी शारीरिक तथा मानसिक साधनाका विशिष्ट पन्थ है। यह साधना युद्ध-भूमिके सैनिकके लिए भी उतनी ही उपयोगी है, जितनी शान्ति-सेनाके सैनिकके लिए। किसी भी जैन-विहारमें पद्मासनस्थ भिक्षुओंका दर्शन उसकी अपनी विशेषता है। योगाभ्यासियोंके अभ्यासके समय ध्यानाचार्य एक लम्बी लकड़ी लिए हुए पंक्तिके बीचमें स्थिर नपी-तुली गतिसे अत्यन्त जागरूक रहकर टहलता रहता है। कोई अभ्यासी यदि उसकी दृष्टिमें तन्द्रालु हो गया, तो वह उसके कन्धेपर पूरे ज़ोरसे लकड़ीकी उस चपटीका प्रहार जमा ही देता है। ऐसी आवाज़से तन्द्रित भिक्षु ही नहीं, आसपासके भिक्षु भी चैतन्य हो जा सकते हैं।

हानेत (११३३-१२१२) द्वारा संस्थापित जोदो सम्प्रदाय और शिनरन (११७३-१२७२) द्वारा संस्थापित शिशु-सम्प्रदाय सिद्धान्तकी दृष्टिसे एक ही हैं। दोनों मानते हैं कि मुक्ति अमिताभकी कृपासे ही प्राप्त हो सकती है। दोनोंमें एक अन्तर है। जोदो-सम्प्रदाय नम्र-अमिदुबुत्सु (नमो अमिताभाय बुद्धाय)के मंत्रोच्चारणको पुण्य लाभ का साधन मान उसके उच्चारणपर ज़ोर देता है, किन्तु शिशु-सम्प्रदाय अमिताभ बुद्धमें अनन्त विश्वासको ही 'मुक्ति' का एकमात्र साधन मानता है। इसमें मन्त्रोच्चारणका स्थान गौण है। शिशु-सम्प्रदायकी एक विशेषता यह भी है कि वह अपने सम्प्रदायके 'भिक्षुओं' के लिए अविवाहित रहना कतई आवश्यक नहीं समझता। शिशु-सम्प्रदायके संस्थापक स्वयं विवाहित थे। उनकी सन्तान ही उत्तरोत्तर परम्पराके अनुसार सम्प्रदायके आचार्यत्वकी भी अधिकारिणी हुई।

महान देशभक्त भिक्षु निचिरेन (१२२२-१२८२) द्वारा संस्थापित निचिरेन-सम्प्रदायका शास्त्रीय आधार है सद्धर्म-पुण्डरीक। जो दीक्षित हैं, उनसे सद्धर्म-पुण्डरीक के स्वाध्यायकी आशा की जाती है और उसका आग्रह भी किया जाता है। साधारण अनुयायियोंके लिए नम्यो-हो-रंगे-क्योका मन्त्रोच्चारण पर्याप्त समझा जाता है। उस मंत्रका उच्चारण ज़ोर-ज़ोरसे टमटम बजाकर किया जाता है—बहुधा संघ-बद्ध होकर। भारतमें कलकत्ता अथवा राजगृह आदि स्थानोंमें जो जापानी बौद्ध-विहार बने हैं, वे इसी सम्प्रदायके भिक्षुओंके प्रयत्नके फल हैं।

चटगाँवके कृपाशरण महास्थविर 'भिक्षु'के बारेमें कहा करते थे कि उसे 'जूता सीनेसे लेकर चण्डी पाठ करने तकके लिए' हर समय तैयार रहना चाहिए। जापानी भिक्षुपर यह उक्ति अक्षरशः घटती है। 'बौद्ध पुजारी' के ही अर्थमें आप अधिकांश जापानी भिक्षुओंको 'भिक्षु' कह सकते हैं, अन्यथा वे उतने संन्यासी नहीं होते, जितने गृहस्थ। और संन्यासी होते भी हैं, तो बिहार-राज्यके घर-बारी संन्यासियोंके समान।

हमने सभी बौद्ध-देशोंमें न-जाने कितने विहार देखे, लेकिन जापानके विहारोंकी-सी सफ़ाई कहीं नहीं देखी। इन विहारोंमें पहुँचते ही अपने जूते दरवाज़ेपर ही छोड़ देने पड़ते हैं। विहारकी ओरसे जो स्लीपर दरवाज़ेपर रख दिए जाते हैं, उन्हें पहनकर ही विहारके बरामदोंमें चला-फिरा जा सकता है। इन स्लीपरोंकी गति भी विहारोंके भिन्न-भिन्न भवनोंके द्वारों तक ही है। अन्दर या तो आप नंगे पाँव ही जा सकते हैं या मोजा पहने रहकर भी। सभी कमरोंमें फर्शके साथ-साथ चटाइयाँ जुड़ी रहती हैं और बैठनेके लिए रहते हैं प्रायः काले रंगके मोटे गद्दीदार आसन। दिन में जो कमरे बैठने-उठनेका काम देते हैं, भोजनशालाका काम देते हैं, रातमें उन्हींमें शयनासन लगा दिए जाते हैं। एक ही कमरेके इतने उपयोग होते हुए भी सफाई ऐसी कि आपको कहीं भी कूड़ा-कचरा गिरानेमें स्वयं डर लगे। हमें स्वीकार करना पड़ता है कि सफ़ाई और व्यवस्थाकी दृष्टिसे कोई भी भारतीय हिन्दू-मन्दिर तो इनकी तुलना कर ही नहीं सकता, किन्तु कोई भी बौद्ध तथा जैन मन्दिर भी नहीं। अपने मंदिरोंमें तो जहाँ जितनी ही अधिक पवित्रता रहती ह, वहाँ उतनी ही कम सफ़ाई।

भारतीय दर्शनकी परम्परा

भारतीय दर्शनका आरंभ ऋग्वेदके दशम और अंतिम मंडलमें सम्मिलित नासदीय-सूक्तसे माना जाता है। जीवन और समाजके सम्बन्धमें कुछ बतानेके बजाय यह मोक्ष, परलोक, शान्ति, निवृत्ति-मार्ग, सृष्टिका उद्भव, ब्रह्म, वानप्रस्थ और संन्यास आदिकी उहापोहमें ही फँस गया। वैदिक ऋषियोंने बादमें जो कल्पनाएँ कीं, उपनिषदोंमें जिन सिद्धांतों का निरूपण किया, वही दार्शनिक चिन्तन और धर्मका आधार बना। विष्णुसूक्तमें की गई इहलोकसे परे एक अच्छे और ऊँचे लोक (स्वर्ग) की कल्पना, यमसूक्तमें की गई पुनर्जन्मकी कल्पना और माण्डूक्य-उपनिषदमें की गई सर्वोच्च सत्यकी कल्पना अकर्मण्य पेटू पंडितोंके बौद्धिक चमत्कारों के बड़े विलक्षण नमूने हैं। इनके फल-स्वरूप परवर्त्ती मनीषियोंने भी इहलोक और इहजीवनको दुःख-कष्टका आगार बताकर इस 'असार संसार' से 'मोक्ष' ग्रहण करनेके प्रयत्नको ही जीवनका एकमात्र प्रेय बताया। कपिलने बताया कि मानव-जीवनका चरम लक्ष्य है दुःख-कष्टका सम्पूर्ण तिरोधान (सांख्यसूत्र) और गौतमके शब्दोंमें दुःख-कष्टके विनाश द्वारा सुन्दरकी प्राप्ति (न्यायसूत्र)। इसी प्रकार पतंजलि, कणाद और व्याससे लेकर नानक, गुरु गोविन्दसिंह और चैतन्य तकने इस जीवनके दुःख-कष्टोंसे मुक्त एक अलौकिक जीवनकी कल्पना की है। गोया इस जीवनके दुःख-कष्टोंसे मुक्त होकर एक सुन्दर आलौकिक जीवन प्राप्त करनेका एकमात्र रास्ता है इस जीवनकी समस्याओं और संघर्षोंका मुक़ाबला करनेके बजाय पलायन; इस जीवनके दुःख-कष्टोंको इसी जीवनमें दूर करनेके सबल-सामूहिक प्रयत्न और उनके मूल कारणोंको खोजकर उन्हें दूर करनेकी अपेक्षा उनसे भागकर संन्यास लेना; शरीरको कष्ट देकर सुखाना; नर-नारीके प्रकृत व्यापारोंको पाप समझकर उनसे बचना और दान-धर्मसे परलोक सुधारने की चेष्टा करना आदि। इस पलायनवादी दर्शनका खोखलापन इसीसे सिद्ध है कि मृत्युके भयसे बचनेका आडम्बर रचनेके लिए आर्य-ऋषियोंने ईश्वर, परलोक और जन्मान्तरवाद-जैसे असत्योंका आविष्कार किया। शासकों और शोषकोंके व्यापारसे मिलनेवाले अर्थके लाभको स्थायी बनानेके लोभसे वर्ण-श्रेष्ठता और जाति-भेदकी सामाजिक अनीतिका आविष्कार किया तथा दान-धर्मकी परम्परा चलाई और मानवीय मूल्यों और मान्यताओंको तिलांजलि दे समाजको अस्वाभाविक सीमाओंमें कस दिया। इस असत्य और अनीति को सर्वसाधारणके गले उतारनेके लिए उन्होंने सर्वशक्तिमान ईश्वर, उसके चमत्कारों और वर्णनातीत असत्योंकी सृष्टि की। चूंकि उस समय शिक्षाका प्रचार-प्रसार ब्राह्मणेतर लोगोंमें न था, उनमें मानसिक विकास, नैतिक साहस और विवेककी भी कमी थी; अतः उन्होंने इसीके आगे आत्म-समर्पण कर दिया।

बुद्धका उदय

आर्य-ऋषियोंके उपर्युक्त वैदिक धर्मके मिथ्यावाद और अंधविश्वासोंपर सांख्यने अपने दर्शनमें करारी चोट की है। पर राजाश्रय-प्राप्त पुरोहितशाहीके इस (अ)धर्मका वे बाल भी बाँका न कर सके। लगभग यही गति चारवाक (बृहस्पति) के स्वभाववादी लोकायतवादके पूर्व-पाठकी भी हुई। जनताका अबाध निर्मम शोषण और शासकोंकी लूट-मार और लम्पटता इनकी सहमति-स्वीकृतिसे धर्मकी मुहर लगकर चल रहे थे। ई० पू० छठी शताब्दीमें राजकुमार सिद्धार्थने इस स्थितिसे ऊबकर आवाज़ उठाई। उन्होंने कभी इस बातका दावा नहीं किया कि वे किसी नए धर्म या दर्शनका प्रवर्त्तन कर रहे हैं; बल्कि उन्होंने अनीति, अन्याय और अंधविश्वासोंके खिलाफ़ आवाज़ उठाई। इसी समय निगंथ नाटपुत्त (महावीर), मक्खली गोसाल, पुराण कस्सप, सकम्बलिन, पकुध कच्चायान और संजय बेलत्थिपुत्त आदि भी अपने-अपने ढंगसे ब्राह्मण्यवादी धर्मके मिथ्या और पाखंडवादका पर्दाफ़ाश कर रहे थे; पर उनका प्रभाव काफी व्यापक न हो सका। सिद्धार्थने सुख-विलासको लात मार तथा ब्राह्मण-ऋषियोंके काया-कष्टदायक योग-तप आदिमें से गुज़रकर यह निष्कर्ष निकाला कि जीवनके दुःख कष्ट-दैन्य-रोग-जरा-मृत्यु आदिसे मुक्त होनेके लिए ये सब व्यर्थ हैं। अन्य शास्त्रार्थ-दंभी पंडितोंकी तरह उन्होंने न किसीको चुनौती दी, न धर्म-कर्म-संबंधी हिन्दू-सिद्धान्तों के खिलाफ़ जेहादकी ही घोषणा की। उन्होंने सबके प्रति उदारता, मैत्री, सद्भावना दिखाने और पवित्र जीवन बिताने के मध्य-मार्गपर ही ज़ोर दिया। आत्मा, ब्रह्म या किसी ऐसे भगवान्को वे नहीं मानते थे, जो प्राकृतिक नियमोंसे परे और पृथक कुछ कर सकता हो। उन्होंने हिन्दू-चातुर्वर्ण्यके खिलाफ़ मानव-मानवकी समानता, स्त्री-पुरुषकी समानता, ऊँच-नीच और जाति-भेदकी अस्वाभाविकता आदिका स्पष्टीकरण किया और अनुभूत सत्यको ही आध्यात्मिक उन्नतिका मार्ग माना। जीव और ब्रह्म तथा लोक-परलोकके विवादोंको अव्याकरण तथा अनुपयोगी मानकर वे सदा उनसे दूर रहे और नैतिक व्यवस्था तथा मानवकी प्रतिष्ठा एवं गुणोंपर ही ज़ोर दिया। उन्होंने बार-बार कहा है कि प्रत्येक बातको तर्ककी कसौटीपर कसना चाहिए। निर्वाण के समय उन्होंने अपने शिष्योंसे यही कहा कि 'मैंने तो केवल

एक मार्गकी खोज की है। पर संघको मेरी लीकपर ही चलनेकी आवश्यकता नहीं। सब लोग अपनी अन्तरात्मा और आत्म-निरीक्षण द्वारा अपने लिए मार्ग निकालें।' अपने प्रिय शिष्य आनन्दसे भी उन्होंने कहा—'तुम स्वयं सारे उद्योग करना। तथागत तो उपदेशक-मात्र हैं।'

बौद्ध-मतका उत्कर्ष और क्षय

इस मानववादी पक्षके बावजूद बौद्ध-मत आरम्भमें विशेष व्यापक नहीं हो पाया। इतना ही नहीं, पेटू ब्राह्मणों की कृपासे बुद्धका व्यक्तिगत जीवन, उनके विचार, उपदेश आदि भी काफ़ी अँधेरेमें या भ्रष्ट रूपमें ही आगे आए हैं। यद्यपि नेपालमें हागसन; लंकामें उपहम और टर्नर, तिब्बत में सोमाद' कोरोशी; चीनमें क्लेपोर्थ, रेम्यसात और बील द्वारा की गई खोजोंसे काफ़ी बातें प्रकाशमें आई हैं; फिर भी यह कहना कठिन है कि उनमें से कितनी बातें यथार्थ, कितनी सत्य, कितनी कल्पित और कितनी अतिरंजित हैं ? अनेक बौद्ध-ग्रन्थोंमें न केवल पाठ-भेद ही है, बल्कि उनमें ब्राह्मण-कालीन मध्य-युगके (दंडी और बाणभट्टके ढंगके) बड़े रोमांचक और भौंड़े क़िस्से भर दिए गए हैं। शाक्तों और तांत्रिकों ने तो बौद्ध-मतको बदनाम करनेके लिए उसके ग्रंथोंमें गंदीसे गंदी बातें भी घुसा दीं। कहीं-कहीं तो ये अलौकिक चमत्कारों, अंध-विश्वासों और पूर्व-जन्मकी गप्पोंमें ब्राह्मणोंकी कल्पनाओं के भी कान काटते-से लगते हैं। जो भी हो, पर बुद्धके परिनिर्वाणके कुछ वर्ष बाद तक बौद्ध-मत भारतके तत्कालीन प्रमुख धर्मोंमें अपना कोई स्थान न बना सका। मौर्य-कालमें उसका उत्कर्ष एवं प्रसार आरंभ हुआ। पर शुंग-कालमें यह राजाश्रय हट जानेसे वह फिर रुद्ध-सा हो गया। किन्तु शुंग-कण्व-कालमें इसका फिर उत्कर्ष और प्रसार हुआ। फिर जब इसका प्रभाव-प्रतिष्ठा बढ़े, तो अनेक राजा और धनी इसकी ओर झुके और सारे देशमें इसके स्तूपों, मंदिरों, चैत्यों, विहारों, मूर्त्तियों, चित्रों आदिका जाल-सा बिछ गया। इससे वह फैला तो ज़रूर, पर जैसे जनतासे हटकर वह महलों, दरबारों और धनियोंकी कोठियोंका बंदी बन गया। उसमें ब्राह्मण-धर्मका आडम्बर और कर्म-पाखंड इस सीमा तक घुस आए कि सजावट-बनावटमें बौद्ध-मंदिर और मूर्त्तियाँ वैष्णव और शैव मंदिर-मूर्त्तियोंके भी कान काटने लगे। इसका जन-साधारणपर क्या प्रभाव पड़ा होगा, इसकी कल्पना-भर ही की जा सकती है। इसकी अनेक बातोंको हिन्दू-धर्मोंने अपना लिया—जैसे बुद्धके परवर्त्ती वैष्णवों (रामानुज-संप्रदाय) ने मंदिर-पूजा और धार्मिक समारोहोंमें ऊँच-नीचका भेद न रखा। बुद्धने कर्मके जो तीन भाग किए और फिर उनके १० भेद बताए, उन्ह न्यायसूत्रमें भी माना गया है। बुद्धने बौद्ध-भिक्षुकी जो परिभाषा की, 'मनुस्मृति (दसवें श्लोक) में वही त्रिदंडी संन्यासी की परिभाषा हो गई। इस प्रकार उसके विरोधी शंकर तकने बौद्ध-नीतिशास्त्रकी अनेक बातोंको हिन्दू-धर्ममें आत्म-सात् कर लिया। कभी-कभी इसीलिए कट्टर हिन्दू इन्हें 'प्रच्छन्न बुद्ध' के नामसे पुकारते हैं। इस स्थितिमें भारतमें बौद्ध-मतके पृथक अस्तित्वका शनैः-शनैः लोप होता गया और वह विदेशोंमें ही अपने सतत परिवर्त्तनशील रूपोंमें बना एवं बढ़ता फैलता रहा।

नकारात्मक दृष्टिकोण

किन्तु हमारे अनुमानसे बौद्ध-मतके भारतसे मिटनेका शायद इन सबसे भी एक बड़ा कारण रहा होगा उसका जीवनके प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण। बुद्धके अन्य नीतिवादी सिद्धान्तोंकी कितनी ही प्रशंसा क्यों न की जाय, पर आजका कोई भी बुद्धिजीवी इस बातको स्वीकार नहीं करेगा कि मानवको दुःख, शोक, रोग, जरा, मृत्यु आदिसे मुक्त करनेका एकमात्र उपाय संसार-त्याग है ! इसमें और ब्राह्मणोंके ब्रह्मचर्य और 'मोक्ष-प्राप्ति' में फिर अन्तर ही क्या है ? अगर इसीकी खोजका नाम 'ज्ञान', 'सत्य' या 'बोधि' की प्राप्ति है, तो इससे बढ़कर अज्ञान और असत्य और कुछ नहीं हो सकते। फिर एक वृक्ष-विशेषको इस ज्ञानका सहायक-प्रतीक कहकर पूजना, स्थान-विशेषको तीर्थ बना देना और बुद्धको भगवानका अवतार बना देना किस अंधविश्वास और पाखण्डसे कम है ? अन्य बातोंमें इतने सुधारक और उदात्त होकर भी बुद्धने नर-नारीके प्रकृत सम्बन्धको—जिसमें न कोई दोष या पाप है, न पुण्य—आध्यात्मिक उन्नतिमें बाधक कहा है ! यह जीवनसे इन्कार करना और भागना नहीं तो क्या है ? कदाचित् इसी लिए इस नकारात्मक कुप्रभावको मिटानेके लिए बादमें गीताके निष्काम कर्मका काफ़ी प्रचार हुआ। बिना इसके लोक-संग्रह, मानव-सेवा और संन्यासियों को भिक्षा देनेका काम भी कैसे हो सकता है ? औसत आदमी सारी कष्ट-कठिनाइयों और मृत्युकी सुनिश्चितताके बावजूद जीना चाहता है। उसे उसके इस सहज अधिकार एवं सुयोगसे वंचित करनेवाला धर्म 'धर्म' नहीं, 'अधर्म' है।

२५००वीं जयंतीका लक्ष्य

हमारे देशने जो-कुछ समझकर भी बुद्धकी २५००वीं जयंती मनानेका तय किया हो; पर यह तय है कि ब्राह्मण्य-वादका अभिशाप ढोनेवाले इस देशमें इसी बहाने उनके विचारोंका फिर कुछ प्रचार तो होगा। स्वयं हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि आज भारतमें धर्मके नामपर ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा, अवतार, जात-पाँत (छुआछूत और रोटी-बेटी-व्यवहारमें भेद), चारित्रिक स्खलन आदिका जो रूप देखनेको मिलता है, उससे स्पष्ट है कि ग्रंथों, स्तूपों, मूर्त्तियों आदिको छोड़कर जैसे यहाँ बौद्ध-मतका कहीं कोई चिन्ह भी नहीं है। यह हमारी मानसिक दासता और अंधविश्वास-प्रियताका ही परिणाम है कि बुद्धके उपदेशोंके बावजूद हम काफ़ी असत्य, अन्याय और अनीतिको अपनाए बैठे हैं। अतएव जयंती-समारोहोंका एक ध्येय बौद्ध-मतके पलायनवादी अंशको छोड़कर उनके नीतिशास्त्र-संबंधी उपदेशोंका ही विशेष प्रचार होना चाहिए। हम जनताको बतायें कि मनुष्य-मनुष्य बराबर हैं और दुनियामें मनुष्यसे ऊँची और कोई सत्ता नहीं है। तभी हमारा यह प्रयत्न सार्थक और स्थायी लाभदायक होगा।